ारत भूमि
का
तिहास
15.4

सचिव माध्यमिक शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश इलाहाबाद की संख्या परिषद 9/171
विज्ञप्ति 3 जुलाई 1999 के संशोधित पाठ्यक्रमानुसार पाठ्य-पुस्तक

माध्यमिक

भारत-भूमि का इतिहास

(आदि काल से 1526 ई० तक)

इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए

प्रथम भाग

(निबन्धात्मक, कथनात्मक, लघु उत्तरीय प्रश्नों, ऐतिहासिक स्थलों, ऐतिहासिक तिथियों एवं ऐतिहासिक व्यक्तियों सहित)

लेखक
शिवनारायण सिंह राना
एम०ए० (इतिहास, राजनीतिक विज्ञान)
अवकाशप्राप्त-प्रवक्ता (उप-प्रधानाचार्य)
शुकदेव कॉलेज, खागा
फतेहपुर

हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा०लि०
सी० 21/30, पिशाचमोचन, वाराणसी-221010

नवीन संशोधित संस्करण

मूल्य-60.00

प्रकाशक :
हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा. लि.
सी. 21/30, पिशाचमोचन, वाराणसी-221010

पहला संस्करण : जुलाई, 1972
32वाँ संशोधित संस्करण : जुलाई, 2001

लेखक : सम्पर्क-सूत्र
शिवनारायण सिंह राना
बांकी रोड, भरुवा-सुमेरपुर
जनपद : हमीरपुर (उ. प्र.)
पिन : 210502

कम्प्यूटराइज्ड
एच0पी0एस0 इन्टरनेशनल प्रा0लि0
पिशाचमोचन, वाराणसी-221010

मुद्रक : रत्ना ऑफसेट्स लिमिटेड कमच्छा, वाराणसी, फोन-३९२८२०

अमर संदेश

"जो गुरु के प्रति विनय करते हैं उनकी शिक्षा उसी भाँति फलती-फूलती है जैसे जल से सींचा हुआ पौधा। जो गुरु के प्रति विनय नहीं करता उसके गुण उसी भाँति भस्म हो जाते हैं जैसे अग्नि से काष्ठ-राशि।"

"जितना तुम प्राप्त करोगे, उतनी ही तुम्हारी कामना बढ़ती जायगी। तुम्हारी सम्पत्ति के साथ-साथ तुम्हारी आकांक्षायें भी बढ़ती जायेंगी। तुम्हारी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए दो 'माश' भी काफी हैं, पर सन्तोष तो तुम्हारा (यदि तुम सम्पत्ति को बढ़ाते जाओ तो) एक करोड़ से भी नहीं हो सकता।"

—स्वामी महावीर

माध्यमिक शिक्षा परिषद् उ०प्र० द्वारा निर्धारित

भारतीय इतिहास के प्रथम प्रश्न-पत्र का पाठ्यक्रम
(आदि काल से सन् 1526 ई० तक)

सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के दो प्रश्न-पत्र होंगे। प्रत्येक 50 अंक का होगा। समय 3 घंटे रहेगा। कम से कम 12 प्रश्न करने होंगे। उनका विभाजन इस प्रकार होगा।

1. विचार प्रधान (Thought Provoking) व निबन्ध प्रकार (Eassy type)
   3 प्रश्न प्रत्येक 6 अंक
2. कथनों का विवेचन (Comments based on quotations)
   2 प्रश्न प्रत्येक 6 अंक
3. लघु उत्तरीय प्रश्न — **4 प्रश्न प्रत्येक 2 अंक**
4. प्रमुख ऐतिहासिक तिथियाँ (संक्षिप्त घटना सहित)
   10 तिथियाँ प्रत्येक 1/2 अंक
5. ऐतिहासिक स्थान जिसका भ्रमण किया हो,
   भवन-निर्माण-कला तथा अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य — **3 अंक**
6. ऐतिहासिक व्यक्तियों पर टिप्पणी
   (प्राचीन काल, मध्यकाल तथा आधुनिक काल) — **केवल दो**
   प्रत्येक काल से एक अनिवार्य है। — **4 अंक**

पाठ्यक्रम : प्रथम प्रश्न-पत्र

1. **भारतीय इतिहास जानने के साधन।**
2. **भारतीय एकता के आधारभूत सिद्धान्त** – समय-समय पर किये गये प्रयास, आधुनिक समय में उसकी आवश्यकता।
3. **सिन्धु, सरस्वती एवं आर्य सभ्यता** – तुलनात्मक अध्ययन, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक। कला, साहित्य, जीवन।
4. **धार्मिक क्रान्ति का युग** – कारण, परिणाम, जैन-धर्म, बौद्ध-धर्म, तुलनात्मक अध्ययन, प्रगति एवं ह्रास के कारण, विश्व को देन।

5. **पश्चिमी जगत से भारत का सम्पर्क** – सिकन्दर का आक्रमण। भारतीय इतिहास पर प्रभाव, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कला साहित्य।

6. **राजनैतिक एकता की प्रक्रिया** – चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक-शासन-प्रबन्ध, अशोक का धर्म, लोक-कल्याणकारी कार्य, वर्तमान व्यवस्था से समता। भारतीय सीमा के बाहर भारत का प्रभाव, साम्राज्य का अन्त, कारण।

7. **कुषाण वंश** – कनिष्क, विजय एवं बौद्ध धर्म का प्रसार, कलाएँ एवं साहित्य।

8. **केन्द्रीय शक्ति का पुनरुत्थान** – चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त व चन्द्रगुप्त द्वितीय। भारत का एकीकरण, प्राचीन भारत का स्वर्णयुग, धर्म सहिष्णुता, सामाजिक जीवन, कला, साहित्य, विदेशों से आर्थिक सम्पर्क, आर्थिक सम्पन्नता। फाहियान का वर्णन, केन्द्रीय शक्ति का ह्रास, एकता की क्षति।

9. **हर्ष** – विजय एवं प्रशासन, बौद्ध-धर्म, धार्मिक सहिष्णुता, कला एवं साहित्य।

10. **स्थानीय शक्तियों का उदय** – राजपूत युग। प्रमुख राजपूत वंश, विदेशी आक्रमण, पराजय के कारण। सामाजिक व आर्थिक जीवन, राजनीतिक एकता का ह्रास, स्वार्थ की पूर्ति, संकीर्णता, राष्ट्र की हानि, अलबरुनी का कथन।

11. **इस्लामी धर्म का जन्म** – मूलभूत सिद्धान्त, धर्म का राजनीतिक स्वरूप, गजनी और गोरी के आक्रमण।

12. **दिल्ली सल्तनत-विस्तार** – ऐबक, इल्तुतमिश, बलबन, अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद तुगलक, फिरोज तुगलक। शासन प्रबन्ध, सैनिक प्रबन्ध, उत्तर-पश्चिम सीमा समस्या। राजनीति का आधार धर्म। धर्म सापेक्ष राज्य। वर्तमान समय के धर्म सापेक्ष राज्यों के घटना चक्र को समझाया जाय।

13. **सल्तनत का विघटन** – कारण।

14. **दक्षिण भारत के राज्य** – ग्राम्य शासन प्रणाली।

15. **धार्मिक सहिष्णुता का जन्म** – सूफी सम्प्रदाय के प्रमुख संत-सभी धर्मों के। भारतीयता के लिए तैयार पृष्ठभूमि। साहित्य और कला में इसका प्रभाव। हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल का जन्म।

विषय-सूची

खण्ड 1 : प्राचीन भारत

खण्ड : 1

माध्यमिक भारत-भूमि का इतिहास

(प्राचीन भारत)

उत्तरं यत् समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद् भारतं नाम, भारती यत्र सन्ततिः ।।

अर्थात् "पृथ्वी का वह भू-भाग जो समुद्र (हिन्दमहासागर) के उत्तर में तथा हिमाद्रि (हिमालय) के दक्षिण में स्थित है और जहाँ भारतीय सन्तति का वास है, वह भारतवर्ष है।"

—विष्णु पुराण

"इतिहास सत्य की प्रतिमूर्ति होता है। उसका साम्प्रदायिकता, दंगे-फसाद, हिन्दू-मुस्लिम, अच्छा-बुरा से कोई सम्बन्ध नहीं होता, वह तो केवल हमें अतीत का दर्शन कराता है।"

1

भारतीय इतिहास जानने के साधन

> **"आज भारत विश्व की दृष्टि में गिरा हुआ है। इसका यह कारण नहीं है कि भारत में लोगों ने गौरवपूर्ण कार्य किया ही नहीं, बल्कि इसका कारण यह है कि विश्व के लोग ही भारतीयों के गौरवपूर्ण कार्यों से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं।"**
>
> **- सी०एन० अय्यर**

भारत का प्राचीन इतिहास गौरवशाली होते हुए भी यह आश्चर्य का ही विषय है कि उसका प्राचीन इतिहास जानने के लिए कोई वैज्ञानिक प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर ऐतिहासिक घटनाओं का तिथिपरक मूल्यांकन हो सके। संभव है, इसका मूल कारण साहित्य के प्रति उन लोगों की उदासीनता रही हो जिनका साहित्य के निर्माण और विकास में प्रमुख हाथ रहा है। उस काल के लेखकों एवं साहित्यकारों ने तिथि और घटनाचक्र पर ध्यान नहीं दिया। इसी कारण अनेक इतिहासकारों ने यहाँ तक कह डाला है कि भारत का कोई प्राचीन इतिहास ही नहीं है। इस विषय पर **एलफिस्टन महोदय** ने लिखा है– "भारतीय इतिहास की सिकन्दर आक्रमण के पूर्व की किसी महत्वपूर्ण घटना की तिथि निश्चित नहीं की जा सकती।"

इस प्रकार **साबेल महोदय** ने भी कहा है– "हिन्दू काल में हम उस समय तक के इतिहास की घटनाओं का विस्तारपूर्वक तथा निश्चिततापूर्वक वर्णन नहीं कर सकते जब तक कि भारत अन्य देशों के सम्पर्क में नहीं आया था।" इन भ्रमों का समुचित उत्तर देते हुए **सी०एन० अय्यर** ने लिखा है– "आज भारत विश्व की दृष्टि में गिरा हुआ है। इसका यह कारण नहीं है कि भारत में लोगों ने गौरवपूर्ण कार्य किया ही नहीं, बल्कि इसका कारण यह है कि विश्व के लोग ही भारतीयों के गौरवपूर्ण कार्यों से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं।" यह सत्य है कि प्राचीन भारतीय इतिहास के अनुशीलन में वैज्ञानिक ऐतिहासिक ग्रन्थों का अभाव है। इसी कारण मुसलमान विद्वान लेखक **अलबरूनी** ने जो ग्यारहवीं शताब्दी में भारत आया था, लिखा है, "हिन्दू लोग ऐतिहासिक घटनाओं के प्रति उदासीन हैं। तिथि के क्रम के सम्बन्ध में वे अत्यन्त लापरवाह हैं। जब उनसे कोई ऐसी बात पूछी जाती है जिसका वे उत्तर नहीं दे पाते, तब वे कहानियाँ गढ़ने लगते हैं।" अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी विद्वानों ने बड़ी लगन एवं परिश्रम के साथ अन्वेषण कर प्राचीन भारत के इतिहास को खोज निकालने का पूर्ण प्रयास किया है। इन विद्वानों ने जिन साधनों से भारतीय इतिहास की खोज की है, वे अग्रांकित हैं :–

(1) अनैतिहासिक ग्रन्थ

(2) ऐतिहासिक ग्रन्थ

(3) विदेशी यात्रियों व लेखकों के विवरण

(4) पुरातत्व, सम्बन्धी सामग्री

(अ) अभिलेख

(ब) मुद्रा अथवा सिक्के

(स) प्राचीन इमारतें, मन्दिर आदि।

1. अनैतिहासिक ग्रन्थ – भारत के प्राचीनतम ग्रन्थ धार्मिक हैं जिनमें ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख मिलता है। ये ग्रन्थ इस प्रकार हैं :-

(अ) वैदिक साहित्य :

(1) वेद – वेद आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। ये संख्या में चार हैं–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। इन ग्रन्थों में ऋग्वेद प्राचीनतम है। ये वेद वैदिककालीन आर्यों की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दशाओं पर प्रकाश डालते हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है जिनमें मैक्समूलर, ग्रिफिथ कोलबुक, मैकडानल विन्टरनिट्स, पीटर्सन आदि उल्लेखनीय हैं। **विन्टरनिट्स** ने तो यहाँ तक लिखा है– "यदि हम अपनी निजी संस्कृति के उद्गम को जानने और समझने के इच्छुक हैं, यदि हम प्राचीनतम इण्डो-यूरोपियन संस्कृति को समझना चाहते हैं तो हमें भारत जाना चाहिए जहाँ इण्डो-यूरोपियन लोगों का प्राचीनतम साहित्य संगृहीत है।"[1]

वैदिक साहित्य
1. वेद -
   (अ) ऋग्वेद
   (ब) यजुर्वेद
   (स) सामवेद
   (द) अथर्ववेद
2. ब्राह्मण तथा उपनिषद्
3. सूत्र-साहित्य
4. वेदांग
5. पुराण
6. स्मृतियाँ

(2) ब्राह्मण तथा उपनिषद् – ब्राह्मण ग्रन्थों में ऐतरेय, पंचविंश, शतपथ, गोपथ आदि हैं। इन ग्रन्थों में गान्धार, शाल्य, केकय, कुरु, कोशल, पांचाल, विदेह आदि राज्यों की घटनाओं का उल्लेख मिलता है। इन ग्रन्थों की रचना वेदों का संक्षेपीकरण करने के लिए की गई थी। इनमें यज्ञ के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये विचारों का उल्लेख है। ये प्राचीन आर्यों के राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालते हैं।

उपनिषद् का शाब्दिक अर्थ उपासना है। जो ग्रन्थ शिक्षक के नीचे आसन पर बैठकर शिष्यों द्वारा पढ़े जाते थे, उनका नाम आर्यों ने **'उपनिषद्'** रखा। उपनिषद् ब्राह्मण ग्रन्थों का अन्तिम भाग है। इनमें **'बृहदारण्यक'** और **'छान्दोग्य'** उल्लेखनीय हैं। इनमें कुछ ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख मिलता है। इनके पश्चात् **'अरण्यक'** का स्थान है। इनका अध्ययन जंगल के शान्त वातावरण में ही किया जाता था। इन ग्रन्थों में आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध की विवेचना की गई है।

(3) सूत्र-साहित्य – सूत्र-साहित्य तीन भागों में विभक्त है– (i) **श्रौत सूत्र**–इनमें यज्ञीय विधि-विधानों की विस्तार में चर्चा मिलती हैं। (ii) **गृह-सूत्र**–ये गृह कर्मकाण्डों एवं यज्ञों का विवरण प्रस्तुत करते हैं। (iii) **धर्म-सूत्र**–इनमें राजनीति, विधि एवं व्यवहार से सम्बन्धित विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

(4) वेदांग – इनकी संख्या छः है। ये हैं– (i) शिक्षा (शुद्ध उच्चारण शास्त्र), (ii) कल्प (कर्मकाण्डीय विधि), (iii) निरुक्त (शब्दों की व्युत्पत्ति का शास्त्र), (iv) व्याकरण,

1. "If we wish to learn to understand the beginning of our own culture if we wish to understand to oldest Indo-European culture. we must go to India where the oldest Literature of an Indo-European people is preserved".

(v) छन्द तथा (vi) ज्योतिष। इन सभी का उद्देश्य वैदिक साहित्य का संरक्षण, उनकी व्याख्या तथा उसे व्यावहारिक प्रयोग के लिए उपयोगी बनाना था।

(5) पुराण –. ऐतिहासिक दृष्टि से पुराणों का बहुत महत्व है। इनकी संख्या 18 है।[1] इन पुराणों के अन्तिम अध्याय में प्राचीन राजवंशावलियों का उल्लेख है। इनमें शुंग-वंश कण्व-वंश आदि का सविस्तार उल्लेख मिलता है। यद्यपि इनमें बहुत-सी काल्पनिक बातों का समावेश है फिर भी **स्मिथ** के शब्दों में– "यदि इनका सावधानी से अध्ययन किया जाय तो इनके द्वारा मूल्यवान ऐतिहासिक गाथाएँ प्राप्त हो सकती हैं।"

(6) स्मृतियाँ – कहा जाता है कि राजा मनु ने 'मनु-स्मृति' की रचना ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी में की थी। अन्य स्मृतियों में नारद स्मृति, विष्णु स्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति के नाम उल्लेखनीय हैं।

(ब) बौद्ध-साहित्य :

प्राचीन भारत का इतिहास जानने में बौद्ध-साहित्य का बहुत अधिक महत्व है। इस साहित्य में पिटक, निकाय, जातक आदि का अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने लिखा है– "जातक केवल इसलिए ही अमूल्य नहीं है कि उनका साहित्य तथा उनकी कला उत्तम है बल्कि तीसरी शताब्दी ई०पू० सभ्यता के इतिहास की दृष्टि से भी उनका ऊँचा स्थान है।" इन ग्रन्थों से बौद्धकालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक बातों की जानकारी उपलब्ध होती है। अन्य ग्रन्थों में 'ललित विस्तार', 'बुद्ध-चरित', 'दिव्यावदान', 'लंकावतार', 'मिलिन्द प्रश्न' तथा 'मंजुश्री मूलकल्प' आदि हैं। 'ललित विस्तार' तथा 'बुद्धचरित' से प्राचीन भारत के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। 'दिव्यावदान' से अशोक और उसके पुत्र कुणाल के विषय में ज्ञात होता है। 'मिलिन्द प्रश्न' में महात्मा नागसेन और यूनानी सम्राट मिलिन्द का संवाद है। 'मंजुश्री मूलकल्प' में प्राचीन भारत के राजवंशों का उल्लेख है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य बौद्ध ग्रन्थों में दीपवंश तथा महावंश के नाम भी उल्लेखनीय हैं। दीपवंश में अशोक द्वारा लंका में बौद्ध-धर्म के प्रचार का वर्णन है तथा महावंश में मौर्यवंश के राजाओं तथा अनेक बौद्ध आचार्यों का वर्णन है।

बौद्ध-साहित्य
1. पिटक
2. निकाय
3. जातक
4. दीपवंश
5. महावंश
6. ललित विस्तार
7. बुद्ध-चरित
8. दिव्यावदान
9. लंकावतार
10. मिलिन्द प्रश्न
11. मंजुश्री मूलकल्प

(स) जैन साहित्य :

जैन साहित्य में 'परिशिष्ट पर्वन', 'भद्रबाहु चरित', 'आचारांग सूत्र', 'कालिका पुराण', 'बारह अंगा' आदि प्रमुख हैं। ये ग्रन्थ इतिहास जानने में पर्याप्त सहायक हैं। जैन

1. (1) ब्रह्म पुराण, (2) पद्म पुराण, (3) विष्णु पुराण, (4) शिव पुराण, (5) भागवत पुराण, (6) नारदीय पुराण, (7) मार्कण्डेय पुराण, (8) अग्नि पुराण, (9) भविष्य पुराण, (10) ब्रह्मवैवर्त पुराण, (11) लिंग पुराण, (12) वराह पुराण, (13) स्कन्द पुराण, (14) वामन पुराण, (15) कूर्म पुराण, (16) मत्स्य पुराण, (17) गरुड़ पुराण और (18) ब्रह्माण्ड पुराण।

ग्रन्थ अधिकतर श्वेतांबर सम्प्रदाय के हैं। परिशिष्ट पर्वन में जैन सम्राटों का उल्लेख है। भद्रबाहु चरित में चन्द्रगुप्त मौर्य का जैनभिक्षु होकर अपने गुरु भद्रबाहु के साथ दक्षिण की ओर जाने का विवरण है। अन्य ग्रन्थों में 'भगवती सूत्र' 'त्रिलोक-विज्ञप्ति' तथा 'लोक विभाग' भी महत्वपूर्ण हैं।

जैन साहित्य	
1. परिशिष्ट पर्वन	2. भद्रबाहु चरित
3. आचारांग सूत्र	4. कालिका पुराण
5. बारह अंगा	6. भगवती सूत्र
7. त्रिलोक विज्ञप्ति	8. लोक विभाग

(द) संगम साहित्य :

तमिल साहित्य का प्राचीनतम् उपलब्ध अंग संगम-साहित्य है। यह साहित्य सम्प्रति मुख्य रूप से 9 संग्रह-ग्रन्थों में संकलित हैं। इनके निम्नलिखित नाम हैं : 1. नटिणै, 2. कुरंगदोगै, 3. ऐंगुरुनूर, 4. फदिट्रपत्तु, 5. परिपाडल, 6. कल्लित्तोगै, 7. अहनानुरू 8. पुरनानुरू तथा 9. पत्तुप्पाट्टु। इन संग्रहों में 2279 कविताओं तथा 102 अनाम लेखों को संकलित किया गया है। उपर्युक्त 9 संग्रह-ग्रन्थों में संकलित साहित्य से ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में विकसित तमिल समाज, संस्कृति तथा साहित्य का ज्ञान प्राप्त होता है।

2. ऐतिहासिक ग्रन्थ – ऐतिहासिक ग्रन्थों के अन्तर्गत दो महाकाव्य–'रामायण' तथा 'महाभारत' प्रमुख स्रोत के रूप में आते हैं। ये ग्रन्थ तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक अवस्था पर प्रकाश डालते हैं, किन्तु राजनीतिक घटनाओं के क्रमबद्ध इतिहास के रूप में ये पूर्ण असन्तोषजनक हैं। कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह पुस्तक राजनीति की आधारशिला समझी जाती है। चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन-व्यवस्था का पूर्ण ज्ञान इसी पुस्तक से पर्याप्त रूप में प्राप्त होता है। **वाण** का 'हर्षचरित' हर्षकाल के विषय में सामग्री प्रस्तुत करता है। **कल्हण** की 'राजतरंगिणी' बारहवीं शताब्दी तक काश्मीर के इतिहास का वर्णन करती है। **पातंजलि** का 'महाभाष्य' और **कालिदास** की रचना 'मालविकाग्निमित्र' शुंग-वंश के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त **पाणिनि** का 'अष्टाध्यायी', **महाकवि भास** का 'स्वप्नवासवदत्ता' व 'प्रतिज्ञा यौगंधरायण', **सन्ध्याकार नंदी** का 'रामचरित', **आनन्दभट्ट** का 'वल्लाल चरित', **पद्मगुप्त** का 'नवसाहसांक-चरित', **विल्हण** का 'विक्रमांकदेव-चरित', **जगनिक** का 'पृथ्वीरांजविजय' और **सोमेश्वर** की 'कीर्ति कौमुदी', **अतुल** का 'मूषिक वंश', आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं।

ऐतिहासिक ग्रन्थ
1. रामायण
2. महाभारत
3. अर्थशास्त्र
4. हर्षचरित
5. राजतरंगिणी
6. महाभाष्य
7. मालविकाग्निमित्र
8. अष्टाध्यायी
9. स्वप्नवासवदत्ता
10. प्रतिज्ञा यौगन्धरायण
11. रामचरित
12. वल्लात चरित
13. नवसाहसांक चरित
14. विक्रमांकदेव चरित
15. पृथ्वीराज वियज
16. कीर्ति कौमुदी
17. भूषिक वंश

3. विदेशी यात्रियों व लेखकों के विवरण – विदेशी लेखकों एवं यात्रियों की वर्णित विषय सामग्री से पर्याप्त ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त होता है। ये लेखक और यात्री राजनीतिक व्यापारिक, सांस्कृतिक सम्बन्धों के विषय में जानकारी करने के लिए भारत-भूमि आए थे। उनमें धार्मिक

ज्ञान-पिपासा भी थी जिसने उन्हें पर्याप्त समय तक भारत का भ्रमण कराया। इन यात्रियों और लेखकों में ग्रीक, चीनी, तिब्बती, मुसलमान आते हैं। इनका क्रमशः संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

(अ) ग्रीक लेखक – ग्रीक लेखकों में **'हेरोडोटस'** प्रमुख है जिसने ईसा से पाँच शताब्दी पूर्व के भारतीय सीमा प्रान्त और ईरानी साम्राज्य के राजनीतिक सम्बन्धों पर प्रकाश डाला है। सिकन्दर के समकालीन लेखक–कर्टियस, स्ट्रैबो, एरिअन, प्लूटार्क और जस्टिन हैं। इन लेखकों ने सेल्यूकस के राजदूत मेगस्थनीज की 'इण्डिका' नामक पुस्तक के अनेक लम्बे अवतरण प्रस्तुत किए हैं। 'इण्डिका' में भारतीय संस्थाओं, भूगोल और कृषि के सम्बन्ध में वर्णित विषय सामग्री है।

ग्रीक लेखक
1. हेरोडोटस
2. कर्टियस
3. स्ट्रैबो
4. एरियन
5. प्लूटार्क
6. जस्टिन
7. मेगस्थनीज

(ब) चीनी यात्री – चीनी यात्रियों में 'फाहियान', 'सुङ्गयून', ह्वेनसांग' और 'इत्सिग' विशेष प्रसिद्ध हैं। **फाहियान** (399-414 ई०) चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल में भारत आया। उसके यात्रा-विवरण से तत्कालीन भारत की सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त होता है। **सुङ्गयून** 518 ई० में भारत आया और 521 में भारत से लौटते समय 170 पुस्तकें अपने साथ लेता गया। **ह्वेनसांग** (629-645 ई०) हर्ष के शासनकाल में भारत आया। उसके ग्रन्थ 'पाश्चात्य संसार के लेख' से तत्कालीन भारत की अनेक घटनाओं का ज्ञान प्राप्त होता है। **इत्सिग** सातवीं सदी (लगभग 673-695 ई०) के अन्त में भारत आया। इसके यात्रा-विवरण से नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में बहुत सी महत्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं। ये चारों उन प्रसिद्ध चीनी यात्रियों में हैं जो ज्ञान की खोज में भारत आए।

चीनी यात्री
1. फाहियान
2. सुङ्गयून
3. ह्वेनसांग
4. इत्सिंग

(स) तिब्बती यात्री – तिब्बत के अनेक यात्री भी बौद्धधर्म के ज्ञान की पिपासा को शान्त करने भारत आए, जिन्होंने अपने ग्रन्थों में तत्कालीन घटनाओं का उल्लेख किया है। इन यात्रियों में तिब्बती लामा तारानाथ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उसके **'काँजूर'** और **'ताँजूर'** नामक ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं। उनके मौर्यकाल तथा उसके पश्चात् के विदेशी आक्रमणों का उल्लेख किया है।

(द) मुसलमान लेखक – मुसलमान लेखकों में **अलबरूनी** का प्रमुख स्थान है। 1030 ई० में उसने अपना **'तहकीक-ए-हिन्द'** (तारीख-उल-हिन्द) नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा जिसमें भारत के निवासियों के सम्बन्ध में पर्याप्त उल्लेख है। अन्य मुस्लिम ग्रन्थों में **अलइस्तखरी** का 'किताब-उल-अकालून', **इब्नहौकल** का 'अस्काल-उद-विलाद', **अल-उतबी** का 'तारीख-ए-यमिनी' **मिन्हाज-उल-सिराज** का 'तबकात-ए-नसीरी', **निजामुद्दीन** का 'तबकात-ए-अकबरी' **हसन निजामी** का 'ताज-उल-मआसिर', **फरिश्ता** का 'तारीख-ए-फरिश्ता' आदि प्रमुख

मुसलमान लेखक
1. अलबरूनी
2. अलइस्तखरी
3. इब्नहौकल
4. अल-उतबी
5. मिन्हाज-उल-सिराज
6. निजामुद्दीन
7. हसन निजामी
8. फरिश्ता

हैं। उक्त ग्रन्थ प्राचीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक, धार्मिक और भौगोलिक परिस्थितियों पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। इन लेखकों के सम्बन्ध में **डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी** ने लिखा है– "विदेशी वृत्तान्त से भारतीय तिथिक्रम की गुत्थियाँ सुलझाने में पर्याप्त सहायता मिली है। इनकी सहायता से कितनी बार भारतीय राजाओं की समकालीनता विदेशी राजाओं से स्थापित हो गई और इन विदेशी राजाओं के काल निश्चित होने के कारण भारतीय तिथिक्रम भी ठीक कर लिया गया है।"

4. पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री – पुरातत्व विभाग से उपलब्ध सामग्री को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(अ) अभिलेख – अभिलेखों से जो अत्यधिक प्राचीन हैं, पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। ये अभिलेख शिलाओं, स्तम्भों, गुफाओं, धातुपत्रों में खुदे मिले हैं। ये अभिलेख संस्कृत, पालि, प्राकृतिक भाषाओं में हैं। विषय-भेद के अनुसार यह ज्ञात होता है कि ये प्रशस्ति, दान-पत्र, समर्पण-पत्र के रूप में हैं। इन अभिलेखों में प्राचीनतम अभिलेख अशोककालीन हैं जो स्तम्भों, शिलाओं तथा स्तूपों पर अंकित हैं। इनके द्वारा अशोक के साम्राज्य की सीमाओं का, उसके धर्म-प्रसार के कार्यों का तथा शासन सम्बन्धी सुधारों का ज्ञान प्राप्त होता है। अशोक के पश्चात् कनिष्क तथा गुप्त सम्राटों के अभिलेख उपलब्ध हैं। दक्षिण भारत में चालुक्य सम्राट, पुलकेशिन द्वितीय का ऐहोल लेख है जिससे हर्ष की पराजय तथा पुलकेशिन के अन्य विजयों का ज्ञान प्राप्त होता है। धारा और अजमेर में संस्कृत नाटक चट्टानों में उत्कीर्ण हैं। हाथी गुफा और प्रयाग स्तम्भ-लेखों से ही समुद्रगुप्त जैसे शक्तिशाली सम्राट की कीर्ति पर प्रकाश पड़ता है। एशिया माइनर से प्राप्त बोगजकोइ का अभिलेख वैदिक काल के देवताओं और आर्यों के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करता है। संक्षेप में, समस्त प्राप्त अभिलेख भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अवस्थाओं पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

(ब) मुद्रा अथवा सिक्के – अभिलेखों की भाँति ही सिक्के भी अपना विशेष ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। ये सिक्के सम्राटों का राज्य-विस्तार, कृतियों और वंशावली पर पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं। समुद्रगुप्त का वीणा लिये संगीतप्रेमी होना एक सिक्के से ही प्रमाणित है तथा समुद्रगुप्त द्वारा 'अश्वमेध यज्ञ' किया जाना भी एक सिक्के से ही प्रमाणित है। दक्षिण भारत में रोमन सिक्के प्राप्त हुए हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि भारत का रोम से व्यापारिक सम्बन्ध था। संक्षेप में, सिक्के गुप्तकाल के सम्राट समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम आदि की कृतियों पर विशेष प्रकाश डालते हैं।

(स) प्राचीन इमारतें, मन्दिर आदि – प्राचीन इमारतें, मन्दिर, विहार, स्तूप, मूर्तियाँ भारतीय इतिहास के निर्माण में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई हैं। ये सामाजिक, धार्मिक पहलुओं पर विशेष प्रकाश डालती हैं। हड़प्पा और माहेंनजोदड़ों में जो खुदाई हुई है उससे कम-से-कम पाँच हजार वर्ष पूर्व की सभ्यता का पता चलता है। सुन्दर भवन, अच्छे-अच्छे स्नानागार और नालियाँ प्राचीन संस्कृति के प्रतीक हैं। प्राचीन मन्दिरों में भूमरा का शिव मन्दिर, नचनाकुथर का पार्वती मन्दिर, देवगढ़ का दशावतार मन्दिर, भीतरगाँव का ईंटों का मन्दिर, लड़खान मन्दिर, तिगवा मन्दिर, साँची, एरण तथा बोधगया के मन्दिर और अजन्ता की गुफाओं की चित्रकारी,

नालन्दा की बुद्ध की ताँबे की मूर्ति आदि से पता चलता है कि हिन्दू कला और संस्कृति कितनी उच्चकोटि की गौरवशाली थी।

प्राचीन भारत का इतिहास जानने के लिए जो सामग्री उपलब्ध हुई है, अत्यधिक न्यून होते हुए भी पर्याप्त मात्रा में सहायक है। वर्तमान समय में भी अनेक स्थानों पर खुदाई हो रही है जिसके द्वारा भारत की प्राचीन संस्कृति पर विशेष प्रकाश पड़ेगा। इस सम्बन्ध में **डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी** ने लिखा है– "इतिहासकार को आकर श्रमिक की भाँति शूल और फावड़े से काम लेना है। उसके शूल और फावड़े अध्यवसाय और सतर्क धारणा हैं। इन्हीं की सहायता से अनेक कठिनाइयों का अतिक्रमण करके हम प्राचीन भारत के क्रमिक और वैज्ञानिक इतिहास का निर्माण कर सकते हैं।"

प्राचीन भारतीय इतिहास के आधुनिक लेखक

पाश्चात्य विद्वान और उनका योगदान – प्राचीन भारतीय इतिहास में आधुनिक ढंग से खोज 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आरम्भ हुई। जब 1765 में ब्रिटेन की ईस्ट इंडिया कम्पनी के अन्तर्गत बंगाल और बिहार का शासन आया, तब अंग्रेज शासकों को हिन्दुओं के उत्तराधिकार सम्बन्धी मामलों में न्याय व्यवस्था करने में कठिनाई प्रतीत हुई। अत: 1776 में भारतीय ग्रन्थ **'मनुस्मृति'** का अंग्रेजी अनुवाद **'ए कोड ऑफ जेन्टू लॉज'** के नाम से कराया गया। हिन्दुओं और मुसलमानों के कानूनों और रीति-रिवाजों को समझने के लिए **सर विलियम जोन्स** ने 1784 में कलकत्ता में **'एसियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल'** की स्थापना की और 1789 में **'अभिज्ञानशाकुन्तल'** नामक नाटक का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इसके पूर्व 1785 में हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थ **'भगवद्गीता'** का अंग्रेजी अनुवाद **विल्किन्स** ने किया। जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान **एफ० मैक्समूलर** (1823-1902) के निर्देशन में प्राचीन भारतीय धर्मग्रन्थों का अनुवाद **'सैक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट सीरीज'** के अन्तर्गत पचास खण्डों में प्रकाशित किया गया। 1904 में **विन्सेन्ट आर्थर स्मिथ** (1843-1920) ने **'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया'** नामक ग्रन्थ उपलब्ध स्रोतों के गहन अध्ययन के आधार पर प्रकाशित किया। इसमें भारत को एक स्वेच्छाचारी शासन वाला देश कहा गया जिसे ब्रिटिश शासन की स्थापना के पूर्व राजनीतिक एकता का ज्ञान नहीं था। वस्तुत: भारतीय इतिहास के प्रति स्मिथ की दृष्टि साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत थी।

सारांश स्वरूप, ब्रिटिश इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास की जो व्याख्या प्रस्तुत की, उसका मूल लक्ष्य भारत की उपलब्धियों को नीचा दिखाना और ब्रिटिश शासन को न्यायोचित बताना था। उन्होंने जिन प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद करके उनकी प्रस्तावना लिखी उनके और स्वयं द्वारा लिखित पुस्तकों में यह सिद्ध करने का भरपूर प्रयास किया कि प्राचीन भारत के लोगों को इतिहास-काल और उसके तिथि-क्रम का ज्ञान नहीं है। उन्होंने यह भी दृढ़तापूर्वक कहा कि भारतीयों को न तो राष्ट्रीय भावना की अनुभूति थी और न किसी प्रकार के स्वशासन का अनुभव ही था।

भारतीय विद्वान और उनका योगदान – पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय इतिहास को जिस तरह तोड़-मरोड़ कर उसकी अतीत छवि को बिगाड़ने का प्रयास किया उससे असहमत

होकर भारतीय विद्वानों ने भारत के प्राचीन इतिहास का पुनर्निमाण किया। इससे भारतीय समाज को सुधारने और स्वराज्य प्राप्त करने में पर्याप्त सहायता मिली। भारतीय विद्वानों में **राजेन्द्र लाल मित्र** (1822-1891) ने कई वैदिक मूलग्रंथ प्रकाशित किये तथा **'इंडो एरियन्स'** नामक एक पुस्तक भी लिखी। **रामकृष्ण गोपाल भंडारकर** (1837-1925) ने सातवाहनों के दकन के इतिहास को नये सिरे से लिखा तथा **वी०के० राजवाड़े** (1869-1926) ने मराठा इतिहास के स्रातों की खोज की। इन स्रातों को 22 खण्डों में प्रकाशित किया गया। संस्कृत के प्रकांड विद्वान **पांडुरंग वामन काणे** (1880-1972) ने **'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र'** लिखी जो प्राचीन भारत के सामाजिक नियमों और आचारों का एक विश्वकोश माना जाता है।

भारतीय विद्वानों ने राज-व्यवस्था (पॉलिटी) और राजनीतिक इतिहास की ओर भी पूरा ध्यान दिया। इस संबध में **देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर** (1875-1950) ने अशोक पर पुस्तक लिखी और प्राचीन भारत की राजनीतिक संस्थाओं पर भी कई पुस्तकें प्रकाशित की। **हेमचन्द्र राय चौधरी** (1892-1957) ने ईसा पूर्व दसवीं सदी से लेकर गुप्त साम्राज्य के पतन तक प्राचीन भारत के इतिहास का पुनर्निमाण कर महत्वपूर्ण कार्य किया। दक्षिण भारत में जन्मे **के०ए० नीलकंठ शास्त्री** (1892-1975) के नेतृत्व में दक्षिण भारत के राजवंशीय इतिहास पर कई प्रबन्ध पुस्तकों की रचना की गयी। **के०पी० जायसवाल** (1881-1937) ने पाश्चात्य विद्वानों की इस धारणा को कि भारत के लोग स्वेच्छाचारी शासन के आदी रहे हैं, को कपोल कल्पना कह कर समाप्त कर दिया। उन्होंने 1924 में **'हिन्दू पॉलिटी'** नामक पुस्तक प्रकाशित कर भारत के गणतंत्रीय शासन का जो स्वरूप प्रस्तुत किया उससे यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन भारत में अनेक गणतंत्र विद्यमान थे, जो अपना शासन स्वयं करते थे। जायसवाल की कृति **'हिन्दू पॉलिटी'** एक अमर रचना मानी जाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. प्राचीन भारतीय इतिहास के ज्ञानार्जन के प्रमुख साधनों का वर्णन कीजिए। (1972,79,81,86)
2. प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के विभिन्न साधनों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (1982)
3. प्राचीन भारत की ऐतिहासिक जानकारी के लिए साहित्य तथा पुरातत्व अवशेष कहाँ तक उपयोगी हैं ? लिखिए। (1983)
4. प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के मूल स्रोतों का विश्लेषणात्मक परीक्षण कीजिए। (1984)
5. प्राचीन भारतीय इतिहास के जानने के मूल स्रोतों का उल्लेख कीजिए। (1988)
6. भारतीय इतिहास के लेखन में विदेशी वृत्तान्तों के महत्व पर प्रकाश डालिए। (1992)
7. भारत के इतिहास के साहित्यिक साधनों पर प्रकाश डालिए। (1992)

8. भारतीय इतिहास के प्रमुख स्रोत के रूप में अभिलेखों का महत्व समझाइये। (1996)
9. प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में विदेशी विवरणों की महत्ता पर प्रकाश डालिए। (1997)
10. प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के लिए विभिन्न स्रोतों की विवेचना कीजिए। (2000)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "प्राचीन भारत का इतिहास जानने में साहित्य तथा पुरातत्व सामग्री पर्याप्त रूप से सहायक सिद्ध हुई है।" इस कथन की विवेचना कीजिये।
2. "हमारे प्राचीन काल के इतिहास लेखकों के सामने ऐतिहासिक स्रोतों के अभाव की सबसे बड़ी कठिनाई रहती हैं।" इस कथन के आधार पर प्राचीन इतिहास को जानने के साधनों का वर्णन कीज़िए। (1987)
3. "पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री भारत के इतिहास निर्माण में बड़ी सहायक सिद्ध हुई हैं।" व्याख्या कीजिए। (1989)
4. "भारतीय इतिहास की संरचना में पुरातात्विक साक्ष्य की विशेष भूमिका है।" समीक्षा कीजिए। (1994)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. प्राचीन भारत का इतिहास जानने में साहित्य कहाँ तक सहायक है ?
2. प्राचीन भारत का इतिहास जानने में पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री कहाँ तक सहायक है ?
3. प्राचीन भारत का इतिहास जानने के प्रमुख साधनों में से अभिलेखों के महत्व पर प्रकाश डालिए।
4. भारतीय इतिहास लेखन में बौद्ध साहित्य से क्या जानकारी मिलती है ?
5. प्राचीन भारत का इतिहास जानने में पाश्चात्य विद्वानों तथा भारतीय विद्वानों का क्या योगदान है ?

2

भारत की मौलिक एकता

> **"भारतीय संस्कृति की कहानी एकता, समाधानों का समन्वय तथा प्राचीन परम्पराओं के पूर्ण संयोग के उन्नति की कहानी है। यह प्राचीन काल में रही है और जब तक यह विश्व रहेगा, तब तक सदैव रहेगी। दूसरी संस्कृतियाँ नष्ट हो गयीं परन्तु भारतीय संस्कृति एवं इसकी एकता अमर है।"**
>
> **– प्रो० हुमायूँ कबीर**

भारत की विभिन्नताएँ – भारत एक विशाल देश है। वहाँ की भू- प्रकृति, जलवायु, वनस्पति आदि में तो विभिन्नता है ही, यहाँ के लोगों के रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, धर्म, भाषा आदि में भी विभिन्नता है। इन सब कारणों से बहुत से विद्वान भारत को एक देश न मानकर एक उपमहाद्वीप मानते हैं। वे भारत की विभिन्नता अथवा अनेकता को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत करते हैं :

(1) भौगोलिक विभिन्नता – भौगोलिक दृष्टि से भारत में अनेक विभिन्नताएँ परिलक्षित होती हैं, यहाँ कहीं गगनचुम्बी पर्वत हैं तो कहीं गहरी खाइयों वाली नीची भूमि, कहीं नदियों का जाल बिछा है तो कहीं विशाल मरुस्थल है। कही प्रतिदिन वर्षा होती है तो कहीं पानी ही नहीं बरसता है। कहीं की जलवायु स्वास्थ्यप्रद है तो कहीं की जलवायु स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। वनस्पतियाँ भी सर्वत्र एक जैसी नहीं हैं। कृषि उपज में भी पर्याप्त विभिन्नता है।

(2) नृ-वंश में विभिन्नता – भारत में लोग किसी निश्चित मानव-वर्ग के नहीं हैं। वे निग्रोटो, नर्डिक, प्रोटो- आस्ट्रेलायड आदि मानव जातियों के वंशज हैं। उनके रंग, रूप, कद में पर्याप्त विभिन्नता है। इसी आधार पर इतिहासकार **बी०स्मिथ** ने भारत को 'नृतांत्रिक संग्रहालय' कहा है।

(3) भाषायी विभिन्नता – भारत में ज्ञात आँकड़ों के अनुसार लगभग 225 भाषाएँ बोली जाती हैं। बोलियों तथा उपबोलियों की संख्या तो बहुत अधिक है। उत्तर भारत में हिन्दी, पंजाबी, बिहारी, बांग्ला आदि भाषाएँ बोली जाती हैं। इसके विपरीत दक्षिण भारत में तेलगू, तमिल, मलायालम, कन्नड़ आदि भाषाएँ प्रचलित है। मुस्लिम काल में एक नई भाषा उर्दू ने भी जन्म लिया। इस प्रकार भारत में भाषा सम्बन्धी विभिन्नताएँ भी पर्याप्त हैं।

(4) धार्मिक विभिन्नता – भाषा की विभिन्नता की तरह ही भारत में धार्मिक विभिन्नता भी है। हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिक्ख, इस्लाम, ईसाई आदि धर्मों के मानने वाले यहाँ निवास करते हैं। इन धार्मिक विभिन्नताओं के कारण लोगों के दार्शनिक विचारों तथा प्रार्थना-विधि में भी अन्तर दृष्टिगोचर होता है। कभी-कभी धार्मिक विभिन्नताओं ने साम्प्रदायिकता की भावना को उभार कर देश का बड़ा अहित भी किया है।

(5) राजनीतिक विभिन्नता – भारत अपनी प्राकृतिक सीमाओं के कारण किसं भी युग में एकता के सूत्र मे नहीं बँध पाया है और न उनमें राजनीतिक एकता भी स्थापित हो सकी। अंग्रेजी शासनकाल में भी भारत अनेक राज्यों में विभाजित था। इस विषय में **डॉ० स्मिथ** ने ठीक ही कहा है, "सभी युगों में भारत में इतने अधिक राज्य तथा शक्तियाँ रही हैं जिनकी गणना भी नहीं की जा सकती।"

(6) सांस्कृतिक विभिन्नता – भारत के सामाजिक जीवन, अनेक जातियों के आचार-विचार, खान-पान, वेश-भूषा, रीति रिवाज आदि में भी विभिन्नता परिलक्षित होती है। ऊँच-नीच, अमीर-गरीब की भावना भी दृष्टिगोचर होती है। यहाँ के कुछ लोग आज भी सभ्य हैं तथा कुछ लोग आज भी असभ्य हैं।

विभिन्नता में मौलिक एकता – किन्तु इतनी विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में एक ऐसी अखण्ड मौलिक एकता है, जिसका पता भारत के इतिहास का गहन अध्ययन करने से प्राप्त होता है। **पं० जवाहरलाल नेहरू** के शब्दों में, "जब से सभ्यता का सूर्य उदय हुआ है तभी से भारत के मस्तिष्क पर एकता की भावना ने अधिकार कर लिया है। यह मौलिक एकता किसी प्रकार बाहर से थोपी गई वस्तु नहीं है, बल्कि यह आन्तरिक एकता है और यह भारत की आत्मा में समाई हुई है।" भारत की विभिन्नताओं में छिपी मौलिक एकता का वर्णन इस प्रकार है :

1. भौगोलिक एकता – भौगोलिक दृष्टि से भारत सुदृढ़ प्राकृतिक सीमाओं से सुरक्षित है। इसके उत्तर में हिमालय पर्वत है, जो इसे अन्य देशों से पृथक् करता है तथा अन्य तीन दिशाओं में अथाह समुद्र भरा है। इन सीमाओं ने एक ही देश (भारत) का निर्माण किया है, अनेक का नहीं। यही नहीं, प्राचीन काल से भारतवासी सम्पूर्ण देश को 'भारतवर्ष' नाम से पुकारते आये हैं। विष्णु पुराण में कहा गया है :

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद् भारतं नाम, भारती यत्र सन्ततिः ।।

अर्थात् – "पृथ्वी का वह भू-भाग जो समुद्र (हिन्दमहासागर) के उत्तर में तथा हिमाद्रि (हिमालय) के दक्षिण में स्थित है और जहाँ भारतीय सन्तति का वास है; वह भारतवर्ष है।"

प्राचीन काल से ही भारत को सात नदियों, सात नगरों और सात पर्वतों का देश कहा गया है। भारत का हर हिन्दू प्राय: स्नान कते समय निम्नलिखित श्लोक पढ़ते हुए देश की उत्तर व दक्षिण की सात नदियों को समान रूप से अपनी श्रद्धा अर्पित करता है :

"गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती ।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।"

अर्थात्– "ऐ गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, काबेरी हमारे इस जल में वास करो।"

इससे यह स्पष्ट है कि देश के हर प्रान्त में निवास करने वाला भारतीय देश की समस्त सात नदियों को पूज्य तथा पवित्र मानता है तथा वह निम्नलिखित सात नगरों को सम्मान की दृष्टि से देखता है :–

"अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काँची, अवन्तिका: ।
पुरी, द्वारावती, चैव, सप्तैते मोक्षदायिका: ।"

अर्थात्– "अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काँची, अवन्तिका तथा द्वारकापुरी— ये सात नगर मोक्ष प्रदान करने वाले हैं।"

उपर्युक्त सात नगरों की भाँति हर भारतीय द्वारा सात पर्वतों के नाम भी लिये जाते हैं।

"महेन्द्रो मलय: सह्य: शुक्तिमान ऋक्षपर्वत: ।
विंध्यश्च परियात्रश्च सप्तैते कुल पर्वता: ।।"

अर्थात्– "महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, विन्ध्य तथा पारियात्र- ये कुल सात पर्वत हैं।"

उपर्युक्त सात नदियों, सात नगरों तथा सात पर्वतों से पूरे देश की विशालता प्रकट होती है, साथ ही यहाँ के निवासियों की अखण्ड मौलिक एकता का भी आभास मिलता है।

प्राचीन काल से ही सम्पूर्ण भारत को 'जम्बूदीप', 'भारत-खण्ड' तथा 'आर्यावर्त' आदि नामों से पुकारा जाता रहा है। आधुनिक काल में यातायात के साधनों के विकास के परिणामस्वरूप भारत की मौलिक एकता और भी अधिक सुदृढ़ हो गयी है।

2. राजनीतिक एकता – कतिपय विद्वानों का मत है कि भारत में कभी भी राजनीतिक एकता नहीं रही है, परन्तु यह मत असंगत है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो प्राचीन काल से ही भारतीय राजाओं की मनोकामना चक्रवर्ती सम्राट बनने की रहती थी। इन राजाओं ने 'महाराजाधिराज', 'एकराट्', 'पृथ्वीपति', 'सार्वभौम', 'सकलोत्तरापथनाथ' तथा 'दक्षिणापथेश्वर' आदि पदवियाँ धारण की हैं। यही नहीं, प्रत्येक महान सम्राट अपनी प्रतिष्ठा के लिए 'राजसूय', 'अश्वमेध' तथा 'वाजपेय' आदि यज्ञ करता था। पौराणिक साहित्य में ययाति, मान्धाता, सगर, दिलीप, रघु, युधिष्ठिर तथा जनमेजय आदि सम्राटों की दिग्विजयों का वर्णन मिलता है। चन्द्रगुप्त, अशोक तथा समुद्रगुप्त के शासन-काल में सारे देश में राजनीतिक एकता विद्यमान थी। मध्ययुग में अलाउद्दीन और औरंगजेब ने भारत को राजनीतिक एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। इसी प्रकार ब्रिटिश शासनकाल में भी लार्ड बेलेजली, लार्ड डलहौजी आदि गवर्नर जनरलों ने भारतीय राज्यों को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। अन्त में, सम्पूर्ण भारतीय जनता ने राष्ट्रीय आन्दोलन में संगठित रूप से भाग लिया और अन्ततोगत्वा एक विशाल भारत की स्थापना करने में पूर्णत: सफल हुई।

3. धार्मिक एकता – भारत में विभिन्न धर्मों, जैसे– जैन-धर्म, सिक्ख-धर्म, बौद्ध-धर्म, आर्य-समाज, ब्रह्म-समाज, रामकृष्ण मिशन, कबीरपंथी आदि के अनुयायी निवास करते हैं। अत: यदि भारत को विभिन्न धर्मों की 'जन्तुशाला' कहा जाय तो कोई आश्चर्य न होगा। सभी धर्मों में विभिन्नता होते हुए भी उनमें आन्तरिक समानता विद्यमान है। भारत का प्रत्येक व्यक्ति वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण तथा महाभारत आदि को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है।

भारत की मौलिक एकता के विभिन्न रूप

1. भौगोलिक एकता
2. राजनीतिक एकता
3. धार्मिक एकता
4. सांस्कृतिक एकता
   (अ) भाषा की एकता
   (ब) निवासियों की एकता
   (स) साहित्य व कला की एकता

गौ, गंगा, गायत्री सर्वत्र पवित्र मानी जाती हैं। सभी लोग प्रत्येक धर्म-आचार्यों के प्रति आदर की भावना रखते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पार्वती आदि देवी-देवताओं की कोने-कोने में पूजा होती है। हिन्दुओं के चार तीर्थ-स्थल- बद्रीनाथ (उत्तर), रामेश्वरम् (दक्षिण), जगन्नाथ (पूर्व), तथा द्वारका (पश्चिम)- देश के चारों कोने पर स्थित हैं जो भारत की धार्मिक एकता और अखण्डता के सबल प्रमाण हैं। इसी प्रकार मोक्ष प्रदान करने वाली पवित्रतम पुरियाँ- अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, गया, काँची तथा अवन्तिका आदि समस्त देश में बिखरी हुई हैं। इस प्रकार भारत में धार्मिक एकता विद्यमान है।

4. सांस्कृतिक एकता – भारत की मौलिक एकता उसकी सांस्कृतिक विभिन्नता में निहित है जिसका वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :-

(अ) भाषा की एकता – यद्यपि भारत में संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, बंगाली, पालि, राजस्थानी, मागधी, गुजराती, उर्दू, तमिल तथा कन्नड़ आदि विभिन्न प्रकार की भाषाएँ हैं, लेकिन सबसे अधिक प्राचीन भाषा संस्कृत है। प्राचीन काल में अधिकांश सम्राटों ने अपने लेख संस्कृत में लिखवाये हैं। सारे देश में आज भी संस्कृत को 'देववाणी' कहा जाता है।

(ब) निवासियों की एकता – भारत में प्राचीन काल में आर्य, द्रविड़, यूनानी, शक, कुषाण, तुर्क, मंगोल आदि अनेक जातियाँ आयीं परन्तु आज वे हिन्दू समाज में एक दूसरे से इतनी घुलमिल गई हैं कि उनका अस्तित्व ही समाप्त हो गया है। केवल विदेशी जातियों में ईसाई व मुसलमान ही अपना पृथक् अस्तित्व बनाए हुए हैं, किन्तु वे भी प्राचीन हिन्दुओं की ही सन्तान हैं। यही कारण है कि हिन्दुओं, मुसलमानों तथा ईसाइयों के अनेक रीति-रिवाज उत्सव-मेले, वेश-भूषा आदि में समानता पायी जाती है। **डॉ० राजबली पाण्डेय** ने ठीक ही लिखा है, "मुसलमान और ईसाई भी भारतीयों के प्रभाव से अछूते नहीं रहे। विवाह, खान-पान, शिष्टाचार, आमोद-प्रमोद, मनोरंजन, पर्व-उत्सव, मेले आदि भी समस्त देश में बहुत मिलते-जुलते हैं।" इस विषय पर **सर यदुनाथ सरकार** का कथन भी उल्लेखनीय है– "उन विदेशी जातियों में जो दीर्घकाल से भारत में रह चुकी हैं, जिन्होंने एक-सा अन्न खाया है, एक ही जलधारा का पान किया है, एक ही सूर्य से प्रकाश ग्रहण किया है और दैनिक जीवन में एक से नियमों का पालन किया है, शारीरिक बनावट तथा जीवनचर्या में भारी समन्वय हुआ है।"

(स) साहित्य व कला की एकता – भारत की सभी भाषाओं के साहित्य में आधारभूत एकता की स्पष्ट झाँकी दिखायी पड़ती है। **डॉ० आशीर्वादी लाल** के शब्दों में, "सभी साहित्यों का जीवन दर्शन एक-सा है। कल्पना की उड़ान एक-सी है, अलंकार एक-से हैं और आत्मा की पुकार एक-सी है।" भारत की स्थापत्य-कला, चित्र-कला, संगीत-कला तथा नृत्य-कला में भारतीयता की स्पष्ट झलक दिखाई देती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भारत की विभिन्नताओं में ही उसकी मौलिक एकता निहित है। इस सम्बन्ध में इतिहासकार **स्मिथ** महोदय ने ठीक ही लिखा है, "भारतवर्ष में वंश, वर्ण, भाषा, वेष-भूषा व रीति-रिवाज सम्बन्धी अनगिनत विभिन्नताओं में भी एक अखण्ड सारभूत एकता निहित है।" एकता इसी बात से स्पष्ट हो जाती है कि समस्त देश का नाम भारतवर्ष अथवा भारत देश है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. भारत की मौलिक एकता से आप क्या समझते हैं ? इसके विभिन्न रूपों का वर्णन कीजिए।
2. भारत की मौलिक एकता के स्वरूप का विश्लेषण कीजिए। (1992)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "भारत की मौलिक एकता उसकी विभिन्नताओं में निहित है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। (1984,86)
2. "भारत की बहुविध विभिन्नता के आवरण में ही उसकी मौलिक एकता के तत्व छिपे हैं" इस कथन की समीक्षा कीजिए। (1988)
3. "प्राचीन काल से ही भारत में 'अनेकता में एकता' पाई जाती है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। (1991)
4. "निस्संदेह भारत में एक गहरी मौलिक एकता विद्यमान है।" समीक्षा कीजिए। (1991)
5. "भारत की मौलिक एकता इसके सांस्कृतिक समन्वय में है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। (1992)
6. "अनेकता में एकता ही भारतीय संस्कृति का मूल तत्व है।" विवेचना कीजिए। (1993)
7. "एकता में अनेकता और अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता है।" विवेचना कीजिए। (1994)
8. "भारत की विभिन्नता में एकता निहित है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। (1995)
9. "भारत की मौलिक एकता उसकी विभिन्नताओं का ही परिणाम है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? स्पष्ट कीजिए। (1998)
10. "भारत की भौगोलिक परिस्थितियों का उसके राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।" विवेचना कीजिए। (1999)
11. "भारत एक इन्द्रधनुष की भाँति अपने भीतर कई रंगों को समेटे हुए एक संस्कृति वाला राष्ट्र है।" समीक्षा कीजिए।
12. "भारत की मौलिक एकता इसके भौगोलिक, राजनीतिक तथा धार्मिक समन्वय में है। इस कथन की विवेचना कीजिए।
13. "भारतीय संस्कृति एक मिश्रित संस्कृति है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. भारत की मौलिक एकता से आप क्या समझते हैं ?
2. भारत की सांस्कृतिक एकता की विवेचना कीजिए।
3. भारत की भौगोलिक एकता तथा राजनीतिक एकता का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

☆

3

हड़प्पा सभ्यता : कांस्य युग सभ्यता

> "सिन्धु-सभ्यता वास्तव में भारतीय ही है। यह भवन-निर्माण और उद्योग के साथ-साथ वेश-भूषा तथा धर्म में आधुनिक भारतीय संस्कृति का आधार है। मोहेंजोदड़ो में ऐसी विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं जो ऐतिहासिक भारत में सदैव विद्यमान रही हैं।"
>
> – प्रोफेसर चाइल्ड

खोज, विस्तार एवं नामकरण

हमारे देश की प्राचीन सभ्यता का दर्शन सिन्धु नदी की तलहटी में हुआ है। इस सभ्यता का पता भारतीय पुरातत्व विभाग की ओर से सर जान मार्शल की अध्यक्षता में की गयी खुदाई से चला। सर्वप्रथम **दयाराम साहनी** और **माधोस्वरूप वत्स** ने 1920 में पंजाब के **माण्टगोमरी** जिले में हड़प्पा का पता लगाया। इसके उपरान्त **राखालदास बनर्जी** ने 1922 में हड़प्पा से लगभग 660 किमी० की दूरी पर सिन्ध प्रदेश के लरकाना जिले में मोहेंजोदड़ो[1] नामक स्थान की खुदाई करके इस सभ्यता की खोज की। इन दोनों स्थानों के अतिरिक्त बिलोचिस्तान में नल व सुतकंगदोर, करांची में अमरी व अम्बाला, सिन्ध में चन्हूदड़ो व झूकरदड़ो, राजस्थान में कालीबंगा, पंजाब में रोपड़, गुजरात में रंगपुर, बेट द्वारका और लोथल, कच्छ में धौलावीरा तथा हरियाणा में बनमाली आदि स्थानों पर इस सभ्यता के बहुमूल्य भग्नावशेष मिले हैं। इस सभ्यता के अन्य अनुसन्धानकर्ताओं में जे०एच० मैके, जी०एफ० डेल्स, एम०जी० मजूमदार, सर आरियलस्टीन, एच० हारगीब्ज, बी०बी० लाल, बी०के० थापर और डॉ० मोर्टिमर ह्वीलर आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

विकसित अवस्था में इस सभ्यता का विस्तार लगभग आठ लाख वर्ग किलोमीटर में था। भारतवर्ष के बाहर अफगानिस्तान के उत्तरी भाग में आक्सस नदी के दक्षिण शीर्तुगाह में सिन्धु-सभ्यता की बस्ती का पता चला है। यह एक व्यापारिक केन्द्र था। सभ्यता के अन्तिम चरण में इसका प्रभाव 1,299,600 वर्ग किलोमीटर हो गया था। उत्तर में मांडा (जम्मू-कश्मीर) से दक्षिण में दाइमाबाद (उत्तरी महाराष्ट्र) तथा पश्चिम में सुतकंगदोर (बिलोचिस्तान) से पूर्व में उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले में आलमगीरपुर तक इसका विस्तार था। अब तक हड़प्पा सभ्यता के लगभग 1400 स्थलों के बारे में पता लग चुका है। लेकिन इनमें से केवल 6 को ही नगर माना जाता है। ये हैं– **हड़प्पा** (आधुनिक पाकिस्तान के शाहीवाल में), **मोहेंजोदड़ो** (पंजाब के सिंध प्रान्त के लरकाना जिले में), सिन्ध का **चन्हूदड़ो**, गुजरात का **लोथल**, उत्तरी राजस्थान का **कालीबंगा** तथा हरियाणा के हिसार जिले में स्थित **बनमाली**।

जब मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा में खुदाई की गई और दोनों स्थलों पर एक जैसी ही वस्तुएँ प्राप्त हुईं तो सर जॉन मार्शन तथा अन्य विद्वानों ने इसे सिन्धु सभ्यता का नाम दिया, क्योंकि ये क्षेत्र सिन्धु नदी और उसकी सहायक नदियों के क्षेत्र में आते थे। किन्तु जब रोपड़,

1. साधारणत: यही नाम प्रचलित है। वैसे सिंधी भाषा में इसका शुद्ध नाम 'मुहें जो डेरो' (मरे हुओं का टीला) है।

रंगपुर, कालीबंगा, लोथल, धौलावीरा, बनमाली, बेट द्वारका में हड़प्पा से मिलती-जुलती वस्तुएँ प्राप्त हुईं तो यह उचित समझा गया कि इसे हड़प्पा सभ्यता का नाम दिया जाए क्योंकि ये स्थान सिन्धु और उसकी सहायक नदियों के क्षेत्र से बाहर थे।

पूना स्थित डेक्कन कॉलेज के पुरातत्व विभाग के निदेशक वी०एन० मिश्र ने साक्ष्यों के परिपेक्ष्य में हाल में ही यह निष्कर्ष निकाला कि सिन्धु घाटी सभ्यता का नाम 'सरस्वती घाटी सभ्यता' होना चाहिए। ताजा गणना के अनुसार अब तक सिन्धु घाटी सभ्यता के 1,400 स्थलों की खोज हो चुकी है जिनमें 918 भारत में, 481 पाकिस्तान में और 1 अफगानिस्तान में है। इस सभ्यता का केन्द्र सिंधु नदी की घाटी तक ही सीमित नहीं था। कुछ स्थल घग्घर नदी (हरियाणा और राजस्थान से होकर, सिन्धु नदी के समानान्तर बहने वाली नदी) के तटवर्ती क्षेत्रों में और कुछ पाकिस्तान के हाकरा नदी के तटवर्ती क्षेत्रों में अवस्थित हैं। उसके बाद यह नदी गुजरात के रण क्षेत्र में समुद्र में विलीन हो जाती है। घग्घर के कछार में ऐसे 175 स्थल पाये गये, जबकि सिंधु सभ्यता में ऐसे सिर्फ 86 क्षेत्र मिले थे। ऋग्वेद के अनुसार घग्घर-हाकरा नदी ही वैदिक सरस्वती नदी है। इसलिए इस सभ्यता का नया नामकरण 'सरस्वती घाटी सभ्यता' होना चाहिए।

सिन्धु घाटी की सभ्यता की विशेषताएँ – सिन्धु घाटी की सभ्यता की विशेषताएँ अग्रलिखित हैं :–

(1) नगर-निर्माण योजना – मोहेंजोदड़ो में एक-दूसरे के ऊपर पुरानी इमारतों की सात तहें मिली है। अनुमान किया जाता है कि सबसे नीचे की सतह के नीचे और भी तहें होंगी जो पानी में डुबी हुईं हैं। सभ्यता के निर्माताओं की नगर निर्माण-योजना सुनिर्मित योजना थी। नगर में बड़ी-बड़ी सड़कें उपलब्ध हुई हैं। सबसे बड़ी सड़क की चौड़ाई 10 मीटर है। अन्य छोटी सड़कें इस बड़ी सड़क में आकर मिलती हैं। गलियों की चौड़ाई 1 मीटर से 2 मीटर तक है। सड़कों के नीचे निर्मित नालियाँ बड़े नालों में मिलती हैं। इन नालियों से प्रत्येक घर का गन्दा पानी निकलता था।

नगरों की सुरक्षा के लिए दुर्ग-प्राचीर – हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो, कालीबंगा और धौलावीरा जैसे बड़े नगरों की सुरक्षा के लिए मजबूत प्राचीर (सुरक्षा-दीवार) बनाये गये थे जिनके कारण इन नगरों ने दुर्गों का रूप ले लिया था। कालीबंगा नगर के प्राचीर की चौड़ाई 3 मीटर से 7 मीटर तक है। इनमें कई जगह पक्की ईंटों का प्रयोग किया गया था तथा दीवार को दृढ़ बनाने के लिए थोड़े-थोड़े फासले पर बुर्ज बनाये गये थे। प्राचीर में दो प्रवेश द्वारों के अवशेष क्रमशः उत्तर व दक्षिण की तरफ उपलब्ध होते हैं। हड़प्पाकालीन नगर धौलावीरा तीन पृथक् भागों में बँटा हुआ था। सबसे ऊपरी हिस्से में मजबूत प्राचीर से घिरा दुर्ग स्थित था। दुर्ग में प्रवेश के लिए तीन प्रवेश द्वार थे। दुर्ग के उत्तर में करीब सत्तर हजार वर्ग मीटर क्षेत्र में मध्य नगर स्थित था। सुरक्षा की दृष्टि से इसे भी मजबूत प्राचीर से घेरा गया था। मध्य नगर में प्रवेश के लिए सिर्फ एक ही प्रवेश द्वार था। मध्य नगर के पूर्व में निम्न नगर स्थित था। इस बस्ती में किसी पृथक् सुरक्षा प्राचीर का प्रमाण नहीं मिला है। इस दुर्ग नगर में जल-संग्रह के लिए एक विशाल जलाशय भी मिला है जो 37 मीटर लम्बा, 13 मीटर चौड़ा और करीब 15 मीटर गहरा है। जलाशय में स्वच्छ जल की आपूर्ति ढकी नालियों के जरिए की जाती थी।

(2) भवन-निर्माण योजना – मोहेंजोदड़ो में आज से पाँच हजार वर्ष पहले की पक्की ईंटों के बने हुए छोटे और बड़े मकान मिले हैं। छोटे मकानों का आकार प्रायः 8×9 मीटर होता था। बड़े मकानों का आकार छोटे मकानों से दुगुना होता था। कोई-कोई मकान

तो इतने विशाल हैं कि वे महल कहे जा सकते हैं। एक विशाल इमारत के खण्डहर उपलब्ध हुए हैं, जो लम्बाई में 73 मीटर और चौड़ाई में 34 मीटर थी। इसकी बाहर की दीवार की मोटाई 1.5 मीटर है। इमारत के समीप ही एक अन्य प्रासाद के खण्डहर मिले हैं जो लम्बाई में 66 मीटर और चौड़ाई में 35 मीटर था। इसकी बाहरी दीवार की मोटाई 1.5 मीटर से अधिक है। साधारणत: मकान का मुख्य द्वार सड़क की ओर रहता था। उसमें घुसने पर आँगन मिलता था। आँगन के चारों ओर कमरे या कोठरियाँ बनी थीं, जिनमें खिड़कियों से हवा और रोशनी आती थी। ईंटें कई आकार और प्रकार की बनाई जाती थीं। सबसे अधिक प्रयोग 28 सेमी × 14 सेमी × 7 सेमी आकार की ईंटों का हुआ है। शायद कुछ मकान दो मंजिल के रहे होंगे। दोनों मंजिलों के कमरे की फर्श पक्की ईंटों की हैं। सीढ़ियाँ तंग और कुछ सीधी-सी बनी हैं। सीढ़ियों की पौड़ियों की ऊँचाई 37.5 सेमी और चौड़ाई 12.5 सेमी है। मकानों में प्राय: तहखाने बने होते थे। घरों में कुएँ इस ढंग से बनाये जाते थे कि मकान के अन्दर और बाहर, दोनों ओर से काम में आ सकें। पानी के निकास के लिए ढँकी नालियाँ बनी रहती थीं। उनसे पानी एक हौज में गिरता था। सभी घरों में स्नानागार और शौचगृह अलग-अलग थे। मकानों में सजावट का अभाव पाया जाता है।

(i) अद्भुत विशाल स्नानागार – मोहेंजोदड़ो के भग्नावशेषों से सबसे अद्भुत विशाल स्नानागार है। इसकी लम्बाई 54 मीटर, चौड़ाई 33 मीटर तथा बाहरी दीवारों की मोटाई 3 मीटर हैं। आँगन के मध्य में एक स्नानकुण्ड 11.88 मीटर लम्बा, 7.01 मीटर चौड़ा और 2.43 मीटर गहरा है। इसमें जल की सतह तक सीढ़ियाँ हैं। चारों ओर बरामदे, गैलरियाँ और कमरे हैं। इसके किनारे की दीवारें इतनी मजबूत बनी हैं कि लगभग 5,000 वर्ष का समय भी उन्हें हिला नहीं सका है। इस स्नानागार को भरने के लिए पास ही एक कमरे में बड़ा-सा कुआँ है। इस स्नान-कुण्ड के साथ एक हम्माम भी है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि स्नान के लिए जल गर्म करने की व्यवस्था से वे भलीभाँति परिचित थे। इस स्नानागार के दक्षिण-पश्चिम की ओर आठ स्नानागार और बने हैं। इन स्नानागारों में सीढ़ियों के भग्नावशेष मिले हैं, जिससे यह अनुमान किया जाता है कि इनके ऊपर कमरे बने हुए थे। कुछ विद्वानों का मत है कि इनमें पुरोहित लोग निवास करते थे।

सिन्धु घाटी की सभ्यता की विशेषताएँ

1. नगर-निर्माण योजना
2. भवन-निर्माण योजना
   (i) अद्भुत विशाल स्नानागार
   (ii) विशाल अन्नागार
   (iii) सार्वजनिक भवन
3. आर्थिक जीवन
   (i) कृषि
   (ii) भोजन
   (iii) पशुपालन
   (iv) धातुएँ
   (v) व्यापार
   (vi) माप-तौल
4. सामाजिक जीवन
   (i) जीवन स्तर
   (ii) आभूषण
   (iii) वेश-विन्यास
   (iv) गृह-पात्र
   (v) खिलौने
   (vi) मनोविनोद
   (vii) अस्त्र-शस्त्र
5. धार्मिक जीवन
   (i) मातृ देवी-पूजा
   (ii) शिव-पूजा
   (iii) लिंग व योनि-पूजा
   (iv) पशु-पूजा
   (v) वृक्ष-पूजा
   (vi) सूर्य-पूजा
   (vii) नाग-पूजा
   (viii) ऋषभदेव
6. मृतक-संस्कार
7. कला

(ii) विशाल अन्नागार – मोहेंजोदड़ो के स्नानागार के पश्चिम में एक अन्य भवन के खण्डहर मिले हैं। ह्वीलर के अनुसार यह भवन एक अन्नागार था। इसमें 27 चबूतरे बनाये गये थे जिनके बीच-बीच में हवा के लिये खाली जगह छोड़ दी गयी थी। इनके ऊपर लकड़ी का कटहरा था। इस पर अनाज रखा जाता था। इस भवन के एक ओर ढलुई दीवार थी जिससे अनाज चढ़ाने में सुविधा होती थी। इसमें प्रवेश के लिए सीढ़ियाँ बनायी गयी थीं। यह अन्नागार 45.71 मी० लम्बा और 15.23 मी० चौड़ा है। हड़प्पा में भी छः-छः की संख्या में दो कतारों में 12 अन्नागार पाये गये हैं। हर अन्नागार 15.23 मी० लम्बा और 6.09 मी० चौड़ा है। फर्श की दरारों में गेहूँ और जौ के दाने के अवशेष मिलने से ऐसा ज्ञात होता है कि इनका प्रयोग फसल दाबने के लिए होता था।

(iii) सार्वजनिक भवन – मोहेंजोदड़ो स्नानागार के समीप ही एक अन्य भवन के अवशेष मिले हैं जो लगभग 24 मीटर लम्बा और इतना ही चौड़ा था। इसकी छत 20 स्तम्भों के ऊपर टिकी हुई थी। ऐसा अनुमान किया जाता है कि भवन सार्वजनिक सभा या धर्म-चर्चा आदि के लिए बनाया गया होगा।

3. आर्थिक जीवन – अध्ययन की सुविधा के लिए सिन्धु प्रदेश के निवासियों के आर्थिक जीवन को निम्नलिखित आधारों में विभाजित किया जा सकता है :–

(i) कृषि – मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा-उत्खनन से प्राप्त गेहूँ, जौ, तिल, सरसों, मटर, तरबूज व चावल (केवल लोथल और रंगपुर से प्राप्त) के दानों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि यहाँ के निवासी खेती करते थे। यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वे फलयुक्त हल का प्रयोग करते थे कि नहीं। वर्षा के कारण कृषि अच्छी होती थी।

(ii) भोजन – गेहूँ और जौ उनका मुख्य भोजन था। फलों में मुख्य स्थान खजूर का था जिनकी गुठलियाँ वहाँ मिली हैं। ये लोग दूध, दही, घी का भी सेवन करते थे। भेंड़, बैल, सुअर, मुर्गे, मुर्गी, घड़ियाल, कछुओं आदि का मांस और अण्डे खाते थे। उनके अन्य फलों, तरकारियों का ठीक पता अभी तक नहीं चला है।

(iii) पशु-पालन – उत्खनन में जो अस्थि-पंजर उपलब्ध हुए हैं उनसे यह अनुमान किया जाता है कि सिन्धु घाटी के निवासी कुत्ता, साँड़, भेंड़, बकरी, हाथी, बैल, भैंस, सुअर, बिल्ली, गधा व ऊँट आदि जानवर पालते थे। घोड़े के अस्तित्व का संकेत मोहेंजोदड़ो की एक ऊपरी सतह से तथा लोथल में मिले एक संदिग्ध मूर्तिका (टेराकोटा) से मिला है। गुजरात के पश्चिम में अवस्थित सुरकोतड़ा में घोड़े के अवशेषों के मिलने की रिपोर्ट है और वे 2000 ई०पू० के आसपास के बताये गये हैं, परन्तु पहचान संदेहात्मक है। हड़प्पा के लोगों को हाथी का ज्ञान था तथा वे कुछ जंगली पशुओं जैसे– नेवला, हरिण, अर्नाभैंसा, बाघ, गैंडा, बन्दर, भालू, खरगोश आदि से भी परिचित थे, क्योंकि इनके चित्र मुहरों और ताम्रपत्रों पर बने उपलब्ध हुए हैं।

(iv) धातुएँ – सिन्धु प्रदेश के निवासी पत्थर, लकड़ी और धातु के प्रयोग से परिचित थे, क्योंकि सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा और जस्ते के बने हुए जेवर सिक्के आदि मिले हैं। यहाँ के निवासियों को लोहे का ज्ञान न था।

(v) व्यापार – सिन्धु निवासी कपड़ा बुनने और कातने का काम खूब जानते थे। नगरों का व्यापार अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, एलाम, मैसोपोटामिया, खुरासान और सम्भवतः ग्रीक से भी होता था। अमीर-गरीब सब कताई का काम करते थे। यहाँ से सूती कपड़ा बाहर भेजा जाता था। यह व्यापार अरब सागर के तट से बड़ी-बड़ी नावों द्वारा होता था। लोथल

में एक गोदी के अवशेष मिले हैं। (गोदी उसे कहते हैं जहाँ सामान लादने व उतारने के लिए बड़ी नाव या जहाज खड़ा किया जाता है।) यह 214 मी० × 36 मी० आकार का लगभग 3 मी० गहरा तालाब जैसा है। उसकी उत्तरी दीवार में 12 मीटर चौड़ा प्रवेश द्वार है। इस द्वार से भोगवा नदी तक नहर काटी गयी थी और इसी से होकर नावें गोदी तक जाती थीं। गोदी की दक्षिणी दीवार में पानी की निकासी के लिए नाली बनायी गयी थी जिसके दोनों ओर बने खानों में पटरा लगा था जिसे उठाकर या गिराकर पानी को नियंत्रित किया जाता था। गोदी के किनारे 4 मीटर ऊँचा एक चबूतरा बना था। प्राचीन काल की ऐसी गोदी विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं मिली है।

(vi) माप-तौल – इस सभ्यता के स्थलों से सीप, ताँबे, काँसे तथा हाथी-दाँत के पैमाने मिले हैं। उन पर निशान है। तौल के लिए बाँटों का प्रयोग किया जाता था। तौल की इकाई 13.625 ग्राम थी और 16 के गुणांक में बांट बनाये जाते थे। जैसे 16, 64, 160, 320 और 640 आदि। 16 में विभाजन की परम्परा सिन्धु-सभ्यता के बाद भी बनी रही। प्राचीन भारत का कार्षापण नामक सिक्का 16 मापक का होता था।

4. सामाजिक जीवन – सामाजिक जीवन निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है :–

(i) जीवन-स्तर – यद्यपि समाज में उच्च एवं मध्यम श्रेणी के लोग थे, फिर भी उनमें न कोई विशेष धनवान था और न कोई निर्धन ही। यहाँ के निवासी पूर्णतया समाजवाद की भावना से ओत-प्रोत थे और जनतन्त्र प्रणाली से भली-भाँति परिचित थे।

(ii) आभूषण – सिन्धु निवासी आभूषण-प्रिय थे। मर्द अँगूठियाँ पहनते तथा स्त्रियाँ कंठहार, कड़े, करधनी, हँसली, भुजबन्द, पायजेब तथा कान में बालियाँ पहनती थीं। धनी परिवार के लोग सोने, चाँदी, हाथीदाँत और मूल्यवान पत्थरों – गोमेद, स्फटिक आदि के आभूषण पहनते थे और साधारण श्रेणी के लोग हड्डी, ताँबे और पकी मिट्टी के आभूषण प्रयोग करते थे।

(iii) वेश-विन्यास – सिन्धु प्रदेश के निवासी रेशमी और सूती कपड़ों का प्रयोग करते थे। सम्भवत: उस समय के लोग आधुनिक काल की तरह सिले हुए कपड़ों का प्रयोग नहीं करते थे। लोग शाल अथवा चादरें कन्धों पर डाला करते थे। एक नरमूर्ति उपलब्ध हुई है जिसमें एक लम्बा शाल दाहिनी बाँह के नीचे से बायें कन्धे पर है। औरतें बालों की चोटी बनाकर गुण्ठल कर सिर पर लपेट लेती थीं। पुरुष भी अपने केशों को आक्सफोर्ड फैशन की भाँति उलट लेते थे। पुरुष प्राय: गलमुच्छे और दाढ़ियाँ रखते थे। लेकिन कुछ लोग मूँछों को साफ भी कराते थे। स्त्री-पुरुष शृंगार के लिए दर्पण का प्रयोग करते थे। कदाचित् स्त्री-पुरुष आँखों में काजल लगाते थे, क्योंकि हड़प्पा में एक शीशी मिली है जिसके भीतर काले रंग की कोई वस्तु जमी है।

(iv) गृह-पात्र – सिन्धु प्रदेश के निवासियों की घरेलू वस्तुओं में तसले, लोटे, तश्तरियाँ, प्याले, मटके आदि उपलब्ध हुए हैं। मिट्टी के पात्रों का निर्माण वे चाक के द्वारा करते थे और उनमें चित्रकारी भी करते थे। तत्पश्चात् वे आग के भट्ठों में पकाये जाते थे। मोहेंजोदड़ो में 6 और हड़प्पा में 14 भट्ठे मिले हैं। ताँबे, काँसे, चाँदी, मिट्टी के बर्तन भी वे बनाना जानते थे। परन्तु ऐसा विश्वास किया

जाता है कि इनका प्रयोग बहुत कम करते थे। हाथीदाँत की बनी हुई सुई या कैंची का प्रयोग होता था। कुल्हाड़ी, खुरपी, हँसिया आदि भी इस्तेमाल करते थे।

(v) **खिलौने** – हड्डी, हाथीदाँत और सीप की बनी चीजें भी खिलौने के आकार की प्राप्त हुई हैं। बन्दर, भालू, खरगोश, गैंडा, बाघ तथा अर्ना भैंसा की शक्ल के बने हुए खिलौने मिले हैं। एक अद्भुत खिलौना प्राप्त हुआ है। इसकी विशेषता यह है कि जब इसकी दुम खींची जाती है तो डोरी से बँधा हुआ इसका सिर नीचे की ओर झुक जाता है।

(vi) **मनोविनोद** – सिन्धु-निवासी आमोद-प्रमोद के लिए अनेक प्रकार के खेल-खेलते थे। वे नृत्य और गाना के बड़े प्रेमी थे। लोगों को शिकार खेलने का भी बहुत शौक था। कुछ ऐसी मुद्राएँ मिली हैं जिन पर तीन-कमान से बारहसिंघा का शिकार करते हुए दिखाया गया है। सम्भवत: यहाँ के लोगों को जुआ खेलने का भी शौक था, क्योंकि हाथीदाँत, पत्थर और मिट्टी के बने हुए पासे प्राप्त हुए हैं। सिन्धु-सभ्यता के लोग मनोरंजन के लिए तीतर और बटेरों को भी लड़ाया करते थे।

(vii) **अस्त्र-शस्त्र** – सिंधु प्रदेश के निवासियों के प्रमुख हथियारों में भाला, कटार, परशु, धनुष एवं बाण थे। उनके पास युद्ध-सामग्री अधिक न थी। सम्भवत: वे युद्ध-प्रेमी न थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि वे किलों का निर्माण करते रहे हों। ढालों और तलवारों का उन्हें ज्ञान नहीं था। गदाओं और गोफनों से काम अवश्य लेते थे।

(5) **धार्मिक जीवन** – विश्व की सभी प्रारम्भिक सभ्यताओं के निवासी बहुदेववादी, प्रकृति-पूजक या शक्ति के उपासक थे। एकेश्वरवाद की कल्पना उन्होंने कालान्तर में की। सिन्धु-घाटी के लोगों का धार्मिक जीवन निम्न प्रकार था :–

(i) **मातृदेवी पूजा** – मोहरों, ताबीजों तथा मूर्तियों पर उत्कीर्ण चित्रों के आधार पर **सर जान मार्शल** ने कहा है कि सिन्धु के नर-नारी मातृ-देवी की उपासना करते थे। मोहेंजोदड़ो, हड़प्पा और धौलावीरां में असंख्य देवियों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिन्हें विद्वानों ने मातृदेवी की मूर्तियाँ माना है।

(ii) **शिव-पूजा** – पुरुष देवताओं में एक सीलपर चित्रित सिर पर तीन सींगवाली एक देवमूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह मूर्ति एक आसन पर पालथी मारकर योगी के रूप में बैठी हुई है और उसके चारों ओर एक हाथी, एक बाघ और एक गैंडा है तथा आसन के नीचे एक भैंसा है व पाँवों पर दो हरिण हैं। चारो पशु पृथ्वी के चारों ओर देखते हैं। अनेक विद्वान इसे पौराणिक पशुपति शिव का प्रतीक मानते हैं।

(iii) **लिंग व योनि-पूजा** – शिव की उपासना के प्रचलन का अनुमान मोहरों पर अंकित मूर्तियों से ही नहीं वरन् बड़ी संख्या में प्राप्त नुकीले और गोल पत्थरों के मिलने से भी होता है। शिव की पूजा के साथ लिंग की पूजा का विकास होना हिन्दू धर्म की पूजा पद्धति से समता रखता है। सिन्धु-निवासी लिंग-पूजा के साथ-साथ योनि-पूजा भी करते थे। हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो से ऐसे बहुसंख्यक छल्ले मिले हैं जिन्हें अधिकांश विद्वान योनियाँ मानते हैं। ये आधे इंच से लेकर चार इंच तक बड़ी हैं।

(iv) **पशु-पूजा** – सिन्धु-सभ्यता के निवासी पशु-पूजा भी करते थे। कुछ पशुओं को आधा पशु एवं आधा मनुष्य के रूप में चित्रित किया गया है।

(v) **वृक्ष-पूजा** – उपरोक्त देवी और देवताओं के अतिरिक्त वे वृक्ष-पूजा और उन पर रहनेवाली आत्माओं की भी पूजा करते थे। मोहेंजोदड़ो में एक ऐसी मुद्रा उपलब्ध हुई है जिस पर पीपल का वृक्ष अंकित है। उस पर सहचरियों से सेवा कराती हुई वृक्ष की देवी हैं। पास ही एक पशु भी बना है जिसका कुछ अंग बैल के से स्वरूप का, कुछ बकरे का-सा और कुछ मनुष्य के स्वरूप का बना हुआ है।

हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त शिवमूर्ति

(vi) सूर्य-पूजा – कुछ मुहरों पर स्वस्तिक तथा चक्र के अंकन से यह अनुमान होता है कि वहाँ के लोग सूर्योपासक भी थे।

(vii) नाग-पूजा – सिंधु सभ्यता में नाग का भी धार्मिक महत्व था। योगासीन शिव की बगल में नागों का होना प्रमाणित करता है कि उनकी पूजा की जाती थी। लोथल से प्राप्त तीन मृदभांडों के टुकड़ों पर दो सर्प बने हैं। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर पर देवता के दोनों ओर एक-एक सर्प दिखलाया गया है। इससे स्पष्ट है कि सिंधु प्रदेश के निवासी नाग की पूजा करते थे।
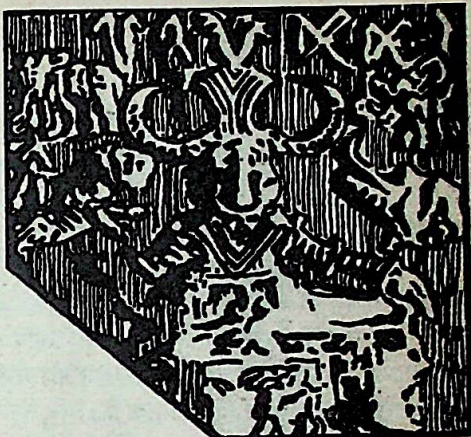
(viii) ऋषभदेव – अनेक विद्वानों ने सिन्धु-सभ्यता की धार्मिक मान्यताओं में जैन-धर्म को सम्मिलित किया है। **श्री रामप्रसाद जी चन्दा** अपने लेख में कहते हैं कि मोहेंजोदड़ो से प्राप्त अनेक सीलों पर ऋषभनाथ (जैन-धर्म के संस्थापक) का चित्र मिलता है। **श्री वाचस्पति गरौला** लिखते हैं कि मोहेंजोदड़ो से उपलब्ध ध्यानस्थ योगियों की मूर्तियों की प्राप्ति से जैन-धर्म की प्राचीनता निर्विवाद सिद्ध होती है। जैन-धर्म के आदि प्रवर्तक ऋषभदेव भी सिन्धुवासियों के उपास्यदेव थे।

6. मृतक-संस्कार – सिन्धु तट के निवासी अपने मृतकों को प्रायः जला देते थे। जलाने के पश्चात् मृतक की हड्डियों के चूर्ण को राख में मिलाकर इधर-उधर फेंक देते थे या किसी पात्र में कुछ दूसरी आवश्यक वस्तुएँ रखकर गाड़ देते थे। कभी-कभी वे मृतक के शरीर को दफना भी देते थे और कभी-कभी वे मृतक के शरीर को पशु-पक्षियों के भोजन के लिए भी छोड़ देते थे।

7. कला (i) मूर्तिकला – सिन्धु-सभ्यता के स्थलों में मिट्टी, ताँबे और पत्थर की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। मिट्टी की मूर्तियों की संख्या सबसे अधिक है। यह मूर्तियाँ नारी, पुरुष और पशुओं की हैं। नारी मूर्तियों की संख्या पुरुष मूर्तियों से कहीं अधिक है। कुछ नारी आकृतियाँ मातृदेवी की हैं। इसके अतिरिक्त आटा गूँधती हुई या बच्चों को दुग्धपान कराती हुई नारी आकृतियाँ खिलौने के रूप में बनायी गयी थीं। पशु-मूर्तियों की संख्या कुल संख्या की तीन चौथाई है। इनमें बैल और साँड़ की मूर्तियाँ सबसे अधिक हैं। इनके अतिरिक्त भैंसा, हाथी, बाघ, बकरी, कुत्ता, सुअर, खरगोश, गिलहरी, साँप आदि की मूर्तियाँ भी मिली हैं। कुछ मूर्तियाँ विचित्र हैं- जैसे मनुष्य का शरीर और पशु के सिरवाली मूर्तियाँ।

मिट्टी की मूर्तियों की तुलना में धातु और पत्थर की मूर्तियों की संख्या बहुत कम है। यद्यपि कला की दृष्टि से उनका स्तर ऊँचा है। मोहरों की तरह इनका निर्माण भी कुशल कारीगरों के द्वारा किया गया है। प्रतीत होता है कि यह सम्पन्न लोगों के लिए बनायी गयी थीं। सामान्य जन मिट्टी की मूर्तियों का उपयोग करते थे।

मूर्तियाँ और खिलौने बनाने के लिए ताँबे के साथ ही काँसे का भी उपयोग किया जाता था। इसमें मोहेंजोदड़ो से प्राप्त काँसे की बनी नर्तकी की एक मूर्ति बड़ी आकर्षक है। यह दाहिने पैर पर खड़ी, बाएँ पैर को उठाये और कमर पर एक हाथ रखे हुए नृत्य हेतु उद्यत है। यह मूर्ति बड़ी ही सजीव और गतिशील मुद्रा को प्रदर्शित करती है। मोहेंजोदड़ो में ही ताँबे की धातु का एक कूबड़दार बैल का खिलौना मिला है। एक ताँबे के कलश के भीतर

रखा हुआ बकरी का सुन्दर खिलौना मिला है। यह खिलौना पीतल का बना है। ताँबे और पीतल के बने हुए कुत्ते भी मिले हैं। चन्हूदड़ो में एक पीतल की बतख मिली है।

हड़प्पा से पत्थर की बनी अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। दो खण्डित पुरुष मूर्तियाँ कला की दृष्टि से उत्तम कोटि की है। इनके शरीर के अंगों का उतार-चढ़ाव अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से दर्शाया गया है। मोहेंजोदड़ो की एक आवक्ष मूर्ति अपनी विशेषताओं के कारण बहुत प्रसिद्ध है। इस पुरुषाकृति के केश पीछे की ओर काटकर उन्हें माथे पर रिबन से बाँध दिया गया है। उसके नेत्र आधे मुँदे हुए हैं। बाएँ कन्धे पर दुपट्टा है जो दाहिनी भुजा के नीचे से पीछे की ओर जाता है। दुपट्टे पर तिफालिंया छाप बनी हैं। कुछ विद्वानों के विचार से यह किसी पुरोहित की मूर्ति है।

(ii) लेखन-कला (लिपि) – सिंधु लिपि का नमूना 1853 ई0 में ही प्राप्त हो गया था, लेकिन पूरी लिपि की जानकारी 1923 ई0 में मिली। इस लिपि के 400 चिह्न ज्ञात हैं, जो अक्षरसूचक न होकर भावचित्रात्मक हैं। सिंधु लिपि के सबसे लंबे तीन पंक्तियों के एक लेख में 26 संकेत हैं। अब तक उपलब्ध सारे सिंधु लेखों की संख्या चार हजार के आसपास है। एरावतम् महादेवन ने अपने 'सिन्धु लेख संग्रह' में करीब 3,000 लेख प्रस्तुत किये हैं।

डॉ0 नटवर झा ने 20 वर्ष तक सिंधु-लिपि का गहन अध्ययन करने के बाद सिंधु-मुद्राओं की लिपि को पढ़ लेने का दावा किया है। उनके अनुसार सिंधु-मुद्राओं में वैदिक शब्दकोष 'निघंटु' लिपिबद्ध किया गया है। लिपि को पूर्व ब्रह्मी लिपि कहा जा सकता है तथा भाषा वैदिक संस्कृत है। उन्होंने इस अभिनव प्रयास का आधार सूत्र महाभारत में खोजा है। महाभारत के शान्ति पर्व में भगवान कृष्ण अर्जुन को अपने 21 विशिष्ट नाम बताते हैं। इन नामों में वृष, एकशुंग (एक सींग वाला) और त्रिक्कुत (तीन पुट्ठे वाला पशु) शामिल हैं। ये सभी नाम रूप सिंधु-मुद्राओं में देखे जा सकते हैं। डॉ0 झा के अनुसार वैदिक शब्दकोष 'निघंटु' के सैकड़ों शब्द सिन्धु-मुद्राओं में अंकित हैं। मुद्राओं में इन्द्र, अग्नि, मृत्यु, सोम, रथ, पुरु, वृष्टि जैसे शब्द अंकित हैं। इस प्रकार डॉ0 झा के अनुसार सिन्धु-मुद्राओं की भाषा वैदिक भाषा के स्वरूप को प्रकट करती है।

काल – मोहेंजोदड़ो के सात स्तरीय भग्नावशेषों के अध्ययन के परिणामस्वरूप इस सभ्यता का काल-प्रसार प्राय: 3250 औ 2750 ई0 पूर्व के बीच माना जाता है।[1] इन सात स्तरों में से तीन पाश्चात्यकालीन, तीन मध्यकालीन और एक प्राचीन है। इसके अतिरिक्त यह भी है कि एक-दो स्तर और रहे हों जो आज पातालीय जल में डूब गये हैं और उत्खनन-कार्य इस जल के नीचे तक नहीं जा सका है। अभी तक सात स्तरों में से प्रत्येक के काल-प्रसार को प्राय: पाँच सौ वर्ष मानकर विद्वानों ने इस सभ्यता का जीवन-परिमाण मापा है। ह्वीलर ने मुहरों के आधार पर उस सभ्यता का काल-प्रसार 2500 ई0 पूर्व से 1500 ई0 पूर्व निर्धारित किया है। जो भी हो, इतना निश्चित है कि यह सभ्यता बहुत प्राचीन है।

कांस्य सभ्यता – सैन्धव सभ्यता में ताँबे के हथियारों एवं अन्य वस्तुओं की बहुतायत थी। लेकिन प्रस्तर के भी अस्त्र-शस्त्र बनाये जाते थे। आगे चलकर व्यापक स्तर पर कांसे के औजारों और अन्य वस्तुओं का निर्माण होने लगा। कांसे की प्रधानता रहने के कारण ही इस सभ्यता को कांस्य युगीन सभ्यता भी कहते हैं।

---

1. सिन्धु सभ्यता के काल-निर्धारण पर विभिन्न मत इस प्रकार हैं; सर जॉन मार्शल 3250-2750 ई0पू0, माधव स्वरूप वत्स 3500-2700 ई0पू0, ह्वीलर 2500-1500 ई0पू0, अर्नेस्ट मैके 2800-2500 ई0पू0, रोमिला थापर 2300-1750 ई0पू0, झा एवं श्रीमाली 2800-2000 ई0पू0, रेडियो कार्बन-14 की विधि तथा नवीन अनुसंधानों के आधार पर 2500-1750 ई0पू0।
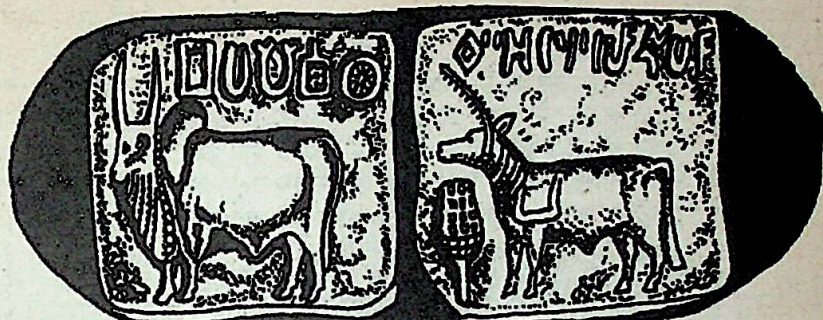
मोहेंजोदड़ो की खुदाई से प्राप्त मुहरें

सैन्धव सभ्यता का पराभव

कतिपय इतिहासकारों के अनुसार सिंधु सभ्यता का पराभव आर्यों के आक्रमण के कारण हुआ। इस मत के दो कारण हैं –

1. मोहेंजोदड़ो के ऊपरी स्तर पर अनेक कंकालों की प्राप्ति को इस बात का प्रमाण माना गया कि आर्यों ने स्थानीय जनसंख्या का व्यापक संहार कर डाला था।

2. वैदिक काल के प्रमुख ग्रन्थ ऋग्वेद के अन्तर्गत देवता इन्द्र का उल्लेख दुर्ग-संहारक के रूप में किया गया है।

लेकिन अब यह साबित हो चुका है कि मोहेंजोदड़ो के ऊपरी स्तर के कंकाल किसी एक ही समय से सम्बन्ध नहीं रखते। इसलिए उनसे जन-संहार प्रमाणित नहीं होता।

ऋग्वेद में दुर्ग संहारक के रूप में इन्द्र के उल्लेख को भी अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए, क्योंकि ऋग्वेद का प्रामाणिक समय भी स्पष्ट नहीं हो सका है। आधुनिक मान्यता के अनुसार इस सभ्यता के लोगों ने अपने साधनों का जरूरत से अधिक व्यय कर डाला, जिससे उसकी जीवन शक्ति नष्ट हो गयी।

3. एक अन्य आधुनिक मत यह है कि किसी विवर्त्तनिक विक्षोभ (Jeetonie Disterbanc) के कारण मोहेंजोदड़ो में सिंधु नदी का पूर्वी बाँध टूट गया था, जिससे सिन्धु नदी के प्रवाह में बाधा आ गयी और उसके उस भाग में जिसमें मोहेंजोदड़ो था, वहाँ मिट्टी एकत्रित हो गयी। फलतः कुछ समय उपरान्त लोग मोहेंजोदड़ो छोड़कर अन्यत्र चले गये।

सैन्धव सभ्यता के संबंध में प्रो0 चाइल्ड का कहना है, **''सिन्धु सभ्यता वास्तव में भारतीय ही है। यह भवन निर्माण और उद्योग के साथ-साथ वेश-भूषा और धर्म में आधुनिक भारतीय संस्कृति का आधार है। मोहेंजोदड़ो में ऐसी विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं जो ऐतिहासिक भारत में सदैव विद्यमान रही हैं।''**

हड़प्पा-सभ्यता के नवीनतम स्थलों की खोज मांडी– 1 जून, 2000 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर से लगभग 15 किमी दूर दक्षिण में हिंडन नदी के निकट स्थित मांडी गाँव के एक खेत में खुदाई के दौरान साढ़े तीन हजार ईसा पूर्व का हड़प्पाकालीन खजाना निकला जिसमें करोड़ों रुपए मूल्य के सोने के सिक्के व छल्ले निकले हैं। इनके साथ ही मिट्टी के बर्तनों के अवशेष व बड़े आकार की ईंटें भी निकली हैं। भारतीय पुरातत्व विभाग के अधीक्षण पुरातत्वविद् धर्मवीर शर्मा का कहना है, कि हड़प्पा काल में बनने वाले मिट्टी के बर्तनों की एक विशेषता यह रही है कि इन्हें आपस में टकराने से धातु की टकराहट जैसी आवाज निकलती है। साथ ही इन पात्रों के मुंह के घेरों के निर्माण का एक विशेष ढंग है जो मांडी से निकले बर्तनों के टुकड़ों से समानता रखता है। श्री शर्मा के अनुसार निकट भविष्य में हड़प्पा काल का यह स्थल विस्तृत रूप में सामने आएगा।

बोहडशाम— अप्रैल-मई, 2000 में हरियाणा में तारावड़ी से 15 किमी दूर नीलोखेड़ी उपमंडल के एक गाँव 'बोहडशाम' में 4500 वर्ष प्राचीन हड़प्पाकालीन सभ्यता के दुर्लभ अवशेषों को खोजने में सफलता मिली। यह खोज कुरुक्षेत्र स्थित श्रीकृष्ण संग्रहालय के अध्यक्ष राजेश पुरोहित के नेतृत्व में हुई। यहाँ से खोजे गये अवशेषों में बड़ी मात्रा में चित्रित मृद्भांड, हड़प्पाकालीन चित्रित भांड (ठीकरियां), लाल रंग के चित्रित भांड तथा अति-सुन्दर व चिकने कल्पनामत्मक अवशेष मिले हैं जो कि पुरातात्त्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण अवशेष हैं। इसके अलावा यहाँ से प्राचीन (कंटेनर) कुओं के आकार वाले अवशेष भी प्राप्त हुए हैं।

अभ्यास प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए ।)

1. सिन्धु-घाटी की सभ्यता का संक्षिप्त विवरण दीजिए। (1964,78)
2. सिन्धु-घाटी की सभ्यता की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। वैदिक काल की सभ्यता से वह किस प्रकार भिन्न थी ? (1971,76)
3. सिन्धु-घाटी की सभ्यता का वर्णन तत्कालीन समाज, धर्म तथा कला की दृष्टि से कीजिए। (1974,87)
4. सिन्धु-घाटी की सभ्यता की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए। (1988)
5. सिन्धु-घाटी की सभ्यता के भवन-निर्माण एवं नगर-नियोजन का वर्णन कीजिए। (1990)
6. सिन्धु-सभ्यता के धार्मिक स्वरूप का विवेचन कीजिए। (1992,92)
7. सिन्धु-घाटी की सभ्यता के लोगों की सामाजिक-आर्थिक दशा का उल्लेख कीजिए। (1993)
8. सैन्धव एवं वैदिक सभ्यताओं की तुलना कीजिए। (1994)
9. सिन्धु-घाटी की सभ्यता के समय की आर्थिक एवं धार्मिक दशा पर प्रकाश डालिए। (1995)
10. सिन्धु-घाटी की सभ्यता के समय लोगों की सामाजिक एवं धार्मिक दशा का वर्णन कीजिए। (1996)
11. सिन्धु-घाटी के निवासियों के सामाजिक और आर्थिक जीवन की प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए। (1999)
12. हड़प्पा सभ्यता का विवरण प्रस्तुत कीजिए। इस सभ्यता को नागरीय सभ्यता क्यों माना जाता है ? (2000)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए ।)

1. "सिन्धु-घाटी की सभ्यता बहुत प्राचीन है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
2. "सिन्धु-घाटी की सभ्यता प्रथम किन्तु पर्याप्त विकसित देश की सभ्यता थी।" इस कथन के आलोक में सिन्धु-सभ्यता की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. "सैन्धव सभ्यता एक सुविकसित नगरीय सभ्यता थी।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में)

1. सिन्धु-सभ्यता की नगर व भवन-निर्माण योजना का विवरण दीजिए।
2. सिन्धु-सभ्यता की आर्थिक व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
3. सिन्धु-सभ्यता के निवासियों के धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालिए।
4. सिन्धु-सभ्यता के लोगों के सामाजिक जीवन का उल्लेख कीजिए।
5. सिन्धु-सभ्यता की कला पर प्रकाश डालिए।
6. सिन्धु-घाटी की सभ्यता एवं ऋग्वैदिक सभ्यता की चार प्रमुख भिन्नताओं का उल्लेख कीजिए। (1986)
7. सैन्धव घाटी की सभ्यता को कांस्य युगीन सभ्यता क्यों कहते हैं ? (1998)

4

आर्य-सभ्यता

(वैदिक काल)

> **"सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में एक भी संकेत नहीं मिलता जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि भारतीय आर्य कहीं बाहर से आये थे। भारतीय अनुश्रूति या जनश्रुति में कहीं इस बात की गन्ध भी नहीं पायी जाती कि आर्यों की पितृभूमि या धर्म-भूमि इस देश के कहीं बाहर थी।" — डॉ० राजबली पाण्डेय**

आर्यों की आदि-भूमि

आर्यों के मूल स्थान के प्रश्न पर विद्वानों में बहुत मतभेद है। आज तक यह निश्चित नहीं हो पाया कि आर्य कौन थे और वे भारत में कहाँ से आये अथवा भारत ही उनका मूल निवास-स्थान था। इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने भाषा-विज्ञान, शरीर-रचनाशास्त्र, पुरातत्व तथा शब्दार्थ विकास-शास्त्र के आधार पर चार सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है :-

(1) भारतीय सिद्धान्त – पं० गंगानाथ झा ने आर्यों का मूल स्थान ब्रह्मर्षि देश बतलाया है। डी०एस० त्रिवेदी ने मुल्तान प्रदेश में देविका नदी की घाटी बतलाया है। **श्री अविनाश दास और बाबू सम्पूर्णानन्द** ने 'सप्तसिन्धु' को आर्यों का मूल स्थान बतलाया है। **डॉ० राजबली पाण्डेय** के अनुसार उनका निवास-स्थान मध्य देश था। भारतीय सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि आर्य-ग्रन्थों में आर्यों के कहीं बाहर से आने का उल्लेख नहीं पाया जाता है बल्कि इसके विपरीत आर्य-ग्रन्थों में सप्तसिन्धु का ही गुणगान किया गया है। इन विद्वानों का यह भी कथन है कि वैदिक साहित्य आर्यों की रचनाएँ हैं। ऋग्वेद में जिस भौगोलिक स्थिति का उल्लेख है, उसके अनुसार ऋग्वेद की रचना करने वाले व्यक्तियों का निवास-स्थान पंजाब और उसके आस-पास का रहा होगा।

> **आर्यों की आदि-भूमि**
> 1. भारतीय सिद्धान्त
> 2. ध्रुव प्रदेश अथवा आर्कटिक प्रदेश का सिद्धान्त
> 3. मध्य एशिया का सिद्धान्त
> 4. यूरोपीय सिद्धान्त

(2) ध्रुव प्रदेश अथवा आर्कटिक प्रदेश का सिद्धान्त – आर्यों का मूल स्थान लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने ध्रुव-प्रदेश बतलाया है। अपने मत के समर्थन में उन्होंने ऋग्वेद में उल्लिखित लम्बी और छः महीने के दिन-रात का आधार लिया है। उस प्रदेश में अत्यधिक हिमपात का उल्लेख है। **तिलक जी** का कहना है कि जिस समय आर्य उत्तरी ध्रुव प्रदेश में निवास करते थे उन दिनों वहाँ हिम-पात न था लेकिन कालान्तर में हिम-पात के कारण वहाँ से प्रस्थान करना पड़ा। परन्तु इस सिद्धान्त के समर्थक बहुत कम हैं।

(3) मध्य एशिया का सिद्धान्त – प्रसिद्ध जर्मन विद्वान **मैक्समूलर** ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आर्यों का मूल स्थान मध्य एशिया था। इसके समर्थन के लिए उन्होंने आर्यों के प्राचीन वेदों को पारसियों के धर्म-ग्रन्थ अवेस्ता में वर्णित भौगोलिक स्थितियों का आधार लिया है। उनके अनुसार आर्यों का प्रमुख उद्यम खेती और पशुपालन था। इसके लिए मध्य एशिया में मैदान हैं जहाँ आर्य कृषि और पशुपालन का कार्य बड़ी सुविधापूर्वक सम्पन्न कर सकते थे। धीरे-धीरे आर्य यूनान, ईरान और भारत की ओर अग्रसर हुए। इसका कारण यही हो सकता है कि उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव अथवा प्राकृतिक परिवर्तन के कारणों ने उन्हें अग्रसर होने के लिए बाध्य किया हो। एशिया माइनर में बोग़जकोइ नामक स्थान पर जो अभिलेख प्राप्त हुआ है, उसमें वैदिक देवताओं जैसे– मित्र, वरुण, इन्द्र आदि के रूपान्तरित नामों का उ़ल्लेख है। यह अभिलेख 1400 ई०पू० का है। इसके आधार पर कुछ विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि एशिया माइनर ही 1400 ई०पू० में आर्यों का मूल स्थान रहा होगा। इस सिद्धान्त के विपक्ष में यह कहा जा सकता है कि ऋग्वेद और अवेस्ता में जिन भौगोलिक परिस्थितियों का उल्लेख है, वे मध्य एशिया में विद्यमान नहीं हैं।

(4) यूरोपीय सिद्धान्त – भाषा-विज्ञान के आधार पर कुछ विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आर्यों का मूल निवास-स्थान यूरोप था क्योंकि आर्यों की काफी संख्या यूरोप के विभिन्न देशों में पायी जाती है। **सर विलियम जोन्स** ने भाषा की समानता का आधार लिया है। आर्यों की भाषा के कुछ शब्द अन्य भाषाओं के कुछ शब्दों से समानता रखते हैं। उदाहरण के लिए संस्कृत भाषा का 'पितृ' शब्द जेन्द के 'पैतर', लैटिन के 'पेतर', ग्रीक के 'पतेर', गोथिक के 'फदर', तोरवारियन के 'पतर' और अंग्रेजी के 'फादर' आदि शब्दों से साम्य रखता है। इसी प्रकार संस्कृत का 'द्वौ' शब्द लैटिन 'दुऔ', आइरिश के 'दो', गोथिक के 'त्वई', 'लुथियानियन के 'द' और अंग्रेजी के 'टू' शब्द से समानता रखता है। इससे यह ज्ञात होता है कि इन भाषाओं को बोलने वाले कभी एक स्थान पर निवास करते रहे होंगे।

(क) आस्ट्रिया में हंगरी का मैदान – **डॉ० पी० गाईल्स** ने आर्यों का आदि देश आस्ट्रिया में हंगरी का मैदान बतलाया है। इस मैदान में जो पशु और वनस्पति, जैसे– गाय, बैल, कुत्ते, गेहूँ और जौ आदि पाये जाते हैं, उनसे आर्य भलीभाँति परिचित थे। अत: आस्ट्रिया में हंगरी का मैदान आर्यों का आदि देश रहा होगा। पर यह सब बातें किसी ठोस तथ्य पर आधारित नहीं हैं, जैसा कि **काला महोदय** ने लिखा है, "हमें कोई एक भी वस्तु, वृक्ष अथवा पशु ऐसा नहीं ज्ञात है जो पूर्णत: और मूलत: यूरोपीय हो और जिसका पूर्व तथा पश्चिम की आर्य भाषाओं में एक ही समान नाम हो।"[1]

---

1. "We do not know of a single object, tree or animal that is entirely European origin having a common name in the that Aryan languages of East and west."
- Kalla

(ख) जर्मन प्रदेश – पेन्का ने आर्यो का आदि-देश जर्मन बतलाया है। इन्होंने भाषा के स्थान पर जातीय गुणों तथा पुरातत्व का सहारा लिया है। उदाहरण के लिए आर्यों के बाल भूरे रंग के होते थे और जर्मनी में रहनेवालों के बाल अब भी भूरे रंग होते हैं। इसी प्रकार शारीरिक विशेषताओं में काफी समानता है।

(ग) दक्षिण रूस – नेहरिंग ने दक्षिण रूस के मैदान को आर्यों का मूल-स्थान बतलाया है। इनका तर्क यह है कि यह मैदान शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित है। कृषि, पशु-पालन तथा वनस्पति आदि की यहाँ पर अधिकता है। ये प्रमुख बातें आर्यों के जीवन से विशेष सम्बन्धित हैं। अत: यही आर्यों का मूल स्थान रहा होगा।

आर्यों का भारत में प्रसार – आर्यों के मूल निवास-स्थान के सम्बन्ध में आज भी विवाद है। किन्तु अधिकतर मान्यता उस प्रदेश की है जो समुद्र से डैन्यूब नदी तक फैला हुआ है। अनुमान किया जाता है कि आर्यों ने कम-से-कम चार या साढ़े चार हजार वर्ष पूर्व भारत-भूमि में उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर से प्रवेश किया। मार्ग में अपने दल इधर-उधर छोड़ते गये। वे सबसे पहले अफगानिस्तान और पंजाब में बसे। आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में अफगानिस्तान की काबुल, खुर्रम, स्वात तथा गोमल नदियों एवं पंजाब की सात नदियों– सिन्धु, झेलम (वितस्ता), चिनाव (अस्कनी), रावी (परुष्णी), व्यास (विपासा), सतलज (शतुद्रि) और सरस्वती आदि का उल्लेख मिलता है। इन सात नदियों के नाम पर इस प्रदेश का नाम आर्यों ने **'सप्त सिन्धु'** या **'सप्त सैन्धव'** रखा। यहीं आर्य-सभ्यता का बीजारोपण हुआ और यहीं से आर्य लोग भारत में फैले।

आर्यों के कबीले और पारस्परिक युद्ध

आर्य अनेक कबीलों अथवा जनों में विभक्त थे। इनमें 'पंचजन' विशेष प्रसिद्ध थे। इनके नाम थे– (1) अनु, (2) द्रुह्यु, (3) यदु, (4) तुर्वसु और (5) पुरु। ये पाँचों 'जन' एक साथ संगठित थे और सरस्वती के दोनों तटों पर रहते थे। इनके अतिरिक्त अन्य 'जन' भी थे, जिनमें भरत, क्रिवि, तृत्सु और सृंज विशेष उल्लेखनीय हैं। ये 'जन' प्राय: परस्पर लड़ते थे। इनके पारस्परिक युद्धों में सर्वप्रमुख युद्ध 'दाशराज्ञसमर' अर्थात् 'दस राजाओं का युद्ध' था। युद्ध का प्रमुख कारण यह था कि आर्यों के भरत 'जन' के राजा सुदास ने विश्वामित्र को कुल-पुरोहित पद से हटाकर वशिष्ठ को कुल-पुरोहित पद दे दिया था। विश्वामित्र इस अपमान से बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने निकटवर्ती दस राजाओं का एक संघ बनाया और उसकी सहायता से राजा सुदास पर आक्रमण कर दिया। परुष्णी (रावी) नदी के तट पर दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में सुदास विजयी हुआ। उसने संघ की सेना को बुरी तरह पराजित कर दिया।

आर्य सप्त सिन्धु प्रदेश से पूर्व की ओर बढ़े, लेकिन इन्हें अनार्यों से युद्ध करना पड़ा। अनार्यों को पराजित करके इन्होंने सरस्वती, दृशद्वती और आपया नदियों की भूमि पर अधिकार कर लिया और इसका नाम 'ब्रह्मावर्त' रखा।

अनार्यों को पराजित करने के उपरान्त आर्य ब्रह्मावर्त से आगे की ओर बढ़े और उन्होंने गंगा-यमुना के दोआब और उसके पास के प्रदेशों पर अपना आधिपत्य स्थापित करके इस भूमि का नाम 'ब्रह्मर्षि' देश रख दिया। इसी प्रकार हिमालय तथा विन्ध्य प्रदेश को जीतकर उसका नाम 'मध्य प्रदेश' रखा। कालान्तर में बिहार और बंगाल का दक्षिणी-पूर्वी भाग भी आर्यों के आधिपत्य में आ गया।

इस प्रकार हिमालय पहाड़ से दक्षिण में विन्ध्याचल तक तथा पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक के सम्पूर्ण भाग का नाम आर्यों ने 'आर्यावर्त' रखा। धीरे-धीरे आर्य दक्षिण भारत में भी फैल गये और दक्षिण भारत को आर्यों ने 'दक्षिण पथ' के नाम से पुकारा।

वैदिक साहित्य

आर्यों के साहित्य को हम निम्नलिखित भागों में विभक्त कर सकते हैं :-

(1) वेद – आर्यों के सर्वोत्तम ग्रंथ वेद हैं। वेद शब्द 'विद्' धातु से निकला है जिसका अर्थ है 'जानना'। साधारणतया इसका अर्थ 'ज्ञान' होता है। भारतीय परम्परा वेदों को अपौरुषेय अथवा ईश्वरनिर्मित मानती है। इसके अनुसार सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने कुछ ऋषियों को मंत्रों का प्रकाश दिया, ऋषियों ने उन्हें अपने शिष्यों को बताया। यह क्रम चलता रहा तथा यह ज्ञान श्रवण-परम्परा से सुरक्षित रहा। कालान्तर में व्यास ने इस ज्ञान को संकलित कर दिया। इसी कारण वेदों को 'श्रुति' भी कहा जाता है। वेद संख्या में चार हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। इनमें ऋग्वेद सबसे अधिक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण है।

ऋग्वेद – ऋग्वेद मंत्रों का एक संकलन (संहिता) है जिसे यज्ञों के अवसर पर देवताओं की स्तुति के लिए ऋषियों द्वारा संगृहीत किया गया है। ऋग्वेद की अनेक संहितायें बताई जाती हैं जिनमें केवल 'शाकल संहिता' ही सम्प्रति उपलब्ध है। सम्पूर्ण संहिता में 10 मण्डल तथा 1,028 सूक्त हैं। प्रत्येक सूक्त में अनेक मंत्र हैं। ऋग्वेद के कुल मंत्रों की संख्या लगभग 10,600 है। ऋग्वेद के मंत्रों के रचयिता ऋषियों में गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, आत्रि, भारद्वाज तथा वशिष्ठ विशेष उल्लेखनीय हैं।

ऋग्वेद के रचना-काल के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। **मैक्समूलर** ई०पू० 1200 से 1000 इसकी तिथि मानते हैं। **जेकोबी** ने इसका रचना-काल 4500 ई०पू० बताया है। **बाल गंगाधर तिलक** ऋग्वेद के प्राचीनतम अंश को 6000 ई०पू० के आस-पास लिखा हुआ मानते हैं। परन्तु आज के विद्वान इतनी प्राचीन तिथि में विश्वास नहीं करते हैं। हम सामान्यत: इसे 1000 ई०पू० के लगभग रचित मान सकते हैं।

यजुर्वेद – 'यजुष' का अर्थ 'यज्ञ' होता है। अत: यजुर्वेद संहिता में विविध यज्ञों, उनके विधि-विधानों तथा अन्य कर्म-काण्डों का विस्तारपूर्वक विवेचन मिलता है। यजुर्वेद के दो भाग हैं– कृष्ण यजुर्वेद तथा शुक्ल यजुर्वेद। कृष्ण यजुर्वेद की मुख्य शाखाएँ–तैत्तिरीय, कठ, मैत्रायणी तथा कपिष्ठल हैं तथा शुक्ल यजुर्वेद की प्रधान शाखाएँ माध्यन्दिन तथा काण्व हैं। इसकी संहिताओं को 'वाजसनेय' भी कहा गया है, क्योंकि वाजसेनी के पुत्र याज्ञवल्क्य इसके द्रष्टा थे। यजुर्वेद की रचना ऋग्वेद के बाद हूई होगी।

सामवेद – 'साम' का अर्थ संगीत अथवा 'गान' होता है। इस संहिता में यज्ञों के अवसर पर गाये जाने वाले मन्त्रों का संग्रह है। सामवेद के दो प्रमुख भाग हैं– आर्चिक तथा गान। सामवेद में कुल 1,549 ऋचायें हैं। इनमें मात्र 78 ही नयी हैं अन्य ऋग्वेद से ली गई हैं। सामवेद को भारतीय संगीतशास्त्र का मूल कहा जा सकता है।

अथर्ववेद – वैदिक संहिताओं में अथर्ववेद संहिता का अपना एक विशिष्ट स्थान एवं महत्व है। 'अथर्वा' नामक ऋषि इसके प्रथम द्रष्टा थे, अतः उन्हीं के नाम पर इसे 'अथर्ववेद' कहा गया। इसके दूसरे द्रष्टा 'आंगिरस' ऋषि के नाम पर इसे 'अथर्वांगरस वेद' भी कहा जाता है। अथर्ववेद की दो शाखायें– पिप्लाद और शौनक हैं। इस संहिता में कुल 20 काण्ड, 31 सूक्त तथा 5,987 मंत्रों का संग्रह है। इसके लगभग 1,200 मंत्र ऋग्वेद से लिए गये हैं। रोग-निवारण, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, शाप, वशीकरण, आशीर्वाद, स्तुति, दीर्घायु, सुन्दर-वृष्टि, प्रायश्चित्त, विवाह, प्रेम, राजकर्म, मातृभूमि, माहात्म्य आदि विविध विषयों से सम्बन्धित मंत्र अथर्ववेद में मिलते हैं।

(2) ब्राह्मण ग्रन्थ – संहिता के पश्चात् वैदिक साहित्य में ब्राह्मण ग्रन्थों का स्थान है। वेदों का संक्षेपीकरण करने के लिए इन ग्रन्थों की रचना की गई। ये प्रधानतः गद्य-ग्रन्थ हैं जिनमें यज्ञों के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये विचारों का उल्लेख है। इन ग्रन्थों से आर्यों के राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋग्वेद का ऐतरेय, युजुर्वेद का शतपथ, सामवेद का पंचविंश तथा अथर्ववेद का गोपथ उल्लेखनीय हैं।

(3) आरण्यक ग्रन्थ – ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् आरण्यकों की रचना की गई जो ब्राह्मणों के अन्तिम भाग हैं। इनकी रचना आरण्यों अर्थात् वर्गों में पढ़ाये जाने के निमित्त की गई थी। इसी कारण इन्हें 'आरण्यक' कहते हैं। इनमें यज्ञों के स्थान पर ज्ञान एवं चिन्तन को प्रधानता दी गई है। प्राण-विद्या की महिमा का प्रतिपादन इनमें विशेष रूप से मिलता है। 'आरण्यक ग्रन्थों में ऐतरेय शांखायन, तैत्तिरीय, बृहदारण्यक, मैत्रायणी, तलवकार तथा याध्यन्दिन उल्लेखनीय हैं।'

(4) उपनिषद् – वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग उपनिषद् हैं जिन्हें 'वेदान्त' भी कहा जाता है। उपनिषद् मुख्यतः ज्ञानमार्गी रचनाएँ हैं। इनका मुख्य विषय ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन है। उपनिषद् का शाब्दिक अर्थ है उप = समीप + नि = निष्ठापूर्वक + सद् = बैठना अर्थात् गुरु के निकट निष्ठापूर्वक (रहस्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए) बैठना। इस प्रकार उपनिषद् वह साहित्य है जिनमें रहस्यात्मक ज्ञान एवं सिद्धान्त का संकलन है। प्रमुख उपनिषद् हैं– ईशोवास्य, केन, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, कठ, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक आदि।

(5) वेदांग – वैदिक साहित्य को सरलता से समझने तथा वैदिक कर्मकाण्डों के प्रतिपादन में सहायता देने के निमित्त जिस नवीन साहित्य की रचना हुई उसे 'वेदांग' कहा जाता है। इनकी संख्या छः है– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष। इन सभी का उद्देश्य वैदिक साहित्य को संरक्षण प्रदान करना, उसकी व्याख्या करना तथा उसे व्यावहारिक प्रयोग के लिए उपयोगी बनाना था।

वैदिककालीन सभ्यता (1500-600 ई०पू०)

वैदिक काल को निम्न दो भागों में विभक्त किया जाता है :-

(1) ऋग्वैदिक अथवा पूर्व वैदिककालीन सभ्यता (1500-1000 ई० पू०),

(2) उत्तर वैदिककालीन सभ्यता (1000-600 ई०पू०)।

ऋग्वैदिककालीन सभ्यता या पूर्व वैदिककालीन सभ्यता

स्रोत- ऋग्वैदिक काल के अध्ययन के लिए दो प्रकार के साक्ष्य उपलब्ध हैं :-

(क) पुरातात्विक साक्ष्य- ये साक्ष्य इस प्रकार हैं :-

1. चित्रित धूसर मृद्भांड।
2. खुदाई में हरियाणा के पास भगवानपुरा में 13 कमरों वाला मकान मिला है तथा पंजाब मे भी तीन स्थल ऐसे मिले हैं, जिनका संबंध ऋग्वैदिक काल से जोड़ा जाता है।
3. **बोगाजकोई अभिलेख** (1400 ई०पू०) में हित्ती राजा शुब्बिलिम्मा और मित्तानी राजा मतिऊअजा के मध्य हुई संधि के साक्षी के रूप में वैदिक देवताओं— इन्द्र, वरुण, मित्र, और नासत्य को उद्धृत किया गया है।
4. **कस्सी अभिलेख** (1600 ई०पू०) से यह सूचना मिलती है कि ईरानी आर्यों की एक शाखा भारत में आयी।

(ख) साहित्यिक साक्ष्य – साहित्यिक साक्ष्य में मुख्यत: ऋग्वेद है। इसमें दस मण्डल तथा 1028 सूक्त हैं। पहला तथा दसवां मण्डल बाद में जोड़ा गया है जबकि दूसरा से सातवां मण्डल पुराना है।

राजनीतिक दशा – एक प्रसिद्ध पश्चिमी विद्वान ने मत प्रकट किया है कि भारत सहित प्राचीन पूर्वी सभ्यताओं में सामाजिक तथा राजनीतिक ढाँचे पर गम्भीर चिन्तन नहीं किया गया है, यह पूर्णतया सत्य नहीं है। आर्यों ने राजत्व के विकास, राज्य की आवश्यकता, विभिन्न वर्गों का समाज के प्रति कर्त्तव्य आदि पर सभ्यता काल में ही चिन्तन प्रारम्भ कर दिया था। आर्यों के राजनीतिक सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति धार्मिक ढाँचे में हुई है। राजत्व के विकास के सम्बन्ध में ऐतरेय ब्राह्मण में देवासुर संग्राम और उसमें देवों के पराजय का वर्णन मिलता है। पराजय के कारण देवताओं ने विचार किया- "चूकि हमारा राजा कोई नहीं है, दानव हमें हरा देते हैं, अत: हमें एक राजा चुनना चाहिए।" राजा का चुनाव किया गया और नरेश-प्रथा या राजतन्त्र का जन्म हुआ।

राजनीतिक दशा
(क) राजा
(ख) राज-कर्मचारी
(ग) समिति तथा सभा
(घ) राजनीतिक संगठन
(च) युद्ध-प्रणाली

(क) राजा – राष्ट्र का अधिपति राजा शान्ति और युद्धकाल, दोनों में ही जन का नेता माना जाता था। राजा बड़े वैभव से महल में अनेक सेवकों के साथ निवास करता था। उनका चुनाव तथा उसके उत्तराधिकारी का चुनाव समिति करती थी। राजा का प्रमुख उद्देश्य जनकल्याण था।

राजा को तीन प्रकार के कार्यों को सम्पादित करना पड़ता था :–

(i) युद्ध के अवसर पर सेनापति का कार्य करता था।
(ii) समस्त प्रशासकीय कार्यों के लिए पूर्णतया उत्तरदायी था।
(iii) न्याय सम्बन्धी समस्त कार्यों को स्वयं करता था।

(ख) राज-कर्मचारी – राज्य के प्रमुख कर्मचारियों में पुरोहित, सेनापति (सेनानी) और ग्रामीण थे। सेनापति का कार्य युद्ध करना था। पुरोहित समस्त धार्मिक अनुष्ठानों को करता था। ग्रामीण गाँव का मुखिया होता था।

(ग) समिति तथा सभा – राजा पर दो संस्थाओं- समिति और सभा का नियन्त्रण था। समिति समस्त जनता की बड़ी संस्था और सभा वृद्धजनों की छोटी और चुनी हुई संस्था थी। राजा इनकी सलाह से ही कार्यों को सम्पादित करता था। समिति का प्रधान 'ईशान' कहलाता था। राजा का निवार्चन, निष्कासन अथवा पुन: निर्वाचन समिति करती थी। सभा और समिति के कार्य तथा अन्तर अधिक स्पष्ट नहीं हैं।

(घ) राजनीतिक संगठन – राजनीतिक संगठन का मूलाधार गृह अथवा कुल था। कुलपति की आज्ञा सबके लिए ग्राह्यी थी। कई कुलों के संगठन से ग्राम का निर्माण होता था, जिसका नेता 'ग्रामीण' होता था। ग्राम के वृहत् संगठन को 'विश' कहते थे जो 'विश्वपति' के अधीन होता था और विशों से बड़े संगठन को 'जन' या 'जनपद' कहते थे जिसका प्रधान 'राजन्' होता था। राज्य के लिए 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग किया जाता था।

(च) युद्ध-प्रणाली – वैदिक आर्य स्वभावतया शान्तिप्रिय थे। परन्तु अवसर आने पर युद्ध के लिए तैयार हो जाते थे और समस्त युवक युद्ध में भाग लेते थे। सेना में पैदल और रथी रहते थे। रथों में घोड़े जोते जाते थे और वह चमड़े के खोल से मढ़ा होता था। युद्ध में घुड़सवार अथवा हाथियों की सेना का प्रयोग देखने में नहीं आता था। सैनिक धनुष-बाण, फ़रसा, बर्छे, भाले, असि और गोफनों का प्रयोग करते थे। शरीर-रक्षा हेतु धातु के निर्मित वर्म, अत्क, हस्तघ्न, शिरस्त्राण आदि पहनते थे। इनका युद्ध धर्म पर आधारित रहता था और ये शरण में आये हुए को मुक्ति-दान प्रदान करते थे।

सामाजिक-दशा – वैदिक आर्यों का समाजिक जीवन बहुत ही सादा था। इस समय समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र– चार वर्ण थे। इनमें शादी-विवाह और खान-पान का प्रचलन था। आगे चलकर इस पद्धति में जटिलता आ गई। आर्यों के सामाजिक जीवन को निम्न आधारों में विभाजित किया जा सकता है :–

सामाजिक दशा
(क) कुटुम्ब
(ख) स्त्रियों की दशा
(ग) विवाह-पद्धति
(घ) आहार
(च) पोशाक और आभूषण
(छ) आमोद-प्रमोद
(ज) विद्या और साहित्य

(क) कुटुम्ब – कुटुम्ब पैतृक सिद्धान्तों पर आधारित था जिसमें गृहपति की आज्ञा का पालन करना सबके लिए अनिवार्य था। कुटुम्ब में सभी व्यक्तियों के लिए कार्य विभाजित थे। लेकिन प्रत्येक सदस्य को अपना कार्य पूर्ण करना आवश्यक था अन्यथा वह दण्ड का भागी होता था। कुटुम्ब में पत्नी का विशेष सम्मान होता था। पिता-पुत्र के सम्बन्ध भी अच्छे थे। पिता की मृत्यु के बाद उसकी सम्पति का अधिकारी पुत्र होता

था न कि पुत्री। परन्तु पुत्र न होने पर सम्पति का अधिकार पुत्री को मिलता था। जितना आनन्द पुत्र जन्म में होता था उतना पुत्री के जन्म पर नहीं होता था। इस प्रकार की संयुक्त परिवार-प्रणाली में प्रेम और आदर परिवार का आधार था।

(ख) स्त्रियों की दशा – वैदिक काल में स्त्रियों का बड़ा आदर और सम्मान था। स्त्रियाँ गृहस्वामिनी होती थीं। विवाह के पूर्व कन्याएँ अपने पिता के संरक्षण में रहती थीं। स्त्रियों को धार्मिक समारोहों में भाग लेने का पूर्ण अधिकार था। कुछ स्त्रियाँ, जैसे-घोषा, शची, पौलोमी, काक्षावृती, सिकता, निवारी, लोपामुद्रा और विश्ववारा ऋषियों की श्रेणी में आती थीं, क्योंकि इन्होंने ऋचाओं की रचना की थी। स्त्रियों में पर्दा-प्रथा नहीं थी। वैदिक काल में सती-प्रथा प्रचलित नहीं थी। सुशिक्षित वीरांगनाओं को अपना जीवनसाथी चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। बाल-विवाह अज्ञात है। धार्मिक कार्यों में पत्नी, पति की सहकारी होती थी।

(ग) विवाह-पद्धति – यद्यपि राजाओं में बहुविवाह होते थे, लेकिन एक स्त्री से विवाह ही आदर्श विवाह की श्रेणी में आता था। भाई-बहनों और पिता-पुत्री में विवाह पूर्णतया वर्जित था। विवाह के पश्चात् कन्याएँ अपने पति के घर चली जाती थीं। विवाह में दहेज-प्रथा प्रचलित थी। विवाह का प्रमुख उद्देश्य सन्तान उत्पन्न करना था। सन्तान के रहते विधवा स्त्री अपना पुनर्विवाह नहीं कर सकती थी। यदि सन्तान न होती तो विधवा स्त्री अपने देवर से ब्याह कर सकती थी। उस समय विवाह आठ प्रकार से प्रचलित थे, जिनमें 'राक्षस' और 'पैशाच' विवाह अग्रहणीय माने जाते थे। 'गांधर्व' और 'ब्राह्म' विवाहों में ब्राह्म विवाह अधिक प्रचलित था।

(घ) आहार – आर्य लोग दूध, घी, और पनीर का सेवन करते थे। जो लोग मांस-प्रेमी थे, बकरी और भेंड़ का मांस खाते थे। गाय को मारना 'जघन्य' समझा जाता था। विवाह-शादी के अवसरों पर अतिथि-सत्कार के लिए बैल का मांस प्रयुक्त होता था। मूजवन्त पर्वत में उगने वाली सोमलता से एक विशेष प्रकार का रस तैयार करते थे जिसे वे बड़े चाव से पीते थे। कुछ लोग 'सुरा' नाम की नशीली शराब का सेवन करते थे जिनके कारण उनकी सभाओं में मार-पीट तक की नौबत आ जाती थी। यह आश्चर्य की बात है कि आर्यों के भोजन में नमक का उल्लेख नहीं मिलता।

(च) पोशाक और आभूषण – आर्यों को सादगी पसन्द थी। वे प्राय: तीन वस्त्र धारण करते थे– (i) **नीवी**–जो कमर के नीचे पहना जाता था अर्थात् जो स्त्रियों और पुरुषों के लिए धोती की भाँति था। (ii) **वास**–जो शरीर पर धारण किया हुआ अंगरखा सरीखा होता था और (iii) **अधिवास**–जो ऊपर से धारण किया जाता था अर्थात् जो चादर या ओढ़नी की भाँति था। उनके वस्त्र प्राय: भेंड़ की ऊन के होते थे। उनके वस्त्रों पर बेल-बूटे कढ़े होते थे। ब्रह्मचारी लोग चर्माम्बर (अजिन) का परिधान बनाते थे। सम्भवत: सिले हुए कपड़ों का रिवाज नहीं था। ये लोग सिर पर पगड़ी भी बाँधते थे। स्त्री-पुरुष दोनों कर्णफूल, मालाएँ, कण्ठा, अँगूठियाँ, हाथों और पैरों के कड़े और रत्नों का प्रयोग करते थे।

(छ) आमोद-प्रमोद – आर्य लोग मनचले और मनोविनोद के प्रेमी थे। धार्मिक और सामाजिक समारोहों में युवकों और युवतियों में मैत्री और प्रेम हो जाता था। युवक,

युवतियों को प्रसन्न करने के लिए तन, मन, धन और सुमधुर वचनों से अनेक प्रयास करते थे। आर्यों को जुआ खेलने का व्यसन था। वे कुछ न रहने पर अपने शरीर तक को दाँव में लगा देते थे, किन्तु लड़कों को जुआ खेलने की आज्ञा न थी। इसके अतिरिक्त विभिन्न अवसरों पर रथ की दौड़ और घुड़-दौड़ का आयोजन होता था। नाचने, गाने और बजाने का स्त्री-पुरुष दोनों को शौक था। हाथ से और फूँककर बजाने के उनके कई प्रकार के बाजे थे। इनमें वीणा, तूर्य; नावि, भृंग, शंख और दुन्दुभी आदि प्रमुख थे। विजय का बाजा दुन्दुभी (ढोल) था।

(ज) विद्या और साहित्य – वैदिक आर्यों का जीवन आदर्शमय था। विद्यार्थी गुरुओं के घर पर वेदों का अध्ययन करते थे। धारणाशक्ति के बिना विद्यार्थियों का काम नहीं चल सकता था, क्योंकि उन्हें वेद-वेदान्त सस्वर याद करने पड़ते थे। उच्चारण और स्वर में जरा-सी भूल अक्षम्य थी। ध्वनि, स्वर और शब्द-विद्या काफी उन्नत दशा में थी। वैदिक शब्दों, स्वरों और वाक्यों की शुद्धता के लिए 'प्रातिशाख्य' और 'अनुक्रमणी' की रचना की गयी थी।

आर्थिक दशा – आर्यों के आर्थिक जीवन को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है :–

आर्थिक दशा
(क) कृषि
(ख) पशु-पालन
(ग) उद्योग-धन्धे
(घ) व्यापार

(क) कृषि – आर्यों की आर्थिक व्यवस्था का मूलाधार कृषि तथा पशुपालन था। ये हलों में बैलों को जोतते थे। उर्वरा भूमि की जुताई में छः, आठ और बारह बैलों तक का प्रयोग करते थे। खेतों की कुओं, झीलों, नहरों और नालियों आदि से सिंचाई करते थे। वे 'शकन' और 'करीश' नामक खाद खेतों को उपजाऊ बनाने के लिए प्रयोग करते थे। वे चावल, जौ, सरसों, तिल, मसूर, गेहूँ आदि की पैदावार करते थे। अतिवृष्टि, टिड्डी, कीड़ों और पक्षियों से खेती को भय रहता था।

(ख) पशु-पालन – आर्य जोतने और बोझा ढोने के लिए बैल रखते थे। सवारी, घुड़-दौड़ तथा युद्ध के लिए घोड़े रखते थे। इनके अतिरिक्त गाय, भैंस, बकरी, भेड़, गधे और कुत्ते भी पालते थे। पशुओं के कान पर उनके स्वामी का चिह्न अंकित कर दिया जाता था। 'गोपाल' पशुओं को 'गोष्ठ' में चराने ले जाते थे।

(ग) उद्योग-धन्धे – बढ़ई (तक्षण) रथ और गाड़ियाँ बनाते थे तथा लकड़ी पर नक्काशी का काम भी करते थे। लोहार (कर्मार) धातु के वर्तन बनाते थे। सोनार सोने के आभूषण बनाते थे। कपड़ा बुनने वाले करघों पर कपड़ा बुनते थे। स्त्रियाँ बेल-बूटे का काम, कताई, चटाई की बुनाई और पिसाई का काम करती थीं।

(घ) व्यापार – व्यापार विनिमय द्वारा होता था। विनिमय का मान गाय होती थी किन्तु 'निष्क' नामक सोने के सिक्के भी प्रचलित थे। व्यापारिक वर्ग 'पणि' कहलाता था। जमीन का व्यापार नहीं होता था, यद्यपि उस पर स्वामी का अधिकार माना जाता था। कर्ज की भी प्रथा थी। मूल का आठवाँ अथवा सोलहवाँ अंश शायद सूद में लिया जाता था। स्थल के अतिरिक्त जलमार्ग से भी नावों द्वारा व्यापार होता था।

धार्मिक दशा – आर्यों के धार्मिक जीवन को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है :

(क) प्रकृति की उपासना – आर्यों का धर्म बहुत सरल था। कृषि-प्रधान तथा पशु-पालक सभ्यता का प्रकृति की उपासना करना स्वाभाविक था। प्रकृति के रूप में आर्य अनेक देवताओं की पूजा किया करते थे। पृथ्वी, सोम, अग्नि, इन्द्र, वायु, मरुत, सूर्य आदि की वे उपासना करते थे।

धार्मिक दशा
(क) प्राकृति की उपासना
(ख) एकेश्वरवाद में विश्वास
(ग) प्रवृत्तिमार्गी धर्म
(घ) यज्ञ
(च) नैतिक आदर्श

(ख) एकेश्वरवाद में विश्वास – उक्त विभिन्न देवताओं की स्तुति के कारण मैक्समूलर तथा मैकडोनल्ड सरीखे पाश्चात्य विद्वानों ने आर्यों के धर्म को बहु-देववादी माना है। वास्तव में ये विभिन्न प्राकृतिक शक्तियाँ और देवतागण एक परम परमात्मा के अंश हैं। उनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। आर्य एकेश्वरवादी थे जैसा कि श्री अरविन्द व दयानन्द सरस्वती ने माना है। आर्य इस सत्य से भलीभाँति परिचित थे कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक सत्ता विद्यमान है। इस युग के ऋषियों ने इसी तथ्य का निरूपण करते हुए कहा था कि 'सत्' एक ही है। विद्वान उसे अग्नि, यम और मातरिश्वा आदि विभिन्न नामों से पुकारते हैं।

(ग) प्रवृत्तिमार्गी धर्म – आर्यों को जीवन से बहुत प्रेम था। उनका धर्म प्रवृत्तिमार्गी था। गृहस्थी में रहकर ही वे देवोपासना के द्वारा कल्याण प्राप्त करते थे। उनके जीवन में संन्यास या गृहत्याग जैसी पलायनवादी भावनाएँ नहीं थीं। ऋग्वेद में परमशक्ति से अनेक बार शतवर्षीय आयु, धनधान्य और विजय की कामना की गई है। इस प्रकार उनका जीवन उल्लासपूर्ण तथा अनुरागमय था।

(घ) यज्ञ – वैदिकधर्म में मूर्ति-पूजा व देवालयों का स्थान न था। आर्यों ने एक निराकार ईश्वर की पूजा की थी। स्तुति और यज्ञ उनकी पूजा के साधन थे। अग्निकुण्ड में अग्नि प्रज्वलित कर दी, दूध, धान्य की आहुति देकर उसके चारों ओर वे मंत्रों का उच्चारण करते थे। उनका विश्वास था कि यज्ञों में समर्पित आहुति सीधे देवताओं तक पहुँचती है। कालान्तर में पशुबलि तथा पुरोहितों का यज्ञ में जोर हो गया। आर्य आत्मवादी थे। पाप, पुण्य, स्वर्ग और नरक की कल्पना उन्हें थी। पुण्यकर्मी मनुष्य मृत्यु के पश्चात् सीधे स्वर्ग जाता है, ऐसा उन्हें विश्वास था।

(च) नैतिक आदर्श – आर्यों के धर्म की आधारशिला कोरे दर्शन पर नहीं अपितु शुद्ध आचरण तथा नैतिक आदर्श पर आधारित थी। चरित्र की शुद्धता, अतिथि-सत्कार, सदाचार, दानशीलता तथा पड़ोसी के प्रति उदारता पर वैदिक आर्यों ने पर्याप्त बल दिया है। ऋग्वेद में एक स्थान पर प्रार्थना की गई है– "हे देव, हमने किसी के प्रति पाप किया हो, किसी का अहित किया हो अथवा पड़ोसी या किसी को क्रूर कष्ट दिया हो, तो हमें इस पाप से मुक्त कर दो।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आर्यों का धर्म मानव-कल्याण के लिए था।

उत्तर वैदिककालीन सभ्यता

स्रोत – उत्तर वैदिक काल के अध्ययन के लिये दो प्रकार के साक्ष्य उपलब्ध हैं :-

1. पुरातात्विक साक्ष्य – उत्तर वैदिक काल के अध्ययन के लिए चित्रित धूसर मृदमांड और लोहे के उपकरण महत्वपूर्ण साक्ष्य हैं। 1000 ई०पू० से पाकिस्तान के गांधार क्षेत्र में लोहे के उपकरण प्राप्त होने लगे। वहाँ कब्र में मृतकों के साथ लोहे के उपकरण मिले हैं। 800 ई०पू० से इनका प्रयोग गंगा-यमुना दोआब में भी होने लगा। उत्तरी दो-आब में चित्रित मृदभांड के 700 स्थल मिले हैं। इनमें चार की खुदाई हुई है। ये हैं– अतरंजीखेड़ा, जखेड़ा, हस्तिनापुर एवं नोह। अभी तक खुदाई में लौह उपकरण अतरंजीखेड़ा में मिला है। उत्तर वैदिक ग्रन्थ में इसे **श्याम अयस** और **कृष्ण अयस** कहा गया है। अतरंजीखेड़ा में पहली बार कृषि से संबंधित लौह उपकरण प्राप्त हुए।

2. साहित्यिक साक्ष्य – इस काल में महत्वपूर्ण साहित्यिक स्रोत–सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण, आरण्यक और कुछ उपनिषद् हैं।

राजनीतिक दशा – पूर्व वैदिककाल की उपेक्षा उत्तर वैदिककाल में राजनीतिक दशा में विशेष परिवर्तन हुआ। इस काल में बड़े नगरों, राज्यों और साम्राज्यों की स्थापना हुई। इनमें कुरु, पांचाल, कोशल, काशी, विदेह, मगध तथा गांधार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कुछ गणतन्त्रात्मक राज्यों का उदय हुआ, परन्तु इनका कोई विशेष महत्व न था। राज्यों में नागरिकता एवं राष्ट्रीयता की उच्च भावनाएँ उत्पन्न हो गयी थीं। इस काल में साम्राज्यवाद की भावना का प्रादुर्भाव हो चुका था। 'शतपथब्राह्मण' में कौशल तथा विदेह में ब्राह्मण तथा क्षत्रियों द्वारा उपनिवेश बनाने का उल्लेख है।

1. राजा – इस काल में राजा की स्थिति में परिवर्तन हुआ। वह पहले से अधिक शक्तिशाली और स्वेच्छाचारी हो गया। उसका पद बड़ा महत्वपूर्ण तथा देवतुल्य समझा जाता था। राज्याभिषेक के समय राजा को इस प्रकार सम्बोधित किया जाता था– "कृषि उन्नति तथा प्रजा के लिए यह राज्य तुम्हें सौंपा जाता है।" राजा को भी इस बात की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी– "यदि मैं कभी अपनी प्रतिज्ञा भंग करूँ तो मेरे धार्मिक अनुष्ठान, दान, सत्कर्म, स्थान, जीवन तथा सन्तान तक का सत्व जाता रहे।" उसे सिंहासन से उतर कर ब्राह्मण को प्रणाम करना पड़ता था। पहले की भाँति अब भी सभा तथा समिति अपना कार्य करती थी।

सम्राटों के लिए विशेष यज्ञों का प्रावधान था। राजा के लिए 'राजसूय', सम्राट के लिए 'वाजपेय', स्वराट् के लिए 'अश्वमेध', विराट के लिए 'पुरुषमेध' तथा सर्वराट् के लिए 'सर्वमेध' यज्ञों का विधान था। राजा को तीन प्रकार के कार्यों को सम्पादित करना पड़ता था :-

(i) समस्त शासकीय कार्यों के लिए पूर्ण उत्तरदायी था।

(ii) युद्धस्थल में सेनापति का कार्य करता था।

(iii) राज्य के न्याय-सम्बन्धी समस्त कार्यों को स्वयं पूरा करता था।

2. राज-कर्मचारी – इस काल में राज-कर्मचारियों का महत्व बहुत बढ़ गया था। पूर्व वैदिक काल के प्रमुख कर्मचारियों में सेनापति, पुरोहित और ग्रामीण होते थे। परन्तु उत्तर वैदिक काल में इनकी संख्या बारह हो गयी।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में वर्णित कर्मचारी इस प्रकार हैं– (1) पुरोहित, (2) राजन्य (सजात राजा), (3) महिषी (पटरानी), (4) वावात (प्रियरानी), (5) परिवृत्ति (निराकृत पत्नी), (6) सूत, (7) सेनानी, (8) ग्रामीण, (9) क्षता (दौवारिक), (10) संगृहीता (कोषाध्यक्ष), (11) भागदुध (राज्यग्राह्य कर संचित करने वाला) और (12) अक्षापाव (अक्ष अर्थात् आय-व्यय का गणनाध्यक्ष, यहाँ कुछ लोग अक्ष का अर्थ द्युत भी कहते हैं।) 'शतपथब्राह्मण' में दो नाम और हैं– (1) गोनिकर्तन (गवाध्यक्ष, जो बैलों को निर्लक्ष्य बधिया कराने के कारण इस नाम से सम्बोधित होता था, कुछ लोग इसको मृगयाध्यक्ष अर्थात् आखेट-प्रबन्धक भी कहते हैं।) और (2) पालागल (दूत)। ये सभी कर्मचारी 'रत्निन्' कहलाते थे।[1]

3. राजनीतिक संगठन – इस काल में शासन-विधान का भी विकास हुआ। पहले की भाँति अब भी ग्राम का मुख्य पदाधिकारी 'ग्रामीण' था। उसके ऊपर क्रमशः 'दसग्रामी' 'विशपति', 'शतग्रामी' थे। इनके ऊपर 'अधिपति' था जो एक सहस्त्र ग्रामों का शासक था। अपने-अपने क्षेत्र में राज-कर वसूल करना और न्याय करना इनके मुख्य कार्य थे।

राजनीतिक दशा
1. राजा
2. राज-कर्मचारी
3. राजनीतिक संगठन

सामाजिक दशा – उत्तर वैदिककाल में आर्यों का सामाजिक जीवन भी पहले की अपेक्षा अधिक जटिल हो गया था। संक्षेप में, उनके सामाजिक जीवन में निम्न परिवर्तन हो गये थे :

(1) स्त्रियों की दशा – पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा इस काल में स्त्रियों का आदर तथा सम्मान कम हो गया था। वे सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं थीं। उनके द्वारा उपार्जित सम्पदा या तो उनके प्रति की होती थी या पिता की। उन्हें भोग-विलास की सामग्री समझा जाता था। पुत्रियों की अपेक्षा पुत्र को अधिक महत्व दिया जाता था, परन्तु स्त्रियों को वाद-विवाद में भाग लेने का पूर्ण अधिकार था। कुछ स्त्रियाँ, जैसे–घोषा, लोपामुद्रा, विश्ववारा गार्गी तथा मैत्रेयी विदुषी की श्रेणी में आती थीं।

2. विवाह – इस काल में पूर्ण अवस्था प्राप्त होने पर ही विवाह होता था। सजातीय विवाहों को अधिक महत्व दिया जाता था। विधवा स्त्री अपना पुनर्विवाह कर सकती थी। बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी। 'मनु' के दस पत्नियाँ थीं। विवाह में दहेज-प्रथा का प्रचलन था।

3. आहार – उत्तर वैदिक काल में आहार में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता। आर्यों का मुख्य भोजन दूध, दही, घी, दाल आदि था। लेकिन मांस का खाना अब बुरा समझा जाने लगा था तथा सुरा का सेवन भी घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। गोहत्या को 'जघन्य' समझा जाता था।

सामाजिक दशा
1. स्त्रियों की दशा
2. विवाह
3. आहार
4. वेश-भूषा
5. आमोद-प्रमोद
6. वर्णाश्रम-व्यवस्था
7. आश्रम-व्यवस्था
8. गोत्र-प्रथा

1. राज-कर्मचारियों की सूची डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी की पुस्तक 'हिन्दू-सभ्यता' से उद्धृत की गयी है।

4. वेश-भूषा – इस काल में आर्यों की वेश-भूषा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वे तीन वस्त्रों का प्रयोग करते थे– (i) **नीवी**–जो स्त्रियों और पुरुषों के लिए धोती की भाँति था। (ii) **वास**–जो अंगरखा सरीखे था और (iii) **अधिवास**–जो चादर या ओढ़नी की भाँति था। ऊनी कपड़ों का भी प्रयोग होने लगा था। वे रंग-बिरंगे कपड़े पहनने के शौकीन हो गये थे।

5. आमोद-प्रमोद – आमोद-प्रमोद के साधनों में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। विभिन्न अवसरों पर जुआ खेलने, रथ-दौड़ और घुड़दौड़ का आयोजन होता था। नाचने-गाने और बजाने का स्त्री-पुरुष दोनों को शौक था। हाथ से और फूँककर बजाने के अनेक कई प्रकार के बाजे थे। इनमें वीणा, तूर्य, भृंग, शंख और दुन्दुभी आदि प्रमुख थे।

6. वर्णाश्रम व्यवस्था – उत्तर वैदिक काल की सबसे प्रमुख देन वर्णाश्रम व्यवस्था है। इसके अनुसार आर्यों ने समाज को चार वर्णों में विभक्त किया। ये वर्ण थे– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। वेदों में इस बात का उल्लेख है कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख, क्षत्रिय भुजाएँ, वैश्य शरीर तथा शूद्र पैरों के समान हैं।[1] इन चार वर्णों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :–

(i) ब्राह्मण – ब्राह्मण समाज का सर्वोच्च वर्ग था। धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न कराना इनका प्रमुख कार्य था। ब्राह्मणों में पुरोहित, राजमन्त्री, शिक्षक, आचार्य, ऋषि तथा उपदेशक प्रमुख थे। राजा भी सिंहासन से उतरकर ब्राह्मण की वन्दना करता था।

(ii) क्षत्रिय – ब्राह्मणों के पश्चात् समाज में दूसरा स्थान क्षत्रिय का था। इनका प्रमुख कार्य युद्ध करना तथा बाहरी आक्रमणों से देश की रक्षा करना था। कुछ क्षत्रिय ब्राह्मणों की भाँति शास्त्रविद्या में निपुण थे। इनमें मिथिलानरेश विदेह तथा काशीनरेश अजातशत्रु के नाम उल्लेखनीय हैं।

(iii) वैश्य – वैश्य का प्रमुख कार्य व्यापार, खेती तथा पशु-पालन था। धनिक वैश्यों के लिए श्रेष्ठ तथा गृहपति शब्दों का प्रयोग किया जाता था। इनमें अनेक उपजातियाँ बन गई थीं।

(iv) शूद्र – यह सबसे निम्न वर्ग था। इनका कार्य समाज में मनुष्य की सेवा करना था। यज्ञादि के अवसर पर इनका जाना पूर्णतया वर्जित था। इनमें भी कई उपजातियाँ बन गई थीं।

7. आश्रम-व्यवस्था – उत्तर वैदिक काल के आर्यों की दूसरी महत्वपूर्ण देन आश्रम-व्यवस्था थी। आर्यों का ऐसा विश्वास था कि मनुष्य को इन चार आश्रमों में रहकर देव-ऋण, ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण तथा गृह-ऋण अदा करना पड़ता है। यह आश्रम-व्यवस्था इस प्रकार थी :

(i) ब्रह्मचर्य आश्रम – जीवन के प्रथम 25 वर्ष ब्रह्मचर्य आश्रम के अन्तर्गत आते थे। इनमें मनुष्य अविवाहित रहकर विद्याध्ययन करता और गुरुओं के आश्रमों में रहता था।

(ii) गृहस्थ आश्रम – इस आश्रम के अगले 25 वर्ष गृहस्थ आश्रम के होते थे, जिनमें मनुष्य विवाह करके गृहस्थ-जीवन व्यतीत करता था। वह धनोपार्जन तथा धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करता था।

---

1. "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
   ऊरु तदस्य यद्वैश्य पद्भ्यां शूद्रो अजायत्॥" –ऋग्वेद, 10-90-12

(iii) वानप्रस्थ आश्रम – 50 वर्ष से 75 वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम होता था, जब मनुष्य गृहस्थ जीवन का त्याग कर वनों में निवास करता था। वह धनोपार्जन का मोह त्यागकर आत्मचिन्तन में अपना समय बिताता था।

(iv) संन्यास आश्रम – मनुष्य के जीवन के अन्तिम 25 वर्ष संन्यास आश्रम के अन्तर्गत आते थे, जबकि मनुष्य ईश्वर के चिन्तन तथा मोक्ष-प्राप्ति के लिए चेष्टा करता था।

इस प्रकार आर्यों ने मनुष्य जीवन के 100 वर्षों को आश्रम-व्यवस्था द्वारा विभाजित कर दिया था।

8. गोत्र-प्रथा – उत्तर वैदिक काल में गोत्र-प्रथा स्थापित हुई। गोत्र का शाब्दिक अर्थ है–गोष्ठ या वह स्थान जहाँ समूचे कुल का गोधन पाला जाता था, लेकिन कालान्तर में एक ही मूल पुरुष से व्युत्पन्न लोगों के समुदाय के अर्थ में यह शब्द रूढ़ हो गया। तदनुसार एक ही गोत्र या मूल पुरुष वाले लोगों के बीच आपस में विवाह निषिद्ध हो गया।

आर्थिक दशा – उत्तर वैदिक काल में आर्यों की आर्थिक दशा में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता। संक्षेप में, इस काल की आर्थिक दशा निम्न प्रकार थी :–

1. कृषि – इस युग में आर्यों की आर्थिक व्यवस्था का मूलाधार कृषि और पशुपालन था। इस समय अनेक प्रकार की फसलें बोई जाने लगी थीं जिनमें धान, उड़द, जौ, तिल उल्लेखनीय हैं। हलों में 24-24 तक बैल जोते जाने लगे थे। खेती की उपज बढ़ाने के लिए खाद का भी प्रयोग होने लगा था। आर्य साल में दो फसलें उत्पन्न करते थे। इस काल में वे अनेक प्रकार के फलों तथा सब्जियों से परिचित हो गये थे। ऋग्वेद के एक मन्त्र में लिखा है कि कूप से जल निकाल कर बड़े तालाब या नहर में सिंचाई के लिए भर दिया जाता था। इससे तत्कालीन सिंचाई व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है।

2. उद्योग-धन्धे – उत्तर वैदिक काल में उद्योग-धन्धों की विशेष उन्नति हुई। बढ़ई, लोहार, सोनार, चमार, मछुए, रंगसाज, जुलाहे, धोबी, नाई, आखेटक, रस्सी बनाने वाले तथा कुम्हार आदि का उल्लेख मिलता है।

आर्थिक दशा
1. कृषि
2. उद्योग-धन्धे
3. व्यापार

उद्योग-धन्धों में लगी स्त्रियों का भी उल्लेख मिलता है, जैसे रंगने वाली (रजयित्री), सुईकारी का काम करने वाली या कसीदा काढ़ने वाली (पेशस्कारी), बाँस का काम करने वाली (विलकारी)।

3. व्यापार – व्यापार के क्षेत्र में भी इस काल में विकास हुआ। धनी व्यापारी को 'श्रेष्ठिन्' कहा जाता था। 'निष्क', 'कृष्णाल' तथा 'शतमान' आदि मुद्राओं का प्रचलन इस काल में हो चुका था। आर्य सुदूर देशों से व्यापार करते थे। आन्तरिक व्यापार पर्वतों के निवासी किरातों के साथ किया जाता था। इनसे जड़ी-बूटियाँ तथा बहुमूल्य पत्थर प्राप्त होते थे। स्थल-मार्ग के अतिरिक्त जल-मार्ग से भी व्यापार होता था।

धार्मिक दशा – उत्तर वैदिक काल में आर्यों की धार्मिक दशा में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया था। इस काल में अनेक देवताओं का प्रादुर्भाव हो चुका था और पूर्व वैदिक काल के कुछ देवताओं का महत्व कम हो गया था। संक्षेप में, इस काल की धार्मिक दशा निम्न प्रकार थी :–

1. यज्ञों की प्रधानता तथा ब्राह्मणों का प्रभुत्व – उत्तर वैदिक काल में आर्यों का धर्म पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा जटिल हो गया। इस काल में यज्ञों की प्रधानता बढ़ गई। विशाल यज्ञों का आयोजन कई-कई वर्षों तक चलता रहता था। इस समय आर्यों को यह विश्वास हो गया था कि यज्ञ के द्वारा विजय, रोग का निवारण तथा इच्छानुकूल वर प्राप्त किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों में ब्राह्मण की उपस्थिति अनिवार्य थी। यहाँ तक कि बलि के अभाव में यज्ञ अपूर्ण माना जाता था। यज्ञ-विधि अत्यधिक जटिल हो गई थी।

2. पुनर्जन्म व कर्मवाद में विश्वास – पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रादुर्भाव इसी काल में हुआ। आर्यों को यह विश्वास था कि आत्मा अमर है और वह अपने कर्मों के अनुसार जन्म बदलती रहती है। पुनर्जन्म के साथ-साथ कर्मवाद के सिद्धान्त का भी प्रादुर्भाव इस काल में ही हो चुका था कि अच्छे और बुरे कर्मों का फल मनुष्य को अवश्य ही भोगना पड़ता है।

3. देवता – यद्यपि पूर्व वैदिक काल के देवता ही उत्तर वैदिक काल के आर्यों के देवता थे, किन्तु कुछ देवताओं का महत्व पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गया था। विष्णु, शिव तथा प्रजापति आदि का महत्व बढ़ गया था और इन्द्र, वरुण तथा पृथ्वी का महत्व कम हो गया था। शिव को 'महादेव' तथा 'पशुपति' आदि नामों से पूजा जाने लगा था।

4. अन्धविश्वास – इस काल में रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों का प्रादुर्भाव हुआ। जादू-टोना, भूत-प्रेत, मन्त्र-तन्त्र आदि का अधिक विश्वास किया जाने लगा। रुद्र जो शिव का ही स्वरूप था, की महिमा अधिक बढ़ गई थी।

धार्मिक दशा

1. यज्ञों की प्रधानता तथा ब्राह्मणों का प्रभुत्व
2. पुनर्जन्म व कर्मवाद में विश्वास
3. देवता
4. अन्धविश्वास

सिन्धु सभ्यता और वैदिक सभ्यता की तुलना

समानताएँ – दोनों सभ्यताओं में समानताएँ इस प्रकार हैं :–

वस्त्र और आभूषण – वस्त्र और आभूषण की दृष्टि से दोनों सभ्यताओं में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया जाता। सिन्धुवासी धोती के समान एक वस्त्र और धारण करते थे जो उत्तरीय वस्त्र या चादर के नाम से जाना जाता था। वैदिक आर्यों का पहनावा भी सिन्धुवासी लोगों की ही भाँति था। दोनों सभ्यताओं की स्त्रियों का वेश-विन्यास समान था। सिन्धु सभ्यता के स्त्रियों के समान ही वैदिक स्त्रियाँ भी सोने आदि के आभूषणों की शौकीन थीं।

पशु-पालन – दोनों सभ्यताओं के लोग भेड़, बकरी, बैल, भैंस आदि पशु पालते थे। वैदिक आर्यों के जीवन में घोड़ों का विशिष्ट स्थान था। सिन्धुवासी लोग सम्भवत: घोड़े से परिचित थे, क्योंकि मोहेंजोदड़ो के ऊपरी स्तरों पर घोड़े की हड्डियाँ तथा लोथल से एक मृण्मय मूर्ति प्राप्त हुई है।

देवता – पुराविदों का विचार है कि सिंधु-सभ्यता में 'शिव' और 'शक्ति' की उपासना प्रचलित थी। इनकी समानता क्रमश: वैदिककालीन 'रुद्र', 'अदिति', और 'पृथ्वी' से की जा सकती है।

रूई उद्योग – रूई उद्योग का ज्ञान दोनों ही सभ्यताओं के लोगों को था। कताई-बुनाई का उन दोनों की आर्थिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान था।

असमानताएँ – उपर्युक्त समानताओं के होते हुए भी इन दोनो सभ्यताओं में निम्नलिखित असमानताएँ थीं :–

काल में अन्तर – सिन्धु सभ्यता का काल वैज्ञानिक आधारों पर 2350 ई०पू० से 1750 ई०पू० माना गया है जबकि वैदिक सभ्यता का काल 1500 ई०पू० से 600 ई०पू० माना जाता है।

लोहे का प्रयोग – सिन्धु सभ्यता के लोग निस्संदेह ही लोहे के प्रयोग से अपरिचित थे, जबकि वैदिक आर्य लोहे के प्रयोग से परिचित थे। सिन्धु सभ्यता का रूप ताम्रश्म था, जबकि इसके विपरीत वैदिक सभ्यता लौहयुगीन थी।

भोजन और वस्त्र – सिंधुवासियों के मुख्य भोजन में गेहूँ व जौ की रोटी, मांस तथा दूध की बनी वस्तुएँ सम्मिलित थीं। वैदिक आर्य इन खाद्य पदार्थों का सेवन तो करते ही थे किन्तु दूध और दूध से बनी वस्तुओं के प्रति उनकी रुचि अधिक थी। वैदिक आर्य सोमरस के प्रेमी थे, जबकि सिन्धुवासियों के जीवन में संभवतः सुरा का स्थान नहीं था।

कवच और युद्ध-पद्धति – वैदिककालीन लोग शरीर की सुरक्षा के लिए कवच और शिरस्त्राण का प्रयोग करते थे। जबकि सिन्धु सभ्यता में रक्षात्मक अस्त्रों की भारी कमी दिखाई पड़ती है। वैदिक आर्य युद्ध में घोड़ों का प्रयोग करते थे, जो संभवतः सिन्धुवासियों को मालूम नहीं था।

नगरीय तथा ग्रामीण सभ्यता – सिन्धु सभ्यता नगरीय सभ्यता थी, जबकि वैदिक सभ्यता ग्रामीण सभ्यता थी। सिन्धु नगरों के भवन अधिकतर पक्की ईंटों के थे। इसके विपरीत वैदिक काल के लोग अपने मकान लकड़ी और फूस से बनाते थे।

धार्मिक कार्य – सिन्धु संस्कृति में गाय की अपेक्षा बैल अथवा सांड़ का अधिक महत्व था, जबकि वैदिक संस्कृति में बैल की तुलना में गाय का अधिक महत्व था।

सिन्धु सभ्यता में शिव, शक्ति अथवा मातृदेवी और लिंग-पूजा प्रचलित थी। वृक्ष, पशु और सूर्य आदि की भी पूजा होती थी। इसके विपरीत ऋग्वेद में इन धार्मिक कार्यों की निन्दा की गई है।

धातु प्रयोग – वैदिक सभ्यता के लोग आरम्भ में सोने तथा ताँबे का प्रयोग करते थे और बाद में वे चाँदी, लोहा तथा कांस्य का प्रयोग करने लगे थे। इसके विपरीत सिन्धु सभ्यता के लोग मुख्यतः पाषाण का प्रयोग करते थे। वे धातुओं में सोने की अपेक्षा चाँदी का अधिक प्रयोग करते थे। वे लोहे से बिल्कुल अनभिज्ञ थे।

पशुओं का ज्ञान – दोनों सभ्यताओं के लोगों को जिन पशुओं का ज्ञान था, वे थे– बकरी, गाय, भैंस और कुत्ते आदि। फिर भी वैदिक काल के लोग, व्याघ्र से सर्वथा अपरिचित थे। हाथी का भी वेदों में बहुत कम उल्लेख मिलता है। इसके विपरीत सिन्धु सभ्यता के लोग इन दोनों पशुओं से भली-भाँति परिचित थे।

सामाजिक संगठन – सिन्धु सभ्यता के लोगों के सामाजिक संगठन में वर्णाश्रम-व्यवस्था का कोई स्थान नहीं था। समाज में व्यक्तियों का स्तर और अन्तर केवल उनके व्यवसाय के आधार पर ही मान्य था। इसके विपरीत वैदिक सभ्यता के लोगों के सामाजिक संगठन का प्रमुख आधार वर्णाश्रम-व्यवस्था थी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. पूर्व वैदिक काल में भारत की राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दशा का वर्णन कीजिए। (1966)
2. उत्तर वैदिकयुगीन आर्य-सभ्यता का विवेचन कीजिए। (1974)
3. ऋग्वेदकाल में आर्यों के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन पर संक्षेप में एक निबन्ध लिखिए। (1980)
4. पूर्व वैदिककालीन तथा उत्तर वैदिककालीन आर्यों की सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं का वर्णन कीजिए। (1981)
5. वैदिककालीन सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिए। (1981,97)
6. उत्तर वैदिककाल में आर्यों के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन का वर्णन कीजिए। (1982)
7. उत्तर वैदिककालीन सभ्यता का वर्णन कीजिए। (1988)
8. आर्यों के आदि देश के सम्बन्ध में प्रचलित विभिन्न मतों की व्याख्या कीजिए। (1989)
9. पूर्व-वैदिककाल के आर्यों के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का वर्णन कीजिए। (1990)
10. ऋग्वैदिक आर्यों के सामाजिक-आर्थिक जीवन का निरूपणं कीजिए। (1991)
11. उत्तर वैदिक काल के सामाजिक-धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालिए। (1992)
12. पूर्व एवं उत्तर वैदिककालीन संस्कृतियों की तुलना कीजिए। (1998)
13. आर्य कौन थे ? उनके सामाजिक-आर्थिक जीवन पर प्रकाश डालिए। (2000)
14. उत्तर-वैदिक कालीन आर्यों की वर्ण-व्यवस्था एवं आश्रम-व्यवस्था का वर्णन कीजिए। (2000)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "आर्यों का धर्म मानव कल्याण के लिए था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
2. "आर्यों का सामाजिक जीवन आदर्शमय था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. "ऋग्वेद भारतीय संस्कृति की आधारशिला है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. आर्यों के मूल स्थान सम्बन्धी चार मतों का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए। (1986)
2. वैदिककालीन सामाजिक जीवन का उल्लेख कीजिए।
3. उत्तर वैदिककाल में आर्यों के धार्मिक जीवन का वर्णन कीजिए।
4. आर्यों के वैदिक साहित्य का उल्लेख कीजिए।
5. उत्तर वैदिककाल की राजनीतिक दशा का परिचय दीजिए।
6. ऋग्वैदिक सामाजिक व्यवस्था की दो प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए। (1995)
7. 'सभा' तथा 'समिति' पर प्रकाश डालिए। (1996)

☆

5
महाजनपद- काल

> **"लगभग एक सहस्र ईस्वी पूर्व से पाँच सौ ईस्वी पूर्व तक के युग को भारतीय इतिहास में जनपद या महाजनपद युग कहा जा सकता है। समस्त देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक जनपदों का ताँता फैल गया। एक प्रकार से जनपद राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन की इकाई बन गये थे।"** - डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

महात्मा बुद्ध के प्रादुर्भाव के पूर्व हम इतिहास में एक ऐसे युग का दर्शन करते हैं, जिसे महाजनपद- काल कहा जाता है क्योंकि इस काल में भारत 16 महाजनपदों में विभक्त था। इन जनपदों का परिचय जैन और बौद्ध साहित्य से प्राप्त होता है। चूँकि जैन- धर्म और बौद्ध धर्म निश्चित रूप से छठीं शताब्दी ईस्वी पूर्व थे, अतः महाजनपदों का काल आठवीं शती ईस्वी पूर्व रखा जा सकता है। उस काल में जो 'जन' जिस प्रदेश में स्थायी रूप से बस गया, वही उसका जनपद (राज्य) हो गया और उसी के नाम पर उसके प्रदेश का नाम भी पड़ गया। बौद्ध ग्रन्थ 'अंगुत्तर निकाय' में महाजनपदों के नाम इस प्रकार मिलते हैं : (1) अंग, (2) मगध, (3) काशी, (4) कोशल, (5) वज्जि, (6) मल्ल, (7) चेदि (चाट), (8) वत्स, (9) कुरु, (10) पंचाल, (11) मत्स्य, (12) शूरसेन, (13) अश्मक, (14) अवन्ति, (15) गान्धार, (16) कम्बोज।

जैन ग्रन्थ 'भगवती सूत्र' में यह सूची कुछ भिन्न प्रकार से मिलती है : (1) अंग, (2) बंग, (3) मगध, (4) मलय, (5) मालव, (6) अच्छ, (7) वच्छ, (8) कच्छ, (9) पाध, (10) लाध, (11) वज्जि, (12) मोलि, (13) काशी, (14) कोशल, (15) अवाह, (16) सम्मुत्तर।

उपर्युक्त दोनों सूचियों में (1) अंग, (2) मगध (मगह), (3) वत्स, (वच्छ), (4) वज्जि, (5) काशी और (6) कोशल समान हैं। जैन- सूची के मालवा और मोलि बौद्ध- सूची के क्रमशः अवन्ति और मल्ल हैं। शेष जनपदों के नामों में अन्तर है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैन- सूची बौद्ध-सूची के बाद की है।

महाजनपद- काल के सोलह राज्य- बौद्ध- सूची के महाजनपदों की स्थिति निम्न प्रकार थी :

(1) काशी- इस काल में सबसे अधिक प्रसिद्ध जनपद काशी था। इसकी राजधानी काशी (आधुनिक वाराणसी) थी, जो वरुणा और असी नदियों के संगम पर बसी थी। 'गुत्तिल जातक' के अनुसार यह नगरी 12 योजन तक फैली हुई थी। राजा ब्रह्मदत्त के शासनकाल में काशी राज्य की शक्ति और समृद्धि विशेष बढ़ गई थी। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पिता अश्वसेन काशी के प्राचीन राजाओं में से एक थे।

(2) कोशल- आजकल का अवध पहले का कोशल जनपद था। महात्मा बुद्ध के समय में कोशल की राजधानी श्रावस्ती थी। श्रावस्ती के भग्नावशेष गोंडा जिले में सहेत- महेत गाँव में मिलते हैं। इससे पहले रामायण काल में कोशल की राजधानी अयोध्या रह चुकी थी। काशी

और कोशल दोनों जनपदों के राजाओं में परम्परागत वैमनस्य था। अन्त में कोशल-नरेश कंस ने काशी पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। कोशल-नरेश ने कपिलवस्तु के शाक्यों पर भी अपना अधिकार जमा लिया था। महात्मा बुद्ध ने **'सुत्त निकाय'** में कहा है- ''हिमालय के दक्षिण में कोशल के निवासी रहते हैं जो अत्यन्त समृद्ध एवं वैभव-सम्पन्न हैं। वे आदित्यवंशी हैं तथा जन्म से शाक्य हैं। मेरा जन्म उसी परिवार में हुआ है परन्तु मुझे सांसारिक भोग-विलास की इच्छा नहीं है। मैंने जनित आनन्द का परित्याग कर दिया है।'' कालान्तर में कोशल राज्य पर मगध राज्य का अधिकार हो गया था।

(3) अंग- यह जनपद मगध के पश्चिम में था। आधुनिक भागलपुर के समीप चम्पा इसकी राजधानी थी। प्रारम्भ में अंग एक शक्तिशाली जनपद था और इसके कुछ राजाओं ने मगध के राजाओं को पराजित किया। किन्तु कालान्तर में इस संघर्ष में मगध राज्य विजयी हुआ। महात्मा बुद्ध के समय में अंग मगध के अधीन हो चुका था।

(4) मगध- वर्तमान बिहार के पटना और गया जिले इस जनपद के अन्तर्गत थे। प्रारम्भ में इसकी राजधानी गिरिव्रज थी। यह राज्य अपने वैभव के लिए बहुत प्रसिद्ध था। महात्मा बुद्ध के पूर्व बृहद्रथ और जरासंघ मगध के दो विख्यात राजा थे।

(5) वज्जि- यह जनपद गंगा के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में स्थित था। आधुनिक काल में इसे बिहार राज्य का उत्तरी भाग कहा जा सकता है। यह राज्य आठ गण-राज्यों का संघ था जिनमें लिच्छवी, विदेह और ज्ञात्रिक विशेष महत्वपूर्ण थे। विदेह की राजधानी मिथिला, लिच्छवियों की राजधानी वैशाली और ज्ञात्रिकों की राजधानी कुण्डग्राम थी। कालान्तर में मगध के राजा अजातशत्रु ने इस जनपद को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था।

(6) मल्ल- यह जनपद वज्जि संघ के उत्तर में स्थित था। वज्जि संघ की भाँति मल्ल राज्य भी एक संघ राज्य था। इस संघ राज्य में मल्लों की दो शाखाएँ थीं। इनमें से एक की राजधानी कुशीनगर और दूसरे की पावा थी। कुशीनगर आधुनिक देवरिया जिले में कसिया और पावा आधुनिक पडरौना था। ये दोनों नगर अपने समय में बड़े समृद्धशाली नगर थे।

(7) चेटि अथवा चेदि- आधुनिक बुन्देलखण्ड तथा उसका सीमावर्ती प्रदेश इसके अन्तर्गत था। इसकी राजधानी शुक्तिमती अथवा सोत्थिवती थी। महाभारत काल के राजा शिशुपाल की मृत्यु के उपरान्त इस राज्य का ह्रास हो गया।

(8) वत्स अथवा वंश- काशी के दक्षिण और चेदि के उत्तर का भाग उस समय वत्स राज्य था। इसकी राजधानी कोशाम्बी अथवा कोसंबी थी जो इलाहाबाद से 45 किमी० दूर आधुनिक कोसम गाँव है। जब गंगा की भीषण बाढ़ से हस्तिनापुर नष्ट हो गया तो जनमेजय के प्रपौत्र निचक्षु ने कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया था।

(9) कुरु- वर्तमान दिल्ली तथा मेरठ के समीपवर्ती प्रदेश कुरु राज्य के अन्तर्गत थे। इसकी राजधानी 'इन्द्रप्रस्थ' थी। इस राज्य का दूसरा मुख्य नगर हस्तिनापुर था। पालि ग्रन्थों के अनुसार कुरु राज्य के शासक युधिष्ठिला गोत्र के थे। इस काल में कुरुओं की मान और प्रतिष्ठा काफी कम हो गई थी। कालान्तर में इस राज्य पर मगध ने अपना आधिपत्य कर लिया था।

(10) पंचाल- पंचाल प्रदेश में आधुनिक रुहेलखण्ड और उसके समीप के कतिपय जिले सम्मिलित थे। प्राचीन काल में यह जनपद दो राज्यों— उत्तरपंचाल और दक्षिणपंचाल में विभक्त था। उत्तरपंचाल की राजधानी 'अहिच्छत्र' तथा दक्षिणपंचाल की राजधानी 'काम्पिल्य' थी। दक्षिणपंचाल का राज्य उत्तरपंचाल की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली था। उत्तरपंचाल के एक सम्राट् का नाम दुर्मुख (दुम्मुख) था। 'उत्तराध्ययनं सूत्र' में एक अन्य राजा ब्रह्मदत्त को पृथ्वी का एक महान् राजा माना गया है। इसी ग्रंथ से यह भी ज्ञात होता है कि काम्पिल्य के राजा संजय ने राज्य का परित्याग कर जैन- धर्म ग्रहण कर लिया था।

(11) मच्छ अथवा मत्स्य- यह जनपद यमुना नदी के पश्चिम तथा कुरु राज्य के दक्षिण में स्थित था। इसकी राजधानी विराटनगर थी। बौद्ध साहित्य में इस जनपद के राजाओं का उल्लेख नहीं मिलता। महाभारत में शहाज नामक राजा का उल्लेख है जिसने चेदि तथा मत्स्य, दोनों राज्यों पर शासन किया था।

(12) शूरसेन- यह राज्य कुरु के दक्षिण और चेदि के उत्तर- पश्चिम में स्थित था। इसकी राजधानी मथुरा थी। महाभारत से ज्ञात होता है कि इस राज्य में यादव वंश ने बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। बौद्ध- ग्रन्थों में जिस अवन्तिपुत्र का उल्लेख मिलता है, वह इसी शूरसेन देश का राजा था। यह राजा बुद्ध का समकालीन था।

(13) अश्मक (अस्सक)- यह राज्य गोदावरी के तट पर स्थित था। इसकी राजधानी 'पोतन' अथवा 'पोतलिनगरी' थी। पुराणों के अनुसार इस राज्य के शासक इक्ष्वाकु वंश के थे। एक जातक से यह ज्ञात होता है कि किसी समय यह राज्य काशी राज्य के अधीन था। 'चुल्लकलिंग जातक' के अनुसार अरुण नामक राजा ने कलिंग देश पर विजय प्राप्त कर उसे अपने राज्य के अधीन कर लिया था। इस राज्य का अवन्ति से निरन्तर संघर्ष चलता रहा और कालान्तर में यह राज्य अवन्ति के अधीन हो गया।

(14) अवन्ति- आधुनिक मालवा प्राचीन काल का अवन्ति राज्य था। इस राज्य के दो भाग— उत्तरी अवन्ति तथा दक्षिणी अवन्ति थे। उत्तरी अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी तथा दक्षिणी अवन्ति की राजधानी महिष्मती (आधुनिक मान्धाता) थी। बुद्ध के समय अवन्ति राज्य एक अत्यधिक शक्तिशाली राज्य था। चण्डप्रद्योत इस राज्य का प्रसिद्ध शासक था। इस राजा ने कई बार वत्सराज उदयन को अपने अधीन करने का प्रयास किया था।

(15) गान्धार- यह राज्य आधुनिक अफगानिस्तान का दक्षिण- पूर्वी भाग था। इसमें पंजाब का पश्चिमी भाग और कश्मीर का कुछ दक्षिणी भाग सम्मिलित था। 'कुम्भकार जातक' के अनुसार इस राज्य की राजधानी तक्षशिला थी जो उस समय विद्या और कला का मुख्य केन्द्र थी। बुद्ध के समकालीन गांधारनरेश पुमकुसाती ने मगध के राजा बिम्बिसार के पास अपना दूत भेजा था। अवन्ति के राजा प्रद्योत ने इस राज्य से कई बार युद्ध किया था, किन्तु अन्त में वह पराजित हुआ था।

(16) कम्बोज- यह राज्य गान्धार राज्य का पड़ोसी राज्य था क्योंकि इन दोनों राज्यों के नाम बौद्ध ग्रन्थों में साथ- साथ प्रयुक्त हुए हैं। इस राज्य के दो प्रमुख नगर—राजपुत्र और द्वारका थे।

अन्य गणराज्य- उपर्युक्त सोलह जनपदों के अतिरिक्त उस समय भारत में अन्य दस गणराज्य विद्यमान थे। इन गणराज्यों का वर्णन प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में इस प्रकार प्राप्त होता है : (1) कपिलवस्तु के शाक्य (कपिलवस्थुवासी सक्या), (2) अल्लकप्प के बुली (अल्लकप्प का बुलयो), (3) केसपुत्त के कालाम, (4) सुंसुमार गिरि के भग्ग, (5) रामगाम के कोलिय (रामगाम का कोलिया), (6) पावा के मल्ल (पावेरय का मल्ल), (7) कुशीनारा के मल्ल (कोसीनार का मल्ल), (8) पिप्पलीवन के मोरिय (पिप्पलीवनिया मोरिया), (9) विदेह के राष्ट्र, (10) वैशाली के लिच्छवि।

जनपदों का शासन-विधान- बौद्ध-ग्रन्थों के अनुसार जनपद एक प्रधान की अध्यक्षता में शासित होता था। प्रधान को ही राजा कहा जाता था। इस सम्बन्ध में ज्ञात नहीं है कि प्रधान का चुनाव किस प्रकार और कितने दिन के लिए किया जाता था। जनपद का शासन एक संस्थापिका सभा द्वारा संचालित होता था। वह सभा संस्थागारों में मिलती थी जिसमें युवक, वृद्ध सभी उपस्थित होते थे। सदस्यों की संख्यापूर्ति गणपूरक नाम का पदाधिकारी करता था। उपस्थित सदस्य प्रस्तावित विषय पर ही अपने विचार प्रकट कर सकते थे। संस्थापिका सभा की कार्यवाही के लिए सदस्यों की न्यूनतम संख्या (कोरम) निश्चित थी। संस्थापिका सभा में जो वाचन होते थे, उसे ज्ञप्ति कहते थे। पहले वाचन को ज्ञप्ति प्रथमा, दूसरे को ज्ञप्ति द्वितीया और तीसरे को ज्ञप्ति तृतीया कहते थे। मतदान के लिए आजकल के बैलट के स्थान पर शलाका का प्रयोग होता था। ये शलाकाएँ लकड़ी की होती थीं। मतदान संग्रह करनेवाला 'शलाकाग्राहक' कहलाता था। सभा में पूर्ण अनुशासन रहता था जिसे 'विनय' कहा जाता था। इसी के आधार पर उसका सभापति 'विनयधर' कहलाता था।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. प्राचीन भारत के सोलह जनपदों के विषय में क्या जानते हैं ? प्रत्येक का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. छठीं शताब्दी ई० पू० के सोलह जनपदों का परिचय दीजिए। (1988)
3. छठीं शताब्दी ई० पू० में भारत की राजनीतिक दशा का वर्णन कीजिए। (1989)

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. छठीं शताब्दी ई० पू० चार राज्यों का वर्णन कीजिए। (1985)
2. जनपदों का शासन किस प्रकार संचालित होता था ?
3. बौद्धकालीन भारत के चार गणराज्यों का उल्लेख कीजिए। (1989)
4. सोलह महाजनपदों में किन्हीं चार जनपदों के नाम लिखिए। (1995)

☆

6
छठीं शताब्दी ई० पू० की धार्मिक क्रान्ति
(जैन- धर्म और बौद्ध- धर्म)

> **"भारत- भूमि तो परमार्थ की वेदी पर जीवन उत्सर्गित करने वाले महामनीषियों की मानो अक्षुण्ण खान- सी रही है। इस पुण्य- पावन देश में विश्वकल्याण के साधक महावीर तथा महात्मा बुद्ध जैसे महापुरुष हुए, जिनके द्वारा प्रज्वलित ज्योति युग- युग तक संसार को राह दिखाती रहेगी।"**
> - एक लेखक

धार्मिक क्रान्ति के कारण

ई० पू० छठीं शताब्दी धार्मिक क्रान्ति की शताब्दी थी। इस काल में अनेक नवीन सम्प्रदायों का उदय हुआ। इन सम्प्रदायों ने अपने- अपने ढंग से ईश्वर के अस्तित्व की व्याख्या की और निर्वाण या मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया। किन्तु प्रश्न यह है कि इस काल में भारत में धार्मिक क्रान्ति क्यों हुई या नवीन सम्प्रदायों का उदय क्यों हुआ ? इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कारणों का उल्लेख किया जा सकता है :

1. वैदिक धर्म में अनेक बुराइयों का समावेश- मूलतः वैदिक धर्म एक सीधा- सादा, सरल तथा आडम्बरहीन धर्म था। किन्तु उत्तर वैदिक काल में तथा उसके बाद में वैदिक धर्म का स्वरूप बहुत बदल गया। अब इस धर्म में केवल कर्मकाण्ड और औपचारिकताएँ ही शेष रह गई थीं। यही नहीं, जटिल रीति- रिवाजों, कर्म- काण्डों तथा आडम्बरों से पूर्ण यह धर्म अब जनता को आध्यात्मिक शान्ति देने में समर्थ नहीं था। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक था कि जनता किसी सरल धर्म की खोज करने के लिए उद्यत हो जाए।

धार्मिक क्रान्ति के कारण

1. वैदिक धर्म में अनेक बुराइयों का समावेश
2. पशु- बलि की बाहुल्यता
3. आम जनता वैदिक धर्म के सूक्ष्म सिद्धान्तों को समझने में असमर्थ
4. ब्राह्मणों का प्रभुत्व
5. शूद्रों की दयनीय दशा
6. उदार विचारों का उदय

2. पशु- बलि की बाहुल्यता- इस काल में पशु- बलि की बाहुल्यता थी। बलि में निरीह पशुओं की निर्मम हत्या होती थी। बलि को देखकर लोगों की आत्मा अधिक दुःखी थी। इस अमानवीय प्रथा के प्रति अधिकांश लोगों के मन में घृणा पैदा हो गयी थी।

3. आम जनता वैदिक धर्म के सूक्ष्म सिद्धान्तों को समझने में असमर्थ- वैदिक धर्म में निर्वाण- प्राप्ति का माध्यम ज्ञान था। किन्तु ज्ञान की सूक्ष्म और वैज्ञानिक व्याख्या जनसाधारण की समझ से बाहर की बात थी। फलतः लोग ऐसे धर्म की खोज में थे जिसके सिद्धान्त सरल हों और जिन्हें सरलता से अपनाया जा सके।

4. ब्राह्मणों का प्रभुत्व- वैदिक काल में ब्राह्मणों तथा पुरोहितों का समाज में प्रभुत्व था। यहाँ तक कि शासक भी इससे अछूते नहीं थे। कतिपय क्षत्रिय शासकों ने ब्राह्मणों के प्रभुत्व को चुनौती दी, इससे नये धर्म-सम्प्रदायों को प्रश्रय व प्रोत्साहन मिला।

5. शूद्रों की दयनीय दशा- इस काल में शूद्रों की बड़ी दयनीय दशा थी। साधारण बातों के लिए उन्हें अपमानित तथा प्रपीड़ित किया जाता था। यद्यपि शूद्र हिन्दू समाज के ही अभिन्न अंग थे, किन्तु उन्हें अस्पृश्य माना जाता था। फलतः शूद्रों में क्षोभ तथा असन्तोष का पैदा होना स्वाभाविक था। वे तत्कालीन वैदिक धर्म या ब्राह्मण धर्म के प्रभुत्व के विरोधी बन गये। वे भी एक ऐसे नवीन धर्म की आकांक्षा करने लगे जिसमें उन्हें सम्मानित स्थान प्राप्त हो। अतः उन्होंने नये सम्प्रदायों का स्वागत किया।

6. उदार विचारों का उदय- इस काल में उदार विचार वाले कुछ व्यक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। ये लोग पशु-बलि, खर्चीले कर्मकाण्डों, अन्धविश्वासों, ब्राह्मणों के प्रभुत्व तथा शूद्रों के प्रति अमानवीय व्यवहार के विरोधी थे। वे धर्म और समाज में सुधार की नयी लहर चाहते थे। इस प्रबुद्ध तथा उदार विचार वाले वर्ग के लोगों ने वैदिक धर्म का विरोध तथा नवीन सम्प्रदायों का स्वागत किया।

उपर्युक्त कारण नवीन धर्म सम्प्रदायों के उदय तथा विकास के लिए उपयुक्त वातावरण के निर्माण में बड़े सहायक सिद्ध हुए। इसीलिए ई० पू० छठीं शताब्दी में तीन सौ से अधिक नवीन धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। लेकिन इस धर्मों में जैन-धर्म तथा बौद्ध-धर्म का प्रमुख स्थान था। ये दोनों धर्म सरल, आडम्बरहीन, पशुबलि-विरोधी, यज्ञों व कर्मकाण्डों के विरोधी तथा तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में सुधार चाहने वाले थे। इन दोनों धर्मों ने निर्वाण या मोक्ष की सरल विधि जन-साधारण के सामने रखी और निर्वाण का मार्ग सबके लिए खोल दिया। इन दोनों धर्मों का क्रमशः उल्लेख इस प्रकार है :

(क) जैन-धर्म

महावीर स्वामी- साधारणतया समझा जाता है कि जैन-धर्म के संस्थापक भगवान् महावीर थे, परन्तु ऐसा नहीं है। महावीर स्वामी के पूर्व तेईस तीर्थंकर और हो चुके थे।[1] महावीर 24वें तथा अन्तिम तीर्थंकर थे। जैन-धर्म एक प्राचीन धर्म है, जिसके पहले तीर्थंकर ऋषभदेव थे जिनका उल्लेख वेद और पुराणों में भी मिलता है।

जन्म एवं वंश- महावीर का जन्म 599 ई० पू०[2] आधुनिक बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के वैशाली के निकट कुण्ड-ग्राम नामक स्थान पर ज्ञातृक-जाति के क्षत्रिय परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ[3] था जो कश्यप गोत्र के थे। उन्हें हमेशा क्षत्रिय कहा गया है, राजा नहीं। कल्पसूत्र में लिखा है, "सिद्धार्थ ने अपने पुत्र का जन्म-उत्सव धूम-धाम से मनाया। कुण्डपुर में शुल्क, कर (बलि) और प्रजा से वसूल किये जाने वाले भाग में छूट

---

1. 24 तीर्थंकरों के नाम इस प्रकार हैं-
   ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभु, सुविधिनाथ अथवा पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांश, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अर्हनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर।
2. कतिपय विद्वानों ने महावीर का जन्म 540 ई० पू० माना है।
3. सिद्धार्थ के अन्य नाम श्रेयाम्स और यशाम्स थे।

दी गई, क्रय- विक्रय स्थगित कर दिया गया था, किसी रक्षा- पुरुष को घरों में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं थी, छोटे- बड़े सभी अर्थ- दण्ड क्षमा कर दिये गये, ऋण उन्मुक्त कर दिये गये और सब बन्दी मुक्त कर दिए गये।'' महावीर की माता विदेह की विदेहदत्ता नाम की स्त्री थी, जिनके अन्य नाम त्रिशला और प्रियकारिणी भी थे। उनकी माता वशिष्ठ गोत्र की थी। महावीर का विवाह कुण्डिन्य गोत्र की यशोदा से हुआ। जैन- ग्रंथ आचारांग के अनुसार उनके एक पुत्री उत्पन्न हुई जिसका नाम अणोज्जा या प्रियदर्शना था। इसका विवाह जमालि नामक क्षत्रिय के साथ हुआ था।

महावीर के तीन नाम मिलते हैं- (1) वर्धमान, पिता ने यह नाम इसलिए रखा था, क्योंकि वे राग और द्वेष से रहित थे, (2) श्रमण, क्योंकि वे भय और शंका के स्थान में निश्चल रहते थे और दुःख- सुख से उदासीन थे, (3) अर्हत् भिक्षु महावीर, यह नाम 'देवों' का दिया था।

वैराग्य- जैन ग्रन्थ 'कल्पसूत्र' के अनुसार महावीर तीस वर्ष तक 'विदेह' नाम से गृहस्थाश्रम में रहे। माता- पिता की मृत्यु हो जाने के बाद अपने बड़े भाई नन्दिवर्धन और राज्य के प्रमुख व्यक्तियों की आज्ञा से गृहत्याग किया। अपनी शिविका में बैठकर धूम- धाम से सेना और सवारी के साथ कुण्ड ग्राम के प्रासादों के बीच होते हुए षण्डवन नाम के उद्यान में पहुँचकर अशोक वृक्ष के नीचे रुके और अपने सब अलंकार उतारकर ढाई दिन तक उपवास किया और केश नोच करके भिक्षु हो गये।
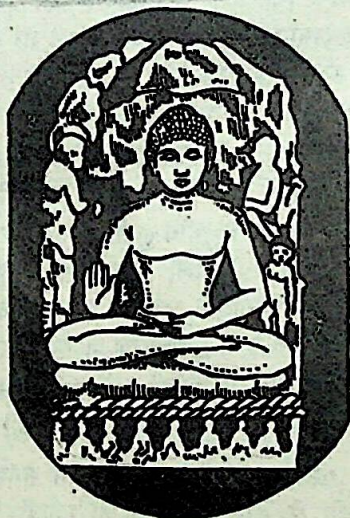
महावीर स्वामी

कैवल्य- प्राप्ति- जैन- ग्रंथ आचारांग के अनुसार महावीर कुम्भहार नामक गाँव में आये जहाँ तप करने लगे। आरम्भ में एक वर्ष और एक महीने तक वस्त्र पहनते रहे। बाद में वस्त्रों को सुवर्ण- बालुका नदी में फेंक दिया और हाथ में भिक्षापात्र लेकर नंगे घूमने लगे। इस प्रकार उन्होंने बारह वर्ष तक कठिन तपस्या की। यहां तक कि जीवित कीट, सरीसृप आदि उनके शरीर पर रेंगने लगे। तेरहवें वर्ष उन्हें जृम्भिका ग्राम के समीप ऋजुपालिका नदी के तट पर शाल वृक्ष के नीचे कैवल्य- (ज्ञान) प्राप्त हुआ। तभी से वे अर्हत् (पूज्य), जिन (विजयी), निर्ग्न्थ (बन्धनरहित), तीर्थङ्कर और महावीर कहलाए। 'जिन' शब्द से ही उनके अनुयायियों की 'जैन' संज्ञा पड़ी। तपस्या- काल में उन्होंने बहुत कष्ट उठाया। लोगों ने उन पर हमला किया, कुत्ते छोड़े, अपशब्दों का प्रयोग किया और मार- पीट तक की, किन्तु इन सबका महावीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उस काल में जब वे पहली बार नालन्दा गये तो वहाँ गोशाल संन्यासी के सम्पर्क में आये और छः वर्ष तक उसके साथ कठिन तपस्या कोल्लाग के पास पणित भूमि नामक स्थान में की। लेकिन इसके बाद उनमें मतभेद हो गया और वे एक- दूसरे के आलोचक बन गये। गोशाल ने महावीर

की आलोचना में इस प्रकार की एक युक्ति दी थी, "जैसे कोई वणिज लाभार्थी होकर अपना भाण्ड प्रदर्शित करके माल बेचने के लिए भीड़ बटोर लेता है, इसी ढंग पर श्रमण ज्ञातृपुत्र भी करते हैं।" दूसरी युक्ति में उसका कहना था कि "महावीर इसलिये जनता में आने से डरते हैं कि कहीं कोई अधिक विद्वान् भिक्षु उनसे प्रश्न न पूछ बैठे।" दूसरी ओर जैन- ग्रन्थों का गोशाल के विषय में यह कहना था कि 'उसने अपने भिक्षुओं को स्त्रियों के साथ समागम की विचित्र ढील दे रखी थी।' महावीर से अलग होकर गोशाल ने एक पृथक् सम्प्रदाय की स्थापना की जो आगे चलकर 'आजीवक' नाम से विख्यात हुआ।

जैन- संघ- जम्भिका (जृम्भिका) ग्राम में ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् महावीर स्वामी पावा आये। यहाँ पर इन्होंने सर्वप्रथम ग्यारह ब्राह्मणों को उनके शिष्यों सहित जैन- धर्म में दीक्षित किया। इसके पश्चात् उन्होंने अपने समस्त अनुयायियों को ग्यारह गणों (समूहों) में बाँट दिया तथा प्रत्येक गण का एक गणधर नियुक्त किया। गणधर उपर्युक्त ग्यारह ब्राह्मण ही थे। संघ के समस्त सदस्य 4 कोटियों में विभक्त थे- (1) भिक्षु, (2) भिक्षुणी, (3) श्रावक, (4) श्राविका। प्रथम दो कोटियाँ संसार- त्यागी व्यक्तियों की थीं तथा शेष दो गृहस्थ व्यक्तियों की थीं।

धर्म- प्रचार- महावीर ने अपने सिद्धान्तों को जनसाधारण तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। इस सम्बन्ध में स्वयं गोशाल ने उनके विषय में कहा था, "आरम्भ में अकेले भिक्षु रूप में विचरते थे, किन्तु अब वे अनेक भिक्षुओं के साथ हैं, उनमें से प्रत्येक को विस्तार से धर्म- उपदेश करते हैं।" महावीर स्वामी ने पैदल यात्रा करके अनेक कष्ट उठाए। उन्होंने अनेक बार मगध के राजा बिम्बिसार और अजातशत्रु से भेंट की और उन्हें उपदेश सुनाए। धर्म- प्रचार करने में उनको कुछ प्रमुख शिष्यों ने काफी योग दिया। इनमें (1) आनन्द, (2) कामदेव, (3) चुलानिपिया, (4) सुरदेव, (5) चुल्लसयग, (6) कुण्डकोलिय, (7) सदादलिपुत्त, (8) महासयग, (9) नन्दिनीपिया, (10) साल्हीपिया आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। महावीर के जीवन- काल में जैन- धर्म काफी प्रचलित हो गया था। जैन परम्परा के अनुसार उनके 14 हजार श्रमण, 36 हजार श्रमणियाँ, 1 लाख 59 हजार श्रावक और 3 लाख 18 हजार श्राविकाएँ थीं।

विहार- कल्पसूत्र के अनुसार महावीर ने पहला वर्षावास अस्थिक ग्राम में बिताया, तीन चातुर्मास्य चम्पा और पृष्ठिचम्पा में, बारह वैशाली और वाणियग्राम में, चौदह राजगृह और इसके बाहरी भाग (बाहिरिका) में, छः मिथिला में, दो भद्रिका में, एक आलभिका में, एक पणित- भूमि (वज्रभूमि) में, एक श्रावस्तीं और एक पावापुरी (पावा) में बिताया था।

मृत्यु- महावीर का धर्म- प्रचार- कार्य 30 वर्ष तक चला। अन्त में 72 वर्ष की आयु में राजगृह के निकट पावा नामक स्थान पर उन्होंने 527 ई० पू०[1] में निर्वाणपद प्राप्त किया। वर्तमान समय में पावा का दूसरा नाम पोखरपुर है और यह स्थान बिहारशरीफ स्टेशन से 9. 6 किमी० की दूरी पर स्थित है।

जैन- धर्म के सिद्धान्त- महावीर के अनुसार मोक्ष- प्राप्ति का साधन तप द्वारा कर्म का क्षय करना और अशुभ कर्मों का आस्रव रोकना है। इस धर्म की मुख्य बातें अग्रांकित हैं :

1. कतिपय विद्वानों ने महावीर की मृत्यु 468 ई० पूर्व माना है।

1. ईश्वर में अविश्वास- जैन धर्मानुयायी संसार के निर्माणकर्त्ता- पालनकर्त्ता तथा हर्त्ता ईश्वर में विश्वास नहीं करते। उनका यह विश्वास है कि यह सृष्टि अनादि और अनन्त है। वे लोग ईश्वर के स्थान पर तीर्थंकरों की पूजा करते हैं, जिनकी आत्माएँ सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पा गई हैं।

2. आत्मा के अस्तित्व एवं अमरत्व में विश्वास- जैन धर्मावलम्बी आत्मा के अस्तित्व एवं उसके अमरत्व में विश्वास करते हैं। उनकी दृष्टि में आत्मा सर्वद्रष्टा है और उसमें ज्ञान तथा क्रियाशीलता विद्यमान रहती है। शरीर से अलग रहकर भी वह सुख और दुःख का अनुभव करती है। वह प्रकाशमान है तथा स्वभाव से परिपूर्ण और निर्विकार है। केवल कर्म के बन्धन ही उसकी शक्ति को क्षीण कर देते हैं।

3. पंच महाव्रत- आत्मा को सांसारिक कर्म के बन्धनों से मुक्त करने के लिए जैन मतानुयायियों ने एक महत्वपूर्ण साधन 'पंचमहाव्रत' भी बतलाया है, जिसकी प्रमुख बातें निम्न हैं :

(क) अहिंसा महाव्रत- जान- बूझकर या बिना जाने- बूझे किसी भी प्रकार की हिंसा न होनी चाहिए। इसका सम्यक् रूप से पालन करने के लिए ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान क्षेपणा समिति तथा व्युत्संग समिति के नियमों का पालन करना चाहिए।

(ख) असत्य- त्याग महाव्रत- भाषण सदैव सत्य तथा मधुर हो। इस व्रत के पालन में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

(1) **अनुविम भाषी-** बिना सोचे- समझे नहीं बोलना चाहिए।
(2) **कोहं परिजानाति-** क्रोध आने पर मौन रहना चाहिए।
(3) **लोभं परिजानाति-** लोभ की भावना जाग्रत होने पर भाषण नहीं करना चाहिए।
(4) **भयं परिजानाति-** भयभीत होने पर भी असत्य न बोलना चाहिए।
(5) **हासं परिजानाति-** हँसी- मजाक में भी असत्य भाषण नहीं करना चाहिए।

(ग) अस्तेय महाव्रत- किसी दूसरे की किसी भी वस्तु को उसकी अनुमति के बिना ग्रहण करने की इच्छा न करे। इस महाव्रत के पालन में निम्नलिखित पाँच बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

(1) बिना आज्ञा के किसी के घर के भीतर न जाना चाहिए।
(2) गुरु की आज्ञा बिना भिक्षार्जित भोजन को ग्रहण न करना चाहिए।
(3) बिना अनुमति किसी के घर में निवास न करना चाहिए।
(4) किसी के घर में रहते समय बिना गृह- स्वामी की आज्ञा के उसकी किसी भी वस्तु का प्रयोग न करना चाहिए।
(5) यदि भिक्षु किसी घर में निवास कर रहा हो तो उस समय भी गृह- स्वामी की अनुमति के बिना उस घर में न रहना चाहिए।

(घ) ब्रह्मचर्य महाव्रत- जैन- धर्म के अनुसार पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना अति आवश्यक है। इस व्रत के पालन में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

(1) किसी नारी से बात न करे।

(2) किसी नारी को न देखे।

(3) नारी-संसर्ग का ध्यान भी न करे।

(4) अधिक भोजन न करे।

(5) जिस घर में कोई नारी रहती हो वहाँ निवास न करे।

(च) अपरिग्रह महाव्रत- इस महाव्रत के अनुसार जैन भिक्षुओं को किसी भी प्रकार का धन संग्रह न करना चाहिए, क्योंकि उससे आसक्ति की उत्पत्ति होती है। धन-धान्य, वस्त्राभरण सभी परित्याज्य हैं। इस व्रत के सम्यक् प्रकार पालन से मनुष्य अपने जीवन के चरम उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करने के योग्य बनता है।

4. पंच अणुव्रत- जैन धर्मानुसार गृहस्थ के लिए पाँच अणुव्रतों का पालन करना आवश्यक है। इनका प्रतिपादन इसलिए किया गया कि भिक्षुओं की भाँति गृहस्थ कठोर व्रतों का पालन नहीं कर सकेंगे। अणुव्रत निम्नलिखित हैं :-

(1) अहिंसाणु व्रत, (2) सत्याणुव्रत, (3) अस्तेयाणुव्रत, (4) ब्रह्मचर्याणुव्रत, (5) अपरिग्रहाणु व्रत।

पंच अणुव्रतों के आधारभूत सिद्धान्त उपर्युक्त लिखित पंचमहाव्रतों के समान ही हैं, केवल उनकी कठोरता और अतिवादिता ही इनमें नहीं है।

5. त्रिरत्न- जैन-धर्म में मोक्ष-प्राप्ति के लिए त्रिरत्न व्यवस्था है :

(1) सम्यक् ज्ञान- सम्यक् ज्ञान का अर्थ है- सच्चा और पूर्ण ज्ञान।

(2) सम्यक् दर्शन- सम्यक् दर्शन का तात्पर्य है- तीर्थङ्करों में पूर्ण विश्वास।

जैन-धर्म के सिद्धान्त

1. ईश्वर में अविश्वास
2. आत्मा के अस्तित्व एवं अमरत्व में विश्वास
3. पंच महाव्रत-
   (1) अहिंसा, (2) सत्य, (3) अस्तेय, (4) ब्रह्मचर्य, (5) अपरिग्रह महा व्रत
4. पंच अणुव्रत
5. त्रिरत्न-
   [1] सम्यक् ज्ञान
   [2] सम्यक् दर्शन
   [3] सम्यक् चरित्र
6. पाँच समितियाँ
7. तीन गुप्तियाँ
8. बाह्य एवं आभ्यन्तर तप
9. अनेकान्तवाद
10. स्याद्वाद
11. सल्लेखना

(3) सम्यक् चरित्र- सम्यक् चरित्र का अर्थ है— दैनिक जीवन में नैतिक चरित्र रखना।

6. पाँच समितियाँ- पाँच समितियाँ इस प्रकार हैं—

(1) ईर्या समिति- ऐसे मार्गों से चलना जहाँ कीट-कीटाणुओं के पैर से कुचलने का भय न हो।

(2) भाषा समिति- भाषण करते हुए मधुर तथा प्रिय भाषा बोलनी चाहिए।

(3) एषणा समिति- भोजन द्वारा किसी भी प्रकार के कीट-कीटाणु की हिंसा न हो।

(4) आदान क्षेपणा समिति- भिक्षु को अपनी सम्पूर्ण सामग्री का उपयोग करते समय यह देख लेना चाहिए कि उसके द्वारा किसी भी कीट-पतंग की हिंसा तो नहीं होती।

(5) व्युत्सर्ग समिति- ऐसे ही स्थान पर मल- मूत्र त्याग करना चाहिए जहाँ किसी भी कीट- कीटाणु की हिंसा न हो सके।

7. तीन गुप्तियाँ- मनोगुप्ति, वचोगुप्ति और कायगुप्ति, जिनके पालन से कर्मों को उत्पन्न करने वाले आस्रवों से छुटकारा मिलता है।

8. बाह्य एवं आभ्यन्तर तप- (अ) बाह्य तप इस प्रकार हैं :

(1) उपवास, (2) भोजन से क्रमशः निवृत्ति; (3) भिक्षुचर्या, (4) रसपरित्याग, (5) कठिन आसनों द्वारा शरीर को कष्ट देना, (6) इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखना।

(ब) आभ्यन्तर तप ये हैं :

(1) प्रायश्चित्त (पापों को स्वीकार करना), (2) विनय, (3) सेवा, (4) स्वाध्याय करना, (5) ध्यान, (6) शरीर से ध्यान हटाकर आसन में निश्चल रहना।

जैन- धर्म में अहिंसा का आधार यह है कि समस्त प्रकृति जो बिल्कुल जड़ है, वह भी प्राणयुक्त है। इस कारण समस्त बीज, अंकुर, पुष्प, अण्डे, गुफाएँ, ओस, कुहरा, ओले इत्यादि को प्राणी मानना चाहिए।

9. अनेकान्तवाद- मन में किसी का अनिष्ट न विचारना या बौद्धिक अहिंसा जैन- दर्शन का अनेकान्तवाद है। 'संसार में हमारा दृष्टिकोण सत्य है, शेष असत्य है।' यह विचार भी हिंसा है। जैन- धर्म की मान्यता है कि संसार के विभिन्न मत और विचारधाराएँ न तो पूर्ण सत्य हैं और न पूर्ण असत्य। अतः इस धर्म- दर्शन में किसी भी वस्तु या विचारधारा का विरोध नहीं मिलता। एक ही वस्तु एक ही समय में है या नहीं है, दोनों ही बातें सत्य हैं। उदाहरणार्थ, ईश्वर है और नहीं भी है, वृक्ष हिलता भी है और स्थिर भी है।

10. स्याद्वाद- अनेकान्तवाद के व्यापक सिद्धान्त का जिस भाषा में प्रकटीकरण हुआ है वही जैन- दर्शन का स्याद्वाद है। जैन- दर्शन नहीं कहता है कि 'यह सत्य है' वरन् यह कहता है 'स्यात् यह ठीक है।' स्याद्वाद का लक्षण ही यह है कि किसी भी सत्य को स्यात् कहकर प्रकट किया जाता है। यह स्यात् सात प्रकार का हो सकता है। जैसे- (1) है, (2) नहीं है, (3) है और नहीं है; (4) कहा नहीं जा सकता, (5) है, किन्तु कहा नहीं जा सकता। (6) नहीं है और कहा नहीं जा सकता (7) है, नहीं है और कहा नहीं जा सकता। जैन- दर्शन में इन्हें 'सप्तसंगी' का सिद्धान्त कहा गया है।

11. सल्लेखना- जैन सिद्धान्तों के अनुसार भौतिक तत्व का दमन करने के लिए शरीर को कष्ट देना आवश्यक है। स्वयं भगवान महावीर ने 12 वर्ष के भीषण शारीरिक कष्टों तथा तपस्या के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया था। मुनि विद्यानंदजी के अनुसार, ''जब पूर्ण वीतरागता का चरम उदय होता है तो शरीर के बन्धन से मुक्ति की प्रबल इच्छा प्रबल हो उठती है, तब जैन- निर्ग्रन्थ मुनि सल्लेखना (स्वेच्छा मृत्यु) द्वारा शरीर- बन्धन को काट देते हैं।'' इसी सल्लेखना की क्रिया को भ्रमवश अनेक विद्वानों ने आत्महत्या माना है। चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में एक सच्चे जैनी की भाँति श्रवणबेल गोला में अनशन करके सल्लेखना द्वारा शरीर त्याग कर मोक्ष प्राप्त किया था।

जैन भिक्षुओं के आदर्श- जैन- ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर जैन भिक्षुओं के आदर्शों का उल्लेख मिलता है। सन्दर्भस्वरूप यहाँ पर हम कुछ आदर्शों का उल्लेख प्रस्तुत करते हैं :

(1) "जिन वस्तुओं के साथ तुम्हारा पहले स्नेह रहा हो, उनसे स्नेह तोड़ दो। अब किसी नई वस्तु से स्नेह न करो। जो तुमसे स्नेह करते हैं उनसे भी स्नेह न करो। तभी तुम पाप और घृणा से मुक्त हो सकोगे।"

(1) "भिक्षु को चाहिए कि आत्मा के सब बन्धनों को काट दे। किसी वस्तु से घृणा न करे। किसी से स्नेह न करे। किसी प्रकार की मौज में अपने को न लगाये।"

(3) "जीवों के आनन्दों पर विजय प्राप्त करना बहुत कठिन है। निर्बल लोग उन्हें सुगमता से नहीं छोड़ सकते। पर जिस प्रकार व्यापारी लोग दुर्गम समुद्र के पार उतर जाते हैं, उसी प्रकार भिक्षुजन 'संसार' के पार उतर जाते हैं।"

(4) "स्थावर व जंगम किसी भी प्राणी को मन, वचन व कर्म से किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचानी चाहिए।"

(5) "भिक्षु को केवल अपनी जीवन-यात्रा के निर्वाह के लिए ही भोजन की भिक्षा माँगनी चाहिए। उसका भोजन सुस्वादु नहीं होना चाहिए।"

(6) "यदि सारी पृथ्वी भी किसी एक आदमी की हो जाए, तो भी उसे सन्तोष प्राप्त नहीं हो सकता। सन्तोष प्राप्त कर सकना तो बहुत कठिन है।"

(7) "जितना तुम प्राप्त करोगे, उतनी ही तुम्हारी कामना बढ़ती जायेगी। तुम्हारी सम्पत्ति के साथ-साथ तुम्हारी आकांक्षाएँ भी बढ़ती जायेंगी। तुम्हारी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए दो 'माश' भी काफी है, पर सन्तोष तो तुम्हारा (यदि तुम सम्पत्ति को बढ़ाते जाओ) एक करोड़ से भी नहीं हो सकता।"

जैन सभायें (संगीतियां)

प्रथम जैन सभा— यह सभा चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में 322-298 ई. पू. में पाटलिपुत्र में हुई। इसमें जैन धर्म के प्रधान भाग 12 अंगों का सम्पादन हुआ। यह सभा भद्रबाहु और सम्भूति विजय नामक स्थविरों के निरीक्षण में हुई थी।

द्वितीय जैन सभा— यह सभा छठीं शताब्दी (512 ई.) में देवर्धि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में गुजरात के वल्लभी नामक स्थान पर हुई। इसमें धर्म ग्रन्थों का अंतिम संकलन किया गया और इन्हें लिपिबद्ध किया गया।

जैन साहित्य— जैन साहित्य को 'आगम' कहा जाता है, जिसमें 12 अंग, 12 उपांग, 10 प्रकीर्ण, 6 छेदसूत्र, 4 मूलसूत्र, अनुयोग सूत्र व नन्दि सूत्र की गणना की जाती है। इनकी रचना महावीर स्वामी की मृत्यु के बाद विभिन्न संगीतियों में ई.पू. चौथी शती से छठीं शती ई. के मध्य हुई।

अंग (12)— जैन आगम में निम्न 12 अंगों का प्रमुख स्थान है : (1) आचारांग सुत्त, (2) सूयग दंग सुत्त (सुत्र कृतांग), (3) ठाणंग (स्थानांग), (4) समवायंग सुत्त, (5) भगवती सुत्त, (6) नयाधम्मकहा सुत्त (ज्ञाताधर्म कथा), (7) उवासगदसओसुत्त (उपासक दशा), (8) अंत गड्डदसाओं, (9) अणुत्तरोववाइय दसाओं (10) यदह्यवागरणाइ (प्रश्न व्याकरण), (11) विवागसुयम्, (12) दिट्टिवाय (दृष्टिवाद)।

उपांग (12)— अग्रलिखित 12 उपांगों में ब्रह्मांड का वर्णन, प्राणियों का वर्गीकरण, खगोल विद्या, काल विभाजन, मरणोत्तर जीवन का वर्णन आदि प्राप्त होते हैं। 12 उपांगों के नाम निम्नवत हैं :

(1) औपपातिक, (2) राजप्रश्नीय, (3) जीवाभिगम, (4) प्रजापना (5) जम्बूद्वीप

प्रज्ञप्ति, (6) चंद्र प्रज्ञप्ति, (7) सूर्य प्रज्ञप्ति, (8) निरयावलि, (9) कल्पावसंतिका, (10) पुष्पिका, (11) पुष्य चूलिका, (12) वृष्णि दशा।

प्रकीर्ण (10)— ये प्रमुख ग्रंथों के परिशिष्ट हैं :

(1) चतु:शरण, (1) आतुर प्रत्याख्यान, (3) भक्तिपरिज्ञा, (4) संस्तार, (5) तंदुल वैतालिक, (6) चंद्रवैधयक, (7) गणिविद्या, (8) देवेन्द्रस्तव, (9) वीरस्तव, (10) महाप्रत्याख्यान।

छेद सूत्र (6)— इनमें जैन भिक्षुओं के लिए उपयोगी विधि नियमों का संकलन है। इनका महत्व बौद्धों के विनयपिटक जैसा है। छ: छेदसूत्र इस प्रकार हैं : (1) निशीथ, (2) महानिशीथ, (3) व्यवहार, (4) आचार दशा, (5) कल्प, (6) पंचकल्प।

मूल सूत्र (4)— इनमें जैन धर्म के उपदेश, भिक्षुओं के कर्त्तव्य, विहार जीवन पथ नियम आदि का वर्णन है। चार मूल सूत्र इस प्रकार हैं : (1) उत्तराध्ययन, (2) षडावशयक, (3) दशवैकालिक, (4) पिण्डनिर्युक्ति या पाक्षिक सूत्र।

अनुयोगो सूत्र एवं नन्दि सूत्र— ये जैनियों के स्वतंत्र ग्रंथ तथा विश्वकोश हैं। इनमें भिक्षुओं द्वारा व्यवहार की जाने वाली प्राय: सभी बातें लिखी गई हैं।

उपर्युक्त सभी ग्रंथ श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जैनियों के लिये हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय के मतावलम्बी इन्हें प्रामाणिक नहीं मानते हैं। श्वेताम्बर अनुश्रुति के अनुसार महावीर की मृत्यु के 140 वर्ष बाद वल्लभी (गुजरात) में देवर्द्धि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में एक सभा हुई, जिसमें धार्मिक साहित्य को संकलित किया गया। इसके बाद हुई पाटलिपुत्र सभा (द्वितीय) में भी कुछ ग्रंथों का संकलन हुआ। दिगम्बर मतावलम्बी भद्रबाहु की शिक्षाओं को ही प्रामाणिक मानते हैं।

जैन-धर्म का प्रचार— महावीर के जीवन-काल में ही उनके मत का मगध तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में व्यापक प्रचार हो गया। मगध-नरेश बिम्बिसार, अजातशत्रु तथा उसके उत्तराधिकारी उदयिन ने इसके प्रचार में योगदान दिया। महावीर ने अपने जीवन-काल में एक संघ की स्थापना की जिसमें 11 प्रमुख अनुयायी सम्मिलित थे। ये गणधर कहे गये। इन्हें अलग-अलग समूहों का अध्यक्ष बनाया गया। नन्द राजाओं के काल में भी जैन धर्म की उन्नति हुई। हाथीगुम्फा अभिलेख से ज्ञात होता है कि नन्द राजा कलिंग से प्रथम 'जिन' की एक प्रतिमा उठा ले गया था। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में भी इस धर्म का विकास हुआ क्योंकि जैन परम्परा के अनुसार उसने जैन आचार्य भद्रबाहु की शिष्यता ग्रहण कर ली थी। उनके साथ वह अपने जीवन के उत्तरकाल में राज्य-त्याग कर दक्षिण में तपस्या करने चला गया था। जैन साहित्य में अशोक के पौत्र सम्प्रति को इस मत का संरक्षक बताया गया है। वह उज्जैन में शासन करता था। अत: यह जैन-धर्म का एक प्रमुख केन्द्र बन गया। जैनियों का दूसरा प्रमुख केन्द्र मथुरा में स्थापित हुआ जहाँ से अनेक अभिलेख, प्रतिमाएँ, मन्दिर आदि मिलते हैं। कुषाण-काल में मधुरा जैन-धर्म का एक समृद्ध केन्द्र था। कलिंग का चेदि शासक खाखेल भी जैनधर्म का महान् संरक्षक था। उसने जैन साधुओं के निर्वाह के लिए प्रभूत दान दिया तथा उनके निवास के लिये गुहा-विहार बनवाये थे। राष्ट्रकूट राजाओं के शासनकाल (9वीं शताब्दी) में दक्षिणी भारत में जैन-धर्म का काफी प्रचार हुआ। गुजरात तथा राजस्थान में जैन-धर्म 11वीं तथा 12वीं शताब्दी में अधिक लोकप्रिय रहा। इस प्रकार जैन-धर्म समस्त भारत में फैल गया। अपने संगठन की उत्कृष्टता तथा अनुयायियों की कट्टरता के कारण वह आज भी भारत में अपना अस्तित्व सुरक्षित किए हुए है।

जैन धर्म के प्रसार के कारण : जैन धर्म के शीघ्र प्रसार के निम्नलिखित कतिपय कारण थे :–

(1) महावीर ने संस्कृत की अपेक्षा साधारण बोलचाल की भाषा में अपने उपदेश दिए, जो जनसाधारण को शीघ्र ग्राह्य हुए।

(2) वर्गभेद एवं वर्णभेद को त्याग कर बिना किसी भेद-भाव के सबको समान भाव से उपदेश दिए।

(3) आत्मा एवं परमात्मा के रहस्यपूर्ण, गूढ़ तथा जटिल सिद्धान्तों की अपेक्षा सरल एवं व्यावहारिक नैतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जिससे सामान्य जनता शीघ्रता से आकृष्ट हुई।

(4) राजकीय आश्रय एवं संरक्षण भी प्राप्त हुआ।

(5) उत्साही जैन भिक्षुओं ने अपने धर्म का सक्रिय प्रचार किया।

जैन धर्म के ह्रास के कारण- जैन धर्म का विकास एवं प्रसार कतिपय विशिष्ट प्रदेशों में ही रहा। यह भारत से बाहर के देशों में नहीं फैल पाया। संक्षेप में, इस धर्म के ह्रास के निम्नलिखित कारण हैं :–

(1) जैनधर्म में आचार-विचार के नियम अत्यंत कठोर थे और अत्यधिक संयमपूर्ण तपस्या पर विशेष बल दिया गया था। प्रारम्भ में मुनियों एवं जनता ने इसे स्वीकार किया, किन्तु शीघ्र ही लोगों में उस कठोरता तथा संयमनिष्ठ के प्रति सहज विरोध पैदा हुआ और जैन धर्म के प्रति आकर्षण एवं रुचि समाप्त हो गयी।

(2) महावीर ने पंच व्रतों में अहिंसा के पालन पर सर्वाधिक बल दिया था, किन्तु दैनिक जीवन के समग्र व्यवहार में अहिंसा का ऐसा पालन कर सकना लगभग असंभव ही है।

(3) जैन धर्म के श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों में पारस्परिक मतभेद भी इस धर्म के ह्रास के कारण बने। दोनों सम्प्रदाय अपने-अपने पक्ष को मात्र श्रेष्ठ ही नहीं बताते थे, बल्कि एक-दूसरे की निंदा भी करते थे। इससे जैन धर्म के प्रचार को हानि पहुँची।

(4) प्रारम्भ में जैन मुनियों में धर्म प्रचार का काफी उत्साह रहा, किन्तु बाद में उनका यह उत्साह ही क्षीण हो गया। इसके अतिरिक्त मुनियों के चारित्रिक भ्रंश ने भी जैन धर्म को आघात पहुँचाया।

(5) जैन धर्म को उदार एवं दीर्घकालीन राजकीय संरक्षण का अभाव रहा। जिन राजाओं ने इस धर्म को संरक्षण दिया भी, वे छोटे-छोटे राज्यों के अधिपति थे। उनके संरक्षण का प्रभाव दूरगामी नहीं हो सका।

(6) जैन धर्म को अपने अभ्युदय एवं प्रसार में अनेक धर्मों से तीव्र प्रतिद्वन्द्विता का सामना करना पड़ा। उत्तर भारत में बौद्ध धर्म तथा दक्षिण भारत में शैव धर्म ने जैन धर्म पर भीषण प्रहार किये।

(7) जैन धर्म की नींव हिन्दू धर्म की दुर्बलताओं पर आधारित थी। हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान से स्वतः ही वह नींव खिसक गई और जैन धर्म ह्रास की ओर अग्रसर हो गया।

(8) युग के साथ-साथ धर्म के कतिपय तत्त्व भी परिवर्तित होते हैं। जैन धर्म में समयानुकूल परिवर्तन की यह क्षमता नहीं रही और वह अवनत हो गया।

भारतीय संस्कृति को जैन-धर्म की देन

(1) साहित्य के क्षेत्र में- जैन विद्वानों ने विभिन्न कालों में लोक-भाषाओं के माध्यम से अपनी कृतियों की रचना करके इनके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। प्राकृत, अपभ्रंश, कन्नड़, तमिल, तेलगू आदि में जैन साहित्य उपलब्ध है। प्राकृत भाषा को विकसित करने में जैन लेखकों के कार्य सराहनीय हैं। पूर्व मध्यकाल में हेमचन्द्र आदि विद्वानों ने काव्य,

व्याकरण, ज्योतिष, छन्दशास्त्र आदि विविध विषयों पर प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं म साहित्य लिखकर इनका बहुमुखी विकास किया। दक्षिण में कन्नड़ एवं तेलगू में भी इनके साहित्य हैं। तमिल ग्रन्थ 'कुराल' के कुछ भाग भी जैनियाँ द्वारा रचे गये हैं। इसके अतिरिक्त कुछ जैन ग्रन्थ संस्कृत में भी मिलते हैं जिनमें 'कल्पसूत्र' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस ग्रन्थ के तीन भाग हैं- प्रथम भाग में पृथक्-पृथक् 23 तीर्थंकरों की जीवनियाँ हैं। द्वितीय भाग में जैन भिक्षुओं के लिए नियमों का उल्लेख है तथा तृतीय भाग में जैन गान्धारों का क्रमानुसार वर्णन उपलब्ध होता है। 'परिशिष्ट पर्वन' जैन-धर्म का ग्रन्थ है जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जैन साहित्यकारों में हरिभद्र, सिद्धसेन, पटलिप्त, जयसिंह, नन्दी, पूज्यपाद तथा हेमचन्द्र का नाम उल्लेखनीय है।

(2) **कला के क्षेत्र में-** प्राचीन भारतीय कला एवं स्थापत्य-कला को विकसित करने में भी जैनियों का योगदान महत्वपूर्ण है। हस्तलिखित जैन ग्रन्थों में खींचे हुए चित्र पूर्व मध्य-युगीन चित्रकला के सुन्दर नमूने हैं। मध्यभारत, उड़ीसा, गुजरात, राजस्थान आदि से अनेक जैन-मन्दिर, मूर्तियाँ, गृहस्थापत्य आदि के उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं। उड़ीसा की उदयगिरि पहाड़ी से अनेक जैन-गुफाएँ मिलती हैं। खजुराहो, सौराष्ट्र , राजस्थान से भव्य जैन-मन्दिर प्राप्त होते हैं। खजुराहों में कई जैन तीर्थङ्करों, जैसे- पार्श्वनाथ, आदिनाथ आदि के मन्दिर हैं। राजस्थान के आबू पर्वत पर निर्मित जैन-मन्दिर कला की दृष्टि से अत्युत्कृष्ट है। कर्नाटक स्थित श्रवणवेलगोल नामक स्थान से भी कई जैन-मन्दिर मिलते हैं। जैनियों के अनेक मन्दिरों के चिह्न आज भी मिलते हैं जिनके ध्वंसावशेषों पर मस्जिदें खड़ी की जा चुकी हैं। सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण अजमेर में अढ़ाई दिन का झोपड़ा, दिल्ली के निकट कुतुबमीनार, कन्नौज, धार तथा अन्य स्थानों में बने भवन आदि हैं।

(3) **धर्म के क्षेत्र में-** धार्मिक क्षेत्र में अनेकान्तवाद (स्याद्वाद) का सिद्धान्त जैन-धर्म की महत्वपूर्ण देन है। यह विभिन्न मतों एवं सम्प्रदायों के बीच भेदभाव मिटाकर समन्वयवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त 'अहिंसा' के सिद्धान्त की प्रभावशाली पुनर्स्थापना भी जैन-धर्म की ही देन है। वास्तव में जैन-धर्म व्यष्टि और समष्टि, दोनों ही प्रकार के कल्याण की कामना करता है।

(4) **सामाजिक क्षेत्र में-** जैन-धर्म का भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। जाति-प्रथा को आघात पहुँचा तथा जाति-पाँति के कड़े बन्धन ढीले पड़ गये। ब्राह्मणों के आदर में कमी आई। साधारण जनता को समाज में फैले अन्धविश्वासों से हटाकर उचित मार्ग पर लगाया।

(ख) बौद्ध-धर्म

बुद्ध का जन्म एवं वंश- ढाई हजार वर्ष पूर्व वैशाख मास की पूर्णिमा को भूतल पर अवतरित होने वाले बुद्ध के विषय में स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, "सबका कल्याण उनकी प्रेरणा-शक्ति थी, उन्हें स्वर्ग की आकांक्षा, सम्पत्ति की एषणा नहीं थी। उन्होंने राज-पाट और सर्वस्व त्याग दिया तथा सागर के समान विशाल अन्तःकरण लेकर मानव और जीवमात्र के कल्याण के लिए भारत की गली-गली में वह भिक्षा की पुकार करते रहे।" महात्मा बुद्ध का जन्म 563 या 567 ई० पु०[1] लुम्बिनी-वन (आधुनिक रुम्मिनदेई) नामक ग्राम में हुआ था। उनके इस जन्म-स्थान की पुष्टि 250 ई० पू० में स्थापित अशोक के स्तम्भ से होती है, जिस पर वह लेख उत्कीर्ण है- 'हिद बुधे जाते सक्यमुनीति, हिद भगवै जातेति' अर्थात् यहाँ शाक्य मुनि बुद्ध उत्पन्न हुए थे, यहाँ भगवान उत्पन्न हुए थे।' बुद्ध के पिता का नाम शुद्धोदन था जो नेपाल की तराई के एक प्रदेश के राजा थे। इनकी राजधानी कपिलवस्तु थी। माता का नाम महामाया था जो प्रजापती गौतमी की बहन थीं। बुद्ध गौतम गोत्र के होने के कारण

1. बुद्ध की जन्म-तिथि में मतभेद है। सिंहली अनुश्रुति के अनुसार 623 ई० पूर्व और रमेशचन्द्र मजूमदार के अनुसार 566 ई० पू० है।

गौतम कहलाये। पालि ग्रंथ 'मज्झिम' में इस बात का उल्लेख है कि दस माह तक बोधिसत्व को गर्भ में रखने के बाद जब प्रसव का समय निकट आया तो रानी महामाया की इच्छा अपने मातृकुल के नगर देवदह में जाने की हुई। राजा ने अनुमति दे दी। रानी को पालकी में बिठाकर भेजा गया। मार्ग में लुम्बिनी उद्यान में शाल वृक्ष के नीचे बुद्ध का जन्म हुआ, किन्तु सात दिन बाद उनकी माता का देहान्त हो गया। उनका पालन-पोषण उनकी विमाता और मौसी महाप्रजापती गौतमी ने किया, जो उन्हें अपना ही स्तनपान कराती थी।

विवाह- बाल्य-काल से ही सिद्धार्थ (ज्ञान-प्राप्ति से पूर्व का नाम) एकांन्तप्रिय एवं चिंतनशील थे। अतः शुद्धोदन ने 18 वर्ष की आयु में ही आपका विवाह कोलियगण की अत्यन्त सुन्दर राजकुमारी यशोधरा से सम्पन्न कर दिया। यशोधरा के भद्दकच्छा, बिम्बा, गोपा आदि कई नाम थे। 'महावस्तु' के अनुसार गौतम को यशोधरा के पाणि-ग्रहण के लिए 50 शाक्य कुमारों के साथ आयुध कौशल-प्रदर्शन में भाग लेना पड़ा था।

महाभिनिष्क्रमण- यशोधरा ने एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया। लेकिन बुद्ध ने इसे 'बन्धन का जन्म हुआ' की संज्ञा दी। गौतम को दिन-प्रतिदिन यह अनुभव होने लगा कि वे माया के जाल में फँसते जा रहे हैं। इसी बीच उन्होंने क्रमशः एक वृद्ध, रोगी और शव का दर्शन किया। उनके अन्तःकरण से यह विचार स्फुटित हुआ "क्या मैं भी इसी प्रकार वृद्धावस्था प्राप्त करूँगा ? क्या मैं भी इसी प्रकार बीमार पड़ सकता हूँ ? क्या मेरी भी मृत्यु होगी ?" इसी विरक्ति-भावना में किसी शान्त संन्यासी के इन शब्दों ने मानो जलती आग में घी डालने का काम किया- "मैं श्रमण हूँ, एक संन्यासी हूँ। मैंने जन्म और मरण के डर से मोक्ष पाने के हेतु प्रव्रज्या ग्रहण की है।" अतः एक रात्रि को गौतम ने अपनी पत्नी और बच्चे को सोती हुई अवस्था में छोड़कर अन्तिम बार देखा और महल का त्याग कर अपने घोड़े कन्थक पर सवार होकर सारथि छन्दक के साथ नगर के बाहर चले गये। यह घटना उनकी आयु के 29वें वर्ष में हुई। अमोना नदी पार करके प्रातः काल सूर्योदय होने पर अनुवैनेय नगर में पहुँचे। वहाँ उन्होंने बहुमूल्य वस्त्र और अश्व छन्दक को सौंप दिया और केश काटकर गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया। छन्दक से विदा लेकर इधर-उधर भ्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। गौतम का गृहपरित्याग 'महाभिनिष्क्रमण' के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है।

पालि ग्रन्थ मज्झिम-निकाय में '**महाभिनिष्क्रमण**' का एक सरल रूप बुद्ध के मुख से ही कहलाया गया है- "ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व मैंने सोचा कि घरेलू जीवन कष्टदायक और कठोर है। घर में रहकर पूर्णतः पवित्र और धार्मिक जीवन नहीं बिताया जा सकता। मैं अभी युवक था। मेरे बाल उस समय काले ही थे जब मैंने अपने सिर के बाल और दाढ़ी मुँड़ दिए। मैंने पीले वस्त्र पहन कर अपने माता-पिता को रोते छोड़कर घर का त्याग किया और बाहर निकल पड़ा।"

बुद्धत्व-प्राप्ति- गृह-त्याग करने के पश्चात् गौतम 7 दिन अनूपिय नामक ग्राम के बाग में व्यतीत किये। इसके पश्चात् उन्होंने सत्य और ज्ञान की खोज में मगध राज्य की राजधानी में आलारकालाम और उद्दक रामपुत्त नाम के दो ऋषियों से 'उत्तम, श्रेष्ठ और शान्तिमय जीवन' के लिए भेंट की, किन्तु उनको शान्ति प्राप्त नहीं हुई। तब उन्होंने मगध जनपद के 'उरुवेल' नामक स्थान पर निरंजना नदी के तट पर अपने पाँच अन्य साथियों के साथ कठोर तप किया, जिसके कारण उनका शरीर अस्थिपंजर मात्र रह गया, लेकिन ज्ञान-प्राप्ति नहीं हुई। अतः वे चावल, दही आदि फिर लेने लगे[1] जिससे उनके पाँच ब्राह्मण साथियों ने यह सोचकर कि गौतम तप के मार्ग से विरत होकर, भोग का मार्ग ग्रहण करना चाहते हैं, घृणा से उनका साथ छोड़ दिया। अब गौतम ने गया में एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर अखण्ड समाधि लगाई। वे सात दिन और सात रात अखण्ड समाधि में स्थित रहे। आठवें दिन

1. जातक में कहा गया है कि उरुवेला के सेनानी की पुत्री सुजाता ने बुद्ध को भोजन कराया।

वैशाख पूर्णिमा पर उन्हें हृदय में सत्य के प्रकाश का अनुभव हुआ। इसी समय से वे 'बुद्ध' कहलाने लगे। बुद्ध का अर्थ होता है 'ज्ञानी'। इस प्रकार अपनी आयु के 35वें वर्ष में गौतम ने बुद्धत्व प्राप्त किया। बुद्धत्व प्राप्त करने की घटना इतिहास में 'सम्बोधि' के नाम से प्रसिद्ध है।

धर्मचक्र प्रवर्तन- ज्ञान-प्राप्ति के बाद बुद्ध ने सोचा था कि अपना ज्ञान पहले अपने दो गुरुओं-आलार और उद्दक को बताऊँ पर वे उस समय तक जीवित न थे। तब उन्हें पाँच भिक्षुओं का ध्यान आया जिन्होंने उन्हें त्याग दिया था। इस समय वे पाँचों भिक्षु बनारस के ऋषिपत्तन (सारनाथ) के मृगदाव में ठहरे हुए थे। अंतः बुद्ध ने सारनाथ में उन पाँच भिक्षुओं से भेंट की। उनके सामने अपना पहला उपदेश दिया और वे उनके शिष्य हो गए। वे पाँचों शिष्य[1] पंचवग्गीय•भिक्षु (पाँच में विचरने वाले भिक्षु) कहलाते हैं। यह घटना 'धर्मचक्र प्रवर्तन' के नाम से प्रसिद्ध है।

बौद्ध संघ- इसी समय से बुद्ध ने उपदेश देना और भिक्षु बनाना प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे जब उनके शिष्यों की संख्या 60 तक पहुँच गई तो उन्होंने बौद्ध संघ का निर्माण किया और समस्त भिक्षुओं को आदेश दिया, "भिक्षुओ, लोगों के हित के लिए, लोगों के कल्याण के लिए, देवों और मानवों के कल्याण के लिए घूमो, तुम लोगों में से कोई दो एक साथ न जाये। तुम लोग उस धर्म का प्रचार करो जो आदिमंगल, मध्यमंगल और अन्तमंगल है।"

धीरे-धीरे संघ की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई कि बौद्ध-धर्म ग्रहण करने वाला हर व्यक्ति संघ में प्रवेश करते समय कहता था :

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।

अर्थात्- 'मैं बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में जाता हूँ।'

महात्मा बुद्ध के समस्त अनुयायी भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक और उपासिका आदि चार भागों में विभाजित थे।

महापरिनिब्बाण सुत्तान्त का कथन है कि बुद्ध ने सम्पूर्ण भिक्षुओं को एकत्र कर उन्हें निम्न सात अपरिहरणीय धर्मों का उपदेश दिया था :

(1) एक साथ एकत्र होकर बहुधा अपनी सभाएँ करते रहना।

(2) एक ही बैठक करना, एक ही उत्थान करना और एक ही संघ के सब कार्यों को सम्पन्न करना।

(3) संघ-विहित नियमों का उल्लंघन नहीं करना, संघ-विरुद्ध नियमों का अनुसरण नहीं करना। जो भिक्षुओं के पुराने नियम चले आ रहे हैं, उनका सदा पालन करना।

(4) जो अपने में धर्मानुरागी, चिरप्रव्रजित,संघ के पिता, संघ के नायक, स्थविर भिक्षु हैं, उनका सत्कार करना, उन्हें बड़ा मानकर उनका पूजन करना, उनकी बात को सुनने तथा ध्यान देने योग्य समझना।

(5) पुनः पुनः उत्पन्न होने वाली तृष्णा के वश में नहीं आना।

(6) वन की कुटियों में निवास करना।

(7) सदा यह स्मरण रखना कि भविष्य में केवल ब्रह्मचारी ही संघ में सम्मिलित हों, और सम्मिलित हुए लोग पूर्ण ब्रह्मचर्य के साथ रहें।

धर्म-प्रचार- धर्म-प्रचार करने बुद्ध कपिलवस्तु भी गये, वहाँ उन्होंने पुत्र राहुल और भाई नन्द को संघ की शरण में ले लिया। परिवार के नापित (नाई) उपालि तक ने उनकी शिष्यता स्वीकार कर ली। श्रावस्ती के अनाथपिण्डक सुदत्त नामक व्यापारी ने बौद्ध-विहार के निर्माण हेतु जेतवन नामक उद्यान को उतनी स्वर्ण मुद्राएँ देकर खरीद लिया, जितने से

1. बुद्ध के प्रथम पाँचों शिष्यों के नाम इस प्रकार थे- कोडञ्ञ, वप्प, भद्दिय, महानाम और अस्सजि।

जंतवन की समस्त भूमि ढँक जाती।[1] बुद्ध के धर्म-प्रचार स्वरूप कोशल के राजा प्रसेनजित तथा वहाँ के अन्य लोग उनके शिष्य बन गये। बुद्ध ने अपनी विमाता महाप्रजापती गौतमी को शिष्य बनाने के अनुरोध पर कहा था, "सबको संघ में शामिल होने की आवश्यकता नहीं, अपनी जगह भी रहकर ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। अब तक हमने स्त्रियों को संघ में नहीं लिया।" उन्होंने स्त्रियों के सम्बन्ध में यहाँ तक कहा था, "स्त्रियों की ओर देखना ही नहीं चाहिए, यदि उन्हें देख लिया जाए तो उनसे बात नहीं करनी चाहिए और यदि वे स्वयं बात करें तो सतर्क रहना चाहिए।" परन्तु शिष्य आनन्द के विशेष आग्रह पर महाप्रजापती गौतमी प्रथम भिक्षुणी बनी। इस अधिकार से लाभ उठाकर महाप्रजापती गौतमी की पुत्री नन्दा तथा स्वयं महात्मा बुद्ध की भार्या यशोधरा ने भी प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। लेकिन भविष्य के दुष्परिणामों को सोचते हुए बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनन्द से कहा-"आनन्द ! तथागत-प्रवेशित धर्म-विनय में नारियाँ घर से बेघर होकर प्रव्रज्या न पातीं तो यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी होता, सद्धर्म एक हजार वर्ष ठहरता, परन्तु चूँकि आनन्द ! नारियाँ घर से बेघर हुई हैं, इसलिए अब यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी न होगा, सद्धर्म पाँच सौ वर्ष ही ठहरेगा।" बुद्ध की यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुई।

महापरिनिर्वाण- महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन के शेष 45 वर्षों में बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार किया। 'जैसे कोई औंधे को सीधा कर दे, ढँके को खोल दे, भूले को मार्ग दिखा दे, अन्धकार में तेल का दीपक रख दे जिससे कि आँख वाले रूप को देखें, वैसे ही भगवान ने अनेक पर्याय से धर्म को प्रकाशित किया।' 80 वर्ष की आयु में उन्हें अपना अन्त दिखाई दिया। जब वे वैशाली के समीप बेलुवन में रोग से पीड़ित थे, वे भविष्यवाणी के रूप में बोले, "आज से तीन महीने बाद तथागत परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे।" अस्वस्थ अवस्था में बुद्ध पावा आये। वहाँ चुन्द नामक लोहार के यहाँ ठहरे। बुद्ध ने कहा,- "हे चुन्द, सुकरमद्दव मुझे परोसो और खादनीय भोजनीय सामग्री भिक्षुसंघ को दो।" इसके पश्चात् उन्हें पेचिश हो गई। बुद्ध का यही अन्तिम भोजन था। इसी रोग अवस्था में वह मल्ल गणतंत्र की राजधानी कुशीनगर (देवरिया जिले का कसिया) पहुँचे। वहाँ उन्होंने आनन्द से कहा- "आनन्द ! आओ मेरे लिये उत्तर की ओर सिर करके मंच तैयार करो, मैं क्लान्त हूँ, लेटूँगा।" अन्तिम घड़ी में उन्होंने एकत्रित भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा- "तुम सोचते होगे, तुम्हारा आचार्य तुमसे जुदा हो रहा है, पर ऐसा मत सोचो। जो सिद्धान्त और नियम मैंने तुम्हें बताए हैं, जिनका मैंने प्रचार किया है, वही तुम्हारे आचार्य रहेंगे और वे सदा जीवित रहेंगे।" इसके पश्चात् उन्होंने कहा- "भिक्षुओ ! अब तुमसे और कुछ नहीं कहना है, केवल यही कहना है कि जो कुछ बना हुआ है, वह क्षय होगा। निर्वाण के लिये प्रमादरहित होकर अपने-आप प्रयत्न करो।"[2] इन शब्दों के साथ ही बुद्ध की आत्मा निर्वाण (483 या 487 ई० पू०) को प्राप्त हुई। यह घटना **'महापरिनिर्वाण'** के नाम से विख्यात है।

महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् उनके पुनीत अवशेष आठ भागों में विभक्त किये गये और उन पर भिन्न-भिन्न स्थानों पर आठ स्तूप बनवाये गये। बौद्ध साहित्य में स्तूप निर्माताओं के नाम इस प्रकार हैं : (1) मगध नरेश अजातशत्रु, (2) वैशाली के लिच्छवि, (3) कपिलवस्तु के शाक्य, (4) अल्लकप्प के बुलिय, (5) रामगाम के कोलिय, (6) वेठदीप के ब्राह्मण, (7) पावा के मल्ल और (8) पिप्पलिवन के मौर्य।

---

1. इस दान का उल्लेख भरहुत की पाषाणमूर्ति पर इस प्रकार किया गया है- 'जेतवन अनथपेदिको देति कोटि समूव्ययेन केता।'

1. "Now monks, I have nothing more to tell you but all that is composed liable to decay strive, after salvation energetically."

महात्मा बुद्ध के प्रमुख शिष्य- महात्मा बुद्ध के असंख्य अनुयायियों में आनन्द, सारिपुत्र, मौदगल्यायन, उपालि, मुनीति, देवदत्त, अनुरुद्ध, अनाथपिंडक सुदत्त, बिम्बिसार और प्रसेनजित आदि परमप्रिय शिष्य थे जिन्होंने बौद्ध-धर्म के प्रचार में अकथनीय सहयोग दिया।

बौद्ध-धर्म के सिद्धान्त

अथवा

महात्मा बुद्ध के उपदेश एवं शिक्षाएँ

भोग-विलास और महलों के सुख के बीच रहकर भी जीवन के कुछ कठोर सत्यों, जैसे- जन्म, जरा, रोग, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता से बुद्ध अत्यन्त प्रभावित हुए थे। अतः उनकी ऐसी धारणा बन गई कि जब तक मानव अपना ध्यान इस ओर से हटाने का प्रयत्न नहीं करेगा, उस समय तक उसे निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकता। बुद्ध के उपदेशों एवं शिक्षाओं में दार्शनिक विचारों का समन्वय था। उन्होंने मानव को मध्य मार्ग बताया कि शरीर को कठोर तपस्या से क्लेश न दो और न काम-सुख में लिप्त रहो। उन्होंने सबसे पहले सारनाथ (वाराणसी) में अपने पाँचों शिष्यों को 'आर्य सत्य' का ही उपदेश एवं शिक्षाएँ दीं।

(1) चार आर्य सत्य- उनके चार आर्य सत्य इस प्रकार हैं :

(क) दुःख- बुद्ध के मतानुसार यह संसार दुःखमय है- जो जन्म, जरा, रोग, मृत्यु, शोक, विलाप, चिन्ता तथा निराशा आदि के रूप में प्रकट होता है। प्रत्येक मनुष्य दुःखों से ग्रसित है।

(ख) दुःख समुदय- बुद्ध ने बतलाया कि दुःख का कुछ न कुछ कारण अवश्य ही होता है। जैसे- मृत्यु का कारण जन्म है। यदि जन्म न हो तो मृत्यु का प्रश्न ही न उठे। राग और सुख-भोग की कामना से ही पुनर्जन्म होता है।

(ग) दुःख निरोध- बुद्ध ने यह बताया कि प्रत्येक दुःख का निवारण भी हो सकता है। जब त्याग की भावना आने से तृष्णा का अन्त हो जाता है तब मनुष्य को निर्वाण पद प्राप्त हो जाता है।

(घ) दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा-अष्टांगिक मार्ग- उन्होंने तृष्णा और सांसारिक दुःखों का अन्त करने के लिए एक मार्ग का प्रतिपादन किया, जो 'अष्टांगिक मार्ग' कहलाता है । इसमें निम्नलिखित बातें सम्मिलित हैं :

1. **सम्यक् दृष्टि-** माया-मोह का त्याग कर उचित दृष्टि रखना।
2. **सम्यक् संकल्प-** उचित वस्तुओं का संकल्प करना।
3. **सम्यक् वाक् -** सत्य भाषण करना।
4. **सम्यक् कर्मान्त-** अच्छे कर्म करना।
5. **सम्यक् आजीव-** ईमानदारी से जीविका चलाना।
6. **सम्यक् व्यायाम या उद्यम-** समुचित उद्यम करना।

7. सम्यक् स्मृति- उचित वस्तुओं का सदैव स्मरण करना।

8. सम्यक् समाधि- चित्त को एकाग्रता प्रदान करना।

(2) दस शील- अष्टांग के अतिरिक्त महात्मा बुद्ध ने नैतिक आचरण के लिए दस शील बतलाये, जो निर्वाण- प्राप्ति में आवश्यक थे। उनके दस शील इस प्रकार थे :

[क] अहिंसा, [ख] सत्य, [ग] अस्तेय [चोरी न करना], [घ] अपरिग्रह [सम्पत्ति का परित्याग], [ङ] ब्रह्मचर्य व्रत, [च] संगीत और नृत्य का त्याग, [छ] अंजन, फूल और सुवासित द्रव्यों का त्याग, [ज] असामयिक भोजन का त्याग, [झ] सुखद शय्या का त्याग, [ञ] कामिनी और कंचन का त्याग।

बौद्ध- धर्म के सिद्धान्त

1. चार आर्य- सत्य- [क] दुःख, [ख] दुःख समुदय, [ग] दुःख निरोध, [घ] दुःख- निरोध- गामिनी प्रतिपदा- अष्टांगिक मार्ग
2. दस शील
3. वेदों की प्रामाणिकता, यज्ञ एवं बलि में अविश्वास
4. कर्मवाद एवं पुनर्जन्मवाद में विश्वास
5. अनीश्वरवाद

उक्त शीलों में प्रथम पाँच गृहस्थियों को करना चाहिए। साधु- महात्माओं और भिक्षुओं को समस्त शीलों का पालन करना अनिवार्य था। बुद्ध के ये संदेश सबके लिए है। नर और नारी, युवा और वृद्ध, अमीर और कंगाल सभी समान रूप से उन पर आचरण कर सकते हैं।

(3) वेदों की प्रामाणिकता, यज्ञ एवं बलि में अविश्वास- महात्मा बुद्ध वेदों की प्रामाणिकता एवं बलि में विश्वास नहीं करते थे। यज्ञों के सम्बन्ध में एक बार उन्होंने अपने प्रियजनों से कहा था, ''आप कहते हैं कि धर्म के नाम पर मैं अपने परिवार में प्रचलित वे बलि, यज्ञादि, व्रतोत्सव करूँ जिनसे इच्छित फल प्राप्त होता है; तो मेरा कहना है कि मैं इन यज्ञों को नहीं मानता क्योंकि मैं ऐसे सुख के लिए किंचित् भी चिंतित नहीं, जो दूसरे को दुःख देकर मिलता हो।'' बलि के सम्बन्ध में उन्होंने एक राजा से कहा था, ''यदि बकरे और बच्चे की बलि चढ़ाने से तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति में सहायता मिलती है तो निश्चित रूप से आदमी की बलि तुम्हारा अधिक कल्याण करेगी, अतः मेरी ही बलि चढ़ाओ।'' बुद्ध का वैदिक देवी- देवताओं के अस्तित्व के सम्बन्ध में कोई विश्वास नहीं था।

(4) कर्मवाद एवं पुनर्जन्म में विश्वास- बुद्ध का विश्वास था कि मनुष्य इस संसार में रहकर जो भी कर्म करता है, उन कार्यों का फल उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। आत्मा प्रत्येक बार अनेक शरीर धारण करती है और कर्मों के अनुसार दण्डित अथवा पुरस्कृत होती है। ईश्वर और आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करते हुए बुद्धजी पुनर्जन्म में विश्वास करते थे। इस सम्बन्ध में उनका कहना था कि पुनर्जन्म भी कर्म के नियम से संचालित होता है। बोधिसत्वों के रूप में बुद्ध के सहस्रों जन्मों का वर्णन मिलता है।

(5) अनीश्वरवाद— बुद्धजी अनीश्वरवादी थे। वह इस झंझट में फँसे ही नहीं कि ईश्वर है या नहीं। ईश्वर के अस्तित्व में प्रश्न किये जाने पर वे मौन ही रहे। न उन्होंने 'यह कहा कि वह है और न यही कहा कि वह नहीं है। एक बार उन्होंने ईश्वर के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था, "ईश्वर यदि कहीं है, तो वह भी कर्म के बन्धनों में बँधा हुआ है तथा वह किसी को दण्डित करने अथवा पुरस्कृत करने में स्वतन्त्र नहीं है।"

बौद्ध धर्म के महासम्मेलन या संगीतियां

प्रथम— गौतम बुद्ध की मृत्यु के कुछ ही काल पश्चात् राजगृह की सप्तपर्ण गुहा में पहली बौद्ध संगीति महाकस्सप की अध्यक्षता में आहूत की गई। इस संगीति का उद्देश्य बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों और संघ के नियमों को निर्धारित करना और लिपिबद्ध करना था।

द्वितीय— संघ के अनुशासन और नियम बनाने के लिये शिशुनाग वंश के शासक कालाशोक के शासन काल में वैशाली के कुसुमपुरी विहार में द्वितीय बौद्ध संगीति का आयोजन हुआ। इस सभा में भिक्षुओं के दो वर्ग– स्थविर और महासांघिक बन गये।

तृतीय— तीसरी बौद्ध संगीति मौर्य सम्राट अशोक के शासन काल में मोग्गलिपुत्त तिस्स की अध्यक्षता में पाटलिपुत्र में आयोजित हुई। इसमें पिटकों के दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्वों का निरूपण हुआ। विदेशों में धर्म प्रचारक भेजे गये।

चतुर्थ— यह संगीति सम्राट कनिष्ठ के राज्यकाल में कश्मीर के कुण्डलवन में वसुमित्र की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। इस सभा में बौद्ध धर्म महायान एवं हीनयान में बंट गया।

बौद्ध साहित्य— गौतम बुद्ध के बाद उनकी शिक्षाओं को विभिन्न बौद्ध संगीतियों में संकलित कर तीन पिटकों (पिटारियों) में विभाजित किया गया : (1) विनय पिटक, (2) सुत्त पिटक, (3) अभिधम्म पिटक। इन्हें सम्मिलित रूप में 'त्रिपिटक' की संज्ञा दी गई। त्रिपिटक पालि भाषा में रचित हैं।

1. विनय पिटक— इसमें संघ संबंधी नियमों, दैनिक आचार-विचार व विधि-निषेधों का संग्रह है, जिसके निम्न भाग हैं :

(क) पातिमोक्ख (प्रतिमोक्ष)— इसमें अनुशासन संबंधी विधानों तथा उनके उल्लंघन पर किये जाने वाले प्रायश्चितों का संकलन है।

(ख) सुत्तविभंगि— इसमें यातिमोक्ख के नियमों पर भाष्य प्रस्तुत किये गये हैं। इसके दो भाग हैं : **महाविभंग** तथा **भिक्खुनी विभंग**। प्रथम में बौद्ध भिक्षुओं तथा द्वितीय में भिक्षुणियों हेतु विधि निषेध वर्णित हैं।

(ग) खन्धक— इसमें संघ के जीवन संबंधी विधि निषेधों का विस्तार से वर्णन है, जिसके **महावग्ग** और **चुल्लवग्ग** नामक दो भाग हैं।

(घ) परिवार

2. सुत्त पिटक— इसमें बौद्ध धर्म के सिद्धान्त तथा उपदेशों का संग्रह है। इसमें पाँच

निकाय आते हैं : (i) दीघ्घ निकाय, (ii) मज्झिम निकाय, (iii) संयुक्त निकाय, (iv) अंगुत्तर निकाय, (v) खुद्दक निकाय। प्रथम चार में बुद्ध के उपदेश वार्तालाप रूप में दिये गये हैं और पांचवां पद्यात्मक है।

3. अभिधम्म पिटक— यह पिटक प्रश्नोत्तर रूप में है और इसमें दार्शनिक सिद्धान्तों का संग्रह है। इसमें सात ग्रंथ सम्मिलित हैं— धम्म-संगणि, विभंग, धातु कथा, पुग्गल पंचति, कथा-वत्थु, यमक तथा पटठानं। अभिधम्म पिटक सबसे बाद की रचना है, जो मौर्य सम्राट अशोक के काल में आयोजित तृतीय बौद्ध संगीति में संकलित की गयी।

त्रिपिटकों के अतिरिक्त पालि भाषा में लिखित अन्य बौद्ध ग्रन्थों में नागसेन कृत **'मिलिन्दपन्हो'** तथा सिंहली अनुश्रुतियाँ— **'द्वीपवंश'** व **'महावंश'** (सिंहल या लंका का इतिहास) उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत बौद्ध ग्रन्थ— संस्कृत बौद्ध लेखक तथा सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय के चिंतक अश्वघोष की तीन प्रसिद्ध रचनायें हैं—**'बुद्धचरित'**, **'सौन्दरानन्द'** तथा **'सारिपुत्र प्रकरण'**। इनमें प्रथम दो महाकाव्य तथा अंतिम नाटक है। संस्कृत में ही लिखित **'महावस्तु'** तथा **'ललितविस्तार'** में महात्मा बुद्ध के जीवन तथा **'दिव्यावदान'** में परवर्ती मौर्य शासकों एवं शुंग राजा पुष्यमित्र शुंग का उल्लेख मिलता है।

बौद्ध-धर्म के अभ्युत्थान के कारण

छठीं शताब्दी ई.पू. में होनेवाले क्रान्तिकारी धार्मिक आन्दोलनों में बौद्ध-धर्म अत्यधिक लोकप्रिय होकर शीघ्र उत्तरी और दक्षिणी भारत में फैल गया। यहाँ तक कि विदेशों में बर्मा, तिब्बत, श्रीलंका, चीन, जापान, हिन्द-चीन, मध्य-एशिया, कम्बोज आदि देशों में बड़ी शीघ्रता से फैला। बौद्ध-धर्म के व्यापक प्रचार के निम्नलिखित कारण हैं :

(1) बुद्ध का आकर्षक व्यक्तित्व— बुद्ध के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा आकर्षण था कि सभी लोग उनके उपदेशों की बड़ी लगन से सुनते थे। बुद्ध ने स्वयं अपने जीवन के 45 वर्षों तक इस धर्म का प्रचार किया। "उन दिनों जब उनका [बुद्धजी] यश चोटी पर पहुँचा हुआ था और सारे देश में उनके नाम की निगती सर्वोच्च महापुरुषों में होती थी, जिनके सामने राजा भी सिर झुकाते थे, कोई भी उन्हें सड़कों या गलियों में द्वार-द्वार भिक्षा माँगते देख सकता था और बिना कुछ कहे, दृष्टि नीचे किये वे चुपचाप प्रतीक्षा करते रहते जब तक कि कोई उनके उस पात्र में भोजन के कुछ कौर न डाल देता था।".

(2) बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों की शाश्वतता— बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों ने अपनी शाश्वतता के कारण समाज में हृदयग्राही स्थान बना लिया। जन-साधारण की भाषा का प्रयोग तथा प्रचार करने की शैली ने इस धर्म के व्यापक प्रचार में बड़ा सहयोग किया। बुद्ध कहा करते थे, "कोई बुद्धिमान व्यक्ति जो सच्चा, स्पष्टवक्ता और ऋजु स्वभाव का हो, मेरे समीप आवे, तो मैं उसे उपदेश करूँगा और यदि वह उपदेश के अनुसार आचरण करेगा तो अपने आपको जानने के लिए उसे केवल सात दिन लगेंगे।"

(3) मध्यम मार्ग का अनुसरण— बुद्धजी ने ज्ञान-प्राप्ति के लिए सभी लोगों को मध्यम मार्ग अपनाने को कहा। यह मार्ग न कठिन तपस्या का था और न विलासिता का, बल्कि यह

बीच का मार्ग था। "लोग आचार और विचार की पवित्रता पर विशेष बल दें।" अतः लोगों का स्वभावतः इस धर्म की ओर आकर्षण पैदा हुआ और बौद्ध-धर्म का प्रसार बड़े वेग से हुआ।

(4) छुआछूत का बहिष्कार- बिना किसी भेद-भाव के बौद्ध-धर्म का द्वार सबके लिये समान रूप से खुला हुआ था। इस धर्म के द्वारा सभी लोग निर्वाण-प्राप्ति कर सकते थे। यही कारण है कि सभी जाति के लोग इस धर्म की ओर आकर्षित हुए।

(5) संघों द्वारा सहयोग- बौद्ध-धर्म के व्यापक प्रचार में बौद्ध-संघों ने बड़ा सहयोग प्रदान किया। बौद्ध-संघों के विहार देश के विभिन्न भागों में बने थे, जिनमें रहने वाले बौद्ध-भिक्षु घूम-घूमकर इस धर्म का प्रचार करते थे। भिक्षुओं के सरल, पवित्र तथा त्यागमय जीवन को देखकर जनता अधिक प्रभावित होती थी।

(6) विभिन्न सम्राटों का सहयोग- बौद्ध-धर्म को भारत के कुछ सम्राटों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। बुद्ध के समकालीन राजाओं ने इस धर्म को स्वीकार कर इसके प्रचार में बड़ा सहयोग दिया। उसके बाद अशोक, कनिष्क तथा हर्ष ने इसके प्रसार में अत्यधिक सहयोग प्रदान किया। अशोक ने स्वयं इस धर्म को स्वीकार कर भारतीय प्रचारकों को श्रीलंका, बर्मा, चीन आदि देशों में भेजा। अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को श्रीलंका भेजा। कनिष्क ने बौद्ध-धर्म के मतभेदों को दूर करने के लिए कश्मीर में एक विराट सभा का आयोजन किया। हर्ष के समय उसकी राजधानी कन्नौज में बौद्ध-भिक्षुओं की एक विशाल सभा हुई। इस प्रकार सम्राटों के संरक्षण में बौद्ध-धर्म की बड़ी प्रगति हुई।

बौद्ध-धर्म के अभ्युत्थान के कारण

1. बुद्ध का आकर्षक व्यक्तित्व
2. बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों की शाश्वतता
3. मध्यम मार्ग का अनुसरण
4. छुआछूत का बहिष्कार
5. संघो द्वारा सहयोग
6. विभिन्न सम्राटों का सहयोग
7. बौद्ध-विद्वानों तथा दार्शनिकों का प्रयास
8. बौद्ध-धर्म की सरलता

(7) बौद्ध विद्वानों तथा दार्शनिकों का प्रयास- भगवान् बुद्ध की मृत्यु के बाद विभिन्न बौद्ध विद्वानों तथा दार्शनिकों ने इस धर्म के प्रचार में बड़ा सहयोग दिया। इन लोगों ने राजगृह तथा वैशाली में बौद्ध-भिक्षुओं का सम्मेलन किया।

(8) बौद्ध-धर्म की सरलता- बुद्धजी ने जिस मध्यम मार्ग का अनुसरण करने का उपदेश दिया, वह कठिन नहीं था। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि ऐसे व्यावहारिक नियम थे जिन्हें जन-साधारण को भी पालन करने में विशेष कठिनाई नहीं थी। बुद्धजी ने सत्कर्म और सदाचार पर अत्यधिक जोर दिया था और इनका पालन करना सबके लिये सरल था।

बौद्ध-धर्म के ह्रास के कारण

(1) बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों में परिवर्तन- बुद्ध की मृत्यु के बाद महायान शाखा के लोगों ने मूर्तिपूजा की प्रथा आरम्भ कर दी। वे बुद्ध तथा बोधिसत्वों की मूर्तियाँ निर्मित कर उनकी पूजा करने लगे। कालान्तर में सिद्धियों के प्रदर्शन होने लगे जबकि बुद्ध ने स्वयं इस सम्बन्ध में आज्ञा नहीं दी थी। उनका कहना था, "चमत्कारों के प्रदर्शन को मैं भयावह

समझता हूँ। इसलिए इन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं करता, घृणा की दृष्टि से देखता हूँ और उनकी बात से मुझे लज्जा आती है।''

(2) सम्राटों के सहयोग का अभाव- आगे चलकर इस धर्म के प्रचार में सम्राटों का सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। गुप्तकालीन सम्राटों ने इस धर्म के प्रति पूर्ण उपेक्षा दिखाई और हिन्दू-धर्म को पूर्ण संरक्षण प्रदान किया।

(3) संघ में स्त्रियों का प्रवेश- बुद्ध संघ में स्त्रियों को शामिल करने के पक्ष में बिल्कुल नहीं थे। उन्होंने सूजे पैरों से धूल में लथपथ और रोती हुई द्वार के बाहर आनेवाली विमाता महाप्रजापती गौतमी को भी तीन बार संघ में लेने से इन्कार कर दिया था। लेकिन अपने शिष्य आनन्द के विशेष आग्रह पर स्त्रियों का प्रवेश स्वीकार कर लिया। फिर भी दुःखी होकर उन्होंने शिष्य से यह भविष्यवाणी की थी, **''आनन्द ! यदि तथागत प्रवेशित धर्म-विनय में नारियाँ घर से बेघर होकर प्रव्रज्या न पातीं तो वह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी होता । सद्धर्म एक हजार वर्ष ठहरता । परन्तु चूँकि आनन्द ! नारियाँ घर से बेघर हुई हैं, इसलिये अब यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी न होगा, सद्धर्म पाँच सौ वर्ष ही ठहरेगा।''** बुद्ध की यह भविष्यवाणी आगे चलकर अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई।

बौद्ध-धर्म के ह्रास के कारण

1. बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों में परिवर्तन
2. सम्राटों के सहयोग का अभाव
3. संघ में स्त्रियों का प्रवेश
4. हिन्दूधर्म का पुनरुत्थान
5. विदेशी आक्रमण
6. विचारकों, दार्शनिकों एवं संगठनकर्त्ताओं का अभाव
7. राजपूत राजाओं द्वारा उपेक्षा

(4) हिन्दूधर्म का पुनरुत्थान- हिन्दू-धर्म के पुनरुत्थान ने बौद्ध-धर्म को बहुत चोट पहुँचाई। हिन्दू-धर्म ने बुद्धजी को विष्णु का अवतार मानकर बौद्ध-धर्म को अपने में मिलाने का प्रयास किया। ब्राह्मण धर्म में शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट ने नई जागृति पैदा कर दी। भक्तिमार्गी सन्तों ने भी बौद्ध-धर्म के प्रभाव को बहुत कम कर दिया।

(5) विदेशी आक्रमण- हूणों और मुसलमानों के आक्रमणों से बौद्ध-धर्म को विशेष आघात पहुँचा। आक्रमणकारियों ने मन्दिरों, विहारों को खूब लूटा और उनको विध्वंस भी किया। उन्होंने बहुत से बौद्धों को मौत के घाट उतार दिया और बहुत से बौद्धों ने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया। इस प्रकार विदेशी आक्रमणों से बौद्ध-धर्म को बहुत आघात लगा।

(6) विचारकों, दार्शनिकों एवं संगठनकर्त्ताओं का अभाव- बुद्ध की मृत्यु के बाद बौद्ध-धर्म में कोई ऐसा विचारक तथा दार्शनिक नहीं हुआ, जो बौद्ध-धर्म में आने वाले दोषों को दूर कर सकता और उसके सुधार के ठोस कदम उठाया होता। इस धर्म में कोई योग्य संगठनकर्ता भी नहीं हुआ जो हिन्दू-धर्म के सम्मुख इसे पतन की ओर से बचा सकता।

(7) राजपूत राजाओं द्वारा उपेक्षा- आखेटप्रिय राजपूत राजाओं ने बौद्ध-धर्म के प्रति तनिक भी रुचि नहीं दिखाई। विभिन्न सिद्धान्तों एवं आन्तरिक मतभेदों के कारण वे इस धर्म की ओर आकर्षित नहीं हुए।

जैन-धर्म तथा बौद्ध-धर्म की समानता तथा विषमता

जैन-धर्म और बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों, उपदेशों एवं शिक्षाओं का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि दोनों धर्मों में पर्याप्त समानताएँ एवं विषमताएँ विद्यमान हैं।

दोनों धर्मों में समानता- दोनों धर्मों में निम्न समानतायें हैं :

[1] दोनों धर्मों की उत्पत्ति उत्तर भारत में हुई और दोनों के प्रचारक क्षत्रिय राजकुमार थे।

[2] दोनों वेदों को प्रमाण नहीं मानते और कर्मकांड के विरोधी थे।

[3] दोनों बलि-प्रथा के विरोधी थे।

[4] दोनों धर्मों ने ईश्वर के प्रति उदासीनता दिखाई।

[5] दोनों धर्मों ने वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया।

[6] दोनों की प्रचार-भाषा जनसाधारण द्वारा बोली जानेवाली पालि भाषा थी, संस्कृत भाषा नहीं।

[7] दोनों ने अहिंसा पर जोर दिया।

[8] दोनों ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया।

[9] दोनों ही कर्म-सिद्धान्त को मानते थे।

[10] दोनों ने ब्राह्मणवाद के विरुद्ध आन्दोलन किया।

[11] दोनों ने संघ-व्यवस्था की स्थापना कर अपने-अपने धर्म का प्रचार किया।

[12] दोनों धर्मों के अनुयायी उपासक एवं साध्वी, दो भागों में विभक्त थे।

[13] दोनों ने जन-विश्वासों को प्रश्रयं दिया।

[14] दोनों धर्मों के प्रचारकों ने मोक्ष-प्राप्ति पर विशेष जोर दिया।

दोनों धर्मों में विषमता- दोनों धर्मों में निम्नलिखित प्रमुख विषमतायें हैं :

[1] बौद्ध-धर्म 'अनात्मवाद' को मानता है परन्तु जैन-धर्म 'आत्मवाद' अर्थात् वस्तु में जीव का निवास मानता है।

[2] जैन-धर्म शरीर-यातना को विशेष गौरव प्रदान करता है जबकि बौद्ध-धर्म विलास और तप के बीच के मध्यम मार्ग को मानता है।

[3] जैन-धर्म, बौद्ध-धर्म की अपेक्षा अहिंसा पर विशेष बल देता है।

[4] जैन-धर्म की अपेक्षा बौद्ध-धर्म में संघ-व्यवस्था का विशेष महत्व है।

[5] बौद्ध-धर्म आत्मा के अस्तित्व के विषय में मौन है, जबकि जैन-धर्म आत्मा के अस्तित्व को मानता है।

[6] जैन-धर्म का प्रचार मुख्यतः वैश्य जाति में ही हुआ, जबकि बौद्ध-धर्म जनसाधारण का धर्म बन गया।

[7] जैन-धर्म की अपेक्षा बौद्ध-धर्म को राजकीय संरक्षण अधिक प्राप्त हुआ।

[8] जैन-धर्म का प्रचार केवल भारत में हुआ, लेकिन बौद्ध-धर्म का प्रचार विदेशों में भी हुआ।

[9] जैन-धर्म के अनुयायी आज भी भारत में विद्यमान हैं, जबकि बौद्ध-धर्म का भारत से सर्वथा लोप हो गया।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि दोनों धर्मों में पर्याप्त समानताएँ होते हुए भी आश्चर्यजनक विषमताएँ विद्यमान हैं। **मोनियर विलियम** ने ठीक ही लिखा है, "जैन-धर्म और बौद्ध-धर्म को एक पिता की दो सन्तान के रूप में समझना चाहिए जिनका जन्म लगभग एक ही समय में हुआ था। यद्यपि इनकी विशेषताएँ अलग-अलग हैं तथापि इनमें एक मजबूत पारिवारिक सादृश्य है।"

भारतीय संस्कृति को बौद्धधर्म की देन

बौद्धधर्म बड़ा ही क्रान्तिकारी धर्म था। इस धर्म का भारतीयों के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक-सभी क्षेत्रों पर व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ा।

(1) राजनीतिक क्षेत्र में- बौद्ध-धर्म को राजकीय धर्म बनने का श्रेय प्राप्त है। अशोक, कनिष्क, हर्ष आदि सम्राटों ने इस धर्म को स्वीकार किया और इसी के सिद्धान्तों के अनुसार शासन किया। राजनीतिक क्षेत्र में सबसे बड़ी देन अहिंसा की है, जिसके कारण भारतीय राजाओं को रक्तपात से घृणा हो गयी। बौद्ध-धर्म के प्रभाव का ही परिणाम था कि कलिंग-युद्ध के बाद अशोक ने कभी भी युद्ध न करने का संकल्प किया और इस प्रकार साम्राज्यवादी नीति का त्याग किया। बौद्धधर्म ने जो शांति का उपदेश दिया। उसी की पुकार आज भी विश्व में हो रही है। हैवेल के अनुसार, "भारत को एक राष्ट्र के रूप में संगठित करने का श्रेय बौद्धधर्म को उसी प्रकार है जिस प्रकार सैक्सनी के छोटे-छोटे राज्य को संगठित करने का श्रेय ईसाई धर्म को है।" आज भी विश्व के प्रत्येक राष्ट्र को बौद्ध-धर्म के दिये अहिंसा, शान्ति और लोक-सेवा के सन्देश को अपनाना है।

भारतीय संस्कृति को बौद्ध-धर्म की देन

1. राजनीतिक क्षेत्र में
2. सामाजिक क्षेत्र में
3. धार्मिक क्षेत्र में
4. कला-क्षेत्र में
5. संघ-व्यवस्था का प्रादुर्भाव
6. जन-साहित्य का विकास
7. मूर्ति-पूजा का प्रारम्भ
8. बौद्धिक स्वतन्त्रता का जन्म
9. जन-सेवा तथा मानव-प्रेम का विकास
10. विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार

(2) सामाजिक क्षेत्र में- भारतीय समाज पर बौद्ध-धर्म का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। यद्यपि बुद्ध ने खुलकर जाति-पाँति पर आघात किया, फिर भी संघ का द्वार सभी के लिए खुला था। उन्होंने शिष्यों को आदेश दिया था कि सभी लोग सभी स्थानों में भ्रमण करते हुए यह सन्देश दो कि "निर्धन और धनी, नीच और ऊँच सभी एक हैं, और जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में समा जाती हैं, उसी प्रकार इस धर्म में सभी जातियाँ एक हो जाती हैं।" यह थी बौद्ध-धर्म की समानता और जनतन्त्रवाद की पृष्ठभूमि जहाँ ब्राह्मण और शूद्र, राजा और रंक सभी समान थे। इस प्रकार बौद्धधर्म ने सामाजिक क्षेत्र में एक क्रान्ति पैदा कर दी। स्वयं बुद्ध भगवान् ने वेश्याओं, नीच जातियों और ब्राह्मणों आदि सभी का आतिथ्य स्वीकार किया था।

बुद्धजी ने सदाचार पर बहुत जोर दिया था। परिमाणतः त्याग, आत्मसंयम, अहिंसा आदि उच्च आदर्शों ने भारतीय समाज के नैतिक स्तर को अत्यन्त ऊँचा उठ दिया। महायानवालों ने बोधिसत्व के रूप में लोकसेवा का उच्च आदर्श जनता के सम्मुख रखा। बोधिसत्व अपनी मुक्ति की चिन्ता नहीं करते थे, बल्कि उनका ध्यान प्रत्येक समय अन्य व्यक्तियों के दुःखों का अन्त करने की ओर रहता था।

(3) धार्मिक क्षेत्र में- वैदिक धर्म जनसाधारण का धर्म न रहकर ब्राह्मण धर्म हो गया था, जिसमें यज्ञ, आडम्बर और कर्मकाण्ड आदि की प्रधानता थी। बौद्ध-धर्म ने सरल, रोचक प्रचार-शैली अपनाकर जन-साधारण को अपनी ओर आकृष्ट किया। हिन्दू-धर्म की भक्तिमार्ग शाखा ने भी बौद्ध-धर्म की तरह पवित्रता, सत्य, अहिंसा आदि पर विशेष जोर

दिया। एक बार बुद्ध से कर्मकाण्ड के स्वीकार किये जाने की बात कही गयी थी, तो उन्होंने उत्तर दिया था- "आप कहते हैं कि धर्म के नाम पर मैं अपने परिवार में प्रचलित वे बलि, यज्ञादि, व्रतोत्सव करूँ जिनसे इच्छित फल प्राप्त होता है तो मेरा कथन है कि मैं इन यज्ञों को नहीं मानता, क्योंकि मैं ऐसे सुख के लिए किंचित् भी चिन्तित नहीं जो दूसरे को दुःख देकर मिलता हो।" इस प्रकार यज्ञ आदि की प्रधानता कम होने लगी और बौद्ध-धर्म का धार्मिक क्षेत्र में विशेष प्रभाव पड़ा।

(4) कला-क्षेत्र में- बौद्ध-धर्म के द्वारा कला के क्षेत्र में अत्यधिक विकास हुआ। गुहा-कला का प्रारम्भ इसी काल से हुआ। बौद्ध-धर्म की महायान शाखा ने गान्धार शैली के कलाकारों को मूर्तिकला और चित्रकला के लिए विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया। यदि बुद्ध की मूर्ति और उनके चित्रों में श्रद्धा न उत्पन्न की गई होती, तो गान्धार की कला ने उससे आधी भी उन्नति न की होती जितनी कि उसने की। बौद्धस्तूपों और विहारों के निर्माण से कलाओं को विकास का पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ। बौद्धकालीन कला हिन्दुओं की स्थापत्य-कला से बहुत श्रेष्ठ है। अजन्ता की उच्चकोटि की चित्रकला बुद्ध के जीवन की विभिन्न घटनाओं का निरूपण करती है।

(5) संघ-व्यवस्था का प्रार्दुभाव- बौद्धों ने बौद्ध-प्रचार के लिए संघ-व्यवस्था को जन्म दिया। बौद्ध-धर्म के जन्म के पूर्व भारतीय सन्त-महात्माओं का कोई संघ नहीं था। बौद्ध-संघ के साधु भिक्षु कहलाते थे। ये विहारों में रहकर बौद्ध-धर्म का घूम-घूमकर प्रचार करते थे। हिन्दुओं ने भी कुछ परिवर्तन कर इस संघ-व्यवस्था को अपनाया। बाद में साधु-संन्यासी भी अखाड़े के रूप में संघ बनाकर रहने लगे। इस प्रकार बौद्ध-धर्म द्वारा धर्म-प्रचार के लिए संघ-व्यवस्था का जन्म हुआ।

(6) जन-साहित्य का विकास- बौद्धों का बौद्ध साहित्य जन-साधारण की भाषा पालि में उपलब्ध है। बुद्ध की मृत्यु के बाद बौद्ध-धर्म-प्रचारकों ने इस धर्म के उपदेशों का प्रचार पालि भाषा के माध्यम से किया। बुद्ध भगवान के चौरासी सहस्र व्याख्यानों को त्रिपिटकों के रूप में पालि भाषा में संग्रह किया गया। अतएव इससे पालि भाषा के विकास में बड़ा बल मिला। ब्राह्मणों ने भी वैदिक संस्कृत की दुरूहता का अनुभव किया जिससे लौकिक संस्कृत-साहित्य का प्रार्दुभाव हुआ।

(7) मूर्ति-पूजा का प्रारम्भ- ऐसा विश्वास किया जाता है कि बौद्ध-धर्म के महायान सम्प्रदाय से ही मूर्ति-पूजा का प्रार्दुभाव हुआ, क्योंकि इससे पूर्व भारत में मूर्ति-पूजा का कोई स्थान नहीं था। बौद्ध लोगों ने बुद्ध तथा बोधिसत्वों की मूर्तियों का निर्माण कर उनकी पूजा करना आरम्भ कर दिया। हिन्दू-धर्म की भक्तिमार्ग शाखा ने भी कालान्तर में बौद्ध-धर्म से प्रभावित होकर देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनाकर उनकी पूजा-अर्चना आरम्भ कर दी और मन्दिरों का निर्माण किया।

(8) बौद्धिक स्वतन्त्रता का जन्म- ब्राह्मण धर्म ने वेदों को देववाणी कहा था जिसका विरोध असम्भव था। लेकिन बुद्ध ने वेदों की प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की और जन-साधारण को बौद्धिक स्वतन्त्रता के पाठ की शिक्षा दी। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि किसी बात को स्वीकार करने के पूर्व उसे तर्क की कसौटी पर कसकर देख लो। भारतीय समाज की अनेक रूढ़िवादी पम्पराओं के बन्धनों को बुद्धजी ने खोल दिया और स्वतन्त्रतापूर्वक विचार तथा मनन करने की शिक्षा प्रदान की। इसका प्रभाव ब्राह्मण धर्म पर भी पड़ा।

(9) जन-सेवा तथा मानव-प्रेम का विकास- बुद्धजी ने अपने कार्यों द्वारा जन-सेवा तथा मानव-प्रेम का विकास किया। कहा जाता है कि वुद्ध ने श्रावस्ती के तिस्स नामक भिक्षु की जो दुर्गन्धपूर्ण त्वचा रोग से पीड़ित था, स्वयं परिचर्या की। वुद्ध ने गर्म जल से उसे नहलाया और नये कपड़ों को पहनाकर भिक्षुओं से कहा था, "तुम लोगों के माता-पिता नहीं हैं अतएव तुम परस्पर एक-दूसरे के माता-पिता बनो।" बुद्धजी के ऐसे अनेक कार्यों ने जनसाधारण में एक-दूसरे के प्रति उदारता तथा सहिष्णुता करने की प्रवृत्ति को जन्म दिया।

(10) विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार- विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार करने का श्रेय वौद्ध-धर्म को है। मध्य एशिया, चीन, कोरिया, मन्चूरिया, बर्मा, स्याम, मलाया, जावा, सुमात्रा, जापान और श्रीलंका में हमारी संस्कृति प्रधान रूप से बौद्ध-प्रचारकों द्वारा पहुँची। वृहत्तर भारत के निर्माण में उन्होंने सबसे अधिक सहायता दी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उपरोक्त देशों से व्यापार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनायें
(Important Dates & Events)

(1) 599 ई० पू० - महावीर स्वामी का जन्म।
(2) 563 या 567 ई० पू० - गौतम बुद्ध का जन्म।
(3) 527 ई० पू० - महावीर स्वामी की मृत्यु।
(4) 483 या 487 ई० पू० - गौतम बुद्ध की मृत्यु।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धातमक प्रश्न (400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. गौतम बुद्ध के जीवन तथा शिक्षाओं का वर्णन कीजिए। (1964, 75, 80, 85)
2. भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को बौद्ध-धर्म की क्या देन है ? (1965)
3. जैनधर्म के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए। इस धर्म की सफलता के क्या कारण थे ? (1966, 86)
4. भारत के बौद्ध-धर्म की सफलता के कारणों का आलोचनात्मक विवरण दीजिए। (1986)
5. महावीर के जीवन तथा उनकी शिक्षाओं का उल्लेख कीजिए। (1974, 81, 88)
6. महात्मा बुद्ध के प्रमुख उपदेशों की विवेचना कीजिए और बौद्ध-धर्म के उत्थान तथा विस्तार के कारण बताइए।
7. भारत में बौद्ध-धर्म के उत्थान और पतन के कारणों की विवेचना कीजिए। (1979)
8. छठीं शताब्दी ई० पू० में भारत की राजनीतिक स्थिति का वर्णन कीजिए। (1981)
9. महात्मा बुद्ध के प्रमुख उपदेशों का वर्णन कीजिए। (1991)
10. भारत में बौद्ध धर्म के उदय एवं प्रगति के कारणों पर प्रकाश डालिए। (1992)
11. भारत में ईसा पूर्व छठीं शताब्दी में हुई धार्मिक क्रान्ति का विवरण दीजिए। 1995)
12. बौद्ध-धर्म की प्रसिद्धि के कारण बताइये एवं भारतीय संस्कृति को इसकी देन का वर्णन कीजिए। (1996)
13. ईसा पूर्व छठीं शताब्दी में नये धार्मिक सम्प्रदायों के उदय के कारणों का परिचय दीजिए। (1998)

(ख) कथात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. ''जैन-धर्म और बौद्ध-धर्म को एक पिता की दो सन्तान के रूप में समझना चाहिए जिनका जन्म लगभग एक ही समय में हुआ था। यद्यपि इनकी विशेषताएँ अलग-अलग हैं तथापि इनमें एक मजबूत पारिवारिक सादृश्य है।'' इस कथन के प्रकाश में जैन-धर्म तथा बौद्ध-धर्म की समानताओं तथा विषमताओं का उल्लेख कीजिए।
2. ''बौद्ध-धर्म ने भारतीयों के जीवन के सभी क्षेत्रों पर व्यापक और गहरा प्रभाव डाला।'' इस कथन के सन्दर्भ में बताइए कि भारतीय संस्कृति को बौद्धधर्म की क्या देन है ?
3. ''जैन-धर्म तथा बौद्ध-धर्म यद्यपि अपने मार्गों तथा शिक्षाओं में भिन्न थे, किन्तु उनका उद्देश्य एक ही था।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।
4. ''छठीं शताब्दी ई० पू० भारतीय इतिहास में धार्मिक क्रान्ति का युग था।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए। (1985)
5. ''उत्तर वैदिक काल के उपरान्त धर्म का स्वरूप इतना जटिल और दुरूह हो गया था कि उसके विरुद्ध विद्रोह की धारा स्वतः उमड़ पड़ी।'' इस कथन के आलोक में छठीं शताब्दी ई० पू० की धार्मिक क्रान्ति के कारणों का उल्लेख कीजिए।
6. ''बौद्ध और जैन धर्मों की सफलता का प्रमुख कारण तत्कालीन जनता में व्याप्त धार्मिक और सामाजिक असन्तोष था।'' स्पष्ट कीजिए। (1997)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. जैन-धर्म के सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।
2. बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
3. बौद्ध-धर्म के उत्थान के कारणों का उल्लेख कीजिए।
4. बौद्ध-धर्म के पतन के कारणों का वर्णन कीजिए।
5. भारतीय संस्कृति को बौद्ध-धर्म की क्या देन है ?
6. बौद्ध-धर्म के चार आर्य सत्यों का उल्लेख कीजिए। (1986)
7. महावीर स्वामी की मुख्य शिक्षाएँ क्या थीं ? (1989)
8. बौद्ध तथा जैन-धर्मों के सिद्धान्तों के दो प्रमुख अन्तर बताइए। (1990)
9. गौतम बुद्ध की चार प्रमुख शिक्षाओं का वर्णन कीजिए। (1994)
10. भारतीय संस्कृति को जैन धर्म की क्या देन है ?

7

भारत पर विदेशी आक्रमण

(पारसीक व सिकन्दर का आक्रमण)

"भारत पर सिकन्दर का आक्रमण यद्यपि दो वर्ष से भी कम रहा, फिर भी यह आक्रमण इतनी बड़ी घटना थी, जो यहाँ के जीवन को प्रभावित किये बिना न रह सकी। इस आक्रमण ने भारतीय नरेशों को अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण नीति अपनाने के लिए सचेत कर दिया।" - डॉ० राय चौधरी

(क) पारसीक आक्रमण

जिस समय भारत के उत्तर-पूर्व में मगध साम्राज्य का विकास हो रहा था उसी समय भारत के उत्तर-पश्चिम में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। इन राज्यों की निर्बलता का लाभ उठाकर पश्चिम की ओर के निकटवर्ती राज्यों ने एक के बाद एक आक्रमण-अभियान प्रारम्भ कर दिए। इनमें से पहला आक्रमण पारसियों का था। सातवीं शताब्दी ई० पू० ईरान में 'पार्स' जाति के 'हखामनी' नामक व्यक्ति ने अपनी शक्ति को बढ़ाकर राजवंश की स्थापना की। छठी शताब्दी ई० पू० में हखामनी के वंश में कुरुष (Curus) नामक एक शक्तिशाली सम्राट् हुआ जिसने लगभग 559 ई० पू० से 529 ई० पू० तक राज्य किया। स्ट्रैबो के अनुसार कुरुष ने जेड्रोसिया होकर भारत पर आक्रमण किया, किन्तु मार्ग की दुर्दान्त कठिनाइयों के कारण उसे सफलता न मिल सकी और उसे सिन्धु से वापस लौट जाना पड़ा। कालान्तर में उसने पुनः काबुल की घाटी के मार्ग से आक्रमण किया और कपिशानगरी को विध्वंस कर दिया और पेश्तो बोलने वाले प्रदेश को जीत लिया। कुरुष के उत्तराधिकारी काम्बुजी या कैम्बाइसेस (Cambyses) प्रथम, कुरुष द्वितीय तथा काम्बुजी या कैम्बाइसेस द्वितीय ने भारत पर कोई आक्रमण नहीं किया, क्योंकि वे अपने पश्चिमी भाग में ही इतना अधिक व्यस्त रहे कि उनको पूर्व की ओर आँख उठाने का अवसर नहीं मिला।

दायरबहु (डेरियस) का आक्रमण- कुरुष के पश्चात् दायरबहु या डेरियस (Darius) इस वंश का शक्तिशाली सम्राट हुआ। उसने 521 ई० पू० से 485 ई० पू० तक राज्य किया। दायरबहु ने भारत पर आक्रमण करके कम्बोज, पश्चिमी गान्धार और सिन्धु प्रदेश पर अधिकार कर लिया। उसने अपने विशाल साम्राज्य को 23 प्रांतों में विभक्त किया जिनके शासकों को 'क्षत्रप' कहा जाता था। कम्बोज, गान्धार और सिन्धु—इन तेईस प्रान्तों में सम्मिलित थे। इन प्रान्तों से दायरबहु को अत्यधिक आय होती थी।

दायरबहु का उत्तराधिकारी सम्राट् क्षयार्स (Xeryars) हुआ जिसने 485 ई० पू० से 465 ई० पू० तक राज्य किया। उसने साम्राज्य को पश्चिम की ओर विस्तृत करने का प्रयास किया और ईगियन सागर को पार कर यूनान के नगर-राज्यों पर आक्रमण किया। हेरोडोटस के अनुसार नगर-राज्यों पर आक्रमण के समय गान्धार और सिन्धु के भारतीय सैनिक भी क्षयार्स की ओर से लड़े थे।

पारसीक आक्रमण का प्रभाव- पारसीक आक्रमण का प्रभाव निम्न क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होता है :-

(i) पारसीक आक्रमण के फलस्वरूप पारसीयों और भारतीयों, दोनों के बीच व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुए।

(ii) पारसीयों के आक्रमण से यूनानियों को भारत-विजय की प्रेरणा प्राप्त हुई।

(iii) मौर्य सम्राटों ने पारसीक सभ्यता का अनुकरण किया। कुछ विद्वानों का मत है कि पाटलिपुत्र में अशोक का स्तम्भ, प्रधान विशाल भवन, उसके स्तम्भों और शिलाओं पर अभिलेख तथा घण्टे के आकार का शीर्ष आदि सभी ईरानी अनुकरण का ही प्रतिफल है।

(iv) खरोष्ठी लिपि का प्रयोग जो अशोक के पश्चिमी लेखों में की गई है, ईरान से ही भारत आई और इसे हम कनिष्क शासनकाल तक वैसा ही पाते हैं।

(ख) यूनानी आक्रमण : सिकन्दर

पारसीक आक्रमण के पश्चात् भारत को यूनानी आक्रमण का सामना करना पड़ा। इस यूनानी आक्रमण का नेता सिकन्दर था। जिस समय सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया उस समय पश्चिमोत्तर की राजनीतिक अवस्था बड़ी असन्तोषजनक थी। यह छोटे-छोटे अनेक राज्यों में विभक्त था। इनमें कुछ गणतन्त्रात्मक और कुछ राजतन्त्रात्मक थे। संक्षेप में, सिकन्दर के आक्रमण के समय पश्चिमोत्तर भारत में निम्नलिखित प्रमुख राज्य थे-

1. अश्वक- यह राज्य काबुल नदी के उत्तर में स्थित था। इसकी राजधानी कुनार नदी के तट पर स्थित थी।

2. गौर- यह राज्य पंचकौर नदी की घाटी में स्थित था।

3. उद्यान- यह राज्य सुवास्तु की घाटी में स्थित था।

4. नीसा- यह गणतन्त्र राज्य था और काबुल और सिन्धु नदी के बीच में स्थित था।

5. पूर्वी गान्धार- यह राज्य सिन्धु और झेलम नदियों के बीच में स्थित था। इसकी राजधानी 'तक्षशिला' थी।

6. पश्चिमी गान्धार- यह राज्य काबुल और सिन्धु नदी के बीच स्थित था। इसकी राजधानी 'पुस्करावती' थी।

7. उ़रशा- यह राज्य पूर्वी गान्धार के उत्तर-पूर्व में स्थित था।

8. अभिसार- यह राज्य कश्मीर के पश्चिमी प्रदेश में स्थित था।

9. पौरव- यह राज्य झेलम और चिनाव नदियों के बीच में स्थित था। यहाँ के राजा को यूनानियों ने पोरस कहा है।

10. ग्लुचुकायन- यह राज्य पौरव राज्य के पूर्व में स्थित था।

11. अद्रिज- यह राज्य रावी नदी के पर्वतीय भाग में स्थित था। इसकी राजधानी 'प्रिम्प्रामा' थी।

12. कठ- यह गणराज्य था। कुछ विद्वानों के अनुसार यह झेलम और चिनाव नदियों के बीच में और कुछ के अनुसार रावी और चिनाव नदियों के बीच में स्थित था।

13. भंगल- यह राज्य कठ के दक्षिण में रावी और व्यास नदियों के बीच में स्थित था।

14. सौभूति- यह राज्य झेलम नदी के पूर्व में स्थित था।

15. शिवि- यह राज्य झेलम और चिनाव के दक्षिण में स्थित था।

16. क्षुद्रक- यह गणराज्य था और रावी तथा व्यास नदियों के बीच में स्थित था।

17. मालव- यह राज्य रावी नदी के निचले भाग के दाहिनी ओर स्थित था।

18. क्षत्रि- यह राज्य चिनाव और रावी के निचले भाग में स्थित था।

19. शूद्र- यह गणराज्य था और सिन्ध के उत्तरी भाग में स्थित था।

20. मूषिक- यह राज्य वर्तमान सिन्ध का मध्य भाग था। इसकी राजधानी एलोर के निकट थी।

21. प्रोस्थ- यह राज्य आधुनिक 'लरकाना' जिले में सिन्धु नदी के पश्चिम में स्थित था।

22. शाम्ब- यह राज्य मूषिक राज्य के निकट था। इसकी राजधानी 'सिन्दिमान' सिन्धु नदी के तट पर स्थित थी।

23. पटल- यह राज्य सिन्ध प्रान्त के दक्षिणी भाग में सिन्धु नदी के मुहाने के निकट था। इसकी राजधानी बहमनाबाद के समीप थी।

24. अम्बष्ठ- यह गणराज्य था और चिनाव नदी की दक्षिणी घाटी में स्थित था।

सिकन्दर का परिचय (356-323 ई० पू०)- सिकन्दर मकदूनिया के राजा फिलिप का पुत्र था। 336 ई० पू० में फिलिप का वध कर दिया गया, अतः उसका पुत्र सिकन्दर 336 ई० पू० में मकदूनिया के सिंहासन पर आसीन हुआ। उस समय उसकी आयु बीस वर्ष के लगभग थी। दार्शनिक अरस्तू उसका शिक्षक तथा संरक्षक था।

सिकन्दर

सिंहासन पर बैठते ही सिकन्दर विश्व-विजय के स्वप्न देखने लगा। उस समय मिस्र, एशिया माइनर और सीरिया आदि ईरानी साम्राज्य के अंग थे। सिकंदर ने सर्वप्रथम एशिया माइनर पर आक्रमण किया। उसे जीतकर वह मिस्र की ओर बढ़ा। 332 ई० पू० मिस्र सिकन्दर के अधीन हो गया और यहाँ नील नदी के मुहाने पर उसने अपने नाम से सिकंदरिया (अलेक्जेण्ड्रिया) नामक नगर की स्थापना की। एक वर्ष बाद 331 ई० पू० में सिकंदर ने ईराक पर आक्रमण किया और बेबिलोन, निनेवा आदि प्राचीन नगरों पर अधिकार करके वह ईरान में प्रविष्ट हुआ। ईरान के शासक दारयबहु तृतीय ने सिकंदर का मुकाबला करने की कोशिश की पर उसे सफलता नहीं मिली और भागकर उसे बारव्वी में शरण लेनी पड़ी। सिकन्दर ने ईरान की राजधानी पार्सिपोलिस को जलाकर खाक कर दिया।

भारत की ओर प्रस्थान- ईरानी साम्राज्य को परास्त कर लेने के पश्चात् 330 ई० पू० के समाप्त होने से पूर्व ही सिकन्दर भारत की पश्चिमी सीमा पर सीस्तान में आ पहुँचा। इसे अधीन कर उसने दक्षिणी अफगानिस्तान पर आक्रमण किया। इसे जीतकर उसने वहाँ एक अन्य सिकन्दरिया नगर की स्थापना की। यहाँ अपनी शक्ति को भली-भाँति स्थापित कर अगले वर्ष (329 ई० पू०) सिकन्दर ने काबुल नदी की घाटी में प्रवेश किया। यहाँ भी उसने एक अन्य सिकन्दरिया नगर की स्थापना की। इसके बाद सिकन्दर ने हिन्दूकुश पर्वत को पारकर बाख्त्री और सीर नदी के तट के सम्पूर्ण प्रदेश को जीतकर अपने अधीन कर लिया। सीर नदी तक विस्तृत इस प्रदेश का प्राचीन नाम सुग्ध था। वर्तमान समय में बोखारा इसी प्रदेश में स्थित है।

बाख्त्री और सुग्ध को अपनी अधीनता में लाकर सिकन्दर ने एक बार फिर हिन्दूकुश पर्वत को पार किया और काबुल की घाटी में स्थापित सिकन्दरिया नगर में प्रवेश किया। अब सिकन्दर के लिए भारत पर आक्रमण कर सकना सम्भव हो गया था।

सिकन्दर का भारत पर आक्रमण

सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक अवस्था पतनोन्मुख थी साथ ही, जैसा कि भारतीय इतिहास अनेक स्वार्थी एवं देशद्रोहियों से भरा पड़ा है, तक्षशिला के शासक आम्भी और हिन्दूकुश के उत्तरी राज्य के शासक शशिगुप्त ने सिकन्दर को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दे रक्खा था। सिकन्दर को तक्षशिला में प्रवेश करने के पूर्व निम्न सीमान्त जातियों से युद्ध करना पड़ा, जिन पर उसने विजय प्राप्त की :

(अ) अश्वायनों (अस्पसिओइ) का प्रतिरोध- सिकन्दर को अश्वायनों से अन्दक नगर में भीषण युद्ध करना पड़ा। लेकिन अन्त में सिकन्दर ने विजय प्राप्त की और उनके 40, 000 पुरुष बन्दी बनाये तथा 2,30, 000 बैल छीन लिए। इनमें से सुन्दर और श्रेष्ठ बैलों को मकदूनिया भेज दिया गया।

(ब) नाइसा (Nysa) का आत्मसमर्पण- सिकन्दर ने दूसरा आक्रमण पर्वतीय राज्य नाइसा (नीसा) पर किया। यहाँ के 300 अभिजात कुलीनों ने जिनका प्रधान अकूफिस था, सिकन्दर के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। इस नगर में मित्रभाव प्रदर्शित करने से सिकन्दर को राहत मिली। नगर के 300 अश्वारोही सिकन्दर की सेना में आ मिले।

(स) अश्वकायनों (अस्सकेन) से युद्ध- सिकन्दर को सबसे भयंकर युद्ध अश्वकायनों से करना पड़ा । उनकी सेना में 30,000 अश्वारोही, 38,000 पदाति, 7000 भाड़े के सैनिक और 30 हाथी थे । वे सब 'मस्सग' के दुर्ग में इकट्ठे हुए । उनका नेतृत्व उनकी रानी क्लियोफिस ने किया । देश की रक्षा करने के लिए उसमें इतना जोश उमड़ रहा था कि पास-पड़ोस के क्षेत्र की स्त्रियाँ भी युद्ध में कूद पड़ी । अन्त में कई दिन के युद्ध के उपरान्त अश्वकायन लोगों की पराजय हुई और मस्सग दुर्ग पर सिकन्दर का अधिकार हो गया ।

'मस्सग' की विजय के बाद सिकन्दर ने कुछ महीनों की कठिन लड़ाई के बाद ओरा, बजिरा, ओरनस, अम्बोलिमा और दिरता के दुर्गों पर अधिकार कर लिया।

देशद्रोही आम्भी द्वारा सिकन्दर का तक्षशिला में स्वागत

326 ई० पू० वसन्त के आरम्भ में सेना को थोड़ा विश्राम देकर सिकन्दर ओहिन्द के समीप सिन्धु नदी को पार करके तक्षशिला की सीमा पर आ खड़ा हुआ। उसकी सेना में पैदल और अश्वारोहियों को मिलाकर 30, 000 योद्धा थे। कर्टियस के अनुसार, गान्धारराज आम्भी 65 हाथी, 10, 000 मोटी- तगड़ी भेड़ें, 8,000 बढ़िया नस्ल के बैलों के साथ सिकन्दर से आ मिला। सिकन्दर ने प्रसन्न होकर उसे उसकी यह सम्पूर्ण भेंट वापस कर दी और अपनी भेंट के साथ 5,000 सैनिक भी दिये। सिकन्दर ने तक्षशिला में एक दरबार का आयोजन किया और छोटे राजाओं से प्रणामांजलि एवं भेंट स्वीकार की और बदले में उसने भी सोने- चाँदी के बर्तन और ईरानी वस्त्र इन राजाओं को उपहार में दिये।

वहाँ उसे पोरस (पौरव) जो भारतीय इतिहास का एक शूरवीर नेता था, का भेजा हुआ युद्ध का निमन्त्रण मिला। पोरस का राज्य झेलम और रावी के बीच में स्थित था।

सिकन्दर का झेलम पार करना- मई, 326 ई० पू० में झेलम नदी पार करनाएक कठिन कार्य था, क्योंकि बर्फ के गलने से बाढ़ आ रही थी और पोरस ने झेलम के इस पार से सिकन्दर को चुनौती दे रखी थी। एरियन के अनुसार 11,000 चुने योद्धाओं को लेकर सिकन्दर नदी के चढ़ाव की ओर बढ़ा और वहाँ रात के अँधेरे में मूसलाधार वृष्टि और तूफान के मध्य नदी पार कर ली। भारतीय सेना की एक टुकड़ी ने जिसमें 2,000 घुड़सवार और 120 रथ थे और जिसे पोरस ने अपने पुत्र के नायकत्व में भेजा था, सिकन्दर की सेना का मुकाबला किया। पोरस की यह छोटी- सी सेना कुचल दी गई और युवक पोरस (पोरस का पुत्र) मारा गया।

सिकन्दर और पोरस

तत्पश्चात् पोरस 50, 000 पैदल, 3,000 घुड़सवार, 1,000 रथ और 130 हाथियों को लेकर सिकन्दर के मुकाबले के लिए बढ़ा।[1] पोरस ने अपनी सेना का व्यूह बनाया। व्यूह के बीच में हस्ति- सेना की दीवार थी, जिसके पीछे पैदल सैनिक थे। दायें और बायें पार्श्व में अश्वारोहियों का दल था और आगे रथ खड़े थे। पोरस अपने विशालकाय राजकुंजर की पीठ पर बैठकर स्वयं बीचों- बीच डटा था। भारतीय सेना को देखते ही सिकन्दर के मुँह से निकल पड़ा, "आखिर आज वह भय मेरे सामने उपस्थित है, जो मेरे साहस को ललकार रहा है। अब मेरा संघर्ष जंगली जानवरों और असाधारण शौर्यवान व्यक्तियों से पड़ा है।" पर अन्त में युद्ध के दिन अनवरत वर्षा हो जाने के कारण विजयश्री सिकन्दर के ही हाथ लगी। नौ गहरी चोटों के लगने पर भी पोरस निर्भय होकर अपने स्थान पर डटा रहा और तब तक लड़ता रहा जब तक कि उसकी दृष्टि में थोड़े भी भारतीय सैनिक मिलकर संघर्ष करते रहे और उसने दारायूस की तरह युद्ध- भूमि से भागकर सैनिकों के सामने पहले ही पलायन का उदाहरण नहीं रखा। इस सम्बन्ध में **डॉ० राय चौधरी** ने लिखा है- "पोरस यह देखकर भी कि उसकी बहुत सी सेना तितर- बितर हो गयी, उसके हाथी बिना सवारों के हैं अथवा मरे पड़े हैं, रणक्षेत्र से भागा नहीं, जैसे दारायूस कोडोमैनस दो बार भागा था, बल्कि एक बहुत ही ऊँचे हाथी पर बैठा युद्ध करता रहा और जब उसे नौ घाव लग चुके तो बन्दी बनाया जा

1. एरियन के अनुसार पोरस की सेना में 30, 000 पैदल, 4,000 घुड़सवार, 300 रथ और 200 हाथी थे।

सका।'' जब पोरस सिकन्दर के सम्मुख बन्दी बनाकर उपस्थित किया गया तो सिकन्दर ने उससे पूछा कि तुम अपने साथ कैसा व्यवहार चाहते हो? उसने गर्वीला उत्तर दिया, ''राजा के जैसा व्यवहार करो।'' जस्टिन लिखता है कि सिकन्दर ने उसके शौर्य से प्रभावित होकर उसका राज्य वापस कर दिया और पूर्व की ओर का भू-प्रदेश और जोड़ दिया, जिसमें 15 गणराज्य, उनके 5,000 नगर व ग्राम थे। उसका स्थान एक नये साम्राज्य के अन्तर्गत एक राजा का था, जिसके ऊपर सिकन्दर राजाओं का राजा था।

पोरस की पराजय के कारण

प्लूटार्क लिखता है, ''भारतीयों ने दिन की आठवीं घड़ी तक सिकन्दर की सेना को इंच भर बढ़ने नहीं दिया।'' परन्तु अन्त में उनके भाग्य ने करवट ली। पोरस की पराजय के निम्नलिखित कारण ज्ञात हैं :-

(1) आक्रमणकारी को भारतीयों द्वारा निमन्त्रण- तक्षशिला का राजा आम्भी, पोरस से विशेष ईर्ष्या रखता था। उसने सिकन्दर को सहायता इसलिये दी कि अपने पड़ोसी भारतीय राजा पोरस की शक्ति को कुचल सके। आम्भी के साथ ही साथ शशिगुप्त ने भी सिकन्दर की सहायता की।

(2) भारतीयों के लिए प्रतिकूल दुर्दिन- प्रकृति ने भी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं कि भारतीय सेना के विविध अंगों की कार्यक्षमता प्रतिकूल हो गई तथा भीषण वर्षा ने सिकन्दर को नदी पार करने का पूर्ण अवसर प्रदान किया।

पोरस की पराजय के कारण

1. आक्रमणकारी को भारतीयों द्वारा निमन्त्रण
2. भारतीयों के लिए प्रतिकूल दुर्दिन
3. रथों का भारीपन
4. धनुष-बाणों का बेकार हो जाना
5. भारतीयों द्वारा हाथियों पर विश्वास

(3) रथों का भारीपन- कर्टियस के अनुसार धरती में फिसलन पैदा हो गई और घोड़ों के चलने के काम की न रही और जो रथ थे वे कीचड़ और दल-दल में बुरी तरह फँस गये और अपने भारी बोझ से जहाँ के तहाँ ठप होकर रह गये। अतः युद्ध में सभी रथ बेकार हो गये।

(4) धनुष-बाणों का बेकार हो जाना- धरती गीली हो जाने के कारण पदाति सैनिक बाणों का सफल प्रयोग न कर सके। उनके धनुष इतने बड़े और भारी थे कि उन पर डोरी चढ़ाने के लिए उन्हें उनका सिर धरती पर टेकना आवश्यक था और चूँकि धरती गीली हो गयी थी, अतः धनुष-बाण बेकार हो गये।

(5) भारतीयों द्वारा हाथियों पर विश्वास- जिन हाथियों पर भारतीयों को पूरा विश्वास था वे तीरों की मार के सम्मुख टिक नहीं सके। उन्होंने अपनी ही सेना को कुचलना प्रारम्भ कर दिया।

नगर-निर्माण एवं अन्य विजयें- राजा पोरस को परास्त करने के पश्चात् सिकन्दर ने दो नगरों का निर्माण कराया। एक अपने स्वामिभक्त घोड़े के नाम पर 'बूकेफाला' (Boukephala)नामक नगर झेलम के तट पर वहाँ बसाया जहाँ उसने नदी को पार किया था और दूसरा 'निकाइया' (Nikaia) नामक नगर पोरस को विजित करने की स्मृति में झेलम के तट पर कर्री के मैदान में बसाया।

नगर- निर्माण के पश्चात् सिकन्दर ने पंजाब के अन्य राजाओं को परास्त करना आरम्भ किया। पोरस के भतीजे कनिष्ठ पोरस ने बिना युद्ध किये ही अधीनता स्वीकार कर ली। **एरियन** के अनुसार उसने 'ग्लाउसाई' जाति के 37 नगरों पर अधिकार किया, जिनमें से छोटे- से- छोटे नगर में 5000 नागरिक और बड़े- से- बड़े नगर में कम- से- कम 10, 000 नागरिक निवास करते थे। इसके बाद सिकन्दर ने 'पिप्रमा' दुर्ग पर अधिकार किया और इसके शीघ्र ही बाद कठों के महत्वपूर्ण नगर 'संगल' पर आक्रमण किया। सिकन्दर के विरुद्ध 'कठ' भी बड़ी वीरता से लड़े। उनकी मार इतनी भयानक थी कि सिकन्दर को अपनी सहायता के लिए पोरस को बुलाना पड़ा। **एरियन** के अनुसार यदि 5,000 भारतीयों की सेना के साथ पोरस न पहुँच जाता तो सिकन्दर को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता। अन्त में जब दुर्ग पर सिकन्दर का अधिकार हुआ तब इसके 17,000 रक्षक मारे जा चुके थे और 60, 000 बन्दी हो चुके थे। इनमें 5,000 घुड़सवार और 300 गाड़ियाँ भी थीं। कठों की भीषण टक्कर ने सिकन्दर को इतना अधिक क्रुद्ध कर दिया कि उसने संगल के दुर्ग को मिट्टी में मिला दिया। इसके पश्चात् सिकन्दर पूर्व में ग्रीक पताका फहराने के लिए व्यास की ओर बढ़ा।

सिकन्दर की सेना का आगे बढ़ने से इन्कार करना- ग्रीक सैनिक युद्ध से थक गये थे। विजयी होते हुए भी अपने को कंगाल महसूस कर रहे थे। उनके शरीर वस्त्रहीन हो गये थे। इसके अतिरिक्त पोरस के युद्ध ने उनके दिलों को भयग्रसित कर दिया था। उन्होंने यह अफवाहें भी सुन रखी थीं कि आगे विशाल मरुभूमि तथा गहरी तेज बहने वाली नदियाँ हैं, विशाल सेनाओं वाली शक्तिशाली जातियाँ हैं। **प्लूटार्क** ने लिखा है, "उसके मुकाबले के लिए गंगरिदाई और प्रेसिआई 20, 000 अश्वारोही, 200, 000 पदाति, 2,000 रथ और 6,000 हाथी लिये प्रतीक्षा कर रहे थे।" अतः व्यास के तट पर पहुँचते ही सेना ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया और कहा- "बस यहीं तक, अब हम इससे आगे न बढ़ेंगे।" यह घटना 326 ई० पू० में लगभग जुलाई के अन्त में घटित हुई।

सैनिकों से सिकन्दर की अपील- कर्टियस के अनुसार सिकन्दर ने अपनी भयग्रसित सेना से कहा, "डाल दो मुझे गरजती नदियों के खतरे में, छोड़ दो मुझे क्रुद्ध गजों की दया पर और उन क्रूरकर्मा जातियों के प्रतिहिंसक औदार्य पर जिनके नाम तुम्हें आतंक से भर रहे हैं। मैं ढूँढ़ लूँगा ऐसे वीरों को जो मेरा अनुसरण करेंगे।"[1] सिकन्दर के इस कथन का सेना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अतः निराश होकर सिकन्दर ने पुनः कहा, "निस्सन्देह बहरे कानों से मेरे शब्द टकराते रहे हैं। मैं ऐसे कायरों को उत्साहित करता रहा हूँ जिनके हृदय त्रास से भर गये हैं।"

व्यास नदी से सिकन्दर का लौटना

अन्त में विवश होकर सिकन्दर जिस मार्ग से आया था, उसने उसी मार्ग से रावी, चिनाव. झेलम की ओर सेना को वापस लौटने की आज्ञा दी। उसे मार्ग में अनेक छोटे- छोटे राजाओं से भीषण युद्ध करना पड़ा। सबसे पहले झेलम की घाटी में उसे सौभूति (सोफाइटिज) राजा से सामना करना पड़ा किन्तु वह सिकन्दर के सम्मुख न टिक सका। अतः सिकन्दर झेलम और चिनाव के संगम तक पहुँच गया। इसके पश्चात् सिकन्दर को सिबोई (शिवि) और अगलस्सी जाति से संघर्ष करना पड़ा। सिबोई उसके सम्मुख न टिक सके परन्तु अगलस्सियों

1. डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी के 'प्राचीन भारत का इतिहास' से उद्धृत।

ने वीरता के साथ अपनी राजधानी की रक्षा की। जब उन्होंने देखा कि वे सिकन्दर से पार न पा सकेंगे तो अपने घरों में उन्होंने आग लगा दी और स्वयं वे अपनी पत्नियों और बच्चों के साथ अग्नि की लपटों में कूद पड़े। इस प्रकार जौहर का इतिहास में यह पहला उदाहरण इस स्थल पर मिलता है। तत्पश्चात् सिकन्दर को मालव और क्षुद्रक जातियों से संघर्ष करना पड़ा। **कर्टियस** के अनुसार ये दोनों राज्य परस्पर भीषण शत्रु थे, परन्तु शत्रु के सम्मुख उन्होंने अपनी पुरानी शत्रुता भुला दी और संगठित रूप से सिकन्दर का सामना करने को उद्यत हो गये। परन्तु दुर्भाग्यवश इनकी सेनाओं के मिलने से पूर्व ही सिकन्दर ने आगे बढ़कर मालवा पर आक्रमण कर दिया। मालवों ने घोर युद्ध किया किन्तु अन्त में वे पराजित हुए। युद्ध में सिकन्दर स्वयं घायल हो गया, जिसके परिणामस्वरूप उसने स्त्रियों तथा बच्चों तक का संहार करा दिया। मालवों की पराजय से हतोत्साहित होकर क्षुद्रकों ने बिना युद्ध किये ही सिकन्दर के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया। इसके बाद सिकन्दर सिन्ध पहुँचा। सिन्ध के उत्तर में स्थित मुचकर्ण राज्य ने उसके सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया, परन्तु ब्राह्मण जनपदों ने उसका विरोध किया। उन्होंने स्वयं विरोध तो किया ही और दूसरे अधीन लोगों को भी भड़काया। अतः सिकन्दर ने ब्राह्मणों को पराजित कर उनके साथ निर्दयता का व्यवहार किया। उनके संहार के पश्चात् उनकी लाशों को बाजारों में टँगवा दिया।

अन्त में सिकन्दर सिन्धु नदी के निचले प्रदेश पटल (पत्तल) नामक नगर में पहुँचा। यहाँ पर उसने अपनी सेना को तीन भागों में विभक्त कर दिया। एक को उसने सिन्धु नदी जलमार्ग द्वारा समुद्र की ओर से ले जाने का निश्चय किया। इसके लिए उसने 1,000 नावों का बेड़ा तैयार कराया। दूसरे भाग को बोलंन के दर्रे से जाने की आज्ञा दी। तीसरे भाग के साथ उसने स्वयं 'मेकरान' की मरुभूमि से जाने का निश्चय किया। अतः सिकन्दर सितम्बर, 325 ई० पू० में पत्तल छोड़कर घर की यात्रा के लिए मुड़ा और इस देश को छोड़ दिया। इस प्रकार सिकन्दर 326 ई० पू० के अगस्त से 325 की सितम्बर तक केवल उन्नीस मास के लगभग सिन्धु के पूर्व में ठहरा। जब वह बगदाद के निकट बेबिलोन (बाबुल) पहुँचा तब ज्वर से पीड़ित हो गया और वहीं 32 वर्ष की अल्पायु में 323 ई० पू० के जून में परलोक सिधारा।

आक्रमण का परिणाम

सिकन्दर का आक्रमण उस आँधी की तरह था जो कुछ समय के लिए समस्त वातावरण को झकझोर देती है किन्तु जिसके चले जाने पर वातावरण पुनः शान्त हो जाता है। इतिहासकार **वी० स्मिथ** के अनुसार सिकन्दर के आक्रमण ने उत्तर-पश्चिमी भारत को झकझोर दिया था। उसके आक्रमण ने भारत पर प्रत्यक्ष रूप से कोई प्रभाव नहीं डाला। परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से उसके प्रभाव ने भारत को विशेष प्रभावित किया। कुछ इतिहासकार यह मानते हैं कि सिकन्दर के आक्रमण के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष, दोनों ही प्रभाव पड़े। इसे हम निम्नलिखित रूपों में देख सकते हैं:-

(अ) प्रत्यक्ष प्रभाव- भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के प्रत्यक्ष प्रभाव इस प्रकार हैं:-

(1) यूनानी उपनिवेशों की स्थापना- सिकन्दर के आक्रमण का प्रत्यक्ष प्रभाव यह पड़ा कि उत्तर-पश्चिम सीमान्त के कुछ भागों पर यूनानियों के राज्य स्थापित हो गये। इनमें से कुछ राज्यों का अस्तित्व बहुत दिनों तक बना रहा।

(2) धन- जन की क्षति- सिकन्दर के आक्रमण से भारतीय धन- जन की बड़ी क्षति हुई। अनेक नगर उजड़ गये। असंख्य लोग मारे गये। बहुत से व्यक्ति बन्दी बनाकर विदेशों में दासों के रूप में बेचे गये। हत्या तथा लूट के कारण सीमान्त क्षेत्र उजड़ गये।

(3) नये मार्गों की खोज- सिकन्दर के आक्रमण के कारण पश्चिमी देशों को भारत आने के लिए थल और जलमार्ग की जानकारी हुई। इसी आक्रमण के कारण काबुल तथा बिलोचिस्तान के बीच तीन स्थल मार्गों का पता चला तथा मकरान के तटवर्ती भाग से होकर भारत आने के जलमार्ग का अन्वेषण हुआ। **डॉ० स्मिथ** के अनुसार, सिकन्दर के आक्रमण ने "पूर्व और पश्चिम के मध्य की दीवार गिरा दी तथा आवागमन के चार रास्ते निकले- तीन स्थलमार्ग तथा चौथा सामुद्रिक मार्ग।" श्री पाल मेसन ने इस विषय में कहा है, "भूमध्यसागरीय सभ्यता का पंजाब तथा मध्य एशिया से सीधा सम्पर्क स्थापित हो गया।"

आक्रमण का प्रभाव

(अ) प्रत्यक्ष प्रभाव-
1. यूनानी उपनिवेशों की स्थापना
2. धन- जन की क्षति
3. नये मार्गों की खोज .

(ब) अप्रत्यक्ष प्रभाव-
1. राजनीतिक प्रभाव
2. आर्थिक प्रभाव
3. सांस्कृतिक प्रभाव

(ब) अप्रत्यक्ष प्रभाव- भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के अप्रत्यक्ष प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। ये प्रभाव इस प्रकार हैं :

1. राजनीतिक प्रभाव- इस आक्रमण के राजनीतिक प्रभाव निम्नलिखित हैं :

(i) इस आक्रमण से भारतीयों को अपनी दुर्बल और दोषपूर्ण सैन्य- शक्ति तथा युद्ध- कला का आभास हुआ।

(ii) इस आक्रमण के कारण सीमान्त राज्य कमजोर हो गये। इस कारण आगे चलकर चन्द्रगुप्त मौर्य को इन राज्यों को सरलतापूर्वक जीतकर देश में राजनीतिक स्थिरता स्थापित करने में सहायता मिली। इस सम्बन्ध में **डॉ० हेमचन्द्र राय चौधरी** ने लिखा, "यदि उग्रसेन महापद्म नन्द ने पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य को रास्ता दिखलाया तो सिकन्दर ने यही कार्य पश्चिमोत्तर में किया।"

(iii) सिकन्दर के आक्रमण की तिथि के साथ ही साथ भारत में ऐतिहासिक घटनाओं को तिथिक्रम से व्यक्त करने का सूत्रपात हुआ।

(iv) अनेक यूनानी विद्वानों ने भारत आकर यहाँ के विषय में बहुत कुछ लिखा जिससे तत्कालीन इतिहास की जानकारी हुई।

2. आर्थिक प्रभाव- इस आक्रमण के आर्थिक प्रभाव इस प्रकार हैं :

(1) सिकन्दर के आक्रमण के कारण यूनान और भारत के मध्य एक जलमार्ग तथा तीन स्थल- मार्गों का पता लगने से दोनों देशों के बीच व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ।

(2) यूनान के अतिरिक्त भारत का अन्य पश्चिमी देशों—मिस्र और रोम के साथ भी व्यापार सम्बन्ध स्थापित हुआ।

(3) भारत में यूनानी सिक्के का प्रचलन हुआ जिससे दोनों देशों में क्रय-विक्रय के कारण व्यापारिक सुविधा हुई और लोग संपन्न होने लगे।

3. सांस्कृतिक प्रभाव- इस आक्रमण का सांस्कृतिक प्रभाव इस प्रकार है.:

(1) भारत ने यूनानियों से मुद्रा-निर्माण की कला का ज्ञान प्राप्त किया।

(2) भारतीय वास्तुकला तथा यूनानी वास्तुकला के प्रभाव से एक वास्तुकला ने जन्म लिया जिसे 'गांधार कला' कहते हैं।

(3) भारतीय ज्योतिष तथा दर्शन पर यूनानी ज्योतिष तथा दर्शन का प्रभाव पड़ा।

(4) पश्चिमी देशों के दर्शन और धर्म पर भारतीय दर्शन और बौद्धधर्म का विशेष प्रभाव पड़ा।

(5) भारतीय औषधि विज्ञान पर यूनानी औषधि विज्ञान का प्रभाव पड़ा, क्योंकि दोनों की चिकित्सा-पद्धति में पर्याप्त समानता परिलक्षित होती है।

(6) भारतीय वेश-भूषा पर भी यूनानी वेश-भूषा का प्रभाव पड़ा। मौर्यकालीन मुद्राओं से विदित होता है कि भारतीय नरेश पायजामा तथा कोट का प्रयोग करने लगे थे— ये दोनों वस्त्र यूनानी प्रथा के अनुकूल हैं।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ
(Important Dates & Events)

(1) 336 ई० पू० - सिकन्दर का सिंहासनारोहण।
(2) 326 ई० पू० - सिकन्दर का भारत पर आक्रमण।
(3) 323 ई० पू० - सिकन्दर की मृत्यु।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निवन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. सिकन्दर के भारतीय आक्रमण का वर्णन कीजिए। भारत के इतिहास पर उसका क्या प्रभाव पड़ा ? (1998)
2. सिकन्दर के आक्रमण ने भारत पर क्या प्रभाव डाला ? (1975)
3. सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत की दशा पर प्रकाश डालिए तथा यह भी बताइये कि इसका भारतीय इतिहास और राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा ? (1995)
4. सिकन्दर के भारतीय युद्धों का संक्षिप्त विवरण दीजिए तथा यह भी बताइये कि उसके आक्रमण का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा ? (1996)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "पोरस यह देखकर भी कि उसकी बहुत-सी सेना तितर-बितर हो गई, उसके हाथी बिना सवारों के हैं अथवा मरे पड़े हैं, रणक्षेत्र से भागा नहीं, जैसे दारायूस कोडोमैनस दो बार भागा था, बल्कि एक बहुत ही विशालकाय हाथी पर बैठ युद्ध करता रहा और जब उसे नौ घाव लग चुके तो बन्दी बनाया जा सका।" इस कथन के प्रकाश में सिकन्दर-पोरस युद्ध का संक्षिप्त वर्णन कर पोरस का चरित्र-चित्रण कीजिए। (1984)

2. "जो भी यूनानी प्रभाव भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर दृष्टिगोचर होते हैं वे सब सिकन्दर के आक्रमण के प्रत्यक्ष परिणाम थे।" इस कथन को दृष्टि में रखते हुए सिंकन्दर के आक्रमण के प्रभावों का उल्लेख कीजिए।
3. "सिकन्दर आँधी के समान भारत में आया और वैसी ही चला गया।" इस कथन के आलोक में सिकन्दर के भारतीय आक्रमण के प्रभावों का वर्णन कीजिए। (1986)
4. "सिकन्दर ने उत्तर-पश्चिम सीमान्त, पंजाब और सिन्धु प्रदेश को राजनैतिक एकता प्रदान किया।" उपर्युक्त कथन के परिपेक्ष में सिकन्दर के भारतीय आक्रमण का विवेचन कीजिए।
5. "सिकन्दर का भारत पर आक्रमण एक आँधी के सदृश था जिसका कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा।" आप इस मत से कहाँ तक सहमत हैं ? (1989)
6. "सिकन्दर का आक्रमण एक ऐसी महान घटना थी कि भारतीय इतिहास पर इसका प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था।" विवेचना कीजिए। (1999)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. भारत पर पारसीक आक्रमण और उसके प्रभावों का वर्णन कीजिए।
2. सिकन्दर के भारतीय आक्रमण और उसके प्रभाव का वर्णन कीजिए।
3. सिकन्दर के आक्रमण के समय पश्चिमोत्तर भारत में स्थित प्रमुख राज्यों का परिचय दीजिए।

8

मगध तथा मौर्य साम्राज्य का उदय

> **"राजनीतिक एकीकरण का जो कार्य हर्यकवंशीय नरेशों ने प्रारम्भ किया था उसे मौर्यों ने पूर्ण किया। इनके समय में भारतवर्ष का अधिकांश भाग एक सुदृढ़ राजनीतिक सूत्र में बँध गया। इस एक छत्र एकता के कारण इतिहास वास्तविक अर्थ में भारतीय हो गया।"**
> - डॉ० विमलचन्द्र पाण्डेय

(क) मगध राज्य का उत्कर्ष

प्राचीन भारत के इतिहास में मगध का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह वर्तमान बिहार में गया और पटना के मध्य स्थित था। इस जनपद पर निम्न वंशों ने शासन किया :

हर्यक वंश- इस वंश में निम्नलिखित शक्तिशाली शासक हुए :

बिम्बिसार- हर्यक वंश का प्रथम राजा बिम्बिसार था। उसे श्रेणिक भी कहा जाता है। वह 15 वर्ष की आयु में मगध राज-सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। वह बड़ा शक्तिशाली तथा महत्वाकांक्षी सम्राट था। उसने अपने शासनकाल में मगध राज्य का अत्यधिक विस्तार किया। सर्वप्रथम उसने अंग-राज्य पर आक्रमण किया। आक्रमण के फलस्वरूप वहाँ का राजा ब्रह्मदत मारा गया और उसका राज्य मगध-राज्य में मिला लिया गया। बौद्ध-ग्रन्थ महावंश के अनुसार उसके साम्राज्य के अन्तर्गत 80,000 या 80,009 ग्राम थे। बुद्धचर्या से ज्ञात होता है कि उसके राज्य का विस्तार 400 योजन(5,760 किमी)था। उसने गिरिब्रज के स्थान पर राजगृह को अपनी नई राजधानी बनाया।

हर्यक वंश के शासक

1. बिम्बिसार
2. अजातशत्रु
3. उदयन (उदायीभद्र)
4. अनुरुद्ध
5. मुण्ड
6. नागदासक

बिम्बिसार एक कुशल राजनीतिज्ञ था। उसने अनेक राजाओं से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। उसने कोशल के राजा प्रसेनजित की बहन कौशल देवी से विवाह किया। इस वैवाहिक सम्बन्ध से मगध को एक लाख की वार्षिक आय का काशी प्रान्त भी प्राप्त हुआ। उसने दूसरा विवाह वैशाली के लिच्छवी राजा चेतक की पुत्री चेल्लना के साथ किया। इस विवाह के फलस्वरूप उसके राज्य की उत्तरी सीमा सुरक्षित हो गयी। उसका तीसरा विवाह मद्र देश की राजकुमारी क्षेमा या खेमा के साथ हुआ। इसके अतिरिक्त उसने वत्स, मद्र, गान्धार और कम्बोज आदि राज्यों में अपने राजदूत भेजकर कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किये।

मृत्यु- बिम्बिसार की मृत्यु उसके पुत्र अजातशत्रु द्वारा हुई। बौद्ध-ग्रन्थों के अनुसार उसने अपने चचेरे भाई देवदत्त के भड़काने पर अपने पिता बिम्बिसार को बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिया जहाँ अन्न-जल के अभाव में उसकी मृत्यु हो गई। यह घटना लगभग 401 ई० पू० घटित हुई। बौद्ध-ग्रन्थ महावंश के अनुसार बिम्बिसार ने 52 वर्ष तक राज्य किया।

अजातशत्रु- अपने पिता बिम्बिसार के जीवनकाल में ही अजातशत्रु ने बलपूर्वक राज्य छीनकर मगधं- सिंहासन प्राप्त कर लिया था। पिता के शासनकाल में वह अंग की राजधानी चम्पा का शासक रह चुका था। अजातशत्रु साम्राज्यवादी भावना से ओत- प्रोत था। फलतः उसे अनेक राज्यों से संघर्ष करना पड़ा।

कोशल से युद्ध- अजातशत्रु ने सर्वप्रथम कोशल नरेश प्रसेनजित पर आक्रमण किया। आक्रमण का प्रमुख कारण यह था कि प्रसेनजित ने अपनी बहन कौशल देवी की मृत्यु के पश्चात् काशी का प्रान्त वापस ले लिया था। वह युद्ध दीर्घ काल तक चलता रहा, परन्तु अन्त में अजातशत्रु प्रसेनजित का बन्दी हो गया। कहा जाता है कि बन्दी की स्थिति में अजातशत्रु का प्रेम प्रसेनजित की पुत्री वजिरा से हो गया और प्रसेनजित को अपनी पुत्री का विवाह अजातशत्रु से करना पड़ा। इसके साथ ही साथ प्रसेनजित ने काशी का प्रान्त दहेज स्वरूप पुनः अजातशत्रु को वापस कर दिया।

वैशाली से युद्ध- अजातशत्रु का दूसरा युद्ध वैशाली के लिच्छवियों से हुआ। वैशाली वज्जि- संघ का एक शक्तिशाली गण- राज्य था और उसे पराजित करना कठिन कार्य था। ऐसी स्थिति में मगध के महामन्त्री बस्सकार (वर्षकार) ने कूटनीति के सभी साधनों का प्रयोग करके वज्जि- संघ में फूट उत्पन्न कर दी। इस फूट के फलस्वरूप जब अजातशत्रु ने लिच्छवियों पर आक्रमण किया तो वे संगठित रूप से उसका सामना न कर सके और वे पराजित हुए। अजातशत्रु ने वैशाली पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् अजातशत्रु ने अन्य छोटे- छोटे राज्यों को जीतकर मगध साम्राज्य में मिला लिया। उसके साम्राज्य में मगध, अंग, काशी और वैशाली के प्रदेश सम्मिलित थे।

पुराणों के अनुसार अजातशत्रु ने 25 वर्ष तक मगध पर शासन किया। परन्तु बौद्ध- ग्रन्थों के अनुसार उसने 32 वर्ष शासन किया। बौद्ध- ग्रन्थ महावंश से ज्ञात होता है कि 456 ई० पू० में अजातशत्रु का वध उसके पुत्र उदयन ने कर दिया और वह स्वयं मगध की राजगद्दी पर आरूढ़ हो गया।

उदयन- यह इतिहास में उदायीभद्र के नाम से भी विख्यात है। वह अपने पिता के समान विजेता तथा महत्वाकांक्षी था। उसने पाटलिपुत्र नगर की स्थापना करके उसे अपनी राजधानी बनाया। **हेमचन्द्र द्वारा** रचित 'स्थविरावलि- चरित' से ज्ञात होता है कि उदयन ने एक समीपवर्ती राज्य पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया और उसके राजा को मार डाला। राजा के पुत्र ने अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी में जाकर शरण ली। कालान्तर में राजकुमार ने जैन साधु का वेश धारण किया और पाटलिपुत्र में जाकर धोखे से सोते हुए उदयन की हत्या कर दी। इसे विधि की विडम्बना ही समझिये कि जिस प्रकार उसने अपने पिता की हत्या की, ठीक उसी प्रकार उसकी भी हत्या हुई। इस प्रकार पितृहन्ता तथा पाटलिपुत्र के संस्थापक उदयन का अन्त हुआ।

पुराणों के अनुसार उदयन ने 33 वर्ष तक राज्य किया। परन्तु बौद्ध- ग्रन्थ महावंश के अनुसार उसने 16 वर्ष तक राज्य किया।

उदयन के उत्तराधिकारी- उदयन के पश्चात् अनुरुद्ध और मुण्ड नामक राजा क्रमशः मगध की गद्दी पर बैठे। अन्त में नागदासक सिंहासनारूढ़ हुआ। उसका प्रधान अमात्य शिशुनाग था। बौद्ध- ग्रन्थ महावंश से ज्ञात होता है कि पाटलिपुत्र के पौरों, मन्त्रियों और अमात्यों ने

नागदासक को मगध सिंहासन से उतार कर आमात्य शिशुनाग को राजा बनाया। इस प्रकार हर्यक वंश का अन्त होकर शिशुनाग वंश का उदय हुआ।

शिशुनाग वंश- शिशुनाग वंश का संस्थापक शिशुनाग था। वह इतिहास में नन्दिवर्धन के नाम से भी प्रसिद्ध है। वह बड़ा वीर तथा महत्वाकांक्षी था। सम्राट के पद पर आसीन होते ही उसने अवन्ति पर आक्रमण कर उसे मगध साम्राज्य में मिला लिया और वहाँ के प्रद्योत- वंश की शक्ति को समूल नष्ट कर दिया। उसने कोशल राज्य को भी विजित किया और अपने पुत्र को काशी का शासक नियुक्त किया। इस प्रकार पंजाब और उसके पश्चिम का भाग छोड़कर सम्पूर्ण उत्तर भारत उसके साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया। उसने पाटलिपुत्र के स्थान पर राजगृह को अपनी राजधानी बनाया। सिंहली वृत्तान्तों के अनुसार शिशुनाग ने 18 वर्ष तक राज्य किया।

शिशुनाग वंश के प्रमुख शासक
1. शिशुनाग
2. अशोक (कालाशोक या काकवर्ण)
3. पंचनक

अशोक- शिशुनाग के पश्चात् उसका पुत्र अशोक मगध की गद्दी पर आसीन हुआ। वह इतिहास में कालाशोक या काकवर्ण नामों से भी विख्यात है। उसने राजगृह के स्थान पर पुनः पाटलिपुत्र को राजधानी बनाया। सिंहली ग्रन्थों के अनुसार उसके शासनकाल के 10वें वर्ष में बौद्ध- धर्म की दूसरी संगीति हुई। इसका आयोजन वैशाली के कुसुमपुरी विहार में किया गया था। बाण के 'हर्षचरित' से ज्ञात होता है कि नगर के बाहर गले में छूरा भोंक कर अशोक की हत्या कर दी गयी। महावंश के अनुसार उसने 28 वर्ष तक राज्य किया। अशोक के पश्चात् उसके दस पुत्रों ने सम्मिलित रूप से महापद्मनंद की संरक्षकता में 22 वर्ष तक राज्य किया। इस वंश का अन्तिम शासक पंचनक था जिसकी महापद्मनंद ने धोखे से हत्या कर दी और नन्दवंश की नींव डाली।

नन्दवंश- नन्दवंश का संस्थापक महापद्मनन्द था। पुराणों के अनुसार वह शूद्र स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। जैन ग्रन्थ 'परिशिष्टपर्वन' के अनुसार उसका पिता नापित (नाई) और माता वेश्या थी। वह देखने में बड़ा सुन्दर था इसीलिए उसने रानी को अपने वश में करके शिशुनाग वंश के राजा की हत्या कर दी थी। भागवत पुराण के अनुसार नन्दराज के पास दस पद्म सेना अथवा इतनी ही सम्पत्ति थी। इसी से उसका नाम महापद्म पड़ा। उसके काल में मगध साम्राज्य का काफी विस्तार हुआ। पुराणों में उसे 'एकच्छत्र पृथ्वी का राजा', 'भार्गव (परशुराम) के समान' कहा गया है। 'कलियुग राज वृत्तान्त' के अनुसार उसने तत्कालीन समस्त राजवंशी- शैशुनाग, इक्ष्वाकु, पंचाल, काशी, हैहय, कलिंग, अश्मक, कुरु, मैथिल, शूरसेन, वातिहोत्र आदि का उन्मूलन कर दिया था। डॉ० राय चौधरी का अनुमान है कि दक्षिणापथ का कुछ भाग भी सम्भवतः नन्द साम्राज्य के अन्तर्गत था। यूनानी लेखकों के अनुसार नन्द की सेना में 20 हजार अश्वारोही, 2 लाख पदाति, 2 हजार रथ और लगभग 4 हजार हाथी थे। पुराणों के अनुसार नन्दराज ने 28 वर्ष तक राज्य किया।

घनानन्द- पुराणों के अनुसार महापद्मनन्द के आठ पुत्र थे, जिनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम सुमाल्य था। बौद्ध- ग्रन्थों में इसी को घनानन्द लिखा गया है। महापद्मनन्द के पश्चात् घनानन्द विशाल मगध- साम्राज्य का स्वामी बना। घनानन्द को मगधसिंहासन पर आरूढ़ हुए अभी

केवल बारह वर्ष ही व्यतीत हुए कि चाणक्य नामक एक ब्राह्मण ने चन्द्रगुप्त मौर्य की सहायता से उसकी हत्या कर दी और इस प्रकार मगध राज्य पर एक नवीन राजवंश (मौर्य वंश) की स्थापना हुई।

(ख) मौर्य-साम्राज्य

"इतिहास के स्तम्भों को भरनेवाले महाराजाओं, सम्राटों, धर्माधिकारियों, सन्त-महात्माओं आदि के मध्य अशोक का नाम उज्ज्वल है और आकाश में प्रायः एकाकी तारे की भाँति प्रकाशमान है।"

-एच० जी० वेल्स

मौर्यों का इतिहास जानने के स्रोत

(1) कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र'- मौर्यों का इतिहास जानने का प्रमुख स्रोत कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र है। यह पुस्तक 16 भागों तथा 180 उपभागों में विभक्त है। इसमें लगभग 6,000 श्लोक हैं। यह पुस्तक 1909 में मिली थी। **डॉ० शाम शास्त्री** ने इसका सुन्दर अनुवाद किया। इस पुस्तक में सम्राट के कर्तव्य, उसकी मंत्रिपरिषद, प्रमुख कर्मचारीगण, राज्य की न्याय एवं कर-व्यवस्था का विशद वर्णन उपलब्ध होता है।

(2) मेगस्थनीज की 'इण्डिका'- मौर्यकाल की जानकारी का दूसरा स्रोत है- मेगस्थनीज द्वारा लिखित 'इण्डिका'। मेगस्थनीज यूनानी राजदूत था जो सम्राट सेल्यूकस की ओर से भारतवर्ष में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरवार में आया था। उसने तत्कालीन भारत की स्थिति का वर्णन अपनी पुस्तक 'इण्डिका' में किया है। यह दुःख का विषय है कि 'इण्डिका' आज हमें अपने वास्तविक रूप में नहीं मिलती। यूनानी लेखकों द्वारा उद्धृत उसके कुछ उद्धरण इधर-उधर पुस्तकों में देखने को मिलते हैं जिनके अध्ययन से तत्कालीन भारत के इतिहास की प्रमुख बातों का पता चलता है।

(3) नाटक एवं बौद्ध-ग्रन्थ- मौर्यकाल के इतिहास का तीसरा स्रोत- नाटक एवं बौद्ध-ग्रन्थ हैं। गुप्तकालीन प्रसिद्ध नाटककार **विशाखदत्त** के 'मुद्राराक्षस' नाटक से चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा नन्दवंश के पतन का पूर्ण उल्लेख प्राप्त होता है। इस नाटक के द्वारा हमें तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक अवस्था का भी पता चलता है। इसके अतिरिक्त 'महावंश', 'दीपवंश', 'दिव्यावदान' आदि बौद्ध-ग्रन्थों और कुछ नेपाली, तिब्बती ग्रन्थों से मौर्यों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

(4) अशोक के शिलालेख- अशोक के शिलालेख भी मौर्यकाल का इतिहास जानने में बड़ी सहायता करते हैं। वास्तव में अशोक सम्बन्धी हमारी जानकारी का आधार उसके शिलालेख हैं।

(5) अन्य अभिलेख- सहगोरा ताम्रपत्र, नागार्जुन गुफा लेख, रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख तथा बरावर गुफा लेख जैसे पुरातात्त्विक साक्ष्यों से मौर्य-काल की जानकारी मिलती है।

(6) मुद्रा- मौर्यकालीन ताँबे और चाँदी के अनेक सिक्के विभिन्न स्थानों पर प्राप्त हुए हैं जिन पर अर्द्धचन्द्र, पर्वत तथा मयूर जैसे छाप मुद्रित हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य (322-298 ई० पू०)

चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रारम्भिक जीवन (जन्म एवं वंश)- चन्द्रगुप्त का जन्म 345 ई० पू० पिप्पलिवन के उस प्रसिद्ध मोरिय-कुल में हुआ था जो शाक्यों की एक शाखा थी। उसके वंश से सम्बन्धित अनुश्रुतियों में पारस्परिक मतभेद है। उनमें से एक अनुश्रुति उसे अन्तिम नन्दराज की मुरा नाम की शूद्रा रखेली से उत्पन्न पुत्र मानती है और इसी कारण उसके मौर्य होने की सार्थकता प्रमाणित करती है। किन्तु यह अनुश्रुति कल्पनायुक्त ही है, क्योंकि पाणिनि

के व्याकरण के अनुसार मुरा शब्द से मौर्य शब्द नहीं बन सकता। मुरा नामक स्त्री की सन्तान 'मोरेय' होगी। मौर्य शब्द की व्युत्पत्ति तो पुंलिंग 'मुर' से ही हो सकती है। एक जैन अनुश्रुति के अनुसार चन्द्रगुप्त एक ऐसे गाँव- प्रधान की कन्या का पुत्र था जहाँ मयूरपोषक निवास करते थे। इस कारण उसका वंश मौर्य- वंश के नाम से प्रतिष्ठित हुआ। बौद्ध- ग्रन्थ महावंश के आधार पर चन्द्रगुप्त क्षत्रियकुमार था। रामचन्द्र मुमुक्षुरचित 'पुण्याश्रव कथाकोश' में चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय कहा गया है। कुछ मध्यकालीन अभिलेख और 'दिव्यावदान' भी उसे क्षत्रिय घोषित करते हैं। पर ग्रीक इतिहासकार जस्टिन चन्द्रगुप्त को 'साधारण कुल' में जन्मा घोषित करता है। किन्तु जस्टिन के इस कथन के सम्बन्ध में अधिकांश विद्वानों का कहना है कि 'साधारण कुल' शब्द चन्द्रगुप्त के 'वैभवहीन' अथवा 'असम्पन्न' कुल का द्योतक है, उसकी शूद्र जातीयता का नहीं। इस प्रकार चन्द्रगुप्त एक क्षत्रियकुमार था।

चन्द्रगुप्त मौर्य

उत्कर्ष- जब चन्द्रगुप्त बड़ा हुआ तो उसने मगध के राजा के यहाँ सेना में नौकरी कर ली। अपनी विशिष्ट कार्य- कुशलता के कारण सेना में उसने सेनापति के पद को सुशोभित किया। किन्तु अपने स्वामी के दुर्व्यवहार के कारण उसके विरुद्ध विद्रोह किया जिसके फलस्वरूप उसे मृत्युदण्ड का आदेश दिया गया। लेकिन चन्द्रगुप्त मगध से भागने में सफल हुआ और उसने नन्दवंश का नाश करने का दृढ़ संकल्प लिया। उसे इस कार्य में सहायता चाणक्य[1] से प्राप्त हुई, जो किसी धार्मिक अनुष्ठान में नन्दराज घनानन्द से अपमानित हुआ था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए दोनों मित्र विन्ध्याचल के वनों की ओर चले गये। चाणक्य ने अपने धन- सहयोग से एक सेना तैयार की और इस सेना की सहायता से मगध पर आक्रमण किया, किन्तु नन्दराज की शक्तिशाली सेना के सम्मुख उन्हें पराजित होना पड़ा और वे जान बचाकर मगध से भाग खड़े हुए। उन्हें अपनी इस भूल का ज्ञान हुआ कि उन्हें अपने उद्देश्य की पूर्ति सीधे मगध पर आक्रमण न करके राज्य की पश्चिमोत्तर सीमा से करनी चाहिए थी।[2] कहा जाता है कि इसी समय सिकन्दर पंजाब में था। अतः चन्द्रगुप्त सिकन्दर से मिला, किन्तु चन्द्रगुप्त के स्वतन्त्र विचारों के कारण सिकन्दर ने उसका वध कर देने की आज्ञा दे दी। चन्द्रगुप्त अपने प्राण बचाकर भाग खड़ा हुआ। सिकन्दर के भारत से चले जाने के बाद चन्द्रगुप्त ने पंजाब की असन्तुष्ट जातियों को संगठित किया और ग्रीक सेनाओं को भारत से निकाल बाहर किया। यूनानी सरदार युडैमस अन्य यूनानियों के साथ भारत छोड़कर भाग गया। जो यूनानी सैनिक भारत में रह गये उनका वध कर दिया गया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त ने सम्पूर्ण पंजाब पर अपना अधिकार कर लिया।

---

1. अनेक शास्त्रकारों ने चाणक्य के अन्य नाम विष्णुगुप्त, वात्स्यायन, मल्लनाग, कौटिल्य, चणकात्मज, वराणक, द्रमिल, पक्षिलस्वामी और अंगुल घोषित किये हैं।
2. एक वृद्धा की कथा है कि- जहाँ वे टिके हुए थे वहीं एक वृद्धा खाना पकाकर अपने बच्चे को खिला रही थी। बच्चा रोटी बीच से तोड़कर खाने लगा तो वृद्धा ने कहा- "तू तो पागल हुआ है, चन्द्रगुप्त की तरह बीच में तोड़ना चाहता है, वहाँ जल जायगा।"

नन्दवंश का विनाश और चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण

यूनानियों को भारत से निकाल चुकने के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने नन्द के विनाश के लिए एक सशक्त सेना संगठित की और पर्वतक नाम के एक शक्तिशाली राजा की सहायता से मगध पर आक्रमण किया। **'मुद्राराक्षस'** के अनुसार कुछ अन्य राजा भी चन्द्रगुप्त के साथ थे जिनमें कुलूत (कुल्लू) का राजा चित्रवर्मा, मलय (सम्भवतः मालवगण) का राजा सिंहनाद, कश्मीर का राजा पुष्कराक्ष, सिन्धु (सिंध) का राजा सिंधुषेण और पारसीक का राजा मेघाक्ष प्रमुख थे। चन्द्रगुप्त दो वर्ष में पाटलिपुत्र पहुँचा। उसकी सेनाओं ने पाटलिपुत्र को इस प्रकार घेर लिया जैसे प्रलय के समुद्र से पृथ्वी घिर जाती है। अन्त में भीषण युद्ध के बाद सम्राट घनानन्द मारा गया। राजा पर्वतक ने मगध साम्राज्य का आधा भाग हस्तगत करने का प्रयास किया। इस भीषण परिस्थिति में चाणक्य ने चन्द्रगुप्त की मदद की। उसने अपनी कूटनीति द्वारा पर्वतक और उसके पुत्र मलयकेतु का वध करा दिया। इस प्रकार समस्त मगध साम्राज्य पर चन्द्रगुप्त का आधिपत्य स्थापित हो गया और 322 ई० पू० चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक कर दिया।

चन्द्रगुप्त की उत्तरी एवं दक्षिणी भारत की विजय

चन्द्रगुप्त ने उत्तर-पश्चिम भारत को अपने आधिपत्य में करके अपने साम्राज्य की सीमा सिन्धु के पूर्वी तट तक कर ली। इसके पश्चात् बंगाल को भी अपने अधीन कर लिया। सौराष्ट्र का उसके आधिपत्य में होना रुद्रदामन के जूनागढ़वाले शिलालेख से प्रमाणित है। यूनानी लेखक **जस्टिन** और **प्लूटार्क** ने इस बात का समर्थन किया है कि चन्द्रगुप्त ने 6 लाख सैनिकों द्वारा समस्त भारत को रौंद डाला था। तमिल लेखक **मामुलनार** और **परणार**, टिन्नेवेल्ली जिले के पोदियिल पर्वत तक सुदूर दक्षिण पर मौर्य आक्रमण का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार जैन अनुश्रुति और कुछ उत्तरकालीन अभिलेख भी उत्तर मैसूर के साथ चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध सिद्ध करते हैं। इस प्रकार भारत का बहुत बड़ा भाग चन्द्रगुप्त के अधिकार में था।

सिल्यूकस से युद्ध

सीरिया के सम्राट सिल्यूकस[1] ने 305 ई० पू० एक विशाल सेना द्वारा भारत पर आक्रमण किया। चन्द्रगुप्त ने सिन्धु नदी के उस पार सिल्यूकस की सेना का सामना किया। सिल्यूकस पराजित हुआ और उसे चन्द्रगुप्त से एक अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी। सन्धि की शर्तें निम्नलिखित थीं:

सन्धि की शर्तें :- (1) सिल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को एरिया (हिरात), कंदहार (आर्कोसिया), काबुल घाटी (परोपनिसदी), बिलोचिस्तान (गेड्रोसिया) के चार प्रान्त भेंट किये।

(2) सिल्यूकस ने अपनी कन्या का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ किया।

(3) चन्द्रगुप्त ने भेंट-स्वरूप 500 हाथी सिल्यूकस को प्रदान किए।

(4) सिल्यूकस ने मेगस्थनीज नाम का अपना राजदूत चन्द्रगुप्त के दरबार में भेजा।

साम्राज्य-विस्तार- इस प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में हिन्दूकुश और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक फैला हुआ था।

---

१. सिकन्दर के सेनापतियों में यह भी एक सेनापति था जो सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् शक्तिशाली होकर सीरिया का सम्राट बना।

चन्द्रगुप्त की शासन-व्यवस्था

चन्द्रगुप्त की शासन-व्यवस्था के विषय में हमारे ज्ञान के दो ही प्रमुख आधार हैं- प्रथम तो मेगस्थनीज की 'इण्डिका' नामक पुस्तक है जिसके उद्धरण अन्य लेखकों की पुस्तकों से उपलब्ध हैं। द्वितीय, कौटिल्य की अर्थशास्त्र नामक पुस्तक हैं, जो कि 1905 में खोज निकाली गई है। इण्डिका और अर्थशास्त्र में उपलब्ध चन्द्रगुप्त की शासन-व्यवस्था का वर्णन अलग-अलग किया जायेगा।

मेगस्थनीज द्वारा वर्णित शासन-व्यवस्था

(1) सैन्य-प्रबन्ध- चन्द्रगुप्त की सेना चार भागों में विभाजित थी : (1) पैदल, (2) अश्वारोही, (3) हाथी और (4) रथ। उसकी सेना में 6,00,000 पदाति, 30,000 अश्वारोही, 9,000 हाथी और 8,000 रथ थे। इस विशाल सेना का प्रबन्ध एक युद्ध-परिषद् द्वारा होता था। इस परिषद् के सदस्य पाँच-पाँच की छः समितियों में विभक्त थे। प्रत्येक का कार्य एक-दूसरे से भिन्न था। प्रथम समिति का कार्य जलसेना की व्यवस्था करना था। दूसरी समिति सेना की आवश्यक वस्तुओं एवं रसद का प्रबन्ध करती थी। तीसरी समिति पैदल सेना का प्रबन्ध करती थी। चौथी समिति अश्व-सेना, पाँचवीं समिति रथ-सेना एवं छठीं समिति गज-सेना की व्यवस्था करती थी।

2. नगर-प्रशासन- मेगस्थनीज लिखता है कि नगर का प्रशासन पाँच-पाँच सदस्यों की छः समितियाँ करती थीं। इन समितियों के कार्य और नाम इस प्रकार थे :

(i) औद्योगिक शिल्प एवं कला समिति- इस समिति का कार्य औद्योगिक शिल्पों एवं कलाओं का निरीक्षण करना था। शिल्पी के अंगों को क्षति पहुँचाने वाले को मृत्युदण्ड दिया जाता था।

(ii) विदेशियों की देखभाल की समिति- इस समिति का कार्य विदेशियों की गतिविधि को देखना और उनके लिए आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था करना था। विदेशियों की मृत्यु होने पर उनके दाह-संस्कार की व्यवस्था करना भी इस समिति का कार्य था।

(iii) जन-गणना समिति- इस समिति का कार्य जन्म-मरण की रजिस्ट्री करना था तथा जन-गणना करने का भार भी इसी पर था।

(iv) व्यापार समिति- यह समिति विक्रय की वस्तुओं का संरक्षण करती थी और माप-तौल का निरीक्षण करती थी।

(v) उद्योग समिति- इस समिति का कार्य उद्योग-गृहों के मालिकों तथा व्यक्तिगत वस्तुओं के निर्माण करनेवालों का निरीक्षण करना था ताकि वे पुरानी वस्तुएँ नयी वस्तुओं के साथ मिलाकर न बेचें।

(vi) कर-वसूली समिति- इस समिति का कार्य वस्तुओं पर लगा कर वसूल करना था। यह कर वस्तुओं के मूल्य का दशमांश होता था। कर से बचने वाले अपराधी को प्राणदण्ड मिलता था।

मेगस्थनीज द्वारा वर्णित शासन-व्यवस्था

1. सैन्य-प्रबन्ध
2. नगर-प्रशासन
   - (i) औद्योगिक शिल्प एवं कला समिति
   - (ii) विदेशियों की देख-भाल की समिति
   - (iii) जन-गणना समिति
   - (iv) व्यापार-समिति
   - (v) उद्योग समिति
   - (vi) कर-वसूली समिति
3. ग्राम-शासन
4. न्याय और दण्ड-व्यवस्था

(3) ग्राम-शासन- शासन का सबसे छोटा स्वरूप ग्राम था। ग्राम-पदाधिकारी 'ग्रामिक' था, जिसके पास ग्राम-शासन का भार था। संक्षेप में, इसका कार्य भूमिकिर, सिंचाई, जंगल, यातायात आदि के निरीक्षण का था।

4) न्याय और दण्ड-व्यवस्था- चन्द्रगुप्त के पास कोई भी साधारण व्यक्ति पहुँच पकता था। वह दिन में न्यायालय में उपस्थित रहता तथा प्रजा की शिकायतें सुनता था। मेगस्थनीज कठोर दण्डनीति का उल्लेख करता है कि शिल्पी को अंगहीन करने तथा राजकर को जानबूझकर न देनेवाले को प्राणदण्ड मिलता था। व्याभिचार तथा विश्वासघात करने वालों के लिए अंगच्छेदन का दण्ड निर्धारित था।

पाटलिपुत्र- मेगस्थनीज द्वारा वर्णित शासन-व्यवस्था का उल्लेख करते हुए पाटलिपुत्र के विपय में कुछ विवरण देना अप्रासंगिक न होगा। मेगस्थनीज के अनुसार यह नगर (मगध की राजधानी) सोन और गंगा के तट पर स्थित था। यह 15 किमी० लम्वा और पौने तीन किमी० चौड़ा था। नगर के चतुर्दिक 185 मीटर चौड़ी और 18 मीटर गहरी एक खाई थी। इसके अतिरिक्त रक्षार्थ एक प्राचीर चारों ओर थी, जिसमें 570 बुर्जियाँ और 64 फाटक थे। अन्य नगरों की रक्षा-व्यवस्था भी इसी प्रकार की रही होगी। नगर के बीच सम्राट का भव्य राजप्रासाद वना हुआ था जो 42 मीटर लम्बा और 36 मीटर चौड़ा था। काष्ठ-निर्मित होने के वावजूद राजप्रासाद में सुनहले खम्वे लगे थे।

राजप्रासाद- मेगस्थनीज ने चन्द्रगुप्त के राजप्रासाद का भी वर्णन किया है। वह लिखता है, "चन्द्रगुप्त का जीवन बड़े वैभव और तड़क-भड़क का है। उसने अपने निवास के लिए एक वहुत विशाल और भव्य प्रासाद का निर्माण कराया है। उसके स्तम्भ सुनहले हैं, उसके दरबार में चमकते सोने और चाँदी की चीजों से आँखों में चकाचौंध हो जाती है।"

चन्द्रगुप्त के प्रासाद के भग्नावशेष आधुनिक पटना के समीप कूम्रहार नामक गाँव में डॉ० स्पूनर ने खोद निकाले हैं। खुदाई के फलस्वरूप प्रासाद में लगे खम्वों की दो पंक्तियाँ पायी गयी हैं जिनके बीच 4.35 मीटर का अंतर है। खम्बों की ऊँचाई जमीन की सतह से 3.75 मीटर है और ये जमीन के अन्दर 1.5 मीटर गहरे गाड़े गये हैं।

चन्द्रगुप्त का व्यक्तिगत जीवन- सम्राट चन्द्रगुप्त की शरीर-रक्षक सेना नारियों की थी। मेकगस्थनीज ने लिखा है कि सम्राट निरन्तर प्राण-भय से आशंकित रहता था और इसी कारण लगातार दो रातें एक ही कमरे में नहीं बिता सकता था। सम्राट अपने प्रासाद से चार अवसरों पर वाहर जाता था- युद्ध-यात्रा, यज्ञानुष्ठान, न्याय-वितरण और आखेट के निमित्त। वह अत्यंत कर्त्तव्यपरायण था और जब आबनूस के मुद्गरों से वह अपने शरीर को दबवाता था तब भी वह प्रजा के अभियोग सुनता था। आखेट के समय उसका मार्ग रस्सियों से घेर दिया जाता था और इसको लाँघने के लिए प्राणदण्ड का विधान था। जब सम्राट राजमार्ग पर निकलता था तब वह सोने की पालकी में सवार होता और सुन्दर कढ़े हुए चमकवाले वस्त्र पहनता था। यात्रा करते समय वह अश्व तथा गज का प्रयोग करता था। खेल उसे पसन्द थे। उसको भेंड़ा, साँड़ों, गजों और गैड़ों के मरणान्तक युद्ध प्रिय थे। वृषभ-धावन उसका एक अन्य मनोरंजन था और इस धावन पर लोग खूब बाजी लगाते थे।

कौटिल्य द्वारा वर्णित शासन- व्यवस्था

"प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजा के हित में उसका हित है। जो कुछ राजा को प्रिय हो, वह उसे हित नहीं समझे, प्रत्युत् जो प्रजा को प्रिय हो, उसे ही वह हित माने।"

- आचार्य कौटिल्य

कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में शासन- सम्बन्धी सिद्धान्तों का वर्णन किया है। इन्हीं सिद्धान्तों को चन्द्रगुप्त ने कार्य रूप में परिणत किया।

(अ) केन्द्रीय- शासन- सम्राट शासन का प्रधान था और उसके तीन प्रमुख कार्य थे- शासन- सम्बन्धी, न्याय- सम्बन्धी और सैनिक- कार्य। सम्राट ही उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति तथा धन की व्यवस्था करता था। वह विदेशी राजदूतों के संवाद सुनता तथा अपने राजदूतों को अन्य राज्यों में नियुक्त करता था। वह प्रधान न्यायाधीश था। युद्ध के समय वह सेना का नेतृत्व करता था।

कौटिल्य ने लिखा है, "राजसत्ता बिना सहायता के सम्भव नहीं, अकेला एक पहिया नहीं चल सकता, अतः राजा को चाहिए कि वह मन्त्रियों की नियुक्ति करे और उनके परामर्श को सुने।"

कौटिल्य के अनुसार सार्वजनिक कार्यों पर सम्राट को मन्त्रणा देने के लिए तीन- चार अमात्य थे। इसके अतिरिक्त एक मन्त्रिपरिषद् थी, जिसके सदस्यों की संख्या कम- से- कम बारह और अधिक- से- अधिक बीस हो सकती थी। **'अर्थशास्त्र'** में राज्यों के अट्ठारह पदाधिकारियों (विभागाध्यक्षों) के नाम इस प्रकार दिये हैं : (1) **मन्त्री**, (2) **पुरोहित**, (3) **सेनापति**, (4) **युवराज**, (5) **दौवारिक** (द्वारों का रक्षक), (6) **अन्तर्वेशिक**, (अन्तःपुर का रक्षक), (7) **प्रशास्ता** (पुलिस विभाग का अध्यक्ष), (8) **समाहर्ता** (कर एवं चुंगी इकट्ठा करने वाला सर्वोच्च पदाधिकारी), (9) **सन्निधाता** (कोषाध्यक्ष), (10) **प्रदेष्टा** (फौजदारी का मुख्य न्यायाधीश), (11) **पौर व्यावहारिक** (अदालत का मुख्य विचारक), (12) **नायक** (नगर का पुलिस अफसर), (13) **कार्मान्तिक** (कारखानों का अधिकारी), (14) **मन्त्रिपरिषदाध्यक्ष** (परिषद् प्रधान), (15) **दण्डपाल** (पुलिस अध्यक्ष), (16) **दुर्गपाल** (दुर्ग रक्षाधिकारी), (17) **आटविक** (वन- रक्षण अधिकारी) और (18) **अन्तपाल** (सीमा रक्षाधिकारी)। इन विभागाध्यक्षों के अतिरिक्त सेना, चुंगी, वाणिज्य, कपड़ा बुनना, कृषि, अश्व, रथ, पैदल तथा जलसेना इत्यादि के लिए एक- एक अध्यक्ष होता था।

(ब) प्रांतीय शासन- शासन की सुव्यवस्था की दृष्टि से समस्त साम्राज्य को प्रान्तों में विभक्त कर दिया गया था। प्रान्तीय शासक राजवंश के राजकुमार होते थे। छोटे प्रान्तों व जिले के शासकों को राजुक के नाम से सम्बोधित किया जाता था। समीप के प्रान्तों का शासन स्वयं सम्राट करता था। अशोक के अभिलेखों से प्रमाणित है कि तक्षशिला, तोषलि, (तोसाली), सुवर्णगिरि, पाटलिपुत्र और उज्जयिनी प्रान्तीय शासन के प्रमुख केन्द्र थे। प्रान्तीय शासक सम्राट के प्रति पूर्णरूपेण उत्तरदायी थे। उन्हें सम्राट् की समस्त आज्ञाएँ मान्य थीं। प्रांत के शासकों को 12,000 पण वार्षिक वेतन मिलता था।

(स) जनपद व ग्राम- शासन- प्रत्येक प्रान्त अनेक जनपदों में विभक्त था। जनपद के निम्नलिखित विभाग होते थे :

(1) **स्थानीय** (बड़ा नगर) जिसमें 800 ग्राम शामिल थे।
(2) **द्रोणमुख** (नगर) जिसमें 400 ग्राम शामिल थे।
(3) **खार्वटिक** (बड़ा कस्बा) जिसमें 200 ग्राम शामिल थे।
(4) **संग्रहण** (कस्बा) जिसमें 100 ग्राम शामिल थे।
(5) **ग्राम**।

ग्राम शासन की सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई थी जिसका प्रबन्ध 'ग्रामिक' करता था। जिस प्रकार ग्राम का अधिकारी ग्रामिक होता था, उसी प्रकार संग्रहण का 'ग़ोंप', स्थानीय का **'स्थानिक'** और जनपद का **'समाहर्ता'** अधिकारी होता था। सम्भवतः स्थानीय, द्रोणमुख और खार्वटिक शासन की दृष्टि से एक ही विभाग थे। प्रत्येक ग्राम में राज्य की ओर से **'ग्राम भृतक'** अथवा **'ग्राम- भोजक'** होता था। वह ग्रामिक तथा वृद्धों की सहायता से ग्राम में व्यवस्था रखता था।

कौटिल्य द्वारा वर्णित शासन- व्यवस्था
(अ) केन्द्रीय शासन
(ब) प्रान्तीय शासन
(स) जनपद व ग्राम- शासन
(द) न्याय- व्यवस्था
(य) गुप्तचर विभाग
(र) आय- व्यय के साधन

(द) न्याय- व्यवस्था- कौटिल्य ने दो प्रकार के न्यायालयों का उल्लेख किया है! प्रथम **धर्मस्थीय** और द्वितीय **कण्टक- शोधन**। धर्मस्थीय न्यायालय के अन्तर्गत सम्पत्ति का उत्तराधिकार, भवनों का क्रय- विक्रय, ऋण, धरोहर, जुआ, चोरी, खेत, चरागाह आदि से सम्बन्धित विवाद आते थे। कंटक- शोधन न्यायालय के अन्तर्गत राजनीतिक अपराध, राजकीय कर्मचारियों का दुराचार, बलात्कार, बड़ी चोरी या डकैती, कम माप- तौल, न्याय का उल्लंघन तथा शिल्पियों की रक्षा आदि के मामले उपस्थित किये जाते थे। कौटिल्य ने छोटे- छोटे अपराधों तक के लिए मृत्युदण्ड की व्यवस्था की थी। अपराधियों से अपराध स्वीकार कराने के लिए विविध प्रकार की यातनाएँ दी जाती थीं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि कौटिल्य ने कठोर दण्डनीति की व्यवस्था की थी।

(य) गुप्तचर विभाग- सम्राट् चन्द्रगुप्त का गुप्तचर विभाग बहुत अच्छा संगठित था। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से ज्ञात होता है कि गुप्तचर विभाग के केन्द्र अनेक स्थानों पर होते थे। इन केन्द्रों को 'संस्था' कहते थे। गुप्तचर लोग जिस किसी रहस्य का पता लगाते थे, उसे अपने साथ सम्बद्ध 'संस्था' में पहुँचा देते थे। वहाँ से वह बात सम्बन्धित राजकर्मचारी के पास पहुँच जाती थी। इसके लिए गुप्तलिपि का प्रयोग किया जाता था। संस्था और गुप्तचरों के बीच मध्यस्थ का कार्य गुप्त वेश वाली स्त्रियाँ करती थीं। ये स्त्रियाँ वेश्या, कुशीलवा, दासी, शिल्पकारिका, भिक्षुणी आदि के नानाविध रूप बनाकर गुप्तचरों के भेद को 'संस्था' तक पहुँचाती थीं। पुरुष गुप्तचर तापस, कापटिक (छद्मकारी छात्र), उदास्थित (संन्यासी), बैदेहक (व्यापारी) तथा गृहपति (गृहस्थ) आदि के रूप में कार्य करते थे। गुप्तचर लोग विदेशों में भी कार्य करते थे। एक इतिहासकार का कथन है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के गुप्तचर विश्वसनीय थे और झूठी शिकायतें नहीं करते थे।

(र) आय- व्यय के साधन- 'अर्थशास्त्र' के अनुसार समाहर्ता निम्नलिखित सात मार्गों से राष्ट्र की आय एकत्रित करता था। इन्हें राष्ट्र का आय- शरीर कहा जाता था।

(1) दुर्ग- इसमें चुंगी, जुर्माना, पौतव (तराजू-बाट), नगराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष, सूनाध्यक्ष (फाँसी देनेवाला), सुराध्यक्ष, सुवर्णाध्यक्ष, वास्तुक (शिल्पी), वेश्यागृह, द्यूतगृह आदि से प्राप्त आय सम्मिलित थी।

(2) राष्ट्र- इसमें कृषि-भाग (छठा भाग), बली (उपहार आदि), कर (फल, वृक्ष आदि का कर), वणिक्-कर (व्यापार-कर), नदी पाल-तर (नदी पार करने का कर), नगर से प्राप्त धन, पशुशाला से मिला हुआ धन, वर्तनों (मार्ग-कर) आदि से प्राप्त आय सम्मिलित थी।

(3) खनिज- इसमें सोना, चाँदी, हीरा, मणि, मोती, शंख, लोहा, नमक तथा अन्य खनिज-पदार्थों की आय सम्मिलित थी।

(4) सेतु- इसमें फूल, फल, कन्दमूल आदि की आय सम्मिलित थी।

(5) वन- इसमें मृग, हाथी आदि पशु तथा लकड़ी की आमदनी सम्मिलित थी।

(6) व्रज- इसमें गाय, भैंस, बकरी, भेंड़, गधा, ऊँट, घोड़ा, खच्चर आदि जानवरों से प्राप्त आय सम्मिलित थी ।

(7) वणिक्-पथ- इसमें स्थल-मार्ग और जल-मार्ग से प्राप्त आय सम्मिलित थी।

व्यय के मार्ग निम्नलिखित थे। इन्हें राष्ट्र का व्यय-शरीर कहा जाता था।

(1) देवपूजा, पितृपूजा, दान, स्वस्तिवाचन आदि धार्मिक कृत्यों पर व्यय।
(2) अन्तःपुर, रसोईघर आदि निजी आवश्यकताओं पर व्यय।
(3) कोष्ठागार, शस्त्रागार, पण्यगृह, कुप्यगृह आदि पर व्यय।
(4) कमन्ति (कारखाना), विष्टि (मजदूर) आदि पर व्यय।
(5) घोड़ा, रथ, हाथी तथा पैदल सेना पर व्यय।
(6) गाय, बैल आदि उपयोगी पशुओं पर व्यय।
(7) लकड़ी, चारा आदि के संग्रह पर व्यय।

व्यय करने के उपरान्त जो आय का शेष बचता था उसे 'नीवी' कहते थे। समाहर्ता इस नीवी की वृद्धि में सदैव सचेष्ट रहता था।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि चन्द्रगुप्त की शासन-व्यवस्था अत्यन्त उच्चकोटि की थी। उसकी शासन-व्यवस्था की प्रशंसा करते हुए **विन्सेन्ट स्मिथ** ने लिखा है, "चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन-व्यवस्था पूर्ण थी, जबकि हमें वह केवल संकेत के रूप में ही प्राप्त होती है। विभागों का विभाजन और कार्य-प्रणाली हमारे आश्चर्य में वृद्धि करती है कि ईसा से लगभग 300 वर्ष पूर्व इस प्रकार की शासन-व्यवस्था की स्थापना की जा सकती है और जिसको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। ऐसी शासन-व्यवस्था सम्राट् अकबर की भी नहीं थी। इसमें भी सन्देह है कि प्राचीन यूनान के किसी भी राज्य में इतनी उच्चकोटि की शासन-व्यवस्था थी।" **मोरलैंड** ने भी लिखा है, "शासन के सम्बन्ध में मेगस्थनीज के फुटकर वर्णनों के अनुसार यह स्पष्ट है कि यह शासन पूर्ण विकसित तथा भली प्रकार संगठित था।"[1]

चन्द्रगुप्त का अन्त- जैन अनुश्रुतियों के अनुसार चन्द्रगुप्त जैन था। जैन विधान के अनुसार अनशन करके उसने अपने प्राण दिये। इस प्रकार 24 वर्ष के शासन के बाद लगभग 298 ई० पू० चन्द्रगुप्त की मृत्यु हुई।

---

1. "Regarding administration we can see in the fragments of Magesthenese that it was elaborated and highly organised." -Moer Land

बिन्दुसार (298 ई० पू० से 273 ई० पू०)

चन्द्रगुप्त मौर्य के उपरान्त उसका पुत्र बिन्दुसार लगभग 298 ई० पू० में मगध की गद्दी पर बैठा। उसे पुराणों में 'वारिसार', जैन ग्रन्थों में 'सिंहसेन' एवं यूनानी ग्रन्थों में 'अमित्रोन्वेटीस' (अमित्रघात) कहा गया है। बिन्दुसार के विषय में हमें बहुत कम जानकारी मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने अपने शासनकाल में कोई नयी विजय नहीं की वरन् अपने पिता चन्द्रगुप्त मौर्य से प्राप्त साम्राज्य की पूरी सुरक्षा की। उसके शासनकाल की प्रमुख घटना तक्षशिला का विद्रोह था जिसे उसके पुत्र अशोक ने अपनी सैनिक-शक्ति से दबा दिया था। बिन्दुसार ने भी अपने पिता की भाँति मैत्रीपूर्ण विदेशी नीति अपनायी। उसके राजदरबार में सीरिया का राजदूत डाइमेकस था।

बिन्दुसार को धर्म एवं दर्शन में विशेष रुचि थी। उसके राज्यकाल के प्रारम्भिक समय में कौटिल्य उसका प्रधानमन्त्री रहा और बाद में खल्लाटक। पच्चीस वर्ष तक शासन करने के बाद 273 ई० पू० में बिन्दुसार की मृत्यु हो गयी तथा उसका पुत्र अशोक उसका उत्तराधिकारी बना।

प्रियदर्शी अशोक (273 ई० पू० से 232 ई० पू०)

''सब मनुष्य मेरे पुत्र हैं। जिस प्रकार मैं चाहता हूँ कि मेरे पुत्र सब प्रकार के हित और सुख प्राप्त करें, उसी प्रकार मैं चाहता हूँ कि सब मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक सब तरह के हित और सुख को प्राप्त करें।''[1]

- अशोक (जौगढ़ का प्रथम अतिरिक्त शिलालेख)

अशोक का प्रारम्भिक जीवन- अशोक बिन्दुसार का पुत्र और चन्द्रगुप्त का पौत्र था। बौद्ध-ग्रन्थ दीपवंश और महावंश के अनुसार बिन्दुसार के 16 रानियाँ तथा 101 पुत्र थे। इन पुत्रों में सुमन (दिव्यावदान का सुशीम) सबसे बड़ा और तिष्य सबसे छोटा था। अशोक बिन्दुसार की किस रानी का पुत्र था, यह इतिहासकारों के लिए विवादास्पद विषय है। दिव्यावदान के अनुसार चम्पा-निवासी एक ब्राह्मण ने अपनी दर्शनीया, प्रासादिका और जन-कल्याणी पुत्री को बिन्दुसार को उपहारस्वरूप दे दिया था। जब वह अन्तःपुर में प्रविष्ट हुई, तो अन्तःपुर की अन्य रानियों ने उसकी अतिशय सुन्दरता से सशंकित होकर उसे नाइन बनाकर रखा। कालान्तर में जब यह भेद खुला तो बिन्दुसार ने उसे अपनी पटरानी बना लिया। इसी से दो पुत्र, अशोक और विगतशोक उत्पन्न हुए।[2] अभाग्यवश दिव्यावदान में उस ब्राह्मण-कन्या के नाम का उल्लेख नहीं है। अशोकावदान-माला में अशोक की माँ को सुभद्रांगी और महाबोधिवंश में धम्मा कहा गया है। टार्न आदि कतिपय इतिहासकार अशोक को यूनानी सम्राट सिल्यूकस की कन्या का पुत्र मानते हैं उनका कहना है कि सिल्यूकस की पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ नहीं बल्कि बिन्दुसार के साथ हुआ था । किन्तु यह कथन नितांत संदिग्ध है, क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई विश्वस्त प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

अशोक के कई रानियाँ थीं जिनमें देवी नामक पत्नी अधिक प्रसिद्ध है। यह विदिशा के एक श्रेष्ठी (व्यापारी) देव की पुत्री थी। इसी पत्नी से उत्पन्न सन्तान महेन्द्र और संघमित्रा थे।

1. "All men are my children, and, just as I desire for my children that may enjoy every kind of prosperity and happiness both in this world and in the next, so also I desire the same for all men.''
2. अधिकांश विद्वान् तिष्य और विगतशोक को एक ही व्यक्ति मानते हैं।

दूसरी पत्नी पद्मावती थी जिससे कुणाल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था और जो कालान्तर में अपनी विमाता तिष्यरक्षिता द्वारा अन्धा करा दिया गया था। अशोक की अन्य रानियों में असन्धिमित्रा (आसन्दिमित्रा) और कारुवाकी उल्लेखनीय हैं। महावंश के अनुसार असन्धिमित्रा अशोक की पटरानी थी। कारुवाकी से तीवर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

अशोक का राज्यारोहण- पौराणिक तिथि के अनुसार बिन्दुसार की मृत्यु 273 ई० पू० हुई और अशोक का राज्याभिषेक 269 ई० पू० के लगभग हुआ। सामान्यतया पिता की मृत्यु के उपरान्त तुरन्त ही उसके पुत्र को राज-सिंहासन प्राप्त होता है तथा उसका राज्याभिषेक होता है, परन्तु अशोक के राज्यारोहण तथा राज्याभिषेक के बीच 4 वर्ष का अन्तर है। **डॉ० जायसवाल** का कथन है, "बिन्दुसार की मृत्यु के समय अशोक की अवस्था 21 वर्ष थी और

सम्राट अशोक

राज्याभिषेक के लिए युवराज की अवस्था 25 वर्ष होनी चाहिए। इस कारण चार वर्ष का विलम्ब हुआ।" यदि इस कथन को स्वीकार किया जाय तो यह प्रश्न उठता है कि 4 वर्ष तक शासन-संचालन किसके द्वारा हुआ। सिंहली वृत्तांतों के अनुसार अशोक अपने सहोदर तिष्य को छोड़कर शेष 99 भाइयों को तलवार के घाट उतार कर राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। **डॉ० स्मिथ** इस सिंहली अनुश्रुति से सहमत नहीं हैं कि अशोक अपने 99 भाइयों का वध करके सिंहासन पर आसीन हुआ होगा। सत्य तो यह प्रतीत होता है कि अशोक को सम्भवतः अपने भाई सुशीम से राज-सिंहासन के लिए संघर्ष करना पड़ा हो और उसका वध करके विजयी हुआ हो, इसलिए राज्यारोहण और राज्याभिषेक के बीच चार वर्षों का अन्तर है।

अशोक की विजयें

(1) कश्मीर-विजय- कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण पंजाब पर चन्द्रगुप्त ने अपना आधिपत्य स्थापित किया था। अतः अशोक ने सर्वप्रथम कश्मीर पर आक्रमण किया और उसे अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। कश्मीर पर अशोक का प्रभुत्व होना कल्हणकृत राजतरंगिणी से प्रमाणित है।

(2) कलिंग-विजय- राज्याभिषेक के आठवें वर्ष के पश्चात् 261 ई० पू० अशोक ने कलिंग (आधुनिक उड़ीसा) पर आक्रमण किया। मेगस्थनीज के अनुसार वहाँ की सेना में आठ हजार पदाति, एक हजार घुड़सवार और सात सौ हाथी थे। कलिंग के निवासियों ने अपने नरेश के नेतृत्व में अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अशोक की सेनाओं का बड़ी तत्परता से सामना किया, किन्तु विजय अशोक की ही हुई। तेरहवें शिलालेख में उल्लिखित है, "वहाँ डेढ़ लाख मनुष्य बन्दी बनाकर देश से बाहर ले जाए गये, एक लाख मनुष्य मारे गये और इससे कई गुना आदमी (महामारी आदि से) मरे। देवताओं के प्रिय अशोक को इससे बहुत दुःख और खेद हुआ।" इससे स्पष्ट होता है कि भीषण युद्ध हुआ था। इस रक्तरंजित भीषण युद्ध को देखकर अशोक का हृदय इतना द्रवित हुआ कि उसने कभी युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार अशोक सदैव के लिए 'युद्ध-विराम-नीति' का अनुगामी हो गया। कलिंग-युद्ध के शीघ्र बाद देवानांप्रिय धम्म के अनुकरण, धम्म के प्रेम और धम्म के उपदेश के प्रति उत्साहित हो उठा।

अशोक का धम्म (धर्म)

कलिंग-युद्ध के पश्चात् अशोक ने बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लिया। कुछ लोगों ने उसके बौद्ध होने में सन्देह प्रकट किया है, किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसने बभ्रु शिलालेख में बुद्ध, धम्म और संघ-तीनों के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है। प्रथम स्तम्भ-लेख से पता लगता है कि अशोक पहले ढाई वर्ष केवल बौद्ध-धर्म का उपासक मात्र रहा। इसके पश्चात् वह संघ में सम्मिलित हो गया और धर्म-प्रचार में पूर्णरूपेण संलग्न हो गया।[1] अशोक ने बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले तीर्थस्थानों-लुम्बिनी, कपिलवस्तु, बुद्धगया, सारनाथ और कुशीनगर की स्थविर उपगुप्त के साथ यात्रा की। अशोक ने अपने को बौद्ध-धर्म का संरक्षक मानते हुए संघ-भेदकों के विरुद्ध कुछ दण्ड-विधान घोषित किये। उसने ऐसे यज्ञों और समारोहों को बन्द करा दिया, जिनमें पशु-वध होता था। अशोक ने राजकीय भोजनालय में दैनिक दो मोर और एक हिरन का वध भी बन्द करा दिया और स्वयं निरामिष हो गया। अशोक ने अपने उपदेशों में निम्नलिखित ऐसी बातों का समावेश किया जिन्हें प्रत्येक मनुष्य को अपने दैनिक जीवन में दत्तचित्त होकर पालन करना चाहिए-

(1) माता-पिता, उच्च व्यक्तियों और बड़े-बूढ़ों की आज्ञा मानना,
(2) मित्रों, परिचितों, सम्बन्धियों, कुटुम्बियों, ब्राह्मणों और श्रमणों को दान देना,
(3) प्राणियों की हिंसा न करना तथा उन पर दया करना,
(4) कम वस्तुओं को संचित करना तथा कम व्यय करना,
(5) कुटुम्ब, सम्बन्धी, दास, सेवक, ब्राह्मण, श्रमण, बड़े-बूढ़े, दरिद्र और पीड़ित व्यक्तियों के साथ उचित व्यवहार करना,
(6) मन एवं कर्म की शुद्धि करना तथा
(7) मित्र, परिचित, साथी, कुटुम्ब, सम्बन्धी, दास, सेवक के प्रति नम्रता और स्नेह रखना।

अशोक के दृष्टिकोण से उपरोक्त नियमों का पालन करना और क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या, निष्ठुरता, उग्र व्यवहार आदि बुराइयों से दूर रहना ही 'धर्ममंगल' कहलाता है।

अशोक के 'धम्म' की विशेषताएँ

अशोक के 'धम्म' की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

(1) सार्वभौमिकता- अशोक का धम्म (धर्म) सार्वभौम था। उसके धर्म में सभी धर्मों के श्रेष्ठ सिद्धान्तों का समन्वय था। उसमें न तो साम्प्रदायिकता और संकीर्णता थी, न धर्मान्धता और धार्मिक कट्टरता।

(2) श्रेष्ठ पवित्र नैतिकता- अशोक के धर्म में श्रेष्ठ नैतिकता और पवित्र आचरण पर बल दिया गया था। मानव जीवन के नैतिक आचरण से धर्म को जोड़ दिया गया था। धर्म की सफलता के लिए शुद्ध नैतिक आचरण को अनिवार्य माना गया।

(3) मूल धार्मिक तत्वों पर बल- अशोक ने मूल धार्मिक तत्वों पर अधिक बल दिया था। धार्मिक बाह्य आडम्बरों एवं अनुष्ठानों को महत्वहीन बतलाया गया। अशोक के धर्म में दार्शनिक सिद्धान्तों तथा बाह्य क्रिया-विधियों को निरर्थक बतलाया गया।

(4) अहिंसा की उच्चता- सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा का सिद्धांत प्रतिपादित करके अशोक के धर्म में अहिंसा को ऊँचा स्थान दिया गया था।

(5) अन्य धर्मों के लिए स्थान- कोई भी व्यक्ति अशोक के धर्म को अंगीकार कर के अन्य

अशोक के 'धम्म' की विशेषताएँ
1. सार्वभौमिकता
2. श्रेष्ठ पवित्र नैतिकता
3. मूल धार्मिक तत्वों पर बल
4. अहिंसा की उच्चता
5. अन्य धर्मों के लिए स्थान
6. लोक-कल्याण
7. धार्मिक उदारता और सहिष्णुता
8. आडम्बरहीनता

1. "अधिकानि अड़ातियानि वतानि च हकं उपासके नो तु खो बाढं पंकते हुसं एकं संवे उपयीते बाढं चमे पंकते।" (प्रथम स्तम्भ-लेख)

धर्म का भी पालन कर सकता था। धर्मावलम्बी अपना-अपना धार्मिक विश्वास रखते हुए अशोक के धर्म को मान सकते थे। अशोक का धर्म सभी धर्मावलम्बियों में सद्भावना उत्पन्न करने के लिए था, उनके धर्मों का अनादर करने के लिए नहीं था।

(6) लोक-कल्याण- अशोक के धर्म-प्रचार के पीछे लोक-कल्याण की भावना निहित थी। धर्म को व्यावहारिक रूप देने के लिए अशोक ने जन-कल्याण और परोपकारिता के अनेकानेक कार्य किए।

(7) धार्मिक उदारता और सहिष्णुता- अशोक के धर्म में धार्मिक कटुता और संकीर्णता के लिए कोई स्थान नहीं था। धर्म में उदारता और सहिष्णुता की प्रमुखता थी। स्वयं अशोक सभी प्रचलित धर्मों के प्रति आदर और श्रद्धा रखता था।

(8) आडम्बरहीनता- अशोक के धर्म में बाह्य आडम्बरों, अनुष्ठानों और विडम्बनाओं को कोई स्थान नहीं था।

अशोक द्वारा बौद्ध-धर्म का प्रचार

बौद्ध-धर्म का अनुयायी होने के साथ-ही-साथ अशोक ने इस धर्म के प्रचार के लिए भरसक प्रयास किया। अशोक ने निम्नलिखित प्रयासों द्वारा इस धर्म का प्रचार किया :

(1) स्वयं सम्राट द्वारा धर्म का पालन- अशोक ने स्वयं बौद्ध-धर्म का पालन सच्ची लगन से किया। बौद्ध-संघ में प्रविष्ट होकर भिक्षु की भाँति स्वयं जीवन व्यतीत किया। अहिंसा के लिए उसने पशु-वध निषेध कर दिया और स्वयं मांस-भक्षण करना छोड़ दिया। अशोक के इस पवित्र जीवन-यापन का प्रभाव जनता पर विशेष रूप से पड़ा और वह स्वयं बौद्ध-धर्म में दीक्षित होकर उसके सिद्धान्तों का पालन करने लगी।

(2) बौद्ध-धर्म को राजधर्म बनाना- अशोक ने बौद्ध-धर्म को राज-धर्म का स्थान प्रदान किया। प्रथम स्तम्भ-लेख के अनुसार अशोक ढाई वर्ष तक उपासक रहा। इसके पश्चात् वह संघ में सम्मिलत होकर धर्म-प्रचार के कार्य में संलग्न हो गया और बौद्ध-धर्म को राजधर्म स्वीकार किया। उसने युक्तों, रज्जुकों और प्रादेशिकों को इस वात का आदेश दे रखा था कि वे प्रजा में निम्न धर्म-विषयक बातों का उपदेश करें- "मनुष्य का सबसे प्रधान कर्त्तव्य माँ-वाप की सेवा करना है, मित्रों, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों एवं श्रमिकों के प्रति उदार बनना है। जीवों की हत्या न करना और थोड़ा धन संग्रह करना और उसी के अनुसार थोड़ा खर्च करना ही मनुष्य का धर्म है।" इन सभी बातों से जनता में इस धर्म के प्रति अनुराग पैदा हो गया। अशोक के उत्तराधिकारियों ने भी इस धर्म को अपनाया और आश्रय दिया।

अशोक द्वारा बौद्ध-धर्म का प्रचार

1. स्वयं सम्राट द्वारा धर्म का पालन
2. बौद्ध-धर्म को राज-धर्म बनाना .
3. धर्म-यात्रा
4. धर्म-श्रवण
5. राजकीय धर्म-विभाग की स्थापना
6. शिलालेख, स्तम्भ आदि पर बौद्ध-धर्म के सिद्धान्त अंकित करवाना
7. जन-हित के कार्य
8. पशु-वध निषेध
9. तृतीय बौद्ध-सम्मेलन
10. दान-व्यवस्था
11. पालि भाषा का प्रयोग
12. धर्म-दूतों को विदेशों में भेजना
13. धर्मानुशासन-सम्बन्धी नियमों का निर्माण
14. मठों का निर्माण और उनकी सहायता

(3) धर्म-यात्रा- अशोक ने विहार यात्राओं की जगह धार्मिक यात्राएँ प्रारंभ कीं। इन यात्राओं में ब्राह्मणों और श्रमणों का दर्शन करना और उन्हें दान देना, वृद्धों का दर्शन करना और उन्हें सुवर्ण देना, ग्रामवासियों के पास जाकर धर्म का उपदेश देना और धर्म-सम्बन्धी चर्चा करना आदि होता था। दूसरे शब्दों में, इन यात्राओं में वह जनता को नैतिक आचरण करने की शिक्षा देता था। इस कार्य में उसके कर्मचारी पूर्ण सहयोग प्रदान करते थे। धार्मिक यात्राओं में उसने स्वर्ग में पुण्यात्माओं द्वारा भोगे जानेवाले आनन्दों के दृश्य जनता के सामने रक्खे, स्वभावतः इन प्रदर्शनों से वह बौद्ध-धर्म की ओर आकर्षित हुई।

(4) धर्म-श्रवण- अशोक ने बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए धर्म-श्रवण की व्यवस्था

करायी, जिसमें धार्मिक विषयों पर भाषण दिये जाते थे। सातवें स्तम्भ-लेख से प्रकट होता है कि अशोक समय-समय पर अपनी प्रजा को धार्मिक संदेश देता था। यही संदेश धर्म-श्रवण के नाम से जाने जाते हैं। युक्तों, रज्जुकों और प्रादेशिकों को भी इस बात का निर्देश था कि वे जनता में धार्मिक विषयों पर अपने विचार प्रकट करें।

(5) राजकीय धर्म-विभाग की स्थापना- अशोक ने बौद्ध-धर्म के प्रचार हेतु कुछ ऐसे पदाधिकारियों की नियुक्ति की जिनका कार्य जनता के बीच आध्यात्मिक एवं नैतिक विचारों का प्रचार करना था। इस कार्य के लिए अलग से एक राजकीय धर्म-विभाग की स्थापना की गई। इस विभाग का प्रमुख अधिकारी धर्ममहामात्र था। धर्ममहामात्रों का प्रमुख कार्य प्रति पाँचवें वर्ष यात्रा करना और जनसाधारण को उपदेश देना था। इनके कार्य के निरीक्षण के लिए गुप्तचर-विभाग की स्थापना की गई थी।

(6) शिलालेख-स्तम्भ आदि पर बौद्ध-धर्म के सिद्धान्त अंकित करवाना- अशोक ने धर्म-प्रचार के लिए ताकि वह जन-साधारण तक सरलता से पहुँच सके, बौद्ध-धर्म के उपदेशों एवं सिद्धान्तों को शिलालेखों, स्तम्भों आदि पर अंकित करवाया। यह उपदेश एवं सिद्धान्त जन-साधारण की भाषा में लिखवाये गये थे, जिससे सभी उनको समझ सकें और लाभान्वित हो सकें। इन अभिलेखों से इस धर्म के प्रचार में बड़ा सहयोग मिला। इस समय के 14 शिलालेख, 7 स्तम्भ-लेख, कुछ गुह्य-लेख और कुछ फुटकर अभिलेख प्राप्त हैं।

(7) जनहित के कार्य- अशोक ने जनहित के लिए ऐसे कार्यों को सम्पादित करवाया जिनसे धर्म-प्रचार में बड़ा योग मिला। उसने अपना दयाभाव मनुष्यों के अलावा पशुओं के प्रति भी प्रकट किया। उसने पशुओं की चिकित्सा के लिए औषधालयों की स्थापना करवाई। उसके इस कार्य की पुष्टि उसके द्वितीय शिलालेख से होती है। जनहित के कार्यों के विषय में सातवें स्तम्भ-लेख में वह कहता है, "सड़कों पर भी मैंने मनुष्यों और पशुओं को छाया देने के लिए वरगद के पेड़ लगवाये, आम के पेड़ों की वाटिकाएँ लगवायीं, आठ-आठ कोस पर कुएँ खुदवाये, सरायें बनवायीं और जहाँ-तहाँ पशुओं तथा मनुष्यों के उपकार के लिए अनेक पौंसले (आपान) बैठाये। किन्तु यह उपकार कुछ भी नहीं है। पहिले के राजाओं ने और मैंने भी विविध प्रकार के सुखों से लोगों को सुखी किया है। किन्तु मैंने यह (सुख की व्यवस्था) इसलिए की है कि लोग धर्म के अनुसार आचरण करें।" इससे जनता को बहुत लाभ हुआ।

(8) पशु-वध निषेध- अशोक ने अपने पाँचवें स्तम्भ-लेख में पशुओं के अंगच्छेदन तथा उनके वध के विरुद्ध कुछ विधानों का उल्लेख किया है। उसने अपनी रसोई में मारे जाने वाले दैनिक दो मोर और एक हिरण का वध भी सदैव के लिए बन्द करवा दिया तथा स्वयं शाकाहारी हो गया। उसने ऐसे यज्ञों को भी बन्द करा दिया जिनमें पशुवध होता था। अन्य प्रकार से भी पशु-पक्षियों की जो हत्या होती थी उसे भी अशोक ने बन्द करवा दिया। इस प्रकार उसने 'अहिंसा परमोधर्मः' का सिद्धान्त अपने जीवन का मूलमंत्र बना लिया था।

(9) तृतीय बौद्ध सम्मेलन- अशोक ने बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण के लिए अपने राज्याभिषेक के सत्रहवें वर्ष मोग्गलिपुत्त तिस्स (उत्तरी ग्रन्थों के अनुसार उपगुप्त) की अध्यक्षता में तीसरी बौद्ध-संगीति बुलाई। इस संगीति में बौद्ध-धर्म के विभिन्न दृष्टिकोणों में समन्वय स्थापित किया गया और बौद्ध-संघ के दोषों का निवारण करने का भी प्रयास किया गया। अशोक के इन प्रयत्नों से बौद्धधर्म में नया जीवन आ गया।

(10) दान-व्यवस्था- बौद्ध-धर्म के प्रचार में अशोक की दान प्रवृत्ति से बड़ा योग मिला। उसने रोगियों, भूखे तथा दीन-दुखी मनुष्यों को राज्य की ओर से दान दिये जाने की व्यवस्था कराई। उसने दानों का प्रबन्ध करने के लिए 'मुख' नामक उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति की जो उसकी रानियों और राजकुमारों के दानों की व्यवस्था करते थे। उसने ऐसी धार्मिक संस्थाओं को भी दान दिये जाने की व्यवस्था की जिनका प्रमुख उद्देश्य धार्मिक विचारों का प्रचार करना था।

(11) पालि भाषा का प्रयोग- अशोक ने जन-साधारण की भाषा पालि भाषा में बौद्ध-ग्रंथों का अनुवाद कराया। धर्म-प्रचारकों ने भी पालि भाषा का प्रयोग किया जिससे जन-साधारण को बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों के समझने में तनिक भी कठिनाई का अनुभव नहीं हुआ और इससे बौद्ध-धर्म के प्रचार में बड़ा योग मिला।

(12) धर्म-दूतों को विदेशों में भेजना- अशोक ने बौद्ध-धर्म का प्रचार सुदूर देशों में भी कराया। तृतीय बौद्ध-सम्मेलन के पश्चात् अध्यक्ष उपगुप्त ने धर्म के प्रचारार्थ दूर देशों में धर्मदूत भेजे। मज्झान्तिक कश्मीर और गांधार, मज्झिम हिमालयवर्ती प्रदेश, महादेव मैसूर तथा अशोक का पुत्र महेन्द्र व पुत्री संघमित्रा श्रीलंका भेजे गये। साथ में सम्राट-पुत्री संघमित्रा बोधिवृक्ष की एक शाखा भी ले गई। यूनानियों के राज्यों में भी इस धर्म का प्रचार किया गया। धर्म-प्रचारकों ने बर्मा, तिब्बत, चीन, जापान, कोरिया तथा पूर्वी द्वीप-समूहों में धर्म का प्रचार किया। अशोक को विदेशों में बौद्ध-धर्म प्रचार में बड़ी सफलता प्राप्त हुई, क्योंकि वह अपने एक शिलालेख में कहता है, "देवानांप्रिय धर्म के द्वारा इस विजय को मुख्य विजय समझता है। यहाँ (भारत) और पड़ोसी देश में अर्थात् छः सौ योजन (8640 किमी०) के दूर देश में भी यह विजय 'देवानांप्रिय' को प्राप्त हुई है।"

(13) धर्मानुशासन सम्बन्धी नियमों का निर्माण- अशोक ने बौद्ध-धर्म के अनुशासन-सम्बन्धी कुछ नियमों का निर्माण किया। इन नियमों के प्रचार तथा उनका पालन करवाने के लिए उसने पदाधिकारी भी नियुक्त किये। उसके धर्मानुशासन सम्बन्धी नियमों में जीव-दया, धार्मिक-सहिष्णुता, स्वतन्त्रता, नैतिक आदर्शों की प्रधानता और व्यावहारिकता आदि प्रमुख थे।

(14) मठों का निर्माण और उनकी सहायता- अशोक ने देश के विभिन्न भागों में मठों का निर्माण करवाया और उनकी पूरी सहायता भी की। इन मठों में भिक्षु-भिक्षुणी और धर्म-प्रचारक निवास करते थे। इस सुव्यवस्था से बौद्धधर्म के प्रचार का कार्य तेजी से हुआ।

अशोक की शासन व्यवस्था

मौर्य शासन-प्रणाली पहले से ही सुसंगठित थी। प्रारम्भ में अशोक ने अपने पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य के द्वारा स्थापित शासन-व्यवस्था को अपनाया था। परन्तु कलिंग-युद्ध के बाद उसका हृदय परिवर्तित हो गया। अतः उसने केवल अपने नये आदर्श एवं धर्म-विजय के कार्य-क्रम को समन्वित करने के लिए अपनी शासन-व्यवस्था में कुछ आवश्यक परिवर्तन किये। अशोक की शासन-व्यवस्था का ज्ञान हमें मुख्य रूप से उसके अभिलेखों से प्राप्त होता है।

(अ) केन्द्रीय शासन- सम्राट ही शासन का सर्वोच्च प्रधान था। उसमें कानून निर्माण करने, कानून पालन कराने एवं न्याय करने की शक्ति निहित थी। सेना का भी वही सर्वोच्च प्रधान था। उसके साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी। यहाँ सम्राट स्वयं रहता था। उसकी सहायता के लिए एक मन्त्रिपरिषद होती थी जिसके परामर्श से सम्राट कोई निर्णय देता था। राज्य के विभिन्न विभागों के लिए अध्यक्ष होते थे। अध्यक्ष के अन्तर्गत अन्य कई छोटे-बड़े अधिकारी होते थे। उनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं :

(1) महामात्र- ये एक प्रकार के मन्त्री थे। विभिन्न विभागों के महामात्र पृथक्-पृथक् नामों से जाने जाते थे। अशोक के अभिलेखों में इनका उल्लेख निम्नवत् है :

(i) धर्म महामात्र- ये राजपरिवार तथा जन-साधारण के दान आदि धार्मिक कार्यों तथा जनता में धर्म-प्रचार की देखभाल करते थे।

(ii) स्त्री अध्यक्ष महामात्र- ये साम्राज्य की स्त्रियों के उत्थान और कल्याण के कार्य करते थे।

(iii) अंत महामात्र- ये सीमाओं पर नियुक्त सीमा-सुरक्षा का कार्य करते थे।

(2) लिपिक (लेखक)- ये राजाज्ञाओं को स्तम्भों तथा गुफाओं में उत्कीर्ण कराते थे।

(3) प्रतिवेदक- ये प्रजा के सुख-दुःख की सूचना सम्राट को देते थे। इन्हें सम्राट से बिना रोक-टोक मिलने की अनुमति प्राप्त थी।

(4) राजवचनिक- ये राजाज्ञाओं को लागू करते थे।

(ब) प्रान्तीय शासन- चन्द्रगुप्त मौर्य के समय से चली आ रही प्रान्तीय शासन व्यवस्था ज्यों की त्यों इस समय भी प्रचलित थी। प्रत्येक प्रान्त का सर्वोच्च प्रशासक प्रायः राज-परिवार का ही सदस्य होता था। अशोक ने उन्हें अभिलेखों में 'आर्यपुत्र' एवं 'कुमार' कहा है।

प्रान्त अनेक छोटे-छोटे भागों में विभक्त थे। इन्हें प्रदेश तथा इनके प्रशासक को 'प्रादेशिक' कहा जाता था। प्रमुख प्रान्तीय पदाधिकारियों का उल्लेख निम्नवत् है :

(1) रज्जुक- यह भूमि का प्रबन्ध करता था।

(2) युक्त- यह राजस्व अधिकारी था।

(3) पुरुष- यह व्यवहार एवं दण्ड की व्यवस्था करता था।

(4) ब्रजभूमिक- यह पशुधन की रक्षा एवं गोशालाओं का प्रबन्ध करता था।

(स) स्थानीय शासन- अशोक के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उस समय स्थानीय प्रशासन नगर प्रशासन के रूप में था। 'नगर व्यावहारिक' नामक पदाधिकारी होते थे जिनके कार्यों की तुलना हम आधुनिक काल के सिटी मजिस्ट्रेट से कर सकते हैं।

(द) जनहित के कार्य- अशोक ने प्रजा की भलाई के लिए निम्नलिखित कार्य किए :

(1) यातायात एवं चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएँ- अशोक ने अपनी प्रजा के जीवन को सुखी बनाने के लिए सड़कें बनवायी, सड़कों के किनारे छायादार और फलदार वृक्ष लगवाये, कुएँ एवं बावलियाँ बनवायीं, धर्मशालाएँ तथा मनुष्यों और पशुओं तक के लिए चिकित्सालय खुलवाए।

(2) प्रतिवेदकों की नियुक्ति- अशोक ने अपने राज्य में प्रतिवेदकों की नियुक्ति की थी जो प्रजा के बारे में सम्राट को सीधे सूचना देते थे। प्रतिवेदकों को आदेश था कि वे सम्राट से बिना रोक-टोक के तुरन्त मिलें, चाहे सम्राट उस समय बगीचे की सैर कर रहा हो, घुड़सवारी कर रहा हो, भोजन कर रहा हो अथवा अपने रनिवास में हो।

(3) धर्ममहामात्रों की नियुक्ति- अशोक के साम्राज्य में विभिन्न धर्मों के अनुयायी अपने-अपने धर्म की अच्छाइयों को बढ़ा-चढ़ाकर जनता में उसका प्रचार करते थे। इस साम्प्रदायिक संकट से अपनी प्रजा को बचाने के लिए उसने अपने साम्राज्य में धर्म-महामात्रों की नियुक्ति की थी जो प्रजा की धार्मिक भावनाओं की रक्षा करते थे एवं उनके धार्मिक कार्यों में सहयोग देते थे। इसके अतिरिक्त दान की व्यवस्था करते थे।

(4) धर्म-यात्राएँ- अशोक ने विहार-यात्राएँ समाप्त कर, उनके स्थान पर धर्म-यात्राएँ प्रारम्भ की थीं। विहार-यात्राओं में नृत्य, संगीत एवं आखेट आदि, मनोरंजन पर अनावश्यक खर्च होता था। वह इन धर्म-यात्राओं में साधु-सन्तों एवं वृद्धजनों के दर्शन करता था और धार्मिक चर्चा करता था।

(5) कैदियों की मुक्ति- अशोक प्रतिवर्ष अपने जन्म-दिन के अवसर पर कुछ कैदियों को मुक्त कर देता था तथा मृत्यु-दण्ड पाने वाले अपराधियों को तत्काल फाँसी न देकर उन्हें तीन दिन का समय प्रायश्चित्त करने के लिये दिया जाता था। इस बीच उसके सम्बन्धी उसे छुड़ाने का प्रयास करते थे।

अशोक भारत का एक महान् सम्राट् क्यों ?

अशोक न केवल भारतीय इतिहास में ही महान् सम्राट कहलाता है, बल्कि वह विश्व के सम्राटों में महान् सम्राट के पद को सुशोभित करता है। दूसरे शब्दों में, वह विश्व के समस्त सम्राटों में अद्वितीय है। **डॉ० विन्सेन्ट स्मिथ** के अनुसार, "वह (अशोक) एक महान् सम्राट था। यदि वह योग्य न होता तो वह अपने विशाल साम्राज्य पर चालीस वर्ष तक सफलतापूर्वक शासन न कर सकता और ऐसा नाम न छोड़ गया होता जो दो हजार वर्षों के व्यतीत हो

जाने के उपरान्त लोगों की स्मृति में आज भी ताजा बना है।''[1] **एलिसन** के अनुसार, ''प्रायः अशोक की तुलना मार्क्स, ओरिलस, सेन्टपाल तथा कांस्टेण्टाइन से की जाती है, परन्तु वास्तव में किसी भी ईसाई सम्राट ने उसके समान दिये गये उपदेशों को अपने विशाल साम्राज्य के शासन का आधार नहीं बनाया।'' **डॉ० हेमचन्द्र राय चौधरी** के अनुसार, ''उसने (अशोक) उस युग में धार्मिक सहिष्णुता तथा मेल-जोल के सद्गुणों का उपदेश दिया था, जब धार्मिक कट्टरता का बोलबाला था और बौद्ध तथा जैन-सम्प्रदायों में आपसी फूट पैदा करने वाली प्रवृत्तियाँ कार्य कर रही थीं।'' **एच० जी० वेल्स** के शब्दों में, ''प्रत्येक युग और प्रत्येक राष्ट्र में ऐसे सम्राट् नहीं उत्पन्न होते। आज तक संसार के इतिहास में अशोक के समकक्ष बैठने वाला दूसरा सम्राट् नहीं हुआ है।''[2]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि अशोक में एक महान् सम्राट् होने के समस्त गुण अत्यधिक मात्रा में विद्यमान थे। उसकी महानता के प्रमुख कारणों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है:

(1) जनता का महान् सेवक- अशोक ने अपना समस्त जीवन जनता की सेवा में लगा दिया। वह अपनी प्रजा को पुत्र के समान मानता था। अपने द्वितीय कलिंग-शिलालेख में वह कहता है, ''राज्य के सभी मनुष्य मेरी सन्तान हैं। जिस तरह मैं चाहता हूँ कि मेरी सन्तान इस लोक और परलोक में सभी प्रकार का सुख और आनन्द प्राप्त करे, उसी प्रकार मैं अपनी प्रजा के सुख तथा उसकी समृद्धि की कामना करता हूँ।'' वह पुनः छठें शिलालेख में कहता है- ''मैं कितना ही परिश्रम करूँ और कितना ही राज-कार्य करूँ, मुझे सन्तोष नहीं होता। जो कुछ परिश्रम मैं करता हूँ वह इसलिये कि प्राणियों के प्रति मेरा जो ऋण है, उससे उऋण हो जाऊँ और इस लोक में लोगों को सुखी करूँ तथा परलोक में उन्हें स्वर्ग का लाभ कराऊँ।'' अशोक अपने को जनता का सेवक समझता था। वह कहता था, ''मैंने यह प्रबन्ध किया है कि हर समय चाहे मैं खाता होऊँ या अन्तःपुर में होऊँ या गर्भागार (शयनगृह) में होऊँ या टहलता होऊँ या सवारी पर होऊँ या कूच कर रहा होऊँ, सब जगह प्रतिवेदक (गुप्तचर लोग) प्रजा का हाल मुझे सुनावें। मैं प्रजा का काम सब जगह करता हूँ।'' अशोक ने कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिससे उसकी निरंकुशता व स्वेच्छाचारिता प्रकट होती हो। इसी कारण उसकी गणना महान् सम्राटों में की जाती है।

(2) महान् विजेता- अशोक एक महान् विजेता था। उसने अपने पिता बिन्दुसार के साम्राज्य में कश्मीर और कलिंग को जीतकर सम्मिलित किया था। उसके पिता बिन्दुसार ने कलिंग को अपने साम्राज्य में मिलाने का असफल प्रयास किया था। लेकिन अशोक ने कलिंग-विजय करके अपने को महान् विजेता सिद्ध कर दिखाया। बौद्ध-धर्म का अनुयायी बनकर भौतिक विजय के अतिरिक्त आध्यात्मिक विजय प्राप्त की। उसने बौद्ध-धर्म के प्रचारकों को विदेशों में प्रचार कार्य हेतु भेजा जिसमें उसको अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई। लगभग समस्त एशिया में उसने अपने धर्म का प्रचार किया। संक्षेप में, उसने भेरि-घोष के स्थान पर धर्म-घोष का कलनिनाद समुत्थित कर दिया।

1. "Ashoka was a great king. If Ashoka had not been capable , he could have not ruled his huge empire with success for forty years and left behind a name which is still fresh in the memory of men after the lapse of more than two millenninms"
-V. A Smith
2. "It is not every age, it is not every nation that can produce a king like type Ashok still remains without a parallel in the history of the world".
-H. G. Wells

(3) महान् धर्म-प्रचारक- अशोक एक महान् धर्म-प्रचारक था, जिसने स्थानीय धर्म को विश्वधर्म के पद पर आसीन किया। वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का अनुयायी था। उसने एक स्तम्भ-लेख में कहा है, "मैं धर्म की घोषणा करूँगा, धार्मिक शिक्षाओं का प्रचार करूँगा। जो लोग उसे सुनेंगे, उसके अनुसार आचरण करने के लिए प्रेरित होंगे, उनका आध्यात्मिक विकास होगा और धर्म की वृद्धि के साथ उनकी भी अभिवृद्धि होगी।" वह समस्त धर्मों को श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। उसने धर्म-प्रचार के लिए अनेक पदाधिकारियों की नियुक्ति की जिनमें 'धर्ममहामात्र' का पद प्रमुख था। अशोक स्वयं अपने पाँचवें शिलालेख में इनके विषय में कहता है, "अपने राज्याभिषेक के तेरहवें वर्ष में मैंने उनकी नियुक्ति की। वे सभी सम्प्रदायों के बीच नियुक्त किए गये हैं। उनका कार्य धर्म की स्थापना करना, धर्म की घोषणा करना तथा धर्मानुरागियों की सतत सुरक्षा एवं आनन्द के लिए प्रयत्न करना है।" इस प्रकार अशोक ने मन एवं धन से इस धर्म के प्रचार में सतत प्रयास किया।

(4) महान् शासक- अशोक की गणना विश्व के महान् शासकों में होती है। कलिंग-युद्ध के बाद उसके जीवन का लक्ष्य ही बदल गया। उसने प्रजापालन तथा उसके समस्त हितों की चिन्ता करना ही अपने जीवन का प्रमुख ध्येय समझा। उसने विहार-यात्राओं के स्थान पर धर्म-यात्राएँ आरम्भ कीं, जिनमें ब्राह्मणों, असहायों तथा दीन-दुखियों को दान दिये जाते थे। उसके शासनकाल के चालीस वर्षों में कोई आंतरिक उपद्रव नहीं हुआ और प्रजा ने सुख और शांति का उपभोग किया। अपनी प्रजा के पार्थिव और आध्यात्मिक कल्याण के लिए उसने धर्म-महामात्रों की नियुक्ति की तथा रज्जुकों-और प्रादेशिकों से लेकर युक्तों तक के लिए पाँचवें अथवा तीसरे वर्ष दौरों का विधान किया। एक शासक के रूप में अशोक की महानता इस बात में पायी जाती है कि देश के राजनीतिक जीवन में उसने आदर्शवादिता, पवित्रता तथा कर्त्तव्यपरायणता का समावेश किया। एक भिक्षु का-सा सादा जीवन व्यतीत कर राजसुलभ सभी सुखों को त्याग कर प्रजा के इहलौकिक तथा पारलौकिक हितचिन्तन में संलग्न रहकर अशोक ने जो आदर्श उपस्थित किया वह सर्वथा अनुकरणीय था।

अशोक एक महान सम्राट् क्यों ?

1. जनता का महान् सेवक
2. महान् विजेता
3. महान् धर्म-प्रचारक
4. महान् शासक
5. महान् उदारता की प्रतिमूर्ति
6. महान् राष्ट्र-निर्माता

(5) महान् उदारता की प्रतिमूर्ति- अशोक ने बौद्ध-धर्म के अनुयायियों के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों को भी अपनी संरक्षकता का लाभ प्रदान किया। अपने बारहवें शिलालेख में वह कहता है, "हर दशा में दूसरे सम्प्रदायों का आदर करना लोगों का कर्त्तव्य है। ऐसा करने से मनुष्य अपने सम्प्रदाय की अधिक उन्नति और दूसरे सम्प्रदायों का उपकार करता है।" उसने आजीविकों को 'बराबर' पहाड़ी (स्खलतिक पर्वत) पर कुछ गुफाएँ दान में दीं और विभिन्न मतावलम्बियों, जैसे- ब्राह्मणों, संगतियों, निर्ग्रन्थ आदि को भी अपनी सहिष्णुता प्रदान की। अशोक की उदारता इतनी सार्वभौमिक थी कि उसने अपने व्यक्तिगत धार्मिक विचारों को प्रजा पर लादने का प्रयास नहीं किया। जिस धर्म का रूप उसने सबके सामने रखा वह समस्त धर्मों का सार था, जिसमें न कोई दुरूह दर्शन था और न कोई आडम्बर। संक्षेप में, वह भारत के समस्त धर्मों को आदर की दृष्टि से देखता था और समय-समय पर सहायता करता रहता था।

(6) महान् राष्ट्र-निर्माता- अशोक एक महान् राष्ट्र-निर्माता था। उसने भारत को एक राष्ट्र के रूप में परिणत करने के लिए जन-साधारण की पालि भाषा का प्रयोग किया। उसने साम्राज्य के अधिकांश भाग में ब्राह्मी लिपि का प्रयोग कराया और खरोष्ठी लिपि का प्रयोग केवल पश्चिमोत्तर प्रदेश में ही किया। इस प्रकार भाषा और लिपि की एकता ने समस्त राष्ट्र को एकता के सूत्र में संगठित किया। उसने न्याय-व्यवस्था के क्षेत्र में समानता के सिद्धान्त को स्वीकार किया। अशोक ने शिल्प तथा स्थापत्य-कला के विकास में बड़ा सहयोग दिया। उसके काल के बने स्तम्भ आज भी उच्चकोटि की कला के जीते-जागते नमूने हैं। उसने भारतवर्ष भर में 84,000 स्तूपों का निर्माण कराया था।

उक्त आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि "अशोक का स्थान विश्व के इतिहास में ऊँचा है। एक विशाल पैमाने पर धर्म-संगठन और धर्म-प्रचार की योजना संसार के इतिहास में अशोक द्वारा एक अभिनव, परन्तु सफल प्रयास था। लोकहित के आदर्श के लिए जीवन के सभी साधनों का समर्पण संसार के इतिहास में कोई उपमा नहीं रखता।" इतिहासकार **एच० जी० वेल्स** ने अशोक के विषय में लिखा है- "इतिहास के स्तम्भों को भरनेवाले सहस्रों राजाओं, सम्राटों , धर्माधिकारियों, सन्त-महात्माओं आदि के मध्य अशोक का नाम उज्ज्वल और आकाश में प्रायः एकाकी तारे की भाँति प्रकाशमान है।"[1] **डॉ० हेमचन्द्रराय चौधरी** ने ठीक ही कहा है, "अशोक भारत के इतिहास में सबसे अधिक दिलचस्प व्यक्तियों में से एक है। उसमें चन्द्रगुप्त का शौर्य, समुद्रगुप्त का व्यापक गुण-तत्व और अकवर की व्यापक उदारता थी।"[2] अशोक वास्तव में एक महान् सम्राट् था।

अशोक के शिलालेख (धर्मलेख)

अशोक के शिलालेख मोटे तौर पर दो भागों में बाँटे जा सकते हैं। एक तो वह जो शिलाओं या चट्टानों पर खुदे हुए हैं और दूसरे यह जो पत्थर के स्तम्भों पर खुदे हुए हैं। शिलाओं पर खुदे हुए लेख भी तीन भागों में विभाजित किये जा सकते हैं-एक शिलालेख दूसरे लघु शिलालेख, तीसरे गुफालेख। स्तम्भ लेख भी दो भागों में बाँटे जा सकते हैं—एक स्तम्भ लेख, दूसरे लघु स्तम्भ लेख। अशोक ने द्वितीय स्तम्भलेख में अपने धर्मलेख लिखवाने का उद्देश्य निम्न शब्दों में प्रकट किया है : "यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया है कि लोग इसके अनुसार आचरण करें और यह चिरस्थायी रहें ! जो इसके अनुसार आचरण करेगा, वह पुण्य का काम करेगा।" अशोक के शिलालेखों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया है :

(1) चतुर्दश शिलालेख- अशोक के लेखों में ये सबसे प्रधान हैं। इनकी आठ प्रतियाँ आठ विभिन्न स्थानों पर अविकल या अपूर्ण रूप में मिली हैं। जिन स्थानों पर ये चौदह लेख मिले हैं, वे निम्नलिखित हैं :

---

1. "Amidst tens and thousands of the names monarchs that crowd the columns of history, their majesties and graciousness and serenities and royal highness and the like, the name of Ashoka shines and shines almost alone as star." -H. G. wells
2. "Ashoka is one of the most interesting personalities in the history of India. He had the energy of Chandra Gupta, versatility of Samudra Gupta and catholicity of Akbar." -Dr. H. R. Chaudhary

(i) शाहबाजगढ़ी (पेशावर जिला), (ii) मंसेहरा (हजारा जिला), (iii) कालसी (देहरादून जिला), (iv) गिरनार (जूनागढ़ के समीप), (v) सोपारा (थाना जिला), (vi) धौली (उड़ीसा का पुरी जिला), (vii) जौगढ़ (आन्ध्रप्रदेश का गंजाम जिला), (viii) इरागुड़ी (आन्ध्रप्रदेश का कुर्नूल जिला)।

चौदह शिलालेखों में से प्रथम शिलालेख में पशु-बलि की निन्दा की गई है। द्वितीय शिलालेख में मनुष्यों तथा पशुओं के लिए दवादारू के प्रबन्ध का वर्णन किया गया है। तृतीय शिलालेख में राज-पदाधिकारियों को हर पाँच वर्ष के बाद भ्रमण करने का निर्देश दिया गया है तथा 'धर्म' के नियमों को भी घोषित किया गया है। चतुर्थ शिलालेख में भी धर्म सम्बन्धी कुछ अन्य नियम लिखे हुए हैं। पंचम शिलालेख में धर्म-महामात्रों की नियुक्ति का वर्णन मिलता है। छठे शिलालेख में आत्म-संयम की शिक्षा दी गई है। सातवें और आठवें शिलालेखों में अशोक की तीर्थयात्राओं का उल्लेख है। नौवें शिलालेख में सच्ची भेंट और सच्चे शिष्टाचार की व्याख्या है। दसवें शिलालेख में आदेश दिया गया है कि राजा तथा उच्च राज-कर्मचारियों को सदा प्रजा के हित की चिन्ता करनी चाहिए। ग्यारहवें शिलालेख में बताया गया है कि धर्म का वरदान सर्वश्रेष्ठ है। बारहवें शिलालेख में सभी मतावलम्बियों के सत्कार की बात कही गई है। तेरहवें शिलालेख में कलिंग-युद्ध और वहाँ के हत्याकांड का वर्णन है। चौदहवें शिलालेख में लोगों को धार्मिक जीवन व्यतीत करने की बार-बार प्रेरणा दी गई है।

(2) लघु शिलालेख- चतुर्दश शिलालेखों की भाँति ये भी साम्राज्य के दूर-दूर प्रदेशों से उपलब्ध हुए हैं। इनकी विविध प्रतियाँ निम्नलिखित स्थानों पर मिली हैं :

(1) रूपनाथ (जबलपुर जिला), (2) सहसराम (बिहार प्रान्त का शाहाबाद जिला), (3) वैराट (राजपूतांना के जयपुर के पास एक गाँव), (4) मास्की (आन्ध्रप्रदेश का रायचूर जिला), (5) सिद्धपुर (मैसूर में चीतलद्रुग जिला), (6) जतिंग-रामेश्वर (चीतलद्रुग जिला), (7) ब्रह्मगिरि (चीतलद्रुग जिला)।

(3) भाब्रू शिलालेख- राजपूताना के जयपुर में वैराट नगर के पास ही एक चट्टान पर यह लेख उत्कीर्ण है।

(4) दो कलिंग शिलालेख- दो शिलालेख उड़ीसा के धौली और जौगढ़ जिलों में पाये गये हैं। इनमें से दूसरे में अशोक की कलिंग-विजय का उल्लेख है।

(5) स्तम्भ-लेख : [क] सप्त स्तम्भ-लेख- शिलाओं के समान स्तम्भों पर भी अशोक ने धर्मलेख उत्कीर्ण कराये थे। ये स्तम्भलेख निम्नलिखित स्थानों पर उपलब्ध हुए हैं :

(i) **दिल्ली-टोपरा स्तम्भ-** पहले यह स्तम्भ दिल्ली से 144 किमी की दूरी पर यमुना के किनारे टोपरा में था। सुल्तान फिरोजशाह तुगलक इसे दिल्ली ले आया था और वहाँ उस स्थान पर स्थापित कर दिया था, जो अब दिल्ली दरवाजे के बाहर 'फिरोजशाह का कोटला' कहलाता है।

(ii) **दिल्ली-मेरठ स्तम्भ-** यह पहले मेरठ में था। फिरोजशाह तुगलक इसे भी दिल्ली ले आया था और काश्मीरी दरवाजे के उत्तर-पश्चिम में पहाड़ी पर स्थापित करा दिया था। **(iii) इलाहाबाद स्तम्भ, (iv) लौरिया अरराज स्तम्भ, (v) लौरिया नन्दनगढ़ स्तम्भ, (vi) रामपुरवा स्तम्भ।**

[ख] लघु स्तम्भ-लेख- ये तीन स्थानों पर उत्कीर्ण हुए मिले हैं। ये स्थान निम्नलिखित हैं : **(1) सांची, (2) इलाहाबाद, (3) सारनाथ।**

इलाहाबाद का स्तम्भ प्रारम्भ में प्राचीन कौशाम्बी नगरी (वर्तमान कोसम) में स्थापित किया गया था और इसलिए उसको प्रायः इलाहाबाद-कोसम स्तम्भ के नाम से कहा जाता है। इलाहाबाद के स्तम्भ पर एक दूसरा लघु शिलालेख है जिसको 'रानी का लेख' कहा गया है क्योंकि इसमें अशोक की दूसरी रानी कारुवाकी के दान का उल्लेख है।

[ग] दो तराई स्तम्भ-लेख- अशोक के दो लघु स्तम्भलेख उत्तरप्रदेश के बस्ती जिले के उत्तर में नेपाल की तराई में पाये गये हैं। इनमें से एक स्तम्भ परारिया ग्राम के समीप रुम्मिनदेई के मंदिर के निकट खड़ा है जिस पर एक लेख उत्कीर्ण है। उसमें लिखा है—'यहाँ शाक्य मुनि बुद्ध उत्पन्न हुए थे।' दूसरा स्तम्भ निग्लीव ग्राम के समीप निगली सागर नामक एक बड़े सरोवर के पश्चिमी तट पर स्थित है। ये दोनों स्तम्भलेख इन स्थानों में अशोक की यात्रा के स्मारक के रूप में हैं।

(6) गुफालेख- बिहार में गया से लगभग 24 किमी उत्तर की ओर, 'बराबर' की पहाड़ी पर, जिसको प्राचीनकाल में खलतिक पर्वत के नाम से कहते थे, चार कृत्रिम गुफाएँ हैं, जिनमें से तीन में अशोक के लेख खुदे हुए हैं। इन लेखों से विदित होता है कि इनमें से दो गुफाएँ अशोक द्वारा आजीवक सम्प्रदाय को प्रदान की गई थीं।

अशोककालीन शिलालेख

शाहबाजगढ़ी और मंसेहरा के लेख खरोष्ठी लिपि में खुदे हैं जो अरबी की भाँति दाहिनी से बाईं ओर लिखी जाती है। शेष सारे लेख ब्राह्मी लिपि में हैं जो वर्तमान नागरी लिपि का मूल है और जो बाईं से दाहिनी ओर को लिखी जाती है।

अशोक के कुछ नये शिलालेख निम्नलिखित स्थानों पर अभी हाल में मिले हैं :

(i) गुर्जरा नामक स्थान पर (झाँसी से 19 किमी उत्तर व दतिया से 19 किमी० दक्षिण-पूर्व में स्थित) 'सिद्धों की टोरिया' पहाड़ी के नीचे एक विशाल शिला पर पाँच पंक्तियों का एक लघु शिलालेख मिला है। इसके आरम्भ में अशोक राजा को 'प्रियदर्शी' कहा गया है।

(ii) दिल्ली कैलाश कालोनी की ओर पहाड़ी की एक चट्टान पर एक लघु शिलालेख 1966 में मिला है। यह ब्राह्मी लिपि के बड़े-बड़े अक्षरों में है।

(iii) उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर के 'अहरौरा' नामक स्थान पर एक लघु शिलालेख 1971 में मिला है। उसमें भगवान् बुद्ध की अस्थियों के ऊपर स्तूप निर्माण किये जाने का उल्लेख

है। प्रस्तुत शिलालेख से यह बोध होता है कि यह स्तूप अशोक की धर्म-यात्रा के 256 दिन बाद निर्मित कराया गया था।

(iv) पश्चिम समुद्रतट प्रदेश में थाना जिले के सोपरा नामक स्थान पर अशोक के शिलालेख मिले हैं।
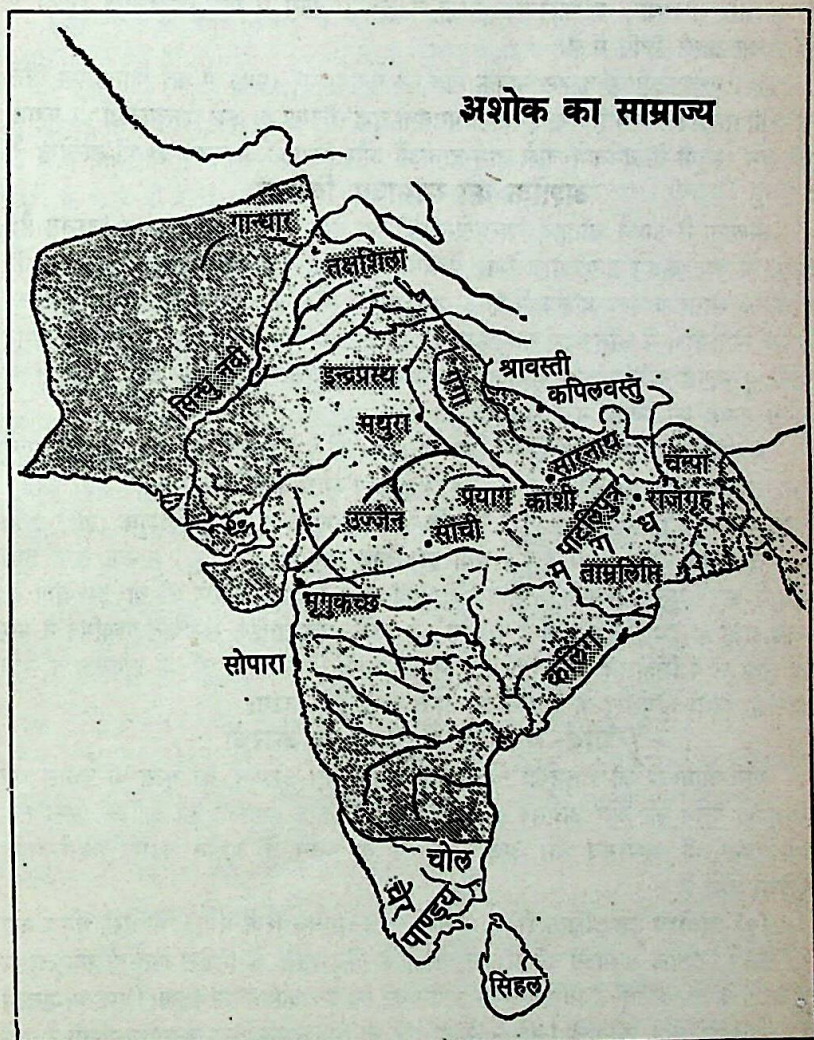
(v) सन् 1958 में अशोक का एक महत्वपूर्ण शिलालेख भारत की सीमा के बाहर अफगानिस्तान में शरीकुन नामक स्थान पर एक विशाल शिला पर मिला है जो ग्रीक तथा अरमेक भाषाओं में लिखा गया है।

(vi) कंजार में एक अन्य शिलालेख 1963 में मिला है जिस पर 22 पंक्तियों की नई सामग्री उपलब्ध हुई है।

(vii) मध्यप्रदेश के सिहोर जिले के पानगुडारी नामक स्थान से 1982 में दो नये शिलालेख मिले हैं जिनमें से अशोक ने अपने वंश के 'महाराजकुमार' को अन्य बातों के साथ यह निर्देश दिया है कि वह उस स्थान पर आने वाले सभी बौद्ध-भिक्षुओं को आवश्यक सुविधायें प्रदान कराएँ।

(viii) राजस्थान के भीलवाड़ा जिले के बदनोर ग्राम में एक शिलालेख 1984 में मिला है जो ब्राह्मी लिपि में है।

(ix) मध्यप्रदेश के बरहट नामक गाँव की पहाड़ी पर 1985 में कई शिलालेख मिले हैं। ये सभी ब्राह्मी लिपि में हैं तथा इन पर 'भगवतो बुद्ध' लिखा है। कुछ शिलालेखों पर पहाड़ी पर ही बने, स्तूपों के बनवाने वाले दान-दाताओं और भिक्षुओं के नामों का भी उल्लेख है।

अशोक का साम्राज्य-विस्तार

अशोक ने अपने चौदहवें शिलालेख में कहा है, "मेरा साम्राज्य बहुत विस्तृत है।' अशोक का यह कथन उन शिलालेखों से प्रमाणित है जो सम्पूर्ण भारत में पाए जाते हैं। अशोक का साम्राज्य उत्तर-पश्चिम में हिन्दू-कुश से पूर्व में बंगाल तक और उत्तर में हिमालय की तराई से दक्षिण में चीतलदुर्ग तक फैला हुआ था। इसमें पूर्व और पश्चिम के अन्तिम समुद्र तटवर्ती भू-खण्ड कलिंग और सौराष्ट्र भी शामिल थे। प्राचीन भारत का कोई सम्राट् इतने वृहत् भू-खण्ड का स्वामी नहीं हुआ है।

अशोक के उत्तराधिकारी— ईसा से 232 वर्ष पूर्व अशोक की मृत्यु हो गई। मृत्यु के बाद उसका पुत्र कुणाल (232 ई. पू. - 224 ई. पू.) मगध के राजसिंहासन पर बैठा। कुणाल के बाद **दशरथ** (224-216 ई. पू.), **संप्रति** (216-207 ई. पू.), **शालिशुक** (207-206 ई.पू.), **देवशर्मा** (206-199 ई.पू.) तथा **शतधनुष** (199-191 ई.पू.) नामक राजा हुए। दशरथ ने अपने पूर्वज अशोक के समान 'देवानांप्रिय' की उपाधि धारण की थी। इस वंश का अन्तिम राजा वृहद्रथ (191-184 ई.पू.) था, जिसको उसके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने मार डाला तथा स्वयं सिंहासन पर बैठकर एक नये राजवंश की स्थापना की जो शुंगवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मौर्यवंश के शासन का अन्त 184 ई.पू. हुआ।

मौर्य-साम्राज्य के पतन के कारण

मौर्य-साम्राज्य जो चतुर्मुखी विकास से समृद्ध था, अशोक की मृत्यु के पचास वर्ष उपरान्त ही पतन की ओर अग्रसर हो गया। इतने विशाल साम्राज्य का अधिक काल तक स्थायी रहना भी असम्भव था। अत: साम्राज्य के पतन के प्रधान कारण निम्नलिखित दृष्टिगोचर होते हैं :

(1) अयोग्य उत्तराधिकारी— अशोक के उत्तराधिकारियों में एक भी ऐसा योग्य नहीं था जो इतने विशाल साम्राज्य को सँभाल पाता। केन्द्रीय शक्ति के निर्बल होते ही सम्राज्य के सुदूर भागों के प्रांतपतियों ने विद्रोह करके अपने की स्वतन्त्र घोषित कर दिया। जिस अत्याचारी प्रवृत्ति को अशोक ने सदैव के लिये तिलांजलि दे दी थी, उसके कुछ उत्तराधिकारियों ने उसे पुन: अपनाया। अत: प्रजा में मौर्य शासकों के प्रति कोई सहानुभूति न रह गई। अशोक के कई पुत्रों में साम्राज्य के लिए संघर्ष चला। यह सब मौर्य-साम्राज्य के लिए अहितंकर सिद्ध हुआ।

(2) अशोक की अहिंसा-नीति— कुछ विद्वानों ने मौर्य-साम्राज्य के पतन में अशोक की अहिंसा की नीति को उत्तरदायी बताया है, जो सैनिक दृष्टि से साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई। अशोक के समय में ही सैनिक-शक्ति क्षीण होने लगी थी और सैनिक भी युद्ध की ओर से पूर्णतया उदासीन हो गये थे। अशोक के उत्तराधिकारी भी सैनिक-शक्ति को न बढ़ा सके।

(3) अशोक की धार्मिक नीति- अशोक की धार्मिक नीति ने हिन्दुओं को और विशेषकर ब्राह्मणों को मौर्य-साम्राज्य का शत्रु बना दिया, क्योंकि वे बौद्ध-धर्म की उन्नति के सम्मुख ब्राह्मणधर्म का पतन नहीं देख सकते थे। यही कारण है कि उन्होंने मौर्य-साम्राज्य के पतन में सक्रिय हिस्सा लिया और पुष्यमित्र की सहायता भी की।

(4) अन्तःपुर और दरबार के षड्यंत्र- अशोक के अनेक पुत्रों और रानियों में पारस्परिक विद्वेष था, जिससे वे एक दूसरे के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा करते थे। अशोक की मृत्यु के बाद दरबार में दो दल हो गये। एक दल सेनापति की अध्यक्षता में और दूसरा प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में था। यह षड्यन्त्र और दलबन्दी साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई। अशोक की रानी तिष्यरक्षिता ने षड्यन्त्र रचकर युवराज कुणाल को नेत्र-विहीन करा दिया। इसी प्रकार के षड्यन्त्रों के कारण अन्तिम मौर्य-सम्राट बृहद्रथ की हत्या उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने की और स्वयं मगध का सम्राट बन बैठा।

(5) यातायात के साधनों का अभाव- किसी भी साम्राज्य को सुदृढ़ रखने के लिए यातायात के साधनों का होना परमावश्यक है। लेकिन मौर्यकाल में यातायात के साधनों का अभाव था जिसके कारण सुदूर प्रांतों की शासन-व्यवस्था सुचारु रूप से संचालित नहीं हो सकी और केन्द्रीय शासन के नियंत्रण में शिथिलता आ गई। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रान्तीय शासकों में स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता की भावना पैदा हो गई। जनता भी उनके शासन से ऊब कर स्वतन्त्रता के लिए उन्मुख हो गई। यातायात के साधनों के अभाव के कारण कोई भी विद्रोह दबाया नहीं जा सका।

मौर्य-साम्राज्य के पतन के कारण

1. अयोग्य उत्तराधिकारी
2. अशोक की अहिंसा-नीति
3. अशोक की धार्मिक नीति
4. अन्तःपुर और दरबार के षड्यन्त्र
5. यातायात के साधनों का अभाव
6. यवनों के आक्रमण
7. राजकीय कर्मचारियों की निरंकुशता
8. गुप्तचर विभाग की शिथिलता

(6) यवनों के आक्रमण- मौर्य-साम्राज्य की शक्ति को क्षीण होते देख वैक्ट्रिया के यवनों ने भी लाभ उठाया और उन्होंने मगध राज्य के पश्चिमोत्तर प्रदेश पर आक्रमण किया। जिस पश्चिमोत्तर प्रदेश पर चन्द्रगुप्त ने अपना आधिपत्य स्थापित करके मौर्य-साम्राज्य की स्थापना की थी, उस प्रदेश पर यवनों का आक्रमण हो जाने से इस साम्राज्य का पतन शुरू हो गया।

(7) राजकीय कर्मचारियों की निरंकुशता- केन्द्रीय शक्ति के निर्बल हो जाने से राज्य के कर्मचारियों ने अत्याचार करना शुरू कर दिया। उन्होंने जनता के साथ निरंकुशता का व्यवहार किया। अतः जनता का राज्य के प्रति विद्रोह करना स्वाभाविक था। बिन्दुसार के शासन-काल में तक्षशिला की जनता ने अमात्यों के कठोर शासन से ऊबकर विद्रोह किया था। अशोक ने जो उस समय उज्जैन का प्रान्तीय सूबेदार था, इस विद्रोह को शान्त किया था और तक्षशिला के प्रान्तीय सूबेदार का पद सँभाला था। अतः ऐसे शासन का चिरकाल तक स्थायी रहना असम्भव था।

(8) गुप्तचर विभाग की शिथिलता- चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-काल में गुप्तचर विभाग अत्यन्त क्रियाशील था जिससे सम्पूर्ण साम्राज्य की प्रत्येक बात का ज्ञान रहता था। लेकिन अशोक के शासन-काल में गुप्तचर विभाग की उपेक्षा की गई जिससे इस विभाग में

शिथिलता आ गई। इसका परिणाम राज्य के लिए अहितकर हुआ, क्योंकि राज्य-कर्मचारी गुप्तचर विभाग के नियन्त्रण से मुक्त होकर स्वतन्त्र रूप से कार्य करने में संलग्न हो गए।

उपरोक्त कारणों से मौर्य-साम्राज्य का गौरवशाली दीपक सदैव के लिए ज्योतिहीन हो गया।

मौर्यकालीन सभ्यता और संस्कृति

मौर्यकालीन सभ्यता और संस्कृति के अन्तर्गत मौर्यवंश के शासनकाल की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक दशा का वर्णन किया जायेगा।

सामाजिक दशा- मौर्यकालीन सामाजिक अवस्था का विवरण इस प्रकार है :

(1) वर्ण-व्यवस्था- मेगस्थनीज के अनुसार मौर्यकालीन समाज सात जातियों में विभक्त था। (1) दार्शनिक (ब्राह्मण वर्ग), (2) कृषक, (3) गोपालक, (4) शिल्पी, माँझी, (5) क्षत्रिय योद्धा, (6) चर (निरीक्षक) और (7) अमात्य। मेगस्थनीज ने लिखा है कि पहली जाति दार्शनिकों की थी। ये संख्या और सम्मान में सबसे उच्च थे। दूसरी जाति किसानों की है। वे राजा को भूमिकर देते हैं और अपनी स्त्री तथा बच्चों के साथ देहात में निवास करते हैं। तीसरी जाति में अहीर, गड़ेरिया तथा अन्य चरवाहे हैं जो डेरे में रहते हैं। चौथी जाति में शिल्पी और माँझी आदि हैं जो अनेक प्रकार के औजारों का निर्माण करते हैं। पाँचवीं जाति क्षत्रिय योद्धाओं की है जो युद्ध के लिए सदैव सुसज्जित रहते हैं। छठीं जाति निरीक्षक लोगों की है जो राज-कर्मचारियों के कार्यों की सूचना देते हैं। सातवीं जाति सभासदों , अमात्यों और शासन-संचालन करने वालों की है। इनमें राजा के मन्त्री, कोषाध्यक्ष तथा न्यायकर्ता आदि शामिल हैं। ग्रीक राजदूत का यह वर्णन अशुद्ध एवं दोषयुक्त है क्योंकि अन्तिम के दो वर्ग कहीं भी सामाजिक स्तर निर्मित नहीं कर सकते हैं। सम्भवतः मेगस्थनीज भारतीय जाति-व्यवस्था को ठीक से समझ नहीं सका, इसी कारण वह ऐसी भूल कर बैठा।

(2) समाज की उच्च नैतिकता- मेगस्थनीज भारतीय समाज की उच्च नैतिकता से बहुत प्रभावित हुआ था। इसी कारण उसने अपने लेखों में भारतीयों के सामाजिक जीवन के उच्च नैतिक स्तर की बड़ी प्रशंसा की है। उसके अनुसार भारतीयों के चरित्र में बौद्धिक प्रतिभा थी। वे साहसी, वीर और सत्य-भाषणप्रिय थे। वे आपस में एक-दूसरे का अटूट विश्वास करते थे। उनमें धरोहर और वचनों के लिए किसी प्रकार की मुकदमेबाजी नहीं होती थी। वे एक-दूसरे के पास धरोहर रखते थे। चोरियाँ बहुत कम होती थीं। लोग अपने घर और सम्पत्ति को अरक्षित ही छोड़ देते थे। यज्ञानुष्ठानों में वे मद्यपान नहीं करते थे। भोजन की सात्विकता के फलस्वरूप लोग रोगों से मुक्त एवं स्वस्थ रहते थे। वे पाप-पुण्य, परलोक और स्वर्ग में अटूट निष्ठा एवं आस्था रखते थे ।

(3) विवाह- उस समय बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। **मेगस्थनीज** इस सम्बन्ध में लिखता है कि एक व्यक्ति कभी-कभी बहुत-सी स्त्रियों से विवाह करता था। कुछ स्त्रियाँ सहधर्मिणी बनाने के लिए विवाह करके लायी जाती थीं और कुछ केवल आनन्द और सन्तान उत्पन्न करने के लिए लायी जाती थीं। **कौटिल्य** ने भी अपने अर्थशास्त्र में लिखा है कि पुरुष कितनी ही स्त्रियों से विवाह कर सकता है, स्त्रियाँ सन्तान उत्पन्न करने के लिए ही होती हैं। कौटिल्य के अनुसार 12 वर्ष की कन्या का विवाह 16 वर्ष के बालक से कर देना चाहिए। उसने आठ प्रकार के विवाह बतलाए हैं :[1]

1. 'ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥"

(i) ब्राह्म-विवाह- "जिस विवाह में कन्या को अलंकृत करके वर के हाथों सौंपा जाता है, उसे ब्राह्म विवाह कहते हैं।"

(ii) प्राजापत्य विवाह- "जिस विवाह में वर-कन्या एक साथ मिलकर धर्म के आचरण की प्रतिज्ञा करके विवाह करते हैं, उसे प्राजापत्य-विवाह कहते हैं।"

(iii) आर्ष-विवाह- "जिस विवाह में कन्या पक्ष वाले वर से दो गौएँ लेकर कन्यादान करते हैं वह आर्ष-विवाह कहलाता है।"

(iv) दैव-विवाह- "जिस विवाह में यज्ञवेदी पर बैठकर ऋत्विक् के समक्ष कन्यादान किया जाता है, उसका नाम है- दैव-विवाह।"

(v) गान्धर्व-विवाह- "जिस विवाह में वर-कन्या अपने माता-पिता से अनुमति न लेकर स्वेच्छा से परस्पर एक दूसरे को अपना लेते हैं, वह गान्धर्व-विवाह कहलाता है।"

(vi) आसुर-विवाह- "जिस विवाह में वर, कन्या की माता को अथवा कन्या के पिता को धन देकर कन्या लेता है, उसे आसुर विवाह कहते हैं।"

(vii) राक्षस-विवाह- "जिस विवाह में बलात् कन्या को ग्रहण किया जाता है, उसको राक्षस विवाह कहते हैं।"

(viii) पैशाच-विवाह- "जिस विवाह में सोयी हुई कन्या का अपहरण कर विवाह किया जाता है, वह पैशाच विवाह कहलाता है।"

इन आठ प्रकार के विवाहों में पहले चार विवाह धर्मसंगत माने जाते हैं और शेष चार निकृष्ट माने जाते हैं।

(4) स्त्रियों की दशा- मौर्यकालीन समाज में स्त्रियों का स्थान पुरुष के समक्ष गौण था। स्त्री का अपने पति की सम्पत्ति पर अधिकार था। उनको विवाह-विच्छेद करने का भी अधिकार था। **कौटिल्य** अपनी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में कहता है, "जो पुरुष अतिशय नीच चरित्र का हो, जो सदा परदेश में रहता हो, जो राजद्रोह आदि महापाप का पापी हो, जो प्राणघाती हो, जो जाति और धर्म से पतित और नपुंसक हो तो स्त्री ऐसे पति को त्याग दे।" स्त्रियाँ उचित आचरण न करने पर जुर्माने से दण्डित होती थीं। **कौटिल्य** के शब्दों में, 'पति के मना करने पर भी यदि कोई स्त्री किसी के साथ अभिमानपूर्वक मदिरा पीकर उछल-कूद मचाये तो उसको 3 पण दण्ड देना होगा। पति के रोकने पर भी यदि कोई स्त्री दिन में आयोजित नाट्य देखने या बाग घूमने जाए तो ऐसी स्त्री को 6 पण अर्थदण्ड देना पड़ेगा। यदि स्त्री दिन के समय पुरुष का नाट्य देखने चली जाए तो उसको 12 पण दण्ड दिया जाए। यदि कोई स्त्री रात्रि के समय अपने पति को मारकर घर से निकाल दे तो उसे 24 पण दण्ड दिया जाए। यदि कोई स्त्री पर-पुरुष के साथ कामचेष्टा या अशिष्ट व्यवहार करती हुई बात करे तो उस स्त्री को 24

सामाजिक दशा

1. वर्ण-व्यवस्था
2. समाज की उच्च नैतिकता
3. विवाह-
   (i) ब्राह्म-विवाह
   (ii) प्राजापत्य विवाह
   (iii) आर्ष-विवाह
   (iv) दैव-विवाह
   (v) गान्धर्व-विवाह
   (vi) आसुर-विवाह
   (vii) राक्षस-विवाह
   (viii) पैशाच-विवाह
4. स्त्रियों की दशा
5. भोजन-पान और वस्त्राभूषण
6. मनोरंजन
7. शिक्षा

पण दण्ड दिया जाए।'' आगे पुनः कौटिल्य स्त्रियों के विषय में कहता है, ''यदि कोई पुरुष राज्य के कार्य से बाहर गया हुआ हो तो उसकी पत्नी जीवन-भर उसके प्रत्यागमन की प्रतीक्षा करे। इसी बीच यदि पति के सजातीय पुरुष के भोग से कोई सन्तान उत्पन्न हो जाय, तो उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए। कुटुम्ब की समस्त सम्पदा नष्ट हो जाने तथा सम्पन्न जेठ, देवरों से अपमानित होकर विपत्तिग्रस्त स्त्री जीवन निर्वाह के लिए दूसरा पति कर सकती है।'स्त्रियाँ सम्राट् की अंग-रक्षिका होती थीं। गुप्तचर विभाग में भी उन्हें स्थान प्राप्त था। कुछ स्त्रियाँ वेश्या का भी काम करती थीं। बौद्ध-भिक्षुणियों व संन्यासी स्त्रियों को भ्रमण करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

(5) भोजन-पान और वस्त्राभूषण- मौर्यकालीन लोगों की भोजन सम्बन्धी अभिरुचि सादी थी। भोजन में चावल, गेहूँ और अनेक प्रकार की साग-भाँजियाँ थीं। दूध से अनेक प्रकार के भोज्य-पदार्थ निर्मित किए जाते थे। अधिकांश लोग मांस और मदिरा का प्रयोग करते थे। भोजन के तरीके के सम्बन्ध में मेगस्थनीज लिखता है, ''जब भारतीय भोजन के लिए बैठते हैं तो उनके सामने एक तिपाई के आकार की मेज रख दी जाती है। उसके ऊपर एक सोने का प्याला रहता है, जिसमें सबसे पहले चावल डाले जाते हैं। उसके पश्चात् अन्य भोज्य-पदार्थ आते हैं, जिनको भारतीय विधि के अनुसार तैयार किया जाता है।'' मेगस्थनीज आगे लिखता है, ''अभिजात वर्ग के और धनी लोग बहुमूल्य, भड़कीले और चमकीले वस्त्र धारण करते थे।''

(6) मनोरंजन- मौर्यकाल में मनोरंजन के अनेक साधन थे। नर्तक-नर्तकियों, गायक-गायिकाओं व अभिनेता-अभिनेत्रियों के अनेक वर्ग थे। द्यूत-क्रीड़ा, रथदौड़, मल्ल-युद्ध, मनुष्यों तथा पशुओं की मुठभेड़ आदि मनोरंजन के विभिन्न साधन थे। अशोक ने अपनी धर्म-यात्रा में आकाश में विभिन्न दृश्यों के दिखाने की व्यवस्था की थी, जिससे लोगों का मनोरंजन होता था।

(7) शिक्षा- मौर्यकाल में शिक्षा उन्नत अवस्था में थी। जनता के दान और राजकीय सहायता से प्रारम्भिक पाठशालाओं और उच्च्व शिक्षण संस्थाओं का संचालन होता था। तक्षशिला, उज्जैन और बनारस शिक्षा एवं ज्ञान के प्रमुख केन्द्र थे। धर्मशास्त्र, व्याकरण, अलंकारशास्त्र आदि का अध्ययन खूब प्रचलित था। **स्ट्रैबो** एवं **कर्टियस** के अनुसार लोग सन के वस्त्र के टुकड़ों और वृक्षों की छाल पर लिखते थे। वासवदत्ता नाट्यधारा नामक ग्रंथ का प्रणयन सम्भवतः इसी काल में किया गया।

आर्थिक दशा- मौर्यकालीन आर्थिक दशा का वर्णन निम्नलिखित आधार पर किया जा सकता है-:

(क) कृषक वर्ग- कृषक सुखी और समृद्ध थे। वे अपना समस्त समय कृषि-कार्य में ही व्यतीत करते थे। वे भूमिकर के अतिरिक्त भूमि की उपज का चतुर्थांश राज्य-कोष में जमा करते थे। आपत्ति के समय कृषकों को राज्य की ओर से बीज और अन्न मिलता था। खेतों की सिंचाई के लिए विशेष व्यवस्था थी। मेगस्थनीज इस बात का उल्लेख करता है कि चन्द्रगुप्त ने एक पर्वतीय नदी के जल को रोककर सुदर्शन-नाम की झील बनवाई थी जो सिंचाई के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। कृषि-कार्य में काम आनेवाले औजारों को शिल्पी बनाते थे जो इसके लिए राज्य की ओर से वेतन पाते थे। कृषक पवित्र वर्ग के माने जाते थे, उन्हें युद्ध के समय भी किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचायी जाती थी। इस सम्बन्ध में ग्रीक राजदूत मेगस्थनीज लिखता है, ''दोनों पक्ष लड़ने वाले युद्ध के समय एक-दूसरे का

संहार करते हैं, परन्तु जो लोग खेती में लगे हुए हैं, उन्हें पूर्णतया निर्विघ्न अपना काम करने देते हैं।'' कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में उन अन्नों और बीजों का उल्लेख किया है जो किसानों द्वारा बोये जाते थे। वे इस प्रकार हैं- शालि (अगहनी धान), ब्रीहि (साठी धान), कोदो, तिल, ककुनी, दारक, बारक (लोबिया), मूँग, उड़द, शिम्द (बोड़ा), कुसुम्भ, मसूर, कुलथी, जौ, गेहूँ, मटर, अलसी, सरसों, कुम्हड़ा, पिप्पली, मृद्वीक (अंगूर), ईख, कपास, आम, कटहल, अनार, नीबू, आँवला, बेर, जामुन, चनां आदि।

(ख) उद्योग-धन्धे तथा व्यवसाय- मौर्य-काल में विभिन्न प्रकार के उद्योग व व्यवसाय प्रचलित थे। जैसे रूई, रेशम और ऊन के वस्त्रों का बुनना, आभूषणों का निर्माण, लकड़ी का काम, रथ, जलयान एवं शस्त्रों आदि का निर्माण, शराब का व्यवसाय, बूचड़खाने का काम, चमड़े का व्यवसाय, मूर्तियों के निर्माण का काम, समुद्र से रत्न निकालने का व्यवसाय, भवनों के निर्माण का काम आदि।

आर्थिक दशा

(क) कृषक वर्ग
(ख) उद्योग-धन्धे तथा व्यवसाय
(ग) व्यापार

कौटिल्य ने सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्रों के विषय में उल्लेख किया है। वह कहता है, ''कपास के सूत से बने वस्त्र सात देशों के अच्छे होते हैं, जैसे- माधुर (माधुरा एवं मदुरा में उत्पन्न), आपरान्तक (कोंकण देश में उत्पन्न), बांगक (बंग देश में उत्पन्न), कालिंगक (कलिंग देश में उत्पन्न), काशिक (काशी में उत्पन्न), वात्सक (कौशाम्बी अथवा वत्स देश में उत्पन्न) महिषक (कुण्डल देश की राजधानी महिष्मती में उत्पन्न)।'' मेगस्थनीज के अनुसार सूती कपड़े बनाने के केन्द्र मदुरा, कोंकण, बंग, कौशाम्बी आदि थे। खान खोदने का व्यवसाय भी उन्नत अवस्था में था। खानों के विभाग का राजकीय पदाधिकारी **'अकाराध्यक्ष'** था।

(ग) व्यापार- मौर्यकाल में कृषि-व्यवसाय के अतिरिक्त व्यापार भी पर्याप्त उन्नत दशा में था। विभिन्न वस्तुओं का व्यापार स्थल और जल, दोनों मार्गों से होता था। व्यापारी देश के विभिन्न भागों से व्यापार किया करते थे। ''हिमालय के अतिरिक्त द्वादश ग्राम, आरोह, वाह्लव आदि स्थानों के अनेक प्रकार के चमड़े बहुत प्रसिद्ध थे। इसी प्रकार कोशल, कश्मीर, विदर्भ, कलिंग आदि के हीरे, ताम्रणी, पाण्ड्य, केरल आदि के मोती, मलयकूट आदि पर्वतों की मणियाँ उस समय सारे भारत में प्रसिद्ध थीं। नेपाल के कम्बल, बंग देश के श्वेत और महीन कपड़े (मलमल), काशी और पुण्ड्र देश के सन के कपड़े और मगध तथा सुवर्णकुड्य के रेशेदार वृक्षों के रेशों से बने वस्त्र उस समय सारे भारत में प्रसिद्ध थे।'' मौर्यकाल के सौदागर बड़े-बड़े काफिले बनाकर सब जगह आया-जाया करते थे। स्वादिष्ट सुरा, कीमती चाँदी के बर्तन, अन्तःपुर के लिए गानेवाले बालक और सुन्दरियाँ, महीन वस्त्र और उच्चकोटि की मलमल- भारत के आयात की कुछ वस्तुएँ थीं और भारत भोग-विलास की वस्तुएँ और सुन्दर महीन मलमल बाहर के देशों को भेजता था।

व्यापार के विभिन्न विभागों पर नियंत्रण हेतु राजकीय अधिकारी एवं कर्मचारी नियुक्त थे, जिनका कार्य कम तौलने वालों और मिलावट करने वालों का पता लगाना था। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में व्यापार में इस प्रकार छल करने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था की है। वह कहता है, ''यदि कोई व्यापारिक वस्तु तौलने वाला कर्मचारी दण्डी मारकर या बटखरा बदलकर अथवा वस्तु के मूल्य-निर्णय में दोष दिखाकर एक पंण का अष्टमांश तक ग्राहक को हानि पहुँचाये, तो उसे 200 पण दण्ड दिया जाए। अन्न, घी, तेल, नमक, चन्दन और दवाओं में उन्हीं रूप-रंग की वस्तुएँ मिलाकर व्यापार करने वाले व्यापारी को 12 पण दण्ड

दिया जाय। अधिक मुनाफ करने वाले व्यापारियों को 300 पण का दण्ड देना भोगना पड़ेगा।'' इससे स्पष्ट है कि व्यापार की उन्नति के लिए राज्य पर्याप्त सचेष्ट रहता था।

धार्मिक दशा

मौर्यकाल की धार्मिक परम्परायें पहले से ही चली आ रही थी। इस युग में ब्राह्मणधर्म की पूर्ववर्ती युगों की भाँति प्रधानता न रह गई थी। अधिकांश मौर्य सम्राट् सुधारवादी, धार्मिक सम्प्रदायों-जैन या बौद्ध-मतों के अनुयायी थे। अशोक के समय में बौद्ध-धर्म राजधर्म के पद पर प्रतिष्ठित था। बौद्ध-धर्म में उस समय 18 सम्प्रदाय थे, जिनमें स्थविरवाद और महासांघिक प्रमुख थे। इस काल में जैन-धर्म भी एक प्रचलित और प्रभावशाली धर्म था। इस धर्म के दो सम्प्रदाय 'दिगम्बर' और 'श्वेताम्बर' थे। दिगम्बर साधु वस्त्रहीन घूमते थे और श्वेताम्बर साधु श्वेत वस्त्र पहनते थे। अशोक के अभिलेखों के अनुसार 'आजीविक' नामक एक सम्प्रदाय था। अशोक ने आजीविकों को बिहार के गया जिले में स्थित 'बराबर' नामक पहाड़ी (स्खलतिक पर्वत) में दो गुफाएँ दान में दी थीं। ब्राह्मणधर्म की एक शाखा भागवत-धर्म का प्रभाव मौर्यकाल में बढ़ने लगा था। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने कृष्ण और शिव की भक्ति का उल्लेख किया है। पतंजलि ने अपने महाभाष्य में कंस-वध और बालि-वध नाटकों के अभिनय का उल्लेख किया है। मौर्यकाल में मूर्तिपूजा का भी समावेश हो चुका था। कौटिल्य ने अपराजित, अप्रतिहत, जयन्त, वैजयन्त, कुबेर, आश्विन और लक्ष्मी की मूर्तियों का उल्लेख किया है। अग्नि, सरिताओं, इन्द्र, समुद्र-तट, वनों, पर्वतों, राक्षसों के प्रति लोग पूजा समर्पित करते थे। गाँवों में जादू-टोना, भूत-प्रेत तथा भविष्यवाणियों के प्रति विश्वास था।

मौर्यकालीन कला

मौर्यकाल में कला का प्रचुर विकास हुआ था। तत्कालीन शिल्पकार तक्षणकला में अत्यन्त निपुण थे। प्रस्तर-खण्डों पर की गई पालिश आज भी (2300 वर्षों से अधिक समय बीत जाने पर भी) शीत, आतप और वर्षा को सदा सहते हुए भी बिल्कुल नई मालूम होती है। इस युग की कला का उल्लेख वास्तुकला और तक्षणकला के अन्तर्गत किया जा सकता है। इस युग की कला का उल्लेख वास्तुकला और तक्षणकला के अन्तर्गत किया जा सकता है।

(अ) वास्तुकला— अशोककालीन वास्तुकला निम्नलिखित चार भागों में वर्णित है— (1) स्तूप[1], (2) स्तम्भ, (3) राजप्रासाद और (4) गुहाएँ (गुफाएँ)।

(1) स्तूप— मजबूत पत्थरों या ईंटों से ठोस गुम्बद के आकार का बना टीला स्तूप कहलाता है। अनुश्रुतियों के अनुसार अशोक ने 84,000 स्तूपों का निर्माण कराया था। अनेक स्तूपों में साँची का विशाल स्तूप अशोक की स्तूप-रचना का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इसका व्यास 36.5 मीटर तथा ऊँचाई 23.25 मीटर है और चतुर्दिक वेष्टनी (बाड़) (Railing) 3.3 मीटर ऊँची है। साँची के स्तूप के साथ ही साँची के आस-पास भी स्तूपों का जाल बिछा हुआ है। साँची से कुछ ही दूर सोनारी में 8 स्तूप हैं। यहाँ से 5 किमी आगे शतधारा में 2 स्तूप हैं। इसके अलावा साँची से 11.6 किमी दूर भोजपुर में और 8.3 किमी आगे मंधेर में अनेक स्तूप हैं। इन स्तूपों के कारण यह सम्पूर्ण क्षेत्र बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए पवित्र धर्म-क्षेत्र बन गया है।

पुरातत्व विभाग द्वारा 1982 से उत्खनन कार्य किये जाने के फलस्वरूप अभी हाल के वर्षों में अशोककालीन अनेक स्तूप प्रकाश में आए हैं। मध्यप्रदेश के रींवा-इलाहाबाद मार्ग पर स्थित एक छोटे से गाँव बरहट (प्राचीन नाम मरिघाट) की पहाड़ियों पर ढाई हजार साल पुराने 37 बौद्ध स्तूप मिले हैं। इन स्तूपों में चार ईंटों से तथा बाकी पत्थरों से निर्मित हैं। एक स्तूप की ऊँचाई 15.9 मीटर है तथा उसके चारों ओर पत्थर की वेष्टनी (बाड़) और स्तम्भ हैं। स्तम्भों पर कमल उकेरे गये हैं।

1. बौद्ध-धर्म के किसी महान् पुरुष के अवशेष पर बना हुआ निर्माण या ढाँचा स्तूप कहलाता है।

उड़ीसा के तटीय जिला जाजपुर में लांगुडी पहाड़ी पर एक स्तूप मिला है जो कंकड़ की बनी एक दीवार से घिस है। बिहार के नालंदा जिले में राजगीर की प्राचीन प्राचीर के दक्षिण द्वार के निकट एक बौद्ध स्तूप मिला है।

(2) स्तम्भ— ठोस पाषाणों से निर्मित स्तम्भों या लाटों की कला अशोककालीन कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। सब स्तम्भो में सारनाथ का स्तम्भ जिसके ऊपर 4 सिंहों की आकृतियाँ बनी हैं, अधिक कलात्मक है। इन सिंहों के नीचे एक चौकोर पट्टी पर धर्मचक्र तथा चार पशु– घोड़ा, शेर, हाथी और नन्दी बैल अंकित हैं। इस स्तम्भ के विषय में **जॉन मार्शल** का कहना है, **"संसार के किसी भी देश में प्राचीन भास्करकला के ऐसे उत्कृष्ट उदाहरण अथवा कला के ऐसे सुन्दर नमूने जिनमें सजीव कलाकृतियों का और आदर्शवाद का सफलतापूर्वक समन्वय हुआ हो और जिनमें प्रत्येक बात का पृथक्-पृथक् सविस्तृत प्रदर्शन हुआ हो, पाना दुष्कर है।"** लौरिया नन्दगढ़, संकोला एवँ रायपुरवा स्तम्भों पर बनी पशु आकृतियाँ भी सुन्दर हैं। अब तक अशोक के बनवाये 17 स्तम्भों का पता चला है।

(3) राजप्रासाद– मौर्य-काल में भवन-निर्माण-कला भी उन्नत दशा में थी। अशोक की मृत्यु के लगभग 700 वर्ष पश्चात् पाटलिपुत्र के राजप्रासाद की सुन्दरता को देखकर चीनी यात्री फाहियान विस्मय में पड़ गया था। वह लिखता है, "नगर में अभी तक महाराजा अशोक का राजप्रासाद और सभाभवन है। सब असुरों के बनाये हुए हैं। पत्थर चुनकर दीवार और द्वार बनाये गये हैं। उन पर सुन्दर खुदाई और पच्चीकारी है। इस लोक के लोग उन्हें नहीं बना सकते हैं। अब तक नये के समान हैं।"

मैर्यकालीन-कला
(अ) वास्तुकला
(1) स्तूप
(2) स्तम्भ
(3) राजप्रासाद
(4) गुहाएँ
(व) तक्षण या मूर्तिकला

(4) गुहाएँ– गुहाएँ कठोर पाषाण चट्टानों को काटकर बनाई गई थीं। अन्दर की दीवारों में उच्चकोटि की दर्पण के समान चमकती 'पालिश' की गई थी। ऐसी गुहाएँ नागार्जुन पहाड़ी पर और गया के समीप 'बराबर' पहाड़ी पर हैं। बराबर पहाड़ी की 'न्यग्रोध गुहा', तथा 'सुदामा गुहा' अशोक ने आजीविकों को दे दी थी।

(ब) तक्षण या मूर्तिकला– भरहुत तथा साँची के स्तूपों की वेष्टनी पर विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं जिनमें बोधिवृक्ष, धर्मचक्र तथा भगवान बुद्ध के जन्म सम्बन्धी अनेक कथानक चित्रित हैं। इस युग की मूर्तियों में मथुरा के पास परखम से प्राप्त 2 मीटर ऊँची यक्ष मूर्ति, बेसनगर से प्राप्त 2 मीटर ऊँची यक्षिणी की मूर्ति तथा दीदरगंज से प्राप्त चँवरधारिणी स्त्री की मूर्ति उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त कुछ जैन तीर्थंकरों की उच्चकोटि की मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं।

मौर्यकालीन कला के सम्बन्ध में **फर्ग्युसन** का कहना है :

"The noblest and most perfect examples of it are the works of Emperor Ashok." अर्थात् **"कला के रूप में सर्वसुन्दर और पूर्ण उदाहरण सम्राट् अशोक की कृतियाँ हैं।"**

संक्षेप में कहा जा सकता है कि डेढ़ सौ वर्षों के मौर्य शासन में सभ्यता, संस्कृति और ललित-कलाओं की पर्याप्त वृद्धि हुई जिससे मौर्यकाल आज भी प्रतिष्ठित है।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates and Events)

(i) 322 ई०पू० - चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण तथा मौर्यवंश की स्थापना।
(ii) 305 ई०पू० - चन्द्रगुप्त मौर्य और सिल्युकस के मध्य युद्ध।
(iii) 273 ई०पू० - अशोक का राज्यारोहण।
(iv) 269 ई०पू० - अशोक का राज्याभिषेक।
(v) 261 ई०पू० - अशोक द्वारा कलिंग-विजय।

(vi) 232 ई० पू० - अशोक की मृत्यु।
(vii) 322-298 ई० पू० - चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन-काल।
(viii) 273-232 ई० पू० - अशोक का शासन-काल।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. मेगस्थनीज के बारे में आप क्या जानते हैं ? मौर्य-प्रशासन के सम्बन्ध में उसने क्या लिखा है ?
2. चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन-चरित्र तथा उसकी उपलब्धियों का विवरण प्रस्तुत कीजिए। (1970, 86)
3. अशोक की गणना विश्व के महानतम शासकों में क्यों की जाती है ? (1971)
4. चन्द्रगुप्त मौर्य की प्रशासकीय प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन कीजिए। (1973, 76, 84)
5. अशोक की धर्म-विजय का वर्णन कीजिए। (1976)
6. एक विजेता के रूप में चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। (1978)
7. अशोक के चरित्र तथा उसकी उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। (1978)
8. चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन-व्यवस्था का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिए। (1979, 81)
9. मौर्य कौन थे ? चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रारम्भिक जीवन तथा विजयों का वर्णन कीजिए। (1980)
10. भारतीय इतिहास में अशोक का स्थान निर्धारित कीजिए। क्या वह मौर्यवंश के पतन के लिए उत्तरदायी था ? (1980)
11. चन्द्रगुप्त मौर्य कौन था ? एक साम्राज्य निर्माता के रूप में उसकी उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। (1983)
12. चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रशासन के विशिष्ट तत्वों का निरूपण कीजिए। (1991)
13. मौर्य प्रशासन के विशिष्ट तत्वों का निरूपण कीजिए। (1993)
14. अशोक के धर्म का विश्लेषण कीजिए। (1994)
15. चन्द्रगुप्त मौर्य की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालिए। (1995)
16. अशोक के 'धम्म' का वर्णन कीजिए। इसके प्रचार के लिए उसने क्या उपाय किये ? (1995)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "मौर्य शासन बड़ा ही सुसंगठित तथा पूर्ण सुयोग्य एकतन्त्र था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
2. "अशोक एक महान सम्राट् था। यदि वह योग्य न होता तो अपने विशाल साम्राज्य पर चालीस वर्ष तक सफलतापूर्वक शासन न करता और नाम न छोड़ गया होता जो दो हजार वर्षों के व्यतीत हो जाने के उपरान्त भी लोगों की स्मृति में आज भी ताजा बना है।" इस कथन के प्रकाश में अशोक का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. "मेरे राज्य में सब जगह सब सम्प्रदाय के लोग एक साथ मेल-ज़ोल से रहें ... लोग एक दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुनें और उनका आदर करें ...। सब सम्प्रदायों में धर्म के सार (तत्व) की वृद्धि हो।" सम्राट् अशोक के उक्त कथन के प्रकाश में उसकी

सहिष्णुता की नीति की व्याख्या कर यह बताएँ कि आज के भारत में इसकी क्या प्रासंगिकता है ? (1984)

4. "मौर्यकाल कला का संरक्षक था।" इस कथन के प्रकाश में मौर्यकालीन कला का उल्लेख कीजिए।
5. "कलिंग-युद्ध अशोक के जीवन का एक महत्वपूर्ण मोड़ था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?
6. "अशोक भारत का ही नहीं, वरन् विश्व के महानतम शासकों में से एक था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
7. "भारतीय इतिहास का कोई भी व्यक्ति इतना परिचित प्रतीत नहीं होता तथा अपने उज्ज्वल चरित्र का इतना प्रभांव नहीं डालता जितना बिन्दुसार का अमर पुत्र अशोक।" इस कथन के आलोक में अशोक की महानता का मूल्यांकन कीजिए।
8. "कला के रूप में सर्वसुन्दर और पूर्ण उदाहरण सम्राट अशोक की कृतियाँ हैं।" इस कथन के आलोक में अशोककालीन कला का उल्लेख कीजिए।
9. "कलिंग का युद्ध अशोक के जीवन की एक निर्णयात्मक घटना थी।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
10. "अशोक की शान्तिवादी नीति मौर्य-साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थी।" इस मत की समीक्षा कीजिए। (1988)
11. "अशोक की धर्म-भावना लोक-कल्याण तथा मानवता के उच्च्व आदर्शों पर आधारित थी।' सविस्तार व्याख्या कीजिए। (1990)
12. "चन्द्रगुप्त मौर्य सामान्य कुल में उत्पन्न होकर भी एक महान विजेता सिद्ध हुआ।" इस कथन की विवेचना कीजिए ।
13. "प्रत्येक युग और प्रत्येक राष्ट्र इस तरह का शासक पैदा नहीं कर सकता।" इस कथन के आलोक में अशोक का मूल्यांकन कीजिए ।
14. "अशोक केवल बौद्ध धर्म का ही नहीं अपितु मानव-धर्म का प्रचारक था।" विवेचना कीजिए। (1993)
15. "ब्राह्मणवाद का पुनरुत्थान ही मौर्य साम्राज्य के पतन का वास्तविक कारण था।" क्या आप सहमत हैं? तर्क प्रस्तुत कीजिए। (1993)
16. "अशोक की धम्म प्रचार की नीति मौर्य साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण थी।" आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। (1997)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए)

1. मगध पर शासन करने वाले दो राजवंशों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. चन्द्रगुप्त मौर्य के समय की नगर-समितियों का उल्लेख कीजिए।
3. अशोक ने बौद्ध-धर्म के प्रचारार्थ क्या उपाय किये ? (1985)
4. मौर्य-साम्राज्य के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।
5. मौर्यकालीन इतिहास जानने के लिए दो प्रसिद्ध साहित्यिक स्रोतों का उल्लेख कीजिए। (1997)
6. मेगस्थनीज के विषय में आप क्या जानते हैं ? (1998)

(घ) संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए ।

(1) मेगस्थनीज, (2) कौटिल्य

9
ब्राह्मण- साम्राज्य
[शुंग, कण्व तथा सातवाहन]

"पुष्यमित्र शुंग ने बौद्धों का दमन इसलिए किया कि उनके संघ राजनीतिक शक्ति के स्रोत बन गये थे, इसलिए नहीं कि वे एक ऐसे धर्म को मानते थे जिसमें वह विश्वास नहीं करता था।" - ई० बी० हैबेल

शुंग वंश- (185 ई० पू०- 73 ई० पू०)- मौर्य- वंश के अन्तिम शासक बृहद्रथ का वध करके उसके मंत्री पुष्यमित्र (185-149 ई० पू०) ने शुंग वंश की सत्ता स्थापित की। शुंग लोग साधारणतः भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मण थे। 'दिव्यावदान' में उन्हें मौर्य- वंशज ही कहा गया है। कालिदास के प्रसिद्ध ग्रंथ 'मालविकाग्निमित्र' में पुष्यमित्र को बैम्बिक कुल का कहा गया है तथा उसका गोत्र कश्यप बतलाया गया है। पाणिनि ने शुंगों को भारद्वाज गोत्र का ब्राह्मण माना है। तारानाथ ने भी शुंगों को ब्राह्मण ही माना है। कुछ इतिहासकारों ने इस वंश के राजाओं के नाम में मित्र जुड़ा होने के कारण उन्हें ईरानी स्वीकार किया है। किन्तु यह मत पूर्णतया मान्य नहीं है, क्योंकि अधिकांश इतिहासकारों ने शुंगों को ब्राह्मण जाति का ही स्वीकार किया है। इस वंश का राज्यकाल 185 ई० पू० से लगभग 73 ई० पू० तक रहा, अर्थात् शुंगों ने 112 वर्ष तक राज्य किया।

पुष्यमित्र शुंग

विदर्भ से युद्ध- पुष्यमित्र के शासन- काल की प्रथम घटना विदर्भ से युद्ध था। विदर्भ का शासक यज्ञसेन जिसने बृहद्रथ के वध के उपरान्त अपने को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया था, शुंगों का शत्रु था। इस समय पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र विदिशा का शासक था। उसने कुमार माधवसेन को जो यज्ञसेन का चचेरा भाई था, कूटनीति से अपनी ओर मिला लिया। तत्पश्चात् पुष्यमित्र और उसके पुत्र अग्निमित्र ने यज्ञसेन के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी। युद्ध में यज्ञसेन की पराजय हुई और अन्त में विदर्भ का राज्य दोनों भाइयों—यज्ञसेन और माधवसेन में बराबर- बराबर बाँट दिया गया। दोनों ने पुष्यमित्र की अधीनता भी स्वीकार कर ली।

यवनों से युद्ध- पुष्यमित्र के शासन- काल में यवनों ने भारत पर आक्रमण किया। कालिदास और पातंजलि के ग्रन्थों में यूनानियों के भारत पर आक्रमण का वर्णन मिलता है। तिब्बती लेखक तारानाथ के अनुसार भी पुष्यमित्र के शासन- काल में यवनों के आक्रमण हुए। गार्गी संहिता के अनुसार यवनों ने मथुरा- गंगा के दोआब तथा साकेत को जीत लिया और पाटलिपुत्र तक जा पहुँचे। कालिदास के नाटक 'मालविकाग्निमित्र' के अनुसार पुष्यमित्र के पोते वसुमित्र ने यवनों से युद्ध किया। यह बात स्पष्ट नहीं है कि यवन आक्रमणकारियों का सेनापति कौन था ? कुछ विद्वान् उसको डेमिट्रियस और कुछ उसे मेनाण्डर मानते हैं।

अश्वमेध यज्ञ- विदर्भ तथा यवनों को पराजित करने के उपरान्त पुष्यमित्र ने दो बार अश्वमेध यज्ञ किया। कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' और पातंजलि के 'महाभाष्य' नामक ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है। अयोध्या से प्राप्त धनदेव के अभिलेख से भी प्रमाणित है कि पुष्यमित्र शुंग ने दो अश्वमेध यज्ञों का आयोजन किया था। अभिलेख में कहा गया है, "दो बार अश्वमेध यज्ञ करनेवाले कोशल के राजा सेनापति पुष्यमित्र के छठवें कोशिकी के पुत्र धनदेव ने धर्माज्ञी पिता फाल्गुदेव का भवन बनवाया।"

पुष्यमित्र और बौद्ध-धर्म- पुष्यमित्र वैष्णव-धर्म का अनुयायी था। 'दिव्यावदान' ग्रन्थ के अनुसार पुष्यमित्र बौद्ध-धर्म के प्रति असहिष्णु था और उसने यह घोषणा कर दी थी कि प्रत्येक बौद्धभिक्षु के सिर के लिए सोने की सौ मुहरें पुरस्कार स्वरूप प्रदान की जायेंगी। तारानाथ के अनुसार उसने अनेक बौद्ध-भिक्षुओं को मौत के घाट उतार दिया और उनके मठों, विहारों को नष्ट करवा दिया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुष्यमित्र वैष्णवधर्म का कट्टर अनुयायी था, किन्तु शुंग-काल में निर्मित 'भरहुत' के बौद्ध-स्तूप इस बात की ओर संकेत करते हैं कि पुष्यमित्र बौद्ध-धर्म के प्रति असहिष्णु नहीं था।

शुंग-वंश के प्रमुख शासक

1. पुष्यमित्र
2. अग्निमित्र
3. सुचेष्ट
4. वसुमित्र
5. आद्रक
6. पुलिंदक
7. घोष
8. वज्रमित्र
9. भागवत
10. देवभूति

36 वर्ष शासन करने के पश्चात् लगभग 149 ई० पू० में पुष्यमित्र का देहावसान हो गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त क्रमशः **अग्नि, सुचेष्ट, वसुमित्र, आद्रक, पुलिन्दक, घोष, वज्रमित्र, भागवत** शासक हुए। शुंगवंश में कुल 10 शासक हुए जिन्होंने केवल 112 वर्ष तक शासन किया। इस वंश का अन्तिम शासक देवभूति था। इसको मारकर उसके अमात्य वसुदेव ने कण्व-वंश की स्थापना की। इतिहास के पाठक इसे विधि की विडम्बना ही समझें कि जिस प्रकार मंत्री पुष्यमित्र ने अपने सम्राट बृहद्रथ का वध करके शुंगवंश की नींव डाली थी उसी प्रकार शुंगवंश के अन्तिम शासक देवभूति का वध करके उसके मंत्री वसुदेव ने कण्व-वंश की सत्ता स्थापित की।

कण्व-वंश के शासक

1. वसुदेव
2. भूमिमित्र
3. नारायण
4. सुशर्मन

कण्व-वंश- (73 ई० पू० से 28 ई० पू०)- जैसा कि ऊपर की पंक्तियों में उल्लेख किया जा चुका है कि शुंग-वंश के अन्तिम शासक देवभूति की हत्या करके वसुदेव ने कण्व-वंश की स्थापना की। इस वंश में क्रमशः चार राजा- **वसुदेव, भूमिमित्र, नारायण और सुशर्मन** हुए, जिन्होंने पुराणों के अनुसार 45 वर्षों तक शासन किया। इस वंश का अन्तिम

---

1. "कोशलाधिपेन द्विरश्वमेध याजिनः सेनापतेःपुष्यमित्रस्य षष्ठेन कोशिकी पुत्रेण धन (देवेन)।। धर्मराज्ञया पितुः फल्गुदेवस्य केतनं कारिता।।

शासक सुशर्मन था जिसका आन्ध्र अथवा सातवाहन वंश के सिन्धुक नामक व्यक्ति ने वध कर दिया और सातवाहन वंश की सत्ता स्थापित की।

आन्ध्र अथवा सातवाहन वंश- आन्ध्र एक बड़ी पुरानी जाति थी जो गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच में निवास करती थी। ऐतरेय ब्राह्मण, मेगस्थनीज के लेखों और अशोक के शिलालेखों में इस वंश का वर्णन आता है। **डॉ० भण्डारकर** के मतानुसार सातवाहन वंश का आरम्भ प्रायः 72-73 ई० में हुआ।

सातवाहन वंश भी ब्राह्मण था। इस वंश का पहला शासक सिन्धुक था। वह 'सिमुक' व 'सिप्रक' के नाम से प्रसिद्ध था। उसने कण्व-वंश के अन्तिम शासक सुशर्मन का वध कर मगध पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। उसके 23 वर्ष शासन करने के उपरान्त उसका भाई कान्ह अथवा कृष्ण सिंहासन पर बैठा। कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् सिमुक का पुत्र शातकर्णी गद्दी पर आसीन हुआ। नानाघाट के अभिलेख के अनुसार उसने अनेक विजयें कीं और दो अश्वमेध-यज्ञों का अनुष्ठान किया। उसने अंगीय कुल के महारथी की पुत्री नायनिका से विवाह किया जो उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके दो अल्पवयस्क पुत्रों - वेदिश्री और सतिश्री की संरक्षिका बनी। इसके पश्चात् सातवाहन का इतिहास अन्धकारमय है। ईसा काल में शक आक्रमणकारियों ने इस पर आक्रमण करके उसके अधिकांश राज्य पर अधिकार कर लिया। प्रथम शताब्दी के अन्त में राजा हाल इस वंश का शासक बना। वह उच्चकोटि का कवि तथा साहित्यकार था। **'सप्तशतक'** की रचना उसकी अमूल्य देन है।

सातवाहन वंश के प्रमुख शासक

1. सिन्धुक अथवा सिमुक
2. कृष्ण
3. शातकर्णी
4. राजा हाल
5. गौतमीपुत्र शातकर्णी
6. वसिष्ठ पुत्र श्रीपुलुमावि
7. यज्ञश्रीशातकर्णि

गौतमी-पुत्र शातकर्णि (106-130 ई०)- यह सातवाहन वंश का महत्वपूर्ण शासक था। इसने इस वंश की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। इसकी मुठभेड़ शकराजा नहपान से हुई जिसमें न केवल नहपान ही अपितु उसका क्षहरात वंश ही नष्ट हो गया। नासिक अभिलेख के अनुसार उसने शक, यवन, पह्लव तथा क्षहरातों का विनाश किया था। इसी लेख में उसे क्षत्रियों के मान का मर्दन करने वाला कहा गया है। उसने ऋषिक (कृष्णा नदी का तटीय प्रदेश), अश्मक (गोदावरी का तटीय प्रदेश), मूलक (पैठान का सीमावर्ती भाग), सुराष्ट्र (दक्षिण काठियावाड़), कुकुर (पश्चिमी राजपूताना), अपरान्त (उत्तरी कोंकण), विदर्भ (बरार), आकर (पूर्वी मालवा) तथा अवन्ति (पश्चिमी मालवा) को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। नासिक प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि गौतमीपुत्र का विन्ध्यपर्वत के दक्षिण के सम्पूर्ण प्रदेश पर अधिकार था। इसी लेख में यह भी कहा गया है कि उसके वाहनों (अश्वों) ने तीनों समुद्रों का जल पिया था। तीनों समुद्र का अभिप्राय बंगाल की खाड़ी, अरब सागर तथा हिन्द महासागर से है। इससे यह पता चलता है कि वह एक दिग्विजयी सम्राट था। उसके समय में सातवाहन साम्राज्य अपनी उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गया था। उसके लिए 'राजराज', 'महाराज' और 'स्वामी' उपाधियों का प्रयोग मिलता है। अपने शासनकाल के अट्ठारहवें वर्ष में उसने नासिक के पास एक

दरी- गृह बनवा कर दान किया। एक अभिलेख से विदित होता है कि अपने शासनकाल के अन्तिम वर्षों में उसने कुछ साधुओं को भूमि- दान किया। 24 वर्षों तक सफलतापूर्वक शासन करने के पश्चात् 130 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

गौतमीपुत्र शातकर्णि के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र वशिष्ठीपुत्र श्रीपुलुमावि सातवाहन वंश का शासक हुआ। सम्भवतः उसने उज्जयिनी के शासक महाक्षत्रप रुद्रदमन की कन्या से विवाह किया। जूनागढ़ के अभिलेख से विदित होता है कि रुद्रदमन ने उसे युद्धों में परास्त किया। अभिलेख में लिखा है, "दक्षिणपथ के स्वामी शातकर्णि को दो बार पराजित करके भी उसने (रुद्रदमन) उसे निकट का सम्बन्धी होने के कारण न मारा।" उसने लगभग 15 वर्ष तक राज्य किया।

यज्ञश्री शातकर्णि (165 ई०- 195 ई०)- यह इस वंश का अन्तिम शक्तिशाली शासक था। उसने सम्भवतः 30 वर्षों तक शासन किया। अभिलेखों और उसके सिक्कों से प्रमाणित है कि उसके राज्य की सीमाएँ पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा पश्चिम में अरब सागर तक थीं। उसका अधिकार समुद्र पर भी प्रतिष्ठित था। उसने शकों को परास्त कर दक्षिण भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। आन्ध्र से लेकर सौराष्ट्र तक सम्पूर्ण प्रदेश उसके आधिपत्य में था। 195 ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के पश्चात् इस वंश की अवनति प्रारम्भ हो गई और तीसरी शताब्दी ईस्वी तक इस वंश का अन्त हो गया।

सातवाहनकालीन सभ्यता एवं संस्कृति

(1) राजनीतिक दशा- सातवाहनकालीन शासन- पद्धति राजतन्त्रात्मक थी, परन्तु सम्राट् स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश नहीं थे। सम्राट् की सहायता के लिए पाँच सभाएँ होती थीं- पुरोहितों की सभा, जनता के प्रतिनिधियों की सभा एवं मन्त्रियों, ज्योतिषियों तथा वैद्यों की अलग- अलग सभाएँ। रुद्रदमन अभिलेख के अनुसार राजा को परामर्श देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् भी होती थी। शासन की सम्पूर्ण सत्ता सम्राट् में केन्द्रित थी।

(2) सामाजिक दशा- इस काल में समाज चार वर्गों में विभाजित था। प्रथम वर्ग में महाभोज, महारथी और महासेनापति थे। द्वितीय वर्ग में अमात्य, महामात्त, भांडागारिक, सौदागर (निगम), सार्थवाह तथा श्रेष्ठिन् आदि थे। तृतीय वर्ग में वैद्य, लेखक, स्वर्णकार, गान्धिक (इत्र विक्रेता), कृषक तथा चतुर्थ वर्ग में माली, बढ़ई, लुहार, धीवर आदि थे। समाज में स्त्रियों को आदर तथा सम्मान प्राप्त था। पिता के नाम के स्थान पर माता का नाम पुत्र के साथ पुकारा जाता था। इस प्रकार 'मातृसत्तात्मक समाज' की व्यवस्था प्रचलित थी।

सातवाहनकालीन सभ्यता एवं संस्कृति

1. राजनीतिक दशा
2. सामाजिक दशा
3. आर्थिक दशा
4. धार्मिक दशा
5. साहित्य एवं कला

(3) आर्थिक दशा- सातवाहन- काल आर्थिक सम्पन्नता का काल था। लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि तथा पशुपालन था। इस काल में धनिक (अन्न विक्रेता), कुलरिक (कुम्हार), तिलपिषक (तेली), कासाकार (काँसे के धातुकार), बंसकार (बाँस की वस्तुएँ बनाने वाले) आदि विभिन्न व्यवसायियों की श्रेणियाँ थीं। ये श्रेणियाँ उचित व्याज की दर पर ऋण देने तथा धन

जमा करने का कार्य भी करती थीं। व्यापार उन्नत दशा में था। समुद्री मार्गों द्वारा व्यापार होता था। भड़ौच, सोपरा तथा कल्याण आदि इस काल के प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। इस काल में चाँदी तथा ताँबे के सिक्के 'कार्षापण' तथा सोने के 'सुवर्ण' कहलाते थे।

(4) धार्मिक दशा- सातवाहन संम्राट ब्राह्मण थे। इस काल में ब्राह्मण और बौद्ध, दोनों धर्मों की उन्नति हुई। ब्राह्मण-धर्म को राजाश्रय प्राप्त था और उसकी उन्नति हो रही थी। इस काल के राजाओं द्वारा अश्वमेध, राजसूय, अप्तोर्यम, अग्न्यावेध आदि यज्ञों का अनुष्ठान किया गया था। शिव और विष्णु की पूजा लोकप्रिय हो गयी थी। हिन्दू धर्म से प्रभावित होकर विदेशियों ने भी वैष्णवधर्म को अपनाना प्रारम्भ कर दिया था। अभिलेखों से प्रमाणित है कि रुद्रदमन, हेलियोडोरस, इन्द्राग्निदत्त आदि विदेशी हिन्दू-धर्म के अनुयायी बन गये थे। कार्ले अभिलेख में दो यवनों के नाम क्रमशः सिंहध्वज और धर्म लिखे मिलते हैं। धनी धर्मात्माओं ने बौद्धों के लिए मन्दिरों तथा दरीगृहों का निर्माण कराया था। फलतः बौद्धधर्म भी इस काल में उन्नत दशा में था।

(5) साहित्य एवं कला- सातवाहन-काल में साहित्य एवं कला की आशातीत उन्नति हुई। इस काल के शासकों ने प्राकृत भाषा को अपनाया। राजा हाल ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सप्तशतक' की रचना प्राकृत भाषा में की थी। प्राकृत भाषा में गुणाढ्य ने भी 'वृहत्कथा' की मूल रचना की थी। 'महाभारत' की रचना इसी काल की देन है। वैद्यक, दर्शन, ज्योतिष तथा व्याकरण आदि पर भी अनेक ग्रन्थों की रचना हुई।

इस काल में बौद्ध कला की अत्यधिक उन्नति हुई। इस युग में प्राचीन बौद्ध स्तूपों का जीर्णोद्धार एवं नये स्तूपों का निर्माण हुआ। इस काल का अमरावती (आन्ध्र के गुन्टूर जिले मे) का स्तूप अत्यधिक प्रसिद्ध है। इस स्तूप के निर्माण में चूना, पत्थर का प्रयोग हुआ था। स्तूप के विभिन्न भागों पर अनेक चित्र इस काल की कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इस युग में पश्चिमी भारत में पर्वत-गुफाओं को काटकर अनेक चैत्य-गृहों तथा विहारों का निर्माण हुआ। चैत्य-गृह भिक्षुओं के प्रार्थना-स्थल होते थे तथा विहार बौद्ध-भिक्षुओं के लिए निवास स्थान होते थे। इनमें नासिक, कार्ले, कन्हेरी आदि के गुहा-चैत्य एवं गुहा-विहार विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें एक बड़ा चौकोर मण्डप, एक प्रवेश द्वार तथा स्तम्भों की दो पंक्तियाँ बनायी जाती थीं। ये स्तम्भ विविध प्रकार के हैं और कला की दृष्टि से उच्चकोटि के हैं। इस काल का कार्ले का चैत्यगृह सबसे बड़ा और सुरक्षित स्थिति में है। यह प्राचीन भारत के अत्यधिक सुन्दर एवं भव्य स्मारकों में से एक है। दक्षिण भारत की इन कला-कृतियों के निर्माण में समाज के सभी वर्गों, विशेष रूप से व्यापारियों एवं व्यावसायिक श्रेणियों का योगदान था।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पुष्यमित्र शुंग पर टिप्पणी लिखिए। (1958, 65, 70, 84, 85)

लघु प्रश्न- (लगभग 200 शब्दों में उत्तर लिखिए।)

1. शुंग वंश के चार शासकों का परिचय दीजिए।
2. सातवाहन वंश के चार शासकों का परिचय दीजिए।
3. कण्व-वंश के चार शासकों का परिचय दीजिए।

10
यवनों के आक्रमण

> **"जब-जब विदेशी सेनाओं का तूफान आया, पूर्व ने कुछ समय के लिए सिर झुकाया, उनका प्रशान्त तथा गम्भीर घृणा के साथ अवलोकन किया, उनको वापस चले जाने दिया और वह पुनः अपने स्वाभाविक चिन्तन के लिए अन्तर्मुखी हो गया।"**
>
> **- मैथ्यू आरनाल्ड**

बैक्ट्रिया के यवन या यूनानी आक्रमणकारी- सम्राट अशोक की मृत्यु के 25 वर्ष उपरान्त 206 ई० पू० में सम्राट **अन्तियोकस तृतीय** ने सबसे पहले भारत पर आक्रमण किया, किन्तु उसके आक्रमण का भारत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इसके पश्चात् 190 ई० पू० बैक्ट्रिया के यूनानी सम्राट **देमेत्रियस** ने भारत पर आक्रमण किया और अफगानिस्तान, पंजाब तथा सिन्ध के बड़े भागों को अपने अधिकार में कर लिया। इस वंश का दूसरा शक्तिशाली शासक मेनाण्डर था। वह बड़ा ही वीर, योद्धा तथा बौद्धधर्म का अनुयायी था। इसने बहुत से बौद्ध-मठों, स्तूपों तथा विहारों का निर्माण कराया। अनेक प्रान्तों को जीतकर अपने साम्राज्य को बढ़ाया। भारत में उसका साम्राज्य पूर्व में मथुरा तक विस्तृत था। उसने शाकल (स्यालकोट) को अपनी राजधानी बनाया। यूनानी लेखक प्लूटार्क के विवरण से ज्ञात होता है कि वह एक न्यायप्रिय शासक था एवं अपनी प्रजा में अत्यधिक लोकप्रिय था। बौद्ध-ग्रन्थों ने उसे बौद्ध-धर्म का संरक्षक कहा है। उसकी तिथि विवादपूर्ण है। कुछ विद्वानों का मत है कि उसने लगभग 160 ई० पू० से 140 ई० पू० तक राज्य किया। मेनाण्डर ही एकमात्र हिन्द यवन शासक था जिसके सम्बन्ध में भारतीय साहित्य; अभिलेख एवं मुद्रा से जानकारी मिलती है। बौद्ध-भिक्षु नागसेन से उसके वाद-विवाद का वर्णन मिलिन्द पह्न (मिलिन्द प्रश्न) नामक पालि भाषा के ग्रन्थ में मिलता है। इसके बाद राजा अन्टिआल्किडस हुआ जिसने विदिशा (मध्यप्रदेश में आधुनिक भिलसा) के राजा कौन्सीपुत्र भागभद्र के दरबार में अपना हेलियोडोरस नामक दूत भेजा था। उसने भागवत-धर्म ग्रहण कर लिया था और उसने उस धर्म के देवता वासुदेव के सम्मान में एक गरुड़-स्तम्भ स्थापित कराया। यह स्तम्भ भिलसा के निकट अभी भी सुरक्षित है। अन्टिआल्किडस के बाद के यवन राजा अधिक शक्तिशाली नहीं थे। शनैः शनैः यवन-सत्ता का पतन होने लगा। मध्य एशिया की शक नामक एक जाति ने आक्रमण कर उसे और दुर्बल बना दिया। उसके राज्य का अन्त कुषाणों ने किया।

शकों का भारत पर आक्रमण

शकों का निवास स्थान मध्य-एशिया था। पर्यटनशील होने के कारण उन्होंने पश्चिम की ओर अग्रसर होना आरम्भ किया। लगभग 165 ई० पू० में 'यू-ची' नामक जाति ने उन्हें मध्य एशिया से निकाल बाहर किया और वे दक्षिण की ओर चले गये तथा सीमान्त में बस गये। उन्होंने सफलतापूर्वक हीराम तथा सीस्तान पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। कालान्तर में उन्होंने दक्षिण की ओर अग्रसर होकर बिलोचिस्तान तथा अफगानिस्तान पर भी आधिपत्य स्थापित कर लिया और बोलन दर्रे के मार्ग से उन्होंने भारत में प्रवेश किया।

रैपसन के अनुसार प्रथम शक- विजेता **माऊस** था जिसका उल्लेख तक्षशिला तथा भैरा के कूप- लेख में उपलब्ध है। उसने **'राजाधिराज'** की उपाधि धारण की थी। उसके सिक्के पंजाब के अनेक भागों तथा गान्धार में प्राप्त हुए हैं। माऊस के उपरान्त **एजेस प्रथम** तथा **एजेस द्वितीय** क्रमशः सम्राट् हुए। एजेश द्वितीय के निर्बल उत्तराधिकारियों को पार्थियन सम्राट् 'गोण्डोफर्नीस' ने विजित करके शक साम्राज्य पर अधिकार कर लिया।

शकों ने अपने साम्राज्य का प्रान्तों में विभाजन कर 'क्षत्रपों' की व्यवस्था की थी। ये क्षत्रप मथुरा, उज्जैन तथा महाराष्ट्र के प्रदेशों पर शासन करते थे और अपने नाम के सिक्के चलवाते थे। ईरानियों का अनुकरण कर शकों ने विशाल उपाधियाँ धारण कीं। कालान्तर में भारतीय सभ्यता और संस्कृति को स्वीकार कर वे भारतीयों में घुल- मिल गये। शकों की विभिन्न शाखाओं तथा उनके प्रमुख शासकों का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है, जो इस प्रकार है :

1. मथुरा के क्षत्रप- मथुरा के शकों का सम्बन्ध पंजाब के शकों से था। मथुरा के क्षत्रप हगान और हगामस थे। उनके उपरान्त राजूल अथवा रज्जूवूल शासक हुआ। इसके शासनकाल के सिक्के भी मिलते हैं। उसने पंजाब के यवन साम्राज्य का अन्त कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। राजूल के पश्चात् शोडास मथुरा का शासक बना। उसका राज्य मथुरा प्रदेश तक ही सीमित था। कालान्तर में कुषाणों ने इस वंश की सत्ता को समाप्त करके अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया।

2. महाराष्ट्र के क्षत्रप- महाराष्ट्र का प्रथम क्षत्रप भूमक था जिसके सिक्के सौराष्ट्र और गुजरात में उपलब्ध हुए हैं। महाराष्ट्र का द्वितीय क्षत्रप नहपान था जिसके अनेक मुद्रालेख प्राप्त हुए हैं। उसनें अपनी कन्या का विवाह ऋषभदत्त नामक ब्राह्मण से किया था। उसके सिक्कों से ज्ञात होता है कि उसका साम्राज्य महाराष्ट्र तथा पूना के निकटवर्ती भागों तक फैला हुआ था। अन्त में गौतमी शातकर्णी ने इस शाखा का पूर्णरूपेण विनाश कर दिया।

3. उज्जैन के क्षत्रप- शकों की एक शाखा ने लगभग 100 ई० पू० उज्जैन में अपना साम्राज्य स्थापित किया। यहाँ के क्षत्रपों ने कई शताब्दियों तक शासन किया। इस शाखा का प्रथम क्षत्रप **चष्टन** था। वह दशमतिक का पुत्र था। वह एक वीर तथा शक्तिशाली शासक था। उसने कम से कम 53 वर्ष शासन किया। चष्टन के उपरान्त उसका पुत्र **जयदमन** उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके शासनकाल में गौतमीपुत्र शातकर्णी ने अवन्ति पर अधिकार स्थापित कर लिया। किन्तु **जयदमन** के पुत्र **रुद्रदमन** ने पुनः अवन्ति पर अधिकार स्थापित कर लिया। उसके शासनकाल की घटनाओं का ज्ञान जूनागढ़ वाले लेख के द्वारा उपलब्ध होता है। सम्भवतः उसने 250 ई० पू० के आसपास शासन किया। उसने महाक्षत्रप की उपाधि धारण की। उसने मालवा, सौराष्ट्र, गुजरात आदि प्रदेशों को जीतकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। गिरिनार के एक अभिलेख के अनुसार उसके द्वारा विजित प्रदेश गुजरात, मालवा, कच्छ, सिन्ध आदि प्रदेश थे। उसने आन्ध्रों को भी पराजित किया। अपने विशाल साम्राज्य में उसने शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की। वह एक विद्वान् तथा प्रजा का हितैषी था। चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा निर्मित सुदर्शन झील का उसने पुनर्निर्माण करवाया। इस शाखा का अन्तिम शासक रुद्रदमन तृतीय था, जिसे चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पराजित करके उज्जैन को गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार 311 ई० में इस शाखा का पूर्णतया अन्त हो गया।

शकों की शासन- व्यवस्था का ज्ञान हमें अभिलेखों द्वारा उपलब्ध है, जिससे यह ज्ञात होता है कि उनकी शासन- व्यवस्था सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित थी। शक- शासकों ने विशाल उपाधियाँ धारण की। ऐसा विश्वास किया जाता है कि गुप्त सम्राटों ने भी शक- शासकों का ही अनुकरण करके विशाल उपाधियाँ धारण की थीं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. शकों की शाखाओं का उल्लेख करते हुए उनकी प्रमुख सफलताओं का वर्णन कीजिए।
2. शकों के आक्रमण का विवरण दीजिए। शक क्षत्रपों में आप किसे सर्वश्रेष्ठ शासक मानते हैं ?
3. भारत पर यवनों के आक्रमण का उल्लेख कीजिए।

11
कुषाण- वंश

> **"कनिष्क का भारत के कुषाण सम्राटों में निस्सन्देह सबसे आकर्षक व्यक्तित्व है। वह एक महान् विजेता और बौद्ध- धर्म का आश्रयदाता था। उसमें चन्द्रगुप्त की सामरिक योग्यता और अशोक के धार्मिक उत्साह का सम्मिश्रण था।"**
>
> — डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी

कुषाण कौन थे- चीनी ग्रंथों के अनुसार कुषाण 'यू- ची' जाति की एक शाखा थी, जो मुख्यतः उत्तरी- पश्चिमी चीन के कानसू नामक प्रान्त में निवास करती थी। 165 ई० पू० में ह्यूंग- नू जाति ने उस पर आक्रमण करके उसको अपना देश छोड़ने को बाध्य किया। यहाँ से चलकर यू- ची जाति कुलजा नामक प्रदेश जा पहुँची। यहाँ पर उसका 'बू- सून' जाति से संघर्ष हुआ, जिसमें यू- ची जाति को विजय प्राप्त हुई और उसका कुलजा प्रदेश पर अधिकार हो गया। यू- ची लोग कई शाखाओं में विभक्त हो गये। उनकी एक शाखा सीर- दरिया के उत्तर में पहुँची। यहाँ पर यूचियों को शकों से भीषण युद्ध करना पड़ा, जिसमें यूचियों की विजय हुई और इन्होंने शकों की भूमि पर अधिकार कर लिया। लेकिन 140 ई० पू० में 'बू- सून' जाति ने इन्हें पुनः पराजित किया। फलतः वे दक्षिण की ओर अग्रसर हुए और इन्होंने आक्सस नदी के समीपवर्ती प्रदेशों पर अधिकार स्थापित कर लिया। यहाँ से ये लोग पाँच शाखाओं में बँट गये जिनमें से एक शाखा 'कुषाण' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

कुषाण- वंश के शासक

कुजूल कदफिस- कुजूल कदफिस कुषाण- वंश का प्रथम शासक था। उसने यवनों की शक्ति को नष्ट कर दिया। पूर्वी गान्धार प्रदेश पर उसने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उसने यूचियों की चार शाखाओं को परास्त करके अपने अधिकार में कर लिया और एकच्छत्र सम्राट् बन गया। उसका वंश कुषाण- वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सम्भवतः उसने यूनानी सम्राट् हर्मियस को परास्त करके अपने अधीन कर लिया। इसके उपरान्त उसने पार्थिया राज्य पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उसने पूर्वी गान्धार पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। उसने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की तथा इसको सिक्कों पर अंकित करवाया। उसके साम्राज्य में गान्धार, दक्षिण अफगानिस्तान सम्मिलित थे। अस्सी वर्ष की अवस्था में 60 ई० पू० उसकी मृत्यु हो गई।

कुषाण वंश के शासक

1. कुजूल कदफिस
2. विम कदफिस
3. सम्राट् कनिष्क

विम कदफिस- कुजूल कदफिस की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र विम कदफिस सम्राट हुआ। वह बड़ा ही महत्वाकांक्षी शासक था। उसने 'महाराजाधिराज जनाधिप' की उपाधि धारण की। उसके शासन- काल में पंजाब, सिन्ध, कश्मीर और उत्तर प्रदेश के कुछ भागों पर कुषाणों की सत्ता स्थापित हो गई। उसने चीन पर भी आक्रमण

किया, किन्तु उसे पराजय का आलिंगन करना पड़ा। विम कदफिस एक सफल शासन प्रबन्धक भी था। कालांतर में कुषाणों ने भारतीय धर्म एवं संस्कृति को अपना लिया। सिक्कों पर अंकित शिव की आकृति से ज्ञात होता है कि 'विम कदफिस' शैव-धर्म का अनुयायी था। विम के पश्चात् कनिष्क कुषाण-साम्राज्य का सर्वश्रेष्ठ शासक हुआ।

सम्राट् कनिष्क प्रथम

कनिष्क प्रथम कौन था और वह किस समय राजसिंहासन पर बैठा, यह प्रश्न इतिहासकारों के लिए विवादास्पद विषय है। लेकिन आधुनिक इतिहासकार उसे कुषाण जाति का मानते हैं। कनिष्क निस्सन्देह अपनी जाति का सबसे अधिक प्रसिद्ध शासक था। विद्वानों द्वारा कनिष्क के राजसिंहासन पर आसीन होने की तिथि 78 ई० के लगभग मानी जाती है।[1] इसी वर्ष से उसने एक संवत् का प्रचलन किया जो बाद में पश्चिमी भारत के शक राजाओं द्वारा दीर्घ-काल तक प्रयुक्त होने के कारण शक सम्वत् कहलाने लगा।

कनिष्क की विजयें- कनिष्क साम्राज्यवादी एवं महत्वाकांक्षी था। राजसिंहासन पर आसीन होने के बाद ही उसने साम्राज्य-विस्तार की योजना बनाई और दूर-दूर तक देशों की विजय की। उसकी प्रमुख विजयें निम्न हैं :-

(1) काश्मीर विजय- कनिष्क ने सबसे पहले कश्मीर प्रदेश पर आधिपत्य स्थापित किया। कल्हण ने अपनी पुस्तक 'राजतंरगिणी' में उसके द्वारा काश्मीर-विजय का उल्लेख किया है। कनिष्क ने काश्मीर प्रदेश में कनिष्कपुर नामक एक सुन्दर नगर बसाया और अनेक स्तूपों एवं विहारों का निर्माण कराया जिनमें पुरुषपुर (पेशावर) का विहार सबसे अधिक प्रसिद्ध था।

(2) उत्तरी भारत की विजय- बौद्ध-ग्रन्थों के अनुसार कनिष्क प्रथम ने पंजाब, उत्तर-प्रदेश, मध्यप्रदेश आदि को विजित करके अपनी सेना को पाटलिपुत्र तक पहुँचाया। पाटलिपुत्र में महान् बौद्ध दार्शनिक अश्वघोष से उसकी भेंट हुई जिसे वह अपनी राजधानी पुरुषपुर (वर्तमान पेशावर) ले आया। साथ में वहाँ के राजा द्वारा दिया हुआ भगवान बुद्ध का जलपात्र भी लाया।

(3) पार्थिया के राजा का आक्रमण- जिस समय कनिष्क प्रथम भारत विजय कर रहा था, पार्थिया के राजा ने उस पर आक्रमण किया, किन्तु कनिष्क प्रथम ने उससे सफलतापूर्वक युद्ध किया। पार्थिया का राजा बुरी तरह पराजित हुआ।

(4) चीन पर आक्रमण- कनिष्क प्रथम की महत्वपूर्ण विजय चीन-विजय थी। प्रथम आक्रमण में वह चीनी सेनानायक पान-चाऊ द्वारा पराजित हुआ, किन्तु पान-चाऊ की मृत्यु के बाद उसने दुबारा चीन साम्राज्य पर भयंकर आक्रमण किया और पान-चाऊ के पुत्र

कनिष्क प्रथम की विजयें
1. काश्मीर-विजय
2. उत्तरी भारत की विजय
3. पार्थिया के राजा का आक्रमण
4. चीन पर आक्रमण

---

1. कनिष्क राज-सिंहासन पर कब आसीन हुआ- इस सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों में अत्यधिक मतभेद है। कैनेडी, फ्लीट और रैप्सन ई० पू० प्रथम शताब्दी; मार्शल, टेनकोनो और स्मिथ 125 ई०; डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार 248 ई० और आर० जी० भण्डारकर 278 ई० राज-सिंहासन पर आसीन होने की तिथि मानते हैं।

पान-यांग को हराया। संधि में उसे काशगर, यारकन्द और खोतान मिले। कहा जाता है कि उसने बन्धक के रूप में दो चीनी राजकुमारों को भी अपने दरबार में रखा।

साम्राज्य-विस्तार- इस प्रकार कनिष्क प्रथम ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उसका साम्राज्य पश्चिम में अफगानिस्तान, काशगर, खोतान तथा यारकन्द से लेकर पूर्व में बनारस (काशी) तक, उत्तर में मथुरा से लेकर दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक फैला हुआ था। बंगाल और उड़ीसा पर सम्भवतः उसका आधिपत्य था, क्योंकि उसके सिक्के इन प्रान्तों के विभिन्न भागों में पाये गये हैं।

क्षत्रप प्रणाली- सारनाथ अभिलेख से कनिष्क के महाक्षत्रप खरपल्लान और क्षत्रप वनस्पर के नाम ज्ञात होते हैं। खरपल्लान मथुरा का महाक्षत्रप और वनस्पर मगध का क्षत्रप था। ऐसा प्रतीत होता है कि शकों की भाँति कनिष्क ने भी अपने विशाल साम्राज्य के विभिन्न भागों में महाक्षत्रपों के शासन की व्यवस्था की थी।

कनिष्क प्रथम का धर्म- कनिष्क प्रथम बौद्ध-धर्म का अनुयायी था। शासन के आरम्भ में ही उसने इस धर्म को अंगीकार कर लिया। पुरुषपुर में कनिष्क प्रथम द्वारा बनवाये गये एक बौद्ध-स्तूप के विषय में फाहियान ने एक रोचक विवरण दिया है। वह लिखता है, "बुद्धदेव ने जब अपने शिष्यों सहित इस देश की यात्रा की तो आनन्द से कहा— मेरे परिनिर्वाण के पश्चात् इस देश में कनिष्क नामक राजा होगा। वह यहाँ स्तूप बनवायेगा।"भविष्यवाणी के अनुरूप कनिष्क संसार में उत्पन्न हुआ। वह सैर करने जा रहा था कि देवराज शक्र उसे चेतावनी देने के लिये ग्वालबाल का रूप धारण कर राह में स्तूप बनाने लगे। राजा ने पूछा, "तू क्या बना रहा है ?" उसने उत्तर दिया, "बुद्धदेव का स्तूप बनाता हूँ।" राजा ने भी बालक के छोटे स्तूप के ऊपर चार सौ हाथ ऊँचा और अनेक रत्नों से जड़ित दूसरा स्तूप बनवा दिया। अनेक स्तूप और मन्दिर यात्रा में देखे, पर इतना सुन्दर और भव्य कोई न मिला। कहते हैं कि जम्बू द्वीप में वह स्तूप सबसे उत्तम है।"

चौथी बौद्ध संगीति- बौद्ध-धर्म की प्रतिष्ठा को शुंग और सातवाहन युग में बहुत धक्का पहुँचा था, जिससे बौद्ध-धर्म पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। उसमें बहुत से सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये थे तथा मूर्ति-पूजा भी प्रचलित हो गयी थी। अतएव इस समय प्राचीन बौद्ध-ग्रन्थों की टीका एवं भाष्य का होना अति आवश्यक था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कनिष्क प्रथम ने कश्मीर के कुण्डलवन विहार में महायान शाखा के 500 भिक्षुओं की एक संगीति बुलाई। अश्वघोष के गुरु आचार्य वसुमित्र और पार्श्व इनमें प्रधान थे। वसुमित्र को सभा का अध्यक्ष तथा अश्वघोष को उपाध्यक्ष नियुक्त किया गया। इस अधिवेशन में 'महाविभाषाशास्त्र' का प्रणयन हुआ और धर्म के ऊपर 'त्रिपिटिक' के प्रमाणित भाष्य सम्पादित किये गये जिनको ताम्रपत्रों पर अंकित करवा कर पत्थर के सन्दूक में बन्दकर विशेष रूप से निर्मित एक स्तूप में सुरक्षित किया गया। इस संगीति में पहली बार पालि भाषाके स्थान पर संस्कृत भाषा का प्रयोग बौद्ध-ग्रन्थों में किया गया।

कुषाणकालीन संस्कृति

(1) धर्म- कुषाण युग से ही बौद्ध-धर्म दो सम्प्रदायों— हीनयान और महायान में विभक्त हो गया। हीनयान मूल बौद्ध-धर्म था और महायान बौद्ध-धर्म का नवीन रूप था। कुषाण राजाओं ने महायान को राजधर्म स्वीकार किया। हीनयान मत के अनुसार प्रत्येक

मनुष्य को निर्वाण-प्राप्ति के लिए स्वयं प्रयास करना चाहिए, उसे ईश्वर और देवताओं से प्रार्थना नहीं करनी चाहिए। किन्तु महायान सम्प्रदाय ने बुद्ध को ईश्वर के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। हिन्दू देवताओं की तरह बोधिसत्वों की मूर्तियों की पूंजा होने लगी। ज्ञान के स्थान पर श्रद्धा और भक्ति पर अधिक बल दिया गया। महायान सम्प्रदाय के सर्वप्रधान ग्रन्थ 'सद्धर्मपुण्डरीक' की रचना कनिष्क काल में ही हुई। इस सम्प्रदाय के अनुसार बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए भिक्षु बनने और संसार त्यागने की आवश्यकता नहीं रह गयी। हिन्दू-धर्म में भी तड़क-भड़क, सजावट, नाच-गाना, आरती और धूप-दीप आदि को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ। इस प्रकार कुषाणकाल में बौद्ध-धर्म ईश्वरवादी और आस्तिक हो गया।

(2) साहित्य- कनिष्क प्रथम साहित्य-प्रेमी था। अतः उसके प्रश्रय से साहित्य की विशेष उन्नति हुई। अश्वघोष उसके दरबार का महाकवि, दार्शनिक, संगीतज्ञ और नाटककार था। उसके ग्रन्थों में **'बुद्ध-चरित'**, **'सौन्दरानन्द'**, **'सारिपुत्र प्रकरण'**, **'व्रजशुचि'** प्रमुख हैं। कनिष्क के दरबार का दूसरा बौद्ध लेखक नागार्जुन था जिसके **'प्रज्ञापरिमित्रासूत्र'**, **'माध्यमिक कारिका'** और **'सुहल्लेखा'** नामक ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी समय के दूसरे विद्वान् लेखक वसुमित्र और पार्श्व थे। आयुर्वेद शास्त्र का प्रसिद्ध लेखक चरक जिसने **'चरक संहिता'** नामक ग्रन्थ की रचना की, कनिष्क के दरबार को सुशोभित करता था।

कुषाणकालीन संस्कृति
1. धर्म
2. साहित्य
3. कला-
   (i) गान्धार कला
   (ii) मथुरा कला

इस प्रकार कनिष्क प्रथम के राज्य संरक्षण के अन्तर्गत दर्शन, साहित्य, नाटक, संगीत, काव्य, गल्प, आयुर्वेद आदि विषयों पर श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचना हुई। इस काल में तक्षशिला, पुरुषपुर और खोतान विद्या के प्रसिद्ध केन्द्र थे।

(3) कला (i) गान्धार-कला- बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय ने कला के क्षेत्र में एक नई शैली का प्रादुर्भाव किया। महायान सम्प्रदाय का केन्द्र गान्धार प्रान्त था जहाँ यूनानी संस्कृति का प्रभाव था। इसलिये यह कला **'हिन्द-यूनानी'** के नाम से विख्यात है। कुषाण-काल में भारत के उत्तर-पश्चिम में यह कला अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गई। इस काल में सर्वप्रथम बुद्ध-प्रतिमा का ही निर्माण पाया जाता है। गान्धार के संगतराशों ने पहले-पहल योगीश्वर बुद्ध की मूर्ति तैयार की। बुद्ध-मूर्ति जटाधारी दिखलाई गई है। इसी काल में बौद्ध-मूर्तियों के ऊपर प्रभामण्डल की रचना प्रारम्भ हुई, जो बिलकुल सादा रहता था। इस कला की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें काले और भूरे रंग के प्रस्तरों का प्रयोग किया जाता था। गान्धार शैली के नमूने तक्षशिला में और पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिम प्रान्तों तथा अफगानिस्तान के अनेक प्राचीन स्थानों पर उपलब्ध हुए हैं। पेशावर, लाहौर और अन्य अजायबघरों में इस कला के नमूने सुरक्षित हैं।

(ii) मथुरा-कला- गान्धार के अतिरिक्त कला का द्वितीय केन्द्र मथुरा था। मथुरा में बनी हुई मूर्तियाँ सारनाथ में उपलब्ध हैं। इस कला में दो प्रकार की कलाओं का सम्मिश्रण पाया जाता है। एक ओर तो भरहुत और साँची की प्राचीन कला-शैली विद्यमान है और दूसरी ओर गान्धार-कला का भी प्रभाव पाया जाता है। मथुरा की कला में भरहुत, साँची की तरह अलंकारयुक्त पक्षी की मूर्तियाँ वैदिक स्तम्भों पर उत्कीर्ण हैं। वेदिका-स्तम्भों पर 'नंगी-अधनंगी, नाचती, फूल तोड़ती, चीते से खेलती, बाजा बजाती, गेंद उछालती, दोहद

करती नारियों की अद्‌भुत अलंकारयुक्त असंख्य मूर्तियाँ बनी हैं।'भगवान बुद्ध के जीवन की विविध घटनाओं— जन्म, सम्बोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन, महापरिनिर्वाण तथा कुछ अन्य घटनाओं—इन्द्र को भगवान बुद्ध का दर्शन, बुद्ध का त्रयस्त्रिंग, स्वर्ग से माता को ज्ञान देकर वापस आना, लोकपालों द्वारा बुद्ध को भिक्षापात्र अर्पित करना आदि को पत्थरों में काट- काटकर अंकित किया गया है।

मथुरा- कला में बुद्ध एवं बोधिसत्वों की मूर्तियों के निर्माण के साथ- साथ हिन्दू- धर्म के अनेक देवी- देवताओं, जैसे- वासुदेव, शिव, दुर्गा, कार्तिकेय, सूर्य आदि की मूर्तियों का निर्माण हुआ। जैनधर्म के तीर्थंकरों की भी मूर्तियाँ बनायी गयीं। कुषाण- वंश के शासकों की मूर्तियों का निर्माण भी किया गया। विमकदफिस और कनिष्क प्रथम की सुन्दर मूर्तियाँ मथुरा के निकट मिली हैं जो मथुरा के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

इस प्रकार मूर्तियों के निर्माण, तक्षण- कला की उन्नति और पत्थर के काम की दृष्टि से कुषाण युग भारतीय इतिहास में एक विशिष्ट स्थान रखता है।

कनिष्क प्रथम 'द्वितीय अशोक' के रूप में

कनिष्क प्रथम बौद्ध- धर्म का अनुयायी था। कनिष्क भी अशोक के समान बौद्ध- धर्म अंगीकार करने के पूर्व बड़ा ही निर्दयी एवं कठोर शासक था। किन्तु अपनी दिग्विजय के पश्चात् अशोक के समान ही इसका परित्याग कर अपने शासनकाल का अधिकांश समय बौद्ध- धर्म के प्रचार में लगाया। अपने गुरु पार्श्व की आज्ञा से कुण्डलवन विहार में महायान शाखा के 500 भिक्षुओं की चतुर्थ बौद्ध- संगीति का आयोजन किया। इस सभा में 'त्रिपिटिक' के प्रमाणित भाष्य की रचना की गई। संगीति ने महायान बौद्ध- धर्म को मान्यता प्रदान की और संरक्षण का भार कनिष्क को सौंपा गया। कनिष्क ने बौद्ध- धर्म के प्रचारार्थ बहुत से स्तूपों, चैत्यों और विहारों का निर्माण करवाया। उसने अपनी राजधानी पुरुषपुर में 120 मीटर ऊँचे और 13 मंजिल वाले स्तूप का निर्माण कराया था। जब चीनी यात्री ह्वेनसांग महाराजा हर्ष के शासनकाल (सातवीं सदी) में भारत- भ्रमण के लिए आया तो इस विशाल स्तूप को देखकर आश्चर्यचकित रह गया था। इसी के समीप उसने एक सुन्दर बौद्ध संघाराम का निर्माण कराया जो नवीं अथवा दसवीं शताब्दी तक बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। इसके अवशेष आज शाहजी डेहरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। जिन राजाओं ने बौद्ध- धर्म को अपनाया और उसके प्रचारार्थ कार्य किया, उनमें कनिष्क का स्थान अशोक के बाद ही आता है। इसी कारण कुछ इतिहासकार कनिष्क को 'द्वितीय अशोक' के नाम से सम्बोधित करते हैं।

कनिष्क प्रथम की मृत्यु- कनिष्क प्रथम ने लगभग 23 वर्ष तक शासन किया और उसका निधन 101 ई० में हुआ। ऐसी जनश्रुति है कि कनिष्क प्रथम के युद्धों से उसके मन्त्री और सेनापति बहुत तंग आ गये थे, अतः उन्होंने उसके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा और उसको मार डाला गया। कनिष्क की एक मस्तकरहित मूर्ति मथुरा जिले के माट नामक स्थान से प्राप्त हुई है जो आज मथुरा के संग्रहालय में सुरक्षित है।

कनिष्क प्रथम का चरित्र- कनिष्क प्रथम की गणना भारत के महान् शासकों में की जाती है। उसके चरित्र की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं

(1) महान् विजेता- कनिष्क प्रथम में एक महान् विजेता, कुशल सैनिक एवं सुयोग्य सेनापति के गुण विद्यमान थे। बौद्धधर्म का अनुयायी होते हुए भी उसने युद्ध-यात्राएँ बन्द न कीं। उसने सर्वप्रथम काश्मीर पर आक्रमण कर उसे जीता। चीनी और तिब्बती अनुश्रुतियों के अनुसार कनिष्क ने साकेत (अयोध्या) और पाटलिपुत्र पर अधिकार किया था। उसका अधिकार उत्तर-प्रदेश, पंजाब, सिंध के उत्तरी प्रदेशों तथा उत्तर-पश्चिम सीमान्त पर भी था। उसके सिक्के श्रावस्ती, कौशाम्बी और सारनाथ तक प्राप्त होते हैं। उसने पार्थियनों को भी पराजित किया तथा चीनी सम्राट को पराजित कर उसे अपनी शर्तें मानने के लिये बाध्य किया। उसका साम्राज्य अफगानिस्तान, बैक्ट्रिया, काशगर, खोतान और यारकन्द तक फैला था। इस प्रकार विजेता के रूप में कनिष्क की गणना महान् शासकों में करना सर्वथा उचित है।

कनिष्क प्रथम का चरित्र

1. महान् विजेता
2. सुयोग्य शासक
3. महान् धर्म-तत्ववेत्ता
4. महान् निर्माता
5. साहित्य तथा कला का आश्रयदाता

(2) सुयोग्य शासक- शासन की दृष्टि से भी कनिष्क प्रथम एक सफल एवं सुयोग्य शासक था। उसने अपराधियों और विद्रोहियों को कभी दया का पात्र नहीं बनाया। उसने अपने क्षत्रपों तथा महाक्षत्रपों पर सदैव पूर्ण नियन्त्रण रखा जिससे उसके शासनकाल में सदैव शान्ति स्थापित रही। विदेशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध होने के कारण देश में व्यापार और वाणिज्य की बड़ी उन्नति हुई। इस प्रकार कनिष्क प्रथम का साम्राज्य धन-धान्य से पूर्ण था। इसकी पुष्टि उसकी मुद्राओं, स्तूपों और विहारों से होती है।

(3) महान् धर्म-तत्ववेत्ता- कनिष्क प्रथम के चरित्र में धर्मपरायणता कूट-कूटकर भरी हुई थी। वह सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु था। बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए उसने अशोक की भाँति ही सफल प्रयास किया। बौद्ध-धर्म में प्रचलित मतभेदों को दूर करने के लिए चतुर्थ बौद्ध संगीति बुलाई और बौद्ध-ग्रन्थों पर टीकायें तथा भाष्य तैयार कराये। उसके शासनकाल में बौद्ध-धर्म का प्रचार मध्य एशिया में विशेष रूप से हुआ। उसकी मुद्राएँ इस बात को प्रमाणित करती हैं कि वह यूनानी, ईरानी तथा ब्राह्मण धर्म का भी सम्मान करता था। इसी धार्मिक सहिष्णुता के कारण कुछ विद्वान् उसे 'द्वितीय अशोक' के रूप में याद करते हैं।

(4) महान् निर्माता- कनिष्क प्रथम ने भवन-निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने अपने साम्राज्य में स्तूपों और विहारों का निर्माण कराया। अपनी राजधानी पुरुषपुर में उसने एक विशाल काष्ठ स्तूप बनवाया और उसमें बुद्ध की अस्थियाँ सुरक्षित कीं। यह स्तूप आज भी उपलब्ध है। यह 120 मीटर ऊँचा था और ऊपर लोहे का एक शिखर था। इसी के समीप उसने एक बौद्ध संघाराम का निर्माण कराया। इनके अतिरिक्त उसने तक्षशिला के समीप एक नगर बसाया और कश्मीर में कानिसयोर (कनिष्कपुर) नामक एक नगर की स्थापना की। ह्वेनसांग के अनुसार कनिष्क ने 170 विहारों एवं स्तूपों का निर्माण कराया था। इस प्रकार कनिष्क प्रथम निर्माता के रूप में विशेष यश का अधिकारी है।

(5) साहित्य तथा कला का आश्रयदाता- कनिष्क प्रथम ने साहित्य एवं कला के विकास के लिए अकथनीय प्रयास किया। वह विद्वानों का विशेष आदर करता था। यही कारण है कि उसके दरबार में अश्वघोष, नागार्जुन, वसुमित्र, पार्श्व और चरक आदि विद्वान् लेखक विद्यमान थे। उसके शासन-काल में गान्धार कला की विशेष प्रगति हुई। महात्मा बुद्ध

की मूर्तियों का निर्माण भी इसके काल में आरम्भ हुआ। गान्धार कला यूनानी और भारतीय कला का सम्मिश्रण है। **डॉ० स्मिथ** ने कला के क्षेत्र में उसकी रुचि की प्रशंसा करते हुए लिखा है :

"Architecture, with its subsidiary art of sculpture, enjoyed the liberal patronage of Kanishka, who was like Ashoka, a great builder."

इस प्रकार कनिष्क प्रथम एक वीर, प्रतापी तथा सफल शासक था। उसके प्रश्रय में विभिन्न कलात्मक क्षेत्रों में पर्याप्त उन्नति हुई तथा विदेशों से भारत का सम्बन्ध स्थापित हुआ।

कनिष्क प्रथम की महानता के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों का मत

डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी के अनुसार- "कनिष्क का भारत के कुषाण- सम्राटों में निःसन्देह सबसे आकर्षक व्यक्तित्व है। वह एक महान [illegible]। और बौद्ध- धर्म का आश्रयदाता था। उसमें चन्द्रगुप्त की- सी सामरिक [illegible] और अशोक के समान धार्मिक उत्साह का सम्मिश्रण था।"[1]

डॉ० हेमचन्द्र राय चौधरी के शब्दों में- "कनिष्क की ख्याति उसकी दिग्विजय के कारण उतनी नहीं है जितनी शाक्यमुनि (बुद्ध) के धर्म को राजाश्रय प्रदान करने के कारण है।"[2]

डॉ० ईश्वरीप्रसाद के अनुसार- "कनिष्क की कीर्ति उसके बौद्धमत के संरक्षण पर निर्भर है जिससे इतिहास में उसका नाम अशोक के बाद आता है।"

डॉ० विसेन्ट स्मिथ के शब्दों में- "कुषाण- सम्राटों में केवल यही एक ऐसा नाम छोड़ गया है जो भारत की सीमाओं से बाहर भी प्रसिद्ध था तथा जिसकी समता के लिए लोग लालायित रहते आये हैं।"[3]

एन० एन० घोष के मतानुसार- "महायान सम्प्रदाय के आश्रयदाता और समर्थक के रूप में उसे उतना ही ऊँचा स्थान प्राप्त है जितना अशोक को हीनयान सम्प्रदाय के संरक्षक तथा समर्थक के रूप में प्राप्त था।"[4]

कनिष्क प्रथम के उत्तराधिकारी- कनिष्क प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र वाशिष्क गद्दी पर आसीन हुआ। इसके पश्चात् हुविष्क तथा कनिष्क द्वितीय क्रमशः सम्राट् हुए। इन राजाओं के शासन- काल की घटनाओं की जानकारी उपलब्ध नहीं है। इस वंश का अन्तिम सम्राट् वासुदेव था। इसके शासन- काल में कुषाण- साम्राज्य छिन्न- भिन्न हो गया और उत्तरी भारत में अनेक छोटे- छोटे राज्यों का उदय हुआ। कुषाण वंश का शासन केवल पंजाब

---

1. "Kanishka is undoubtedly the most striking figure among the Kushan kings of India. A great conqueror and a patron of Buddhism, he combined in himself the military ability of Chandra Gupta Maurya and religious zeal of Ashoka."
   -Dr. Tripathi
2. "Kanishka's fame rest not so much on his conquest as on his patronage of the religion of Shakyamuni."
   -Ray Chaudhary
3. "Alone among the Kushan kings he has left a name cherished by tradition and famous for beyond the limits of India."
   -Smith
4. "As a royal supporter and patron of Mahayanism he occupies an equally great place as Ashoka had occupied with regard to Hinyanism."
   -N. N. Ghosh

के भाग तक सीमित रह गया। इन्हीं परिस्थितियों में मगध में गुप्तवंश का उदय हुआ जिसने मौर्य वंश के बाद भारत के एक विशाल भाग में एक बार पुनः राजनीतिक एकता स्थापित की।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ
(Important Dates & Events)

78 ई० - शक सम्वत् का प्रारम्भ तथा कनिष्क का राज्यारोहण। (1984, 85)
101 ई०- कनिष्क की मृत्यु।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. कनिष्क को 'द्वितीय अशोक' क्यों कहा जाता है ? उसके समय में बौद्धधर्म, साहित्य तथा कला की उन्नति का वर्णन कीजिए। (1956)
2. कनिष्क के चरित्र तथा उसकी सफलताओं का वर्णन कींजिए। उसका भारतीय इतिहास में क्या स्थान है ? (1959)
3. कनिष्क की विजयों का वर्णन कीजिए। उसके काल में भारतीय संस्कृति की क्या प्रगति हु ई? (1962)
4. शासक के रूप में कनिष्क का मूल्यांकन कीजिए। (1968, 73)
5. कनिष्क प्रथम के शासन- काल का इतिहास लिखिए। (1970)
6. कनिष्क के शासन- काल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन कीजिए। (1978)
7. कनिष्क की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। (1980)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "कनिष्क द्वितीय अशोक था।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?
2. "कनिष्क में चन्द्रगुप्त मौर्य की- सी सामरिक योग्यता और अशोक के धार्मिक उत्साह का सम्मिश्रण था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
3. "कुषाण- काल कला का संरक्षक था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
4. "कनिष्क एक महान् विजेता तथा बौद्ध- धर्म का आश्रयदाता था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
5. "कनिष्क की प्रसिद्धि उतनी उसकी विजयों के कारण नहीं है जितनी कि उसकी शाक्यमुनि के धर्म के आश्रयदाता के रूप में है।" डॉ० राय चौधरी के इस कथन की समीक्षा कीजिए। (1986)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. कनिष्क की विजयों का उल्लेख कीजिए।
2. कनिष्क को 'द्वितीय अशोक' क्यों कहा जाता है ?
3. कुषाणकालीन साहित्य तथा कला के विकास का वर्णन कीजिए।
4. कनिष्क द्वारा बौद्धधर्म के प्रति की गई किन्हीं दो सेवाओं का वर्णन कीजिए।(1990)

(घ) संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :

(1) कुजूल कदफिस, (2) विम कदफिस, (3) कनिष्क। (1984)

☆

12
गुप्त-काल

> **"हिन्दू भारत के इतिहास में महान् गुप्त सम्राटों का युग जितना सुन्दर और सन्तोषजनक है, उतना कोई अन्य युग नहीं है। इस युग में साहित्य, कला तथा विज्ञान की असाधारण मात्रा में उन्नति हुई और बिना अत्याचार के धर्म में क्रमागत परिवर्तन किये गये थे।"**
>
> \- डॉ० स्मिथ

गुप्तकालीन इतिहास जानने के साधन- गुप्त-काल के इतिहास निर्धारण में दो प्रमुख साधन हैं-साहित्य एवं पुरातात्विक।

साहित्यिक साधनों में सर्वप्रथम पुराण आते हैं। इनकी संख्या 18 है, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से 'वायु पुराण', 'ब्रह्माण्ड पुराण', 'मत्स्य पुराण', 'विष्णु पुराण' और 'भागवत पुराण' अत्यधिक महत्व रखते हैं। पुराणों से गुप्त साम्राज्य, उसके विभिन्न प्रान्तों तथा सीमाओं का स्पष्ट चित्र मिलता है। गुप्तकालीन साहित्यकारों, जैसे कालिदास, शूद्रक, वात्स्यायन आदि की अमर कृतियों से गुप्तकालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दशा की जानकारी प्राप्त होती है। चीनी यात्री फाह्यान व ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण भी गुप्त इतिहास के निर्माण में उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

पुरातात्विक साधनों में अभिलेखों, मुद्राओं व स्मारकों का उल्लेख किया जा सकता है। समुद्रगुप्त का इलाहाबाद स्तम्भ-लेख निश्चित रूप से गुप्तों के इतिहास की रचना में सहायक सिद्ध हुआ है। अजन्ता तथा एलोरा की गुफाएँ एवं अन्य कलाकृतियाँ उस काल की चित्रकला की महत्वपूर्ण जानकारी देती हैं।

गुप्तों की उत्पत्ति- गुप्तों की उत्पत्ति एवं जाति के सम्बन्ध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में भारी मतभेद है। गुप्त-साम्राज्य के निर्माण के पूर्व भी कुछ अभिलेखों में गुप्त जाति का उल्लेख किया गया है। सातवाहन राजाओं के अभिलेखों में अनेक पदाधिकारियों के नाम के पीछे गुप्त शब्द जुड़ा हुआ मिलता है। **डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी** इन्हें वैश्य जाति का मानते हैं। वे लिखते हैं : "गुप्त सम्राटों की उत्पत्ति सन्देहपूर्ण है परन्तु उनके नाम के पीछे 'गुप्त' शब्द जुड़ा होने के कारण यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वे वैश्य जाति के थे।' **डॉ० जायसवाल** के मतानुसार गुप्त शूद्र थे। उनके इस कथन का आधार **'कौमुदी-महोत्सव'** नामक ग्रन्थ है, इसमें उन्हें नीच कुल का माना गया है। इसके विपरीत **डॉ० राखालदास बनर्जी** गुप्त सम्राटों को लिच्छवि वंश का क्षत्रिय मानते हैं। **'मञ्जुश्री मूलकल्प'** में भी गुप्त सम्राटों को क्षत्रिय ही माना गया है। सम्राटों ने सम्भवतः 'गुप्त' शब्द का प्रयोग अपने वंश के संस्थापक 'श्रीगुप्त' के नाम पर किया होगा।

गुप्त-वंश के शासक

श्रीगुप्त तथा घटोत्कच- अभिलेखों के अनुसार गुप्त वंश का संस्थापक तथा प्रारम्भिक शासक श्रीगुप्त (लगभग 240-280 ई०) था जिसने किसी सम्राट का सामन्त होने के कारण

'महाराज' की उपाधि धारण की थी। चीनी यात्री इत्सिंग के अनुसार श्रीगुप्त ने चीनी तीर्थयात्रियों के लिए मृगशिखा वन में एक बौद्ध मन्दिर का निर्माण कराकर उसके व्यय हेतु चौबीस गाँव दान में दिये थे। श्रीगुप्त के समान ही उसका पुत्र घटोत्कच स्वतन्त्र सम्राट् नहीं था। उसने भी **'महाराज'** की उपाधि धारण की थी। अनुमानतः इन प्रारम्भिक दोनों 'महाराजों' ने 275 ई० से लेकर 319 ई० तक शासन किया था। उनके शासनकाल की किसी उल्लेखनीय घटना की जानकारी नहीं मिलती।

चन्द्रगुप्त प्रथम (319-335)- चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्त वंश का प्रथम महान् शासक था जिसने **'महाराजाधिराज'** की उपाधि धारण की थी। इससे स्पष्ट है कि उसने स्वतन्त्र सम्राट् के रूप में शासन करना आरम्भ किया। **डॉ० बनर्जी** के अनुसार गुप्त सम्राटों के पूर्व मगध पर कुषाण क्षत्रियों का शासन था। इस विदेशी शासन के प्रति यहाँ की जनता में घृणा उत्पन्न हो गयी थी। फलतः इन विदेशियों से मातृभूमि को मुक्त करने के लिये प्रजा ने चन्द्रगुप्त प्रथम के नेतृत्व में राष्ट्रीय संग्राम प्रारम्भ किया और कुषाणों के शासन को समाप्त कर दिया। इस प्रकार मगध पर गुप्त वंश का शासन प्रारम्भ हुआ। यह राष्ट्रीय संघर्ष 319 में हुआ था और इसी वर्ष चन्द्रगुप्त प्रथम सम्राट् बन गया। इस विजय को अविस्मरणीय बनाने के लिए उसने गुप्त सम्वत् प्रचलित किया और **'महाराजाधिराज'** की उपाधि धारण की।

चन्द्रगुप्तकालीन सिक्का

चन्द्रगुप्त प्रथम ने लिच्छवि वंश की राजकुमारी महादेवी कुमार देवी से विवाह किया। इस वैवाहिक संबंध से उसकी राजनीतिक स्थिति सुदृढ़ हो गयी। उसके इस वैवाहिक सम्बन्ध की पुष्टि उसके सिक्कों से होती है, जिन पर **'लिच्छवयः'** शब्द अंकित है, साथ ही कुमार देवी की आकृति भी बनी हुई है। चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने जीवनकाल में ही समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। वायु पुराण के अनुसार चन्द्रगुप्त प्रथम के साम्राज्य में प्रयाग, साकेत एवं मगध सम्मिलित थे। वायु पुराण में कहा गया है-

चन्द्रगुप्त प्रथम के शासन-काल की घटनाएँ

1. गुप्त संवत् का प्रचलन
2. महाराजाधि राज की उपाधि धारण करना
3. लिच्छवियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध
4. समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी के रूप में निर्वाचन

"अनु-गंगा-प्रयागं च साकेतं मगधास्तथा,
एतान् जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजा।"

अर्थात् गुप्तवंश के शासक 'गंगा के किनारे प्रयाग, साकेत तथा मगध आदि प्रदेशों पर शासन करेंगे।'

समुद्रगुप्त (335-375)

चन्द्रगुप्त प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र समुद्रगुप्त 335[1] में मगध के राजसिंहासन पर आसीन हुआ। समुद्रगुप्त ने अपने पिता के समय में ही अपने अपूर्व गुणों को प्रदर्शित कर दिया था। इसी कारण उसके पिता ने उसे अपना उत्तराधिकारी भी नियुक्त किया था। समुद्रगुप्त की विजयों का विस्तृत विवरण इलाहाबाद के किले में खड़े अशोक के स्तम्भ से ज्ञात होता है। इस स्तम्भ पर उल्लिखित प्रशस्तियाँ उसके दरबारी कवि हरिषेण द्वारा रची गयी थीं। इसे काल का अद्भुत व्यंग्य ही कहा जा सकता है कि जहाँ एक ओर अशोक के शान्तिप्रद आचार-उपदेशों का उल्लेख है वहीं दूसरी ओर समुद्रगुप्त की रक्तरंजित विजयों का भी उल्लेख है। प्रशस्तिकार हरिषेण ने विजयों के वर्णन में काल-क्रम का ध्यान न रखकर भोगौलिक क्रम को ही ध्यान में रखा है। लेकिन यहाँ विजयों का उल्लेख तिथि-क्रम के अनुसार किया जायेगा।

समुद्रगुप्त की प्रारम्भिक विजयों में पाटलिपुत्र पर आक्रमण और नागराजाओं (अच्युत और नागसेन) को परास्त करना है। ऐसा अनुमान किया गया है कि जब समुद्रगुप्त ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया, उसी समय पीछे से नागवंशीय राजाओं ने उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया। लेकिन उसने बड़े धैर्य से काम लिया। पाटलिपुत्र पर आधिपत्य स्थापित करके नागवंशीय राजाओं को परास्त किया। उसने पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाया और वहीं से अपनी दिग्विजय यात्रा आरम्भ की।

समुद्रगुप्त की दिग्विजय यात्रा- प्रयाग-स्तम्भ प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त ने जिन राजाओं को विजित किया, उन सबको निम्नलिखित भागों में रखा जा सकता है :

समुद्रगुप्त की दिग्विजय-यात्रा

1. आर्यावर्त की विजय
2. आटविक राज्यों पर विजय
3. दक्षिणापथ की विजय
4. सीमान्त राज्यों की विजय
5. गणराज्यों की विजय

(1) आर्यावर्त की विजय- समुद्रगुप्त ने पहले आर्यावर्त के नौ राजाओं पर आक्रमण कर उनके राज्यों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया और उनके साथ 'कठोर नीति' का अनुसरण किया। प्रशस्तिकार हरिषेण ने जिन नौ राजाओं के नाम दिये हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं :

(1) रुद्रदेव, (2) मतिल, (3) नागदत्त, (4) चन्द्रवर्मा, (5) गणपति नाग, (6) नागसेन, (7) अच्युत, (8) नन्दि, (9) बलवर्मा।

उक्त राजाओं में रुद्रदेव वाकाटक वंश का राजा था। शेष अधिकांश मथुरा, पद्मावती के नागवंशीय राजा थे।

(2) आटविक राज्यों पर विजय- इसके बाद समुद्रगुप्त ने विंध्यपर्वत के आस-पास के जंगलों में स्थित विभिन्न राज्यों पर आक्रमण किया और उनको अपना 'सेवक बनने' पर बाध्य किया। प्रयाग स्तम्भ-प्रशस्ति में उन विंध्यप्रदेश के राज्य और उनके राजाओं के नाम नहीं दिये हैं।

(3) दक्षिणापथ की विजय- समुद्रगुप्त ने दक्षिणापथ के राजाओं को पराजित कर बन्दी बना लिया, किन्तु फिर मुक्त कर उन्हें उनके राज्य लौटा दिये। प्रयाग स्तम्भ-प्रशस्ति में दक्षिणापथ के जिन बारह राज्यों का उल्लेख है, वे इस प्रकार हैं :

1. गया के ताम्र-पत्र-लेख के अनुसार समुद्रगुप्त 325 में सम्राट् बना। यदि इस तिथि को स्वीकार किया जाय तो समुद्रगुप्त ने 50 वर्ष तक शासन किया।

(1) कोशल का महेन्द्र, (2) महाकान्तार का व्याघ्रराज, (3) कोराल का मन्तराज, (4) पिष्टपुर का महेन्द्रगिरि, (5) कोट्टूर का स्वामिदत्त, (6) एरंडपल्ल का दमन, (7) काँची का विष्णुगोप, (8) अवमुक्त का नीलराज, (9) वेंगी का हस्तिवर्मा (10) पल्लक का उग्रसेन, (11) देवराष्ट्र का कुबेर तथा (12) कुस्थलपुर का धनंजय।

(4) सीमान्त राज्यों की विजय- दक्षिणापथ की विजय करने के पश्चात् समुद्रगुप्त ने सीमान्त राजाओं को परास्त किया। उनमें से कुछ राज्यों ने तो बिना युद्ध किये ही समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली। सीमान्त राजाओं ने वार्षिक कर, दान, आज्ञापालन आदि से समुद्रगुप्त को सन्तुष्ट रखने का वचन दिया। सीमान्त-प्रदेश के जिन पाँच राज्यों ने उसकी अधीनता स्वीकार की उनके नाम इस प्रकार हैं :

(1) समतट (गंगा का मुहाना), (2) दवाक (ढाका, टिपरा के पहाड़ी प्रदेश), (3) कामरूप (असम), (4) नेपाल तथा (5) कर्तृपुर (पूर्वी पंजाब, उत्तर प्रदेश के कुमायूँ, गढ़वाल आदि पहाड़ी जिले)।

(5) गणराज्यों की विजय- जिन गणराज्यों ने समुद्रगुप्त के प्रति स्वयं आत्मसमर्पण कर दिया, उनके नाम इस प्रकार हैं :

(1) **मालव,** (अजमेर . टोंक, मेवाड़), (2) **अर्जुनायन** (अलवर तथा पूर्वी जयपुर,) (3) **यौधेय** (यमुना के पश्चिम बहावलपुर तक सतलज की घाटी), (4) **मद्रक** (रावी तथा चिनाव नदी के मध्य का प्रदेश), (5) **आभीर** (मध्य-भारत में पार्वती और बेतवा नदी के बीच का प्रदेश), (6) **प्रार्जुन** (मध्य प्रदेश में नरसिंहपुर के समीप का प्रदेश), (7) **सनकानिक** (भिलसा के पास), (8) **काक** (भिलसा के आस-पास के प्रदेश), (9) **खरपरिक** (दमोह के पास)।

इन गणराज्यों को परास्त करने के पश्चात् लगभग सम्पूर्ण भारत में समुद्रगुप्त का आधिपत्य हो गया।

विदेशी राज्यों से सम्बन्ध- प्रयाग स्तम्भ-प्रशस्ति में कुछ ऐसे राज्यों का भी उल्लेख है जिन्होंने समुद्रगुप्त से मैत्री स्थापित की। एक चीनी प्रमाण से यह सिद्ध है कि लंका के राजा मेघवर्ण ने जो समुद्रगुप्त का समकालीन था, बोधगया में दो भिक्षुओं को भेजा। लेकिन उनको अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ा। स्वदेश लौटने पर उन्होंने अपने राजा से भारत में एक विश्रामगृह की स्थापना के लिये प्रार्थना की। परिणामतः मेघवर्ण ने बहुत बहुमूल्य उपहारों के साथ अपने राजदूत को समुद्रगुप्त के पास भेजा और उसने बोधगया में एक बौद्ध विहार बनाने की आज्ञा माँगी। अनुमति मिल जाने पर उसने बोधगया में 'महाबोधि संघाराम' नाम का एक विहार बनवाया जो ह्वेनसांग के समय विद्यमान था।

प्रयाग स्तम्भ-प्रशस्ति में इस बात का उल्लेख है कि दैवपुत्र-षाहि-षाहानुषाहि, शक, मुरुण्ड, सिंहल और अन्य द्वीपों के निवासियों ने समुद्रगुप्त से सन्धियाँ की और संधि की शर्तों के अनुसार आत्मसमर्पण, कन्याओं की भेंट तथा अन्य प्रकार के उपहार देना और गरुड़ के चिह्न से अंकित आज्ञापत्र लेना स्वीकार किया। इन शर्तों से ज्ञात होता है कि ये पड़ोसी राज्य समुद्रगुप्त के आतंक में थे और उन्होंने सम्राट् की इच्छानुसार शर्तों को स्वीकार किया था।

अश्वमेध यज्ञ- अपनी सम्पूर्ण विजयों के उपरान्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किया और अपने को भारत का **'महाराजाधिराज'** घोषित किया। इस यज्ञ के उपलक्ष्य में उसने सोने के सिक्के चलाये और ब्राह्मणों को प्रचुर दान दिया। इन सिक्कों के एक ओर पताकायुक्त यज्ञयूप में बँधे हुए अश्वमेध के घोड़े की मूर्ति है और दूसरी ओर चवँर लिये प्रधान महिषी का चित्र और वामभाग में त्रिशूल है। महिषी के पीछे **'अश्वमेध पराक्रमः** अंकित है। ऐसा विश्वास

किया जाता है कि अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान प्रयाग स्तम्भ-प्रशस्ति लेखन के पश्चात् ही हुआ होगा क्योंकि इसका उल्लेख उसमें नहीं है। लगभग 40 वर्ष शासन करने के बाद इस वीर विजेता की मृत्यु 375 के लगभग हुई।

समुद्रगुप्त का चरित्र- समुद्रगुप्त की गणना भारत के महान् विजेताओं एवं सम्राटों में की जाती है। उसमें वे समस्त गुण विद्यमान थे जो एक सफल और योग्य शासक में होने आवश्यक हैं। **स्मिथ के शब्दों में, "समुद्रगुप्त असाधारण क्षमता तथा विभिन्न गुणों का आगार था। वह एक सच्चा मनुष्य, एक विद्वान, कवि, गायक तथा वीर सेनानी था।"**[1]

समुद्रगुप्त के विभिन्न गुणों तथा कार्यों की विवेचना इस प्रकार की जाती है :

(1) महान् विजेता- समुद्रगुप्त की गणना न केवल भारत के बल्कि विश्व के महान् विजेताओं में होती है। उसकी वीरता का लोहा भारतीय नृपतियों ने ही नहीं माना था, बल्कि समीप के समस्त प्रदेशों के राजाओं ने भी उससे शान्ति क्रय की थी। उसने अपनी दिग्विजय द्वारा छिन्न-भिन्न भारत को राजनीतिक एकता के सूत्र में बाँध दिया। हरिषेण ने प्रयाग स्तम्भ-प्रशस्ति में समुद्रगुप्त की वीरता का वर्णन इस प्रकार किया है-

"वह नृपति विभिन्न प्रकार के सैकड़ों युद्धों में भाग लेने में दक्ष था; जिसका एकमात्र बन्धु उसकी दोनों भुजाओं के बल से अर्जित विक्रम ही था; उस सम्राट का प्रतीक उसका प्रताप था; फरसा, वाण, बर्छी , नोकदार भाला, शंकु, बल्लम एवं नाराच आदि अनेक शस्त्रों के प्रहार की चोटों से उत्पन्न छटा द्वारा उसके शरीर की कान्ति द्विगुणित हो उठती थी।"[2]

(2) कुशल सेनानायक- समुद्रगुप्त महान् विजेता के साथ-साथ एक कुशल सेनानायक था। उसकी गणना विश्व के कुशल सेनानायकों में की जाती है। इतिहासकार **विंसेन्ट स्मिथ** ने उसे **'भारतीय नेपोलियन'** के नाम से सम्बोधित किया है। अपने शासन-काल में उसने जितने युद्ध किये, सभी में सक्रिय भाग लिया। वह स्वयं सेना का संचालन करता था। वह बड़ा धैर्यवान था। जिस समय वह पाटलिपुत्र की ओर बढ़ रहा था उसी समय पीछे से नागवंश के राजाओं ने उसके राज्य पर आक्रमण किया था। इस विषम परिस्थिति में उसने बड़े धैर्य और साहस से काम लिया और "सीमा से बढ़े हुए अपने अकेले बाहुबल से अच्युत एवं नागसेन को क्षण में जड़ से उखाड़ दिया।"[3] उसको अपने बाहुबल पर अटूट विश्वास था। वह 'समरशत' अर्थात् **'सौ युद्धों का विजेता'** था।

(3) उदारता की प्रतिमूर्ति- समुद्रगुप्त उदारता का प्रतीक था। यदि एक ओर उसमें वीरता के सभी गुणों का समन्वय था तो दूसरी ओर उसमें पूर्ण उदारता भी थी। वह निर्धन और दुखी व्यक्तियों की सदैव सहायता करने को उद्यत रहता था। हरिषेण ने प्रयाग स्तम्भ-प्रशस्ति में उनकी दानशीलता और उदारता का चित्रण इस प्रकार किया है : "जो सज्जनों के उत्कर्ष एवं दुष्टों के अपकर्ष का कारण था; जो अचिन्त्य पुरुष था; भक्ति एवं विनम्रता द्वारा ही जिसे वशीभूत किया जा सकता था ; जो मृदु हृदय, अनुकम्पावान् एवं एक लक्ष गौओं का प्रदाता था। आर्त्त, दीन, अनाथ एवं रुग्ण व्यक्तियों के उद्धरण-निमित्त जिसके मन ने मन्त्र एवं दीक्षा ग्रहण

1. Samudra Gupta was a man of exceptional personal capacity and unusually varied gifts. He stands forth as a real man, a scholar, a poet, musician and a warrior. " V. A. Smith
2. 'तस्य-विविध-समर-शतावतरण-दक्षस्य-स्वभुजबलपराक्रमैक बन्धोः पराक्रमांकस्य परशु-शर-शंकु-शक्ति-प्रासासि-तोमरभिंदिपाल नाराच-वैतस्तिकाद्यनेक प्रहरणविरुद्धाकुलव्रणशतांकशोभासमुदयोपचितकान्तरवर्ष्मणः।"
3. 'उद्वेलोदित बाहुवीर्य रभसादेकेन येन क्षणादुन्मूल्याच्युत नागसेन।"

की थी . . . ।"[1] ब्राह्मण धर्म का अनुयायी होते हुए भी उसने अन्य धर्मों के प्रति अपना आदर एवं श्रद्धा-भाव व्यक्त किया। वसुबन्धु नामक बौद्ध-भिक्षु ने भी समुद्रगुप्त की उदारता की प्रशंसा की है।

(4) साहित्य तथा संगीत-प्रेमी- समुद्रगुप्त की साहित्य और संगीत के प्रति विशेष अभिरुचि थी। इसीलिये वह एक साहित्यकार और संगीतकार के रूप में विशेष प्रसिद्ध है। वह कवि एवं विद्वानों का आश्रयदाता था। उसकी राजसभा का सबसे अधिक विख्यात कवि हरिषेण था जो प्रयाग स्तम्भ-प्रशस्ति का लेखक था। उसके मंत्री हरिषेण ने उसके विषय में लिखा है, 'विद्वानों की जीविका के योग्य अनेक काव्य-रचनाओं द्वारा जिसने 'कवि-राज' की उपाधि अर्जित की थी; जिसका अद्भुत एवं उदार चरित्र चिर-काल तक गान करने योग्य है'।[2]

समुद्रगुप्त को वीणा बजाने तथा संगीत का बड़ा चाव था। उसके संगीतप्रेमी होने का प्रमाण उसकी स्वर्ण-मुद्राएँ हैं, जो वीणांकित हैं। प्रयाग स्तम्भ-लेख के अनुसार, 'जिसने अपनी तीव्र एवं विलक्षण बुद्धि और गान्धर्वविद्या में प्रवीणता द्वारा देवताओं के अधिपति (इन्द्र) के आचार्य (काश्यप), तुम्बुरू एवं नारद आदि को भी लज्जित कर दिया था'।[3]

समुद्रगुप्त का चरित्र

1. महान् विजेता
2. कुशल सेनानायक
3. उदारता की प्रतिमूर्ति
4. साहित्य तथा संगीत प्रेमी
5. राजनीति का प्रकाण्ड पण्डित
6. विभिन्न गुणों का सम्मिश्रण

इस सम्बन्ध में समुद्रगुप्त की प्रशंसा करते हुए **आर० सी० मजूमदार** ने लिखा है :

"समुद्रगुप्त की सैनिक विजय महान् थी ही।उसकी व्यक्तिगत साधनाएँ भी कम महत्वपूर्ण न थीं। उसके राज-दरबार के कवि ने विजित लोगों के प्रति उसकी उदारता की प्रशंसा की है और साथ ही लिखा है कि सम्राट् बुद्धिमान, शास्त्र-पण्डित, कवि और संगीतज्ञ था।"

(5) राजनीतिज्ञ का प्रकाण्ड पण्डित- समुद्रगुप्त में एक कूटनीतिज्ञ के सभी गुणों का समावेश था। उसने इस बात का अनुभव किया कि उस युग में जबकि यातायात के साधनों का अभाव था, एक केन्द्र से सम्पूर्ण आधिपत्य प्रदेशों का शासन करना असम्भव था। इसलिये उसने उत्तरी भारत के राज्यों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया। शेष राज्यों के प्रति उदार नीति का अनुसरण किया। इस प्रकार उसने साम्राज्य के चारों ओर ऐसे राज्यों की स्थापना की जो उसके साम्राज्य के संरक्षक तथा परमभक्त थे और किसी भी समय उसके साम्राज्य पर आक्रमण करने का विचार नहीं कर सकते थे। इस प्रकार उसने ऐसी उच्चकोटि की नीति अपनायी जिसका पालन कर उसके उत्तराधिकारी भी शांतिपूर्वक राज्य करने में सफल हुए और सभी क्षेत्रों में पर्याप्त उन्नति हुई, जिससे गुप्त-काल ने भारतीय इतिहास में 'स्वर्णयुग' के पद को प्रतिष्ठित किया।

(6) विभिन्न गुणों का सम्मिश्रण- समुद्रगुप्त द्वारा प्रचलित छः प्रकार के सिक्के उपलब्ध हुए हैं जिनसे उसके विभिन्न गुणों का पता चलता है। गरुड़ध्वजांकित सिक्कों में उसकी पदवी **'पराक्रमः'** लिखी है। दूसरे प्रकार के सिक्कों में धनुष-बाण लिये राजा की मूर्ति अंकित है और

1. "साध्वसाधूदयप्रलयहेतुपुरुषस्य-मृदुहृदयस्य अनुकम्पावतोनेकगो-शतसहस्रप्रदायिनः कृपणदीनानाथातुरजनोद्धरणमंत्रदीक्षा भ्युपगमनसः . . . . ।"
2. "विद्वज्जनोपजीव्यानेककाव्यक्रियाभिः प्रतिष्ठितकविराजशब्दस्य सुचिर-स्तोतव्यानेकाद्भुतोदारचरितस्य।"
3. "निशितविदग्धमतिगान्धर्वललितैर्व्रीडित-त्रिदशपतिगुरुतुम्बुरुनारदादे।"

'अप्रतिरथः लिखा है। तीसरे प्रकार के सिक्कों में राजा की मूर्ति परशु लिये खड़ी है और **'कृतांत-परशु'** लिखा है। चौथे प्रकार के सिक्कों में राजा धनुष-बाण से व्याघ्र को मारते हुए चित्रित हैं और वायें हाथ के नीचे **'व्याघ्रपराक्रमः'** लिखा है। पाँचवें प्रकार के सिक्कों में राजा मोटे पर्यंक पर बैठा वीणा बजा रहा है और राजमूर्ति के चारों ओर **'महाराजाधिराज समुद्रगुप्तः** लिखा है। छठें प्रकार का सिक्का अश्वमेध सिक्का है, जिसमें **'अश्वमेध-पराक्रमः** अंकित है। इस प्रकार उसके सिक्कों से ज्ञात होता है कि उसमें विभिन्न गुणों का सम्मिश्रण था।

अन्त में, प्रयाग स्तम्भ-प्रशस्ति में समुद्रगुप्त का चारित्रिक मूल्यांकन इन शब्दों में किया गया है :

'जिस प्रकार शिव (पशुपति) की जटा-जूट रूपी अर्न्तगुहा के बन्धन से उन्मुक्त होने के पश्चात् गंगा का पवित्र जल तीनों ही लोकों को पवित्र करता है; उसी भाँति उस सम्राट का संचित विमल-यश, दान-परायणता, बाहु-बल एवं शास्त्रज्ञान के उत्कर्ष द्वारा अनेक मार्गो से शान्तिपूर्वक ऊपर उठता हुआ तीनों ही भुवनों को पवित्र करता है''।[1]

समुद्रगुप्त 'भारतीय नेपोलियन' के रूप में

डॉ० विन्सेन्ट स्मिथ ने समुद्रगुप्त को भारतीय नेपोलियन की उपाधि से विभूषित किया है। जिस प्रकार नेपोलियन एक महान योद्धा तथा विजेता था और अपने बाहुबल तथा रण-कौशल से सम्पूर्ण यूरोप को आतंकित कर दिया था, उसी प्रकार समुद्रगुप्त ने भारत के नृपतियों को नतमस्तक कर दिया था। उसने आर्यावर्त के नौ राजाओं को बलपूर्वक नष्ट कर उनके राज्य छीन लिये थे। दक्षिणापथ के राजाओं को जीतकर उनके राज्य लौटा दिये थे और वार्षिक कर लेकर ही सन्तुष्ट हो गया था। समुद्रगुप्त की इन विजयों से आतंकित होकर सीमांत राज्यों तथा गणराज्यों ने बिना युद्ध किये ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। अनेक विदेशी राजाओं ने उसकी सत्ता को स्वीकार किया और आत्मसमर्पण, कन्याओं की भेंट के साथ गरुड़-चिह्न से अंकित आज्ञापत्र प्राप्त कर उससे शान्ति क्रय की।

समुद्रगुप्त की विजयों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह एक उच्चकोटि का सेनापति और विजेता था। इस आधार पर उसे भारत का नेपोलियन कहना सर्वथा उचित है। लेकिन समुद्रगुप्त नेपोलियन से अधिक सफल और विजेता था। समुद्रगुप्त ने अपने जीवनकाल में जितने युद्ध किये , उनमें उसे कभी पराजय नहीं मिली, बल्कि सदैव उसने विजयलक्ष्मी का आलिंगन ही किया। उसे 'समरशत' अर्थात् सौ युद्धों का विजेता कहा जाता है। इसके विपरीत नेपोलियन को वाटरलू के युद्ध में पराजित होना पड़ा और मास्को जैसी दुर्घटना के कटु फल चखने पड़े। नेपोलियन का अन्त बड़ा ही दुःखात्मक हुआ। उसे वाटरलू के युद्ध में पराजित होने के बाद जीवन के शेष दिन सेंटहेलेना द्वीप में अंग्रेजों की कैद में बिताने पड़े जबकि समुद्रगुप्त ने 40 वर्षों तक अपनी सफलता का सुख भोगा और उसके उत्तराधिकारियों ने भी सफलतापूर्वक शासन किया। इस प्रकार समुद्रगुप्त नेपोलियन से कहीं महान् था।

रामगुप्त- **'विशाखदत्त'** नाटक के अनुसार समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त था। इसकी स्त्री का नाम ध्रुवस्वामिनी अथवा ध्रुवदेवी था। रामगुप्त अत्यन्त विलासी, अयोग्य तथा कायर था। कहा जाता है कि शकराज ने रामगुप्त पर आक्रमण कर दिया था जिससे भयभीत होकर वह एक छोटे से पर्वतीय प्रदेश में छिप गया। लेकिन शकराज पीछा करते हुए वहाँ

१. ''प्रदान-भुजविक्रम-प्रशम-शास्त्रवाक्योदयै-
रुपर्य्यपरि-सञ्चयोच्छ्रितमनेक मार्ग यशः।
पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्ज्जटान्तर्गुहा-
निरोध-परिमोक्ष-शीघ्रमिव पाण्डुगाङ्गपयः।।

भी पहुँच गया। सन्धि के परिणामस्वरूप कायर रामगुप्त अपनी पत्नी ध्रुवदेवी को भी शकराज को देने के लिये तैयार हो गया। उसकी ऐसी कायरता का उदाहरण इतिहास में अन्यत्र मिलना मुश्किल है। उसने गुप्तवंश के गौरव को कलंकित कर दिया। रामगुप्त के भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय को यह असह्य था। फलतः उसने षड्यन्त्र द्वारा शकराज की हत्या करके साम्राज्य और अपने वंश के गौरव की रक्षा की। इसके वाद रामगुप्त की हत्या करके उसने स्वयं सम्राट् पद ग्रहण किया और ध्रुवदेवी से विवाह कर उसे महादेवी का पद प्रदान किया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' (लगभग 375-414)

चन्द्रगुप्त अपने ज्येष्ठ भ्राता रामगुप्त का वध कर तथा स्त्री ध्रुवदेवी से विवाह करने के बाद मगध राजसिंहासन पर आसीन हुआ। यही चन्द्रगुप्त भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के रूप में विख्यात है। गुप्त और वाकाटक लेखों में चन्द्रगुप्त द्वितीय के अन्य नाम देवराज तथा देवगुप्त भी ज्ञात होते हैं। **साँची के लेख में 'महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त देवराज इतिप्रियं नाम'** ऐसा उल्लेख मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि इसका दूसरा नाम 'देवराज' था। चामुकवाले वाकाटक शिलालेख में इसका तीसरा नाम 'देवगुप्त' मिलता है। इसकी दो रानियाँ थीं। प्रथम कुवेरनागा थी जिसकी पुत्री का नाम प्रभावती गुप्त था। इसका विवाह वाकाटक राजा रुद्रसेन द्वितीय से सम्पन्न हुआ था। द्वितीय रानी ध्रुवदेवी थी जिसके गर्भ से कुमारगुप्त और गोविन्दगुप्त का जन्म हुआ था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय की दिग्विजय

चन्द्रगुप्त द्वितीय के पराक्रमी पिता समुद्रगुप्त ने लगभग भारत के समस्त राजाओं को अपने पराक्रम से नतमस्तक किया था। सीमान्त राजाओं ने भी उससे शान्ति क्रय की थी, किन्तु उसकी मृत्यु के बाद ही वे स्वतन्त्र होने का उपक्रम करने लगे। अतः अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के उपरान्त चन्द्रगुप्त ने अस्त्र का सहारा लेकर विजययोजना का निर्माण किया। विशाल साम्राज्य की सुरक्षा हेतु उसको कुछ युद्ध भी करने पड़े, जिनमें उसने विजय प्राप्त की। **मजूमदार महोदय** का कथन है, **"चन्द्रगुप्त में पैतृक सैनिक बुद्धिकौशल था। उसने पश्चिम की ओर से अपनी विजय का अभियान प्रारम्भ किया।"**[1]

(1) गणराज्यों का अन्त- विदेशी राज्यों और गुप्त साम्राज्य के मध्य में मद्रगण से लेकर दक्षिण में खरपरिकगण तक छोटे-छोटे गणराज्य स्थित थे। ये गणराज्य बड़े स्वतन्त्रता प्रेमी थे, किन्तु इनकी शक्ति संगठित न होकर बिखरी हुई थी जिससे वे किसी बाह्य आक्रमण का सामना नहीं कर सकते थे। इस परिस्थिति से लाभान्वित होकर चन्द्रगुप्त ने उन पर आक्रमण कर उनको पराजित किया और उन्हें अपने साम्राज्य में मिला लिया। इससे इन गणराज्यों का अस्तित्व सदैव के लिये समाप्त हो गया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय की दिग्विजय

1. गणराज्यों का अन्त
2. विधर्मी शकों का अन्त
3. पूर्वी राज्यों का उन्मूलन
4. पश्चिमोत्तर भारत पर अधिकार
5. दक्षिण के राजाओं पर पुनः अधिकार

(2) विधर्मी शकों का अन्त- अवन्ति से लेकर सौराष्ट्र तक शक क्षत्रपों का आधिपत्य था और रुद्रसिंह तृतीय वहाँ शासन कर रहा था। चन्द्रगुप्त द्वितीय की सेना का सामना रुद्रसिंह तृतीय नहीं कर सका। उदयगिरि के अभिलेख से चन्द्रगुप्त के इस आक्रमण पर कुछ प्रकाश पड़ता है कि

1. "Chandragupta inherited the military genius of his father launched upon a compaign of conquest towards the west." —Majumdar

"सम्पूर्ण पृथ्वी के विजय की अभिलाषा से वह (शाब.-युद्ध सचिव, उपनाम वीरसेन) राजा (चन्द्रगुप्त द्वितीय) के ही साथ यहाँ (उदयगिरी) आया था।'' अन्य अभिलेखों से भी यह प्रमाणित है कि चन्द्रगुप्त ने मालवा के शकों को परास्त किया था। शक राजा को पराजित करने पर पश्चिम के गुजरात, काठियावाड़, मालवा, राजपूताना आदि प्रदेशों पर उसका आधिपत्य स्थापित हो गया। विधर्मी शकों को पराजित करने के उपलक्ष्य में ही उसे 'शकारि' भी कहा जाता है।

(3) पूर्वी राज्यों का उन्मूलन- मिहरौली के **लौह-स्तम्भ** से ज्ञात होता है कि बंगाल में समतट, दवाक तथा कामरूप के राजा चन्द्रगुप्त के विरुद्ध विद्रोह करने को एकत्रित हुए। चन्द्रगुप्त को जब इस संगठन का ज्ञान हुआ तो उसने अपनी विशाल एव सुसंगठित सेना द्वारा इस विशाल संघ का अन्त कर डाला। इस युद्ध में 'चन्द्रगुप्त ने अपनी भुजाओं पर खड्ग से कीर्ति अंकित की।' इस विजय से चन्द्रगुप्त ने साम्राज्य की सीमा असम प्रदेश तक पहुँचा दी।

(4) पश्चिमोत्तर भारत पर अधिकार- पूर्वी राज्यों का अन्त करने के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित गांधार-कम्बोज के शक, मुरुण्डों (कुषाणों) का संहार किया तथा वाल्हीक देश तक विजय प्राप्त की। मिहरौली के लौह-स्तम्भ से स्पष्ट ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त ने सिन्धु नदी के सातों मुखों को पार कर वाह्लीकों को जीता था। वल्ख प्रदेश ही वाह्लीक कहलाता था। इस प्रकार उसका समस्त पंजाब और सीमान्त प्रदेशों पर अधिकार हो गया। शकों और कुषाणों पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की। सोमदेव रचित 'कथासरित्सागर' में पाटलिपुत्र के राजा विक्रमादित्य का उल्लेख मिलता है।

(5) दक्षिण के राजाओं पर पुनः अधिकार- रामगुप्त के शासनकाल में दक्षिण के राजाओं ने वार्षिक उपहार एवं कर भेजना बन्द कर दिया था, जबकि वे समुद्रगुप्त के शासनकाल में बराबर देते रहे थे। जैसा कि मिहरौली लौहस्तम्भ लेख से ज्ञात होता है। चन्द्रगुप्त ने उनको पुनः अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार उसने गुप्तों की सत्ता दक्षिण में स्थापित की।

दक्षिण के राजाओं से वैवाहिक सम्बन्ध- चन्द्रगुप्त एक कुशल राजनीतिज्ञ था। उसने अपनी स्थिति को विशेष सुदृढ़ बनाने के अभिप्राय से दक्षिण के राजाओं से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये, ताकि वे किसी समय उसके राज्य पर आक्रमण न कर दें। वैवाहिक सम्बन्ध इस प्रकार हैं :

(i) उसने अपना विवाह नागवंश की एक सामन्त कन्या कुबेरनागा से किया।

(ii) उसने कुबेरनागा से उत्पन्न अपनी पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह वाकाटक वंश के वीर सम्राट् रुद्रसेन द्वितीय से किया। इस विवाह की पुष्टि वाकाटक लोगों के पूना ताम्रपत्र से होती है।

(iii) उसने अपने पुत्र का विवाह कदम्बवंशी कुन्तल प्रदेश के राजा काकुस्थवर्मन की कन्या से किया। **क्षेमेन्द्र** द्वारा रचित **'औचित्यविचारचर्चा'** से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त ने कालिदास को अपना राजदूत बनाकर कुन्तल राजा के दरबार में भेजा था। ये सभी विवाह राजनीतिक दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण सिद्ध हुए।

साम्राज्य-विस्तार- चन्द्रगुप्त द्वितीय का साम्राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत से दक्षिण में नर्मदा नदी तक, पूर्व में बंगाल, असम तथा पश्चिम में काबुल तक फैला हुआ था। उधर काठियाबाड़ व सौराष्ट्र आदि भी उसके साम्राज्य में थे।

अश्वमेध-यज्ञ- काशी के दक्षिण में नगवा स्थान में जे० रत्नाकर को एक घोड़े की मूर्ति मिली है, जिस पर 'चन्द्रग' लिखा हुआ है। इसी के आधार पर चन्द्रगुप्त द्वारा अश्वमेध-यज्ञ के विधान का अनुमान किया जाता है।
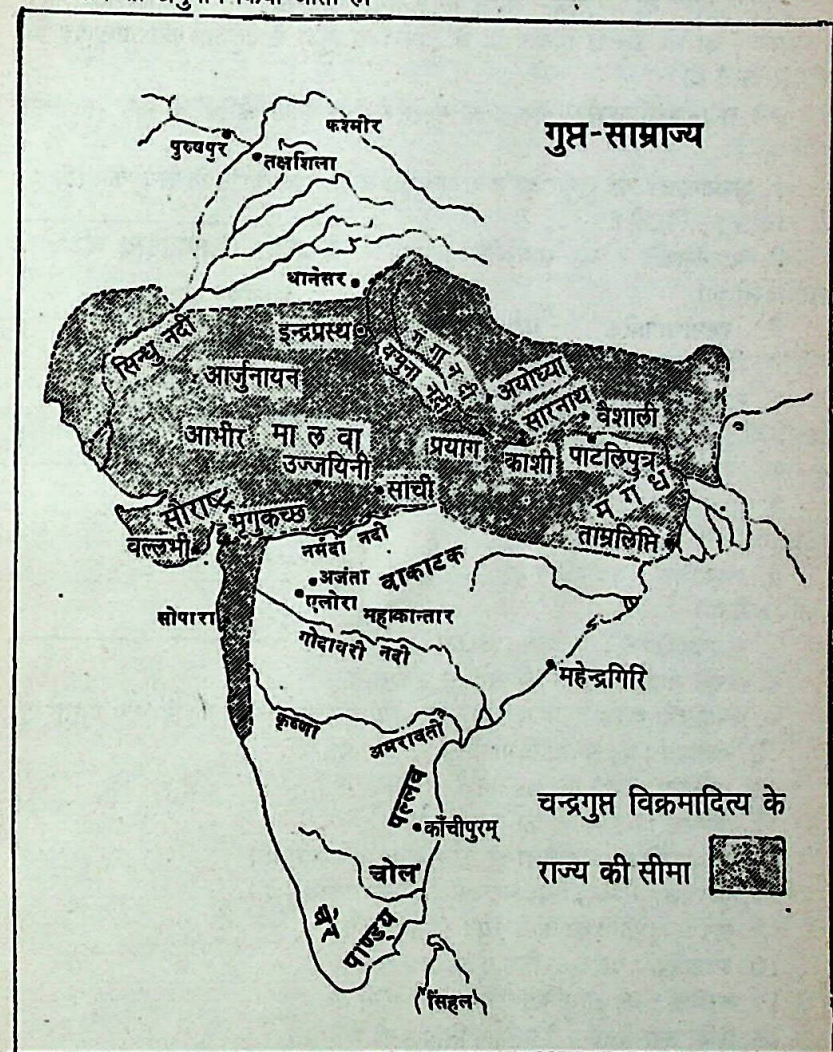
चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की शासन-व्यवस्था

चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य केवल एक महान् विजेता ही नहीं था, बल्कि वह एक योग्य कुशल शासक भी था। उसके समय में आने वाले चीनी-यात्री फाहियान ने उसके शासन की बड़ी प्रशंसा की है जिसका विवरण आगे दिया जायेगा।

(1) केन्द्रीय शासन : (क) मंत्रिपरिषद- शासन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सत्ता सम्राट् में निहित थी। सम्राट् स्वेच्छाचारी था, लेकिन उसकी स्वेच्छाचारिता पर विशेष प्रतिबन्ध थे। शासन के कार्यों में उसके सहायतार्थ एक मन्त्रिपरिषद होती थी। अतः राजा अपने मन्त्रियों के परामर्श

और सहायता से शासन का संचालन करता था। मंत्रियों का पद पैतृक होता था। प्रधानमन्त्री मन्त्रिन् कहलाता था।

(ख) सामन्त या महाराज- सम्राट् के अन्तर्गत छोटे-छोटे सामन्त थे। उनकी पदवी में 'महाराज' का भी उल्लेख मिलता है। ये सामन्त राजमुद्रा में अंकित गुप्त-आज्ञापत्र को स्वीकार करते थे।

(ग) राज-पदाधिकारी- बसाढ़ की मुहरों से कुछ पदाधिकारियों के नाम इस प्रकार से मिलते हैं :

1. **कुमारामात्य :** यह कुमार का मन्त्री था। कुछ लेखों में विषयपति के लिये 'कुमारामात्य' की पदवी प्रयुक्त मिलती है।

2. **महासेनापति :** यह सेना-विभाग का पदाधिकारी था।

3. **रणभाण्डागारिक :** यह सेना के निरीक्षण-विभाग का पदाधिकारी था।

4. **महाप्रतिहार :** यह महलों का रक्षक था। वैशाली की मुद्रा में महाप्रतिहार के लिए 'विनयसूर' की उपाधि प्रयुक्त मिलती है।

5. **भटाश्वपति :** यह पैदल तथा घुड़सवार सेना का अध्यक्ष था।

6. **दण्डपाशिक :** यह पुलिस का सबसे बड़ा पदाधिकारी था।

7. **भांडागाराधिकृत :** यह कोषाध्यक्ष था।

8. **स्थपति सम्राट् :** यह स्त्री-विभाग का अध्यक्ष था।

9. **विनयस्थितिस्थापक :** यह धार्मिक तथा आचरण सम्बन्धी बातों का निरीक्षण करता था।

10. **सर्वाध्यक्ष :** यह समस्त विभागों का निरीक्षक था।

11. **शाल्किक :** यह भूमि-कर लेने वाला था।

12. **गौल्मिक :** यह जंगलों का अध्यक्ष था।

13. **महाक्षपटलिक :** यह लेखागार का सर्वोच्च अधिकारी था।

14. **पुस्तपाल :** सम्भवतः यह महाक्षपटलिक का सहायक था।

15. **गोप :** यह ग्रामों का आय-व्यय रखनेवाला था।

16. **अग्रहारिक :** यह दान-विभाग का अध्यक्ष था।

17. **करणिक :** यह आधुनिक रजिस्ट्रार की भाँति थे।

18. **दिविर तथा लेखक :** ये वर्तमान लिपिक की भाँति थे।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की शासन-व्यवस्था

1. केन्द्रीय शासन-
   (क) मन्त्रिपरिषद्
   (ख) सामन्त या महाराज
   (ग) राजपदाधिकारी
2. प्रान्तीय शासन
3. विषय-शासन
4. ग्राम-शासन
5. न्याय-व्यवस्था
6. आय के स्रोत

(2) प्रान्तीय शासन- शासन की सुव्यवस्था के लिए गुप्त साम्राज्य विभिन्न प्रान्तों में विभक्त था। गुप्त लेखों में प्रान्त के लिए 'देश' या 'भुक्ति' शब्द प्रयुक्त मिलते हैं। गुप्तकालीन अभिलेखों में सौराष्ट्र भुक्ति, वर्द्धमान भुक्ति, अवन्ति भुक्ति, एरण भुक्ति, तीर भुक्ति, पुण्ड्रवर्धन भुक्ति, मगध भुक्ति आदि विविध भुक्तियों का उल्लेख है। भुक्ति के शासक की 'उपरिक' अथवा 'उपरिकमहाराज' पदवी का उल्लेख दामोदर ताम्रपत्र और वैशाली की मुद्राओं में मिलता है, कुछ अन्य लेखों में प्रान्तीय शासक के लिए 'राष्ट्रीय', 'भोगिक', 'भोगपति' तथा 'गोप्ता' आदि पदवियाँ उल्लिखित मिलती हैं। साधारणतः प्रान्तपति पदों पर राजपरिवार से

सम्बन्धित व्यक्ति ही नियुक्त किये जाते थे। प्रान्त के शासन में मन्त्रणा देने के लिए भी एक मन्त्रिमण्डल था। वैशाली में बलाधिकरण, रणभाण्डागारिक, दण्डपाशिक, महादण्डनायक, महाप्रतिहार आदि की मुहरें मिली हैं। प्रान्त के शासकों की कार्य-अवधि कम से कम 5 वर्ष थी।

(3) विषय शासन- एक भुक्ति के अन्तर्गत कई विषय या जिले होते थे। पुण्ड्रवर्धन भुक्ति के अन्तर्गत 'खाडायर', 'पंचनगर' तथा 'कोटिवर्ष' विषयों के नाम मिलते हैं। विषय के शासक को **'विषयपति'** कहते थे। विषयपति का शासन नगर के केन्द्र से होता था जो 'अधिष्ठान' कहलाता था। उसके कार्यालय को 'अधिकरण' कहते थे। विषयपति का भी एक मन्त्रिमण्डल होता था जिसमें नगरश्रेष्ठि, सार्थवाह, प्रथम कुलिक तथा प्रथम कायस्थ-चार सदस्य होते थे। ये सभी अपनी-अपनी समिति के मुखिया थे। विषयपति की कार्य-अवधि भी कम-से-कम 5 वर्ष होती थी। गुप्तों के प्रथम ताम्रपत्र में किसी एक 'विषय' के शासक तथा उसके मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के नाम इस प्रकार मिलते हैं :

(i) कुमारामात्य - नेत्रवर्मन, (ii) नगरश्रेष्ठी - धृतिपाल, (iii) सार्थवाह - बन्धुमित्र, (iv) प्रथम कुलिक - धृतिमित्र, (v) प्रथम कायस्थ - शाम्बपाल।

(4) ग्राम-शासन- विषय के अन्तर्गत अनेक ग्राम होते थे। ग्राम अधिपति को **'ग्रामिक'** या **'महत्तर'** कहा जाता था। इसकी सहायता के लिये छोटी सी सभा होती थी जिसे पंच-मण्डली (पंचायत) कहते थे। इस ग्राम पंचायत के सदस्य कुछ पदाधिकारी तथा थोड़े से गैर-सरकारी व्यक्ति होते थे। दामोदर ताम्रपत्र नम्बर तीन में ग्रामसभा के सदस्यों के नाम **महत्तर, अष्टकुलाधिकारी, ग्रामिक तथा कुटुम्बिन** आदि मिलते हैं।

(5) न्याय-व्यवस्था- गुप्तों की न्याय-व्यवस्था बहुत उन्नत थी। न्यायालय चार प्रकार के थे : (1) राजा का न्यायालय, (2) पूग, (3) श्रेणि और (4) कुल। वृहस्पति का कथन है कि अचल, चल, शासक द्वारा नियुक्त न्यायकर्ता तथा स्वयं राजा का-ये चार प्रकार के न्यायालय थे। प्राण-दंड या अन्य शारीरिक दण्ड के बिना ही सम्राट राज्य करता था। अपराधियों पर उनके अपराध की परिस्थितियों के अनुसार भारी या हल्का जुर्माना लगाया जाता था। बार-बार विद्रोह करने पर भी केवल उनका दाहिना हाथ काट दिया जाता था। चन्द्रगुप्त द्वितीय का मन्त्री शिखर स्वामी न्याय का प्रकाण्ड पण्डित था। गुप्त लेखों एवं वैशाली की मुहरों में **दण्डनायक, महादण्डनायक, सर्वदण्डनायक, महासर्वदण्डनायक** आदि न्यायालय के पदाधिकारियों की पदवियाँ मिलती हैं। न्यायालयों के आज्ञानुसार शारीरिक दण्ड देनेवाले को 'दण्डिक' कहा जाता था।

(6) आय के स्रोत- गुप्तकाल में आय के विभिन्न स्रोत थे। आय का प्रमुख स्रोत भूमिकर था जिसे अभिलेखों में 'उद्रंग' तथा 'भागकर' कहा गया है। जो लोग राजकीय भूमि पर कृषि करते थे उन्हें अपनी उपज का चतुर्थांश से लेकर षष्टांश तक देना पड़ता था। भूमिकर संग्रह करने लिए 'ध्रुवाधिकरण' नामक विभाग था। इसके अधीन भूमिकर वसूल करने वाले 'शाल्किक' नामक पदाधिकारी थे। फसल खराब होने पर भूमिकर में छूट दी जाती थी। आय का दूसरा प्रमुख स्रोत चुंगी थी जो नगर में आने वाली वस्तुओं पर लगायी जाती थी। इसके अतिरिक्त व्यापारिक वस्तुओं, चरागाहों, वनों, नमक आदि पर भी कर लगते थे जिससे राज्य को प्रभूत आय होती थी। सीमा, बिक्री की वस्तुओं आदि पर जो कर लगते थे उसे शुल्क कहा जाता था। समकालीन लेखों में 'विष्टि' (बेगार) का भी उल्लेख मिलता था। सम्भवतः यह भी एक प्रकार का कर था।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का चरित्र

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य में एक शासक के सभी गुणों का समावेश था। उसके प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं :-

(1) महान् विजेता- चन्द्रगुप्त एक महान् विजेता तथा योग्य पिता का पुत्र था। उसकी वीरता के सम्मुख सिंह भी मैदान छोड़कर भाग जाते थे। उसने शकों को पराजित कर 'शकारि' की पदवी धारण की। उसने गुप्त साम्राज्य का विस्तार कर उसकी नींव को सुदृढ़ किया। भारत की विदेशी जातियों-शकों और कुषाणों को निकालकर 'विक्रमादित्य' का विरुद धारण किया। उसकी वीरता उसके सिक्कों में इस प्रकार अंकित है : ''क्षितिमवजित्य सुचरितैः दिवं जयति विक्रमादित्यः'' अर्थात् 'पृथ्वी की विजय करके अब विक्रमादित्य अपने सुकार्यों से स्वर्ग को जीत रहा है।''

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का चरित्र

1. महान् विजेता
2. महान् कूटनीतिज्ञ
3. महान शासक
4. साहित्यकार
5. उदार तथा सहिष्णु शासक

(2) महान् कूटनीतिज्ञ- महान् विजेता होने के साथ-साथ वह एक सफल कूटनीतिज्ञ भी था। वह जानता था कि सुदूर दक्षिण के राज्यों पर नियन्त्रण नहीं रखा जा सकता, अतः उसने दक्षिण के राजाओं से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए। इस कार्य से उसकी स्थिति सुदृढ़ हो गई और दक्षिण से आक्रमण होने का भय समाप्त हो गया। इन राज्यों की शक्ति के प्रयोग से वह भारत से विदेशी जातियों को निकालने में सफल हुआ।

(3) महान् शासक- चन्द्रगुप्त एक महान् शासक भी था। शासन-व्यवस्था की उन्नति के लिए उसने भगीरथ प्रयास किया। फाहियान के वर्णन से ज्ञात होता है कि उसके शासन-काल में प्रजा प्रभूत सुखी थी तथा राज्य में शान्ति स्थापित थी जिससे व्यापार और उद्योग-धन्धे की उन्नति हुई।

(4) साहित्यकार- चन्द्रगुप्त स्वयं विद्वान था और विद्वानों को आश्रय प्रदान करता था। उसके दरबार में नौ विद्वान् रहते थे, जिन्हें नवरत्न[1] के नाम से सम्बोधित किया जाता था। इनमें विशाखदत्त, कालिदास, धन्वन्तरि विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। कालिदास को प्रतिष्ठित पद प्राप्त था। वीरसेन मन्त्री जो व्याकरण, साहित्य, न्याय तथा लोकनीति का प्रकाण्ड विद्वान् तथा कवि था, इसी के दरबार में था। संस्कृत कवियों को प्रश्रय मिलने के कारण संस्कृत भाषा की विशेष उन्नति हुई तथा अधिकांश रचनायें संस्कृत में हुईं।

(5) उदार तथा सहिष्णु शासक- चन्द्रगुप्त विष्णु का उपासक था, किन्तु अन्य धर्मों के प्रति भी अपनी आस्था रखता था। 'गढ़वा शिलालेख' से ज्ञात होता है कि उसने धार्मिक विरुद 'परम भागवत' धारण किया था। उसकी उदारता एवं सहिष्णुता साँची के शिलालेख से प्रकट होती है कि बौद्ध मतावलम्बी अम्रकार्द्दव ने जो उसका सेनापति था, काकनादवाट नामक महाविहार को एक गाँव तथा 25 स्वर्णमुद्राएँ दान में दी थीं।[2] चन्द्रगुप्त की यज्ञ, दान तथा वैदिक कर्मों में बड़ी आस्था थी।

---

1. चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नौ रत्न इस प्रकार थे- 1. कालिदास, 2. अमरसिंह, 3. धन्वन्तरि, 4. विशाखदत्त, 5. सुबंन्धु, 6. घटखर्पर, 7. क्षपणक, 8. बैताल, 9. वीरसेन।

२. 'काकनादबाट-श्रीमहाविहारे ' ' 'प्राणिपत्य ददाति पञ्चविंशतिश्च दीनारान्' !

चन्द्रगुप्त द्वितीय के दरबारी **कवि कालिदास** ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ **'रघुवंश'** में उसकी प्रशंसा इन शब्दों में की है :

'मगध-देश का यह राजा बड़ा ही पराक्रमी है और अपनी शरण में आने वालों की रक्षा करता है। अपनी प्रजा को सुख देकर इसने बड़ा नाम अर्जित किया है। इसका नाम परंतप है और यह सचमुच परंतप (अपने शत्रुओं को ताप देने वाला) है। भले ही हजारों नरेश आविर्भूत हुए हैं, पर यह वसुन्धरा इस नरेश के द्वारा ही राजा से युक्त हुई है। नाना नक्षत्र, तारा एवं ग्रह आदि से सुसज्जित रहने पर भी रात्रि एकमात्र चन्द्रमा के द्वारा ही ज्योत्सनायुक्त होती है।'

उपरोक्त समस्त गुणों के कारण चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को भारतीय इतिहास में उच्च स्थान प्राप्त है।

चीनी-यात्री फाहियान (399-414)

फाहियान और उसका भारत-विषयक वर्णन- फाहियान का जन्म कब हुआ, कितनी अवस्था में उसने यात्रा आरम्भ की, इसका ठीक पता नहीं चलता। उसका पहला नाम कुंग था। कुंग ने जब प्रव्रज्या ग्रहण की, उस समय उसका नाम फाहियान पड़ा। चीनी भाषा में 'फा' का अर्थ 'धर्म-विधि' और 'हियान' का अर्थ 'आचार्य' व 'रक्षक' है। अतः फाहियान का अर्थ हमारी भाषा में 'धर्मगुरु' होता है। धार्मिक दीक्षा ग्रहण करने के बाद बौद्धधर्म के त्रिपिटक अध्ययन के लिए 399 में चार भिक्षुओं-ह्वेकिंग, तावचिंग, ह्वेयिन और ह्वेबोई के साथ भारत-यात्रा के लिए चल पड़ा। वह गोवी मरु-प्रदेश की मुसीबतें झेलता खोतान, स्वात तथा गांधार के मार्ग से भारत आया। पेशावर होकर वह उत्तरी-पश्चिमी मार्ग से पंजाब में प्रविष्ट हुआ और मथुरा, कन्नौज, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, कुशीनगर, वैशाली, नालन्दा, गया, बोधगया, राजगृह, पाटलिपुत्र, काशी आदि नगरों में भ्रमण करता हुआ ताम्रलिप्ति के बन्दरगाह पर पहुँचा। ताम्रलिप्ति से चौदह दिन की समुद्री-यात्रा के बाद वह सिंहलद्वीप पहुँचा और पुनः वहाँ से 90 दिन की संकटपूर्ण यात्रा के बाद जावा गया। वहाँ से वह स्वदेश चला गया। इस यात्रा का विवरण फाहियान के शब्दों में इस प्रकार है, 'वह 6 वर्षों में मध्य देश पहुँचा, 6 वर्ष वहाँ फिरा। लौटकर 3 वर्ष में सिंगचाव पहुँचा, 30 से कुछ ही कम जनपदों में भ्रमण किया। इस प्रकार सब मिलाकर उसको 15 वर्ष लगे।''

राजनीतिक दशा-चीनी यात्री फाहियान के यात्रा-विवरण से गुप्तकालीन शासन-व्यवस्था का बहुत कुछ पता लगता है। वह लिखता है, 'प्रजा प्रभूत और सुखी है। व्यवहार की लिखा-पढ़ी और पंचायत कुछ नहीं है। लोग राजा की भूमि जोतते हैं और उसका अंश देते हैं। जहाँ चाहे जायँ, जहाँ चाहे रहें। राजा न प्राणदण्ड देता है न शारीरिक दण्ड देता है। अपराधी की अवस्थानुसार उत्तम साहस, मध्यम साहस का अर्थदण्ड दिया जाता है। बार-बार दस्यु कर्म करने पर दक्षिण करच्छेद किया जाता है। राजा के प्रतिहार और सहचर वेतनभोगी हैं।''

सामाजिक दशा- फाहियान ने मध्य प्रदेश की प्रजा को बड़ा ही शुद्धाचारी और धर्मनिष्ठ लिखा है। वह कहता है, ''सारे देश में सिवाय चाण्डाल के कोई अधिवासी न जीव-हिंसा करता है और न मद्य पीता है और न लहसुन-प्याज खाता है। दस्यु को 'चाण्डाल' कहते हैं। वे नगर के बाहर रहते हैं और नगर में जब पैठते हैं तो सूचना के लिए लकड़ी बजाते चलते हैं ताकि लोग जान जायँ और अपने को बचाकर चलें, कहीं उनसे छू न जायँ। जनपद में सूअर और मुर्गी नहीं पालते, न जीवित पशु बेचते हैं, न कहीं सूनागार और मद्य की दुकानें हैं। क्रय-विक्रय में कौड़ियों का व्यवहार है। केवल चाण्डाल मछली मारते, मृगया करते और मांस बेचते हैं।''

फाहियान लिखता है, ''ब्राह्मणों को समाज में सम्मान प्राप्त है। ब्राह्मण एवं शिल्पी भी मनानी का कार्य करने लगे हैं। शूद्रों का कार्य उच्च वर्ग की सेवा करना ही नहीं है, बल्कि वे व्यापारी, शिल्पी और कृषक का कार्य भी कर सकते हैं।''

लोगों की वेश-भूषा और आभूषणों के सम्बन्ध में चीनी यात्री कहता है, ''साधारण जनता सूती वस्त्रों का प्रयोग करती है। धनी लोग उत्सवों के अवसर पर रेशमी वस्त्र पहनते हैं। भारतीय राजाओं ने सीथियन लोगों की तरह कोट, ओवर कोट और पैजामा धारण करना आरम्भ कर दिया है। पुरुष धोती पहनते हैं और स्त्रियाँ घाघरा, साड़ी, आंगी और चोलियाँ धारण करती हैं। स्त्री और पुरुष दोनों आभूषणों का प्रयोग करते हैं। स्त्रियाँ कानों में बालियाँ, मणियुक्त मालाएँ, वक्षस्थल और जंघाओं के लिए मोतियों के जालीदार आभूषण और रत्नजटित चूड़ियाँ व्यवहार में लाती हैं।''

आर्थिक दशा- देश की सम्पन्नता एवं समृद्धिशीलता का विवरण देते हुए फाहियान कहता है, ''अधिवासी सम्पन्न और समृद्धिशाली हैं। दान और सत्य के स्पर्धालु हैं। प्रतिवर्ष रथ-यात्रा होती है। दूसरे मास की आठवीं तिथि को यात्रा निकलती है। चार पहिए के रथ बनते हैं, जिनमें धुरी और हर्से लगे रहते हैं। यह 20 हाथ ऊँचा और स्तूप के आकार का बनता है। ऊपर सफेद चमकीला ऊनी कपड़ा मढ़ा जाता है। भाँति-भाँति की रंगाई होती है। देवताओं की मूर्तियाँ सोने, चाँदी और स्फटिक की भव्य बनती हैं। रेशम की ध्वजा और चाँदनी लगती है। चारों कोने में कलँगियाँ लगती हैं, बीच में बुद्धदेव की मूर्ति होती है और पास में बोधिसत्व खड़ा किया जाता है। बीस रथ होते हैं, एक से एक सुन्दर और भड़कीले सबके रंग न्यारे।''

लोगों की दानशीलता का विवरण देते हुए चीनी यात्री लिखता है, ''जनपद के वैश्यों के मुखिया लोग नगर में सदावर्त और औषधालय स्थापित करते हैं। देश के निर्धन, अपंग, अनाथ, विधवा, निःसंतान, लूले-लँगड़े और रोगी लोग इस स्थान पर आते हैं, और उन्हें सब प्रकार की सहायता मिलती है। गुणी वैद्य रोगियों की चिकित्सा करते हैं, वे अनुकूल पथ्य औषधि पाते हैं। अच्छे होते हैं तब जाते हैं।''

पाटलिपुत्र एक भव्य नगर था। फाहियान ने पाटलिपुत्र में अशोक द्वारा निर्मित विशाल राजप्रासाद अपनी आँखों देखा। इस सम्बन्ध में वह लिखता है, ''नगर में राजा का प्रासाद और सभा-भवन है। सब असुरों के बनाये हैं। पत्थर चुनकर भीत और द्वार बनाये हैं। सुन्दर खुदाई और पच्चीकारी है। इस लोक के लोग नहीं बना सकते। अब तक वैसे ही हैं।''

धार्मिक दशा- फाहियान ने एक बहुत ही विद्वान् महायान मत के पंडित राधास्वामी का उल्लेख किया है। वह लिखता है, ''महायानानुयायी राधा नामक ब्राह्मणकुमार इस नगर (पाटलिपुत्र) में था। वह विशुद्ध विवेकशील, पारदर्शी, और ज्ञान सम्पन्न था तथा विमल आचार से रहता था। जनपद का राजा उसका गुरुवत् आदर और व्यवहार करता था। बातचीत करने जाना तो सामने बैठने का साहस न करता। 50 वर्ष से अधिक की आयु थी। सारे जनपद में मान था। इस एक मनुष्य से बौद्ध-धर्म की सर्वत्र विख्याति थी।''

फाहियान जैन-धर्म के सम्बन्ध में लिखता है- ''जब सूर्य पश्चिम दिशा की ओर रहता है तो जैनियों के देवालय पर भगवान् बुद्ध के विहार की छाया पड़ती है और जब सूर्य पूर्व दिशा में रहता है तब देवालय की छाया उत्तर की ओर पड़ती थी परन्तु बुद्धदेव के विहार पर नहीं पड़ती थी। जैनियों के आदमी नियत थे। वे नित्यप्रति देवालय में झाड़ू लगाया करते थे, पानी छिड़कते थे, धूप दिखाते और पूजा करते थे।'' इस प्रकार जैन-धर्म देशव्यापी न होकर भी प्रचलित था।

फाहियान के समय बुद्धदेव के बोधिज्ञान प्राप्त करने के स्थान (बोधगया) पर तीन संघाराम विद्यमान थे। इन संघारामों के विषय में वह लिखता है, 'सबमें श्रमण रहते हैं। अधिवासी भिक्षुसंघ को सब आवश्यक पदार्थ दे देते हैं, किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। वे विनय का यथार्थ पालन करते हैं। बैठने, उठने और संघ में जाने के आचार व्यवहार उसी नियम के अनुसार हैं, जैसे बुद्धदेव के समय में थे। संघ 1000 वर्ष से अब तक चला आ रहा है।' भिक्षुओं का प्रतिदिन का कार्य नियमों का उपदेश देना और उपासकों से दान ग्रहण करना था। उनके विषय में फाहियान लिखता है, ''भिक्षु का कृत्य शुभ कर्मों से धनोपार्जन करना, सूत्र का पाठ करना और ध्यान लगाना है। आगन्तुक (अतिथि) भिक्षु आते हैं तो रहनेवाले (स्थायी) भिक्षु उन्हें आगे बढ़कर लेते हैं। उनके-वस्त्र और भिक्षापात्र स्वयं ले लेते हैं। उन्हें पैर धोने को जल और सिर में लगाने को तेल देते हैं। विश्राम ले लेने पर पूछते हैं कि कितने दिनों से प्रव्रज्या ग्रहण की है, फिर उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार आवास देते हैं और यथानियम उनसे व्यवहार करते हैं। वर्षा से एक मास पीछे उपासक लोग भिक्षुओं को दान देने के लिए परस्पर स्पर्धा करते हैं। सब ओर से लोग साधुओं को विकाल के लिए 'पेय' भेजते हैं। भिक्षु संघ के संघ आते हैं, धर्मोपदेश करते हैं, फिर सारिपुत्र के स्तूप की पूजा माला और गंध से करते हैं। रात-भर दीपमालिका होती है और गीतवाद्य आदि कराया जाता है।''

फाहियान ने मध्य देश में प्रचलित 96 पाखंडों का उल्लेख किया है। उसने बुद्धदेव के 96 पाखंड के आचार्यों के साथ शास्त्रार्थ और धर्म-चर्चा का भी उल्लेख किया है। उन पाखंडों के विषय में फाहियान लिखता है, 'मध्य देश में 96 पाखंडों का प्रचार है। सब लोक और परलोक को मानते हैं। उनके साधु-संघ हैं, वे भिक्षा करते हैं, केवल भिक्षापात्र नहीं रखते। सब नाना रूप से धर्मानुष्ठान करते हैं। मार्गों पर धर्मशालाएँ स्थापित हैं। वहाँ आने वाले को आवास, खाट-बिस्तर, खाना-पीना सब मिलता है। यती भी यहाँ आते-जाते हैं और वास करते हैं। सुनते हैं कि केवल काल[1] में कुछ अन्तर है।''

कुमारगुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य (414-455)

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र कुमारगुप्त राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसने 40 वर्ष तक के लम्बे शासन में शान्ति और वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत किया तथा अपने पूर्वजों द्वारा प्राप्त विशाल साम्राज्य को सुरक्षित, सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित रखा। उसने अश्वमेध यज्ञ का भी अनुष्ठान किया। अश्वमेध यज्ञ की पुष्टि उसके एक स्वर्ण सिक्के से होती है जिस पर एक ओर घोड़े की मूर्ति तथा दूसरी ओर चँवर लिए एक स्त्री खड़ी है। सिक्के में 'अश्वमेधमहेन्द्रः' अंकित है। यज्ञ के पश्चात् उसने 'महेन्द्रादित्य' की उपाधि धारण की। वह भगवान् कार्तिकेय का उपासक था, किन्तु अन्य धर्मों के प्रति पूर्णतः उदार तथा सहिष्णु था। उसने बुद्ध, शिव तथा सूर्य के प्रति आस्था प्रकट की है।

पुष्यमित्रों से युद्ध- कुमारगुप्त के शासन के अन्तिम दिनों में गुप्त साम्राज्य पर भयंकर आपत्ति आई, जिसकी पुष्टि भीतरी अभिलेख से होती है। अभिलेख से ज्ञात होता है कि पुष्यमित्रों ने अपनी शक्ति का विस्तार कर कुमारगुप्त के साम्राज्य पर भीषण आक्रमण किया, किन्तु उसके पुत्र स्कन्दगुप्त ने इन्हें बुरी तरह पराजित कर दिया। कहा जाता है कि इस भयंकर आक्रमण से गुप्तकाल की राजलक्ष्मी विचलित हो गई और उसको पुनः स्थापित करने के लिए स्कन्दगुप्त को एक रात्रि भूमि पर लेट कर बितानी पड़ी थी। इसी बीच 455 में कुमारगुप्त की मृत्यु हो गई।

1. यहाँ 'काल' से अभिप्राय भिक्षा करने से जान पड़ता है।

मन्दसोर-प्रशस्ति के रचयिता मर्मज्ञ कवि वत्सभट्टि ने कुमारगुप्तकालीन भारत का एक देदीप्यमान चित्र इन शब्दों में प्रस्तुत किया है :

'जिस समय कुमारगुप्त सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन कर रहे थे--ऐसी पृथ्वी जिसके चारो समुद्र कमरबन्द थे, सुमेरु एवं कैलास पर्वत बृहत् प्रयोधर के तुल्य थे तथा सुरम्य वाटिकाओं में खिले हुए प्रसून ही जिसकी हंसी के समान थे'। (मन्दसोर-प्रशस्ति)

स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य (455-467)

कुमारगुप्त की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र स्कन्दगुप्त मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। सिंहासन पर आरूढ़ होने के कुछ समय उपरान्त ही उसे भीषण आपत्तियों का सामना करना पड़ा। उसके साम्राज्य के सीमान्त-प्रदेश में हूणों ने आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। स्कन्दगुप्त ने वीरतापूर्वक हूणों के आक्रमणों का सामना किया और उन्हें भारत की सीमाओं से मार भगाया और 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की। भितरी स्तम्भ-लेख में इस बात का उल्लेख है कि 'जिस समय स्कन्दगुप्त हूणों का सामना करने के लिए युद्ध-क्षेत्र में उतरा, उस समय उसके बाहुबल से पृथ्वी कम्पित हो उठी।' (हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्ग्यां धरा कम्पिता)। इस प्रकार 'गुप्तनरेश स्कन्दगुप्त ने विधर्मी हूणों को परास्त कर साम्राज्य में शान्ति स्थापित की।' हूणों को परास्त करने के पश्चात् स्कन्दगुप्त ने सौराष्ट्र में अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया।

सुदर्शन झील का पुनर्निर्माण- स्कन्दगुप्त के राज्य-काल का एक महत्वपूर्ण कार्य सुदर्शन झील का पुनर्निर्माण था। जूनागढ़ के शिलालेख से ज्ञात होता है कि उसने सौराष्ट्र के प्रान्तीय शासक पर्णदत्त को झील के बाँध का निर्माण-कार्य सौंपा जिसने असीम धन व्यय कर झील और बाँध का पुनर्निर्माण-कराया। झील के तट पर ही एक विष्णु मन्दिर की स्थापना करवाई गई। परन्तु काल के हाथों ने झील और मन्दिर को विनष्ट कर दिया और उनके अवशेष आज अप्राप्य हैं। 467 के लगभग स्कन्दगुप्त का परलोकवास हो गया।

स्कन्दगुप्त का मूल्यांकन- स्कन्दगुप्त गुप्त साम्राज्य का अन्तिम महत्वपूर्ण शासक था। वह वीर-रस की प्रतिमूर्ति था। उसने अपनी भुजाओं की प्रबलता का अनेक बार परिचय दिया। उसका नाम शत्रुरूपी भुजंगों के लिए गरुड़ का काम करता था। उसके अलौकिक गुणों पर मुग्ध होकर राजलक्ष्मी ने उसे स्वयं वरण किया था। गुप्त राजलक्ष्मी को चंचल कर देने वाले दुष्ट पुष्यमित्रों को हराकर उनके सिर पर अपना पैर रखा और सारी रात जमीन पर सोकर बिताई थी। भितरी स्तम्भ-लेख के अनुसार उसने हूणों को पराजित किया और उसकी भुजाओं के प्रताप से समस्त पृथ्वी काँपने लगी। सज्जनों के चरित्र का वह रक्षक था। दाण्डेकर के शब्दों में, 'स्कन्दगुप्त सबसे ऊँची प्रशंसा का पात्र है- जो निस्सन्देह हूणों को पराजित करने वाला, यूरोप और एशिया में प्रथम वीर था।' श्रेष्ठ, बुद्धिमान, धर्मवत्सल, ये तीन विशेषण हैं जो मंजुश्री मूलकल्प में इस ख्यातिनामा सम्राट् के लिए प्रस्तुत किये गये हैं। उसका बुद्धिमत्तापूर्ण शासन , उसका शौर्यपूर्ण युद्ध, उसकी स्वदेश-भक्ति सम्बन्धी इच्छायें- इन सबने स्कन्दगुप्त को महान् सम्राटों में से एक बना दिया। स्कन्दगुप्त ने हूणों के द्वारा देश की बरबादी को अगले 500 वर्षों तक के लिए रोककर देश की महान् सेवा की।

भितरी स्तम्भ-लेख में स्कन्दगुप्त की प्रशंसा इन शब्दों में की गई है :

'जिस समय वह राजा राज्य कर रहा था, उस समय उसकी प्रजा में कोई भी व्यक्ति अधर्मी, दुखी, दरिद्र, संकट-ग्रस्त, लोलुप, दण्डनीय एवं भृश पीड़ित (अत्यन्त सताया हुआ) नहीं था'।

स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी एवं गुप्त-साम्राज्य का पतन

स्कन्दगुप्त के साथ ही महान् गुप्त सम्राटों के युग की समाप्ति हो जाती है। स्कन्दगुप्त के उपरान्त उसका सौतेला भाई पुरुगुप्त राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। उसकी माता का नाम अनन्तदेवी था। उसने भी 'श्रीविक्रम' की उपाधि धारण की। पुरुगुप्त ने पाँच वर्ष सफलतापूर्वक शासन किया। पुरुगुप्त के पश्चात् नरसिंहगुप्त राजा बना। उसने 'बालादित्य' की उपाधि धारण की। नरसिंहगुप्त के पश्चात् उसका पुत्र कुमारगुप्त द्वितीय मगध राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। उसने लगभग 473 से 476 तक शासन किया। कुमारगुप्त द्वितीय के पश्चात् क्रमशः बुद्धगुप्त तथा भानुगुप्त नामक सम्राट् गुप्तवंश में हुए। वे गुप्त साम्राज्य को विनष्ट होने से न बचा सके और लगभग 230 वर्षों तक शासन करने वाले गुप्तवंश का अन्त हो गया।

गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण- गुप्त साम्राज्य का पतन किसी एक कारण से नहीं हुआ था। उसके पतन के लिए उत्तरदायी मुख्य कारण निम्नलिखित माने जाते हैं :

(1) विशाल साम्राज्य- गुप्त साम्राज्य काफी विशाल था तथा उसको सुव्यवस्थित रखने के लिए योग्य शासकों की आवश्यकता थी। चन्द्रगुप्त प्रथम से लेकर स्कन्दगुप्त तक गुप्त सम्राटों की योग्यता के कारण ही राज्य चलता रहा। इसके पश्चात् अयोग्य उत्तराधिकारियों की श्रृंखला के आरम्भ होते ही इस साम्राज्य का पतन शुरू हो गया।

(2) अयोग्य उत्तराधिकारी तथा उत्तराधिकार युद्ध- स्कन्दगुप्त के वाद कोई भी ऐसा शासक नहीं हुआ जो गुप्त साम्राज्य को एक सूत्र में बाँध सकता। एकमात्र बुद्धगुप्त को छोड़कर बाकी सभी शासक निर्बल थे। गुप्त वंश में सिंहासन के लिए विवाद प्रारम्भ से ही होते रहे जो कभी-कभी गृह-युद्ध का रूप धारण कर लेते थे। चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा समुद्रगुप्त को शासक मनोनीत किया जाना संभवतः उसके भाइयों को अच्छा नहीं लगा था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बड़े भाई कायर राजा रामगुप्त की हत्या कर सिंहासन प्राप्त किया था। स्कन्दगुप्त और उसके उत्तराधिकारियों के समय भी गृह-युद्ध हुआ था। इसका दुष्परिणाम राज्य पर अवश्य पड़ा होगा।

गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण

1. विशाल साम्राज्य
2. अयोग्य उत्तराधिकारी तथा उत्तराधिकार युद्ध
3. बाह्य आक्रमण तथा निरन्तर युद्ध
4. प्रान्तपतियों और सामन्तों स्वेच्छाचारिता
5. बौद्ध नीति का अनुसरण

(3) बाह्य आक्रमण तथा निरन्तर युद्ध- हूणों ने अपने आक्रमणों से गुप्त साम्राज्य को सर्वाधिक क्षति पहुँचायी थी। यद्यपि स्कन्दगुप्त ने हूणों को परास्त कर दिया था किन्तु बाद में तोरमाण एवं मिहिरकुल के नेतृत्व में हुए हूण आक्रमण गुप्त साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुए। हूणों के अतिरिक्त पुष्यमित्र नामक जाति ने भी स्कन्दगुप्त के समय में आक्रमण किया था। लगभग 532 ई० में मध्य भारत में यशोधर्मा स्वतन्त्र हो गया और उसने विशाल भू-भाग पर विजय प्राप्त की।

(4) प्रान्तपतियों और सामन्तों की स्वेच्छाचारिता- गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत प्रान्तपतियों को पर्याप्त अधिकार मिले थे, जिससे वे विद्रोह करने की चेष्टा करते थे। अग्रहारदान

(भूमिदान) प्रथा से गुप्त काल में सामन्तवाद को बढ़ावा मिला। समुद्रगुप्त के काल में ऐसे सामन्त थे जो उसे कर देते थे। प्रणाम निवेदन करने स्वयं दरबार में आया करते थे और उसकी आज्ञाओं का पालन करते थे। आगे चलकर वे गुप्त शासक क्षेत्रों में शासन करने लगे। लगभग स्वतन्त्र रूप से 500 ई० से लेकर 550 ई० तक गुप्तों के प्रसिद्ध सामन्त मौखरि एवं उत्तर गुप्त थे, जिन्होंने आगे चलकर गुप्त साम्राज्य के क्षेत्रों को विजय कर अपना राज्य बनाया। बंगाल भी गुप्त सम्राटों के हाथ से निकल गया तथा वहाँ गौड़ वंश ने स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली। इस प्रकार सामन्तों के असहयोग एवं उनकी स्वतन्त्र होने की प्रवृत्ति से गुप्त साम्राज्य के पतन की गति और तीव्र हो गई।

(5) बौद्ध नीति का अनुसरण- स्कन्दगुप्त के शासनकाल तक गुप्त सम्राट वैदिक धर्म एवं कर्म-काण्डों के पोषक थे। उनके द्वारा अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया गया था। बाद में नरसिंह गुप्त, बालादित्य एवं कुछ अन्य गुप्त सम्राटों ने बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लिया था। बौद्ध-धर्म की अहिंसा नीति का प्रभाव तत्कालीन सैन्य संगठन पर भी पड़ा होगा, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लगभग 230 वर्षों तक शासन करने वाले गुप्त वंश का पतन कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। पतन की प्रक्रिया क्रमिक थी। बाह्य आक्रमण, सामन्तों और प्रान्तपतियों का स्वतन्त्र होना गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण थे। इसके अतिरिक्त राजवंश के परस्पर वैमनस्य और गुप्त सम्राटों का बौद्ध-धर्म के प्रति लगाव ने भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यशोधर्मा, मौखरियों और उत्तर गुप्तों की महत्वाकांक्षा ने गुप्त साम्राज्य के पतन में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

गुप्तकाल : स्वर्णयुग

गुप्त-काल में भारतीय समाज एवं संस्कृति की विशेष उन्नति हुई। भारतीयों ने इस काल में प्रत्येक क्षेत्र में चतुर्मुखी विकास किया इसीलिये यह काल भारतीय इतिहास में 'स्वर्ण-युग' के नाम से पुकारा जाता है। दूसरे शब्दों में, गुप्तकाल में भारतवर्ष नैतिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा भौतिक उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। इस काल की विशेषताओं की व्याख्या निम्न रूप में दी जा रही है :

(1) महान् गुप्त सम्राट- गुप्त-काल के सम्राट महान् एवं कुशल शासन-प्रबन्धक थे। उन्होंने दिग्विजयों द्वारा अनेक प्रकार के विरुद धारण किए। चन्द्रगुप्त प्रथम ने महाराजाधिराज, समुद्रगुप्त ने पराक्रमः, अप्रतिरथः, कृतांतपरशु, व्याघ्र पराक्रमः, महाराजाधिराज तथा अश्वमेध पराक्रमः, चन्द्रगुप्त द्वितीय ने परमभागवत, महाराजाधिराज, श्रीभट्टारक, विक्रमादित्य, विक्रमांक, नरेशचन्द, सिंहविक्रम, सिंहचन्द्र, स्कन्दगुप्त ने विक्रमादित्य, नरसिंहगुप्त ने बालादित्य, कुमारगुप्त प्रथम ने महेन्द्रादित्य, शक्रादित्य, गुप्तकुलाचन्द्र, गुप्तकुलव्योमशशि आदि पदवियाँ धारण की थीं। उन्होंने विदेशी जातियों से भारत-भूमि की रक्षा की तथा विद्या और ललित-कलाओं के प्रसार में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। उन्होंने अपनी प्रजा के साथ पिता-तुल्य व्यवहार किया। इसलिये गुप्त सम्राटों की गणना सुप्रसिद्ध एवं सुयोग्य शासकों में की जाती है।

(2) शासन-व्यवस्था- मनु के अनुसार 'राजा को अकेले प्रबन्ध नहीं करना चाहिए'। अतएव गुप्त राजा मन्त्रियों और सचिवों की सलाह से शासन किया करते थे। वे भली--भाँति

जानते थे कि 'प्रजासुखे सुखी राजा तद्दुःखे यश्च दुःखितः। सः कीर्तियुक्तो लोकेऽस्मिन् प्रेत्य स्वर्गे महीपते' अर्थात् 'प्रजा के सुखी होने पर राजा सुखी और प्रजा के दुःखी होने पर राजा दुःखी होता है। प्रजा के सुखी होने पर राजा इस लोक में कीर्तियुक्त तो होता ही है, स्वर्ग में भी कीर्तियुक्त होता है।' गुप्त-साम्राज्य प्रान्तों में और प्रान्त विषयों (जिलों) में और विषय ग्रामों में विभक्त थे। इस काल के कुमारामात्य, विनयस्थितिस्थापक, रणभांडागारिक, महासेनापति, भटाश्वपति, दण्डपाशिक महाप्रतिहार, भांडागाराधिकृत आदि प्रमुख पदाधिकारी थे। इस समय न्याय-व्यवस्था बहुत उच्च कोटि की थी। राजा स्वयं प्रधान न्यायाधीश था। दण्ड अपराधों के अनुसार दिये जाते थे। एक पदाधिकारी एक से अधिक विभागों का भी संचालन करता था। प्रयाग-स्तम्भ का प्रशस्तिकार हरिषेण समुद्रगुप्त के शासनकाल में तीन पदों-अन्तर्राष्ट्रीय मंत्री, कुमारामात्य तथा न्यायकर्ता पद को सुशोभित करता था।

गुप्त-काल : स्वर्णयुग

1. महान् गुप्त-सम्राट्
2. शासन-व्यवस्था
3. साहित्य की प्रगति
4. विज्ञान की प्रगति
5. ललितकलाओं का विकास
   (अ) वास्तुकला (ब) मूर्ति-कला
   (स) चित्र-कला (द) संगीत-कला
6. धार्मिक सहिष्णुता
   (क) ब्राह्मण धर्म
   (i) विष्णु-उपासना
   (ii) शिव उपासना
   (iii) सूर्य-उपासना
   (iv) देवी-उपासना
   (ख) जैन-धर्म (ग) बौद्ध-धर्म
7. आर्थिक सम्पन्नता
8. विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार

(3) साहित्य की प्रगति- इस काल में संस्कृत ने राजकीय भाषा का पद प्राप्त कर विशेष उन्नति की। कालिदास इस युग के सर्वोच्च साहित्यकार थे जिन्होंने **'कुमारसम्भवम्'**, **'रघुवंशम्'**, **'मेघदूतम्'**, **'मालविकाग्निमित्रम्'**, **'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'** आदि संस्कृत ग्रन्थों का प्रणयन किया। **'मुद्राराक्षस'**, और **'देवी-चन्द्रगुप्तम्'** का रचयिता **विशाखदत्त** प्रसिद्ध नाटककार था। इस युग के **भारवि**, **शूद्रक** और **सुबन्धु** भी प्रसिद्ध नाटककार थे। भारवि ने **'किरातार्जुनीय'**, शूद्रक ने **'मृच्छकटिक'** और सुबन्धु ने **'वासवदत्ता'** आदि नाटकों की रचना की। **'पंचतंत्र'** नामक ग्रन्थ की रचना भी **विष्णुशर्मा** द्वारा इसी काल में हुई। **अमरसिंह** रचित **'अमरकोष'** इसी काल की देन है। बौद्ध-ग्रन्थों के रचयिता **बुद्धघोष**, **बुद्धदत्त**, **वसुबन्धु**, **आर्यदेव**, **असंग** और **दिङ्नाग** इसी युग में थे। जैन-ग्रन्थों के प्रणेता **भद्रबाहु द्वितीय**, **उमास्वाति** और **सिद्धसेन** भी इसी काल में हुए। इस प्रकार गुप्तकाल में साहित्य की गद्य, नाटक एवं काव्य के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई।

(4) विज्ञान की प्रगति- इस काल में गणित, ज्योतिष और आर्युवेद विज्ञान की विशेष प्रगति हुई। इस काल का सुविख्यात गणितज्ञ **आर्यभट** था जिसका प्रसिद्ध ग्रन्थ **'आर्यभटीयम्'** है। ज्योतिषाचार्य **बराहमिहिर** के **'पंचसिद्धांतिका'**, **'बृहज्जातक'**, **'बृहत् संहिता'**, **'लघुजातक'** ज्योतिष सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। आयुर्वेद-विज्ञान के विद्वान **धन्वन्तरि** और **वाग्भट** इसी काल की विभूति हैं। **वाग्भट** का **'अष्टांगहृदय'** आयुर्वेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। पशु-चिकित्सा सम्बन्धी प्रसिद्ध ग्रन्थ **'हस्त्युपवेद'** इसी काल की अमूल्य देन है। इसका रचयिता पालकाप्य नाम का एक पशु-चिकित्सक था।

(5) ललित-कलाओं का विकास- गुप्तकाल में ललित-कलाओं का विशेष रूप से विकास हुआ। भारतीय कला पर जो विदेशी कला का प्रभाव था उसका पूर्णतया अन्त हो गया और भारतीय कला ने विदेशी कला को प्रभावित किया। इस काल की कलाओं को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विभक्त किया गया है :

(अ) वास्तुकला- गुप्त राजाओं के शासनकाल में निर्मित वास्तुकला के अधिक उदाहरण आजकल उपलब्ध नहीं हैं। परन्तु पुरातत्व विभाग की खुदाई के आधार पर वास्तुकला के छः उदाहरण- **राजप्रासाद, स्तम्भ, स्तूप, विहार, गुहा** और **मन्दिर** उपलब्ध हैं। प्रासादों में दशपुर के महल कैलाश-शिखर समान ऊँचे थे। स्तम्भों में **मेहरौली** का **लौह-स्तम्भ** रसायन विद्या का जीता-जागता उदाहरण है। इसका व्यास 40 सेमी, ऊँचाई 7 मीटर और वजन 6 टन के लगभग है। यह स्तम्भ सन् 414 से धूप, वर्षा और तूफान को झेलने के उपरान्त आज भी ज्यों का त्यों खड़ा है। स्तूपों में **सारनाथ** का **धमेख स्तूप,** विहारों में **नालन्दा** के विहार के भग्नावशेष और गुहाओं में **उदयगिरि की गुहा कला** के उत्कृष्ट नमूने हैं। मन्दिरों में **भूमरा का शिव मन्दिर, नचनाकूथर** का पार्वती-मन्दिर, लड़खान का मन्दिर, देवगढ़ का दशावतार मन्दिर, भीतरगाँव का ईंटों का मन्दिर, तिगवाँ का मन्दिर तथा अन्य मन्दिरों में **साँची, एरण और बोधगया** आदि स्थानों के मन्दिर इस युग की वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

(ब) मूर्तिकला- मथुरा, सारनाथ, पाटलिपुत्र मूर्तिकला के प्रमुख केन्द्र थे। इस काल की बुद्ध-प्रतिमाओं में कुछ विशिष्ट लक्षण हैं। ये चिकने और पारदर्शक वस्त्रों से युक्त, दक्षिणावर्त, कुटिल केशों, सीधी भौहों, पूर्णरूप से विकसित वक्षस्थलों और प्रभामंडलों से अलंकृत हैं। इस काल की सारनाथ की बैठी हुई बुद्धमूर्ति, मथुरा की खड़ी हुई बुद्धमूर्ति, उदयगिरि की वराह अवतार मूर्ति, काशी की गोवर्द्धनधारी कृष्ण-मूर्ति, देवगढ़ की शेषशायी विष्णु-मूर्ति आदि मूर्तिकला की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं। अन्य भव्य मूर्तियाँ कार्तिकेय, शिव, पार्वती, सूर्य, दुर्गा आदि की उपलब्ध हैं। गुप्तकालीन बौद्ध प्रतिमाओं में पाँच मुद्राएँ- ध्यानमुद्रा, भूमिस्पर्शमुद्रा, अभयमुद्रा, वरदमुद्रा (दानभाव) और धर्मचक्रमुद्रा अधिकतर मिलती हैं। इसी काल की दूसरे आकार की मृण्मयी मूर्तियाँ (Terracottas) भी उपलब्ध हैं। एक मृण्मयी मूर्ति श्रावस्ती में विश्वरूप प्रदर्शन की कथा को प्रस्तुत करती है जिसमें बुद्ध 6 तीर्थंकरों को शिक्षा दे रहे हैं। इस प्रकार गुप्तकाल में मूर्तिकला उन्नति की पराकाष्ठा को प्राप्त हो गई थी।

(स) चित्रकला- गुप्तकाल की चित्रकला के उदाहरण **अजन्ता, एलोरा, बाघ, बादामी एवं सित्तनवसल** की गुफाओं में उपलब्ध होते हैं। अजन्ता की गुफाओं की संख्या 29 है जिनमें दो अगम्य हैं। मानवीय भावों का सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण अजन्ता की गुफाओं की अमूल्य देन हैं। करुणा, घृणा, मैत्री, द्वेष, प्रेम, क्रोध, लज्जा, हर्ष, उत्साह, चिन्ता आदि भावों के चित्रण में अजन्ता की गुफाएँ अद्वितीय हैं। एक कला-विशेषज्ञ की राय में, ''अजन्ता की कला कृति में इतनी पूर्ण, परम्परा में इतनी निर्दोष, अभिप्राय में इतनी सजीव तथा आकृति एवं वर्ण के सौन्दर्य में इतनी सम्पन्न है कि उसे संसार की सर्वोत्तम कला-कृतियों में बरबस गिनना पड़ेगा।'' **निवेदिता** लिखती हैं, ''अजन्ता की 17वीं गुफा में अंकित चित्र से बढ़कर, जिसमें एक राजा हंस की बातों को सुन रहा है- संसार में दूसरा चित्र नहीं हो सकता।'' **श्रीमती प्रेबीस्का** अजन्ता की चित्रकला के विषय में लिखती हैं, 'अजन्ता की कला सर्वश्रेष्ठ

कला है। चित्रों की सुन्दरता अलौकिक है तथा वे भारतीय चित्रकला के चरम उत्कर्ष हैं।' इस प्रकार गुप्तकाल में चित्रकला उन्नति की चरम सीमा पार कर चुकी थी।

(द) संगीत-कला- गुप्त-काल में अन्य कलाओं की भाँति संगीत-कला की भी पर्याप्त उन्नति हुई। गुप्त सम्राट् संगीत-कला के विशेष प्रेमी थे। समुद्रगुप्त को वीणा बजाने का विशेष चाव था। उपलब्ध सिक्के में वह वीणा बजाता हुआ अंकित है। प्रयाग प्रशस्ति-स्तम्भ-लेख के अनुसार, "जिसने अपनी तीव्र विलक्षण बुद्धि और गान्धर्वविद्या में प्रवीणता द्वारा देवताओं के अधिपति (इन्द्र) के आचार्य (काश्यप), तुम्बुरु एवं नारद आदि को भी लज्जित कर दिया था।"

(6) धार्मिक सहिष्णुता- गुप्त काल में तीन धर्मों- ब्राह्मण-धर्म, बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म के अनुयायी थे। गुप्त सम्राट् ब्राह्मण-धर्म के विशेष अनुयायी थे और उनके इष्ट देवता विष्णु थे। यहाँ तीनों धर्मों की विवेचना की जा रही है :

(क) ब्राह्मण-धर्म : (i) विष्णु-उपासना- गुप्त-काल में वैष्णव-धर्म का अत्यधिक प्रभाव था। गुप्त-सम्राटों ने 'परमभागवत' का विरुद धारण किया था। किसी लेखबद्ध कार्य में विष्णु की स्तुति आवश्यक समझी जाती थी। स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ वाला लेख तथा बुद्धगुप्त का एरण स्तम्भ-लेख विष्णु-स्तुति से आरम्भ हुआ है। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विष्णुपद नामक पर्वत पर विष्णुध्वज स्थापित किया था। भरतपुर राज्य के 'कमन' नामक स्थान से मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह तथा वामन आदि विष्णु के विभिन्न अवतारों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

(ii) शिव-उपासना- चन्द्रगुप्त द्वितीय के मथुरा शिलालेख में शिव-पूजा का उल्लेख मिलता है। इसी सम्राट के मन्त्री वीरसेन ने उदयगिरि पर शिव-पूजा के लिए एक मन्दिर का निर्माण कराया था। महाराज हस्तिन के खोह से प्राप्त लेखों का प्रारम्भ शिव की वन्दना के पश्चात् किया गया है। शिव-मूर्तियाँ एकमुख और चतुर्मुख रूप में उपलब्ध हुई हैं।

(iii) सूर्य-उपासना- विष्णु और शिव की पूजा के पश्चात् सूर्योपासना का स्थान था। कुमारगुप्त प्रथम के मन्दसौर वाले शिलालेख में तथा स्कन्दगुप्त के इन्दौर वाले ताम्रपत्र में भगवान सूर्य की प्रार्थना की गई है। भूमरा में सूर्य की एक सुन्दर प्रतिमा प्राप्त हुई है। इस प्रकार गुप्तकाल में सूर्य-पूजा का भी महत्वपूर्ण स्थान था।

(iv) देवी-उपासना- देवियों में मुख्य स्थान लक्ष्मी, दुर्गा, पार्वती आदि का था। इस काल की चंडिका, माहेश्वरी, ब्राह्मी, कौमारी, वाराही, नारसिंही की मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। भूमरा में षड्भुजी महिषमर्दिनी (दुर्गा) की एक मूर्ति प्राप्त हुई है। इस प्रकार इस काल में शक्ति-पूजा का अभाव न था।

(ख) जैन-धर्म- गुप्त-काल में जैन-धर्म के प्रचार करने के अनेक प्रमाण गुप्त लेखों में पाये जाते हैं। मथुरावाले लेख में जैन स्त्री हरिस्वामिनी द्वारा जैनमूर्ति के दान का उल्लेख है। उदयगिरि गुफा में शंकर द्वारा पार्श्वनाथ की मूर्ति की स्थापना का वर्णन मिलता है। पहाड़पुर के एक लेख में एक ब्राह्मण द्वारा बटगोहली नामक स्थान में जैन-विहार की मूर्ति की पूजा के लिए भूमिदान का उल्लेख मिलता है। कहौम के लेख में मद्र नामक व्यक्ति द्वारा पांच जैन तीर्थकरों-आदिनाथ, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर की मूर्तियों की स्थापना का उल्लेख है। इस प्रकार गुप्तों के काल में जैन धर्म का भी प्रचार था।

(ग) बौद्ध-धर्म- फाहियान के यात्रा-विवरण से गुप्तकाल में बौद्ध-धर्म के प्रचार पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सारनाथ में जो सहस्रों बौद्ध-मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, उनमें अनेक मूर्नियों

पर किसी गुप्त राजा का नाम और गुप्त संवत् का उल्लेख मिलता है। कुमारगुप्त प्रथम के राज्यकाल में बुद्धमित्र ने 'मनकुवार' नामक स्थान पर बुद्धदेव की प्रतिमा स्थापित की थी। **चन्द्रगुप्त द्वितीय के सेनापति आम्रकार्द्दव के द्वारा 'काकनादवाट' नामक विहार को ईश्वरवासक** नामक एक गाँव तथा 25 स्वर्णमुद्राओं के दान का उल्लेख साँची के लेख में मिलता है। इस प्रकार गुप्त-काल में बौद्ध-धर्म भी प्रचलित था।

(7) आर्थिक सम्पन्नता- गुप्त-काल में भारतीय जनता की आर्थिक अवस्था बहुत उन्नत दशा में थी। देश में शान्ति और सुव्यवस्था का साम्राज्य होने के कारण गुप्त-सम्राटों ने आर्थिक प्रगति की ओर विशेष ध्यान दिया। इस काल में कृषि और उद्योग-धन्धों की विशेष प्रगति हुई। कृषकवर्ग गेहूँ, जूट, ज्वार, बाजरा, कपास, मसाले, सुपारी, नील, तिलहन आदि उत्पन्न करता था। कपड़ा बुनना देश का प्रमुख व्यवसाय था। अन्न, मसाले, नमक, सोना, चाँदी और बहुमूल्य रत्न आन्तरिक व्यापार की प्रमुख वस्तुएँ थीं। इस समय का बाह्य व्यापार बहुत उन्नत अवस्था में था। दो स्थलमार्गों से व्यापार होता था। इनमें एक पूर्वी समुद्र-तट पर होता हुआ जबलपुर से दक्षिण की ओर गया था और दूसरा पश्चिमी समुद्रतट पर उज्जैन, नासिक, खराबार होता हुआ दक्षिण में गया था। इस काल में निर्यात की प्रमुख वस्तुएँ मोती, रत्न, नारियल, हाथी-दाँत की वस्तुएँ और आयात में स्वर्ण, चाँदी, ताँबा, टीन, सीसा, रेशम, कपूर, खजूर के फल और अश्व थे। इस काल में वाणिज्य, व्यापार की उन्नति से देश की आर्थिक दशा में पर्याप्त समृद्धि हुई।

(8) विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार- व्यापार के माध्यम से भारत का सम्पर्क विदेशों से स्थापित हुआ। **विन्सेन्ट स्मिथ** के अनुसार, ''भारत का विदेशी सभ्यताओं से सम्पर्क था।'' भारत के अनेक प्रचारक तथा व्यापारी जावा, चीन, पूर्वी द्वीपसमूह, सुमात्रा, कम्बोडिया आदि देशों में गये। परिणामस्वरूप इन देशों के निवासियों पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति की स्पष्ट छाप पड़ी। विदेशों से भी राजदूत के रूप में अनेक लोग भारत आये। अजन्ता के चित्रों में एक चित्र फारस के राजदूत का है जो भारत में आकर यहाँ के राजा को फारस के राजा द्वारा दी गई कुछ भेंट चढ़ा रहा है। भारत कुमारजीव के-से विद्वान भिक्षुओं को चीनी साम्राज्य में धार्मिक दौत्य के अर्थ भेजता रहा। इस प्रकार गुप्त-काल में बृहत्तर भारत की नींव पड़ी।

उपरोक्त कारणों के आधार पर इतिहास के विद्वानों ने गुप्त-काल को 'स्वर्ण-युग' के नाम से सम्बोधित किया है क्योंकि इस काल में साहित्य, कला, विज्ञान की पर्याप्त उन्नति हुई। भारत की आर्थिक और धार्मिक अवस्था उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गई। **बारनेट** के अनुसार, ''गुप्त-काल साहित्यिक भारत के इतिहास में वही स्थान रखता है जो यूनान के इतिहास में पेरीक्लीन के युग को प्राप्त है।''[1] मोरलैंड और **ए० सी० बनर्जी** के अनुसार, ''गुप्त-काल कला तथा साहित्य में बड़ी क्रियाशीलता का समय था और उस काल में साम्राज्य समृद्ध तथा सुशासित था।''[2] इस प्रकार से प्रायः सभी इतिहासकार इस मत से सहमत हैं

---

1. "Gupta period in the annals of classical India, almost what Periclean age is in the history of Greece." –Barnett
2. "Gupta period was a time of great activity in art, literature and....the empire was prosperous and well governed in that age." –Moreland

कि गुप्तकाल भारत के इतिहास में स्वर्णयुग था। अन्त में डॉ० **स्मिथ** के शब्दों में हम कह सकते हैं, 'हिन्दू भारत के इतिहास में महान् गुप्त सम्राटों का युग जितना सुन्दर और संतोषजनक है उतना कोई अन्य नहीं है। इस युग में साहित्य, कला तथा विज्ञान की असाधारण मात्रा में उन्नति हुई और बिना अत्याचार के धर्म में क्रमागत परिवर्तन किये गये थे।''[1]

हूण- आक्रमण

हूणों का परिचय- 'हिंग- नु'' अथवा हूण मध्य एशिया में रहने वाली खानाबदोश बर्बर जाति थी। मध्य एशिया में यह जाति पश्चिम की ओर बढ़ी और आगे चलकर दो शाखाओं में विभक्त हो गई- (1) पश्चिम शाखा, (2) पूर्वी शाखा। पश्चिमी शाखा के हूण यूरोप तक बढ़ गए थे और उन्होंने पश्चिमी रोमन साम्राज्य को ध्वस्त कर दिया था। पूर्वी शाखा के हूणों को 'श्वेत हूण' भी कहा जाता है। इस शाखा के हूणों ने आक्सस नदी के तट पर अपना अधिकार जमाया और बाद में उन्होंने ईरान को जीतकर भारतीय क्षेत्र में प्रवेश किया।

सम्भवतः हूणों का प्रथम भारतीय आक्रमण सम्राट कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल के अन्तिम समय में हुआ। इनके भीषण आक्रमण से गुप्त- लक्ष्मी विचलित हो गयीं, किन्तु सम्राट के वीरपुत्र स्कन्दगुप्त ने उन्हें मार भगाया और गुप्त साम्राज्य की रक्षा की। 510 में हूणों का दूसरा आक्रमण **तोरमाण** के नेतृत्व में हुआ। गुप्त शासक भानुगुप्त इसके आक्रमण को रोकने में असमर्थ रहा। फलतः उसने गुप्त साम्राज्य के पश्चिमी भाग तथा मालवा पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। तोरमाण ने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की और 'साकल' या 'स्यालकोट' को राजधानी बनाकर शासन करने लगा। उसके साम्राज्य में मालवा, गुजरात, सिन्ध, राजपूताना तथा पंजाब के कुछ प्रदेश सम्मिलित थे।

मिहिरकुल- मंजुश्री मूलकल्प के अनुसार तारमोण की मृत्यु बनारस में हुई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मिहिरकुल राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। वह बड़ा ही क्रूर, निर्दयी और बर्बर शासक था। उसने बौद्धों के साथ बड़ा क्रूर व्यवहार किया। उसने बौद्धों के अनेक मठों को नष्ट कर दिया और बौद्ध- भिक्षुओं को जीवित जला डाला। उसने गुप्त साम्राज्य पर भी आक्रमण किया, किन्तु सम्राट् बालादित्य ने उसे बुरी तरह पराजित कर भागने के लिए बाध्य किया। **मन्दसौर अभिलेख** से ज्ञात होता है कि **यशोधर्मन** नामक राजा ने मिहिरकुल को पराजित किया था। बालादित्य से पराजित होकर मिहिरकुल काश्मीर पहुँचा और धोखा देकर वहाँ के राजा का वध करके उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। परन्तु शीघ्र ही इस क्रूर तथा निर्दयी शासक की मृत्यु हो गई। मिहिरकुल की मृत्यु के पश्चात् हूणों के साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया और कालान्तर में वे भारतीय संस्कृति में घुल- मिल गये और उनका पूर्णरूपेण भारतीयकरण हो गया।

हूण और जनेन्द्र यशोधर्मन

गुप्तों के पतन तथा हूणों के आक्रमण- काल में मालवा में जनेन्द्र यशोधर्मन नामक प्रतापी एवं वीर सम्राट् का अभ्युदय हुआ। उसने हूण सम्राट् मिहिरकुल को पराजित कर हूणों से देश

---

1. "The age of the great Gupta kings presents a more agreeable and satisfactory picture than any other period in the history of Hindu India. .. .literature, art, science all flourished in a degree beyond ordinary and gradual changes in religion were effected without persecution." -Smith

की रक्षा की। उसकी विजय की पुष्टि 533 ई० के मन्दसौर स्तम्भ- लेख से होती है। उसमें लिखा है- 'अपने राज्य की सीमाओं को लाँघ. .. उन देशों की विजय की जिन्हें गुप्तों तक ने भोगा था. .. और उसने ऐसे देशों पर भी आक्रमण किए जिनमें हूण तक प्रवेश न कर सके थे। लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) से महेन्द्र पर्वत तथा हिमालय से पश्चिमी सागर तक के सारे राजा उसकी अर्चना करते थे। मिहिरकुल ने भी जिसने भगवान् शिव को छोड़कर अन्य किसी के सामने सिर नहीं झुकाया था, उसके चरणों को मस्तक से स्पर्श कर अभ्यर्थना की।''

मन्दसौर- स्तम्भ- लेख के अतिरिक्त जनेन्द्र यशोधर्मन तथा उसके उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में कोई अन्य उल्लेख प्राप्त नहीं होता। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यशोधर्मन की मृत्यु के उपरान्त उसके राज्य का पतन हो गया।

हूणों के आक्रमण का भारत पर प्रभाव

हूण लोग भारत में एक आँधी की तरह आये थे और थोड़े ही दिनों में उनकी सत्ता समाप्त हो गई। लेकिन भारतीयों के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक जीवन पर उनका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सका।

(1) सामाजिक प्रभाव- हूण जाति ने कुछ समय के उपरान्त हिन्दू धर्म को अपना लिया और भारतीयों से वैवाहिक सम्बन्ध की स्थापना की। इसके परिणामस्वरूप भारतीय आर्य जाति के रक्त की पवित्रता का अन्त हो गया। आर्य जाति में रक्त का सम्मिश्रण होने लगा।

हूण जब भारत में प्रविष्ट हुए थे तब उनके आचार- व्यवहार बड़े ही घृणित थे। अतएव जो भारतीय उनसे दूर रहना चाहते थे उन्होंने जातीय बन्धन को और भी जटिल कर दिया।

हूणों के सम्मिश्रण से राजपूतों की अनेक जातियों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने कालान्तर में भारतीय राजनीति को अत्यधिक प्रभावित किया।

(2) राजनीतिक प्रभाव- हूणों के आक्रमण का गुप्त साम्राज्य पर बड़ा विनाशकारी प्रभाव पड़ा। उनके आक्रमणों के फलस्वरूप गुप्त साम्राज्य छिन्न- भिन्न हो गया और भारत में अनेक छोटे- छोटे राज्य स्थापित हो गये। सामन्त राज्यों को छोटे- छोटे स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना करने का अवसर प्राप्त हुआ। कुछ समय के उपरान्त गुप्तवंशज मगध में स्थानीय राजा के रूप में शासन करने लगे। अतएव भारत की राजनीतिक एकता का अन्त होकर विकेन्द्रीकरण की भावना का पुनः उदय हुआ।

(3) सांस्कृतिक प्रभाव- हूण असभ्य और बर्बर थे। उन्हें प्राचीन ग्रन्थों और कलात्मक वस्तुओं की महत्ता का कुछ ज्ञान न था। अतः उन्होंने अपने आक्रमण के समय अनेक संस्थाओं, विहारों, मठों और भव्य इमारतों को नष्ट कर डाला तथा उनमें संग्रहीत अमूल्य ग्रन्थों तथा कला- कृतियों को भस्म कर दिया। अनेक राजवंशों की वंशावलियाँ भी हूणों द्वारा नष्ट कर दी गयीं। इस प्रकार उन्होने भारतीय संस्कृति और कला को भारी आघात पहुँचाया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में चीनी यात्री फाह्यान भारत आया था। उसने सिंध और मथुरा के बीच स्थित अनेक बौद्धविहारों तथा शिक्षण संस्थाओं का उल्लेख किया था, किन्तु सम्राट हर्षवर्द्धन के समय में आने वाले चीनी य़ात्री ह्वेनसांग ने उन विहारों और शिक्षण संस्थाओं का कोई उल्लेख नहीं किया। इससे सिद्ध होता है कि हूणों ने उन्हें नष्ट करके उनका चिह्न तक नहीं छोड़ा था।

(4) धार्मिक प्रभाव- हूणों से भारतीयों का घनिष्ठ सम्बन्ध बढ़ जाने के कारण भारतीयों का धार्मिक तथा नैतिक स्तर गिर गया और उनमें बहुत से अन्धविश्वासों का प्रचलन हो गया।

भारत में पर्याप्त काल तक निवास करने के उपरान्त हूणों का पूर्णतया भारतीयकरण हो गया तथा अपनी असभ्यता एवं बर्बरता का परित्याग करके वे भारतीय संस्कृति में इतने घुल-मिल गये कि अब उनके वंशजों के विषय में कुछ भी नहीं बतलाया जा सकता।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ (Important Dates and Events)

(1) 319 ई० - गुप्तकाल का प्रारम्भ।
(2) 335 ई० या 325 ई० - सम्राट् चन्द्रगुप्त की मृत्यु तथा समुद्रगुप्त का राज्यारोहण।
(3) 375 ई० - समुद्रगुप्त की मृत्यु तथा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का राज्यारोहण।
(4) 414 ई० - चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की मृत्यु तथा कुमारगुप्त प्रथम का राज्यारोहण।
(5) 455 ई० - कुमारगुप्त प्रथम की मृत्यु तथा स्कन्दगुप्त का राज्यारोहण।
(6) 467 ई० - स्कन्दगुप्त की मृत्यु।
(7) 399 ई० - चीनी यात्री फाहियान का भारत आगमन।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. भारत पर हूणों के आक्रमणों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। इन आक्रमणों का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा ? (1967)
2. गुप्तवंश के पतन के कारणों की विवेचना कीजिए। (1973)
3. चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए। (1977)
4. गुप्तकाल में साहित्य, कला तथा विज्ञान के क्षेत्रों में होने वाले विकास पर संक्षेप में एक निबन्ध लिखिए। (1978)
5. समुद्रगुप्त के चरित्र तथा उसकी विजयों का वर्णन कीजिए। (1979)
6. गुप्तवंश के शासकों की शासन-व्यवस्था का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कीजिए। (1980)
7. एक विजेता के रूप में समुद्रगुप्त की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। (1981)
8. गुप्तकाल भारतीय इतिहास में 'स्वर्णयुग' क्यों माना गया ? (1965, 71)
9. समुद्रगुप्त की दिग्विजयों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। (1986)
10. समुद्रगुप्त की विजयों का परिचय दीजिए। क्या उसे 'भारत का नैपोलियन' कहा जा सकता है ? (1988)
11. गुप्त-काल को प्राचीन भारतीय इतिहास का स्वर्ण काल क्यों कहा जाता है ? (1991)
12. समुद्रगुप्त की दक्षिणापथ की विजयों एवं उसके साम्राज्य-विस्तार का वर्णन कीजिए। (1992)
13. फा-हियान के वर्णन के आधार पर भारतीय समाज का चित्रण कीजिए। (1997)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. ''गुप्तकाल प्राचीन भारत का स्वर्णयुग था।'' इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ? (1971, 82, 85, 95)

2. "समुद्रगुप्त भारतीय नैपोलियन था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. "गुप्तकाल कला तथा साहित्य में बड़ी क्रियाशीलता का समय था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
4. "हिन्दू भारत के इतिहास में महान् गुप्त सम्राटों का युग जितना सुन्दर और सन्तोषजनक है, उतना कोई अन्य युग नहीं है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
5. "भारत के इतिहास में, विविध क्षेत्रों में जीवन-शक्ति का विकास जितना गुप्तकाल में हुआ उतना कभी नहीं हुआ।" इस कथन को दृष्टिगत रखते हुए गुप्तकाल के कला तथा साहित्य के क्षेत्र में विकास का वर्णन कीजिए।
6. "गुप्तकाल में भारतवर्ष नैतिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा भौतिक उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। (1961)
7. "गुप्तकाल हिन्दू सभ्यता के पुनरुत्थान का समय था।" इस कथन की विवेचना कीजिए । (1998)
8. "गुप्त-साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक समुद्रगुप्त था।" इस कथन के आलोक में उसकी दिग्विजयों का वर्णन कीजिए ।
9. "चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की गिनती संसार के महान् सम्राटों में की जाती है ।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
10. "गुप्त शासनकाल में साहित्य, कला तथा विज्ञान के क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति हुई।" सविस्तार व्याख्या कीजिए। (1989)
11. "समुद्रगुप्त की सैनिक सफलताएँ महान् तो थीं ही, उसकी व्यक्तिगत उपलब्धियाँ भी कुछ कम महत्वपूर्ण न थीं।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
12. "समुद्रगुप्त एक विजेता और कुशल योद्धा ही नहीं वरन् संगीत, साहित्य तथा कला का संरक्षक भी था।" उपर्युक्त कथन की पुष्टि कीजिए ।(1990)
13. "गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग था।" कला एवं साहित्य के क्षेत्र में हुए विकास की दृष्टि से इस कथन की पुष्टि कीजिए। (1993)
14. "गुप्तकालीन स्वर्णयुग मुख्यतः समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय की रचना थी।" विवेचना कीजिए। (1997)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. समुद्रगुप्त को 'भारतीय नैपोलियन' क्यों कहा जाता है? (1985)
2. समुद्रगुप्त विक्रमादित्य की शासन-व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
3. गुप्तकाल को प्राचीन भारत का स्वर्ण-युग क्यों कहा जाता है?
4. गुप्तकालीन साहित्यिक प्रगति का विवरण दीजिए। (1985)
5. गुप्त साम्राज्य के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।
6. हूणों के भारतीय आक्रमण और उसके प्रभाव का वर्णन कीजिए।
7. समुद्रगुप्त द्वारा विजित दक्षिणापथ के किन्हीं चार राज्यों और उनके राजाओं का उल्लेख कीजिए।
8. गुप्तकाल में विज्ञान के क्षेत्र में क्या प्रगति हुई थी? (1998)

(घ) संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :

(1) फाहियान (1985), (2) स्कन्दगुप्त, (3) मिहिरकुल, (4) जनेन्द्र यशोधर्मन, (5) आर्यभट्ट (1984), (6) कालिदास (1985), (7) हरिषेण (1986) ।

13
वर्द्धन- साम्राज्य

> **"हर्ष प्राचीन भारत के इतिहास के श्रेष्ठतम सम्राटों में से है। उसमें समुद्रगुप्त और अशोक दोनों के ही गुण संयुक्त थे। उसका जीवन हमें पहले की सैनिक सफलताओं और दूसरे की पवित्रता की याद दिलाता है।"** - डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी

छठीं शताब्दी में उत्तरी भारत की राजनीतिक दशा- गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद भारत की राजनीतिक स्थिति में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। सम्पूर्ण देश छोटे- छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। उत्तरी भारत में मगध, मालवा, बलभी, कान्यकुब्ज तथा थानेश्वर राज्य निर्मित हुए जो एक दूसरे से संघर्ष करने लगे थे। इन राज्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

(1) मगध का गुप्तवंश- यद्यपि मगध पर गुप्त सम्राटों का राज्य सातवीं शताब्दी तक चलता रहा परन्तु उनकी राज्य की सत्ता प्रायः समाप्त हो गई थी। गुप्त साम्राज्य का पतन होने के पश्चात् 350 में गुप्तों की एक शाखा के वंशज कृष्णगुप्त ने मगध पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। इसका बंगाल के गौड़ राजा से संघर्ष चलता रहा। कालान्तर में मौखरियों से भी इसका संघर्ष प्रारम्भ हो गया था।

छठीं शताब्दी में उत्तरी भारत के प्रमुख राज्य
1. मगध का गुप्तवंश
2. मालवा का राज्य
3. बलभी का राज्य
4. कान्यकुब्ज का मौखरि वंश
5. थानेश्वर का पुष्यभूति वंश

(2) मालवा का राज्य - मालवा गुप्त- साम्राज्य का अंग था। जनेन्द्र यशोधर्मन नामक राजा ने मालवा में स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था और गुप्त सम्राट् के आधिपत्य से अपने को मुक्त कर लिया था। यशोधर्मन गुप्त सम्राट् बालादित्य के समय मालवा का शासक था। उसने हूण राजा मिहिरकुल को पराजित किया था जिसने काश्मीर जाकर शरण ली थी।

(3) बलभी का राज्य- बलभी राज्य की स्थापना सेनापति भट्टार्क ने पाँचवीं शताब्दी के अन्त में की थी। इस राज्य की राजधानी बलमी थी। इसी वंश के सम्राट् ध्रुवसेन द्वितीय को युद्ध में परास्त कर हर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ किया था।

(4) कान्यकुब्ज का मौखरि वंश- गुप्त- साम्राज्य के पतन पर कन्नौज और बिहार में मौखरियों ने स्वतन्त्र राज्य का निर्माण किया। सम्भवतः इनकी एक शाखा हाड़ा राजस्थान के कोटा प्रदेश में शासन करती थी। इस वंश का प्रतापी सम्राट ईशानवर्मा था जिसने गौड, आंध्र तथा सुलिक राजाओं को पराजित किया। ईशानवर्मा के काल में मौखरियों और गुप्तों के मध्य वैमनस्य पैदा हो गया था। इस वंश का अन्तिम शासक ग्रहवर्मा था जिसका विवाह थानेश्वर के राजा प्रभाकरवर्द्धन की पुत्री राज्यश्री से हुआ था।

(5) थानेश्वर का पुष्यभूति वंश- छठीं शताब्दी में स्थापित राज्यों में यह राज्य सर्वाधिक शक्तिशाली था। इस स्वतंत्र राज्य का संस्थापक पुष्यभूति था। वह वीर एवं योग्य

शासक तथा शिव का अनन्य भक्त था। पुष्यभूति की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र नरवर्धन थानेश्वर का शासक बना। नरवर्धन के पश्चात् क्रमशः राज्यवर्धन तथा आदित्यवर्धन शासक हुए। आदित्यवर्धन ने गुप्तवंश की राजकुमारी महासेन-गुप्त से विवाह किया था। पुष्यभूतिवंश का शक्तिशाली शासक प्रभाकरवर्धन था जिसने 'परमभट्टारक' तथा 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की। उसने गुजरात तथा मालवा पर विजय प्राप्त की थी। उसके दो पुत्र थे- राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन। उसकी पुत्री का नाम राज्यश्री था जिसका विवाह मौखरि राजा ग्रहवर्मा के साथ हुआ था। प्रभाकरवर्धन का 605 में परलोकवास हो गया।

प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्धन थानेश्वर के राजसिंहासन पर आसीन हुआ। सिंहासनारोहण के समय उसे यह दुःखद समाचार मिला कि बंगाल के राजा शशांक और मालवा के राजा देवगुप्त ने मिलकर उसके बहनोई ग्रहवर्मा का वध कर डाला है और बहन राज्यश्री को कैद कर लिया है। अतः राज्यवर्धन ने एक विशाल सेना के साथ मालवा पर आक्रमण कर उसे बुरी तरह पराजित किया और राज्यश्री के उद्धार के लिए कन्नौज की ओर प्रस्थान किया, पर कन्नौज पहुँचने के पूर्व ही बंगाल के राजा शशांक ने धोखा देकर उसका वध कर दिया। गुप्त नामक एक व्यक्ति ने अपने प्रयत्न से राज्यश्री को कारागार से मुक्त करा दिया। पर वह पति की मृत्यु और बड़े भाई की हत्या से दुःखी होकर विंध्य के जंगलों में चली गई। राज्यवर्धन की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई हर्षवर्धन 606 में सम्राट् बना।

हर्षवर्धन (606-647)

हर्षवर्धन के शासनकाल के सम्पूर्ण इतिहास का ज्ञान निम्नलिखित साधनों द्वारा प्राप्त होता है :

(i) ताम्रपत्र- बाँसखेड़ा (शाहजहाँपुर) और मधुबन (आजमगढ़) के ताम्रपत्रों से हर्षवर्धन के वंश का परिचय ज्ञात होता है।

(ii) हर्ष-चरित- वाण द्वारा रचित हर्ष-चरित का महत्व बहुत अधिक है, क्योंकि इसमें बाण ने अपनी आँखों-देखा विवरण दिया है।

(iii) ह्वेनसांग की जीवनी- इसकी रचना ह्वेनसांग के मित्र हुई-लो ने की है। इससे हर्षकाल की पर्याप्त सामग्री का ज्ञान मिलता है।

(iv) हर्ष द्वारा रचित ग्रंथ- हर्ष द्वारा रचित 'नागानन्द', 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' से उस समय के धार्मिक, सामाजिक और राजप्रासादों के विषय में पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

(v) ह्वेनसांग का वर्णन- हर्ष के समय चीनी यात्री ह्वेनसांग आया था। उसने हर्षकालीन धार्मिक एवं सामाजिक अवस्था पर पर्याप्त विवरण प्रस्तुत किया है।

हर्ष का प्रारम्भिक जीवन- हर्ष का जन्म 590 में हुआ था। उसके पिता का नाम प्रभाकरवर्धन और माता का नाम यशोमती था। उसने ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन की हूणों के दबाने में सहायता की थी। एक बार जब वह आखेट के लिए गया था तो उसे कुंगक नामक एक दूत से अपने पिता की बीमारी का समाचार मिला। वह शीघ्र ही थानेश्वर पहुँचा लेकिन उस समय तक उसके पिता की मृत्यु हो चुकी थी। पिता की मृत्यु के बाद ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन गद्दी पर बैठा। लेकिन वह अधिक समय तक राज-भोग न कर सका, क्योंकि बंगाल के शशांक ने धोखा देकर उसकी हत्या कर दी। हर्षवर्धन परिस्थितियों से विवश होकर 606 में राजसिंहासन पर आसीन हुआ।

हर्षवर्धन जिस समय सिंहासनारूढ़ हुआ, उसके सामने सबसे बड़ी समस्या शत्रुओं से बदला लेना था। ज्येष्ठ भ्राता के हत्यारे शशांक से बदला लेना था। मालवा और बंगाल के शासकों ने मिलकर उसके बहनोई की हत्या कर दी थी और उसकी बहन राज्यश्री को बन्दी कर लिया था। इस प्रकार इन शत्रुओं से घिरी हुई परिस्थिति में हर्ष ने बड़े धैर्य से काम लिया। सबसे पहले उसने अपनी बहन राज्यश्री का बौद्धभिक्षु दिवाकर मित्र की सहायता से पता लगाया और उसके पास जाकर उसकी रक्षा की। जिस समय हर्ष राज्यश्री के पास पहुँचा वह चिता में कूदने की तैयारी कर चुकी थी। हर्ष उसे समझा-बुझाकर अपने साथ ले आया। शशांक हर्ष से भयभीत होकर बंगाल लौट गया। अपनी बहन और मन्त्रियों के विशेष अनुरोध पर उसने कन्नौज का भी शासन-भार सँभाला और कन्नौज को ही अपनी राजधानी भी बनाया।

हर्षवर्धन

हर्ष की दिग्विजय

हर्ष की दिग्विजय के विषय में विस्तारपूर्वक सामग्री उपलब्ध नहीं है, क्योंकि बाण और ह्वेनसांग ने भी उसकी विजयों का उल्लेख स्पष्ट रूप से नहीं किया। अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना लेने के पश्चात् उसने विशाल सेना का संगठन किया तथा दिग्विजय का कार्य प्रारम्भ किया।

हर्ष की दिग्विजय

1. बलभी-विजय
2. उत्तरी भारत के अन्य राज्यों की विजय
3. बंगाल के शासक शशांक से युद्ध
4. चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय से युद्ध

(1) बलभी विजय- दिग्विजय अभियान के अन्तर्गत हर्ष ने सौराष्ट्र में बलभी के शासक ध्रुवसेन द्वितीय को पराजित किया। हर्ष की यह विजय नौसारी दान-पत्र अभिलेख से प्रमाणित है। ध्रुवसेन द्वितीय ने युद्ध-स्थल से भाग कर गुर्जर-नरेश दद्दा द्वितीय के यहाँ शरण ली। लेकिन हर्ष ने पराजित ध्रुवसेन के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर उसे सदैव के लिए अपना मित्र बना लिया।

(2) उत्तरी भारत के अन्य राज्यों की विजय- सौराष्ट्र में बलभी के अतिरिक्त हर्ष ने उत्तरी भारत के अन्य राज्यों पर भी अपना आधिपत्य स्थापित किया। हर्ष के समय आने वाले चीनी यात्री **ह्वेनसांग** ने लिखा है, 'पूर्व की ओर बढ़कर उसने उन राज्यों पर आक्रमण किया जिन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार न की थी। छह वर्षों में जब तक कि उसने 'पंच भारत' के साथ पूर्णतः युद्ध न कर लिया, वह निरन्तर लड़ता रहा।'' वह पुनः लिखता है 'शिलादित्य महाराज ने अब तक पूर्व से पश्चिम तक के देश जीत लिये थे और दूरस्थ प्रदेशों तक धावे मारे थे।' **'पंच भारत' से अभिप्राय-** (1) सारस्वत मण्डल (काश्मीर, पंजाब), (2) गौड़ (दिल्ली तथा उसके आस-पास का इलाका), (3) कान्यकुब्ज (उत्तर प्रदेश), (4) पूर्वोत्तर भारत (बिहार, मिथिला, बंगाल, आसाम), (5) उत्कल (उड़ीसा, कलिंग) आदि से है। इस

प्रकार से सारे उत्तर भारत पर हर्ष का प्रभुत्व था। बाण ने 'हर्षचरित' में हर्ष को **'सकलोत्तरापथनाथ'** कहा है जो सर्वथा ठीक ही था।

(3) बंगाल के शासक शशांक से युद्ध- हर्ष ने अपने ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन के हत्यारे शशांक के प्रति यह प्रतिज्ञा की थी, 'मैं आर्य (पिता) की चरणरज का स्पर्श कर शपथ खाता हूँ कि मैं कुछ दिनों के ही भीतर पृथ्वी को गौड़ों से रहित न कर दूँ. .. ..
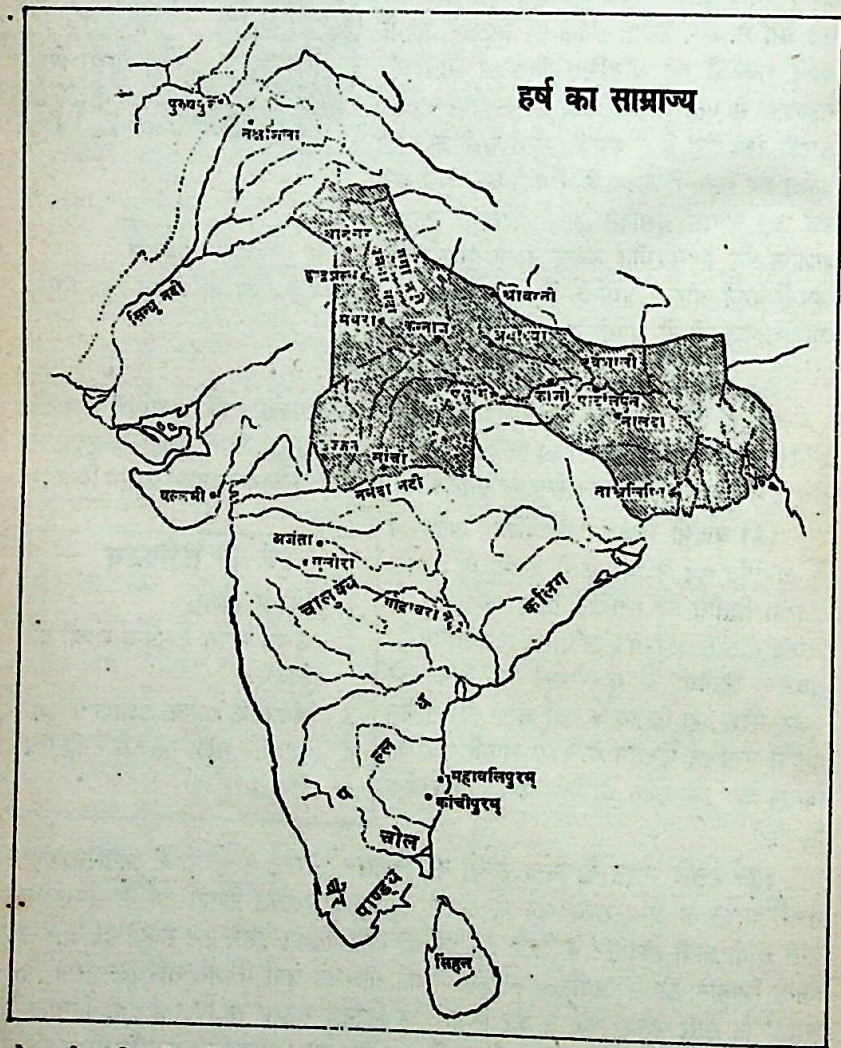
तो अपने पापी शरीर को पतंगे की भाँति लपटों में झोंक दूँगा।' लेकिन अपने प्रारम्भिक प्रयासों में उसे शशांक के खिलाफ सफलता नहीं मिली। सम्भवतः उसने बाद में आसाम के शासक भास्करवर्मा की सहायता से 619 और 630 के बीच शशांक की शक्ति का विनाश कर दिया।

(4) चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय से युद्ध- उत्तरी भारत का अधिपति बनने के बाद हर्ष ने दक्षिण के चालुक्यवंशीय राजा पुलकेशिन द्वितीय जो 'सम्पूर्ण दक्षिणापथ का

स्वामी' था, पर आक्रमण किया। लेकिन हर्ष पुलकेशिन द्वितीय को पराजित करने में असफल रहा। असफलता की पुष्टि पुलकेशिन के उत्कीर्ण लेखों से होती है। यह भीषण संग्राम जिसमें हर्ष ने स्वयं सैन्य-संचालन किया था, 634 के पूर्व ही कभी हुआ होगा, क्योंकि इस युद्ध का उल्लेख उस वर्ष के ही ऐहोलमेगुटी अभिलेख में है।

हर्ष के साम्राज्य का विस्तार- हर्ष का साम्राज्य उत्तर में हिमाचल पर्वत से दक्षिण में नर्मदा नदी तक तथा पूर्व में आसाम से पश्चिम में सिन्ध तक फैला हुआ था। इस प्रकार हर्ष सम्पूर्ण उत्तर भारत को एक शासन-सूत्र में संगठित करने में पूर्ण सफल हुआ था।

हर्ष का शासन-प्रबन्ध

हर्ष एक योग्य शासक तथा कुशल प्रबन्धक था। उसके शासन-प्रबन्ध की रूपरेखा नीचे प्रस्तुत की जा रही है :

(1) केन्द्रीय शासन : (i) सम्राट्- शासन की समस्त सत्ता सम्राट् में निहित थी। शासन का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उसी पर था। उसने गुप्त सम्राटों की भाँति **'परमभट्टारक'**, **'परमेश्वर'**, **'परमदेवता'** और **'महाराजाधिराज'** का विरुद धारण किया। उसने दिन को राजकीय और धार्मिक कार्यों के लिये अनेक भागों में विभाजित कर रखा था। वह अथक परिश्रमी था और दिन का विस्तार उसके कार्य के लिए सर्वथा स्वल्प था। वह दण्डनीयों को दण्डित करने तथा भलों को पुरस्कृत करने हेतु अनेक स्थानों की यात्रा करता था। घोषणा-पत्र, आज्ञा-पत्र, नियुक्ति-पत्र आदि उसी के द्वारा निकाले जाते थे। वह प्रमुख न्यायाधीश था, क्योंकि राज्य के बड़े मुकदमों का निर्णय उसी के द्वारा होता था।

(ii) मन्त्रिपरिषद्- सम्राट् हर्ष को शासन-कार्य में सहायता देने के लिए मन्त्रिपरिषद् थी। मन्त्री सचिव या अमात्य कहलाते थे। इन मंत्रियों में कुछ विभागीय उच्च पदाधिकारी भी होते थे। प्रमुख मंत्री के पद पर सम्राट् का ममेरा भाई भण्डी था। सिंहनाद उसका सेनापति था। हाथी-सेना का प्रधान स्कन्दगुप्त और अश्वारोही सेना का प्रधान कुन्तल था।

हर्ष का शासन-प्रबंध

1. केन्द्रीय शासन-
   (i) सम्राट्
   (ii) मन्त्रिपरिषद्
   (iii) राज-पदाधिकारी
2. प्रान्तीय-शासन
3. राजस्व-व्यवस्था
4. सैन्य-प्रबन्ध
5. दण्ड-विधान

(iii) राज-पदाधिकारी- 'हर्ष चरित' तथा अभिलेखों से हर्ष के कुछ विभागीय पदाधिकारियों का ज्ञान इस प्रकार है :

महासन्धिविग्रहाधिकृत- (युद्ध और शान्ति-सचिव), **महाबलाधिकृत** (सर्वोपरिसेनाध्यक्ष), **सेनापति**, **बृहदश्वावर** (अश्वसेनाध्यक्ष), **कटुक** (गजसेनाध्यक्ष), **राजस्थानीय**, (परराष्ट्रमन्त्री), **उपरिक महाराज** (प्रान्तीयशासक), **मीमांसक** (न्यायाधीश), **महाप्रतिहार** (राजप्रासाद का रक्षक), **भोगपति** (उपज का राजकीय भाग ग्रहण करने वाला) आदि। इनके अतिरिक्त अन्य अधिकारी **अक्षपटलिक** (रिकर्ड क्लर्क) तथा **करणिक** (क्लर्क) थे।

(2) प्रान्तीय-शासन- गुप्त सम्राटों की तरह हर्ष ने भी अपने साम्राज्य को कई प्रान्तों में विभक्त किया था। ये प्रान्त **'भुक्ति'** कहलाते थे। भुक्तियों में अहिछत्र भुक्ति, श्रावस्ती भुक्ति, कौशांबी भुक्ति और पुंड्रवर्धन भुक्ति का उल्लेख किया जा सकता है। भुक्ति विषयों (जिलों) में और विषय गाँवों में विभक्त थे। गाँव शासन की सबसे छोटी इकाई थी। भुक्ति का शासक 'उपरिक-महराज', विषय का पदाधिकारी 'विषयपति' और गाँव का पदाधिकारी 'ग्रामिक' कहलाता था।

उपरिक महराज तथा विषयपति की सहायता के लिए दांडिक, चौरोद्धरणिक, दंडपाशिक आदि (पुलिस के) कर्मचारी होते थे। गाँव का शासन ग्राम-पंचायत द्वारा संचालित होता था।

(3) राजस्व-व्यवस्था- ह्वेनसांग ने हर्ष के शासन-प्रबन्ध की प्रशंसा की है। प्रजा पर बहुत कम कर लगाये गए थे। लगान हल्का था। केवल उपज का 1/6 भाग किसानों से लिया जाता था। कृषक अनाज के रूप में भी कर अदा कर सकते थे। राज्य की आय वस्तुओं पर लगी चुंगी और घाटों तथा सीमाओं पर लगने वाले कर से भी होती थी। न्यायालयों द्वारा अर्थ-दण्ड भी आय का एक साधन था। राज्य की आय कई कार्यों में व्यय की जाती थी। व्यय के मद ह्वेनसांग के अनुसार धार्मिक कार्यों , सरकारी कार्यों, अधिकारियों का वेतन, विद्वानों को पुरस्कार और दान-पुण्य आदि थे। नालन्दा विश्वविद्यालय को भी राज्य की ओर से आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी। इस प्रकार हर्ष की राजस्व-नीति बड़ी उदार थी और जनता के धन को उचित कार्यों में ही व्यय किया जाता था।

(4) सैन्य-प्रबन्ध- हर्ष ने अपनी सैन्य-शक्ति को विशेष सुदृढ़ किया जिसके कारण वह एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना करने में सफल हुआ। उसकी सेना के तीन अंग थे- पैदल, हाथी और घोड़े। रथ का प्रयोग इस समय समाप्त हो गया था। हर्ष की नौ-सेना का भी उल्लेख मिलता है। आरम्भ में हर्ष की सेना में 500 हाथी, 20, 000 घुड़सवार तथा 50, 000 पदाति सैनिक थे। बाद में ह्वेनसांग के समय में यह संख्या बढ़ा दी गयी जैसा कि वह स्वयं लिखता है, 'उसने (हर्ष) अपनी सेना की संख्या में वृद्धि की, गज सेना की संख्या बढ़ाकर 60, 000 और अश्वसेना की 1,00, 000 कर दी।' युद्ध के समय सम्राट् स्वयं सैन्य संचालन करता था। सेना का मुख्य अधिकारी **'महाबलाधिकृत'** कहलाता था। सम्राट् के नीचे इस विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी **'महासन्धिविग्रहाधिकृत'** था। वही युद्ध और सन्धि का भी अधिकारी था।

(5) दण्ड-विधान- शासन सुचारु रूप से संचालित होने के कारण अपराधों की संख्या कम थी। किन्तु राज-पथ और जल-मार्ग असुरक्षित थे, क्योंकि स्वयं ह्वेनसांग अनेक बार लुट गया था। हर्ष का दण्ड-विधान बड़ा कठोर था। कानून के विरुद्ध आचरण करनेवाले तथा राजद्रोहियों को साधारण दण्ड आजन्म कारावास था। कुछ अपराधों के लिए देश-निकाला तथा नाक, कान, हाथ, पैर आदि काट लेना था। साधारण अपराधों का दण्ड जुर्माना था। अभियोग की सत्यता जानने के लिए अग्नि, जल, तुला, विष आदि का प्रयोग होता था।

कन्नौज की धार्मिक सभा

हर्ष के कृत्यों में एक महत्वपूर्ण समारोह कन्नौज में धार्मिक सभा का अधिवेशन था जिसे उसने महायान के सिद्धान्तों के प्रचार हेतु बुलाया था। इस सभा का आयोजन 643 में हुआ। ह्वेनसांग आसाम के राजा भास्करवर्मा के साथ 90 दिनों में कन्नौज पहुँचा, जहाँ उसका स्वागत किया गया। इस सभा में 20 सामन्त राजा, 3000 महायान तथा हीनयान बौद्धभिक्षु, 3,000 जैन व हिन्दू पण्डित तथा नालन्दा विश्वविद्यालय के लगभग 1000 बौद्ध विद्वान सम्मिलित हुए। इन सभी लोगों के आवास के लिए घास-फूस के दो बड़े शिविरों का निर्माण किया गया था। प्रत्येक में पर्याप्तव्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था थी। सभा-अधिवेशन प्रारम्भ होने के पूर्व बुद्ध की 1 मीटर ऊँची स्वर्ण प्रतिमा को एक सजे हुए हाथी पर प्रतिष्ठित करके शहर में जुलूस के रूप में घुमाया गया। हर्ष और भास्करवर्मा क्रमशः शक्र (इन्द्र) और ब्रह्मा के रूप में प्रतिष्ठित मूर्ति की सेवा में उपस्थित थे। जुलूस के अन्त में हर्ष ने मूर्ति की पूजा की और एक विशाल भोज दिया। तत्पश्चात् सभा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। सभापति का आसन ह्वेनसांग को मिला। उसने महायान सम्प्रदाय के गुणों की विस्तृत विवेचना की। उसने अपना प्रतिवाद करने के लिये उपस्थित ब्राह्मणों और विद्वानों को चुनौती दी । परन्तु किसी ने

उसके तर्कों का उत्तर नहीं दिया और वह पाँच दिनों तक सभा का निर्विवाद स्वामी बना रहा। परन्तु अन्य धर्मावलम्बियों ने उसकी हत्या का षड्यन्त्र भी रचा, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। हर्ष ने यह घोषणा की कि जो कोई उसके अतिथि को तनिक भी क्षति पहुँचायेगा उसे प्राण-दण्ड से दण्डित किया जायेगा। हर्ष की इस धार्मिक नीति से ब्राह्मणों में विशेष असन्तोष पैदा हो गया। सी-यूकी के अनुसार अधिवेशन का अन्त बड़ा दुःखात्मक रहा। ऊँचे चैत्य में जिसके नीचे बुद्ध की प्रतिमा स्थापित थी, आग लगा दी गई और एक आततायी ने हर्ष के प्राण लेने का प्रयत्न किया। हर्ष के अंगरक्षकों द्वारा बन्दी बनाये जाने पर उसने बताया कि ब्राह्मण पण्डितों ने उसे हर्ष की हत्या के लिये नियुक्त किया था और उन्होंने ही चैत्य में आग लगवाई थी। अतः हर्ष ने षड्यन्त्र के नेताओं को प्राणदण्ड दिया और लगभग पाँच सौ ब्राह्मणों को बन्दी कर उन्हें देश से बाहर कर दिया। शेष को उसने क्षमा कर दिया।

प्रयाग की महामोक्ष परिषद् (दान सभा)

हर्ष के कृत्यों में द्वितीय महत्वपूर्ण कृत्य प्रयाग में छठाँ पंचवर्षीय दान वितरण था। कहा जाता है कि वह प्रति पाँचवें वर्ष गंगा-यमुना के संगम पर एक बहुत बड़े धार्मिक सम्मेलन का आयोजन करता था जिसमें साधु-संन्यासियों, श्रमणों, निर्ग्रन्थों, दरिद्रों, अनाथों और नास्तिकों को प्रचुर मात्रा में दान देता था। 643-44 में जबकि ह्वेनसांग भी यहाँ उपस्थित था, इस प्रकार की छठीं धार्मिक सभा हुई। यह सभा 75 दिनों तक चलती रही। इस दानोत्सव में सभी सामन्त राजा और अनुमानतः पाँच लाख मनुष्य सम्मिलित हुए थे। एक वर्गाकार हाता बनाया गया था जो हजार फीट लम्बा और हजार फीट चौड़ा था। विश्राम के लिए लगभग 100 लम्बे-लम्बे झोपड़े बने हुए थे जिनमें से प्रत्येक में एक हजार आदमी सो सकते थे। चीनी यात्री ने इस सम्मेलन के विषय में इस प्रकार लिखा है, "उत्सव के प्रारम्भ में अनुचर दलों के साथ राजाओं का एक शानदार जुलूस निकला। पहले दिन,-घास-फूस से बने हुए एक अस्थायी भवन में बुद्ध की मूर्ति स्थापित की गई और बहुमूल्य वस्तुएँ तथा प्रथम श्रेणी के बहुमूल्य वस्त्र वितरित किये गये। दूसरे और तीसरे दिन क्रमशः आदित्य देव (सूर्य) तथा ईश्वरदेव (शिव) की मूर्तियाँ स्थापित की गईं। किन्तु पहले दिन जितनी वस्तुएँ दान दी गई थीं उनकी आधी ही दूसरे तीसरे दिन रात में दी गईं चौथे दिन, बौद्ध धर्म संघ के चुने हुए दस हजार धार्मिक व्यक्तियों को दान दिया गया। उनमें से प्रत्येक को 100 स्वर्ण-मुद्राएं, एक सुन्दर मोती और एक उम्दा सूती कपड़े के अतिरिक्त भोजन, शरबत, फूल, सुगन्धित पदार्थ मिले। अगले 20 दिनों में राजा ने बहुत से ब्राह्मणों को दान दिया। तदनंतर बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्म से इतर मतावलंबियों की बारी आई। उन्हें आगामी 10 दिनों तक दान मिलता रहा। इसके उपरांत 10 दिनों तक उन लोगों को दान दिया गया जो आमंत्रित नहीं किए गये थे और दूर-दूर के देशों से आए थे। अंत में एक मास तक गरीबों अनाथों तथा असहाय लोगों को दान दिया गया। महोराज हर्ष ने अपने निजी हीरे-जवाहरों तथा आभूषणों को भी दान कर दिया। अन्त में, अपनी निर्धनता के चिह्नस्वरूप उन्होंने अपनी बहिन राज्यश्री के हाथ से दिए हुए जीर्ण-शीर्ण (लबादे) वस्त्र को धारण किया और दसों दिशाओं के बुद्धों की अर्चना की। यह सब कुछ कर चुकने के पश्चात् वे यह सोच कर प्रसन्न थे कि मैंने अपनी समग्र संपत्ति पुण्य-खाते में लगा दी है और भगवान बुद्ध का 'दसबल' प्राप्त करने के लिए मैंने अपना मार्ग प्रशस्त कर लिया है।"

सभा समाप्त होने के कुछ ही समय पश्चात् ह्वेनसांग ने अपने देश चीन 'स्वर्गीय साम्राज्य' को वापस जाने के लिए प्रस्थान किया। महाराज हर्ष का आदेश पाकर जालंधर के राजा उदित

ने उसके साथ एक सैनिक रक्षक-दल कर दिया। सम्राट स्वयं उसे दूर तक पहुँचाने गया। यात्री की विदाई के समय उसका हृदय दुखित था। अधिवेशन के बाद हर्ष ने ह्वेनसांग के शब्दों में आकांक्षा व्यक्त की थी, 'ईश्वर करे कि मैं आगामी जन्मों में सदा इसी प्रकार धन-सम्पत्ति को धार्मिक रीति से मनुष्य मात्र को अर्पित करता रहूँ और इस प्रकार अपने को बुद्ध के दस बलों से सम्पन्न कर लूँ।''

हर्ष-काल में धर्म, शिक्षा, साहित्य तथा कला की प्रगति

धर्म- ह्वेनसांग के विवरण और बाण के **'हर्षचरित'** से ज्ञात होता है कि हर्ष के साम्राज्य में तीन धर्म- बौद्ध, ब्राह्मण और जैन-विशेष प्रचलित थे। बौद्ध-धर्म के दो सम्प्रदाय- महायान और हीनयान थे। पर महायान सम्प्रदाय का प्रचार अधिक था। ह्वेनसांग ने इस सम्प्रदाय की 18 शाखाओं का वर्णन किया है। महायान सम्प्रदाय ब्राह्मणधर्म के अधिक समीप आ गया था, क्योंकि इसमें बुद्ध के अवतार, बोधिसत्व मूर्तियों की पूजा, तीर्थ-यात्रा और कर्मकांड पर अधिक जोर दिया जाने लगा था। हर्ष के राज्य में ब्राह्मण और वैदिक धर्म के अनुयायियों की संख्या सबसे अधिक थी। ब्राह्मणधर्म के मुख्य केन्द्र प्रयाग और वाराणसी थे। इस धर्म में विष्णु, शिव तथा सूर्य की पूजा होती थी और उनकी मूर्तियाँ मन्दिरों में प्रतिष्ठित की जाती थीं जहाँ उनकी विधिवत् पूजा होती थी। समाज में साधुओं की संख्या अधिक थी और उनमें भी कई वर्ग थे। 'हर्षचरित' में दार्शनिकों का भी उल्लेख है तथा 'जीवनवृत्तांत' में भूतों, कापालिकों आदि का वर्णन मिलता है। जैन-धर्म के मानने वालों की संख्या उत्तरी भारत में अधिक थी। इस धर्म के भी दो सम्प्रदाय-दिगम्बर और श्वेताम्बर थे। इस धर्म का प्रभाव वैशाली और समतट में अधिक था। अन्य भागों में भी इस धर्म के अनुयायी विद्यमान थे।

शिक्षा- हर्षकाल में शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई। विदेशी विद्वान् भी भारत आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षा देने के माध्यम गुरुकुल, आश्रम और बौद्ध-विहार थे। सात वर्ष की आयु के बालकों को व्याकरण, वैद्यक, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा यांत्रिक कला की शिक्षा दी जाने लगती थी। उस समय नालन्दा शिक्षा का सबसे बड़ा केन्द्र था। ह्वेनसांग के कथनानुसार यहाँ दस हजार विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। हर्ष ने विश्वविद्यालय को अनन्त दान दिये थे। देश-विख्यात शीलभद्र यहाँ कुलपति थे। यहाँ के पाठ्यक्रम में व्याकरण, तर्कशास्त्र, योग, तन्त्र, शिल्प, चिकित्सा, रसायन आदि सम्मिलित थे। ह्वेनसांग ने स्वयं इस विश्वविद्यालय में अध्ययन किया था। विद्यार्थियों के पोषण हेतु 200 ग्राभ लगे हुए थे। योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी मिलती थी। विश्वविद्यालय से अग्रलिखित उद्देश्य लेकर विद्यार्थी निकलते थे :

'क्रोध को क्षमा से जीतो, दुष्ट आदमी को अच्छे काम से जीतो, कृपण को अधिक दान देकर और असत्य बोलने वाले को सत्य से जीतो।''

साहित्य- हर्ष के समय साहित्य की पर्याप्त प्रगति हुई। हर्ष स्वयं एक विद्वान् लेखक था। उसने संस्कृत भाषा में **'रत्नावली'**, **'प्रियदर्शिका'** और **'नागानन्द'** नामक नाटकों की रचना की थी। हर्ष के दरबार में कवि बाणभट्ट को प्रश्रय प्राप्त था जिसकी रचनाएँ **'कादम्बरी'** और **'हर्षचरित'** संस्कृत साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती हैं। **'चण्डीशतक'** और **'पार्वती-परिणय'** नामक ग्रन्थ भी बाणभट्ट के ही लिखे हुए माने जाते हैं। बाण के अतिरिक्त हर्ष के दरबार में **मधूर, हरिदत्त, जयसेन, मातंग, दिवाकर** आदि को भी प्रश्रय प्राप्त था। हर्षकालीन अन्य लेखकों में **भर्तृहरि** का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिसने श्रृंगार, नीति और वैराग्य पर अलग-अलग शतक लिखे। **दशकुमारचरित** का लेखक **दण्डिन** भी इसी काल का माना जाता है। सम्भवतः मेरुतंग

नामक जैन लेखक भी हर्षकालीन था। विशुद्ध साहित्य के अतिरिक्त दर्शन, व्याकरण और विज्ञान आदि विषयों पर भी ग्रन्थ लिखे गये।

कला- कला के क्षेत्र में हर्षकाल की कोई मौलिक देन नहीं है। चित्रकला और संगीत-कला के क्षेत्र में अवश्य ही पर्याप्त उन्नति हुई। बाँसखेड़ा में प्राप्त एक दानपत्र पर हर्ष के कलात्मक हस्ताक्षर चित्रकला के उच्च-स्तर को प्रमाणित करते हैं। बाण के ग्रन्थों में चित्रकला और संगीत के पर्याप्त उल्लेख उपलब्ध हैं। वास्तुकला के क्षेत्र में कई उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं। इस काल में बहुत से देवी-देवताओं की मूर्तियों तथा भवनों का निर्माण हुआ। बिहार के शाहाबाद में भभुआ के पास मुण्डेश्वरी का अष्टकोण मन्दिर और मध्यप्रदेश के रायपुर ज़िले में सिरपुर का लक्ष्मण मंदिर हर्षकालीन है। मूर्तिकला भी पर्याप्त उन्नत थी। कन्नौज की धार्मिक सभा में बुद्ध की 3 फीट ऊँची स्वर्ण प्रतिमा का निर्माण हुआ था। कहा जाता है कि अजन्ता की कुछ चित्रकारियाँ इसी काल की महान् देन हैं। इस प्रकार हर्ष के समय शिक्षा, साहित्य तथा कला के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई।

हर्ष की मृत्यु- हर्ष ने एक सफल शासक की तरह 41 वर्ष तक भारत के बहुत बड़े भाग पर शासन किया। सन् 647 में उसका देहान्त हो गया। हर्ष के कोई सन्तान नहीं थी, अतः उसके मरने के बाद उसके मंत्री अर्जुन ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया।

हर्ष महान सम्राट क्यों ?

हर्ष की गणना भारत के महान सम्राटों में की जाती है। उसमें समुद्रगुप्त तथा अशोक की विशेषताओं का सुन्दर समन्वय था। समुद्रगुप्त की भाँति उसने राज्यों पर विजय प्राप्त की, अशोक की भाँति उसने बौद्ध-धर्म को राज्याश्रय प्रदान किया। उसकी महानता के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :

(1) महान् विजेता- हर्ष समुद्रगुप्त की भाँति एक महान् विजेता था। उसमें सफल विजेता के सम्पूर्ण गुणों का समावेश था। उसने सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर **'सकलोत्तरापथनाथ'** का पद ग्रहण किया। दक्षिण में भौगोलिक परिस्थितियों की विषमता के कारण उसे पुलकेशिन द्वितीय को परास्त करने में सफलता नहीं मिली, फिर भी उससे वह सम्माननीय तथा संतोषप्रद सन्धि करने में सफल हुआ। इस प्रकार हर्ष अपने समय का एक महान् विजेता था। **स्मिथ** के शब्दों में, 'एक युद्ध ने अशोक की रक्त-पिपासा को शान्त कर दिया, हर्ष अपनी तलवार को म्यान में रखने के लिए तब संतुष्ट हुआ जब उसने सैंतीस वर्ष तक, जिसमें 6 वर्ष तक निरन्तर और शेष समय में सविराम युद्ध कर लिया।"[1]

हर्ष महान सम्राट क्यों ?

1. महान् विजेता
2. महान् शासक
3. महान् साहसी एवं धैर्यवान्
4. महान् धर्मपरायण
5. साहित्य, शिक्षा एवं कला का महान् प्रेमी

(2) महान् शासक- हर्ष में जहाँ एक ओर महान् विजेता के गुण विद्यमान थे वहीं दूसरी ओर एक महान् सफल शासक के गुण भी विद्यमान थे। उसने उत्तरी भारत को राजनीतिक एकता प्रदान की। उसने एक व्यवस्थित तथा शान्तिपूर्ण शासन की स्थापना की। सम्पूर्ण साम्राज्य की शक्ति उसी में निहित थी। उसने अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं किया। ह्वेनसांग ने उसके शासन

1. "One campeign had saiuated Ashoka's thirst for blood, thirty seven years of warfare, continuous for 6 years and intermittent for the rest of the time were needed by Harsha before he could be content to sheathe his sword." -Smith

की प्रशंसा की है। सम्पूर्ण साम्राज्य में सुख और शान्ति की स्थापना के लिए वह दौरा किया करता था। इस प्रकार वह अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहता था। **डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी** के शब्दों में, "हर्ष प्राचीन भारत के इतिहास के श्रेष्ठतम सम्राटों में से है। उसमें समुद्रगुप्त और अशोक, दोनों के ही गुण संयुक्त थे। उसका जीवन हमें पहले की सैनिक सफलताओं और दूसरे की पवित्रता की याद दिलाता है।"[1]

(3) महान् साहसी एवं धैर्यवान्- हर्ष आपत्तियों से घबराने वाला व्यक्ति नहीं था। उसको भीषण आपत्तियों का सामना करना पड़ा लेकिन उसने बड़े साहस और धैर्य का परिचय दिया। उसने शशांक से कन्नौज को मुक्त कराया और बहन राज्यश्री को विन्ध्याचल की पहाड़ियों से ढूँढ़कर निकाला। इसी कठिन परिस्थिति में उसने कन्नौज का राज-भार सम्भाला और उन सभी पड़ोसी राजाओं को परास्त किया जो कन्नौज राज्य पर आँख लगाये थे। इस प्रकार हर्ष महान विजेता और शासक होते हुए भी महान् साहसी एवं धैर्यवान् पुरुष था।

(4) महान् धर्मपरायण- हर्ष एक धर्मपरायण सम्राट् था। उसकी धार्मिक नीति बड़ी उदार एवं व्यापक थी। प्रारम्भ में वह ब्राह्मणधर्म का अनुयायी था और शिव तथा सूर्य का उपासक था, किन्तु बाद में ह्वेनसांग के प्रभाव में आकर बौद्धधर्म की ओर आकृष्ट हो गया। फिर भी वह अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु था। प्रयाग की धार्मिक सभा में उसने सभी सम्प्रदाय को दान दिया था और बौद्ध-धर्म के प्रति विशेष निष्ठा रखते हुए सूर्य की पूजा की थी। इस प्रकार वह ब्राह्मण-धर्म को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता था और सभी धार्मिक संस्थाओं के प्रति सहिष्णु था।

(5) साहित्य, शिक्षा एवं कला का महान् प्रेमी- हर्ष स्वयं एक साहित्यकार था। वह साहित्य, शिक्षा एवं कला का आश्रयदाता था। उसने **'नागानन्द'**, **'प्रियदर्शिका'** और **'रत्नावली'** नामक श्रेष्ठ नाटकों का प्रणयन किया था। उसकी राजसभा में **बाणभट्ट, मतंग, दिवाकर** और **मयूर** आदि प्रसिद्ध विद्वान् थे। शिक्षा के क्षेत्र में भी उसने बड़ा सहयोग प्रदान किया। नालन्दा विश्वविद्यालय को जो शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था, समय-समय पर बहुत अधिक सहायता प्रदान करता था। ह्वेनसांग के कथनानुसार विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिये 200 ग्राम लगे थे। वह कला का प्रेमी था। उसके काल में कन्नौज में बौद्ध-विहारों और देवमन्दिरों का निर्माण हुआ। कन्नौज की धार्मिक सभा में उसने बुद्ध की स्वर्णप्रतिमा बनाकर स्थापित करवायी थी। इस प्रकार हर्ष साहित्य, शिक्षा एवं कला का विशेष प्रेमी था। इन्हीं गुणों के कारण वह एक महान् शासक की श्रेणी में आता है।

हर्ष की महानता के सम्बन्ध में कतिपय इतिहासकारों के मत- इतिहासकार **डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी** ने महान् सम्राट् हर्ष की महानता का मूल्यांकन निम्न प्रकार से किया है :

"हर्ष के चरित्र में समुद्रगुप्त तथा अशोक, दोनों के ही गुणों का समन्वय था। समुद्रगुप्त की भाँति विभिन्न दिशाओं में विजय प्राप्त करके उसने सम्राट् का पद प्राप्त किया तथा देश की ऐतिहासिक एकता को पुनः स्थापित किया। इसके उपरान्त युद्ध को सदा के लिये तिलांजलि देकर अशोक की तरह अपनी सारी शक्ति को शान्ति कार्यों में लगाकर, देश की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति में योग देकर उसने सांस्कृतिक व्यक्तित्व तथा महानता को विकसित किया।"

---

1. "Harsha is one of the noblest kings in ancient Indian history. He combined in himself some of the attributes and characteristics of both Samudragupta and Ashoka. His career recalls the military achievements of the former and piety of the latter."

-Dr. R. K. Mukherjee

डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार ने लिखा है, "हर्ष निःसन्देह एक महान् भारतीय सम्राट् था। महान् सेनापति और न्यायी शासक तो वह था ही किन्तु धर्म और शिक्षा के संरक्षक के रूप में वह और भी महान् था।"[1]

डॉ० आशीर्वादीलाल के अनुसार, "भारत के इतिहास में हर्ष का सबसे बड़ा महत्व यह है कि वह उत्तरी भारत का अन्तिम हिन्दू सम्राट था जिसने समस्त आर्यावर्त पर शासन किया।"

डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी लिखते हैं, 'हर्ष शासक और विजेता के रूप में महान् था, परन्तु शान्ति-निर्माता के रूप में महत्तर था।"

ह्वेनसांग

ह्वेनसांग और उसकी यात्रा का विवरण- यात्री ह्वेनसांग का जन्म सन् 605 में चीन के होनान-फू प्रदेश में हुआ था। उसका बड़ा भाई पहले ही बौद्धभिक्षु हो चुका था। ह्वेनसांग बचपन से ही चिंतनशील एवं जिज्ञासु प्रवृत्ति वाला था। अतः वह अपने बड़े भाई की भाँति बौद्ध-धर्म में दीक्षा लेकर बौद्ध-भिक्षु बन गया। ह्वेनसांग के हृदय में भारत - दर्शन की प्रबल इच्छा थी। वह भारत की उस पवित्र भूमि को नतमस्तक करना चाहता था जहाँ भगवान बुद्ध ने शान्ति और अहिंसा की ज्योति को प्रज्वलित किया था। 629 में 24 वर्ष की आयु में वह देश के सम्राट् की सहायता न पाकर भी भारत-दर्शन के लिए चल पड़ा। मार्ग में अनेक कठिनाइयों का आलिंगन करते हुए वह गोबी की मरुभूमि तक पहुँचा जहाँ उसके दो साथियों ने उसका साथ छोड़ दिया। फिर वहाँ से वह हामी, काशगर, समरकन्द, आक्सस, बल्ख होते हुए बामियान नगर पहुँचा। वहाँ से वह पेशावर आया और फिर तक्षशिला आया। तक्षशिला से कश्मीर आया जहाँ वह दो वर्ष तक ठहरा और फिर वहाँ से थानेश्वर, मथुरा होता हुआ कान्यकुब्ज (कन्नौज) आया। वहाँ हर्ष ने उसका खूब सत्कार किया। उसके बाद वह अयोध्या, प्रयाग, कौशाम्बी, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, कुशीनगर, वाराणसी, पाटलिपुत्र, गया तथा राजगृह होता हुआ नालन्दा आया। ह्वेनसांग ने दो वर्षों तक नालन्दा में रुककर संस्कृत और बौद्ध-ग्रन्थों का अध्ययन किया। उसके बाद आसाम, ताम्रलिप्त, उड़ीसा, काँचीपुरम् होकर पश्चिमी किनारों के प्रदेशों को देखता हुआ वह स्वदेश लौट गया। ह्वेनसांग ने 629 में भारत के लिये प्रस्थान किया था और 16 वर्ष यात्रा में व्यतीत कर 645 में वह अपने देश को लौट गया। वापस जाते हुए वह 657 पुस्तकें अपने साथ ले गया। चीन पहुँचने पर चीनी सम्राट् ने उसका बड़ा सत्कार किया। 664 में इस महान् चीनी यात्री की मृत्यु हो गई।

ह्वेनसांग का भारत-विषयक विवरण

(1) राजनीतिक दशा- ह्वेनसांग की यात्रा का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि उसके लेखों से हर्षकालीन राजनीतिक दशा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। चीनी यात्री हर्ष के विषय में कहता है, 'शासक वैश्य जाति का है। उसका नाम हर्षवर्धन है। अनेक राजपदाधिकारी मिलकर

1. "Harsha was undoubtedly one of the greatest king of India. A great general and a just administrator, he was even greater as a patron of religion and learning." -R. C. Majumdar

देश का शासन चलाते हैं। छः वर्ष के युद्ध के पश्चात् उसने भारत विजय की। उसने साम्राज्य का विस्तार कर अपनी सेना भी बढ़ाई। उसके पास 60, 000 युद्ध के हाथी तथा एक लाख घुड़सवार हैं। तीस वर्ष के पश्चात् उसके हाथ ने विश्राम ग्रहण किया तथा हर स्थान पर उसका शासन शांतिप्रिय हो गया। उसके पश्चात् उसने मृदु व्यवहार करने का भरसक प्रयास किया तथा देश भर में धार्मिक वृत्ति को अंकुरित करने में इतना व्यस्त हो गया कि उसे खाने तथा सोने की सुधि न रही।' वह पुनः आगे लिखता है, 'यदि कोई राज्य-कार्य होता तो वह अपने सभासदों को उसके सम्पादन के लिए भेजता। उसका प्रत्येक दिन तीन भागों में बँटा हुआ था। प्रथम भाग में वह राज्य-कार्य देखता, दूसरे भाग में वह धार्मिक कार्यों में संलग्न रहता। इस भाग में कोई बाधा न दे सकता था और तीसरे भाग में वह प्रजा के सुख-दुःख का गुप्त रूप से पता लगाता था। इस तरह उसको कोई दिन भी लम्बा न जान पड़ता।''

ह्वेनसांग का भारत विषयक विवरण

1. राजनीतिक दशा
2. सामाजिक दशा
3. आर्थिक दशा
4. सांस्कृतिक दशा

हर्ष के शासनकाल में दण्ड-व्यवस्था कठोर थी। चीनी यात्री इस सम्बन्ध में लिखता है, 'जब नियम तोड़े जाते हैं तो उसका अर्थ होता है शासन की शक्ति का न मानना। अतः इन विषयों को ठीक-ठीक खोज करने के पश्चात् अपराधियों को कारावास का दण्ड दिया जाता है, कोई शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाता। अपराधियों को केवल मरने के लिए छोड़ दिया जाता है तथा उनकी मनुष्यों में गणना नहीं होती थी। जब कोई सम्पत्ति अथवा न्याय के नियमों को भंग करता है या जब कोई विश्वासघात करता है या पिता के प्रति कर्तव्य से च्युत होता है तो उसकी नाक या कान काट लिये जाते हैं या उसके हाथ-पैर काटकर उसको देश से निकाल कर वन्य प्रदेशों तथा रेगिस्तान में डाल दिया जाता है। इन अपराधों के अतिरिक्त अन्य छोटे अपराधों पर केवल थोड़ा-सा जुर्माना देने से आदमी दण्ड से बच जाता है। अपराधी द्वारा अपराध स्वीकार कराने के लिए जल, अग्नि, भार तथा विष की चार परीक्षायें होती हैं।''

(2) सामाजिक दशा- ह्वेनसांग के यात्रा वर्णन से हर्षकालीन सामाजिक जीवन की पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। वह लिखता है, 'वंश के भागों के अनुसार चार वर्ग हैं। प्रथम में तो पवित्र आचरण वाले ब्राह्मण आते हैं। वे पवित्र जीवन बिताते हैं। दूसरी क्षत्रिय जाति है। युगों से ये शासकवर्ग में रहे हैं। तीसरा व्यापारियों का वर्ग वैश्य जाति के नाम से पुकारा जाता है। चौथा वर्ग कृषकों का है जो शूद्र कहलाता है। ये खेत जोतते तथा बोते हैं।' निम्न श्रेणी के लोगों के विषय में वह कहता है, 'कसाई, मछुए, नर्तक, जल्लाद, सफाई करने वाले मेहतर शहर के बाहर रहते हैं, आने-जाने में इनको अपने बायें से चलने की आज्ञा है, जब तक वह अपने घर न पहुँच जायें।''

भारतीयों के खान-पान के सम्बन्ध में चीनी यात्री लिखता है, 'प्याज तथा लहसुन बहुत कम पैदा किया जाता है तथा बहुत कम आदमी इन्हें खाते हैं। यदि कोई आदमी इन्हें खाता है तो नगर की सीमा के बाहर निकाल दिया जाता है। दूध, मक्खन, मलाई, मुलायम शक्कर तथा मिश्री, सरसों का तेल तथा हर प्रकार के अन्न की रोटियाँ ही साधारणतया सर्वसाधारण का भोजन है। मछली, बकरा, हिरण तथा छोटे मुर्गे इत्यादि का मांस ताजा ही खाया जाता है तथा कभी उनमें नमक भी डाल दिया जाता है।'' वह पुनः आगे लिखता है, 'भोजन के

पहले लोग स्नान करते हैं तथा कभी उच्छिष्ट भोजन नहीं खाते। वे अपनी थालियों को नहीं लाँघते। भोजन करने के पश्चात् वे सींक से दाँत साफ करते हैं तथा हाथ एवं मुँह धोते हैं।''

चीनी यात्री भारतीयों की वेश-भूषा के सम्बन्ध में लिखता है, 'वे सिले हुए या फैशनदार कपड़े नहीं पहनते। प्रायः स्वच्छ-श्वेत कपड़े पहनते हैं तथा मिले हुए रंग के या कामदार कपड़ों को भी पसन्द करते हैं। कुछ लोग मूँछें मुड़वाते हैं तथा अन्य विचित्र रीतियों का अनुसरण करते हैं।''

वैवाहिक सम्बन्धों के विषय में चीनी यात्री का कहना है कि समाज में दो प्रकार के विवाह प्रचलित थे- अनुलोम तथा प्रतिलोम। अनुलोम विवाह में कन्या निम्न वर्ग की और वर ऊँचे वर्ग का होता था और प्रतिलोम विवाह में कन्या उच्च वर्ग की और वर निम्न वर्ग का होता था। उच्च वर्ग की स्त्रियों में पुनर्विवाह की प्रथा नहीं थी। लेकिन सती-प्रथा प्रचलित थी। विवाहोत्सव के समय आमोद-प्रमोद का खूब प्रचार था। चीनी यात्री ने तीन प्रकार की अन्त्येष्टि क्रिया-शवदाह, जलविलयन और जंगलों में शव फेंक देने का उल्लेख किया है।

(3) आर्थिक दशा- हर्षकालीन आर्थिक दशा के सम्बन्ध में ह्वेनसांग कहता है, 'जो राजभूमि जोतते हैं उन्हें अपनी उपज का छठाँ भाग भूमि कर के रूप में देना पड़ता है। जो लोग वाणिज्य तथा व्यापार करते हैं, वे उसके लिए इधर-उधर आया-जाया करते हैं। नदी के पुलों तथा सड़कों के फाटकों पर थोड़ी-सी चुँगी देनी पड़ती है। सोने या चाँदी के सिक्कों के न होने के कारण आपस में केवल वस्तुओं के आदान-प्रदान पर व्यापार चलता है।' ह्वेनसांग के अनुसार, लोगों से बेगार नहीं ली जाती थी। लोगों पर हल्के कर लगे थे और लोगों से जो वैयक्तिक कार्य लिया जाता था, वह भी साधारण ही था।

(4) सांस्कृतिक दशा- ह्वेनसांग भारत में बौद्ध-ग्रन्थों की खोज करने आया था। उसने दो वर्ष तक नालन्दा विश्वविद्यालय में अध्ययन में बिताये थे। वहाँ की व्यवस्था एवं नियन्त्रण से वह बहुत प्रभावित हुआ था। नालन्दा विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में वह कहता है, 'अत्यन्त उच्चकोटि की प्रतिभा तथा योग्यता वाले कई हजार भिक्षु यहाँ रहते हैं। उनका यश दूर-दूर देशों तक फैल चुका है। उनका चरित्र पवित्र और दोषरहित है। वे नैतिक नियमों का पालन कड़ाई से करते हैं। मठ के निग्रम बहुत कड़े हैं। उन्हें सब भिक्षुओं को पालन करना पड़ता है। वे सुबह से रात्रि तक वाद-विवाद नें व्यस्त रहते हैं। जो त्रिपिटिक की समस्याओं पर वाद-विवाद नहीं कर सकते, वे शर्म से अपने मुँह छिपाते हैं। यदि बाहर से कोई वाद-विवाद के लिए यहाँ आता है तो प्रवेशद्वार पर नियुक्त प्रहरी उससे प्रश्न पूछते हैं। जो इन प्रश्नों का ठीक उत्तर नहीं दे पाते, उसका प्रवेश नहीं हो पाता है। नालन्दा में प्रवेश पाने की शर्त कड़ी है और उसके लिए अधिक योग्यता की आवश्यकता है। विद्यार्थियों के पोषण के लिए 200 ग्राम लगे हैं। धुरन्धर पण्डित तथा विद्वान् नालन्दा में अध्यापन कार्य करते हैं। यहाँ लगभग 100 व्याख्यान स्थान हैं। कक्षा में विद्यार्थियों की उपस्थिति आवश्यक है। इसमें लगभग 1,000 अध्यापक और 10, 000 विद्यार्थी रहते हैं।' विश्वविद्यालय का उद्देश्य था- ''क्रोध को क्षमा से जीतो, दुष्ट आदमी को अच्छे कार्यों से जीतो, कृपण को अधिक दान देकर जीतो तथा असत्य बोलने वाले को सत्य से जीतो।''

ह्वेनसांग के समय बौद्धधर्म की काफी अवनति हो चुकी थी। पूर्व में बौद्ध-धर्म कुछ अवश्य प्रचलित था। अवनति-अवस्था में ही ह्वेनसांग को 20 लाख भिक्षु मिले। ह्वेनसांग लिखता है कि अनेक ब्राह्मण मन्दिर हैं। चीनी यात्री भारतीयों के चरित्र के विषय में अच्छी धारणा लेकर गया। वह कहता है, ''यद्यपि वे विशेष गम्भीर नहीं, फिर भी वे सच्चे और

ईमानदार हैं। धन के मामले में किसी से छलप्रपंच नहीं करते तथा व्यवहार में भी बड़ी सच्चाई है तथा उनका व्यवहार अत्यन्त मधुर एवं मृदुल है।"

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ
(Important Dates & Events)

(1) 590 ई० - सम्राट् हर्षवर्धन का जन्म।
(2) 606 ई० - हर्षवर्धन का राज्यारोहण।
(3) 629 ई० - चीनी यात्री ह्वेनसांग का भारत आगमन।
(4) 643 ई० - हर्ष द्वारा कन्नौज में धार्मिक सभा का आयोजन।
(5) 643 - 44 ई० - हर्ष द्वारा प्रयाग में छठीं पंचवर्षीय महामोक्ष परिषद (दान सभा) का आयोजन।
(6) 647 ई० - हर्ष की मृत्यु।
(7) 664 ई० - चीनी यात्री ह्वेनसांग की मृत्यु।
(8) 606 - 647 ई० - हर्ष का शासनकाल।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. ह्वेनसांग की यात्रा का विवरण देते हुए बतलाइए कि उसने तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा के विषय में क्या लिखा है ? (1958)
2. ह्वेनसांग की भारत-यात्रा का संक्षिप्त विवरण दीजिए। भारत के धर्म, शासन-प्रबन्ध तथा सामाजिक जीवन पर उसने क्या प्रकाश डाला है। ? (1960)
3. हर्ष की दिग्विजय तथा उसकी अन्य कृतियों का मूल्यांकन कीजिए। वह वर्धन वंश का सबसे महान् सम्राट् क्यों माना जाता है ? (1961)
4. विजेता एवं शासक के रूप में हर्ष की कृतियों का उल्लेख कीजिए। धर्म और साहित्य के क्षेत्रों में उसके काल में क्या प्रगति हुई ? (1963)
5. हर्ष की विजयों का उल्लेख करते हुए उसकी शासन-प्रणाली का वर्णन कीजिए। (1965)
6. हर्ष-वर्धन के शासन-काल का संक्षिप्त इतिहास लिखिए। (1971)
7. शासक के रूप में हर्ष की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए। (1975)
8. एक विजेता और प्रशासक के रूप में हर्ष का मूल्यांकन कीजिए। (1985)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. 'हर्ष एक महान् भारतीय सम्राट् था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
2. 'हर्ष सद्कार्यों के लिए निद्रा और भोजन सब भूल गया था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
3. 'शासक और विजेता के रूप में हर्ष महान् था ही किन्तु धार्मिक कार्यों में वह उससे कहीं अधिक महान् था।' इस कथन की सत्यता सिद्ध कीजिए।

4. 'हर्ष में समुद्रगुप्त और अशोक दोनों के ही गुणों का समावेश है।'' इस कथन की व्याख्या कीजिए। (1977, 82, 86, 98)
5. 'हर्ष एक महान् शासक था जिसे ह्वेनसांग ने महानतर बना दिया।'' इस कथन के आलोक में ह्वेनसांग द्वारा वर्णित भारत की दशा का उल्लेख कीजिए।
6. 'हर्ष उत्तरी भारत का अन्तिम हिन्दू सम्राट् था जिसने समस्त आर्यावर्त पर शासन किया।' इस कथन की विवेचना कीजिए।
7. 'हर्षवर्धन एक वीर योद्धा तथा विद्या और साहित्य का महान् संरक्षक था।' इस कथन की पुष्टि कीजिए। (1990)
8. 'इसमें कोईसन्देह नहीं कि शासक, कवि तथा धर्म समुत्साही के रूप में हर्ष को भारतीय इतिहास में एक उच्च स्थान प्राप्त है।' इस कथन की पुष्टि कीजिए।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. छठीं शताब्दी के उत्तरी भारत के चार प्रमुख राज्यों का वर्णन कीजिए।
2. कन्नौज की धार्मिक सभा से आप क्या समझते हैं ?
3. प्रयाग की 'महामोक्षपरिषद' का उल्लेख कीजिए।
4. ह्वेनसांग ने हर्ष के सम्बन्ध में क्या लिखा है ?
5. हर्ष महान् सम्राट् क्यों कहा जाता है ?
6. हर्ष के समकालीन दो प्रमुख साहित्यिक ग्रन्थों का ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन कीजिए। (1997)

(घ) संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए-

(1) राज्यश्री, (2) शशांक, (3) ह्वेनसांग (1981), (4) ध्रुवसेन द्वितीय।

14
राजपूत-काल

"मानव जाति के इतिहास में केवल राजपूत ही एक ऐसी जाति थी, जो बर्बरता के आघातों का अदम्य उत्साह से सामना कर रही थी और प्रहारों से भूमि स्पर्श करके फिर उत्साह से ऊपर उठ सकती थी और आपदाओं का सहर्ष स्वागत करती थी।"

- कर्नल टॉड

राजपूतों की उत्पत्ति

राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इतिहासकारों में बड़ा मतभेद है। भारतीय इतिहासकारों के अनुसार राजपूत भारत के प्राचीन क्षत्रियों की सन्तान हैं और पाश्चात्य इतिहासकार विदेशियों की सन्तान स्वीकार करते हैं। वैसे 'राजपूत' शब्द का प्रयोग हर्ष की मृत्यु के बाद हुआ। इससे पूर्व कहीं-कहीं 'राजपुत्र' शब्द का प्रयोग अवश्य मिलता है, किन्तु वह किसी जाति-विशेष के लिए प्रयोग नहीं किया जाता था, बल्कि यह राजकुमार अथवा राजवंश का सूचक था, किन्तु कालान्तर में क्षत्रिय वर्ग के लिए ही राजपूत शब्द का प्रयोग होने लगा। इस प्रकार क्षत्रिय वर्ग अपनी शौर्यता एवं वीरता के कारण ही राजपूत नाम से प्रसिद्ध हुआ। राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध के नीचे विभिन्न सिद्धान्तों का उल्लेख किया जा रहा है :

(1) भारतीय सिद्धान्त- प्राचीन अनुश्रुतियों के अनुसार राजपूत लोग प्राचीन क्षत्रियों-सूर्य और चन्द्रवंशी क्षत्रियों के वंशज थे, क्योंकि भारतीय आर्यों की दो प्रमुख शाखायें-सूर्यवंश और चन्द्रवंश के नाम से प्रसिद्ध थीं। कालान्तर में एक तीसरी शाखा 'यदुवंश' के नाम से विख्यात हुई। पं० गौरीशंकर ओझा, श्री सी०पी० वैद्य तथा श्री वेद्व्यास राजपूतों को सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी मानते हैं। आगे चलकर इन प्रमुख जातियों की अनेक उप-जातियाँ बन गयीं और उन जातियों के प्रमुख व्यक्तियों के नाम पर ही वंश चलने लगे। आज राजपूतों में वे रीति-रिवाज प्रचलित हैं जो विदेशियों के भारत आने के पूर्व प्राचीन क्षत्रियों में प्रचलित थे।

(2) अग्नि-कुण्ड सिद्धान्त- एक अनुश्रुति के आधार पर राजपूतों के उच्च वर्गों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से हुई। पृथ्वीराजरासो में एक कथा इस प्रकार वर्णित है कि जब परशुराम ने क्रोधित होकर समस्त क्षत्रियों का विनाश कर दिया तो सर्वत्र अराजकता फैल गई। देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की और ब्रह्मा ने आबू पर्वत पर 20 दिनों तक एक महान यज्ञ का आयोजन किया। उसी यज्ञाग्नि-कुण्ड से परमार, चालुक्य (सोलंकी), प्रतिहार तथा चाहमान की उत्पत्ति हुई। यह धारणा असंगत और कपोल-कल्पित लगती है क्योंकि इस कथा का वर्णन सोलहवीं शताब्दी में मिलता है जबकि इन जातियों का इतिहास इस काल से लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। ऐसा लगता है कि कालान्तर में इस अनुश्रुति को पृथ्वीराजरासो में जोड़ दिया गया, क्योंकि पृथ्वीराजरासो की हस्तलिखित किसी प्रति में उल्लेख नहीं मिलता। अतः इस अनुश्रुति में सत्यता का अभाव है।

(3) विदेशी उत्पत्ति का सिद्धान्त- राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहासकार टॉड तथा उनके समर्थकों के अनुसार राजपूतों की उत्पत्ति मध्य एशिया से आये शक और सिथियन

जाति से हुई। उनके अनुसार जो राजपूत सूर्यवंश से अपने को सम्बन्धित करते हैं तथा सूर्य की उपासना करते हैं वे विदेशियों की सन्तान थे और जो राजपूत नाग की पूजा करते हैं वे भारत की मूल जातियों के वंशज हैं। टॉड साहब की धारणा न्याय- संगत नहीं है और इसे स्वीकार करना भी राजपूत जाति के साथ घोर अन्याय करना है। यदि हम इस धारणा को स्वीकार भी कर लें कि राजपूत विदेशियों की सन्तान हैं तो प्रश्न यह उठता है कि प्राचीन क्षत्रिय जाति का क्या हुआ और वह कहाँ विलीन हो गई? अतः राजपूत जाति को विदेशियों की सन्तान मानना सर्वथा अनुचित है।

(4) मिश्रित सिद्धान्त- प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपनी एक अन्य ढंग की धारणा का प्रतिपादन किया है। उनकी धारणा है कि दक्षिण भारत में गोंड, भार आदि जंगली जातियाँ निवास करती थीं। इन्हीं जातियों से चन्देल, राठौर और गहड़वाल आदि जातियों की उत्पत्ति हुई, जो अपने को सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी क्षत्रिय मानने लगे और ब्राह्मणों द्वारा हिन्दू- धर्म में दीक्षित किये गये। इस धारणा को स्वीकार करने में वही विकट समस्या उत्पन्न होती है कि भारत के प्राचीन क्षत्रियकुलों का क्या हुआ ? इस सम्बन्ध में यह अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि समय- समय पर जो विदेशी जातियाँ भारत में आईं, वे मूल जातियों से इतनी घुल- मिल गयीं कि मूल जाति से उनका विभेद करना कठिन हो गया।

अन्त में, निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि राजपूतों के विभिन्न राजवंशों की उत्पत्ति प्राचीन क्षत्रियों के कुलों से ही हुई।

उत्तरी भारत के प्रमुख राजपूत राजवंश

उत्तरी भारत में जिन प्रमुख राज्यों की स्थापना हुई उनमें गुर्जर प्रतीहार वंश, कन्नौज का गहड़वाल वंश, दिल्ली व अजमेर का चौहानवंश, बुन्देलखण्ड का चन्देलवंश, मालवा का परमार वंश, बंगाल का पाल व सेन वंश, गुजरात का सोलंकी वंश तथा मध्य भारत का कलचुरी वंश आदि प्रमुख थे।

प्रतीहार वंश

वंश- परिचय- प्रतीहार कौन थे, इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में भारी मतभेद है। कुछ इतिहासकार इन्हें विदेशी बतलाते हैं और कुछ इतिहासकार इन्हें सूर्यवंशी मानते हैं। अलवर- अभिलेख से विदित होता है कि वे प्रसिद्ध गुर्जरों की एक शाखा थे और वे मध्य- एशिया की उन जातियों में से एक थे जो गुप्त- साम्राज्य के पतन के पश्चात हूणों के साथ पश्चिमोत्तर मार्ग से भारत में प्रविष्ट हुए थे। गुर्जरों की शाखा का होना राष्ट्रकूट अभिलेखों से भी प्रमाणित है। स्वयं प्रतीहारों के अभिलेख उन्हें सूर्यवंशी क्षत्रिय घोषित करते हैं और उनका सम्बन्ध रामचन्द्र के भाई लक्ष्मण के वंश से स्थापित करते हैं। इस कारण प्रतीहार 'रघुवंशी' के नाम से विख्यात हुए। कुछ इतिहासकारों का कथन है कि प्रतीहार भारत

उत्तरी भारत के प्रमुख राजपूत राजवंश

1. प्रतीहार वंश
2. गहड़वाल वंश
3. चौहान वंश
4. चन्देल वंश
5. पाल वंश
6. परमार वंश
7. सेन वंश
8. सोलंकी वंश
9. कलचुरी वंश

के मूल निवासी थे और उन्होंने गुर्जर प्रदेश (उज्जैन) में अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित कर ली थी। अधिकांश इतिहासकार प्रतीहारों को भारत का मूल निवासी ही स्वीकार करते हैं।

प्रतीहार वंश के शासक- इस वंश का प्रथम शासक नागभट्ट प्रथम था। इसका साम्राज्य राजपूताना के पूर्वी भाग तक विस्तृत था। नागभट्ट प्रथम के उपरान्त नागभट्ट द्वितीय (लगभग 800-833) गद्दी पर आसीन हुआ। वह महत्वाकांक्षी तथा साम्राज्यवादी शासक था। उसने शीघ्र ही कन्नौज के शासक चक्रायुध को परास्त करके कन्नौज पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और उसे अपने साम्राज्य की राजधानी बनाया। उसने बंगाल के शासक धर्मपाल को मुंगेर के निकट बुरी तरह पराजित किया। उसकी शक्ति से भयभीत होकर आन्ध्र, सिन्धु, विदर्भ तथा कलिंग के शासकों ने उससे सहायता तथा मैत्री की प्रार्थना की और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

प्रतीहार वंश के प्रमुख शासक

1. नागभट्ट प्रथम
2. नागभट्ट द्वितीय
3. रामभद्र
4. मिहिरभोज
5. महेन्द्रपाल
6. महीपाल
7. भोज द्वितीय
8. देवपाल
9. विजयपाल
10. राज्यपाल
11. यशपाल

नागभट्ट द्वितीय की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र **रामभद्र** (833-836) गद्दी पर आसीन हुआ। वह बड़ा निर्बल तथा अयोग्य शासक था। परन्तु उसका उत्तराधिकारी **मिहिरभोज** (लगभग 836-85) बड़ा योग्य एवं प्रतिभाशाली शासक हुआ। उसने बुन्देलखण्ड तथा मारवाड़ आदि राज्यों पर विजय प्राप्त की तथा दक्षिण में नर्मदा नदी तक अपने साम्राज्य को विस्तृत किया। उसके सिक्कों से विदित होता है कि उसने **'आदिवराह'** की उपाधि धारण की। अरबी यात्री सुलेमान ने उसके शासन-प्रबन्ध तथा उसकी सैन्य-शक्ति की प्रशंसा की है।

मिहिरभोज की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र **महेन्द्रपाल** (लगभग 885-910) गद्दी पर आसीन हुआ। वह एक महत्वाकांक्षी तथा साम्राज्यवादी शासक था। अभिलेखों से प्रमाणित है कि उसने मगध तथा उत्तरी बंगाल पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। जूनागढ़ के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि दक्षिण सौराष्ट्र उसके राज्य में सम्मिलित था। उसके राज्यकाल में काश्मीर के राजा शंकरवर्मन ने उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया और राज्य के पश्चिमी प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। महेन्द्रपाल साहित्य तथा कला का संरक्षक था। उसकी राज-सभा का सबसे बड़ा विद्वान **'राजशेखर'** था जिसके **कर्पूरमंजरी, बाल रामायण, बाल भारत** तथा **काव्य-मीमांसा** आदि ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं।

महेन्द्रपाल की मृत्यु के पश्चात भोज द्वितीय सिंहासन पर बैठा। उसके शासन की घटनाओं का हमें ज्ञान नहीं है। इसके बाद महीपाल (लगभग 912-944) कन्नौज की गद्दी पर आसीन हुआ। वह अयोग्य शासक था। उसके शासन-काल में राष्ट्रकूटों ने कन्नौज पर आक्रमण किया। चन्देल सम्राट की सहायता से किसी प्रकार वह अपने साम्राज्य की रक्षा कर सका। परन्तु उसकी निर्बलता से लाभ उठाकर बंगाल के पालवंशीय शासकों ने कन्नौज पर आक्रमण करके सोन नदी तक के प्रदेशों को छीन लिया। उसके साम्राज्य में कलिंग, केरल, कुन्तल, रमठ, यूरल तथा मेकल आदि प्रान्त सम्मिलित थे।

महीपाल की मृत्यु के पश्चात प्रतीहार वंश का पतन प्रारम्भ हो गया। **देवपाल** तथा **विजयपाल** क्रमशः निर्बल शासक सिद्ध हुए। विजयपाल का उत्तराधिकारी राज्यपाल था जिसके राज्य- काल (1019) में महमूद गजनवी ने कन्नौज पर आक्रमण किया और कन्नौज को खूब लूटा। अन्त में गहड़वाल वंश के शासक चन्द्रदेव ने इस वंश के अन्तिम शासक **यशपाल** की हत्या करके कन्नौज पर अधिकार कर लिया वहाँ 'गहड़वाल वंश' की स्थापना की।

गहड़वाल वंश

वंश- परिचय- गहड़वाल कौन थे, इस सम्बन्ध में कुछ ठीक- ठीक निश्चित कहना अत्यन्त कठिन है। विद्वानों का मत है कि वे राठौरों की एक शाखा थे। कुछ इतिहासकारों के मतानुसार इस वंश का उदय 11वीं शताब्दी में मिर्जापुर की पहाड़ियों में हुआ।

गहड़वाल वंश के प्रमुख शासक- इस वंश का संस्थापक तथा सर्वप्रथम राजा चन्द्रदेव था, जिसने वाराणसी को अपनी राजधानी बनाया। 1085 में उसने गुर्जर प्रतीहारों का अन्त करके कन्नौज पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। लगभग 1104 में इस महान शासक का देहावसान हो गया। चन्द्रदेव के उत्तराधिकारी क्रमशः **मदनपाल** (1104-14), **गोविन्दचन्द्र** (1114-54) तथा **विजयचन्द्र** (1154-70) हुए। गोविन्दचन्द्र प्रतिभाशाली शासक था। उसने मगध के पश्चिमी प्रदेश तथा मालवा के पूर्वी प्रदेश पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उसका यश दूर- दूर के देशों में फैल गया। उसके शासन- काल में लक्ष्मीधर ने 'कृत्यकल्पतरु' नामक ग्रन्थ की रचना की जो कानून का एक अमूल्य ग्रन्थ माना जाता है। विजयचन्द्र भी अपने पिता गोविन्दचन्द्र के समान योग्य तथा प्रतिभाशाली शासक था। **'पृथ्वीराजरासो'** नामक ग्रन्थ में उसकी विजयों का उल्लेख मिलता है। एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसके शासन- काल में विग्रहराय अथवा बीसलदेव ने दिल्ली पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस वंश का अन्तिम शक्तिशाली शासक जयचन्द था जो 1170 में कन्नौज का सम्राट बना। उसकी दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज तृतीय से घोर शत्रुता थी, क्योंकि पृथ्वीराज ने उसकी पुत्री संयोगिता का हरण करके विवाह कर लिया था। जयचन्द इस अपमान को भूल न सका और अपमान का बदला लेने के लिए उसने मुहम्मद गोरी को भारत पर आक्रमण करने के लिये आमन्त्रित किया। फलतः 1192 में तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज पराजित हुआ। अन्त में 1194 में मुहम्मद गोरी ने जयचन्द को भी परास्त किया। युद्ध- स्थल में जयचन्द वीरगति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार सौ वर्ष शासन करने के पश्चात गहड़वाल वंश का अन्त हो गया और उसका राज्य तुर्की साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

गहड़वाल वंश के प्रमुख शासक

1. चन्द्रदेव
2. मदन पाल
3. गोविन्दचन्द्र
4. विजयचन्द्र
5. जयचन्द्र

चौहान वंश

वंश- परिचय- **'हम्मीर महाकाव्य'** और **'पृथ्वीराजरासो'** के अनुसार चौहान अपने पूर्वज 'चाहमान' के वंशज थे जिसकी उत्पत्ति सूर्य से हुई थी। चारण अनुश्रुतियों के अनुसार चौहानों

की उत्पत्ति अग्नि- कुण्ड से हुई और उन्होंने तुर्कों से भारत की रक्षा के लिए अग्नि के सम्मुख शपथ ली। अधिकांश भारतीय इतिहासकार चौहानों को प्राचीन भारतीय सन्तान मानते हैं। इस वंश का राज्य जोधपुर और जयपुर के मध्यवर्ती साँभर प्रदेश तक विस्तृत था। कालान्तर में उन्होंने अजमेर में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली।

चौहान वंश के प्रमुख शासक- इस वंश का प्रथम शक्तिशाली शासक विग्रहराज द्वितीय था जिसने गुजरात के चालुक्य राजा मूलराज प्रथम को परास्त करके नर्मदा नदी तक के प्रदेशों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। इसके उत्तराधिकारी क्रमशः **अजयराज** (1105-1130) तथा **अर्णोराज** (1130-1150) शासक हुए। अजयराज ने अजमेर नगर की स्थापना की और मालवा के परमार राजाओं से युद्ध किया। अर्णोराज ने मुस्लिम आक्रमणकारियों को पराजित किया। इस वंश का सबसे बड़ा प्रतापी तथा महत्वपूर्ण सम्राट **विग्रहराज चतुर्थ** अथवा **बीसलदेव** (1153-64) था जिसने तोमरों से दिल्ली छीन ली थी। बीसलदेव विद्वानों का संरक्षक था तथा उसके दरबार में अनेक विद्वानों को प्रश्रय प्राप्त था।

चौहान वंश के प्रमुख शासक

1. विग्रहराज द्वितीय
2. अजयराज
3. अर्णोराज
4. विग्रहराज चतुर्थ (बीसलदेव)
5. पृथ्वीराज तृतीय

इस वंश का अन्तिम तेजस्वी तथा शक्तिशाली सम्राट **राय पिथौरा** अथवा **पृथ्वीराज तृतीय** (1179-92) था जिसका मुहम्मद गोरी के साथ युद्ध हुआ। पृथ्वीराज ने 1191 में तराइन के प्रथम युद्ध में मुहम्मद गोरी को बुरी तरह पराजित किया। दूसरे वर्ष ही (1192) एक विशाल सेना के साथ मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज पर पुनः आक्रमण किया। यह युद्ध भी तराइन के मैदान में ही हुआ। इस बार पृथ्वीराज पराजित हुआ और जीवित पकड़ लिया गया। मुसलमान उसे अजमेर ले गये, जहाँ कुछ समय उपरान्त किसी विद्रोह के अपराध में उसका वध कर दिया गया। पृथ्वीराज की पराजय से चौहानों का ही नहीं, समस्त हिन्दू स्वातन्त्र्य का सूर्य लगभग आठ सौ वर्ष के लिए अस्त हो गया और दिल्ली तथा अजमेर पर मुसलमानों की राजसत्ता स्थापित हो गयी।

चन्देल वंश

वंश- परिचय- चन्देलों की उत्पत्ति का इतिहास अन्धकारमय है। एक अनुश्रुति के अनुसार चन्देल 'चन्द्रवंशी' हैं। इतिहासकार स्मिथ के अनुसार चन्देल भारों अथवा गोंडों की जाति के भारतीय आदिवासी हैं और उनका मूल स्थान छतरपुर रियासत में केन नदी के तट पर मनियागढ़ था। प्रारम्भ में वे प्रतीहार राजाओं के सामन्त थे।

चन्देलवंश के प्रमुख शासक- इस वंश का प्रथम महत्वपूर्ण स्वतंत्र शासक यशोवर्मन था। उसने कालिंजर के दुर्ग को विजय किया और महोबा को अपनी राजधानी बनाकर वहीं से शासन

चन्देल वंश के प्रमुख शासक

1. यशोवर्मन
2. धंग
3. गण्ड
4. कीर्तिवर्मन
5. मदनवर्मन
6. परमाल

करने लगा। उसने कन्नौज के राजा पर भी विजय प्राप्त की और वहाँ से एक विष्णु प्रतिमा छीनकर ले आया जिसे उसने अपने खजुराहो में एक विशाल मंदिर बनवाकर प्रतिष्ठित किया। यशोवर्मन ने 930 से 950 तक शासन किया।

यशोवर्मन के पश्चात उसका पुत्र धंग गद्दी पर आसीन हुआ। उसने उत्तरी भारत के प्रयाग, कालिंजर तथा ग्वालियर के प्रदेशों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उसने दक्षिण भारत के राजाओं से कई युद्ध किए और खजुराहो के मन्दिरों का निर्माण करवाया। धंग ने 950 से 1002 तक शासन किया।

'धंग' के पश्चात उसका पुत्र गण्ड (1002-17) गद्दी पर आसीन हुआ। 1002 ई० में महमूद के आक्रमण के विरुद्ध उसने आनन्दपाल की सहायता की थी। जब महमूद गजनवी ने कन्नौज पर आक्रमण किया तो वहाँ का शासक राज्यपाल अपना राज्य छोड़कर भाग गया। इससे क्रुद्ध होकर गण्ड के युवराज विद्याधर (1000-1021) को एक सेना देकर राज्यपाल को दण्ड देने के लिये भेजा।विद्याधर ने युद्धभूमि में राज्यपाल की हत्या कर दी। जब यह समाचार महमूद गजनवी को ज्ञात हुआ तो उसने 1022 में गण्ड पर आक्रमण किया। उसे पराजित कर अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया।

'गण्ड' के पश्चात कीर्तिवर्मन इस वंश का शक्तिशाली शासक हुआ। उसने कीरत नगर नामक नगर का निर्माण करवाया जिसके मध्य कीरत सागर नामक झील का निर्माण किया गया। उसने चेदि राजा को परास्त किया। उसके दरबार में अनेक विद्वानों को आश्रय प्राप्त था। कीर्तिवर्मन ने 1070 से 1100 तक शासन किया।

इस वंश का अन्य शक्तिशाली राजा **मदनवर्मन** हुआ जिसने 1129 से 1163 तक शासन किया। कहा जाता है कि उसने गुजरात के चालुक्य राजा सिद्धराज जयसिंह को पराजित किया था। इस वंश का अन्तिम शासक **परमाल** (1165-1203) था जिसने 1203 में कुतुबुद्दीन ऐबक की अधीनता स्वीकार कर ली और इस प्रकार चन्देलों की स्वतन्त्र सत्ता का अन्त हो गया।

चन्देल नगर और झील- चन्देलों के प्रमुख नगर खजुराहो, कालिंजर और महोबा थे। इन नगरों के सम्बन्ध में इतिहासकार **स्मिथ** लिखते हैं, 'इनमें से पहला नगर अपने सुन्दर तथा विशाल मन्दिरों के साथ इस राज्य की धार्मिक, दूसरा अपने दुर्ग के साथ इसकी सैनिक और तीसरा राजप्रासाद के साथ- साथ इसकी नागरिक राजधानी थी।' चन्देल शासकों ने बुन्देलखण्ड को मन्दिरों तथा पक्की झीलों से अलंकृत कर दिया। महोबा में 'कीरत सागर' तथा 'मदन सागर' झीलें दर्शनीय हैं।

परमार वंश

वंश- परिचय- परमार राजपूत 'पवार' के नाम से प्रसिद्ध हैं। साहित्य में इस वंश की उत्पत्ति अग्नि- कुण्ड से मानी गई है। कुछ विद्वानों के अनुसार परमार प्राचीन भारतीय क्षत्रियों की सन्तान थे और उन्हीं राजवंशों से सम्बन्धित थे जिन्होंने मुस्लिम आक्रमणों से देश की रक्षा के लिए अग्नि के सम्मुख शपथ ग्रहण की थी। अहमदाबाद जिले से प्राप्त एक अभिलेख के अनुसार, 'परमार राष्ट्रकूट जाति के थे।'' नवीं शताब्दी में उन्होंने आबू पर्वत के निकट अपने राज्य की स्थापना की। इस वंश का संस्थापक उपेन्द्र अथवा कृष्णराज राष्ट्रकूटों का सामन्त था।

श्रीहर्ष- उपेन्द्र का उत्तराधिकारी श्रीहर्ष प्रतिभाशाली शासक था जिसने सम्राट की उपाधि धारण की। फलस्वरूप राष्ट्रकूटों तथा परमारों में भीषण युद्ध हुआ जिसमें श्रीहर्ष को विजय प्राप्त हुई। उसने हूण-जाति के एक सरदार से भी युद्ध किया था।

परमार वंश के प्रमुख शासक

1. उपेन्द्र अथवा कृष्णराज
2. श्रीहर्ष
3. मुञ्ज
4. भोज
5. जयसिंह
6. उदयादित्य

मुंज (973-995)- श्रीहर्ष के पश्चात उसका यशस्वी पुत्र मुंज परमारों की गद्दी पर आसीन हुआ। वह इस वंश का प्रतिभाशाली सम्राट था। उसने लाट, चोल, कलचुरी, केरल तथा कर्नाटक के शासकों को पराजित किया तथा 'उत्पलराज', 'श्रीवल्लभ' तथा 'अमोघवर्ष' आदि उपाधियाँ धारण कीं। उसने चालुक्य तैलप द्वितीय को छः बार युद्ध में पराजित किया, परन्तु सातवीं बार वह पराजित होकर बन्दी बना लिया गया और उसकी हत्या कर दी गई। मुंज स्वयं उच्चकोटि का विद्वान तथा विद्वानों का आश्रयदाता था। उसके दरबार में पद्मगुप्त, धानिक भट्ट, धनञ्जय, हलायुध जैसे प्रकाण्ड विद्वानों को प्रश्रय प्राप्त था। मुंज के पश्चात सिन्धुराज (995-1018) शासक हुआ। उसने तैलप द्वितीय के पुत्र और उत्तराधिकारी सत्याश्रम पर आक्रमण करके अपने राज्य के खोये प्रदेश पर पुनः अधिकार कर लिया। उसे लाट और गुजरात से भी युद्ध करना पड़ा।

भोज (1018-1060)- इस वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक राजा भोज था। उसनें कल्याणी के चालुक्यों को पराजित किया। इसके पश्चात उसने कलचुरी राजा गांगेयदेव को पराजित किया। उसने उत्तर प्रतीहारों को पराजित करके बिहार पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इन विजयों के होते हुए भी उसके अन्तिम दिन गौरवपूर्ण न रहे। चालुक्य राजा सोमेश्वर प्रथम आहवमल्ल ने उसे पराजित करके मालवा और उसकी राजधानी धार को बुरी तरह लूटकर विनष्ट कर दिया। लेकिन भोज ने शीघ्र ही अपनी खोई हुई शक्ति अर्जित कर ली। उसने भीम प्रथम की अनुपस्थिति में अह्निलवाड़ को खूब लूटा। फलतः भीम प्रथम ने कलचुरी राजा लक्ष्मीकर्ण की सहायता से दो ओर से राजा भोज के राज्य पर भीषण आक्रमण किया। अभी युद्ध चल ही रहा था कि भोज की मृत्यु हो गई। भोज ने लगभग 45 वर्षों तक शासन किया। मैरुतुंग के अनुसार भोज ने 55 वर्ष सात महीने और तीन दिन तक शासन किया।

भोज अपने विद्या-प्रेम तथा अपनी दानशीलता के कारण विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इसके द्वारा रचित अट्ठाईस ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं जिनमें 'सरस्वती कण्ठाभरण', 'शृङ्गारप्रकाश', 'प्राकृत व्याकरण', 'पातंजलयोगसूत्रवृत्ति', 'कूर्मशतक', 'चम्पूरामायण', 'श्रृंगारमंजरी', 'समरांगणसूत्रधार', 'युक्तिकल्पतरु', 'तत्वप्रकाश', 'भुजबलनिबन्ध', 'राजमृगांक', 'नाममालिका' और 'शब्दानुशासन' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। एक अभिलेख में उसे 'कविराज' कहा गया है। उसने अपनी राजधानी धार में एक संस्कृत का विद्यालय 'भोजशाला' के नाम से बनवाया था। उसके दरबार में अनेक कवियों तथा साहित्यकारों को आश्रय प्राप्त था। वह शैव मतावलम्बी था। उदयपुर के अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने अपने राज्य में अनेक विशाल मन्दिरों का निर्माण करवाया था। उसने वर्तमान भोपाल के दक्षिण में 'भोजपुर'नामक नगर की स्थापना की थी।

भोज की मृत्यु के उपरान्त क्रमशः जयसिंह और उदयादित्य शासक हुए। उदयादित्य इस वंश का अन्तिम स्वतन्त्र शासक था जिसने 1094[1] तक शासन किया। अन्त में अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा पर आक्रमण करके उसे अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

पाल वंश

पाल कौन थे- पाल वंश के राजा किसी पौराणिक वीर को अपना पूर्वज नहीं मानते। खालिमपुर में मिले एक लेख से ज्ञात होता है कि उनका पूर्वज वप्यात का पिता दयित विष्णु था। इससे जान पड़ता है कि यह वंश कोई उच्च वंश न रहा हो। इस वंश के प्रारम्भिक अभिलेखों में इस बात का उल्लेख नहीं मिलता है कि यह वंश प्राचीन क्षत्रिय कुल से सम्बन्धित था। इस वंश के सभी राजाओं के नामों के अन्त में 'पाल' शब्द जुड़ा होने के कारण इस वंश का नाम पाल वंश पड़ गया।

गोपाल- हर्ष की मृत्यु के उपरान्त बंगाल में फैली अव्यवस्था तथा अराजकता से लाभ उठाकर गोपाल नामक एक व्यक्ति ने मगध, मिथिला और बंगाल पर अधिकार कर पाल वंश की नींव डाली। गोपाल के पिता का नाम वप्यात था जो सेनानी के रूप में प्रसिद्ध था। गोपाल की विजयों तथा साम्राज्यविस्तार के सम्बन्ध में हमें कुछ भी उपलब्ध नहीं है। इतना निश्चित है कि उसने राज्य में शान्ति स्थापित की। तारानाथ के अनुसार गोपाल ने ओदन्तपुर (आधुनिक बिहारशरीफ) के विशाल विहार का निर्माण कराया। गोपाल ने सम्भवतः 765 से 770 तक राज्य किया। कुछ विद्वानों के अनुसार उसने 750 से 770 तक राज्य किया।

धर्मपाल- गोपाल का उत्तराधिकारी उसका पुत्र धर्मपाल गद्दी पर आसीन हुआ। उसने 770 से 810 तक राज्य किया। वह बहुत महत्वाकांक्षी था। उसने कन्नौज के शासक इन्द्रायुध को गद्दी से उतार कर उसके स्थान पर चक्रायुध को कन्नौज का अधिपति बनाया। उसके इस कृत्य का समर्थन भोज, मत्स्य, मद्र, कुरु, यदु, यवन, अवंती, गान्धार आदि के राजाओं ने किया। अभिलेखों से प्रमाणित है कि प्रतीहार राजा वत्सुराज ने तथा राष्ट्रकूट राजा ध्रुव प्रथम ने उसे परास्त किया। उसी समय नागभट्ट द्वितीय प्रतीहार ने चक्रायुध से कन्नौज छीनकर उस पर अधिकार जमा लिया। जब धर्मपाल अपने संरक्षित चक्रायुध की सहायता के लिये कन्नौज की ओर बढ़ा तो मुंगेर के युद्ध में नागभट्ट ने उसे परास्त किया। इस प्रकार प्रतीहारों की बढ़ती हुई शक्ति ने धर्मपाल की महत्वाकांक्षाओं पर पानी फेर दिया।

पाल वंश के प्रमुख शासक

1. गोपाल
2. धर्मपाल
3. देवपाल
4. नारायणपाल
5. महीपाल प्रथम
6. नयपाल
7. रामपाल

धर्मपाल अपने पूर्वजों की भाँति बौद्धधर्म का अनुयायी था। उसने बिहार में भागलपुर के समीप गंगा के किनारे विक्रमशिला नामक विहार बनवाया जो कालान्तर में नालन्दा की भाँति एक महान विश्वविद्यालय बन गया। तारानाथ के अनुसार उसने 64 वर्ष तक राज्य किया, किन्तु

---

1. मध्यप्रदेश के देवास नामक स्थान पर एक ताम्रपत्र अभी हाल में ही मिला है। इसमें उदयादित्य की मृत्यु-तिथि 1094 अंकित है। इसके पूर्व इतिहासकारों ने मृत्यु 1080 या 1088 माना था।

खालिमपुर के अभिलेख के अनुसार उसने केवल 32 वर्ष राज्य किया। इससे हम अनुमानतः उसके शासन-काल को 40 वर्ष मान सकते हैं जो सम्भवतः सही है।

देवपाल- धर्मपाल की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र देवपाल गद्दी पर आसीन हुआ। वह एक महान विजेता और प्रतिभावान शासक था। उसने 810 से 850 तक राज्य किया। **बादल- स्तम्भ- लेख** के अनुसार उसने अपने मंत्रियों- धर्मपाणि तथा केदार मिश्र की सहायता से उत्कल जाति को मिटा दिया। हूणों का दम्भ चूर किया तथा द्रविड़ राजाओं को परास्त किया। उसने अपने सेनापति लवसेन की सहायता से आसाम और उड़ीसा पर अधिकार स्थापित कर लिया। देवपाल का गुर्जर शत्रु सम्भवतः मिहिरभोज था जिसने पूर्व की ओर अपनी शक्ति बढ़ानी चाही थी, लेकिन देवपाल ने उसकी गति को रोक दिया।

देवपाल बौद्ध- धर्म का अनुयायी था। उसने अनेक बौद्ध- विहारों का निर्माण कराया। नालन्दा में मिले एक ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि सुवर्ण द्वीप और यवभूमि के राजा बालपुत्रदेव द्वारा बनाये गये बौद्ध- विहार के व्यय, धर्म- ग्रन्थों के लिखने और भिक्षुओं के विभिंन्न सुख- साधनों के लिए देवपाल ने चार गाँव राजगृह जिला से और पाँचवाँ गाँव गया जिला से दान में दिये। यदि सुवर्ण द्वीप को सुमात्रा और यवभूमि को जावा मान लें (जैसा कि कुछ विद्वानों का मत है) तो यह निश्चित है कि देवपाल का सम्पर्क इन पूर्वी द्वीपों से था। उसके दरबार में ब्रजदत्त नामक बौद्धकवि रहता था जिसने **'लोकेश्वरशतक'** नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की।

नारायणपाल- इस वंश का अगला प्रतापी राजा नारायणपाल था जिसने लगभग 854 से 915 तक राज्य किया। उसकी माता हैहय कुल की लज्जा नाम की राजकुमारी थी। नारायणपाल शैव- धर्म का अनुयायी था। भागलपुर लेख से ज्ञात होता है कि अपने शासनकाल के सत्रहवें वर्ष में उसने मुँगेर में शिवमन्दिर को तिरहुत का एक गाँव दान दिया और शिव के लगभग 1,000 मन्दिरों का निर्माण कराया। प्रतीहार राजा महेन्द्रपाल प्रथम ने उससे मगध और उत्तरी बंगाल छीन लिया। परन्तु अपने शासन- काल के अन्तिम दिनों में भोज द्वितीय और महीपाल के परस्पर वैमनस्य से लाभ उठाकर नारायणपाल ने अपना खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। नारायणपाल के पश्चात क्रमशः राज्यपाल (915-950), गोपाल द्वितीय (950-960) और विग्रहपाल द्वितीय (960-988) गद्दी पर आसीन हुए, किन्तु उनके शासनकाल में कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं हुई।

महीपाल- प्रथम (988-1038)-इस वंश का महत्वपूर्ण शासक विग्रहपाल द्वितीय का पुत्र महीपाल था। वह बड़ा वीर तथा प्रतिभाशाली शासक था। उसने अपने वंश की खोई हुई ख्याति को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। उसने कम्बोजों से उत्तरी बंगाल छीन लिया और बिहार पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उसका राज्य बनारस तक फैला हुआ था। उसके शासन- काल की महत्वपूर्ण घटना दक्षिण के प्रतापी सम्राट राजेन्द्र चोल प्रथम का आक्रमण था। राजेन्द्र प्रथम उड़ीसा, दक्षिण कोशल, दण्डभुक्ति को जीतता हुआ बंगाल जा पहुँचा और महीपाल को पराजित किया लेकिन महीपाल ने उसे गंगा पार नहीं बढ़ने दिया। एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि महीपाल के शासन- काल के उत्तरार्द्ध में राज्य की सीमाएँ कुछ संकुचित हो गई थीं।

महीपाल बौद्ध-धर्म का अनुयायी था। उसने सारनाथ में कई चैत्यों का निर्माण करवाया और मूलगन्ध कुटी, धर्मराजिका स्तूप और धर्मचन्द्र का जीर्णोद्धार कराया। उसने बौद्ध-धर्म के प्रचारार्थ आचार्य धर्मपाल को तिब्बत भेजा। अतः महीपाल ने बहुत लोकप्रियता प्राप्त की और इसलिए वह पाल-राज्य का दूसरा संस्थापक माना जाता है।

नयपाल (1038-1055)-महीपाल की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र नयपाल राजा हुआ। इसका संघर्ष चेदि के राजा लक्ष्मीकर्ण के साथ हुआ। जब इस संघर्ष में दोनों ओर की सेनाओं का संहार होने लगा तब विक्रमशील के महाबोधि विहार के प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक दीपंकर श्रीज्ञान ने अपने जीवन को खतरे में डालकर दोनों पक्षों में समझौता करा दिया। किन्तु लक्ष्मीकर्ण को अपनी कन्या यौवनश्री का विवाह नयपाल के पुत्र विग्रहपाल तृतीय के साथ करना पड़ा। नयपाल की मृत्यु के उपरान्त विग्रहपाल तृतीय (1055-1070) गद्दी पर आसीन हुआ। इसके शासन-काल की प्रमुख घटना चालुक्य राजा विक्रमादित्य का आक्रमण था जिसमें विग्रहपाल तृतीय पराजित हुआ। विग्रहपाल तृतीय की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र महीपाल द्वितीय ने 1070 से 1075 तक शासन किया।

रामपाल (1075-1120)-इस वंश का अन्तिम शक्तिशाली शासक महीपाल द्वितीय का भाई रामपाल था जो उत्तर बंगाल के पैतृक प्रदेशों को प्राप्त करने में सफल हुआ। उसने कलिंग और आसाम को रौंद डाला तथा पूर्व बंगाल के राजा यादववर्मन को संरक्षण प्रदान किया। 45 वर्ष शासन करने के पश्चात उसकी मृत्यु हो गयी।

पाल-वंश का पतन-रामपाल की मृत्यु के पश्चात क्रमशः कुमारपाल, मदनपाल तथा गोविन्दपाल शासक हुए जो अत्यन्त निर्बल सिद्ध हुए। अन्त में सेन-वंश के शासक सामन्त सेन ने पाल-वंश का अन्त कर दिया।

पाल-शासकों के कार्य

पाल-वंश के शासकों ने लगभग 400 वर्षों तक राज्य किया। धर्मपाल और देवपाल के समय में बंगाल एक अत्यन्त शक्तिशाली प्रदेश बन गया था। पाल राजाओं को धर्म, कला और साहित्य से बड़ा अनुराग था। उनके शासन-काल में बौद्ध-धर्म का तान्त्रिक रूप खूब फूला-फला तथा नेपाल और तिब्बत आदि सीमावर्ती राज्यों में भी उसका खूब प्रचार हुआ। उन्होंने अनेक विहारों का निर्माण कराया और उन्हें उदारतापूर्वक दान दिये। उनके द्वारा बनाये हुए अनेक मन्दिरों, विहारों तथा तालाबों के खण्डहर आज भी विद्यमान हैं। पालयुग में ही धीमन तथा उसका पुत्र वीतपाल प्रसिद्ध कलाकार हुए जिन्होंने 'चित्रकारों, मूर्तिकारों और काँसे की वस्तुएँ बनाने वालों के रूप में अपनी दक्षता के लिए सर्वोच्च यश प्राप्त कर लिया था।'

सेन-वंश

पाल-वंश के पतन के पश्चात बंगाल में सेन-वंश का शासन प्रारम्भ हुआ। सेन दक्षिण में कर्नाटक के निवासी थे। सेन राजा ब्राह्मण थे। क्षत्रियों का कर्म करने के कारण इनको ब्रह्म-क्षत्रिय कहा गया है। इस वंश का संस्थापक सामन्तसेन था जो वृद्धावस्था में गंगा के तट

पर आकर बस गया। ऐसा मालूम होता है कि वह राजा नहीं था बल्कि उसके पुत्र हेमन्तसेन ने एक छोटे से राज्य की स्थापना की थी।

सेन- वंश के प्रमुख शासक
1. सामन्तसेन
2. विजयसेन
3. बल्लालसेन
4. लक्ष्मणसेन

विजयसेन- हेमन्तसेन का पुत्र विजयसेन इस वंश का वीर तथा योग्य शासक था जिसने 1095 से 1158 तक राज्य किया। उसके समय में सेनवंश की शक्ति और प्रतिष्ठा का अत्यधिक विस्तार हुआ। उसने गौड़ राजा मदनपाल को पराजित करके बंगाल पर अधिकार कर लिया और तिरहुत, कामरूप, नेपाल तथा कलिंग के राजाओं को भी परास्त किया।वह शैव- धर्म का अनुयायी था। उसने देवपाड़ा में प्रद्युम्नेश्वर शिव का एक विशाल मन्दिर और एक झील का निर्माण करवाया। उसकी दो राजधानियाँ थीं- एक पश्चिम बंगाल में विजयपुर और दूसरी पूर्वी बंगाल में विक्रमपुर।

बल्लालसेन-विजयसेन की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र बल्लालसेन गद्दी पर आसीन हुआ जिसने 1158 से 1179 तक राज्य किया। उसने अपने पैतृक राज्य को यथावत् रखा। वह हिन्दू धर्म का कट्टर अनुयायी था। वह उच्चकोटि का विद्वान् तथा लेखक भी था। कहा जाता है कि अपने गुरु अनिरुद्ध की सहायता से उसने **'दानसागर'** और **'अद्भुत सागर'** नामक दो ग्रन्थों की रचना की थी। उसके शासन- काल का सबसे महत्वपूर्ण कार्य वर्ण- व्यवस्था को पुनःस्थापित करना था। उसने कुलीन प्रथा चलाई जिसके कारण ब्राह्मण, वैश्य और कायस्थ को कुलीन माना गया और उनमें जातीय अहंकार की भावना का अत्यधिक विकास हुआ।

लक्ष्मणसेन- बल्लालसेन के पश्चात् उसका पुत्र लक्ष्मणसेन राजा हुआ। वह इस वंश का अन्तिम प्रभावशाली शासक था। उसने गौड़, कामरूप, कलिंग तथा काशी पर विजय प्राप्त की थी। उसके शासन- काल में ही बिहार और बंगाल पर तुर्कों का अधिकार स्थापित हुआ। मुसलमान इतिहासकारों ने लिखा है कि जब मुहम्मद बिनबख्तियार खिलजी बिहार को जीतकर बौद्ध- भिक्षुओं का वध करता हुआ बंगाल की ओर बढ़ा तो बिना किसी विरोध के लक्ष्मणसेन महल के पिछले द्वार से भाग निकला और पूर्वी बंगाल में जाकर शरण ली। वहाँ वह लगभग 1205 तक राज्य करता रहा।

लक्ष्मणसेन वैष्णव था। वह स्वयं अच्छा कवि था। उसने अपने पिता द्वारा आरम्भ किए **'अद्भुत सागर'** को पूरा किया। उसके दरबार में अनेक विद्वानों को आश्रय प्राप्त था। **'गीतगोविन्द'** के विख्यात रचयिता जयदेव उसी की राजसभा का कवि था। 'पवनदूत' नामक ग्रन्थ के लेखक धीयी, **'ब्राह्मणसर्वस्व'** के कर्ता हलायुध और **'सदुक्तिकर्णामृत'** के संकलक श्रीधरदास साहित्यिक क्षेत्र में उसके समय के प्रकाशमान तारे थे, जिन्हें उसकी कृपाएँ प्राप्त थीं। सेनवंश का पतन लक्ष्मणसेन के पश्चात् प्रारम्भ हो गया। उसके पुत्रों- माधवसेन, विश्वरूपसेन और केशवसेन ने लगभग 1260 तक पूर्वी बंगाल में राज्य किया। अन्त में मुसलमानों ने इस वंश को समाप्त कर दिया।

सेन- वंश का बंगाल के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इस वंश के शासन काल में बंगाल में हिन्दू धर्म और संस्कृत का पुनरुत्थान हुआ! संस्कृत साहित्य को इस वंश के राजाओं का बहुत बड़ा योगदान मिला। एक साहित्यकार के शब्दों में, "... .बंगाल में हिन्दू समाज, धर्म और संस्कृति इस्लामी प्रहार को सहकर कुछ हद तक जीवित रह सकी, इसका श्रेय कर्नाटक के हिन्दू परिवार (सेन वंश) को है जिसने उनमें एक नया जीवन और स्फूर्ति फूँक दी थी।"

सोलंकी वंश

वंश- परिचय- कुछ विद्वानों ने सोलंकी- वंश को चालुक्यों की शाखा माना है जिन्होंने गुजरात में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की। जन- श्रुतियों के अनुसार ये अग्निवंशीय क्षत्रिय थे।

सोलंकी वंश के प्रमुख शासक- इस वंश का संस्थापक मूलराज था, जिसने 974 के आसपास अपने मामा की हत्या कर गुजरात पर अधिकार कर लिया। उसने कच्छ के लक्षराज को परास्त कर उसका वध करवा दिया। उसने सौराष्ट्र में वनस्थली के राजा ग्रहरिपु को बन्दी बना लिया। मूलराज ने दक्षिण गुजरात के शासक बारप्पा, शाकम्भरी के विग्रहराज चौहान तथा अनेक अन्य राजाओं से भी युद्ध किया। वह शैव मतावलम्बी था। उसने अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया। 995 ई० में मूलराज की मृत्यु हो गई।

सोलंकी वंश के प्रमुख शासक

1. मूलराज
2. भीम प्रथम
3. कर्ण
4. जयसिंह सिद्धराज
5. कुमारपाल
6. भीम द्वितीय

भीम प्रथम- इस वंश का अन्य शक्तिशाली शासक मूलराज का पौत्र दुर्लभराज का भतीजा भीम प्रथम हुआ जिसने लगभग 1021 से 1063 तक शासन किया। उसके शासन- काल में महमूद गजनवी ने सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण कर उसे खूब लूटा। कायर भीम प्रथम गुजरात को छोड़कर भाग गया था। महमूद गजनवी के प्रत्यावर्तन के पश्चात् भीम प्रथम ने पुनः गुजरात पर अधिकार कर लिया। उसने अपनी शक्ति का विस्तार कर आबू के परमार राजा को परास्त किया किन्तु जब वह सिन्धु के मुस्लिम राजा के विरुद्ध युद्ध कर रहा था, भोज परमार के सेनापति कुलचन्द ने उसकी राजधानी अह्निलवाड़ को खूब लूटा। फलतः भीम प्रथम ने कलचुरी शासक लक्ष्मीकर्ण से सन्धि कर सम्मिलित रूप से मालवा पर आक्रमण किया। इसी युद्ध के मध्य भीम की मृत्यु हो गई। भीम प्रथम का उत्तराधिकारी कर्ण (1063-1093) एक निर्बल शासक था।

जयसिंह सिद्धराज- इस वंश का सबसे प्रतापी सम्राट् **जयसिंह सिद्धराज** था जिसने 1093 से 1143 तक शासन किया। वह बड़ा वीर तथा शक्तिशाली शासक था। उसने सौराष्ट्र को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया। उसने नादोल (जोधपुर रियासत) के चौहानों को युद्ध में पराजित किया और परमारों से मालवा का अधिकांश भाग छीन लिया। इस विजय के उपलक्ष्य में उसने **'अवन्तिनाथ'** का विरुद धारण किया। उसने चन्देल राजा मदनवर्मा पर

भी आक्रमण किया, किन्तु उसे चन्देल राजा से पराजित होना पड़ा। सिद्धराज शैव मतावलम्बी था किन्तु वह अन्य धर्मों के विद्वानों का भी समान रूप से आदर करता था। उसने अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया।

कुमारपाल- सिद्धराज निःसंतान था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका दूर का सम्बन्धी कुमारपाल उसका उत्तराधिकारी बना। उसने शाकम्भरी के चौहान राजा अर्णोराज को परास्त किया। आबू और मालवा के परमार राजाओं के विद्रोह का दमन किया। उसने सौराष्ट्र के राजा और कोंकण के मल्लिकार्जुन को भी परास्त किया। वह शैव मतावलम्बी था। उसने सोमनाथ के मन्दिर का पुनर्निमाण कराया। जैन ग्रन्थों के अनुसार हेमचन्द्र के प्रभाव में आकर उसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था। कुमारपाल ने 1133 से 1172 तक शासन किया। उसके बाद क्रमशः अजयपाल तथा मूलराज द्वितीय शासक हुए। इस वंश का अन्तिम शासक भीम द्वितीय था जो कुतुबुद्दीन द्वारा 1197 में पराजित हुआ। अन्त में अलाउद्दीन खिलजी ने 1299 में गुजरात को जीतकर अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

कलचुरी वंश

वंश-परिचय- कलचुरी कार्तवीर्य अर्जुन के वंशज कहे जाते हैं। इस प्रकार वे 'हैहय' जाति की शाखा थे जिसका महाभारत तथा पुराणों में उल्लेख मिलता है। इस वंश की राजधानी 'त्रिपुरी' थी।

कलचुरी-वंश के प्रमुख शासक- इस वंश का संस्थापक **कोकल्ल** था जिसने 875 से 925 तक शासन किया। उसने चन्देल एवं राष्ट्रकूटों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये। उसको 'सारी पृथ्वी-विजेता' तथा अपने समकालीन राजाओं का 'कोशहर्ता' कहा गया है। इस वंश का सबसे प्रतापी शासक लक्ष्मणराज था जिसने मालवा के परमार तथा कालिंजर के चन्देल राजाओं को परास्त किया और पर्याप्त कीर्ति अर्जित की।

कलचुरी-वंश के प्रमुख शासक

1. कोकल्ल
2. लक्ष्मणराज
3. गांगेयदेव
4. लक्ष्मीकर्ण (कर्ण)

इस वंश का दूसरा प्रतापी शासक गांगेयदेव था, जिसने 1015 से 1040 तक शासन किया। उसने उत्तरी भारत के प्रयाग तथा काशी के प्रदेशों को विजय कर अपने राज्य में मिला लिया, परन्तु परमार राजा भोज से उसे पराजित होना पड़ा। एक लेख से स्पष्ट है कि गांगेयदेव ने तिरहुत पर अधिकार कर लिया था और कम्बाडी प्रदेश पर अधिकार करके उसने 'विक्रमादित्य' का विरुद धारण किया था।

गांगेयदेव की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र लक्ष्मीकर्ण (कर्ण) गद्दी पर बैठा जिसने 1041 से 1072 तक सफलतापूर्वक राज्य किया। वह महत्वाकांक्षी तथा प्रतापी शासक था। उसने बनारस पर अधिकार करके कर्णमेरु नामक शिव-मन्दिर का निर्माण कराया। उसने चन्देल राजा विजयपाल तथा देववर्मा को पराजित किया। उसने राजा भोज से अपने पिता के अपमान का बदला लिया, किन्तु चालुक्य राजा सोमेश्वर प्रथम तथा चन्देल राजा कीर्तिवर्मन से उसे पराजित होना पड़ा। परमारों तथा चन्देलों के साथ निरन्तर संघर्ष चलने के कारण कलचुरी

वंश अधिक उन्नति नहीं कर सका। कर्ण के पश्चात् क्रमशः यशः कर्ण (1073-1123), गया कर्ण (1123-1151), नरसिंह (1151-1161), जयसिंह व विजय सिंह शासक हुए। अन्त में देवगिरि के यादवों ने इस राज्य पर अधिकार करके अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

राजपूत-युग की सभ्यता और संस्कृति

(क) राजनीतिक संगठन

(1) केन्द्रीय शासन- राजपूत-काल के शासकों ने 'परमभट्टारक', 'महाराजाधिराज' और 'परमेश्वर' जैसे उच्च विरुद धारण किये। शासन, न्याय और सेना सम्बन्धी शक्तियाँ सम्राट् में निहित थीं। राज्य के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी और राज्य सम्बन्धी आज्ञाएँ भी उसी के द्वारा प्रसारित की जाती थीं। युद्ध-काल में सम्राट् सेना का नेतृत्व करता था। सम्राट् के कर्तव्यों के सम्बन्ध में **मेघातिथि** ने मनुस्मृति पर टीका करते हुए लिखा है, 'यदि राज्य पर आक्रमण हुआ हो और उसके प्रजाज़न मारे जा रहे हों तो राजा को संग्राम करते हुए मर जाना चाहिए। यदि ऐसे अवसर पर राजा युद्ध नहीं करता तो उसे घोर नर्क में गिरना पड़ता है।' राजा के अधीनस्थ 45 कर्मचारियों का उल्लेख मिलता है जिनमें मुख्य मन्त्री, युवराज, पुरोहित और सेनापति आदि विशेष महत्वपूर्ण थे। सम्राट् राज्य की सुरक्षा से सम्बन्धित सभी कार्यों में महासेनापति और सेनापति से परामर्श किया करता था।

(2) प्रान्तीय शासन- समस्त साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था जिन्हें 'भुक्ति' कहा जाता था। भुक्ति का शासक राष्ट्रीय, राजस्थानीय अथवा उपरिकमहाराज कहलाता था। उसकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी। प्रांतों की सुरक्षा के लिये भुक्ति शासक के अधीन दुर्गों में सेना की टुकड़ियाँ रहती थीं। प्रान्तों को 'विषयों' अथवा 'जिलों' में विभक्त किया गया था जिसका अधिकारी विषयपति था। वह अनेक कर्मचारियों की सहायता से अपने कार्यों को सम्पादित करता था और अपने कार्यों के लिए सम्राट् के प्रति उत्तरदायी था। 'विषयों' को अग्रहारों (तहसीलों) में विभक्त किया जाता था जिसका अधिकारी 'अग्रहर' कहलाता था। इसकी नियुक्ति विषयपति प्रान्तीय शासक के परामर्श से करता था।

(3) स्थानीय शासन- शासन की अन्तिम छोटी ईकाई ग्राम थी जिसका अध्यक्ष ग्रामपति या ग्रामिक होता था। वह अपने समस्त कार्यों के लिए राजा के प्रति उत्तरदायी था। ग्रामिक की सहायता के लिए ग्राम-वृद्धों की एक समिति थी जिसे पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। फौजदारी के छोटे-छोटे मुकदमों का निर्णय स्वयं ग्रामपति करता था। ग्रामपति का पद वेतन-भोगी था। नगरों का शासन भी 'पंचकुल' नामक समिति द्वारा होता था जिसमें पाँच व्यक्ति होते थे।

(4) दण्डनीति- राजपूत-काल की दण्डनीति कठोर न होकर सरल थी। **अलबरूनी** इस सम्बन्ध में लिखता है, 'इस मामले में हिन्दुओं के आचरण और रिवाज ईसाइयों के आचरण और रिवाजों से मिलते-जुलते हैं, क्योंकि वे गुण के सिद्धान्तों और दुष्टता के प्रभाव पर आधारित है। मेरा यह कथन है कि यह एक उत्कृष्ट दर्शन है, किन्तु इस संसार के सभी लोग दार्शनिक नहीं हैं। उनमें से अधिकांश लोग अज्ञानी और गलती करने वाले हैं, जो बिना तलवार या कोड़े से सीधे रास्ते पर नहीं लाये जा सकते।''

(ख) सामाजिक व्यवस्था

(i) वर्ण-व्यवस्था- राजपूत युग में प्राचीन सामाजिक व्यवस्था प्रायः नष्ट हो चुकी थी। हिन्दू समाज चार मूल वर्णों- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभक्त था। अब अनेक

जातियों और उपजातियों का जन्म हो गया था। ब्राह्मण कन्नौज, गौड़, तेलगू, कोंकणस्थ आदि उपजातियों में विभक्त हो गये। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्यों ने भी अपनी उपजातियाँ निर्मित कर ली थीं। जुलाहे, लोहार, मछुए, ग्वाले, बढ़ई, रस्सी बनाने वाले आदि जातियाँ उद्योग- धन्धों के आधार पर निर्मित हुईं। **मेघातिथि** ने इस काल के उदारतापूर्ण और लोचदार सामाजिक नियमों का उल्लेख किया है कि एक ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य की कन्या से विवाह करने के लिए स्वतन्त्र था। वह क्षत्रिय बालक को गोद ले सकता था। क्षत्रिय और वैश्य विभिन्न प्रकार के मंत्रों का उच्चारण करते थे। **मेघातिथि** ने एक स्थान पर इस बात का उल्लेख किया है कि विश्वामित्र ने क्षत्रिय होते हुए भी अपने इसी जन्म में ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया था। शूद्र भी अग्नि को आहुतियाँ समर्पित कर सकते थे। मेघातिथि के अनुसार शूद्रों की स्थिति व्यावहारिक रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की स्थिति के ही समान थी।

(ii) स्त्रियों की दशा- इस काल में स्त्रियों की दशा में पिछले कालों की अपेक्षा कोई महत्वपूर्ण सुधार नहीं हुआ, फिर भी समाज में स्त्रियों का सम्मान था। स्त्रियों ने कला और विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की। वे विद्वानों के साथ स्वेच्छापूर्वक तर्क- वितर्क करती थीं। एक बार शंकराचार्य को मण्डन मिश्र की महान् विदुषी पत्नी से शास्त्रार्थ में निरुत्तर होना पड़ा था। राजशेखर की पत्नी अवंती- सुन्दरी कविता करने में निपुण थी। भास्कराचार्य की पुत्री लीलावती गणित- शास्त्र की पण्डित थी। इस काल की संस्कृत- साहित्य की कवयित्रियाँ इन्दुलेखा, मारुला, भोरिका, विज्जिका, शीला, सुभद्रा, पद्मश्री, मदालसा और लक्ष्मी थीं। इस काल की कतिपय नारियों ने शासन- व्यवस्था तथा युद्धकौशल में पूर्ण दक्षता प्राप्त की थी। दक्षिण भारत के पश्चिमी सोलंकी नरेश विक्रमादित्य की बहन अक्का चार प्रदेशों की शासिका थी और उसने जिला बेलगाँव के गोकागे के किले पर आक्रमण कर उसे घेर लिया था। इस काल में विधवा- विवाह निषिद्ध था। नारियाँ 'जौहर' कर अपने धर्म और सतीत्व की रक्षा करती थीं। सती- प्रथा भी व्यापक रूप में प्रचलित थी।

(iii) विचारों की संकीर्णता- इस काल में हिन्दू समाज में विचारों में संकीर्णता आ गयी थी। हिन्दुओं के विचारों की संकीर्णता के सम्बन्ध में **अलबरूनी** लिखता है, 'हिन्दू लोग समझते हैं कि उनके देश जैसा कोई देश नहीं, उनके राष्ट्र जैसा कोई राष्ट्र नहीं, उनके धर्म जैसा कोई धर्म नहीं, उनके विज्ञान जैसा कोई विज्ञान नहीं, वे अभिमानी, दम्भी, अहंमन्य और हठी हैं। जो कुछ वे जानते हैं उसे दूसरों को बताने में स्वभावतया कृपण हैं और वे इस बात का अधिक से अधिक ध्यान रखते हैं कि उनके ज्ञान को दूसरी जाति वाले ग्रहण न कर सकें। विदेशी तो और भी नहीं। उनके विश्वास के अनुसार संसार में उनको छोड़कर कोई ऐसा देश या जाति या ऐसे व्यक्ति नहीं हैं जिनके निकट उनके बराबर ज्ञान हो। वे इतने अभिमानी हैं कि यदि आप उनसे यह कहें कि फारस या खुरासान में भी कोई विद्या या विद्वान है तो वे आपको मूर्ख तथा असत्यवादी कहेंगे। यदि वे बाहर भ्रमण करें तथा अन्य राष्ट्रों के साथ मिले- जुलें तो शीघ्र ही उनकी धारणा बदल जाय, क्योंकि उनके पूर्वज संकीर्ण विचार वाले नहीं थे, जैसा कि इस समय हिन्दू हैं।' अलबरूनी का यह कथन सम्पूर्ण हिन्दू समाज पर लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस बात के प्रमाण उपलब्ध हैं कि भारतवासियों ने न केवल विदेशियों के साथ ही सम्बन्ध स्थापित किए बल्कि वे विदेशों में जाकर बस भी गये थे।

(iv) हिन्दू- समाज का उच्च नैतिक स्तर- भारतीयों का नैतिक स्तर उच्च था। **अल- इन्द्रिसी** इस सम्बन्ध में लिखता है, 'भारतीय लोग स्वभावतया न्याय की ओर उन्मुख हैं और अपने कार्य में वे कभी भी इससे विमुख नहीं होते। उनके श्रेष्ठ विश्वास, ईमानदारी और किए गए वादों के प्रति सच्चाई को सभी जानते हैं और अपने इन गुणों के कारण वे इतने विख्यात हैं कि हर तरफ के लोग उनके देश की ओर दौड़ते हैं।''

(ग) धार्मिक अवस्था

राजपूत काल में हिन्दू- धर्म, बौद्ध- धर्म तथा जैन- धर्म प्रचलित थे, लेकिन हिन्दू- धर्म सभी धर्मों में श्रेष्ठ माना जाता था और इसके सम्मुख बौद्ध- धर्म तथा जैन- धर्म पतनोन्मुख थे।

(1) हिन्दूधर्म- हिन्दूधर्म देशव्यापी था। यह धर्म विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त था। वैष्णव मत के अनुयायी विष्णु की मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि आदि विभिन्न अवतारों के रूप में उपासना करते थे। विष्णु के बाद शिव इस काल के लोकप्रिय उपास्यदेव थे। शिव की पूजा मानवीय प्रतिमा और लिंग, दोनों रूपों में की जाती थी। सूर्य की भी उपासना इस काल में प्रचलित थी। देवियों में दुर्गा, श्री अम्बा, लोही देवी, लक्ष्मी, वतयक्षिणी देवी, कनक देवी, गौरी, सर्वमंगला देवी की पूजा प्रचलित थी। पशु- बलि भी इस काल में प्रचलित थी।

इसी काल में कुमारिल भट्ट तथा शंकराचार्य आदि महान् सुधारक हुए जिनके प्रयत्नों से हिन्दू- धर्म का बहुत प्रचार हुआ। कुमारिल भट्ट ने वैदिक कर्मकाण्ड पर विशेष बल दिया तथा शंकराचार्य ने अद्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। शंकराचार्य के प्रभाव से बौद्धों ने हिन्दू- धर्म को अपनानां प्रारम्भ कर दिया। रामानुज ने विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचलन किया तथा भक्तिमार्ग को अपनाया। यद्यपि शंकराचार्य, रामानुज, मध्वाचार्य आदि सुधारकों के सिद्धान्तों में पारस्परिक मतभेद था, किन्तु इनके प्रयत्नों से हिन्दू- धर्म विशेष सुदृढ़ हुआ।

(2) बौद्ध- धर्म- इस काल में महायान सम्प्रदाय का हीनयान सम्प्रदाय पर पूर्ण अधिकार हो चुका था। बौद्ध- धर्म अब केवल विहारों तक ही सीमित रह गया था। कुमारिल भट्ट एवं शंकराचार्य आदि सुधारकों के प्रयास से बौद्धधर्म हिन्दू- धर्म में घुल- मिल- सा गया।

(3) जैन- धर्म- इस धर्म का भारत में विशेष प्रचार था। लेकिन हिन्दू- धर्म के पुनरुत्थान के कारण इस धर्म की भी विशेष क्षति हुई।आजकल यह धर्म राजस्थान, गुजरात तथा उत्तरी भारत के कुछ भागों में प्रचलित है।

(घ) सांस्कृतिक दशा

(1) साहित्य- राजपूत सम्राट साहित्य और कला के विशेष संरक्षक थे। इस काल में मुंज और भोज जैसे सम्राट् भी यशस्वी लेखक हुए। राजकीय संरक्षण में काव्य, नाटक, इतिहास, कानून, राजनीति, ज्योतिष तथा चिकित्सा आदि पर प्रसिद्ध ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। इस समय के काव्य- ग्रन्थों में **भट्टि** का **'रावण वध'**, **माघ** का **'शिशुपाल वध'**, **राजेश्वर** का **'काव्य मीमांसा'**, **जयदेव** का **'गीतगोविन्द'** उल्लेखनीय हैं। नाटककारों में भवभूति का स्थान अद्वितीय है। उसने **'उत्तररामचरित'**, **'महावीर- चरित'** और **'मालतीमाधव'** नामक तीन नाटकों की रचना की। दूसरे नाटककारों में **'कर्पूरमंजरी'** के लेखक **राजशेखर**, **'वेणीसंहार'** के **भट्टनारायण**, **'अनर्घराघव'** के मुरारि प्रमुख थे। **'प्रबोध चद्रोदय'** का रचयिता **कृष्ण मिश्र** भी इसी काल का

नाटककार था। इतिहास के ग्रन्थों में **कल्हण** की **'राजतरंगिणी'**, **बिल्हण** का **'विक्रमांकचरित'**, **पद्मगुप्त परिमल** का **'नवसाहसांकचरित'** और **सन्ध्याकरनन्दी** का **'रामचरित'** विशेष उल्लेखनीय हैं। इन इतिहासकारों के अतिरिक्त **'पृथ्वीराजविजय'** के लेखक **जयानक** और **'कुमारपालचरित'** के लेखक **हेमचन्द्र** भी उल्लेखनीय हैं। कानून पर कई ग्रन्थों का प्रणयन किया गया जिनमें **विज्ञानेश्वर** की **'मिताक्षरा'**, **जीमूतवाहन** का **'दायभाग'** और **लक्ष्मीधर** का **'स्मृतिकल्पतरु'** आदि उल्लेखनीय हैं। इस युग की **'शुक्रनीति'** राजनीति पर प्रसिद्ध रचना है। गणित और ज्योतिष पर **भास्कराचार्य** द्वारा लिखित **'सिद्धान्तशिरोमणि'** एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। चिकित्सा पर राजा भोज द्वारा रचित **'आयुर्वेद सर्वस्व'** विशेष उल्लेखनीय है। उपरोक्त विषयों के अतिरिक्त संगीतशास्त्र पर सांगदेव का **'संगीतरत्नाकर'** और कामसूत्र पर कोक पण्डित का **'कोकशास्त्र'** उल्लेखनीय हैं। **चंदबरदाई** का **'पृथ्वीराजरासो'** इसी काल के अन्तिम दिनों में लिखा गया था।

(2) शिक्षा- इस काल में प्राचीन ढंग की शिक्षा- पद्धति प्रचलित थी। आचार्यों के आश्रमों तथा बौद्ध- विहारों में विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। इस काल का मुख्य शिक्षाकेन्द्र नालन्दा विश्वविद्यालय था। इसके अतिरिक्त पूर्वी बिहार में विक्रमशिला, पूर्वी बंगाल में विक्रमपुर, उत्तरी बंगाल में जगधल, पटना जिले में ओदंतपुरी भी शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र थे।

(3) कला : (अ) वास्तुकला- राजपूत काल में कला के क्षेत्र में भी विशेष प्रगति
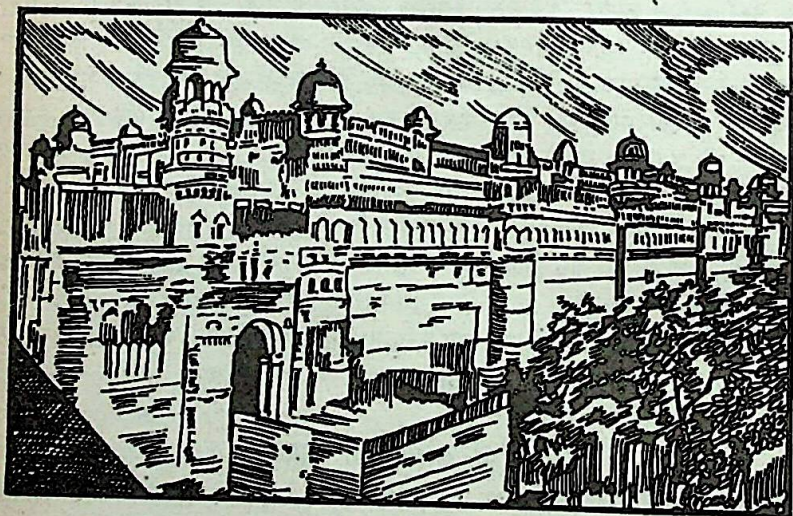
मानमन्दिर (ग्वालियर)

हुई। मन्दिरों का निर्माण इस काल की प्रमुख देन है। वास्तुकला के तीन उदाहरण राजप्रासाद, दुर्ग तथा मन्दिर आदि उपलब्ध हैं। राजप्रासादों में ग्वालियर का मानमन्दिर और गुर्जरी महल, उदयपुर में पिछौला झील के महल तथा उदयपुर व आमेर के महल विशेष उल्लेखनीय हैं। चित्तौड़, रणथम्भौर, मांडू, जोधपुर तथा ग्वालियर के दुर्ग अपनी निर्माण- शैली में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। मन्दिरों के निर्माण में तीन प्रकार की शिल्प- शैली का प्रयोग हुआ है :

(i) भारतीय आर्य शैली- उड़ीसा में भुवनेश्वर का 'लिंगराज' मन्दिर, राजस्थान में आबू पर्वत पर निर्मित जैनमन्दिर तथा बुन्देलखण्ड में खजुराहो का 'कन्दारिया' मन्दिर आर्य शैली के उत्कृष्ट नमूने हैं। खजुराहो में मन्दिरों की संख्या तीस से अधिक है। मन्दिरों में कन्दारिया महादेव मन्दिर सबसे अधिक महत्वपूर्ण है जिसका शिखर 30 मीटर ऊँचा है।

(ii) चालुक्य शैली- चालुक्य शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हालेविन्द का होयसलेश्वर का मन्दिर तथा वेलूर का मन्दिर है।

(iii) द्रविड़ शैली- इस शैली का प्रचलन सुदूर दक्षिण भारत में था। इसकी विशेषता यह थी कि मूर्ति- प्रकोष्ठ का ऊपरी भाग चौकोर तथा अनेक मंजिल वाला होता था तथा मन्दिर के गुम्बद चिपटे होते थे। इस शैली के उदाहरण मामल्लपुरम् के रथ- मन्दिर, तंजौर का शिव मन्दिर, काँची के मन्दिर आदि हैं।
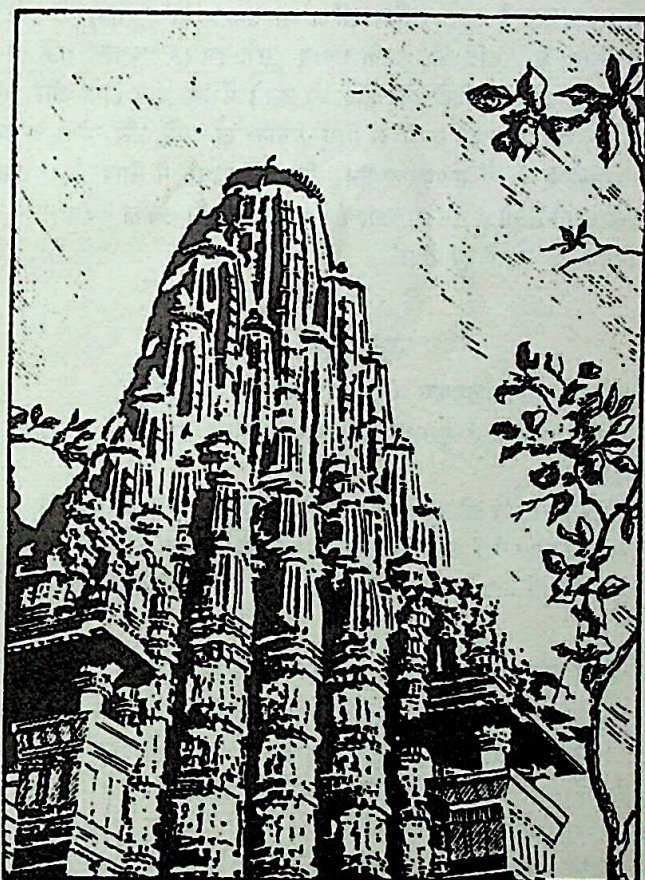
खजुराहो का कन्दारिया मन्दिर

(ब) मूर्तिकला- इस काल में विभिन्न देवताओं की मूर्तियों तथा बौद्ध प्रतिमाओं का

निर्माण हुआ। 30 मीटर ऊँची चट्टानों पर दुर्गा-महिषासुर युद्ध तथा रावण द्वारा कैलाश पर्वत के उठाने के दृश्य अंकित किये गये। मन्दिरों की दीवारों व उनके चबूतरों पर भी अनेक प्रतिमाएँ उत्कीर्ण की गयीं। कोणार्क और पुरी के मन्दिरों की दीवारों पर राधा-कृष्ण की प्रेम-क्रीड़ा करते हुए प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

(स) चित्रकला- मूर्ति-कला के साथ चित्रकला के क्षेत्र में भी उन्नति हुई। राजप्रासादों और मन्दिरों को अलंकृत करने के लिए पशु-पक्षी, वृक्ष, लता आदि की आकृतियाँ चित्रित की गयीं।

राजपूत-काल के मन्दिर मुसलमान लेखकों की दृष्टि में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। महमूद गजनवी का सचिव अलगुतबी मथुरा के मन्दिरों को देखकर चकित रह गया था। वह लिखता है, 'नगर के मध्य में एक मन्दिर था जो अन्य मन्दिरों से बड़ा था, जिसका न तो वर्णन किया जा सकता है और न चित्र खींचा जा सकता है।' सुल्तान भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करता है, "यदि कोई इसके समान दूसरी इमारत बनवाना चाहे तो वह बिना सौ सहस्र लाख दिनार व्यय किये इस कार्य को करने में सफल न होगा और इसमें दो सौ वर्ष लग जायेंगे, यद्यपि इसको करने के लिए अत्यन्त अनुभवी और योग्य श्रमिक क्यों न कार्य करें।' **अलबरुनी** ने भी राजपूतकालीन मन्दिरों के विषय में लिखा है, "हमारे देश के लोग जब उन्हें देखते हैं तो वे उन पर आश्चर्य प्रकट करते हैं। उनका वर्णन करने में असमर्थ हैं, उनका निर्माण करना तो दूर रहा।"

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. राजपूत कौन थे ? मुसलमानों के विरुद्ध उनकी असफलता के कारणों का निर्देश कीजिए। (1963)
2. राजपूत संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त निरूपण कीजिए। (1964)
3. राजपूत कौन थे ? उनके पतन के कारणों की विवेचना कीजिए। (1965)
4. राजपूतों की उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न मतों का विवेचन कीजिए। (1985)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. 'राजपूत सम्राट् साहित्य और कला के संरक्षक थे।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
2. "भारतीय इतिहास में राजपूत काल का बड़ा महत्व है।" इस कथन के आलोक में राजपूत-कालीन सभ्यता व संस्कृति का परिचय दीजिए।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. राजपूतों की उत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न मतों का विवेचन कीजिए। (1988)
2. उत्तर भारत के चार प्रमुख राजपूत वंशों का वर्णन कीजिए।

3. राजपूतकालीन साहित्य और कला के विकास का उल्लेख कीजिए।
4. हर्ष के शासनकाल के पश्चात् उत्तरी भारत में स्थापित चार राजपूत राज्यों का उल्लेख कीजिए। (1989)

(घ) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :

(1) भोज, (2) जयसिंह सिद्धराज, (3) लक्ष्मणसेन।

15
दक्षिण भारत के राजवंश

"दक्षिणा- पथ अथवा दक्षिण का वर्तमान नाम दक्कन है, परन्तु इसके मूल संस्कृत पर्याय का भौगोलिक विस्तार सर्वदा समान नहीं रहा। प्राचीन काल में बहुधा इसका प्रयोग नर्मदा के दक्षिण प्रायः सारे भारतीय प्रायद्वीप के अर्थ में हुआ है, ठीक उसी प्रकार जैसे विन्ध्य और हिमालय के बीच की सारी भूमि की संज्ञा उत्तरापथ रही है।"
- डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी

नर्मदा नदी के दक्षिण में फैला हुआ प्रदेश दक्षिणापथ के नाम से संबोधित किया जाता है। पश्चिम में अरब सागर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी है। ब्राह्मणकाल में आर्यों ने अपनी सभ्यता को विस्तृत करने के उद्देश्य से दक्षिण भारत में प्रवेश किया। अगस्त्य मुनि प्रथम आर्य थें जिन्होंने दक्षिणापथ में प्रवेश किया। आर्य संस्कृति का प्रचार 8वीं शताब्दी ई० पू० के लगभग दक्षिण भारत में हुआ। दक्षिण भारत में भी अनेक ऋषि- मुनियों का प्रादुर्भाव हुआ जिनमें आपस्तम्ब ऋषि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त हमें दक्षिण निवासियों के सम्बन्ध में कौटिल्य एवं कात्यायन के ग्रन्थों से पर्याप्त सहायता मिलती है। अशोक के शिलालेखों में भी दक्षिणी राज्यों का उल्लेख मिलता है। दक्षिण भारत के प्रमुख राज्यों का विवरण निम्नलिखित है :

चालुक्य वंश

वंश- परिचय- चालुक्यों का मूल स्थान अन्धकारमय है। एक अनुश्रुति के अनुसार उनके पूर्व- पुरुष का जन्म हरीति के जल- पात्र से हुआ था। विल्हण द्वारा रचित 'विक्रमांकदेवचरित' के अनुसार चालुक्य उस व्यक्ति के वंशज थे जिसे पृथ्वी का अधर्म नष्ट करने के लिए ब्रह्मा ने अपनी हथेली से पैदा किया था। इतिहासकार **स्मिथ** के अनुसार चालुक्य चापों से सम्बन्धित होने के कारण विदेशी गुर्जर जाति के थे और सम्भवतः वे राजपूताना से दक्षिण गये थे। **श्री आयंगर** के अनुसार इस वंश का मूल स्थान अयोध्या था जहाँ से वह दक्षिण चला गया। चालुक्यवंशीय अभिलेखों में उनको 'सोमवंशी क्षत्रिय' कहा गया है। ह्वेनसांग ने चालुक्यों को क्षत्रिय कहा है। इस प्रकार निश्चित रूप से चालुक्यों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ कह सकना नितान्त असम्भव है।

दक्षिण भारत के प्रमुख राजवंश

1. चालुक्य- वंश-
   (अ) वातापी (बादामी) का चालुक्य वंश
   (ब) कल्याणी का चालुक्य वंश
2. राष्ट्रकूट वंश
3. पल्लव वंश
4. चोल वंश

दक्षिण भारत में चालुक्य दो शाखाओं में विभक्त हो गए थे जिनमें एक शाखा 'वातापी' के चालुक्यों के नाम से और दूसरी 'कल्याणी' के चालुक्यों के नाम से प्रसिद्ध हुई। इन दोनों शाखाओं का विवरण निम्नलिखित है :

(अ) वातापी (बादामी) का चालुक्य वंश- ऐहोल प्रशस्ति के अनुसार इस वंश का संस्थापक जयसिंह था। बीजापुर में स्थित 'वातापी' इस वंश के सम्राटों की राजधानी थी। जयसिंह के उपरान्त क्रमशः रणराज, पुलकेशिन् प्रथम इस वंश के महत्वपूर्ण सम्राट हुए। पुलकेशिन् प्रथम ने 'सत्याश्रय', 'श्री- पृथ्वीवल्लभ', 'श्रीवल्लभ' और 'वल्लभ' उपाधियाँ धारण कीं तथा हिरण्यगर्भ, अश्वमेध, अग्निष्टोम, वाजपेय, अग्निचयन, बाहुसुवर्ण और पुण्डरीक यज्ञ किए। पुलकेशिन् का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कीर्तिवर्मन 567 में राजा बना। वह अपने पिता के समान ही वीर तथा प्रतिभाशाली शासक था। उसने 'सत्याश्रय', 'पुरु- रणपराक्रम', 'वल्लभ' और 'पृथ्वीवल्लभ' उपाधियाँ धारण कीं। उसने उत्तर कोंकण के मौर्यों तथा बनवासी के कादम्बों को पराजित किया। कुछ अभिलेखों के अनुसार उसने उत्तर में बिहार तक तथा दक्षिण भारत में चोल तथा पाण्ड्य् राज्यों तक आक्रमण किये। 598 में कीर्तिवर्मन की मृत्यु हो गई। उसका बड़ा पुत्र 'पुलकेशिन् द्वितीय' अल्पवयस्क था। फलतः उसके भाई मंगलेश का राज्य पर अधिकार हो गया। उसने पूर्वी तथा पश्चिमी घाट के अनेक राज्यों पर तथा रेवती द्वीप और कलचुरियों के राज्य पर अधिकार कर लिया। उसने वातापी में 'मंगलेश' नामक एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया। उसने पुलकेशिन् द्वितीय के स्थान पर अपने पुत्र को गद्दी पर बिठाने का प्रयास किया। फलतः दोनों में गृह- युद्ध प्रारम्भ हो गया जिसमें पुलकेशिन् द्वितीय की विजय हुई और वह वातापी के राजसिंहासन पर आसीन हुआ।

वातापी (बादामी) के चालुक्य वंश के प्रमुख शासक

1. जयसिंह
2. रणराज
3. पुलकेशिन् प्रथम
4. कीर्तिवर्मन
5. मंगलेश
6. पुलकेशिन् द्वितीय
7. विक्रमादित्य प्रथम
8. विनयादित्य
9. विजयादित्य
10. विक्रमादित्य द्वितीय
11. कीर्तिवर्मन द्वितीय

पुलकेशिन् द्वितीय इस वंश का सबसे अधिक प्रतापी सम्राट् था। उसने 610-11 से 642 तक शासन किया। वह एक महान् विजेता, महत्वाकांक्षी तथा साम्राज्यवादी व्यक्ति था। सबसे पहले उसने राष्ट्रकूटों को परास्त किया। तत्पश्चात् उसने कदम्बों की राजधानी बनवासी पर आक्रमण कर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उसने गंगवाड़ी के 'गंगों' तथा मालावार के 'अलूपों' को भी अपनी अधीनता स्वीकार करने पर विवश किया तथा दक्षिण गुजरात के लाटों, मालवों और गुर्जरों पर विजय प्राप्त की। पुलकेशिन् द्वितीय की सबसे महत्वपूर्ण विजय हर्षवर्धन पर हुई। इस प्रकार ऐहोल मेगुटी की प्रशस्ति के अनुसार 634 तक पुलकेशिन् द्वितीय सम्पूर्ण दक्षिण भारत का सम्राट् बन गया। तत्पश्चात् उसने महाकोशल तथा कलिंग के राजाओं पर विजय प्राप्त की। उसने अपने साम्राज्य को तीन महाराष्ट्रों में विभक्त किया तथा उनके अन्तर्गत 99, 000 ग्राम सम्मिलित थे।

पुलकेशिन् द्वितीय न केवल एक महान् विजेता था, बल्कि वह उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ भी था। अरबी लेखक तहारी के अनुसार उसने ईरान के सम्राट् खुसरो द्वितीय के यहाँ राजदूत

भेजा था। इस तथ्य की पुष्टि इस काल में चित्रित अजन्ता के एक चित्र से होती है। सम्भवतः चीन के साथ भी उसके राजनीतिक सम्बन्ध थे।

पुलकेशिन् द्वितीय के शासन का अन्तिम समय अत्यन्त कष्टमय था। 642 में पल्लव के राजा नरसिंहवर्मन ने उसकी राजधानी वातापी पर आक्रमण किया और पुलकेशिन् द्वितीय को सम्भवतः मार डाला।

पुलकेशिन् द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त उसका दूसरा पुत्र विक्रमादित्य प्रथम गद्दी पर आसीन हुआ। उसने पल्लवों को पराजित कर उनकी राजधानी काँची पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार अपने वंश के खोये हुए गौरव को पुनः प्राप्त करने में सफल रहा। उसने 655 से 681 तक शासन किया। विक्रमादित्य के पश्चात् क्रमशः **विनयादित्य द्वितीय** (681-696), **विजयादित्य** (696-733) तथा **विक्रमादित्य द्वितीय** (734-745) शासक हुए। विक्रमादित्य द्वितीय ने पल्लवनरेश 'नन्दिवर्मन' को पराजित करके काँची पर अधिकार कर लिया। **कीर्तिवर्मा द्वितीय** (746-53) इस वंश का अन्तिम सम्राट् था, जिसको राष्ट्रकूटों ने पराजित करके चालुक्यों का अन्त कर दिया।

धर्म तथा कला- वातापी के चालुक्य सम्राट् ब्राह्मण-धर्म के अनुयायी होते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु थे। इनके समय में दक्षिण भारत में जैनधर्म खूब फूला-फला। जैन-लेखक रविकीर्ति ने जिसे पुलकेशिन् द्वितीय का आश्रय प्राप्त था, **'जितेन्द्र'** का मन्दिर बनवाया। इसी प्रकार विजयादित्य तथा विक्रमादित्य द्वितीय ने भी जैन आचार्यों को अनेक ग्राम दान दिए। विजयादित्य का धर्ममन्त्री एक जैन विद्वान् था। इस समय बौद्ध-धर्म पतनावस्था में था, फिर भी ह्वेनसांग ने 900 से अधिक बौद्ध-विहार देखे थे। अशोक के भी 5 स्तूप चालुक्यों के राज्य में विद्यमान थे। चालुक्यों के समय ब्राह्मण-धर्म अन्तिम पराकाष्ठा पर था। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के विशाल मन्दिर बने थे।

चालुक्यों की कला भारतीय कला में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इस काल में ठोस चट्टानों को काटकर मन्दिरों का निर्माण किया गया। मंगलेश द्वारा वातापी में निर्मित 'मंगलेश का विष्णु मन्दिर' इसी प्रकार का एक उदाहरण है। कुछ विद्वानों के मतानुसार अजन्ता के भित्ति-चित्र चालुक्यों की ही देन है। 'मेगुती' का शिव-मन्दिर पाषाण-कला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इसी प्रकार पट्टदकल में विरूपाक्ष का मन्दिर भी चालुक्य-कला का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है।

(ब) कल्याणी का चालुक्य वंश- जिन चालुक्यों ने कल्याणी (निज़ाम राज्य में स्थित) को अपनी राजधानी बनाया, वे 'कल्याणी' के चालुक्य कहलाये। इस वंश का संस्थापक तैलप (973-997) था जिसमें वातापी के चालुक्यों का रक्त प्रवाहित था। उसने गुजरात के चालुक्य वंश, मालवा के परमार वंश, चेदि के कलचुरि वंश तथा दक्षिण भारत के शासकों को परास्त किया। तैलप की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र **सत्याश्रय** गद्दी पर आसीन हुआ। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके भतीजे **विक्रमादित्य पंचम** ने कुछ काल तक शासन किया। विक्रमादित्य पंचम का उत्तराधिकारी जयसिंह द्वितीय हुआ। उसने परमार राजा भोज प्रथम को पराजित किया। जयसिंह के पश्चात् क्रमशः **सोमेश्वर प्रथम** तथा **सोमेश्वर द्वितीय** शासक हुए, किन्तु सोमेश्वर द्वितीय के छोटे भाई ने 1076 में उसे गद्दी से उतार दिया और **विक्रमादित्य षष्ठ** के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ। वह इस वंश का सबसे अधिक प्रतापी तथा शक्तिशाली शासक था। उसने

चोल राजा राजेन्द्र द्वितीय तथा होयसल विष्णुवर्धन को पराजित किया और अपनी विजय के उपलक्ष्य में चालुक्य विक्रम संवत् का प्रचलन किया। इसके बाद उसने **'विक्रमांक'** और **'त्रिभुवनमल'** की उपाधि धारण की। वह वीर होते हुए विद्यानुरागी भी था। 'विक्रमांकदेव चरित' के रचयिता **बिल्हण** और 'मिताक्षरा' नामक ग्रंथ के रचयिता **विज्ञानेश्वर** को उसके दरबार में आश्रय प्राप्त था। विक्रमादित्य के पश्चात् यह वंश पतनोन्मुख हो चला और अन्त में 1190 में इस वंश के अन्तिम शासक सोमेश्वर को देवगिरि के यादवों ने पराजित करके कल्याणी के चालुक्यों का अन्त कर दिया।

कल्याणी के चालुक्य वंश के प्रमुख शासक

1. तैलप
2. सत्याश्रम
3. विक्रमादित्य पंचम
4. जयसिंह द्वितीय
5. सोमेश्वर प्रथम
6. सोमेश्वर द्वितीय
7. विक्रमादित्य षष्ठ
8. सोमेश्वर

राष्ट्रकूट वंश

वंश-परिचय- राष्ट्रकूटों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार राष्ट्रकूट यादववंश के थे। **डॉ० फ्लीट** के अनुसार राष्ट्रकूट राठौरों के वंशज थे। **डॉ० भण्डारनायक** के अनुसार, 'राष्ट्रकूट तुंगवंश से सम्बन्धित थे। तुंग के पुत्र का नाम रट्ट था और उसके नाम पर ही इस वंश का नाम राष्ट्रकूट पड़ा।' **बरनेल** का विश्वास है कि वे आन्ध्र देश के द्रविड़ रेड्डियों से सम्बन्धित थे। **अल्तेकर** के मत में राष्ट्रकूट रठियों के वंशज हैं। इनकी भाषा कन्नड़ थी तथा अनेक अभिलेखों में उन्हें 'लट्टलूर पुरवराधीश' अर्थात् 'सुन्दर नगर लट्टलूर के स्वामी' कहकर सम्बोधित किया गया है। लट्टलूर निजाम की रियासत में बीदर जिले में कन्नड़ भाषा-भाषी एक प्रदेश को व्यक्त करता है। अतः इसकी जन्मभूमि यहीं रही होगी।

राष्ट्रकूटों के प्रमुख शासक

1. दन्तिदुर्ग
2. कृष्ण प्रथम
3. गोविन्द द्वितीय
4. ध्रुव निरूपम
5. गोविन्द तृतीय
6. अमोघवर्ष प्रथम
7. कृष्ण द्वितीय
8. इन्द्र तृतीय
9. अमोघवर्ष द्वितीय
10. गोविन्द चतुर्थ
11. अमोघवर्ष तृतीय
12. कृष्ण तृतीय
13. रघोत्तिग
14. कर्क द्वितीय

राष्ट्रकूटों के प्रमुख शासक- इस वंश के प्रारम्भिक शासक **दन्तिवर्मा, इन्द्र प्रथम, गोविन्द प्रथम, कर्क प्रथम तथा इन्द्रराज द्वितीय** आदि थे, जो सामन्तों के रूप में शासन करते थे। राष्ट्रकूटों की उन्नति दन्तिदुर्ग के काल में प्रारम्भ हुई। उसने चालुक्य सम्राट् कीर्तिवर्मन द्वितीय को पराजित किया और **'परमभट्टारकपृथ्वीवल्लभ'** का विरुद धारण किया। दन्तिदुर्ग के पश्चात् **कृष्ण प्रथम** (758-773) गद्दी पर आसीन हुआ। उसने वेंगी के चालुक्य राजा विष्णुवर्धन चतुर्थ को पराजित किया। उसने एलोरा में शिवमन्दिर बनवाया। कृष्ण प्रथम के पश्चात् **गोविन्द द्वितीय** (773-780) तथा ध्रुव निरूपम (780-793) शासक हुए। ध्रुव निरूपम ने काँची के पल्लव राजा को पराजित किया। उसने उज्जैन के प्रतीहार वत्सराज को भी पराजित किया। ध्रुव के

पश्चात् उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र **गोविन्द तृतीय** (793-814) गद्दी पर आसीन हुआ। उसने काँची पल्लवनरेश दन्तिवर्मन तथा चालुक्य राजा विजयादित्य द्वितीय को पराजित किया। तत्पश्चात् उसने उज्जैन के प्रतीहार राजा नागभट्ट को परास्त किया। एक लेख से ज्ञात होता है कि कन्नौज के चक्रायुध तथा गौड़ के धर्मपाल, दोनों ने उसके सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया। पूर्वी चालुक्य राजा विजयादित्य द्वितीय ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया, किन्तु वह परास्त हुआ और गोविन्द तृतीय ने अपने भाई भीम को वेंगी के सिंहासन पर बैठा दिया। इसके बाद उसने गंग, पल्लव, पाण्ड्य तथा केरल के शासकों की शक्ति को कुचल दिया और पल्लवों की राजधानी कांची पर भी अधिकार कर लिया। गोविन्द तृतीय के पश्चात् उसका पुत्र **अमोघवर्ष प्रथम** (814-878) शासक हुआ। उस समय उसकी अवस्था केवल 6 वर्ष की थी, किन्तु वयस्क होने पर उसने सफलतापूर्वक शासन किया। वह विद्वानों का आश्रयदाता था। उसने 'कविराजमार्ग' तथा 'प्रश्नोत्तर मालिका' नामक ग्रन्थों की रचना की थी। अमोघवर्ष प्रथम के पश्चात् क्रमशः **कृष्ण द्वितीय** (878-914), **इन्द्र तृतीय** (914-922), **अमोघवर्ष द्वितीय, गोविन्द चतुर्थ, अमोघवर्ष तृतीय** (922-939), **कृष्ण तृतीय** (939-963), **खोत्तिग** (968-972) शासक हुए। **कर्क द्वितीय** (972-973) इस वंश का अन्तिम सम्राट् था जिसको चालुक्य सम्राट् तैलप ने परास्त किया और राष्ट्रकूट वंश का अन्त कर डाला।

राष्ट्रकूट शासन-व्यवस्था

(1) केन्द्रीय शासन : (i) राजा- राष्ट्रकूट प्रशासन में राजा ही समस्त अधिकार का केन्द्र और स्रोत था। उसकी उपाधियाँ 'महाराजाधिराज', 'परमभट्टारक', 'धरवर्ष', 'अकालवर्ष', 'सुवर्णवर्ष', 'विक्रमावलोक' और 'शुभत्तुंग' थीं। सम्राट एक चित्ताकर्षक सिंहासन पर बैठता था। उसके दरबार में अधीनस्थ सामन्त, विदेशी राजदूत, उच्च सैनिक व नागरिक अधिकारी, कवि, वैद्य, ज्योतिषी और श्रेणियों के प्रतिनिधि उपस्थित रहते थे। राजपद वंशानुगत था और साधारणतः ज्येष्ठ पुत्र ही सिंहासन पर आरूढ़ होता था।

(ii) मन्त्री- राजा मन्त्रियों की सहायता से प्रशासन चलाता था। विभिन्न मन्त्रियों के कार्यों के नाम तो ज्ञात नहीं हैं किन्तु मन्त्रालय प्रधानमन्त्री, विदेश मन्त्री, राजस्व मन्त्री, कोषाध्यक्ष, महान्यायाधीश, प्रधान सेनापति और पुरोहित के रहे होंगे। राजा और उसके मन्त्रियों में पूर्ण विश्वास होता था। मन्त्रियों को राजा का दायाँ हाथ कहा गया है।

(2) प्रान्तीय शासन- प्रशासन की सुविधा के लिए साम्राज्य 'राष्ट्रों' और 'विषयों' में विभक्त था। 'राष्ट्र' का प्रमुख 'राष्ट्रपति' कहलाता था। उसका प्रमुख कार्य अपने अधिकार क्षेत्र में शान्ति और व्यवस्था स्थापित करना था। छोटे सामन्तों तथा कर्मचारियों पर निरीक्षण रखना भी उसका कर्तव्य था। 'विषय' का प्रमुख 'विषयपति' कहलाता था। एक विषय में सम्मिलित ग्रामों की संख्या 1,000 से 4,000 तक थी। प्रत्येक 'विषय' को अनेक 'भुक्तियों' में बाँटा जाता था। 'भुक्ति' का प्रमुख 'भोगपति' कहलाता था। प्रत्येक भुक्ति को 20 ग्रामों में बाँटा जाता था। ग्राम सबसे छोटी प्रशासकीय इकाई थी। 'विषयपति' और 'भोगपति' अपने-अपने सीमित क्षेत्रों में वही कार्य करते थे जो 'राष्ट्रपति' अपने विस्तृत क्षेत्र में करते थे। ग्राम प्रशासन ग्रामप्रमुख और ग्राम कोषाध्यक्ष करते थे। ग्राम में विधि एवं व्यवस्था की स्थापना का दायित्व ग्रामप्रमुख पर था। उसके अधिकार में एक स्थानीय सेना होती थी। ग्राम कोषाध्यक्ष एक सहकारी के रूप में कार्य करता था।

(3) सेना- राष्ट्रकूट सम्राट अत्यन्त महत्वाकांक्षी थे। वे विशाल सेनाएँ रखते थे। सेना की संख्या के विषय में हमारे पास कोई जानकारी नहीं है। डॉ० अल्टेकर का विचार है कि राष्ट्रकूटों की सेना 5,00, 000 से कम नहीं रही होगी। सेना का बहुत बड़ा भाग राजधानी

में रखा जाता था। एक दक्षिण की सेना और एक उत्तर की सेना थी। स्थायी सेनाएँ प्रतिरक्षा और विजय के लिए रखी जाती थीं। मुख्य सैनिक अभियान के समय कुछ टुकड़ियाँ सामन्त और प्रान्तीय गवर्नर दिया करते थे। रसद विभाग का प्रबन्ध धनी व्यापारियों की सहायता और सहयोग से किया जाता था। सेना की भर्ती ब्राह्मण और जैनियों सहित सभी जातियों से की जाती थे। बाँकेय, श्रीविजय, नरसिंह आदि राष्ट्रकूट सेनानी जैन थे।

(4) राजस्व के स्रोत– राष्ट्रकूट साम्राज्य के राजस्व के कई स्रोत थे। सामन्तों से शुल्क के रूप में बहुत सा धन प्राप्त होता था। खानों, जंगलों और ऊसर भूमि से भी आय होती थी। 'उद्रंग' या 'भोगकर' के रूप में भूमिकर से भी पर्याप्त आय होती थी। यह उत्पादन का लगभग पाँचवाँ भाग था। इसे पदार्थ रूप में दो या तीन किस्तों में लिया जाता था। ब्राह्मणों और मन्दिरों को दी गई भूमि पर भी कर लिया जाता था। लेकिन उसकी दर कम होती थी। केवल दुर्भिक्ष के समय में ही भूमि-कर माफ किया जाता था। फलों, सब्जियों आदि पर भी कर लिए जाते थे। भहुत-सी वस्तुओं पर चुंगी और महसूल लिया जाता था।

(5) धर्म– राष्ट्रकूट साम्राज्य में शिव और विष्णु की पूजा लोकप्रिय थी। सम्राटों की मुहरों पर विष्णु के वाहन गरुड़ या योगमुद्रा में बैठे शिव का चित्र है। इस काल में बहुत से ब्राह्मण यज्ञ किये गये। दन्तिदुर्ग ने उज्जैन में 'हिरण्यगर्भ' यज्ञ किया था। पूजा के लिए मूर्ति व मूर्तियों की स्थापना के लिए मन्दिर बनवाये जाते थे। मूर्तियों की पूजा प्रतिदिन होती थी। इस काल का एकमात्र महत्वशाली मन्दिर बनवाये जाते थे। मूर्तियों की पूजा प्रतिदिन होती थी। इस काल का एकमात्र महत्वशाली मन्दिर एलोरा का शिव-मन्दिर है।

जैन-धर्म को अमोघवर्ष प्रथम, इन्द्र द्वितीय, कृष्ण द्वितीय और इन्द्र तृतीय ने संरक्षण प्रदान किया। बौद्धधर्म की इस काल में अवनति हुई और इसका मुख्य केन्द्र कन्हेरी था।

(6) कला– राष्ट्रकूटों ने भारतीय कला को अनुपम भेंट दी है। चट्टान काटकर बनाये गये एलोरा और एलिफैण्टा के पवित्र स्थल इसी काल के हैं। एलोरा का कैलाश मन्दिर अत्यधिक विस्तृत तथा बहुमूल्य है। यह मन्दिर एक वर्गाकार गुफा में काटकर बनाया गया है। यह 83 मीटर लम्बा तथा 46 मीटर चौड़ा है तथा अन्दर जाकर 32 मीटर गहरा है। मन्दिर के चार प्रमुख भाग हैं— मुख्य पवित्र स्थल, पश्चिम का प्रवेशद्वार, नन्दी-मण्डप तथा आँगन के चारों ओर मठ। पर्सी ब्राउन का मत है, 'एलोरा का कैलाश मन्दिर भारत में पत्थर में खोदी गई कला का ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ नमूना नहीं है, अपितु शिला-निर्माण का यह एक अद्वितीय उदाहरण भी है।'' एलिफैण्टा में दो पर्वतों को काटकर मंदिर बनाये गये हैं। यहाँ ब्रह्मा, विष्णु व महेश (त्रिमूर्ति) की विशाल प्रतिमा है। शिव की खण्डित मूर्ति भावों एवं सजीव मुद्राओं से ओत-प्रोत है।

चट्टानों में से काटकर पाँच जैन मन्दिर भी बनाये गये हैं और उनमें 'छोटा-कैलाश', 'इन्द्र-सभा' और 'जगन्नाथ-सभा' प्रमुख हैं।

पल्लव वंश

वंश-परिचय– पल्लवं कौन थे? इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में विशेष मतभेद है। कुछ विद्वानों ने इन्हें विदेशी और उत्तर-पश्चिम के पार्थियानों की शाखा माना है। **श्री रसनयगम्** का मत है कि पल्लव चोड़-नाग कुल के थे। **डॉ0 कृष्णस्वामी आयंगर** का कहना है, 'पल्लव उन नाग राजाओं के वंशज हैं जो सातवाहन सम्राटों के सामन्त थे।' लेकिन इसके विरुद्ध **डॉ0 काशीप्रसाद जायसवाल** का मत है, 'पल्लव न तो विदेशी थे और न द्रविड़ बल्कि उत्तर के शुद्ध अभिजातकुलीन ब्राह्मण थे, जिन्होंने सैनिकवृत्ति अपनी ली थी।' तालगुण्ड अभिलेखों में पल्लवों

को क्षत्रिय कहा गया है। निष्कर्षस्वरूप यह कहा जा सकता है कि पल्लव क्षत्रिय थे और उन्होंने उत्तर से दक्षिण में जाकर अपनी सत्ता जमा ली थी।

पल्लव वंश के प्रमुख शासक- पल्लवों के प्राचीन इतिहास को जानने में तीन ताम्रपत्र- लेख सहायक हैं। इनमें वप्पदेव, शिवस्कन्धवर्मन और वीरवर्मन आदि राजाओं का उल्लेख है। वप्पदेव का अधिकार आन्ध्रपथ और तोण्डमण्डलम् पर था। शिवस्कन्धवर्मन ने दक्षिण की ओर अपने साम्राज्य का विस्तार किया और अश्वमेध, वाजपेय और अग्निष्टोम यज्ञ किये। इसने **'धर्माधिराज'** की उपाधि धारण की। इसके बाद आठ राजाओं के विषय में कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। पल्लवों के प्राचीन इतिहास में विष्णुगोप (350-375) को प्रमुख स्थान प्राप्त है जो कि समुद्रगुप्त का समकालीन था। पल्लव राजाओं का अधिक स्पष्ट इतिहास सिंहविष्णु के समय से प्रारम्भ होता है जिसने पाण्ड्यों, कालभ्रों तथा मालवों को परास्त किया था। उसका पुत्र महेन्द्रवर्मन प्रथम पल्लव वंश का सबसे प्रसिद्ध शासक हुआ।

पल्लव वंश के प्रमुख शासक

1. विष्णुगोप
2. सिंहविष्णु
3. महेन्द्रवर्मन प्रथम
4. नरसिंहवर्मन प्रथम
5. नरसिंह वर्मन द्वितीय

महेन्द्रवर्मन- सिंहविष्णु की मृत्यु के बाद उसका पुत्र महेन्द्रवर्मन प्रथम (600-630) राज- सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसे कई बार चालुक्य नरेश पुलकेशिन् द्वितीय के द्वारा पराजय उठानी पड़ी। इस सम्बन्ध में स्वयं पुलकेशिन् द्वितीय एहोल अभिलेख में कहता है, 'उसने उसकी शक्ति के उत्कर्ष के विरोधी पल्लवनाथ (महेन्द्रवर्मन प्रथम) को अपनी सेनाओं द्वारा धूल में ढँकी काँचीपुर के प्राचीरों के पीछे अपना विक्रम छिपाने को बाध्य किया।' महेन्द्रवर्मन प्रथम ने अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया। उसने उत्तर अर्काट जिले में अपने नाम की झील महेन्द्र वाड़ी के तट पर विष्णु का दरी मन्दिर बनवाया। मण्डगुप्पल अभिलेख से यह प्रमाणित है कि उसने ब्रह्मा, ईश्वर तथा विष्णु के लिए एक मन्दिर बनवाया। वह संगीतप्रेमी भी था। उसने **'मत्तविलास प्रहसन'** नामक नाटक की रचना की थी, जिसमें उस समय के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के धार्मिक जीवन का व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया गया है।

नरसिंहवर्मन प्रथम (630-668 ई०)- महेन्द्रवर्मन के बाद नरसिंहवर्मन प्रथम गद्दी पर बैठा। उसने अपनी शक्ति को सुसंगठित करके 642 ई० में चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय पर आक्रमण किया। इस युद्ध में चालुक्य नरेश अपनी राजधानी वातापी की रक्षा करता हुआ मारा गया। इस प्रकार उसने अपने पिता की पराजय का बदला लिया। उसने 'वातापी- कोंड' और 'महामल्ल' नामक दो विरुद धारण किये और अपने पिता की भाँति त्रिचनापल्ली जिले और यद्दुकोट्टा में अनेक दरी मन्दिरों का निर्माण कराया। उसने महामल्लपुरम् नामक नगर भी बसाया। उसके शासनकाल में चीनी यात्री ह्वेनसांग 642 ई० के लगभग कांची आया। चीनी यात्री काँची के सांस्कृतिक वैभव के सम्बन्ध में लिखता है, 'भूमि उर्वरक है, नियम से जोती जाती है और प्रभूत अन्न उत्पन्न करती है। बहुमूल्य रत्न और अन्य वस्तुएँ वहाँ उत्पन्न होती हैं। लोग सत्यप्रिय और ईमानदार हैं और विद्या का आदर करते हैं। सौ के

लगभग वहाँ संघाराम हैं जिनमें दस हजार भिक्षु रहते हैं। वहाँ प्रायः अस्सी देवमन्दिर हैं और अनेक निर्ग्रन्थ हैं।' प्रसिद्ध बौद्धाचार्य धर्मपाल काँचीपुर का ही निवासी था।

नरसिंहवर्मन प्रथम के बाद उसका पुत्र महेन्द्रवर्मन द्वितीय (668-670) और उसके बाद परमेश्वरवर्मन प्रथम (670-695) सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने चालुक्य नरेश विक्रमादित्य को सम्भवतः परास्त किया। वह शिव का उपासक था। उसने भी अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया।

नरसिंहवर्मन द्वितीय (695-722)- परमेश्वरवर्मन प्रथम के बाद नरसिंहवर्मन द्वितीय कांची के सिंहासन पर बैठा। उसका शासन- काल शान्तिपूर्ण तथा समृद्धिशीलता का था। उसने कैलाशनाथ तथा राजसिंहेश्वर का मन्दिर बनवाया। कांची का **'एरावतेश्वर'** तथा महामल्लपुरम् का **'शोर'** मन्दिर भी सम्भवतया उसी के द्वारा बनवाये गये हैं। संस्कृत का प्रसिद्ध लेखक दण्डी उसी की राजसभा में रहता था।

नरसिंहवर्मन द्वितीय के पश्चात् कोई शक्तिशाली राजा नहीं हुआ। अन्तिम शासक अपराजितवर्मन था जिसको आदित्य नामक चोल सरदार ने परास्त किया। इस प्रकार पल्लव सत्ता का अन्त हो गया।

पल्लव शासन- पद्धति

पल्लवों ने अपने समय की सभ्यता, देश की शासन- प्रणाली, धर्म, साहित्य, कला पर गहरा प्रभाव डाला, जिसका विवरण आगे दिया जा रहा है :

केन्द्रीय शासन : (i) राजा तथा उसके मन्त्रीगण- शासन की सम्पूर्ण शक्ति राजा में जिसे अभिलेखों में 'महाराज' तथा 'धर्म महाराज' कहा गया है, केन्द्रित थी। राजा को प्रशासकीय कार्यों में सहायता देने के लिए मन्त्रियों का एक दल था। राजा की आज्ञाएँ उसका निजी मन्त्री संगृहीत करता था। पल्लवों की शासन- प्रणाली मौर्यों तथा गुप्तों के शासन- संगठन से मिलती- जुलती थी।

(ii) पदाधिकारीगण- पल्लवों के लेखों में अनेक कर्मचारियों तथा उच्चपदाधिकारियों का उल्लेख मिलता है। एक पल्लव अभिलेख में राजा राजकुमारों तथा जिलाधीशों (रट्ठिकों), प्रधान मदम्बों (चुंगी के अफसर), स्थानीय अधिकारी (देशाधिकर्तों), निविध ग्रामों के स्वामियों (ग्राम- भोजकों), मन्त्रियों (अमच्चों), रक्षकों (अरखदिकर्तों), गूंमिकों (वनाधिकारियों), दूतिकों, चरों (संजरन्तकों) और योद्धाओं आदि अधिकारियों को अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता है।

प्रान्तीय एवं स्थानीय शासन- पल्लवों का सम्पूर्ण राज्य मण्डलों (प्रांतों) में विभक्त था। इन मण्डलों के शासक राजवंश के कुमार अथवा अभिजातीय कुलों के व्यक्ति होते थे। मण्डलों के बाद शासन की निम्नतम इकाई ग्राम (गाम) थी। कोट्टमों तथा नाडुओं में भी शासक नियुक्त थे। ग्राम- शासन के लिए ग्राम- सभा थी जिनके अन्तर्गत अनेक समितियाँ थीं। ग्राम- सभा का उत्तरदायित्व बागों, मन्दिरों तथा तालाबों की देखभाल उपसमितियों द्वारा करना था। ग्राम- सभा का कार्य न्याय करना तथा कानून की देखभाल करना भी था। सार्वजनिक दानों का प्रबन्ध करना भी ग्राम- सभा का कार्य था। राज्य की ओर से भूमि की नाप और सिंचाई की व्यवस्था बड़ी सुन्दर थी। पल्लव अभिलेखों के अनुसार गाँव की जनता से 18 प्रकार के कर वसूल किये जाते थे। व्यवसायों पर भी कर लगाया जाता था।

साहित्य- पल्लव राजाओं के शासन-काल में साहित्य की विशेष प्रगति हुई। दक्षिण में काँची विद्या और संस्कृत के प्रमुख केन्द्र के रूप में विख्यात थी। कदम्बकुल के प्रतिष्ठाता मयूरशर्मन को वैदिक शिक्षा पूरी करने के लिए काँची जाना पड़ा था। सिंहविष्णु ने अपनी राजसभा में भारवि को आमन्त्रित किया था। संस्कृत का प्रसिद्ध विद्वान दण्डी नरसिंहवर्मन द्वितीय की राजसभा में रहता था। दण्डी का समकालीन मातृदत्त एक प्रसिद्ध विद्वान् था। बौद्ध विद्वान् धर्मपाल काँची का ही था जो कई वर्षों तक नालन्दा विश्वविद्यालय का कुलपति रह चुका था। पल्लव राजाओं में महेन्द्रवर्मन स्वयं प्रसिद्ध लेखक था। **'मत्तविलास-प्रहसन'** उसी की विख्यात कृति मानी जाती है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि इस समय त्रिवेन्द्रम् से भास के नाटकों के जो संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित हुए हैं, वे पल्लव काल में ही खेले जाने के लिए लिखे गये थे। दिंगनाग नामक बौद्ध दार्शनिक भी सम्भवतः काँची से ही सम्बन्धित था। इस प्रकार साहित्य के विकास में पल्लव-नरेशों का महत्वपूर्ण योगदान था।

धर्म- इस काल में बौद्ध-धर्म प्रचलित था क्योंकि ह्वेनसांग ने काँची में 100 संघाराम और 10, 000 भिक्षु देखे थे जो महायान सम्प्रदाय के थे। यात्री ने अनेक निर्ग्रन्थों के होने की बात भी लिखी है। महेन्द्रवर्मन प्रथम जो पहले जैन था, बाद में शैव हो गया। प्रारम्भिक पल्लव राजा बौद्ध-धर्म के अनुयायी थे, किन्तु बाद के राजाओं ने वैष्णव व जैनधर्म अंगीकार कर लिया था। परन्तु राजाओं की धार्मिक नीति उदार थी।

कला- कला की दृष्टि से पल्लवों का शासन-काल मन्दिरों के निर्माण का युग था। लगभग सभी पल्लव राजाओं ने अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया। इस काल में चार विभिन्न शैलियों का प्रचलन हुआ। इन शैलियों के नाम राज़ाओं के नाम पर ही रखे गये हैं। (1) **महेन्द्र शैली-** इसका प्रवर्तक महेन्द्रवर्मन प्रथम था। इस समय के गुफा-मन्दिर ठोस चट्टानों को काटकर बनाए गये हैं और अपने वृत्ताकार लिंगों, असाधारण द्वारपालों, प्रभा तोरणों और तीनमुखी स्तम्भों की विशेषताओं से अलंकृत हैं। (2) **मामल्ल शैली-** इस प्रकार की शैली का प्रवर्तक नरसिंह वर्मन प्रथम था। उसने महाबलिपुरम् अथवा महामल्लपुरम् में एक ही पत्थर को काटकर रथ-शैली के पाँच पाण्डवों के नाम पर पाँच मन्दिरों का निर्माण कराया। ये शिव-मन्दिर प्रतीत होते हैं। द्रोपदी रथ एक छोटा-सा वर्गाकार मन्दिर है। अर्जुन रथ एक साधारण मन्दिर है। धर्मराज, भीम और सहदेव रथों की शुण्डाकार छतें हैं जिनकी तीन-तीन मंजिले हैं और उनमें चैत्य खिड़की है। एक गुहा-मन्दिर मे गंगावतरण का दृश्य पल्लव-कला की अद्वितीय कृति है। इसमें गंगा को देवताओं, जानवरों और सभी जीवों सहित पृथ्वी पर उतरते हुए दिखाया गया है। (3) **राजसिंह शैली-** इस शैली का निर्माण नरसिंहवर्मन द्वितीय के शासनकाल में हुआ। इसके अन्तर्गत काँची का 'कैलाश नाथ मन्दिर' और महाबलिपुरम् का 'शोर' मन्दिर है। कैलाश मन्दिर में राजाओं और उनकी रानियों की जीवन्त मूर्तियाँ बनी है। (4) **अपराजित शैली-** इस शैली का प्रवर्तक अपराजित वर्मन था। इस शैली की प्रमुख विशेषता यह है कि मन्दिरों के लिंग ऊपर की ओर पतले हैं और शिखरों की गर्दन स्थूल है। बाहुर का मन्दिर इसी शैली का उदाहरण है।

चोल वंश

वंश-परिचय- चोल दक्षिण के प्राचीन निवासी थे। सर्वप्रथम कात्यायन और महाभारत ने चोलों का उल्लेख किया। अशोक के दो शिलालेखों (द्वितीय और त्रयोदश) में उनका उल्लेख

एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में मिलता है। **पेरिप्लस** और **तौलेमि** के 'भूगोल' से चोलों के नगरों और बन्दरगाहों पर प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त **'संगम'** साहित्य में अनेक चोल राजाओं का उल्लेख मिलता है। परन्तु उनके इतिहास का उल्लेख सन्देहात्मक है। नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में चोलों ने पल्लवों को पराजित कर अपने राजनीतिक उत्कर्ष की नींव डाली। इन चोलों के इतिहास का विवरण अच्छी तरह प्राप्त है।

चोल-वंश के प्रमुख शासक- चोलों की राजनीतिक महत्ता **विजयालय** द्वारा स्थापित हुई। उसने तन्जौर को जीतकर राजधानी बनाया। विजयालय के पश्चात् उसके पुत्र आदित्य प्रथम (880-907) ने चोल सत्ता का और अधिक विकास किया। उसने कांची पर अधिकार करके पल्लवों की राजसत्ता का अन्त कर दिया। वह शिव का उपासक था और उसने आराध्यदेव शिव के अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया। आदित्य के बाद उसके पुत्र **परान्तक प्रथम** (907-955) के काल में चोलों की शक्ति का और भी विकास हुआ। उसने अपने अड़तालीस वर्षों के शासनकाल में चोल राज्य की सीमा का विस्तार किया। उसने पाण्ड्य देश के राजा राजसिंह द्वितीय को पराजित किया तथा गंग-वंश के राजाओं को भी हराया। उसने 'तंजेयुन्कोंड' का विरुद धारण किया। पिता की भाँति वह शिव का उपासक था और उसने भी अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया और चिदम्बरम् की 'नटराज' मूर्ति पर सोने की छत बनवाई।

परान्तक प्रथम की मृत्यु के पश्चात् 955 से लेकर 985 तक का काल चोल सत्ता के ह्रास का काल था। इस काल में पाँच निर्बल राजा सिंहासन पर बैठे।

राजराजा प्रथम (985-1014)- राजराजा प्रथम के समय से चोलों के विकास का गौरवशाली युग प्रारम्भ हुआ। उसने शासन-काल के प्रारम्भिक बारह वर्षों के भीतर वेंगी के चालुक्यों, मदुरा के पाण्ड्यों और मैसूर के गंग राजाओं को परास्त किया। उसने लंका के उत्तरी भाग को भी अपने साम्राज्य में मिलाया। राजराजा प्रथम ने कलिंग तथा समुद्र के बारह हजार प्राचीन द्वीपों की भी विजय की। इन द्वीपसमूहों को लक्कदीव और मालदीव माना गया है। इस प्रकार वह सम्पूर्ण मद्रास प्रान्त, कुर्ग, मैसूर और सिंहल के अनेक भागों तथा अनेक प्राचीन द्वीपों का स्वामी था। उसने अपनी पुत्री कुन्दवर का विवाह चालुक्य नरेश विक्रमादित्य से करके अपनी कूटनीतिज्ञता का अच्छा परिचय दिया। उसकी स्थल और नौसेनाएँ सुसंगठित थीं।

चोलवंश के प्रमुख शासक

1. विजयालय
2. आदित्य प्रथम
3. परान्तक प्रथम
4. राजराजा प्रथम
5. राजेन्द्र प्रथम
6. राजाधिराज प्रथम
7. राजेन्द्र द्वितीय
8. वीर राजेन्द्र
9. अधिराजेन्द्र

राजराजा प्रथम शैव था। उसने तंजौर में शिव का एक विशाल मन्दिर बनवाया जिसका नाम 'राजराजेश्वर' उसी के नाम पर पड़ा। वह अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णु था। उसने विष्णु मन्दिरों को दान दिये तथा नागपट्टिनम् में जावा के एक राजा को बौद्धमठ का निर्माण करने के लिए एक गाँव दान में दिया।

राजेन्द्र प्रथम (1014-1044)- राजराजा प्रथम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र राजेन्द्र प्रथम राज-सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसने केरल और पाण्ड्य के राजाओं पर पुनः अपनी शक्ति प्रतिष्ठित की। उसका संघर्ष चालुक्य नरेश जयसिंह द्वितीय से हुआ, जिसमें उसे विजय प्राप्त हुई। उसने बंगाल के राजा महीपाल को भी परास्त किया। उसने अपनी विजयों के उपलक्ष्य में 'गंगैकोण्ड' की उपाधि धारण की। उसका जहाजी बेड़ा शक्तिशाली था। कहा जाता है कि उसने इसके द्वारा कटाह और बृहत्तर भारत के अनेक स्थानों की भी विजय की। राजेन्द्र प्रथम को विद्यानुरागी होने के कारण 'पण्डित चोल' की उपाधि से विभूषित किया गया था। उसने अपनी राजधानी गंगैकोण्डचोलपुरम् में एक विशाल राजप्रासाद और एक मन्दिर का निर्माण कराया। उसने एक झील का भी निर्माण कराया।

अन्तिम चोल शासक- राजेन्द्र प्रथम के पुत्र **राजाधिराज प्रथम** (1044-52) ने अपने पिता के साम्राज्य की पूर्णतया रक्षा की। राजाधिराज प्रथम के बाद क्रमशः **राजेन्द्र द्वितीय** (1052-64), **वीर राजेन्द्र** (1064-70) और अधिराजेन्द्र शासक हुए। अधिराजेन्द्र की हत्या कर दी गई। अतः चोल साम्राज्य चोलों के भाँजे **चालुक्यराजेन्द्र** (1074-1112) को मिला जिसने कुलोत्तुंग की उपाधि धारण की। चालुक्य होते हुए भी उसने सदैव अपने को चोल समझा। उसने तंजौर को ही अपनी राजधानी रखा। कुलोत्तुंग के पश्चात् चोल साम्राज्य का पतन होने लगा और **राजेन्द्र तृतीय** के समय में तो चोलों की शक्ति का पूर्णतया पतन हो गया। वह राज्य की बिगड़ती परिस्थिति को संभाल न सका और विजयनगर के राजाओं ने चोलों की अवशेष शक्ति को 11वीं शताब्दी में सदा के लिये समाप्त कर दिया।

चोल शासन-व्यवस्था

चोलों की शासन-व्यवस्था को निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है-

(1) केन्द्रीय शासन- राजा राज्य का सर्वोच्च अधिकारी था। शासन की सम्पूर्ण शक्तियाँ-न्याय, कार्यकारिणी व विधायी-राजा में निहित थीं। उसकी शक्ति असीम थी, फिर भी उसे देश में प्रचलित रीति-रिवाजों के प्रति निष्ठावान् रहना पड़ता था। वह अपने मन्त्रियों और अधिकारियों के परामर्श से शासन के कार्यों को सम्पादित करता था। उसकी मौखिक आज्ञाओं को उसका निजी मन्त्री (प्राइवेट सेक्रेट्री) लिख लिया करता था। राजा समय-समय पर राज-कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण करने के लिए दौरा किया करता था। युवराज का पद राजा के जीवनकाल में ही निश्चित कर लिया जाता था।

चोल शासन-व्यवस्था

1. केन्द्रीय शासन
2. प्रान्तीय शासन
3. स्थानीय शासन
4. राजस्व-व्यवस्था
5. सैन्य-व्यवस्था
6. सार्वजनिक निर्माण-कार्य
7. दण्ड-व्यवस्था
8. साहित्य एवं कला

(2) प्रान्तीय शासन- शासन की सुविधा के लिए साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त था जिन्हें 'मण्डलम्' कहते थे। प्रत्येक मण्डल को 'कोट्टमों' (कमिश्नरियों) में और प्रत्येक कोट्टम को नाडुओं (जिलों) में विभक्त किया गया था। शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। प्रत्येक ग्राम 'कुर्रम' कहलाता था। मण्डलों के शासक राजकुमार अथवा अभिजात कुल के व्यक्ति होते थे और अन्य इकाइयों में छोटे अधिकारी नियुक्त किये जाते थे।

(3) स्थानीय शासन- चोलों की शासन-व्यवस्था में स्थानीय शासन का प्रमुख स्थान है। मण्डल से लेकर ग्राम तक जनता की सभाएँ थीं। गाँव (ब्राह्मणों के गाँव) 'चतुर्वेदिमंग' कहलाते थे। साधारण गाँवों की सभाएँ 'उरार' और ब्राह्मणों के गाँवों की शासन संस्थाएँ 'सभा' कहलाती थीं। सभाओं के पदाधिकारियों का चुनाव जनता द्वारा होता था। सभा के सदस्यों के लिए डेढ़ एकड़ भूमि का स्वामी होना, अपनी जमीन पर निजी मकान का होना तथा 35 वर्ष से 70 वर्ष की अवस्था आदि का होना अनिवार्य था। ग्राम-सभाएँ राज्य के समस्त कार्यों को सम्पादित करती थीं। उन्हें न्याय सम्बन्धी अधिकार प्राप्त था। लोग अपने दान के रुपये सभा के पास जमा कर देते थे। ग्राम-सभा बाजार-हाट पर नियन्त्रण रखती थी। उसका प्रमुख कार्य आवागमन के साधनों, गाँव की नहरों, बागों और तालाबों की देखभाल करना तथा मठों के जरिये प्रबन्ध करना था। ग्राम-सभा के अन्तर्गत कई समितियों का संगठन था। शासन के लिए निम्न समितियाँ थीं- (1) उद्यान-समिति, (2) कृषि-समिति, (3) सिंचाई-समिति, (4) भूमि-प्रबन्धक समिति, (5) आय-व्यय समिति, (6) शिक्षा-समिति, (7) मार्ग-समिति और (8) कार्य-निरीक्षण समिति। समितियों के सदस्यों का निर्वाचन होता था। सभा के कार्यों और आय-व्यय की जाँच समय-समय पर 'अधिकारी' (राज्य का एक पदाधिकारी) द्वारा की जाती थी। सभा का अधिवेशन प्रायः मन्दिरों में हुआ करता था। इस प्रकार मालूम होता है कि चोल शासन में ग्राम-सभाओं का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण था।

(4) राजस्व-व्यवस्था- राज्य की प्रमुख आय खेतों के लगान से प्राप्त होती थी। उपज का छठाँ भाग कर के रूप में लिया जाता था। करघों, कोल्हुओं, व्यापार, सुनारों, पशुओं, तालाबों , नदियों, नमक, चुँगी, घाटों, बाजारों आदि पर भी कर लगाये जाते थे। राज्य में दुर्भिक्ष पड़ने पर लगान से छूट दी जाती थी। राज्य की अधिकांश आय जन-हित-कार्यों में व्यय की जाती थी।

(5) सैन्य-व्यवस्था- चोल सम्राटों की सेना अत्यन्त सुव्यवस्थित थी। उनकी नौ-सेना भी बड़ी शक्तिवान् थी। चोलों की सेना में चुने हुए धनुर्धरों का समूह, शरीररक्षक पदाति, दक्षिण पार्श्व-पदाति और चुने हुए अश्वारोही आदि थे। सेना कडगम नामक छावनियों में रहती थी। चोल सेना में कुछ सेनापति ब्राह्मण भी थे जो ब्रह्माधिराज कहलाते थे।

(6) सार्वजनिक निर्माण-कार्य- चोल सम्राटों ने सार्वजनिक हित के अनेक कार्यों का निर्माण किया। उन्होंने सिंचाई के लिए कुएँ और तालाब खुदवाये। नदियों के पानी को रोककर अनेक झीलें बनवाई और उनसे सिंचाई के लिए नहरें निकलवायीं। यातायात की सुविधा के लिए अनेक सड़कों का निर्माण कराया। चोल राजाओं ने मन्दिरों और राजप्रासादों से अलंकृत नगरों का निर्माण कराया। राजेन्द्र ने अपनी नई राजधानी गंगैकोण्ड-चोलपुरम् में एक विशाल राजप्रासाद बनवाया तथा एक मन्दिर भी बनवाया, जिसे प्रस्तर की मूर्तियों से अलंकृत कराया था।

(7) दण्ड-व्यवस्था- चोल राजाओं की दण्डनीति कठोर न थी। हत्या करने के अपराध में भी प्राणदण्ड नहीं दिया जाता था। व्यभिचार, चोरी, डकैती और धोखेबाजी को गम्भीर अपराध समझा जाता था । किन्तु इन अपराधों के करने वाले व्यक्ति को भी प्राणदण्ड नहीं मिलता था, बल्कि उसे गधे पर बिठाकर सब ओर घुमा दिया जाता था।

(8) साहित्य एवं कला– चोल राजाओं के शासन-काल में साहित्य एवं कला की विशेष उन्नति हुई। उन्होंने संस्कृत और तमिल भाषा, दोनों को राजसंरक्षण प्रदान किया। जयगोन्दर और कामबन इसी काल के कवि थे। जयगोन्दर ने 'कलिंगट्टुपर्णी' की रचना की थी। कामबन ने 'रामावतारम्' की रचना की थी जो तमिल साहित्य का महाकाव्य है। बुद्धमित्र का 'विरासौलियम्' तथा पवन्दी का 'नन्नौर' तमिल व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। 'जीवक चिन्तामणि' नामक जैन ग्रन्थ तथा 'कुण्डलकेशि' नामक बौद्ध-ग्रन्थ इसी काल में लिखे गये।

चोल राजाओं ने अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया। चोल-मन्दिरों में सबसे अधिक प्रसिद्ध राजराजा प्रथम का बनवाया हुआ तंजौर का 'राजराजेश्वर' मन्दिर तथा राजेन्द्र प्रथम का बनवाया हुआ गंगैकोण्ड-चोलपुरम् का 'ऐरावतेश्वर' मन्दिर है। इस काल में धातु या प्रस्तर की मूर्तियों का निर्माण हुआ। पाठुर के 'नटराज' की कांस्य-प्रतिमा जो 2 फीट ऊँची और 30 किलो वजन की है, भारतीय कला में विशिष्ट स्थान रखती है। सम्प्रति यह प्रतिमा तंजावुर जिले के कोडाईवसल तालुके में वेत्तर नदी के किनारे स्थित प्राचीन अरूरथिरू विश्वनाथ स्वामी मंदिर में प्रतिष्ठित है।

इस काल की ब्रह्मा, विष्णु, राम और सीता, श्रीकृष्ण आदि की मूतियाँ भी उपलब्ध हैं। चोल राजाओं के काल में चित्रकला का भी विकास हुआ। चोल-चित्रकारी के कुछ नमूने तंजौर मन्दिर की प्रदक्षिणा में प्राप्य हैं जो राजराजा प्रथम और राजेन्द्र प्रथम के युग के हैं। तंजौर चित्रों का स्वर धार्मिक है। सर्वश्रेष्ठ चित्रकारी का विषय सुन्दर मूर्ति के जीवन से सम्बद्ध है। पश्चिमी दीवार के चौखटे के ऊपर कैलाश का दृश्य है। शिव योगासन में सिंहचर्म पर बैठे हैं। सामने नन्दी तथा कुछ ऋषि हैं और दूसरी ओर कुछ अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं। शिव को लाल रंग में दिखाया गया है और ऋषि को नीले रंग में। चित्र में शिव के निमन्त्रण पर आये दो मित्रों की कैलाश-यात्रा को उभारा गया है। मन्दिर की उत्तरी दीवार पर एक युद्ध-दृश्य अंकित है। शिव रथ की छत पर खड़े हैं। उनका बायाँ घुटना मुड़ा है और उनके शरीर का सम्पूर्ण भार दायीं टांग पर है जो आगे रखी है। उनके आठों हाथों में विभिन्न शस्त्र हैं। उनका थर्राने वाला निडर भाव सशक्त कार्य का बोध कराता है। सारथी के स्थान पर चतुर्मुखी ब्रह्मा बैठे हैं। सामने असुरों के घोड़े हैं जो शिव और उनके गणों का सामना कर रहे हैं। ऊपर सिंहारूढ़ दुर्गा अपने भाले से एक राक्षस को मारती हुई दिखायी देती हैं। उनके सिंह ने एक अन्य राक्षस की गर्दन उठा रखी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चोल-कला वस्तुत: अत्यन्त उत्कृष्ट थी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. पल्लवों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं? कला तथा साहित्य के क्षेत्र में उनका क्या योगदान था? (1967)
2. चोल साम्राज्य की उपलब्धियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए। (1968)
3. चोल शासन की विशेषताओं पर टिप्पणी लिखिए। (1970)
4. चालुक्य-वंश का संक्षिप्त इतिहास लिखिए। (1973,84)
5. पल्लव-वंश का संक्षिप्त इतिहास लिखिए। (1971)
6. कला तथा साहित्य के क्षेत्र में चोल शासकों की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। (1998)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "पल्लव शासकों ने शासन-प्रणाली, धर्म, साहित्य और कला पर अमिट प्रभाव डाला था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

2. "पल्लव शासकों की महानता उनकी श्रेष्ठ शासन-व्यवस्था पर ही नहीं वरन् उनकी महान् कलाकृतियों पर भी आधारित थी।" इस कथन की ऐतिहासिक तथ्यों सहित व्याख्या कीजिए।
3. "काँची के पल्लववंशीय राजाओं का युग भारत के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास में स्मरणीय है।" इस कथन को समझाइए।
4. "चोल शासकों की महानता उनकी श्रेष्ठ शासन-व्यवस्था पर ही नहीं वरन् उनकी महान् कलाकृतियों पर भी आधारित थी।"इस कथन की ऐतिहासिक तथ्यों सहित व्याख्या कीजिए। (1990)
5. "चोल शासन में शासन निपुणता तथा शुद्धता का एक ऐसा श्रेष्ठ स्तर प्राप्त कर लिया गया था जो संभवतया एक हिन्दू राज्य द्वारा प्राप्त किया गया सर्वोच्च स्तर था।" इस कथन के आलोक में चोल प्रशासन तथा कला का उल्लेख कीजिए।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. दक्षिण भारत के दो प्रमुख राजवंशों का परिचय दीजिए।
2. पल्लव शासन-व्यवस्था का उल्लेख कीजिए।
3. चोल प्रशासन के बारे में आप क्या जानते हैं ? (1985)

(घ) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :

(1) नरसिंहवर्मन प्रथम, (2) राजराज प्रथम, (3) राजेन्द्र प्रथम।

16

बृहत्तर भारत

(विदेशों में भारतीय सभ्यता-संस्कृति का प्रसार)

> **"भारतीय धर्म, भारतीय संस्कृति, भारतीय कानून तथा भारतीय शासन पद्धति ने इस व्यापक क्षेत्र (सुदूर-पूर्व) में रहने वालों के जीवन पर प्रभाव डाला और उन लोगों ने भारत के धर्म, कला व साहित्य के माध्यम से एक उच्चतर नैतिक भाव तथा बौद्धिक अभिरुचि का अर्जन किया।"[1]**
>
> \- आर० सी० मजूमदार

बृहत्तर भारत का अर्थ- प्राचीन काल से ही भारतवासी दुनिया के अन्य देशों के साथ अपना सम्बन्ध रखते चले आ रहे हैं। उस समय के भारतवासियों में अद्भुत उत्साह था। वे बड़े साहसी होते थे। वे दूर-दूर देशों में जाकर बसते थे और वहाँ अपने धर्म तथा संस्कृति का प्रचार-प्रसार करते थे। भारत की भौगोलिक स्थिति ने इस कार्यक्रम को अत्यन्त सुगम बना दिया था। हिन्द महासागर के मध्य स्थित होने के कारण यह प्राचीन संसार के सभ्य देशों के समुद्री मार्ग में पड़ता था। अपनी इस अनुकूल स्थिति के कारण अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारत का पूर्व तथा पश्चिम के देशों के साथ जल तथा स्थल, दोनों ही मार्गों द्वारा अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया था। जिन भारतीयों ने विदेशों के साथ भारत का सम्बन्ध स्थापित किया उन्हें हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं- व्यापारी, उपनिवेशक और धर्म-प्रचारक। व्यापारी व्यापार करने तथा धन कमाने के उद्देश्य से विदेशों में जाया करते थे। उपनिवेशक उपनिवेश बसाने के लिए विदेशों में जाते थे। धर्म-प्रचारक धर्म-प्रचार तथा भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रचार के लिए विदेशों में जाते थे। व्यापार, उपनिवेश स्थापना और धर्म प्रचार- इन तीनों कारणों से धीरे-धीरे भारत का एक विशाल सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित हुआ, जिसे स्थूल रूप से 'बृहत्तर भारत' कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, इसे भारत की सांस्कृतिक दिग्विजय भी कहा जा सकता है। बृहत्तर भारत को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-

(1) उत्तर-पश्चिम का बृहत्तर भारत- इसमें मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया, अफगानिस्तान, तिब्बत, चीन, कोरिया, जापान, फिलीपाइन द्वीप आदि मुख्य रूप से आते हैं।

(2) दक्षिण-पूर्वी एशिया का बृहत्तर भारत- इसमें ब्रह्मा (बर्मा), लंका, चम्पा, फूनान, कम्बुज, जावा, बाली और बोर्नियो, मलाया तथा स्याम आदि सम्मिलित हैं।

---

1. "Indian religion, Indian culture, Indian law and Indian government moulded the lives of the people all over this wide region and they imbibed a more elevated moral spirit and a higher intellectual taste through the religion, art and literature of India."
   -R.C. Majumdar

उत्तर-पश्चिम का बृहत्तर भारत

(1) मध्य एशिया- मध्य एशिया भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख केन्द्र था। काशगर (शैल देश), यारकन्द (चौक्कुक), खोतान, (खोतान्न), शान-शन (चल्मद), उच तुरफान (भरुक), कूची (कुचर), अग्निदेश (करासहर), तुरफान (कोचांग) आदि क्षेत्र भारतीय संस्कृति से प्रभावित थे। इनमें खोतान और कूची सबसे मुख्य थे।

खोतान- फाहियान के अनुसार खोतान बौद्ध-धर्म का प्रमुख केन्द्र था। फाहियान लिखता है, 'यहाँ के निवासी बौद्ध-धर्म के अनुयायी हैं। भिक्षुओं की संख्या हजारों में है। अधिकांश भिक्षु महायान सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। प्रत्येक घर के सामने बौद्ध-स्तूप बनाए गए हैं। इनमें से कोई भी ऊँचाई में 6 मीटर से कम नहीं है।' यहाँ का गोमती बौद्ध-विहार चीनी और भारतीय बौद्ध विद्वानों के लिए महत्वपूर्ण संस्था थी। इस विहार में तीन हजार के लगभग बौद्धभिक्षु निवास करते थे। ये भिक्षु बौद्धधर्म के महायान सम्प्रदाय के मानने वाले थे। इस मुख्य विहार के अतिरिक्त खोतान में 14 अन्य विहार थे। गोमती विहार के भिक्षुओं के नेतृत्व में प्रतिवर्ष एक निश्चित दिन मूर्तियों का जुलूस निकाला जाता था।

खोतान में न केवल बौद्ध-युग के अवशेष मिले हैं, अपितु मासी मजार, नीया और लोन् लन् में बहुत से लेख भी प्राप्त हुए हैं। ये लेख खरोष्ठी लिपि में हैं और काष्ठ-पट्टिकाओं और चर्म-पत्रों पर लिखे गये हैं। इन लेखों का समय दूसरी और तीसरी सदी ई० पू० के लगभग माना जाता है।

कूची- खोतान की तरह कूची का राज्य भी भारतीय संस्कृति का केन्द्र था। पुराणों में सम्भवतः इसी को कुशद्वीप कहा गया है। यहाँ के रहने वाले बौद्ध-धर्म के प्रवल अनुयायी थे। चौथी शताब्दी ईस्वी में यहाँ लगभग दस हजार स्तूप और मन्दिर थे। राजमहलों में भी बुद्ध की बड़ी प्रतिमायें मौजूद थीं। बौद्धधर्म अपनाने के साथ कूची के राजाओं ने भारतीय नाम धारण किये थे। वहाँ के कुछ राजाओं के नाम स्वर्णदेव, हरदेव, सुवर्णपुष्प और हरिपुष्प थे। भारत के एक राजकुल में उत्पन्न कुमारायण का कूची के राजा की बहन जीवा से विवाह हुआ था। इनके कुमारजीव और पुष्पदेव नामक दो सन्तानें थीं। कुमारजीव की शिक्षा-दीक्षा काश्मीर में हुई थी। 383 ई० के लगभग जब कूची पर चीन ने आक्रमण किया तब चीनी कुमारजीव को बन्दी बनाकर चीन ले गये। चीन में कुमारजीव ने भारतीय बौद्ध ग्रन्थों का अन्य विद्वानों की सहायता से चीनी भाषा में अनुवाद किया। बौद्धधर्म का प्रथम परिचय कुमारजीव ने ही चीनवासियों को कराया था।

उत्तर-पश्चिम का बृहत्तर भारत

1. मध्य-एशिया
2. अफगानिस्तान
3. पश्चिमी एशिया
4. तिब्बत
5. चीन
6. कोरिया, जापान और फिलीपाइन द्वीप

मध्य एशिया के क्षेत्र में सर आरिल स्टेल के द्वारा की गई खुदाई से ज्ञात होता है कि लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व से ही भारतीय मध्य एशिया के नगरों में निवास करते थे। तरह-तरह की भारतीय सामग्रियाँ खुदाई से मिली हैं। कनिष्क की राज-सभा के प्रमुख कवि अश्वघोष के नाटक 'सारिपुत्र प्रकरण' के कुछ अंश और उसी के दूसरे नाटकों की पाण्डुलिपियाँ भी

मिली हैं। मध्य एशिया में बौद्धधर्म और हिन्दू धर्म का व्यापक प्रचलन था। सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी इस देश में बौद्धधर्म एवं भारतीय संस्कृति के प्रसार को देखा था।

(2) अफगानिस्तान- भारत के उत्तर- पश्चिम में स्थित अफगानिस्तान का महत्व इस देश के लिए बहुत था। यह भारत के पश्चिमी एशिया, मध्य एशिया तथा चीन के रास्ते पर पड़ता है। अतः वहाँ भारतीयों का बोलबाला होना स्वाभाविक था। उन्होंने वहाँ हिन्दू धर्म तथा बौद्धधर्म दोनों का प्रचार किया। वहाँ के सिक्के, अभिलेख, कला, साहित्य इत्यादि सब कुछ भारतीय थे और मुसलमानों के आगमन तक भारतीय ही रहे। कन्दहार को तो पार्थव और ईरानी 'सफेद हिन्द' कहा करते थे। अफगानिस्तान का पूर्वी भाग भारत के ही अधिकार में था। पश्चिमी भाग समय- समय पर ईरानियों, ग्रीकों, पार्थवों, शकों और कुषाणों के अधिकार में रहा। मौर्यकाल में तो यह भाग भी भारत के कब्जे में था।

(3) पश्चिमी एशिया- पश्चिमी एशिया में भारतीय संस्कृति का चिह्न चौथी शताब्दी ई० पूर्व से ही मिलता है। अशोक ने सिर्फ पश्चिमी एशिया में ही नहीं, वरन् उत्तरी अफ्रीका तथा दक्षिणी यूरोप में धर्म- प्रचार- कार्य करवाया था। सीस्तान के हेलमुन्द की दलदल में बौद्ध विहार के भग्नावशेष मिले हैं। पार्थिया में भी हिन्दू धर्म के प्रचार के प्रमाण मिलते हैं। अलबरूनी ने भी स्वीकार किया है कि प्राचीन काल से खुरासान, ईरान, ईराक, मासूल और सीरिया की सीमा तक बौद्धधर्म का प्रचार था। दूसरी शताब्दी ई० पूर्व में फुरात नदी की ऊपरी घाटी में भारतीयों की एक बस्ती कायम थी। इसके भी प्रमाण हैं कि भारतीय चिकित्सा, ज्योतिष और दर्शन का प्रचार पश्चिमी एशिया में था।

(4) तिब्बत- भारत की उत्तरी सीमा पर स्थित तिब्बत भारत का पड़ोसी है। अतएव वहाँ भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रसार स्वाभाविक था। सातवीं शताब्दी में खोगचन गम्पो नामक सम्राट् ने चीन और नेपाल की राजकुमारियों से विवाह किया जो बौद्धधर्म मतावलम्बी थीं। अतः उन्होंने राजा को भी बौद्धधर्म का अनुयायी बना लिया। उसने समस्त तिब्बत में बौद्धधर्म का प्रचार किया। उसने भारतीय लिपि का भी प्रसार किया। भारत के बहुत से भिक्षु तथा विद्वान् तिब्बत गये। बौद्ध- प्रचारकों का पहला दल 640 में तिब्बत गया और उसने वहाँ भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रचार किया। बौद्ध- धर्म के अनेक धार्मिक ग्रन्थों का अनुवाद तिब्बती भाषा में किया गया जिनमें दो ग्रन्थ 'तँजूर' और 'काँजूर' आज भी विद्यमान हैं।

(5) चीन- ईसा की प्रथम सदी में खोतान से बौद्ध- धर्म चीन पहुँचा। बौद्ध- धर्म का सन्देश ले जाने का श्रेय कश्यप, मातंग और धर्मरत्न नामक बौद्ध- भिक्षुओं को है। ईसा की तीसरी सदी से छठीं सदी तक चीन में बौद्ध- धर्म का प्रचार तीव्र गति से हुआ। तांग वंश का शासनकाल तो चीन के इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से सम्बोधित किया जाता है। चीन के बौद्ध- भिक्षु बौद्ध- धर्मग्रन्थों की खोज में मार्ग की अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए भारत की पवित्र भूमि पर उतरे। इन चीनी यात्रियों में फाहियान, ह्वेनसांग, सुंगयून, इत्सिंग आदि हैं। भारत से भी अनेक बौद्ध- भिक्षु चीन गये और भारतीय बौद्ध- ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। इनमें से सबसे अधिक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् कुमारजीव, गुणवर्मन और परमार्थ हैं। इस प्रकार भारतीय सभ्यता और संस्कृति का चीन में खूब प्रचार हुआ।

(6) कोरिया, जापान और फिलीपाइन द्वीप- चीन से बौद्धधर्म कोरिया और कोरिया से जापान पहुँचा। आज भी इन देशों में बौद्ध-धर्म जीवित है। विगत पन्द्रह सौ वर्ष में इसने इनकी सभ्यताओं को प्रभावित किया है। फिलीपाइन द्वीपसमूह में दक्षिण भारत के निवासियों ने अपने उपनिवेश स्थापित किये। वहाँ की हस्तशिल्प कलाओं, सिक्कों, लोकगीतों आदि में भारतीय प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यहाँ की लिपि भी दक्षिण भारत की लिपि से बहुत कुछ साम्यता प्रकट करती है। गणेश की मूर्ति का प्राप्त होना यह सिद्ध करता है कि यहाँ हिन्दू धर्म प्रचलित था। इस प्रकार बौद्धधर्म के प्रचार से कोरिया तथा जापान में भारतीय सभ्यता और संस्कृति का खूब प्रचार हुआ तथा फिलीपाइन द्वीपसमूहों में भी भारतीय संस्कृति का प्रभाव उनकी धार्मिक तथा सामाजिक प्रथाओं पर दृष्टिगोचर होता है।

दक्षिण-पूर्वी एशिया का बृहत्तर भारत

(1) ब्रह्मा[1]- अशोक के समय से ही भारत और ब्रह्मा के सम्बन्धों की स्थापना हुई। अशोक ने वहाँ दो बौद्ध-प्रचारकों को भेजा था। ब्रह्मा में बौद्ध संघ की भी स्थापना हुई, जिसके प्रयत्नों से बौद्ध-धर्म का प्रचार हुआ। 450 में लंका के बुद्धघोष ने ब्रह्मा जाकर हीनयान सम्प्रदाय स्थापित किया। परिणामस्वरूप दक्षिणी ब्रह्मा में हीनयान सम्प्रदाय का खूब प्रचार हुआ। ब्रह्मा में विष्णु भगवान् की अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि वहाँ ब्राह्मणधर्म का भी प्रचार था। आज भी ब्रह्मा में बौद्ध अनुयायियों की बहुलता है और उनकी भाषा, लिपि और धर्म पर भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप है।

दक्षिण-पूर्वी एशिया का बृहत्तर भारत

1. ब्रह्मा (बर्मा)
2. लंका
3. चम्पा
4. फूनान
5. कम्बुज
6. जावा
7. बाली और बोर्नियो
8. मलाया
9. स्याम

(2) लंका- भारतीय अनुश्रुति के अनुसार लंका में भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रचार श्री रामचन्द्र द्वारा हुआ। लेकिन ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर छठीं शताब्दी ईसा पूर्व बंगाल के राजा विजय ने लंका विजित कर वहाँ अपना उपनिवेश स्थापित किया। अशोक के काल में उसका पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए लंका गये थे। वे अपने साथ बोधिवृक्ष की एक शाखा ले गये थे जिसे अनुराधापुर के एक विहार में स्थापित किया गया था। इसी समय से लंका में बौद्ध-धर्म का प्रचार हुआ। बौद्ध-धर्म के प्रभाव के कारण वहाँ ब्राह्मी लिपि और भाषा का विकास हुआ। वास्तव में लंका के साहित्य, धर्म और कला में भारतीय संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

(3) चम्पा- भारतीयों ने हिन्द-चीन में चम्पा नामक राज्य की स्थापना की थी। आजकल जहाँ अन्नाम है, वहाँ चम्पा राज्य था। इस राज्य के प्रारंभिक हिन्दू राजाओं में भद्रवर्मा और गंगराज प्रसिद्ध हैं। इनके बाद के राजाओं में ईश्वरमूर्ति, रुद्रवर्मा, जयइन्द्रवर्मा तथा जयसिंहवर्मा आदि ने पड़ोसी राज्य कम्बुज और चीन के मंगोल सम्राट् कुबला खाँ से अपने राज्य की

---

1. ब्रह्मा (बर्मा) का नया नाम 'म्यांमार' है।

स्वतन्त्रता की सफलतापूर्वक रक्षा की। यह राज्य हिन्दू और बौद्ध-मन्दिरों से अलंकृत था जहाँ हिन्दू देवताओं, जैसे- शिव, विष्णु, कृष्ण, बुद्ध, गणेश आदि की स्थापना होती थी। तेरह सौ वर्षों से अधिक चम्पा में हिन्दू-राज्य का गौरवमय अस्तित्व रहा, लेकिन सोलहवीं शताब्दी में मंगोलों ने इसकी शक्ति को बिलकुल ही समाप्त कर दिया।

(4) फूनान- वर्तमान समय के हिन्द चीनराज्य के कम्बोडिया प्रान्त में प्राचीन समय में एक भारतीय राज्य की सत्ता थी, जिसका नाम फूनान था। प्रथम शताब्दी ईस्वी में कौण्डिन्य नामक भारतीय ब्राह्मण ने वहाँ जाकर अर्द्ध-सभ्य फूनानवासियों को सभ्य बनाने का प्रयास किया। उसने वहाँ के मूल निवासियों की रानी सोमा के साथ विवाह कर एक नये राजवंश की स्थापना की। कौण्डिन्य अकेला फूनान नहींगया था, उसके साथ अन्य भी बहुत से भारतीय वहाँ जाकर बसे थे। कौण्डिन्यऔर उसके वंशजों के शासन के बाद लगभग 200 ई० तक फान्-चे-यान् नामक सेनापति औरउसके वंशजों ने शासन किया। संभवतः पाँचवीं शताब्दी ईस्वी में कौण्डिन्य नामकदूसरा भारतीय ब्राह्मण फूनान आया जिसने भारतीय धर्म और समाज की वहाँ पुनर्व्यवस्था की। सातवीं शताब्दी ईस्वी में पड़ोसी कम्बुज राज्य के राजा ने फूनान राज्य को अपने राज्य में मिला लिया।

फूनान के राजा शैवधर्म के अनुयायी थे और उनकी भाषा संस्कृत थी। फूनान के लोग वेदों और वेदांगों का अध्ययन करते थे और भारतीय परम्पराओं के अनुकूल आचरण करते थे।

(5) कम्बुज- चम्पा की तरह कम्बुज भी भारतीयों का औपनिवेशिक राज्य था। इस राज्य की राजधानी अंगकोरथोम (यशोधरपुर) थी। यहाँ के राजाओं ने भारत और चीन को अपने दूत भेजे थे। कम्बुज का यशोवर्मा हिन्दू-शासक अर्जुन व भीम-जैसा वीर, सुश्रुत-सा विद्वान, शिल्प, भाषा, लिपि और नृत्यकला में पारंगत था। उसने पातंजलि के महाभाष्य पर एक टीका लिखी थी। उसने अपने राज्य में अनेक आश्रम और मन्दिर बनवाये थे। आश्रम हिन्दू संस्कृति के केन्द्र थे। मन्दिरों में अंगकोरवाट का विष्णु मन्दिर एक आश्चर्यजनक वस्तु है। इसका निर्माण राजा सूर्यवर्मा द्वितीय ने कराया था। यह आजकल एक बौद्ध-विहार है। इसके चारों ओर चार किलोमीटर लम्बी और 200 मीटर चौड़ी खाई है। नहरों द्वारा खाई में जल भरा रहता था। इस खाई को पार करने के लिए पश्चिम की ओर एक पुल बना है जिस पर 300 मीटर चौड़ा एक प्रवेश-द्वार है। मन्दिर की दीवारों और स्तम्भों पर मनुष्यों, पशुओं तथा देवी-देवताओं के चित्र उत्कीर्ण हैं। कम्बुज राज्य में शैव और वैष्णव, दोनों धर्म उन्नत दशा में थे। हिन्दू ग्रन्थों, जैसे- रामायण, महाभारत और पुराण आदि का बड़ा सम्मान था। वहाँ भारतीय आयुर्वेद शास्त्र, चिकित्सा-पद्धति का बहुत प्रचार था। इस प्रकार कम्बुज निवासियों ने हिन्दू धर्म, सभ्यता और संस्कृति को ग्रहण कर लिया था।

(6) जावा (यवद्वीप)- -इण्डोनेशिया के अन्तर्गत द्वीपों में जावा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसका प्रचीन नाम यवद्वीप था। दूसरी सदी तक वहाँ भारतीय लोग बस चुके थे। पाँचवीं सदी के प्रथम चरण में जब चीनी यात्री फाहियान भारत से चीन लौटा तो वह जावा में भी ठहरा था। इस यात्री के यात्रा विवरण से ज्ञात होता है कि उस समय यहाँ शैव मतावलम्बी बहुत थे। पाँचवी सदी में बौद्ध धर्म के प्रचार का श्रेय कश्मीर के राजा संघानन्द के पुत्र गुणवर्मा को है। वह अपने पिता के जीवन-काल में ही भिक्षु बन गया था। पिता की मृत्यु के बाद वह लंका होकर जावा पहुँचा और वहाँ की राजमाता को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। माता की प्रेरणा से

राजा भी बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया और इस प्रकार जावा में बौद्ध-धर्म का प्रसार हुआ। चीन के सम्राट के निमंत्रण पर गुणवर्मा 431 ई० में चीन भी गया था।

जावा में संस्कृत भाषा में लिखे हुए अनेक शिलालेख प्राप्त हुए हैं। इनमें से चार लेख पाँचवी सदी के मध्य भाग के हैं जिन्हें तारुमा राज्य के शासक पूर्णवर्मा ने 431 ई० में उत्कीर्ण कराया था। इन लेखों से यह ज्ञात होता है कि उसके एक पूर्वज ने वहाँ चन्द्रभागा नामक नहर खुदवा कर उसे समुद्र से मिला दिया था और पूर्णवर्मा ने भी गोमती नाम की एक नहर खुदवाई थी।

शैलेन्द्र वंश- -सातवीं सदी में सुमात्रा (सुवर्णद्वीप) के शैलेन्द्र वंशीय राजाओं ने जावा को जीत कर अपने श्रीविजय (आधुनिक पालेम्वंग) साम्राज्य में मिला लिया। इस वंश के राजा बौद्ध मतावलम्बी थे और उन्होंने अनेक बौद्ध विहारों व चैत्यों का निर्माण करवाया। अरब सौदागरों ने जो जावा तथा अन्य द्वीपों से व्यापार करते थे, शैलेन्द्र साम्राज्य के वैभव का उल्लेख किया है। इब्नेरोस्ता नामक एक यात्री (903 ई०) अपने भ्रमण विवरण में लिखता है, "जावक (जावा) का महान् शासक 'महाराजा' कहलाता है। वह भारत के राजाओं में सबसे बड़ा इस कारण नहीं माना जाता, क्योंकि वह द्वीपों का स्वामी है। उस जैसा धनी एवं शक्ति सम्पन्न अन्य कोई राजा नहीं है और न किसी की उसके समान आमदनी है"।

जावा में भारतीय विचार और कला के प्रभाव के स्पष्ट प्रमाण वहाँ के मंदिर हैं। बोरोबुदुर के निकट 'चान्दीबेनन' के विशाल शिव मंदिर में विष्णु, ब्रह्मा, गणेश और अगस्त्य की भी मूर्तियाँ हैं। बौद्ध मंदिरों में 'चान्दी कलशन', 'चांदी-मेन्दूत' और 'चान्दी-सारी' मुख्य हैं। मंदिरों की दीवालों पर रामायण और महाभारत के विविध प्रसंगों की चित्रावलियाँ चित्रित हैं। ऐसे प्रसंगों में बालि-वध, सीता-हरण, सीता हनुमान भेंट, महिषासुर वध आदि उल्लेखनीय हैं। जावा में शैलेन्द्र युग की सबसे महत्वपूर्ण कृति बोरोबुदुर का बौद्ध स्तूप है जो एक पहाड़ी पर स्थित है। यह स्तूप चारों ओर एक के ऊपर एक नौ सीढ़ीनुमा चक्करों से मिल कर बना है। सबसे नीचे चक्कर की लम्बाई 118 मीटर और सबसे ऊपरी चक्कर की 27 मीटर है। इसके विविध गलियारों में बौद्ध कथाओं के 1500 दृश्य अंकित हैं जिन्हें 'पत्थरों पर तराशे महा-काव्य' कहा गया है । यह कथन सर्वदा सत्य भी है।

(7) बाली और बोर्नियो- बाली और बोर्नियो द्वीप में भारतीय सभ्यता और संस्कृति का खूब प्रचार हुआ। बाली द्वीपसमूह हिन्दू राज्य था जिसकी स्थापना चौथी शताब्दी में हुई थी। छठीं शताब्दी में यहाँ कौण्डिन्य राजाओं का शासन था। बाली में आज भी हिन्दू धर्म की प्राचीन परम्परायें विद्यमान हैं। ईसा की प्रथम शताब्दी में, बोर्नियो में हिन्दुओं ने अपना उपनिवेश स्थापित किया। उत्खनन के परिणामस्वरूप यहाँ एक लकड़ी के मन्दिर के भग्नावशेष और बुद्ध तथा शिव की पाषाण प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। इन देवताओं के अतिरिक्त विष्णु, गणेश, नन्दी, स्कन्ध और महाकाल की प्रतिमायें भी उपलब्ध हैं। बोर्नियो के शासक मूलवर्मा ने 'बाहुसुवराकिम' नामक यज्ञ का अनुष्ठान किया था और उसने ब्राह्मणों को 20,000 गायें दान में दी थी। यहाँ की स्थापत्य तथा मूर्तिकला में भी भारतीय कला का प्रभाव है।

(8) मलाया प्रायद्वीप- - -चौथी-पाँचवीं सदी के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उत्तरी और दक्षिणी भारत से आये उपनिवेशकों ने मलाया प्रायद्वीप में अनेक हिन्दू उपनिवेश स्थापित किए थे। अनुश्रुति के अनुसार पाटलिपुत्र के राजवंश का कोई राजकुमार तीसरी सदी में समुद्र मार्ग द्वारा मलाया आया था और वहाँ उसने अपना शासन स्थापित किया था। मलाया में इस

1. मलाया का नया नाम मलेशिया है।

भारतीय राजकुमार का नाम 'मरोङ' प्रचलित है। मरोङ द्वारा स्थापित भारतीय उपनिवेश का नाम लंकाशुक था। इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेक राज्य वहाँ स्थित थे। ताम्रलिंग नामक राज्य में एक लेख प्राप्त हुआ है जिसमें ब्राह्मणों के ऋषि अगस्त्य की पूजा के लिए दान का उल्लेख है। गुरोङजिराई के समीप एक हिन्दू मंदिर के अवशेष और अनेक प्रस्तर मूर्तियाँ मिली हैं। इसके समीप ही चौथी सदी में बने एक बौद्ध मंदिर के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनके साथ संस्कृत का एक शिलालेख भी है। केदह और पेराक राज्यों में अनेक हिन्दू और बौद्ध प्राचीन स्मारक मिले हैं। केदह में महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमा तथा नन्दी का सिर एवं अन्य शैव प्रतीक प्राप्त हुए हैं। पेराक राज्य के शलिनसिङ स्थान से गरुड़ पर सवार विष्णु-मूर्ति प्राप्त हुई है जिसके साथ सोने का एक आभूषण भी है। पेराक में ही एक मुहर प्राप्त हुई है जिसके ऊपर 'श्री विष्णु वर्मस्य' वाकाटकों के लेखों की लिपि में अंकित है। प्रचीन युग के ये और इसी प्रकार के अन्य अवशेष इस बात के ठोस प्रमाण हैं कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के अन्य प्रदेशों के समान मलाया प्रायद्वीप में भी प्रचीन काल में भारतीय धर्म, भाषा और संस्कृति का प्रचार था।

(9) स्याम[1] - स्याम बर्मा के पूर्व में स्थित है। ईसवी सन् की दूसरी या तीसरी शताब्दी में स्याम में द्वारावती नामक भारतीय राज्य का उत्कर्ष हुआ था। स्याम राज्य में अमरावती शैली की काँसे की बौद्धमूर्तियाँ, गुप्तकालीन मूर्तियाँ, स्तूपों व विहारों के भग्नावशेष उपलब्ध हुए हैं। अनेक भारतीय प्रथाएँ एवं त्योहार आज भी स्याम में मनाये जाते हैं। स्याम के नगरों तथा राजाओं के नाम एवं उनकी उपाधियाँ भारतीय प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। स्याम में आज भी भारतीय संस्कृति की प्रधानता है।

संक्षेप में, भारतीयों ने उपरोक्त प्रदेशों एवं द्वीपों के आदिवासियों को सभ्यंता एवं संस्कृति का पाठ पढ़ाया। उनके जीवन के प्रत्येक पहलू पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव पड़ा। इन स्थानों के आदिवासियों को भारत की आध्यात्मिक देन प्रदान कर बृहत्तर भारत की स्थापना की गई। प्रसिद्ध फ्रान्सीसी विद्वान् **सिलवान लेवी** का कथन है, **''ईरान से चीन समुद्र तक, साइबेरिया के तुषाराच्छादित प्रदेशों से जावा और बोर्नियो के टापुओं तक और ओशीनिया से शोकोटरा तक भारत ने अपने विश्वास, अपनी कथाओं और अपनी सभ्यता को फैलाया है। उसे इस बात का पूर्ण अधिकार है, कि अज्ञान के कारण उसे संसार के इतिहास में जो पद प्राप्त नहीं हो सका है, उस पद को अब प्राप्त करे और मानव-आत्मा की प्रतीक महान् जातियों के बीज अपना स्थान ग्रहण करे।''**

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. दक्षिणी-पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रसार का वर्णन कीजिए। (1954)
2. बृहत्तर भारत का क्या तात्पर्य है ? भारतीय संस्कृति का प्रसार दक्षिणी-पूर्वी एशिया में किस प्रकार हुआ ? (1966)
3. दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रचार तथा प्रसार का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए। (1988)

---

1. स्याम का नया नाम थाईलैंड है।

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "दक्षिणी-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति का व्यापक प्रसार हुआ था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
2. "मध्य एशिया भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख केन्द्र था।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (1984)
3. "भारत का औपनिवेशिक और सांस्कृतिक विस्तार भारतीय इतिहास की सबसे उज्ज्वल, किन्तु विस्मृत कहानियों में एक है जिसके गौरव को कोई भी भारतीय न्यायतः अनुभव करेगा।' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
4. "दक्षिण-पूर्व एशिया भारत का प्रतिरूप था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। (1985)
5. "प्राचीन काल में हमारी संस्कृति तथा उपनिवेशों का देश-विदेश में प्रसार एक ऐसा विषय है जो स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है।" इस कथन के संदर्भ में दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रसार का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। (1986)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. बृहत्तर भारत से आप क्या समझते हैं ?
2. दक्षिण एशिया में किन्हीं दो भारतीय उपनिवेशों का परिचय दीजिए।
3. दक्षिण-पूर्व एशिया की सांस्कृतिक प्रगति में भारत का क्या योगदान रहा है ?

(घ) संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

(1) कौण्डिन्य, (2) शैलेन्द्र।

खण्ड : 2

माध्यमिक भारत-भूमि का इतिहास

(मध्यकाल : दिल्ली-सल्तनत)

17

इस्लाम का उदय और अरबों द्वारा सिन्ध- विजय

> **"भारत के इतिहास में और इस्लाम के इतिहास में अरबों द्वारा सिन्ध की विजय किया जाना एक घटना मात्र थी।"** - लेनपूल

इस्लाम का उदय- इस्लाम के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब का जन्म अरब देश में जिस युग में हुआ था, वह अत्यन्त पतनोन्मुखी काल था। एशिया महाद्वीप के इस मरुस्थलीय निर्धन देश में अरबों के विभिन्न कबीले भूमि, चरागाह आदि के स्वामित्व के लिए निरन्तर संघर्षरत रहते थे। समुद्रतटीय अरबों का जीवन अपेक्षाकृत अधिक क्रियाशील एवं गतिशील था। इनकी जीविका का मुख्य साधन व्यापार था। अरबों में भोगवादी जीवन का बोलबाला था। अरबवासी उन दिनों दुराचार में लिप्त, अज्ञानता के अन्धकार से ग्रस्त एवं दरिद्रता के प्रकोप से पीड़ित व अन्धविश्वासों से ग्रसित थे। वे भूत- प्रेतों में भी अटूट विश्वास रखते थे। ऐसी भीषण प्रतिकूल परिस्थितियों में सातवीं शताब्दी में इस निर्धन देश में जन्मे इस्लाम धर्म को प्रारम्भ से ही भीषण विरोध का सामना करना पड़ा।

हजरत मुहम्मद साहब का जीवन- परिचय- इस्लाम के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब का जन्म 570 ई० (हिजरी सम्वत् से 53 वर्ष पूर्व) में अरब के मक्का नगर में कुरेश कबीले के हाशिमी वंश में हुआ था। उनके पिता का नाम अब्दुल्ला और माता का नाम आमिना था। मुहम्मद साहब के जन्म के पूर्व ही उनके पिता का देहान्त हो गया और उनके पालन- पोषण का भार उनके पितामह अब्दुल मुतालिब पर पड़ा। मुहम्मद साहब जब छः वर्ष के ही थे तो उनकी माता का भी परलोकवास हो गया। केवल इतना ही नहीं, जब वह तेरह वर्ष के हुए तो उनके पितामह अब्दुल मुतालिब का भी परलोकवास हो गया और उनके चाचा अबू तालिब ने उनका पालन- पोषण किया जो एक व्यापारी थे। बचपन से ही मुहम्मद साहब की सम्पूर्ण अरब में उनकी सत्यवादिता, जमानतदारी (धरोहर सुरक्षित रखने का उत्तम गुण), ईमानदारी, अद्वितीय मानव- प्रेम तथा अनन्य भक्ति की ख्याति फैल चुकी थी। लोग उन्हें अमीन के लकब से याद करते थे। 25 वर्ष की अवस्था में मुहम्मद साहब का विवाह एक सम्पन्न विधवा खादिजा जिसके यहाँ वह व्यापारिक प्रतिनिधि थे, से हुआ। विवाह का प्रस्ताव स्वयं खादिजा की ओर से आया था जिसे मुहम्मद साहब ने अपने चाचा से परामर्श करके स्वीकार किया था। खादिजा से मुहम्मद साहब के दो पुत्र और चार कन्याएँ उत्पन्न हुईं, जिनमें एक कन्या का नाम फातिमा था, जिसका विवाह उनके चाचा अबू तालिब के पुत्र अली से हुआ जो कालान्तर में इस्लाम धर्म के चौथे तथा अन्तिम खलीफा हुए।

मुहम्मद साहब को व्यापार के कार्य से सुदूर देशों में जाना पड़ा। इन व्यापारिक भ्रमणों में उनका सम्पर्क यहूदियों और ईसाइयों से हुआ। उनके सम्पर्क और धार्मिक चिंतन से उन्हें एकेश्वरवाद का ज्ञान हुआ। 40 वर्ष की अवस्था तक इनका जीवन सामान्य रहा किन्तु इसके पश्चात् इन्हें 'जलवयेनूर' (सत्य के दिव्य दर्शन) प्राप्त हुआ और एक देवदूत द्वारा इस बात का वही (सन्देश) प्राप्त हुआ कि 'अल्लाह के अतिरिक्त दूसरा कोई ईश्वर नहीं है और मुहम्मद

उसके पैगम्बर हैं।' मुहम्मद साहब ने अल्लाह के आदेश से इस्लाम धर्म का प्रचार किया। सर्वप्रथम उनकी स्त्री खादिजा, चचेरे भाई हजरत अली, मित्र अबू बक्र और एक गुलाम जैद विन हारिस ने इस्लाम धर्म स्वीकार किया।

मुहम्मद साहब ने अरब निवासियों में प्रचलित अन्ध- विश्वासों और मूर्ति- पूजा का घोर विरोध किया। फलतः मक्का के गैरमुस्लिम मुहम्मद साहब के घोर विरोधी हो गये। मुहम्मद साहब को अल्लाह के देवदूत द्वारा 'वही' (सन्देश) मिला कि मक्का छोड़कर मदीना चले जाओ। अन्त में वे मक्का छोड़कर मदीना चले गए। मुहम्मद साहब के इस प्रस्थान को 'हिजरत' कहते हैं। इसी समय से (622 ई०) हिजरी सम्वत् प्रारम्भ हुआ। मुस्लिम पंचांग का यह शुभारम्भ माना जाता है। मुहम्मद साहब के प्रगतिशील विचारों को मदीना में व्यापक जन- समर्थन प्राप्त हुआ। अधिकांश जनता ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया और धीरे- धीरे सम्पूर्ण अरब में इस्लाम धर्म का प्रसार हो गया। 8 जून, 632 ई० (10 हिजरी) को 63 वर्ष की अवस्था में इनका शरीरान्त हो गया।

मुहम्मद साहब की शिक्षाएँ- मुहम्मद साहब की शिक्षाएँ पवित्र कुरान में संकलित हैं। उन्होंने प्रत्येक मुसलमान के लिए निम्न पाँच कर्म सिद्धान्त निर्धारित किए-

1. **कलमा-** इस्लाम का मूल मन्त्र है : 'लॉ इलाह- इल्ल, अल्लाह, मुहम्मद उर रसूल अल्लाह' अर्थात् अल्लाह एक है। उसके अतिरिक्त कोई नहीं है और हजरत मुहम्मद साहब उसके पैगम्बर हैं।

2. **नमाज-** काबा की ओर मुख करके प्रतिदिन पाँच बार 'अल्लाह' की नमाज (प्रार्थना) करना। इनको फजिर (प्रातःकाल), जोहर (मध्याह्न), असिर (दोपहर के पश्चात्), मग़रिब (सूर्यास्त के समय), तथा एशा (रात्रि में) की नमाजों के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

3. **रोजा-** रमजान के पवित्र महीने में रोजा (व्रत) रखना।

4. **जकात-** वर्ष में एक बार अपनी वार्षिक बचत का चालीसवाँ हिस्सा निकाल कर स्वेच्छा से गरीबों में बाँटना। यह एक प्रकार का धार्मिक दान होता है।

5. **हज-** अपने जीवनकाल में कम से कम एक बार मक्का की तीर्थयात्रा करना।

इस्लाम धर्म का मूल ग्रंथ 'कुरान' है। मुसलमानों का विश्वास है कि ईश्वर के जो शब्द मुहम्मद साहब को देवदूत जिब्रील द्वारा प्राप्त हुए थे वे ज्यों- के- त्यों इस पवित्र ग्रन्थ में लिपिबद्ध हैं। यह धर्म समानता के आदर्शमय सिद्धान्तों पर आधारित है।

खलीफाओं का उत्कर्ष- हजरत मुहम्मद साहब के देहावसान के पश्चात् अरब में खलीफाओं का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। उनकी मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार के प्रश्न पर उनके दामाद हजरत अली और इनके मित्र अबूबक्र में तीव्र मतभेद उभरे। इस विवाद में अबूबक्र को सफलता प्राप्त हुई। परन्तु इस्लाम धर्मावलंबी दो सम्प्रदायों में विभक्त हो गये। अबूबक्र के अनुयायी सुन्नी और अली के अनुयायी शिया कहलाये। अबूबक्र को पूर्ण जनसमर्थन प्राप्त हुआ और वे प्रथम खलीफा घोषित हुए। खलीफा 'खल्फ' शब्द से बना है। खल्फ का अर्थ लायक बेटा, जाशीन या उत्तराधिकारी है। खलीफा मुस्लिम जगत का धार्मिक गुरु तथा राजनीतिक प्रशासक ही होता था। अरबवासियों ने उमर के वंशज खलीफा वाजिद (706 ई०-714 ई०) के काल में भारत के सिंध प्रदेश में आक्रमणकारी के रूप में प्रवेश किया।

अरबों के प्रारम्भिक आक्रमण

अरबवासियों ने खलीफा उमर के शासन- काल में प्रथम आक्रमण बम्बई के पश्चिमी तट पर स्थित थाना नामक स्थान पर सन् 636-37 में किया किन्तु इस आक्रमण में उनको सफलता न मिली। उनका द्वितीय आक्रमण 644 में स्थल- मार्ग द्वारा सिन्ध पर किया गया, किन्तु यह भी विफल रहा।

मुहम्मद- बिन- कासिम का आक्रमण

आक्रमण का कारण- अरबवासियों के प्रारम्भिक आक्रमण से विदित है कि वे भारत- विजय करके इस्लाम धर्म का प्रचार करने को बड़े लालायित थे। वे पुनः भारत पर आक्रमण करना चाहते थे और उनको सौभाग्य से इसका शीघ्र अवसर मिल भी गया। इस आक्रमण का कारण यह था कि कुछ सामुद्रिक सिन्धी डाकुओं ने देवल के किनारे थट्टा नामक स्थान के पास कुछ अरब जहाजों को लूट लिया था। इस कहानी का वर्णन विभिन्न लेखकों ने विभिन्न प्रकार से किया है:

(i) एक कथन के अनुसार- कुछ अरब व्यापारियों की मृत्यु लंका द्वीप में हो गई थी। ये व्यापारी ईराक के निवासी थे। लंका के राजा ने ईराक के शासक अल हज्जाज के पास अरब व्यापारियों की अनाथ पुत्रियों को भेजा। जब उनका जहाज सिन्धु तट पर पहुँचा तो समुद्री डाकुओं ने जहाज पर छापा मारकर उसे लूट लिया और अनाथ कन्याओं को छीन लिया।

(ii) दूसरे लेखक का कहना है- कि लंका के राजा ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। उसने खलीफा के पास इन जहाजों में बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट के रूप में भेजी थीं जिन्हें सिन्ध के सामुद्रिक डाकुओं ने लूट लिया था।

(iii) तीसरे लेखक के अनुसार- खलीफा ने अपने कुछ सेवकों को भारत में दासियाँ और कुछ अन्य वस्तुएँ खरीदने के लिए भेजा था जिन्हें देवल के समीप सामुद्रिक डाकुओं द्वारा लूट लिया गया था। कहा जाता है कि जब यह समाचार अल हज्जाज ने सुना तो वह बहुत कुपित हुआ और उसने सिन्ध के राजा दाहिर को उन कन्याओं को वापस करने और जहाज की क्षति- पूर्ति के लिए लिखा, किन्तु राजा दाहिर ने कहा, "डाकू मेरी प्रजा नहीं है और न मैं उन्हें दण्ड देने में समर्थ हूँ।" इस उत्तर से ईरान का गवर्नर अल हज्जाज बहुत क्रोधित हुआ और उसने खलीफा की आज्ञा प्राप्त कर भारत पर विशाल आक्रमण करने की योजना बनाई। प्रारम्भ में उसने दो सेनाएँ- उवेदुल्ला और बुदैल के सेनापतित्व में भेजी किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्त में उसने अपने भतीजे तथा दामाद मुहम्मद- बिन- कासिम को चुना, जिसे 712 ई० में सिन्ध पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया।

सिन्ध की दशा- मुहम्मद- बिन- कासिम के आक्रमण के समय सिन्ध की राजनीतिक दशा अच्छी न थी। सिन्ध का प्रान्त शेष भारत से पूर्णतया पृथक् था। शासन- व्यवस्था दुर्बल थी और प्रजा उससे असन्तुष्ट थी। दाहिर अपने वंश का तीसरा राजा था। उसका राज्य चार प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्तों के शासक व्यावहारिक दृष्टि से अर्द्ध-स्वतन्त्र राजा थे। उसकी जनसंख्या कुछ लाख से अधिक न थी। उसके आर्थिक साधन भी दुर्बल थे। संक्षेप में, उस समय सिन्ध इस योग्य न था कि खलीफा के विशाल तथा उस युग के सबसे अधिक शक्तिशाली साम्राज्य के आक्रमण से अपनी रक्षा कर सकता।

मुहम्मद-बिन-कासिम की सिन्ध-विजय

(1) देवल पर अधिकार- मुहम्मद-बिन-कासिम ने पन्द्रह हजार सैनिकों के साथ जिसमें 6.000 सीरियन-अश्वारोही तथा इतने ही ऊँटसवार और 3,000 सामान ढोने वाले बैक्टेरियन ऊँट भी थे, मकरान के मार्ग से भारत की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में मुहम्मद हारूँ के नेतृत्व में कुछ और सेना आकर उसकी सेना में मिल गई। 712 में वह देवल के बन्दरगाह पर पहुँचा। उसने डेरा डालकर खाइयाँ खुदवाना शुरू कर दिया। खाइयों के किनारे बरछी-भाले फेंकने वालों की सेना थी। पत्थर और तीर फेंकने के यन्त्र 'वधु' पर 500 आदमी नियुक्त थे। देवल में एक बड़ा प्रसिद्ध मन्दिर था जिसके शिखर पर लाल झण्डा फहरा रहा था। मन्दिर के एक ब्राह्मण ने देशद्रोह किया (जैसा कि सदैव भारत में किया जाता रहा है)। उसने अरबों से मिलकर यह सूचना दी कि जब तक मन्दिर का झण्डा फहराता रहेगा तब तक नगर को जीतना असम्भव है। एक बड़ा पत्थर निशाना बनाकर फेंका गया, झण्डा गिर गया, जिससे नगरवासियों के हृदय में आतंक भर गया। थोड़े से युद्ध के बाद देवल पर मुसलमानों का अधिकार हो गया यद्यपि दाहिर के सैनिकों ने वीरता से सामना किया। नगर-निवासियों से इस्लाम-धर्म स्वीकार करने को कहा गया लेकिन उन्होंने इस धर्म को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। अतः मुहम्मद-बिन-कासिम के क्रोध का शिकार 17 वर्ष के ऊपर की आयु वाले व्यक्तियों को बनना पड़ा और तीन दिन तक भीषण रक्तपात चलता रहा। वध किये गये पुरुषों के बच्चों तथा स्त्रियों को दास बना लिया गया। मन्दिरों को नष्ट करके उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण करवाया गया। लूट के सामान का 1/5 भाग खलीफा के पास भेज दिया गया। **डॉ० आशीर्वादीलाल** के अनुसार, "इस पराजय का कारण भारतीय सैनिकों की कायरता नहीं, बल्कि एक भारतीय नरेश का प्रमाद और शत्रु सेना की अधिकता थी।"

मुहम्मद-बिन-कासिम की सिन्ध-विजय
1. देवल पर अधिकार
2. नीरुन पर अधिकार
3. ब्राह्मणवाद पर अधिकार
4. अरोर पर अधिकार
5. मुल्तान की विजय

2. नीरुन पर अधिकार- देवल में एक शासक नियुक्त कर मुहम्मद नीरुन की ओर बढ़ा जिसकी रक्षा का भार दाहिर के पुत्र जयसिंह के हाथ में था। लेकिन राजा दाहिर ने उसको अपने पास बुला लिया था और नगर की रक्षा का भार एक ब्राह्मण पुरोहित को सौंप दिया था। उसने बिना किसी प्रकार का विरोध किये मुसलमानों को नगर सौंप दिया इस प्रकार बिना युद्ध किये ही मुहम्मद का नगर पर अधिकार हो गया। नीरुन में एक मुसलमान गवर्नर को नियुक्त कर मुहम्मद ने 'सेहवान' तथा 'सौसम' पर भी अपना अधिकार स्थापित किया।

(3) ब्राह्मणवाद पर अधिकार- मुहम्मद-बिन-कासिम ब्राह्मणवाद की ओर बढ़ा जहाँ स्वयं राजा दाहिर मोर्चा लगाये युद्ध के लिए तैयार खड़ा था। अरब लेखकों के अनुसार उसने 50, 000 सैनिक एकत्रित किये थे। अरब सेना कई महीने सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर पड़ी रही। जब ईराक से 2,000 घोड़ों की कुमुक आ गई तो मुहम्मद ने सम्पूर्ण सेना के साथ सिन्धु नदी पार की। 20 जून, 712 को दोनों ओर की सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। दाहिर हाथी पर बैठा युद्ध का संचालन कर रहा था, किन्तु दुर्भाग्य से उसको एक बाण लगा और

वह हाथी से गिर पड़ा। लेकिन तुरन्त वह घोड़े पर सवार होकर पुनः युद्ध करने लगा, किन्तु मुहम्मद की सेना ने उसे चारों ओर से घेर लिया और घातक प्रहार किए। वह घोड़े से पृथ्वी पर गिर गया और एक मुसलमान सैनिक ने अपनी तलवार के वार से उसके दो टुकड़े कर दिये। दाहिर की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी रानी बाई ने कुछ समय तक 15,000 सैनिकों की मदद से मुसलमानों की गति रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु उसको सफलता नहीं प्राप्त हुई। उसने अन्य स्त्रियों के साथ जौहर कर लिया। दाहिर के पुत्र जयसिंह ने 'चितूर' में जाकर शरण ली। सिन्ध का समस्त प्रदेश मुहम्मद के अधिकार में आ गया। यहाँ उसे राजा दाहिर की रानी लाड़ी और दो पुत्रियाँ, सूर्या देवी और परमलदेवी प्राप्त हुईं। रानी लाड़ी से उसने स्वयं अपना विवाह किया और दोनों पुत्रियों को खलीफा के पास भेज दिया।

ब्राह्मणवाद में मुहम्मद ने कुछ उदारता दिखाई और अल हज्जाज द्वारा भेजे हुए निम्नलिखित आदेश का पालन किया-

"क्योंकि उन्होंने अधीनता स्वीकार कर ली है और खलीफा को कर देना स्वीकार कर लिया है, अतः उनसे और कुछ जबरदस्ती लेना उचित न होगा। उन्होंने हमारा संरक्षण स्वीकार कर लिया है, इसलिये उनकी हत्या करना तथा उनकी सम्पत्ति लेना अनुचित है। उनको अपने देवताओं की पूजा करने की अनुमति है। किसी भी मनुष्य को अपने धर्म के पालन से रोका न जाय। वे जिस तरह चाहें अपने घरों में रह सकते हैं।"

(4) अरोर पर अधिकार- ब्राह्मणवाद से निवृत्त होकर मुहम्मद-बिन-कासिम ने सिन्ध की राजधानी अरोर पर आक्रमण किया। दाहिर के पुत्र ने नगर को बचाने का भरसक प्रयत्न किया लेकिन सब व्यर्थ गया और नगर पर मुहम्मद का अधिकार हो गया।

(5) मुल्तान की विजय- अरोर की विजय के पश्चात् मुहम्मद मुल्तान की ओर अग्रसर हुआ। मार्ग में अनेक स्थानों पर आधिपत्य स्थापित करते हुए वह मुल्तान पहुँचा। एक देशद्रोही के कारण इस नगर का पतन हुआ। उसने अरबों को उस जलधार का पता दे दिया, जहाँ से सम्पूर्ण नगर को पानी मिलता था। अरबों ने जल लाने के मार्ग को ही काट दिया, जिससे दुर्ग में जल-प्रवेश बन्द हो गया। जल की कमी के कारण सैनिक निराश हो गये और उन्होंने बिना युद्ध किये ही मुहम्मद के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। **लेनपूल** के अनुसार, "सब योद्धाओं को मार डाला गया और पुजारियों, मजदूरों, स्त्रियों और बालकों को कैदी बना लिया गया।" मुल्तान में अरबों को इतना अधिक धन प्राप्त हुआ कि उन्होंने मुल्तान का नाम स्वर्ण-नगर ही रख दिया।

मुहम्मद-बिन-कासिम की मृत्यु- जिस प्रकार मुहम्मद-बिन-कासिम का आक्रमण इतिहास की रंगीन घटना है, उसी प्रकार उसका दुःखद अन्त भी क्रम रोमांचकारी घटना नहीं है । कहा जाता है कि जब दाहिर की दोनों पुत्रियाँ, सूर्या देवी और परिमल देवी नवखलीफा के सामने उपस्थित की गईं तो उन्होंने खलीफा से बताया कि मुहम्मद ने उनके कुमारीत्व को भ्रष्ट कर दिया है । इस पर खलीफा ने अत्यधिक क्रोधित होकर यह आज्ञा दी कि मुहम्मद-बिन-कासिम को जीवित अवस्था में ही बैल की खाल में सीकर मेरे सामने उपस्थित किया जाय । खलीफा का आदेश प्राप्त होते ही मुहम्मद ने आत्मसमर्पण कर दिया।

इस आज्ञा का शीघ्र ही पालन किया गया और तीन दिन बाद उसकी मृत्यु हो गयी। जब खलीफा ने उस खाल को दाहिर की पुत्रियों के सामने खुलवाया, तो वे मुहम्मद के साहस और आत्मसमर्पण की भावना से द्रवित हो गईं और उन्होंने खलीफा से बताया कि अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए यह कार्य किया। यह सुनकर खलीफा को बड़ा क्रोध आया और उसने आज्ञा दी कि इन राजकुमारियों को घोड़ों की पूँछ में बाँधकर उस समय तक घसीटा जाय जब तक कि वे मर न जायँ। उसकी आज्ञानुसार ऐसा ही किया गया। आधुनिक इतिहासकार इस मनगढ़न्त कहानी पर विश्वास नहीं करते। उनके अनुसार मुहम्मद की मृत्यु राजनीतिक कारणों द्वारा हुई। 715 में खलीफा वाहिद की मृत्यु के बाद उसका भाई सुलेमान खलीफा के पद पर आसीन हुआ। सुलेमान अल हज्जाज का कट्टर शत्रु था। उसने उसे तथा उसके सम्बन्धियों को कठोर दण्ड दिये। मुहम्मद अलहज्जाज का भतीजा तथा दामाद था। अतः उसे भी उसकी क्रोधाग्नि का शिकार बनना पड़ा। मुहम्मद को बन्दी बनाकर मेसोपोटामिया भेज दिया, जहाँ कठोर यातनाएँ देकर उसका वध कर दिया गया। वास्तव में यह तथ्य अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है।

सिन्ध के पतन के कारण
अथवा
सिन्ध पर मुहम्मद- बिन- कासिम की सफलता के कारण

अरब आक्रमण की सफलता के बहुत से कारण थे, जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं-

(1) आन्तरिक एकता का अभाव- सिन्ध प्रांत में आन्तरिक एकता का अभाव था। कोई ऐसा योग्य व्यक्ति नहीं था जो आन्तरिक अशान्ति को एकता के सूत्र में बाँधकर आक्रमणकारियों का सामना करता। जाट, मेद तथा अन्य जातियों को उच्च वर्ग के लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे। वे न घोड़ों पर सवार हो सकते थे और न अस्त्र-शस्त्र ही धारण कर सकते थे। परिणामस्वरूप उपेक्षित जातियों ने आक्रमणकारियों का साथ दिया।

(2) राजा दाहिर की अकर्मण्यता- राजा दाहिर और उसका शासन अलोकप्रिय था। दाहिर और उसके पुत्र, दोनों से ही प्रजा असन्तुष्ट थी। राजा में नेतृत्व का अभाव था। उसने राज्य की सीमाओं की रक्षा के लिए कोई प्रबन्ध नहीं किया। उसकी अकर्मण्यता का इससे बढ़कर और क्या उदाहरण हो सकता है कि उसने युद्ध करना तो दूर रहा, अँगुली तक नहीं उठाई और आक्रमणकारियों ने देवल, नीरुन, सेहवान और सौसम पर सफलता से अधिकार कर लिया। दाहिर की इस अकर्मण्यता के लिए इतिहास उसे कभी क्षमा नहीं करेगा।

(3) प्रजा का असहयोग- राजा दाहिर की अकर्मण्यता और अलोकप्रियता का ही परिणाम था कि उसे अरब आक्रमणकारियों का सामना करने के लिए प्रजा का सहयोग नहीं प्राप्त हुआ। विशेष रूप से बौद्धों एवं व्यापारियों ने यह कहा कि युद्ध करना हम लोगों का काम नहीं है, युद्ध में भाग लेने से इन्कार कर दिया। प्रान्तीय सूबेदारों ने भी संकट के समय सहयोग प्रदान नहीं किया।

मुहम्मद- बिन- कासिम की सफलता के कारण

1. आन्तरिक एकता का अभाव
2. राजा दाहिर की अकर्मण्यता
3. प्रजा का असहयोग
4. भारतीयों का विश्वासघात
5. अरब सेना का धार्मिक उत्साह
6. अरब सेना का सुसंगठित होना

प्रजा की असन्तुष्टता का ज्वलन्त प्रमाण यह है कि मुल्तान विजय के समय कई देशी जातियों के लोग घण्टी बजाते, ढोल पीटते और नाचते हुए मुहम्मद- बिन- कासिम का स्वागत करने आए, क्योंकि हिन्दू राजाओं ने इन लोगों का बहुत शोषण किया था।

(4) भारतीयों द्वारा विश्वासघात- जहाँ एक ओर भारतीय हिन्दुओं का इतिहास गौरवान्वित है वहीं दूसरी ओर वह कलंकित भी है। ब्राह्मण पुजारी के विश्वासघात के कारण मुहम्मद को देवल पर विजय मिली। इसी प्रकार मुल्तान का पतन एक देशद्रोही के कारण हुआ। उसने अरबों को उस जलधार का पता बता दिया जहाँ से सम्पूर्ण नगर को जल प्राप्त होता था। जल- संकट ने नगरवासियों को आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य कर दिया। इतिहास ऐसे विद्रोहियों का 'कलंक का टीका' के रूप में सदैव परिचय देगा।

(5) अरब- सेना का धार्मिक उत्साह- अरब सेना में इस्लाम के प्रचार का धार्मिक उत्साह बहुत अधिक था जबकि दूसरी ओर भारतीय सेना में इस प्रकार के उत्साह का सर्वथा अभाव था। उसमें अपने हिन्दू धर्म और संस्कृति के प्रति तनिक भी मोह न था। अरब सेना के विजयी होने से उसके उत्साह में प्रतिदिन वृद्धि होती चली गई, जबकि उसके विपरीत लगातार पराजित होने से हिन्दू हतोत्साहित होते चले गये। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण सिन्ध प्रदेश मुहम्मद के अधिकार में आ गया।

(6) अरब सेना का सुसंगठित होना- भारतीय सेना की अपेक्षा अरब सेना अधिक संगठित थी। उसमें सीरिया और ईराक के कुशल सैनिक तथा घुड़सवार सम्मिलित थे। यद्यपि भारतीय सेना में साहस, निर्भीकता आदि गुणों का अभाव न था, फिर भी संगठन का अभाव होने के कारण यह अपनी तत्परता एवं वीरता का परिचय न दे सकी। भारतीय सेना के सम्मुख अरब सेना बड़ी विशाल थी और उसके पास युद्ध- सामग्री भी पर्याप्त थी। इसके विपरीत भारतीय सेना की संख्या तो कम थी ही, उसके पास युद्ध- सामग्री एवं अस्त्र- शस्त्रों का भी अभाव था।

अरब आक्रमण का प्रभाव

(अ) राजनीतिक क्षेत्र में एक साधारण घटना- राजनीतिक दृष्टि से अरबों के आक्रमण का भारत पर बहुत कम प्रभाव पड़ा, क्योंकि उनकी सिन्ध विजय क्षणिक थी। मुहम्मद- बिन- कासिम की मृत्यु के कुछ समय बाद ही अरब सत्ता का अन्त हो गया और पुनः हिन्दुओं ने अपनी शासन- सत्ता स्थापित कर ली। **लेनपूल** का मत है, "अरबों ने सिन्ध पर विजय प्राप्त की, परन्तु यह विजय भारतीय तथा मुस्लिम इतिहास में केवल एक परिणामरहित घटना मात्र रह गई।" इसी प्रकार **सर वूल्जे हेग** का कहना है, "अरबवासियों द्वारा सिन्ध की विजय के प्रसंग में कुछ विशेष नहीं कहना है। यह भारत के इतिहास में एक कथामात्र थी और इस विशाल देश के बहुत छोटे भाग पर इसका प्रभाव पड़ा।"

(ब) सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रभाव- राजनीतिक क्षेत्र में अरब विजय का महत्व कम है, किन्तु सांस्कृतिक क्षेत्र में इसका प्रभाव स्थायी तथा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस समय अरबनिवासी और भारतीय एक दूसरे के सम्पर्क में आये। भारतीयों के सम्मुख अरबवासी असभ्य एवं बर्बर थे। अरबवासियों पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने शासन, कला, ज्योतिष, संगीत, चिकित्सा, चित्रकला और वास्तुकला के क्षेत्र में भारतीयों से बहुत कुछ सीखा और इनका ज्ञान प्राप्त किया। एक बार बगदाद के खलीफा हारूँ रशीद ने जो कि

एक असाध्य रोग से ग्रसित था, माणिक्य नामक एक भारतीय वैद्य को अपनी चिकित्सा के लिए बुलाया, जिसको इलाज करने में सफलता प्राप्त हुई। हारूँ ने अनेक भारतीय विद्वानों को बगदाद बुलाकर विविध शास्त्रों का अनुवाद अरवी भाषा में करवाया जिनका प्रचार यूरोप में भी हुआ। खलीफा मंसूर के शासनकाल में भी बहुत से भारतीय विद्वान् बगदाद गये जिनमें गणित एवं ज्योतिष के एक विद्वान् ने वहाँ के गणितज्ञ इब्राहिम पिजरी के साथ 'ब्रह्म सिद्धान्त' का अरबी भाषा में अनुवाद किया। 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश' तथा 'खण्ड खाण्ड्यक' का भी अनुवाद अरबी में किया गया। अरबवासियों ने शतरंज का खेल तथा अंकों का ज्ञान भारतीयों से सीखा। कुछ अरबी विद्वानों ने भारतीय भाषा-संस्कृत का ज्ञान इतना अधिक प्राप्त किया कि उन्होंने कुरान शरीफ का संस्कृत में अनुवाद किया। अरबों ने मस्जिदों के निर्माण करने और उन्हें अलंकृत करने के लिए भारतीय शिल्पियों तथा चित्रकारों को अपने यहाँ रखा। इस प्रकार अरबवासियों के भारतीयों के सम्पर्क में आने से अरब सभ्यता की बड़ी उन्नति हुई। इतिहासकार **वेल्स** के इस कथन में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है कि "मध्य-युग में जब यूरोप में अज्ञान का अन्धकार था तव ज्ञान का दीप अरबों को भारत में प्राप्त हुआ था।"

(स) धार्मिक क्षेत्र में प्रभाव- अरब आक्रमण का प्रभाव धार्मिक क्षेत्र में भी पड़ा। उसने हमारे देश में इस्लाम का बीज बोया। सिन्ध प्रान्त की जनता में से बहुतों को अपना पैतृक धर्म छोड़कर इस्लाम अंगीकार करना पड़ा और इस प्रकार विदेशी धर्म इस्लाम के स्थायी रूप से इस देश में पैर जम गये। बाद में उत्तर-पश्चिम से जो आक्रमणकारी आये, उन्होंने इस धर्म की सहायता से और भारतीय मुसलमानों की सहानुभूति प्राप्त कर अपने स्वार्थों की पूर्ति कर अनुचित लाभ उठाया। भाग्य-निर्णायक घटनाओं का यह पहला ताँता ऐसा लगा कि जिसके परिणामस्वरूप हमारे देश का विभाजन हुआ और 1947 में पाकिस्तान की स्थापना हुई।

अरब-विजय के अस्थायी होने के कारण

अरबों की विजय के अस्थायी होने के मुख्य कारण निम्नलिखित थे-

(1) भारतीय सभ्यता का सुदृढ़ होना- अरबों की सभ्यता और संस्कृति की अपेक्षा भारतीय सभ्यता और संस्कृति अधिक उन्नत तथा सुदृढ़ थी। भारत में हिन्दू पुरोहित वर्ग ने विदेशी संस्कृति से हिन्दुओं की संस्कृति की रक्षा की। उनकी दृष्टि में मुसलमान म्लेच्छ और बर्बर थे। वे अपनी हिन्दू संस्कृति को अरबों की संस्कृति से कहीं अधिक श्रेष्ठ मानते थे। इस प्रकार उन्होंने भारतीय हिन्दू धर्म को इस्लाम धर्म में विलीन होने से बचाया।

(2) खलीफा के पद और वंश में परिवर्तन- प्रारम्भिक खलीफा ने अरब राज्य के विस्तार के लिए जो सहयोग प्रदान किया वैसा सहयोग बाद के खलीफा ने नहीं प्रदान किया, बल्कि उसके आदेश से मुहम्मद-बिन-कासिम जैसे सुयोग्य विजेता का वध किया गया। आगे चलकर बगदाद में नयी खिलाफत की नींव पड़ी जिसके कारण अरबों के साम्राज्य की आन्तरिक एकता और भी शक्तिहीन हो गई। 750 में दमिश्क में जो विद्रोह हुआ उसके परिणामस्वरूप उम्मयद वंश की जगह अब्बासी वंश की स्थापना हुई। इन दोनों वंश के दीर्घकालीन संघर्ष ने अरबों की गिरती प्रतिष्ठा को और धक्का पहुँचाया। इस पारस्परिक संघर्ष का प्रभाव पूर्णरूप से सिंध पर भी पड़ा।

(3) राज्यों का विकेन्द्रीकरण- भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। आक्रमणकारियों को राज्य पर अधिकार करने के लिए विभिन्न राज्यों से अलग-अलग युद्ध करना पड़ता था। इससे उनकी सैनिक शक्ति और भी क्षीण होती गई। आक्रमणकारियों के विजय अभियान में भी वह जोश नहीं रहा, क्योंकि उत्तर-पूर्व में ऐसे शक्तिशाली राजपूत राज्य स्थापित थे जो अरबों को पराजय की धूल चटाते और एक-एक इंच के लिए भीषण युद्ध करते।

(4) सिन्ध की असन्तोषजनक आर्थिक स्थिति- आर्थिक दृष्टि से सिन्ध एक अभावग्रस्त प्रान्त था। खलीफा तथा अन्य पदाधिकारियों को उससे कोई आय नहीं होती थी जिसके कारण वे आर्थिक दृष्टि से इतने शक्तिहीन थे कि पड़ोसी राज्यों के विरुद्ध जो उनसे अधिक शक्तिशाली थे, कुछ भी कर सकने में असमर्थ थे। सिन्ध की स्थिति भी ऐसी थी कि जहाँ से आगे बढ़ने पर राजस्थान का मरुस्थल पड़ता था, जिसको पार करना बड़ा कठिन कार्य था।

(5) धार्मिक जोश का अभाव- अरबों ने जिस धार्मिक जोश से सिन्ध को जीता था वह आगे चलकर ठण्डा हो गया। अरबों के चरित्र और जीवन-प्रणाली में भी वह सुदृढ़ता न रही। उनका जीवन विलासी हो गया और नैतिक स्तर दिन-दिन गिरता गया। ''न तो वे महान् सैनिक कार्यों के योग्य रहे और न शासन के क्षेत्र में ही उन्होंने मौलिकता और साहस का परिचय दिया।''

(6) नियन्त्रण का अभाव- सिन्ध के शासकों पर खलीफा का पहले जैसा नियन्त्रण न रहा। बगदाद से कठोर नियन्त्रण बनाये रखना भी असम्भव था। खलीफा का नियन्त्रण उस समय और भी शक्तिहीन हो गया जब महत्वाकांक्षी तुर्कों ने खलीफा को अपने हाथ की कठपुतली बना लिया। इससे अरबों के प्रभुत्व को बड़ा धक्का लगा।

(7) अरबवासियों का शासन-व्यवस्था से अनभिज्ञ होना- अरबवासियों को शासन-पद्धति, राज्य सम्बन्धी नियमों और न्याय-सिद्धान्तों का ज्ञान न था। दूसरे शब्दों में, शासन-व्यवस्था की कला से वे पूर्णतया अनभिज्ञ थे। उन्होंने जीते हुए नगरों की व्यवस्था के लिए केवल एक सैनिक पदाधिकारी नियुक्त किया जिसके अन्तर्गत लगभग 4,000 सैनिक काम करने के लिए रखे गये। अरबों ने शासन-व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जिसके कारण स्थायी शासन की स्थापना भी न हो सकी।

(8) मुहम्मद-बिन-कासिम की अकाल मृत्यु- मुहम्मद-बिन-कासिम की अकाल मृत्यु से अरबों के उद्देश्यों की पूर्ति में बड़ा धक्का पहुँचा। मुहम्मद के बाद कोई ऐसा योग्य सेनापति नहीं हुआ जो भारत-विजय के कार्य को बढ़ाता। परिणामतः अरबों का भारत-विजय का स्वप्न समाप्त हो गया। आगे चलकर तुर्कों की बढ़ती हुई शक्ति ने खिलाफत का ही अन्त कर दिया और सम्पूर्ण शासन-सत्ता पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

संक्षेप में, यही कहा जा सकता है कि अरबों का सिन्ध-विजय का भारत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और न उनका राज्य ही रह सका। **लेनपूल** ने ठीक ही कहा है, ''अरबों का आक्रमण असफल रहा। उन्होंने गलत दिशा में आक्रमण किया और सबसे कम उपजाऊ इलाके में प्रवेश किया। बहुत कम संख्या में होने के कारण वे देश में जम न सके।'' इसी प्रकार **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** का कथन है, ''खिलाफत के नष्ट होते ही अरबों का आधिपत्य ढीला पड़

गया और सिन्ध के शासक प्रायः स्वतन्त्र हो गये। हिन्दू संस्कृति से सम्पर्क छूट जाने पर अरबी विद्वानों ने यूनानी कला, साहित्य, दर्शन एवं विज्ञान का अध्ययन प्रारम्भ किया।''

अरबों की शासन- व्यवस्था

(1) राजनीतिक विभाजन- अरबों की शासन- व्यवस्था इस्लामी शासन- पद्धति पर आधारित थी। उन्होंने विजित नगरों का प्रबन्ध करने के लिए एक पदाधिकारी की नियुक्ति की। प्रान्त का विभाजन कई जिलों में किया गया था। स्थानीय शासन नगर- वासियों के ही हाथों संचालित था। भूमि जोतने का कार्य हिन्दुओं को करना पड़ता था। मुसलमान सैनिकों और फकीरों को जागीरें मिली हुई थीं। कुछ सैनिकों को वेतन भी दिया जाता था।

(2) राजस्व- व्यवस्था- अरबों ने प्राचीन राजस्व- व्यवस्था को ही बनाए रखा। आय के प्रमुख स्रोत भूमि- कर तथा जजिया थे। भूमिकर उपज का 1/5 से 1/4 तक लिया जाता था। इस्लाम- धर्म स्वीकार न करने वालों से जजिया कठोरता के साथ वसूल किया जाता था। इन करों के अतिरिक्त दूसरे कई कर और थे, जिन्हें वसूल करने का अधिकार सबसे अधिक बोली बोलने वाले ठेकेदार को दे दिया जाता था।

(3) न्याय- व्यवस्था- न्याय- व्यवस्था सन्तोषजनक न थी। कानूनों में एकरूपता नहीं थी। हिन्दुओं के लिए दण्ड- विधान अत्यन्त कठोर था। जिलाधीशों और सामन्तों को अपने अधिकार- क्षेत्र में मुकदमों का फैसला करने का अधिकार था। चोरी करना बड़ा अपराध समझा जाता था। यदि कोई चोरी करता तो उसकी स्त्री तथा बच्चों को जीवित जला दिया जाता था। राजधानी में एक प्रमुख काजी तथा अन्य प्रमुख नगरों में छोटे काजी न्याय करते थे। हिन्दुओं को अपने आपसी झगड़ों को पंचायत द्वारा हल कर लेने का अधिकार प्राप्त था। हिन्दुओं को आज्ञा थी कि वे मुसलमान यात्रियों के लिए तीन दिन भोजन की व्यवस्था करें। फौजदारी कानूनों के अन्तर्गत हिन्दू और मुसलमान बराबर थे। जाटों, मेदों आदि जातियों के लिए कुछ प्रतिबन्धक कानून थे। उन्हें घोड़ों पर चढ़ने और अपने हाथ एवं पैर ढँकने की आज्ञा न थी।

अरबों की शासन- व्यवस्था

1. राजनीतिक विभाजन
2. राजस्व- व्यवस्था
3. न्याय- व्यवस्था
4. धार्मिक- व्यवस्था
5. सैन्य- व्यवस्था

(4) धार्मिक- व्यवस्था- प्रारम्भ में अरबों ने हिन्दुओं के प्रति कठोर धार्मिक नीति अपनायी, किन्तु बाद में अपनी भूल का अनुभव हुआ और उन्होंने सहिष्णुतापूर्ण नीति अपनायी। उन्हें अपने देवताओं की पूजा करने की अनुमति थी। लेकिन उन्हें धार्मिक कर 'जजिया' देना पड़ता था। गैर- मुसलमानों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया था और प्रत्येक वर्ग के लिए जजिया की अलग- अलग दर थी- 'पहले के लिए 48 दिहराम, दूसरे के लिए 24 दिहराम और तीसरे के लिए 12 दिहराम।'

(5) सैन्य- व्यवस्था- अरब सैनिकों ने भारतीय स्त्रियों से विवाह कर गृहस्थ जीवन बिताना आरम्भ कर दिया। भारतीय सैनिक भी अरब सेना में भरती होने लगे। धीरे- धीरे सैनिकों में विलासिता आने लगी और वे युद्धों के प्रति उदासीन होने लगे। कुरान की शरियत के अनुसार लड़ाई में लूटे गये माल का 4/5 भाग सैनिक में वितरित कर दिया जाता था और 1/5 भाग खलीफा के पास भेज दिया जाता था।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ
(Important Dates and Events)

(1) 570 ई० - मुहम्मद साहब का जन्म।
(2) 632 ई० - मुहम्मद साहब की मृत्यु।
(3) 712 ई० - मुहम्मद-बिन-कासिम द्वारा सिन्ध-विजय तथा ब्राह्मणवाद-विजय।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिये।)

1. मुहम्मद-बिन-कासिम के सिन्ध पर सरलता से विजय प्राप्त कर लेने के क्या कारण थे ? उसके उत्तराधिकारी साम्राज्य-विस्तार करने में क्यों असफल रहे ?
2. सिन्ध पर अरबों के आक्रमण और उसके परिणामों का विवेचन कीजिए। (1981)
3. इस्लाम के मूलभूत सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए। (1997)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. ''मध्य-युग में जब यूरोप में अज्ञान का अन्धकार था, तब ज्ञान का दीप अरबों को भारत से प्राप्त हुआ था।'' इस कथन को समझाइए।
2. ''देवल की पराजय का कारण भारतीय सैनिकों की कायरता नहीं बल्कि दाहिर का प्रमाद और शत्रु-सेना की अधिकता थी।'' इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. भारत में अरबों की सफलता के क्या कारण थे?
2. मुहम्मद-बिन-कासिम की चार विजयों का उल्लेख कीजिए।
3. अरबों की शासन-व्यवस्था का उल्लेख कीजिए।
4. अरब-विजय के अस्थायी होने के चार कारणों की विवेचना कीजिए।

18

भारत पर तुर्क आक्रमण
(महमूद गजनवीं)

> **"जो विजेता अपने पीछे उजड़े नगरों और गाँवों तथा निर्दोष मनुष्यों की लाशों को छोड़ जाता है, उसे भावी पीढ़ियाँ केवल आततायी राक्षस समझकर ही याद रख सकती हैं, अन्य किसी प्रकार से नहीं।"**
> - डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव

महमूद का संक्षिप्त परिचय- महमूद के पिता का नाम सुबुक्तगीन था जो गजनी का स्वामी था। 997 ई० में सुबुक्तगीन की मृत्यु होने पर उसका पुत्र महमूद गजनी का शासक हुआ। वह कुशल सेनानायक तथा साहसी योद्धा था। सिंहासन पर बैठते ही उसने साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण किया। उसने भारत पर सत्रह आक्रमण किये। इन आक्रमणों का उद्देश्य धन-प्राप्ति और इस्लाम-धर्म का प्रचार करना था।

महमूद गजनवी के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा

इसे भारत का दुर्भाग्य ही समझिए कि जब ग्यारहवीं शताब्दी में तुर्कों ने भारत पर आक्रमण किया, उस समय भी विभिन्न राजवंशों ने अपनी शत्रुता के कारण उसी प्रकार की उदासीनता एवं असावधानी का परिचय दिया जिस प्रकार आठवीं शताब्दी में अरबों के आक्रमण के समय दिया था। अरबों से पराजित होने के बाद भी उन्होंने आपसी फूट को दूर करने और संगठित होने की आवश्यकता नहीं समझी। इसके परिणामस्वरूप मुसलमान आक्रमणकारियों को भारत में प्रविष्ट होने में विशेष कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। उन्होंने एक-एक कर भारतीय राजाओं को परास्त किया। यदि अरबों के आक्रमण के उपरान्त भारतीय राजाओं ने भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा को सुरक्षित करने का प्रयत्न किया होता तो भारत की जनता को वे दुर्दिन देखने को न मिलते, जो उसे महमूद गजनवी के आक्रमणों के समय देखने को मिले। **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** के अनुसार, "भारत की राजनीतिक अवस्था ठीक सोलहवीं शताब्दी के जर्मन की भाँति थी, जहाँ राज्यों का समूह अपने प्रत्येक उद्देश्य एवं कार्य के लिए स्वतन्त्र था।"

महमूद गजनवी के आक्रमण के समय भारत में निम्नलिखित प्रमुख राज्य विद्यमान थे-

(1) पंजाब का हिन्दूशाही राज्य- भारत के उत्तर-पश्चिम में प्रथम हिन्दूशाही राज्य था। यह हिन्दू राज्य चिनाब नदी से हिन्दूकुश तक फैला हुआ था। महमूद गजनवी के समय इस राज्य पर राज्यपाल शासन कर रहा था। वह एक वीर तथा योग्य सेनापति था। उसके राज्य की स्थिति ऐसी थी कि आक्रमणकारियों का प्रथम शिकार उसी को बनना पड़ा।

(2) कश्मीर राज्य- दूसरा राज्य कश्मीर का था। उस राज्य की बागडोर एक स्त्री के हाथ में थी और राज्य की अवस्था बड़ी असन्तोषजनक थी तथा समस्त प्रदेशों में अराजकता फैली हुई थी।

(3) कन्नौज राज्य- इस राज्य में प्रतीहार वंश के राजा राज्यपाल का शासन था। वह बड़ा निर्बल तथा अयोग्य शासक था। इस राज्य की भी अवस्था बड़ी शोचनीय थी।

(4) बंगाल का राज्य- बंगाल में पाल-वंश का अधिकार था। गजनवी के आक्रमण के समय वहाँ का शासक महिपाल प्रथम था। कन्नौज राज्य से अनवरत संघर्ष के कारण उसकी शक्ति बहुत क्षीण हो गयी थी। चोल वंश के प्रसिद्ध सम्राट् राजेन्द्र चोल ने उसको बुरी तरह पराजित कर बंगाल को भीषण क्षति पहुँचायी थी। किन्तु इस प्रदेश पर महमूद का आक्रमण नहीं हुआ।

महमूद गजनवी के आक्रमण के समय राजनीतिक दशा

1. पंजाब का हिन्दूशाही राज्य
2. कश्मीर राज्य
3. कन्नौज राज्य
4. बंगाल का राज्य
5. गुजरात के राज्य
6. चोल राज्य
7. चालुक्य राज्य

(5) गुजरात के राज्य- गुजरात पर चालुक्यों, बुन्देलखण्ड पर चन्देलों तथा मालवा पर परमारों का अधिकार था। पहले इन राज्यों पर कन्नौज राज्य का आधिपत्य था, किन्तु कन्नौज के दुर्बल शासकों के शासन-काल में वे स्वतन्त्र हो गये थे।

(6) चोल राज्य- दक्षिण में चोल राज्य था जहाँ आदित्य के वंशज शासन कर रहे थे। इस राज्य पर भी महमूद ने आक्रमण नहीं किया।

(7) चालुक्य राज्य- दक्षिण में चालुक्यों के राज्य थे जिनमें पारस्परिक संघर्ष चल रहा था। इस प्रकार भारत विभिन्न राज्यों में विभक्त था।

महमूद गजनवी के 17 भारतीय आक्रमण
(1000 से 1027 तक)

महमूद गजनवी का भारत पर आक्रमण करने का प्रमुख उद्देश्य इस्लाम-धर्म का प्रचार था। उसके दरबारी इतिहासकार **उतबी** ने अपनी **'तारीख ए-एमीनी'** में लिखा है; ''सुल्तान महमूद ने पहले सिजिस्तान पर आक्रमण करने का संकल्प किया किन्तु बाद में उसने हिन्द के विरुद्ध जिहाद (धर्मयुद्ध) करना ही उपयुक्त समझा।'' **उतबी** आगे लिखता है, ''उसने अपने मन्त्रियों की सभा में कहा कि मुझे आशार्वाद दो जिससे मैं धर्म का झण्डा ऊँचा करने, सदाचार को विस्तृत करने, सत्य को प्रकाशित करने और न्याय की जड़ों को मजबूत करने में अपनी इस योजना में सफलता प्राप्त कर सकूँ।''

महमूद गजनवी ने भारत पर 1000 से 1027 तक 17 बार[1] आक्रमण किये जिनका क्रमशः वर्णन नीचे की पंक्तियों में किया जा रहा है-

(1) सीमान्त नगरों पर आक्रमण- महमूद का पहला आक्रमण सन् 1000 में सीमांत नगरों तथा किलों पर हुआ और उन पर उसने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

(2) पंजाब के राजा जयपाल पर आक्रमण- महमूद ने 1,500 सर्वोत्तम अश्वारोहियों के साथ 27 नवम्बर, 1001 को पंजाब के हिन्दूशाही वंश के राजा जयपाल पर आक्रमण किया। जयपाल ने 12,000 घुड़सवारों, 30,000 पदातियों और 300 हाथियों से

1. लेनपूल के अनुसार महमूद ने भारत पर 26 आक्रमण किये, किन्तु आधुनिक सभी इतिहासकार महमूद के सत्रह आक्रमण से सहमत हैं।

मुकाबला किया। भीषण संग्राम के बाद जयपाल पराजित हुआ और अपने कई सेनापतियों और सम्बन्धियों के साथ बन्दी बनाकर महमूद के सामने उपस्थित किया गया। लेकिन उसने जयपाल को मुक्त कर दिया। इसके बदले में जयपाल को बहुत-सा धन और 50 हाथी देने पड़े। इसके बाद महमूद ने जयपाल की राजधानी 'वाहिद' को निर्दयतापूर्वक लूटा। अन्त में, दोनों में सन्धि के परिणामस्वरूप महमूद को अतुल सम्पत्ति प्राप्त हुई। एक म्लेच्छ द्वारा पराजित होने के अपमान को जयपाल सहन नहीं कर सका और राज्य का भार अपने पुत्र आनन्दपाल को सौंप कर आग में कूद कर आत्म-हत्या कर ली।

(3) भेरा पर आक्रमण- 1003 में महमूद ने तीसरा आक्रमण भेरा नामक स्थान पर किया जो झेलम नदी के बायें तट पर स्थित था। वहाँ के राजा बाजीराम ने चार दिन तक महमूद की सेना का वीरता से सामना किया, लेकिन अंत में पराजित हुआ और भेरा पर महमूद का आधिपत्य स्थापित हो गया। बाजीराम ने पराजय की ग्लानि से आत्महत्या कर ली।

(4) मुल्तान पर आक्रमण- 1005 में महमूद ने मुल्तान के शासक अब्दुल फतह दाऊद पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसने पंजाब के शासक आनन्दपाल से अपनी सेना को उसके राज्य से निकालने के लिये मार्ग माँगा, लेकिन उसने महमूद की इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया। अतः महमूद ने पहले आनन्दपाल पर ही आक्रमण किया। युद्ध में आनन्दपाल पराजित हुआ और भाग कर कश्मीर में शरण ली। इसके बाद महमूद मुल्तान की ओर बढ़ा। मुल्तान के शासक अब्दुल फतह दाऊद ने महमूद की सेना का वीरता से सामना किया किन्तु परास्त हुआ। उसने महमूद को बड़ी धनराशि उपहारस्वरूप भेंट की और वार्षिक कर देने का भी वचन दिया।

(5) सेवकपाल पर आक्रमण- महमूद का पाँचवाँ आक्रमण राजा आनन्दपाल के पुत्र सेवकपाल पर हुआ, क्योंकि उसने अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया था। सेवकपाल युद्ध में पराजित हुआ और उसे महमूद का बन्दी बनना पड़ा। उसे विवश होकर महमूद को युद्ध-क्षति-पूर्ति के रूप में अतुल सम्पत्ति देनी पड़ी।

महमूद गजनवी के 17 भारतीय आक्रमण

1. सीमांत नगरों पर आक्रमण
2. जयपाल पर आक्रमण
3. भेरा पर आक्रमण
4. मुल्तान पर आक्रमण
5. सेवकपाल पर आक्रमण
6. राजा आनन्दपाल पर आक्रमण
7. नगरकोट पर आक्रमण
8. मुल्तान पर आक्रमण
9. थानेश्वर पर आक्रमण
10. लाहौर पर आक्रमण
11. काश्मीर पर आक्रमण
12. मध्यप्रदेश पर आक्रमण
13. कालिंजर पर आक्रमण
14. पंजाब पर आक्रमण
15. ग्वालियर तथा कालिंजर पर आक्रमण
16. सोमनाथ पर आक्रमण
17. सिन्ध के जाटों पर आक्रमण

(6) राजा आनन्दपाल पर आक्रमण- 1008 में महमूद ने राजा आनन्दपाल पर छठा आक्रमण किया। राजा आनन्दपाल ने शत्रु का सामना करने के लिए दिल्ली, अजमेर, ग्वालियर, उज्जैन, कन्नौज, कालिंजर के राजाओं का एक संघ बनाया। महमूद ने इसके पहले इतनी बड़ी सेना का सामना नहीं किया था। दोनों पक्षों की सेनाएँ झेलम नदी के किनारे 'उन्द'

नामक स्थान पर चालीस दिन तक डटी रहीं। अन्त में दोनों ओर की सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। महमूद पीछे हटने वाला ही था कि एक ऐसी घटना घटित हो गई कि राजपूतों की विजय का पासा ही पलट गया। एकाएक आनन्दपाल का हाथी भड़क गया और युद्ध-स्थल से भागने लगा। सैनिकों ने समझा कि आनन्दपाल भाग रहा है अतः भारतीय सेना में भगदड़ मच गई और महमूद ने उसको बुरी तरह परास्त किया। उसके सैनिकों ने दो दिन तक नगर को खूब लूटा और जी भर कर कत्ल किया। इस युद्ध में महमूद को अपार धनराशि प्राप्त हुई।

(7) नगरकोट पर आक्रमण- आनन्दपाल पर विजय-प्राप्ति से प्रोत्साहित होकर महमूद ने सातवाँ आक्रमण 1010 में नगरकोट पर किया और वहाँ के ज्वाला देवी के मन्दिर को लूटा। लूट में महमूद को वहाँ 'सात लाख सोने के दीनार, सात सौ मन सोने-चाँदी के बर्तन, दो सौ मन सोना, दो हजार मन कच्ची चाँदी और बीस मन बहुमूल्य जवाहरात तथा सात लाख स्वर्णमुद्रायें मिलीं।' लूट में तीस गज लम्बा और पन्द्रह गज चौड़ा एक चाँदी का घर भी मिला। लेनपूल ने लिखा है, "लूट में मिला माल इतना ज्यादा था कि सारी दुनिया भारत की अपार धनराशि देखने को चल पड़ी।"

(8) मुल्तान पर आक्रमण- 1011 में महमूद ने आठवाँ आक्रमणः मुल्तान पर किया, क्योंकि वहाँ के शासक अब्दुल फतह दाऊद ने अपने आप को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया था। महमूद विजयी हुआ और मुल्तान पर उसका आधिपत्य स्थापित हो गया।

(9) थानेश्वर पर आक्रमण- 1012 में महमूद ने नवाँ आक्रमण थानेश्वर पर किया, क्योंकि उसने सुन रखा था कि थानेश्वर के राजा के पास बहुत से हाथी हैं। हिन्दू सेना ने बड़ी वीरता से सामना किया किन्तु वहाँ का राजा पराजित होकर भाग गया। महमूद विजयी हुआ और उसको बहुत से हाथी तथा अतुल धनराशि प्राप्त हुई। उसके सैनिकों ने मन्दिरों को तोड़ा और लूटा।

(10) लाहौर पर आक्रमण- महमूद का दसवाँ आक्रमण लाहौर पर हुआ, जहाँ आनन्दपाल का पुत्र त्रिलोचनपाल शासन कर रहा था। युद्ध में त्रिलोचनपाल के पुत्र भीमपाल ने बड़ी वीरता का परिचय दिया, किन्तु विजय महमूद की हुई। इस बार महमूद ने समस्त पंजाब अपने साम्राज्य में मिला लिया।

(11) काश्मीर पर आक्रमण- 1015 में महमूद ने ग्यारहवाँ आक्रमण कश्मीर पर किया किन्तु मौसम की खराबी के कारण उसको सफलता नहीं प्राप्त हुई।

(12) मध्य प्रदेश पर आक्रमण- महमूद का बारहवाँ आक्रमण भारत के भीतरी भागों में हुआ। उसने बरन (बुलन्दशहर) पर आक्रमण करके अतुल सम्पत्ति प्राप्त की। 1018 में उसने मथुरा पर आक्रमण किया जहाँ उसे विशेष सामना नहीं करना पड़ा। नगर में प्रवेश कर उसने मन्दिरों को खूब लूटा और अनेक मन्दिरों को ध्वस्त भी कर दिया। मन्दिरों से उसे अतुल धन प्राप्त हुआ। इसके बाद उसने वृन्दावन का किला तथा वहाँ के मन्दिरों को भी लूटा। आक्रमणकारी सेना ने इन नगरों के उन भव्य मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया जिनके सौन्दर्य तथा सजावट का वर्णन करने में महमूद के सचिव अलउतवी की लेखनी भी असमर्थ थी। मथुरा से महमूद कन्नौज की ओर बढ़ा जहाँ प्रतीहार वंश के राजा राजपाल शासन कर रहा था। महमूद के आगमन का समाचार पाते ही वह भाग खड़ा हुआ और बिना युद्ध किये ही

कन्नौज पर महमूद का अधिकार हो गया। वहाँ भी अन्य नगरों की भाँति लूट और हत्याकाण्ड का दृश्य कई दिनों तक चलता रहा। इसके बाद वह लुटेरा स्वदेश चला गया।

(13) कालिंजर पर आक्रमण- राजपाल के बिना युद्ध किये भाग जाने के कारण उत्तरी भारत के राजपूत बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने बुन्देलखण्ड के चन्देल राजा विद्याधर के नेतृत्व में एक संघ बनाया और राजपाल पर आक्रमण कर उसे मार डाला। इन राजाओं के संघ को तोड़ने के लिए महमूद ने कालिंजर पर 1019 में तेरहवाँ आक्रमण किया। चन्देल राजा रात्रि के समय रण- क्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। महमूद को बिना युद्ध किये ही विजय प्राप्त हुई। उसने सम्पूर्ण राज्य को बुरी तरह लूटा और अतुल धन प्राप्त किया।

(14) पंजाब पर आक्रमण- 1020 में महमूद ने पुनः पंजाब पर आक्रमण किया, क्योंकि वहाँ के शासन में कुव्यवस्था फैल गयी थी । उसने पंजाब में सुव्यवस्थित शासन की स्थापना की।

(15) ग्वालियर तथा कालिंजर पर आक्रमण- महमूद का पन्द्रहवाँ आक्रमण 1022 में ग्वालियर तथा कालिंजर पर हुआ। ग्वालियर के सुदृढ़ किले पर महमूद अधिकार न कर सका। अतः वहाँ के कछवाहा राजा से सन्धि करके कालिंजर की ओर बढ़ा। दीर्घकाल तक कालिंजर का घेरा डाले रहा। अन्त में वहाँ के चन्देल राजा से सन्धि कर ली। राजा ने कर के रूप में 300 हाथी महमूद को देना स्वीकार किया। इस सन्धि के पश्चात् लूट का अतुल धन लेकर वह गजनी लौट गया।

(16) सोमनाथ पर आक्रमण- महमूद का सोलहवाँ प्रसिद्ध आक्रमण गुजरात के काठियावाड़ प्रदेश में स्थित सोमनाथ पर 1025 में हुआ, क्योंकि महमूद ने सोमनाथ के मन्दिर की अतुल सम्पत्ति के विषय में सुन रखा था। 17 अक्टूबर, 1024 को वह एक विशाल सेना लेकर गजनी से चला। मार्ग की अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए जनवरी, 1025 में सोमनाथ मन्दिर के द्वार पर पहुँचा। महमूद के आगमन का समाचार पाते ही राजा भीमदेव अपने अनुयायियों सहित राजधानी से भाग खड़ा हुआ। राजपूतों ने मुसलमानी सेना का वीरता से सामना किया, किन्तु विजय महमूद की ही हुई। उसने कत्लेआम की आज्ञा दी। 50, 000 से भी अधिक स्त्री- पुरुष मौत के घाट उतार दिये गये। जब महमूद ने मन्दिर में प्रवेश किया तो पुजारियों ने मूर्ति बचाने के लिए उसको अपार धन सम्पत्ति देने का वचन दिया परन्तु महमूद ने निर्दयतापूर्वक कहा, ''मैं संसार में मूर्ति तोड़नेवाला प्रसिद्ध होना चाहता हूँ, मूर्ति बेचने वाला नहीं।'' महमूद ने स्वयं सोमनाथ की मूर्ति के टुकड़े- टुकड़े कर दिया। कहा जाता है कि मन्दिर की लूट में महमूद को बीस लाख दीनार से भी अधिक धन प्राप्त हुआ। स्वदेश जाते समय वह अपार सम्पत्ति के साथ- साथ मन्दिर का चंदन का द्वार भी साथ ले गया।

(17) सिन्ध के जाटों पर आक्रमण- महमूद का अन्तिम अर्थात् सत्रहवाँ आक्रमण सिन्ध के जाटों पर 1027 में हुआ, क्योंकि उन्होंने महमूद को गजनी वापस जाते समय बड़ी क्षति पहुँचायी थी। उसने जाटों का बड़ी बुरी तरह से दमन किया। इसी आक्रमण के साथ ही महमूद के कृत्यों का इतिहास भी समाप्त हो गया।

महमूद की मृत्यु- 30 अप्रैल, 1030 को इस मूर्तिध्वंसक की मृत्यु हो गयी। कहते हैं, ''मरने से दो दिन पूर्व उसने अपना लूट का सारा धन अपने सामने मँगाया था और यह देखकर कि मैं यह सब धन और सामान यहीं छोड़कर खाली हाथ जा रहा हूँ, वह अत्यन्त दुःखी हुआ और रोया।'' यह बात अक्षरशः सत्य हो या नहीं, परन्तु यह ठीक जान पड़ता

है कि मृत्यु का भयावह रूप देखकर वह अपनी इस अन्तिम यात्रा के लिए उस साहस के साथ न जा सका, जिस साहस से वह भारत पर आक्रमण के लिए जाता था।

महमूद के आक्रमणों का प्रभाव

महमूद के आक्रमणों का भारत पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि उसके आक्रमणों का उद्देश्य भारत में राज्य स्थापित करना नहीं था, बल्कि अतुल सम्पत्ति लूटना था। लेनपूल ने ठीक ही लिखा है, ''उसने भारत में अपना राज्य स्थापित करने की बात कभी न सोची थी। हिन्दू राजाओं की फूट और द्वेष जिसने महमूद के आक्रमणों को सुगम और सबल बनाने में सहायता दी थी, उसी फूट ने विदेशियों के स्थायी राज्य की स्थापना में रुकावटें डालीं। प्रत्येक आक्रमण में एक या दो राजाओं पर ही विजय प्राप्त की जा सकी। शेष राजाओं पर आक्रमण का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसीलिए सबसे बड़ी विजय के बाद भी भारत ने पूरी तरह आत्मसमर्पण नहीं किया। जब तक वीर राजपूतों के सैनिक मौजूद थे, भारत में राज्य स्थापित करना महमूद गजनवी की शक्ति से बाहर की बात थी। राजपूतों ने महमूद के आक्रमणों को आँधी की भाँति समझा जो आई और चली गई।''

महमूद के आक्रमणों का जो कुछ प्रमुख प्रभाव पड़ा, वह निम्नलिखित है-

(i) महमूद के निरन्तर आक्रमणों से राजपूत राजाओं की सैनिक शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा।

(ii) महमूद के आक्रमणों द्वारा भारत की अतुल सम्पत्ति विदेश चली गयी। नगरकोट की ज्वाला देवी के मन्दिर से आक्रमणकारी को इतनी अधिक सम्पदा प्राप्त हुई कि 'सारी दुनिया भारत की अपार धनराशि देखने चल पड़ी।'

(iii) महमूद के सभी आक्रमणों से भारतीय स्थापत्य- कला की बड़ी क्षति हुई। उसने भव्य मन्दिरों और भवनों को नष्ट- भ्रष्ट कर दिया।

(iv) महमूद के आक्रमणों के कारण भावी आक्रमणकारियों को भारत पर आक्रमण करने का प्रोत्साहन मिला।

(v) महमूद के सत्रह आक्रमणों के कारण मुसलमानों को उत्तरी भारत के अधिकांश भागों तथा वहाँ की विभिन्न दुर्बलताओं का ज्ञान हो गया जिससे भावी आक्रमणकारियों ने विशेष लाभ उठाया।

महमूद के चरित्र एवं व्यक्तित्व का मूल्यांकन

महमूद की गणना सबसे योग्य और पराक्रमी शासकों में की जाती है, उसने अपने पिता सुबुक्तगीन के छोटे से राज्य को जिसमें उसे केवल गजनी और खुरासान के प्रांत मिले थे, एक विशाल साम्राज्य में परिवर्तित किया जो ईराक तथा कैस्पियन सागर से गंगा तक फैला हुआ था। महमूद एक न्यायप्रिय शासक तथा कट्टर सुन्नी मुसलमान था। एक विद्वान् ने लिखा है, ''महमूद न्यायप्रिय शासक, विद्या का प्रेमी, दयालु स्वभाव तथा शुद्ध विचारों का व्यक्ति था।'' महमूद कुशल सेनानायक तथा साहसी योद्धा भी था। उसने सत्रह बार भारत पर आक्रमण किया और हर बार उसे सफलता मिली तथा अतुल सम्पदा प्राप्त की। वह ''अपने अनुयायियों तथा सैनिकों के गुणों को भली- भाँति जानता था। यही कारण था कि अपनी योजनाओं को सफल बनाने के लिए वह प्रत्येक से अपनी इच्छा और उसकी योग्यतानुसार

कार्य करवाने में सफल होता था।'' वह विद्वानों तथा कलाकारों का सम्मान करता था। उसके दरबार में अनेक विद्वान् तथा साहित्यकार रहते थे जिनमें अलबरूनी, फिरदौसी, उन्सूरी और फारूखी थे। अलबरूनी ने अनेक संस्कृत के ग्रन्थों का अनुवाद किया तथा 'तहकीक-ए-हिन्द' नामक ग्रन्थ की रचना की। फिरदौसी ने विश्वविख्यात 'शाहनामा' नामक महाकाव्य लिखा। महमूद ने गजनी को विशाल पुस्तकालय, इमारतों तथा भारत से लूटी हुई अनेक सामग्रियों से सजाया। उसने गजनी में एक विश्वविद्यालय की भी स्थापना की जिसके कारण गजनी की गणना सबसे अधिक वैभवपूर्ण नगरों में होने लगी थी।

उपरोक्त पंक्तियों में महमूद के चरित्र के गुणों के एक पहलू की विवेचना की गई है। उसके चरित्र का दूसरा पहलू उसे एक बर्बर, एक अत्यधिक लालची, एक लुटेरा, एक हत्यारा और एक धर्मान्ध के रूप में इतिहास के विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। महमूद ने भारत के बहुत से भव्य भवनों तथा मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उसने मथुरा के मन्दिरों को जिस प्रकार नष्ट किया उसके लिए विश्व का कोई भी कला-प्रेमी उसे क्षमा नहीं कर सकता। दूसरे देश की कला, संस्कृति को नष्ट करके और अपार सम्पत्ति लूटकर अपने महल को सजाना, अपने नगर को अनेक सामग्रियों से अलंकृत करना, बर्बरता नहीं तो और क्या है ? उसने निरपराध व्यक्तियों को सहस्रों की संख्या में मौत के घाट उतार दिया और असंख्य हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बना लिया। उसके इन कृत्यों ने उसके चरित्र पर अमिट धब्बा बना दिया है। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मुहम्मद हबीब ने सत्य ही लिखा है, ''न तो किसी ईमानदार इतिहासकार को छिपाने का प्रयत्न करना चाहिए और न किसी मुसलमान को जो उसकी दुर्बलताओं से परिचित है, न मंदिरों के मर्यादाहीन विनाश को न्यायोचित सिद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस्लाम न तो देवालयों के विनाश की आज्ञा देता है और न आक्रमणकारियों द्वारा लूटमार की। कुरान में कोई ऐसा नियम नहीं है जो अकारण हिन्दू राजाओं और जनता पर किए गए अत्याचारों को न्यायोचित बतलाये, जिन्होंने महमूद और इस्लाम को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचायी थी। देवालयों और पूजागृहों की लज्जाहीन बरबादी सभी धर्मों में घृणा की दृष्टि से देखी जाती है।'' डॉ० आशीर्वादीलाल के इस कथन में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है, ''जो विजेता अपने पीछे उजाड़ नगरों और गाँवों तथा निर्दोष मनुष्यों की लाशों को छोड़ जाता है, उसे भावी पीढ़ियाँ केवल आततायी राक्षस समझकर ही याद रख सकती हैं. अन्य किसी प्रकार से नहीं।''

शासक की हैसियत से महमूद का भारतीय इतिहास में कोई स्थान नहीं है। पंजाब को छोड़कर भारत के अन्य किसी प्रदेश पर उसका स्थायी राज्य स्थापित नहीं हो सका। लेनपूल के अनुसार, ''महमूद के समय के किसी क़ानून व कोई मौलिक सरकारी व्यवस्था के बारे में हम नहीं जानते। वह अपने साम्राज्य की बाहरी आक्रमणों से रक्षा करना जानता था, परन्तु उसने प्रजा को कभी संगठित व सुव्यवस्थित करने का प्रयत्न नहीं किया। उसका राज्य इतना कुव्यवस्थित था कि महमूद के आँख मूँदते ही सारे राज्य में फूट पड़ गई।'' धन के प्रति महमूद की असीम लोलुपता उसके जीवन का सबसे बड़ा कलंक है। 'शाहनामा' के लेखक फिरदौसी को इस ग्रंथ के प्रत्येक छन्द के लिए एक स्वर्ण मुद्रा देने का वादा किया था लेकिन उसे स्वर्ण मुद्राओं की जगह केवल 60 हजार चाँदी के सिक्के ही पारिश्रमिक के रूप में मिले। इस घटना से फिरदौसी को इतना बड़ा आघात पहुँचा कि जब उसके लिए दूसरी बार 50, 000 गिन्नियाँ भेजी गई, उस समय उसका जनाजा कब्र में दफनाये जाने के लिए जा रहा था।

इन सब बातों के बावजूद भी **लेनपूल** की दृष्टि में, **"महमूद एक महान्, साहसी और शारीरिक, मानसिक बुद्धिवाला व्यक्ति था।"**

क्या महमूद लुटेरा था ?

अधिकतर विद्वानों की यही धारणा है कि महमूद एक लुटेरा था जिसने भारत के अनेक मन्दिरों और नगरों की अतुल सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए उन्हें ध्वस्त किया। नगरकोट की लूट में उसे इतना धन मिला था कि ऊँटों पर लादकर ले जाया गया और बचे धन को अफसरों में बाँट दिया गया। उतबी के कथनानुसार मथुरा के मन्दिरों में 50, 000 दीनार मूल्य की लाल मणियाँ प्राप्त हुई थीं। एक मूर्ति के चरणों के नीचे तो 4 लाख स्वर्ण-मिश्काल के मूल्य का कोष मिला था। इसी से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि उसे कितना अतुल धन मिला होगा। **प्रो० मुहम्मद हबीब** के अनुसार, "महमूद ने भारत पर लूट के लालच से आक्रमण किया था।" **विंसेन्ट स्मिथ** के अनुसार, "महमूद लुटेरा था, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।" अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि महमूद एक लुटेरा था। **पं० जवाहरलाल नेहरू** ने उसके विषय में लिखा है :

"महमूद धार्मिक व्यक्ति की अपेक्षा एक महान् योद्धा था तथा बहुत से विजेताओं की भाँति उसने भी अपनी विजयों के लिये धर्म का प्रयोग तथा शोषण किया। उसके लिये भारत एक ऐसा देश था जहाँ से वह खजाना तथा अन्य सामान स्वदेश ले जा सकता था।"

उपरोक्त विवरण के आधार पर हम **डॉ० आशीर्वादलाल श्रीवास्तव** के साथ सहमत होते हुए कह सकते हैं :

"उस युग के भारतीय महमूद को शैतान का अवतार समझते थे। उनकी दृष्टि में वह एक साहसी डाकू, लालची, लुटेरा, कला का शत्रु एवं निर्दयी शासक था। उसने दर्जनों समृद्धिशाली नगरों को लूटा। अनेक मन्दिरों को जो कला के अद्भुत आदर्श थे, धूल में मिला दिया। वह सहस्रों निर्दोष स्त्रियों-बच्चों को दास बनाकर ले गया, वह जहाँ भी गया, अत्यन्त निर्दयतापूर्वक उसने हत्याकांड किये।"

अलबरूनी तथा उसका भारत-विषयक वृत्तान्त

अलबरूनी का जन्म ख्वारिज्म (आधुनिक खींवा) प्रदेश में 973 ई० में हुआ था। उसका वास्तविक नाम 'अबू-रैहान-मुहम्मद-अहमद-अल्वरूनी' था। वह बाल्यकाल से ही बड़ा जिज्ञासु तथा प्रखर बुद्धि का व्यक्ति था। जब महमूद गजनवी ने ख्वारिज्म को विजित किया तो अलबरूनी बन्दी बनाकर गजनी लाया गया, किन्तु उसकी बौद्धिक प्रतिभा से प्रभावित होकर महमूद ने उसे अपना राज-ज्योतिषी नियुक्त किया। महमूद के भारतीय आक्रमणों के समय वह उसके साथ भारत आया। उसने भारत की तत्कालीन अवस्था का जो अध्ययन किया उसको क्रमबद्ध करके उसने अपनी 'तहकीक-ए-हिन्द' नामक पुस्तक में लिखा। उसके वर्णन का भारत के इतिहास में विशेष महत्व है।

भारत पर महमूद के आक्रमणों के विनाशकारी प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए अलबरूनी ने लिखा है, "महमूद ने इस देश की समृद्धि को पूर्णतया समाप्त कर दिया तथा ऐसा आश्चर्यजनक उत्पीड़न किया जिससे हिन्दू जाति चतुर्दिक बिखरे हुए धूलि-कणों के समान हो गई। वह लोगों के मुख की कहानी मात्र रह गई। इस जाति का शेष भाग अपने मन में मुसलमान मात्र के प्रति घोर घृणा की भावनाओं का पोषण करने लगा है। यही कारण है कि

भारतीय विद्याएँ उन स्थानों से बहुत दूर हट गई हैं जिनको हमने विजय कर लिया है, वे कश्मीर, बनारस तथा अन्य ऐसे अन्य स्थानों में पलायन कर गई है, जहाँ तक अभी हमारे हाथ नहीं पहुँचे।''

तत्कालीन भारत की सामाजिक दशा का चित्रण करते हुए अलबरूनी लिखता है कि भारतीय जन- जीवन बड़ा ही सरल और सादा है। लोग बड़े ही सच्चे एवं ईमानदार हैं। लोगों का भोजन गेहूँ, जौ, दूध, घी, भुने चने तथा मोटी रोटी थी। यद्यपि लोग मांसाहारी हैं, परन्तु गाय का मांस नहीं खाया जाता है। हिन्दू भेंड़, बकरी, हिरण, खरगोश, गैंडे, मछलियाँ आदि का मांस खाते हैं। वे प्याज और लहसुन का प्रयोग नहीं करते हैं। वर्ण- व्यवस्था प्रचलित है। सारा समाज चार वर्गों- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र में विभक्त है। बाल- विवाह तथा सती- प्रथा का प्रचलन है। हिन्दू लोग स्नान के समय पहले पैरों को तत्पश्चात् मुँह को धोते हैं। अपनी स्त्रियों के साथ समागम करने के पहले वे स्नान करते हैं। त्योहार के दिन सुगन्धित वस्तुओं के स्थान पर अपने शरीर पर गोबर मलते हैं। पुरुष स्त्रियों की पसन्द की चीजें पहनाते हैं, वे कानों में बालियाँ, हाथों में चूड़ियाँ तथा हाथ और पाँवों की उँगलियों में सोने के छाप- छल्ले पहनते हैं। शतरंज के खेल में लोग अधिक रुचि रखते हैं। सभी मन्त्रणाओं और संकटों में वे स्त्रियों से परामर्श करते हैं।

अलबरूनी लिखता है कि हिंदू लोग अपनी पुस्तकों का आरम्भ सृष्टि के शब्द ओम् से करते हैं। लिखने के काम में नारियल के पत्तों का प्रयोग किया जाता है। सारी पुस्तकों को एक कपड़े में लपेट कर और उसी आकार की दो तख्तियों के बीच बाँधी जाती है। ऐसी पुस्तक को वे लोग 'पोथी' कहते हैं।

न्याय- व्यवस्था का उल्लेख करते हुए अलबरूनी लिखता है कि न्याय के लिए साधारणतया लिखित आवेदन- पत्र प्रस्तुत किये जाते हैं। दण्ड- विधान कोमल है। ब्राह्मण प्राण- दण्ड से मुक्त हैं। यदि कोई ब्राह्मण हत्या कर देता है तो उसको व्रतोपवास, प्रार्थना तथा दान द्वारा प्रायश्चित्त करना होता है। चोरी का दण्ड गये धन के मूल्य के बराबर दिया जाता है तथा कुछ अपराधों के लिए अंगच्छेद का विधान है।

राजस्व- व्यवस्था के सम्बन्ध में अलबरूनी लिखता है कि राजा कृषि की उपज का छठा भाग लेता है तथा मजदूरों, शिल्पकारों तथा व्यावसायिक को अपनी आय पर कर देना पड़ता है। केवल ब्राह्मण करों के भार से मुक्त हैं।

धार्मिक अवस्था का उल्लेख करते हुए अलबरूनी लिखता है कि हिन्दुओं में मूर्ति- पूजा का प्रचार है। वे गाय को माता सदृश समझते है। किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व मुहूर्त पर ध्यान देते हैं। हिन्दू लोग यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं जिसमें वे घी, तेल, गेहूँ, जौ, चावल, तिल इत्यादि अग्नि में डालते हैं। ऐसा करने से वे समझते है कि अग्नि जो कुछ खाती है वह देवताओं तक पहुँच जाता है, क्योंकि अग्नि देवों के मुख से निकली है। हिन्दू धर्म निष्प्राण हो चुका है। अन्धविश्वास, लोलुपता तथा अज्ञान ने विद्या, सदाचार, विश्वसनीयता का स्थान ग्रहण-कर लिया है।

अलबरूनी ने भारत के बौद्धिक जीवन पर भी यथाशक्ति प्रकाश डाला है। उसके अनुसार हिन्दू गणित, ज्योतिष एवं खगोल विद्या में विश्व में सर्वोपरि है। प्रत्येक हिन्दू कर्मकाण्डी है।

वह पुनर्जन्म में विश्वास करता है। हिन्दुओं के विचारधारानुसार आत्माएँ अपने शुद्ध स्वरूप में एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। इन सबका प्रकृति स्वरूप एक- सा ही है।

अलबरूनी लिखता है कि हिन्दू विद्वान् दुनिया को लोक कहते हैं। उनका विभाजन इस प्रकार है- ऊर्ध्व लोक, मध्य लोक, पाताल लोक। ऊर्ध्व को स्वर्गलोक कहते हैं, नीचे वाले को नरक लोक और मध्यवर्ती लोक को मृत्यु- लोक कहा जाता है। ऊर्ध्व लोक पुण्यात्माओं के लिए है एवं अधोलोक पापात्माओं के लिए। हिन्दुओं के अनुसार अविद्या ही इस संसार में आत्मा के बन्धन का कारण है। अतः मुक्त होने के लिए आवश्यक है कि अविद्या का नाश हो और ज्ञान की प्राप्ति। ज्ञान की प्राप्ति हो जाने के पश्चात् आत्मा जन्म और मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाती है। कर्मों का नाश हो जाता है और प्रकृति एवं आत्मा एक- दूसरे से अलग होकर स्वतंत्र हो जाते हैं। मृतक संस्कार के सम्बन्ध में अलबरूनी लिखता है कि हिन्दुओं के अनुसार मृतक के शरीर पर उसके उत्तराधिकारियों का अधिकार है, वे लोग उसको स्नान कराते हैं। सुगन्धित द्रव्य लगाते हैं। एक कफन में लपेटते हैं। चन्दन और दूसरी लकड़ी जितनी भी मिल सके, उसके साथ जला देते हैं। उसकी जली अस्थियों का अंश गंगा में लाकर फेंका जाता है ताकि गंगा उसे नरक से निकाल कर स्वर्ग ले जाए। तीन वर्ष की आयु के बच्चे के शरीर को नहीं जलाया जाता है वरन् उसे जमीन में गाड़ दिया जाता है अथवा गंगा में फेंक दिया जाता है।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ
(Important Dates & Events)

(1) 1001 ई० - पंजाब के राजा जयपाल पर महमूद का आक्रमण।
(2) 1008 ई० - राजा आनन्दपाल पर महमूद का आक्रमण।
(3) 1025 ई० - सोमनाथ के प्रसिद्ध मन्दिर पर महमूद का आक्रमण। (1985, 86)
(4) 1030 ई० - मूर्ति- ध्वंसक महमूद की मृत्यु।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. महमूद गजनवी के आक्रमणों के समय भारत की राजनीतिक दशा क्या थी ? राजपूतों की पराजय के कारणों का निर्देश कीजिए। (1961)
2. महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमणों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। इनके क्या परिणाम हुए ? (1971)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. ''महमूद गजनवी शैतान का अवतार था।'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
2. ''महमूद मात्र एक लुटेरा था, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं'', इस कथन की विवेचना कीजिए। (1984)
3. ''उसके पूर्वी अभियानों का मुख्य उद्देश्य धन की प्राप्ति ही थी।'' महमूद गजनवी के सन्दर्भ में इस उक्ति के औचित्य पर प्रकाश डालिए। (1985)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. महमूद गजनवी के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा कैसी थी ?

2. महमूद गजनवी के किन्हीं चार प्रमुख आक्रमणों का वर्णन कीजिए।
3. महमूद गजनवी के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए।
4. अलबरूनी के भारत- विषयक वृत्तान्त का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

(घ) संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :

(1) आनन्दपाल, (2) जयपाल।

19

मुसलमानों की भारत- विजय

"हमारे इतिहास में पहली बार मुहम्मद गोरी ने हिन्दुस्तान के बीचोंबीच एक विदेशी तुर्की राज्य की नींव डाल दी।" - डॉ० आशीर्वादीलाल

मुहम्मद गोरी का परिचय- मुहम्मद गोरी गोर का शासक था। गोर गजनी और हिरात के मध्य स्थित था। 1173 में गयासुद्दीन ने तुर्कों को गजनी से मार भगाया और अपने भाई शहाबुद्दीन को वहाँ का शासक बनाया जिसने गजनी के अन्तिम शासक खुसरो मलिक को 1186 में कैद करके सम्पूर्ण पंजाब पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। खुसरो मलिक की 1192 में मृत्यु हो गयी। यही शहाबुद्दीन भारतीय इतिहास में मुहम्मद गोरी के नाम से विख्यात हुआ।

आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा

महमूद गजनवी के आक्रमण के डेढ़ सौ वर्ष बाद मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया। इस लम्बी अवधि के मध्य अनेक राजनीतिक परिवर्तन हो गये थे। भारत के पश्चिमी प्रदेशों पर गजनी वंश का अधिकार था। सिन्ध प्रदेश पर उमराओं का शासन था तथा मुल्तान पर शिया सम्प्रदाय के करमानियों का आधिपत्य था। इसके अतिरिक्त उत्तरी भारत के पाँच प्रसिद्ध राजपूत राज्य थे, जिनमें पारस्परिक वैमनस्य की भावना पनप रही थी। उत्तरी भारत के राजपूत राज्य निम्नलिखित थे-

(1) दिल्ली तथा अजमेर- दिल्ली तथा अजमेर में चौहानवंशीय राजपूतों का शासन था। मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय वहाँ का शासक पृथ्वीराज चौहान था। उसने चन्देल राजा परमाल को पराजित कर महोबा पर अपना शासन स्थापित कर लिया था। इस विजय से उसकी ख्याति चारों ओर फैल गयी थी। वह चौहान वंश का शक्तिशाली शासक था।

(2) कन्नौज- कन्नौज पर गहड़वालवंशीय राजपूतों का आधिपत्य था। कन्नौज राज्य की गणना देश के सबसे बड़े शक्तिशाली राज्यों में थी। मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय कन्नौज का शासक जयचन्द था जो बड़ा वीर तथा साहसी था।

(3) गुजरात- यहाँ सोलंकी चालुक्य राज्य करते थे। उनके राज्य की सीमा तुर्कों द्वारा शासित उत्तरी- पश्चिमी प्रान्तों से मिलती थी। मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय मूलराज द्वितीय यहाँ का शासक था। इसकी सैनिक- शक्ति भी प्रबल तथा सुदृढ़ थी।

(4) बिहार- बिहार में पालवंश के राजाओं का आधिपत्य था। इसकी भी सैनिक- स्थिति उन्नत दशा में थी।

(5) बंगाल- बंगाल में सेन- वंश का राजा लक्ष्मणसेन शासन कर रहा था। इसके समय में आन्तरिक संघर्ष के कारण सेन- राज्य काफी कमजोर हो गया था।

उत्तरी भारत के इन राज्यों में एक- दूसरे के प्रति वैमनस्य की भावना व्याप्त थी। मुख्यतः पृथ्वीराज चौहान और जयचन्द में विशेष शत्रुता थी। वे एक- दूसरे को नीचा दिखाने के प्रयास में लगे रहते थे। शत्रुता का कारण पृथ्वीराज चौहान द्वारा जयचन्द की पुत्री संयोगिता का अपहरण था। उत्तरी भारत के ये सभी राजपूत राज्य मुसलमानों के विरुद्ध संयुक्तमोर्चा बनाकर

युद्ध करने के लिए तैयार न थे। इसी कारण वे उत्तरी-पश्चिमी भारत में स्थापित विदेशी राज्यों में होनेवाली घटनाओं से अनभिज्ञ रहे, जिसकी कीमत उन्हें देश की स्वतन्त्रता खोकर चुकानी पड़ी।

उत्तरी भारत की ही भाँति दक्षिण भारत भी अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। देवगिरि में यादव-वंश, वारंगल में काकतीय वंश, द्वारसमुद्र में होयसल वंश शासन कर रहा था। इन राज्यों में भी पारस्परिक संघर्ष चल रहा था। वास्तव में उस समय की राजनीतिक स्थिति इतनी अधिक शोचनीय थी कि विदेशी आक्रमणकारियों के लिए सर्वथा उपयुक्त थी। इस स्थिति का लाभ उठाकर मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया और द्वितीय प्रयास में उसे सफलता भी मिली और राजपूतों के हाथों भारत को पराजय का आलिंगन करना पड़ा।

मुहम्मद गोरी की प्रारम्भिक विजयें

मुहम्मद गोरी का प्रथम उद्देश्य भारत के मुस्लिम प्रान्तों को अपने अधीन बनाना था। अतएव उसने भारत के उत्तरी-पश्चिमी प्रान्तों पर आक्रमण करने आरंभ किये। उसके प्रारम्भिक आक्रमण इस प्रकार हैं-

(i) मुल्तान पर आक्रमण- मुहम्मद गोरी का पहला आक्रमण 1175 में मुल्तान के शिया सुल्तान पर हुआ। उसने युद्ध में सुल्तान को पराजित कर मुल्तान पर अधिकार कर लिया। वहाँ की सुव्यवस्था के लिए उसने अपने एक सूबेदार को नियुक्त कर दिया।

(ii) उच्छ पर आक्रमण- इसके उपरान्त मुहम्मद गोरी ने 1176 में उच्छ पर आक्रमण किया। कहा जाता है कि उसने अपनी कूटनीति द्वारा वहाँ की रानी को अपनी ओर मिला लिया जिसने अपने पति को विष देकर मरवा डाला और आक्रमणकारियों के लिए दुर्ग के द्वार खुलवा दिये। आधुनिक अनुसन्धानों से यह कहानी असत्य सिद्ध हो गई है। उस समय सम्भवतः उच्छ पर माथी मुसलमानों का अधिकार था। मुहम्मद गोरी ने किसी कूटनीति के द्वारा उच्छ राज्य पर अधिकार स्थापित कर लिया।

(iii) गुजरात पर आक्रमण- 1178 में उसने गुजरात पर आक्रमण किया लेकिन गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज द्वितीय ने उसे आबू पर्वत के कमद्रा मैदान में बुरी तरह परास्त किया और देश के बाहर खदेड़ दिया। मुहम्मद गोरी निराश नहीं हुआ।

(iv) पेशावर पर आक्रमण- 1180 में उसने पेशावर पर आक्रमण किया और वहाँ के गजनवी शासक को युद्ध में परास्त कर उस पर अधिकार कर लिया।

(v) लाहौर पर आक्रमण- 1181 में मुहम्मद ने लाहौर पर आक्रमण किया और खुसरो मलिक को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य किया। खुसरो मलिक ने मुहम्मद गोरी की सेवा में बहुमूल्य भेंट तथा अपने पुत्र को बन्धक के रूप में भेजा, किन्तु खुसरो मलिक का लाहौर पर अधिकार नहीं हो सका।

(vi) स्यालकोट पर आक्रमण- 1185 में उसने स्यालकोट के किले पर अधिकार कर लिया। 1186 में उसने कूटनीति द्वारा लाहौर पर अधिकार कर लिया और वहाँ के शासक खुसरो मलिक को कैद कर गोर भिजवा दिया, जहाँ 1192 में उसका वध कर दिया गया। इस प्रकार संपूर्ण पंजाब पर मुहम्मद गोरी का आधिपत्य स्थापित हो गया और उसके लिये भारत की विजय का मार्ग खुल गया।

मुहम्मद गोरी की भारत- विजय

तराइन का प्रथम युद्ध (1191)- पंजाब पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के पश्चात् मुहम्मद गोरी ने उत्तरी भारत को जीतने का निश्चय किया। फलतः 1190-91 में उसने सरहिन्द नामक स्थान पर अधिकार कर लिया। जब पृथ्वीराज चौहान को यह समाचार मिला तो कहा जाता है कि वह उस तरफ दो लाख अश्वारोहियों और तीस हजार हाथी (सेना की यह संख्या अतिरंजित मालूम होती है) लेकर मुहम्मद गोरी का सामना करने के लिये बढ़ा। लेनपूल ने लिखा है, "अब उसे (मुहम्मद गोरी) राजपूतों की पूरी ताकत का मुकाबला करना था जो संसार के किसी सर्वश्रेष्ठ योद्धा से कम न थे, जो जन्म से योद्धा पैदा हुए थे और अपनी जान की बाजी लगाकर लड़ते थे।"1191 में तराइन के मैदान में दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। मुहम्मद गोरी की सेना पराजित होकर मैदान से भाग खड़ी हुई। मुहम्मद स्वयं बुरी तरह घायल हो गया। यदि उसका एक स्वामिभक्त खिलजी अफसर उसे अपने घोड़े पर बिठाकर युद्ध- स्थल से लेकर न भाग गया होता, तो उसे अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता। राजपूतों ने गोरी की भागती हुई सेना का पीछा नहीं किया। वे रणक्षेत्र से भागते हुए शत्रु पर आक्रमण करना धर्मविरुद्ध मानते थे। मुसलमानों की यह सबसे बड़ी पराजय और राजपूतों की अंतिम विजय थी।

तराइन का द्वितीय युद्ध (1192)- मुहम्मद इस बुरी पराजय को भूला नहीं। 'वह कभी न आराम से सोया और न चैन से जागा।' अगले वर्ष (1192) में ही वह 1 लाख 20 हजार अश्वारोही सेना लेकर एक बार पुनः तराइन के मैदान में आ डटा। पृथ्वीराज चौहान ने भी अन्य राजपूत राजाओं की सहायता से एक विशाल सम्मिलित सेना लेकर जिसमें फरिश्ता के अनुसार पाँच लाख घुड़सवार और तीन हजार हाथी (यह संख्या भी सन्देहात्मक है) लेकर तराइन के ही युद्ध- क्षेत्र में मुहम्मद गोरी का सामना किया। लेकिन इस बार मुसलमानों की अश्वारोही सेना ने बड़ी तेजी से आक्रमण किया और भीषण बाण- वर्षा से राजपूतों की सेना को विचलित कर दिया। जब राजपूत सैनिक थक गये तो सन्ध्या समय मुहम्मद ने सुरक्षित सेना की टुकड़ी से घातक प्रहार किया जिसे राजपूत सैनिक बर्दाश्त नहीं कर सके। परिणामस्वरूप राजपूतों की पराजय हुई। पृथ्वीराज युद्ध- स्थल में ही पकड़ा गया। मुसलमान उसे अजमेर ले गये, जहाँ कुछ समय बाद किसी विद्रोह के अपराध में उसका वध कर दिया।[1] इस प्रकार भारत की राजसत्ता मुसलमानों के हाथ में आ गई।

तराइन के द्वितीय युद्ध का परिणाम- तराइन के द्वितीय युद्ध में राजपूतों की सामूहिक शक्ति को इतनी असह्य चोट लगी कि इसके बाद वे मुसलमानों की बढ़ती शक्ति को रोक न सके। भारतीय इतिहास में 'यह युद्ध निर्णायक सिद्ध हुआ और इससे मुहम्मद गोरी की भारत- विजय निश्चय हो गई।'**डॉ० ईश्वरीप्रसाद** के अनुसार, "पृथ्वीराज की पराजय से राजपूत शक्ति को बड़ा धक्का पहुँचा। इस पराजय के पश्चात् उसका नैतिक पतन हो गया।" **डॉ० आशीर्वादीलाल** के शब्दों में, "हमारे इतिहास में पहली बार मुहम्मद ने हिन्दुस्तान के बीच एक

---

1. पृथ्वीराज की मृत्यु के सम्बन्ध में कई मत प्रचलित हैं। मिनहाज के अनुसार पृथ्वीराज को पकड़ कर उसका तुरन्त ही वध कर दिया गया। हसन निजामी के अनुसार मुसलमान उसे पकड़कर अजमेर ले गये जहाँ किसी विद्रोह के अपराध में उसका वध कर दिया गया। चन्दरबरदाई के अनुसार मुसलमान उसे गजनी ले गये जहाँ मुहम्मद गोरी को मार डालने के अपराध में उसका वध कर दिया गया। मैंने निजामी के कथन को ही स्वीकार किया है।

विदेशी तुर्की राज्य की नींव डाल दी।'' इस युद्ध में विजयी होने के पश्चात् मुसलमानों ने सरलतापूर्वक सरस्वती, समाना, कुहराम तथा हाँसी पर अधिकार स्थापित कर लिया। मुहम्मद गोरी ने अजमेर को लूटा और उस पर अपना अधिकार कर लिया। उसने दिल्ली के निकट इन्द्रप्रस्थ में कुतुबुद्दीन ऐबक की अध्यक्षता में एक सेना रख दी, जो दिल्ली और अजमेर के अधीन हिन्दू शासकों को सन्धि करने को बाध्य करे। उसने दिल्ली में तोमर राजपूतों को करद शासक के रूप में स्वीकार कर लिया और इसी प्रकार अजमेर का शासन उसने पृथ्वीराज के पुत्र गोविन्दराज को सौंप दिया और उससे यह वादा करा लिया कि वह मुहम्मद गोरी को वार्षिक कर देगा तथा उसे यह भी वादा करना पड़ा कि जो गढ़ और इलाके उसने अपने शासन में सीधे ले लिया है, उनको वापस पाने की वह चेष्टा नहीं करेगा।

कन्नौज पर आक्रमण (1194)- जिस समय कुतुबुद्दीन ऐबक राजपूतों के विद्रोह को दबाने में व्यस्त था, उसी समय मुहम्मद गोरी एक विशाल सेना लेकर कन्नौज और बनारस के शासक जयचन्द को पराजित करने के उद्देश्य से भारत आ पहुँचा। उसने बनारस की ओर कूच कर दिया। जयचन्द ने आक्रमणकारी का सामना चन्दावर नामक स्थान पर किया। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। मुसलमान पराजित ही होने वाले थे कि जयचन्द की आँख में एक घातक बाण लगा और उसकी मृत्यु हो गई। इससे राजपूत हतोत्साहित हो गये और उनकी सेना में भगदड़ मच गई। भाग्य ने मुहम्मद गोरी को फिर विजय-माला पहनायी। यह युद्ध 1194 में हुआ। इसके बाद उसने बनारस पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। वहाँ उसे एक भारी कोष प्राप्त हुआ जिसे वह 1400 ऊँटों पर लादकर ले गया। कुछ समय तक कन्नौज पर मुसलमानों का अधिकार न हो सका, लेकिन 1198 में उस पर भी अधिकार कर लिया गया। इस विजय के पश्चात् गोरी स्वदेश लौट गया।

मुहम्मद गोरी के विजय-कार्य को उसके सेनापति कुतुबुद्दीन ने पूरा किया। उसने कोल-विद्रोह का दमन किया। इसके बाद पृथ्वीराज के भाई हरिराज को परास्त किया जिसने अजमेर पर अधिकार कर दिल्ली को जीतने का प्रयास किया था। इस प्रकार उसने पुनः अजमेर पर मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित किया। मुहम्मद गोरी ने 1195 में पुनः भारत पर आक्रमण कर बयाना और ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। उसके सेनापति कुतुबुद्दीन ने अन्हिलवाड़ और कालिंजर को विजय किया। उसके एक दूसरे सेनापति बख्तियार खिलजी ने बिहार और बंगाल को जीता। इस प्रकार सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर मुहम्मद गोरी का आधिपत्य स्थापित हो गया।

मुहम्मद गोरी की मृत्यु- मुहम्मद गोरी को खोखर जाति के विद्रोह का दमन करने के लिए एक बार फिर पंजाब आना पड़ा। स्थिति को ठीक करके जब वह गजनी लौट रहा था, दमयक नामक स्थान पर 15 मार्च, 1206 को नमाज पढ़ते समय किसी हिन्दू खोखर ने उसकी हत्या कर दी।

मुहम्मद गोरी का चरित्र- तत्कालीन इतिहासकारों ने मुहम्मद के चरित्र की बहुत अधिक प्रशंसा की है। मिनहाज के अनुसार, ''वह बहुत ही शरीफ, धार्मिक, विश्वसनीय, न्यायप्रिय तथा जनप्रिय शासक था।'' फरिश्ता का कथन है, ''वह बहुत ही न्यायी मुसलमान था। वह अपनी प्रजा का सदैव ध्यान रखता था।'' इसमें सन्देह नहीं कि उसमें अनेक गुण विद्यमान थे और वह उच्चकोटि का व्यक्ति था। उसने महमूद की भाँति भारतीय संस्कृति को नष्ट नहीं

किया। वह महमूद की भाँति पक्षपाती न था और न धन ने उसे राजनीतिक महत्वाकांक्षा की ओर से अन्धा ही बना दिया था। उसने आरम्भ से ही अपनी विजयों को स्थायी रूप देने का प्रयास किया। वह एक सच्चा विजेता था। उसने दिल्ली को विजय कर एक स्थायी साम्राज्य की नींव डाली। वह सच्ची लगन का व्यक्ति था। तराइन के प्रथम युद्ध में पराजित होकर भी वह निराश नहीं हुआ। उसने स्वयं स्वीकार किया है कि 'वह न कभी आराम से सोया और न चैन से जागा।' अन्त में तराइन के द्वितीय युद्ध में विजयी हुआ। वह एक कुशल राजनीतिज्ञ भी था। उसमें परिस्थितियों को समझने और उन पर अधिकार करने की अद्‌भुत क्षमता थी। **डॉ० आशीर्वादीलाल** का कथन है, ''उसमें धैर्य की मात्रा अधिक थी और कभी भी अन्तिम रूप से पराजय को स्वीकार करने के लिए वह तैयार नहीं होता था . . . . वह मानव चरित्र का अच्छा पारखी था। इसलिये अपने गुलामों को उसने संरक्षण और प्रोत्साहन दिया और उन्होंने भी अपने व्यवहार द्वारा उसकी परख और व्यवहार को उचित सिद्ध किया।'' **लेनपूल** के अनुसार, ''महमूद की तुलना में मुहम्मद गोरी का नाम विख्यात नहीं है। वह साहित्य प्रेमी न था और उसके दरबार में उसके गुणों का गान करने के लिए कवियों और इतिहासकारों में होड़ नहीं लगती थी। किन्तु फिर भी भारत में उसकी विजय महमूद की अपेक्षा अधिक व्यापक और अधिक स्थायी थी।'' मुहम्मद गोरी ने भारत में मुसलमानी साम्राज्य की नींव डाली थी और ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, जैसा कि **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** ने लिखा है, ''उसका भारतीय साम्राज्य बढ़ता गया। यहाँ तक कि दिल्ली के छोटे से राज्य से प्रारम्भ होकर वह आगे चलकर पूर्व का सबसे सम्पत्तिशाली साम्राज्य बन गया।'' इसे समय का व्यंग्य ही समझिये कि मुहम्मद गोरी के काल से लेकर 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम तक दिल्ली के सिंहासन पर मुसलमान शासक ही बैठे।

भारतीय इतिहास में स्थान- मुहम्मद गोरी का भारतीय इतिहास में स्थान मुस्लिम साम्राज्य के संस्थापक के रूप में है। महमूद अपने देश से एक आँधी की भाँति आया और लूट में अतुल सम्पत्ति प्राप्त कर स्वदेश लौट गया। लेकिन मुहम्मद गोरी भारत में साम्राज्य स्थापित करने आया था और भाग्य से उसे अपने इस कार्य में सफलता भी प्राप्त हुई। उसका महमूद की भाँति एक डाकू, लालची, लुटेरा तथा कला का निर्दयी शासक के रूप में स्थान नहीं है, बल्कि एक सज्जन, विश्वासनीय, न्यायप्रिय तथा जनप्रिय शासक के रूप में भारतीय इतिहास में स्थान है।

राजपूतों की पराजय के कारण

महमूद गजनवी के डेढ़ सौ वर्ष पश्चात् मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया। लेकिन उत्तरी भारत के राजपूत राज्य इस लम्बी अवधि के बीच में भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा को सुदृढ़ बनाने की ओर से पूर्णतया उदासीन रहे। महमूद के हाथों सत्रह बार पराजित होने के बाद भी उन्होंने सबक नहीं सीखा। यदि कभी राजपूत राज्यों ने आपसी संगठन बनाकर मुसलमान आक्रमणकारियों का सामना किया होता तो यह निश्चित है कि मुसलमानों को वह पराजय मिलती कि फिर कभी भारत की ओर जीतने के अभिप्राय से आँख न उठाते। लेकिन दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो सका, क्योंकि भारत को तो परतन्त्रता की जंजीरों में जकड़ना था। राजपूतों की पराजय के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे :

(1) शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता का अभाव- राजपूत युग में संपूर्ण देश छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। राजपूत शासक आपसी वैमनस्य, ईर्ष्या एवं द्वेष के कारण परस्पर संघर्षरत रहते थे। इस युग में कोई भी ऐसा शक्तिसम्पन्न शासक नहीं हुआ जो देश में एकच्छत्र शासन सत्ता स्थापित कर राजनीतिक एकता प्रदान करने में सफल हो सकता, प्रत्येक राज्य अपनी सम्प्रभुता स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहा करता था। अतः वे एकता के शक्तिसूत्र में बँधकर शत्रु सेना के विरुद्ध कोई संयुक्त संगठन भी निर्मित न कर पाये। वास्तव में वे किसी भी दूसरे राजपूत शासक का नेतृत्व मानने के लिए तैयार न थे। अतः एक सशक्त केन्द्रीय सत्ता का अभाव इनके पतन का एक प्रमुख कारण था।

(2) राजपूतों में कूटनीति का अभाव- राजपूत धर्मयुद्ध में अटूट आस्था रखते थे। वे रणभूमि में छल-बल, कपट व कूटनीति का प्रयोग करना धर्मविरुद्ध समझते थे। रणभूमि से पीठ दिखाना अपना अपमान समझते थे। इसके विपरीत शत्रु सेना कूटनीति का प्रयोग कर उन्हें परास्त करने में सफलता प्राप्त कर लेती थी। तराइन के प्रथम युद्ध में रणस्थल से घायल मुहम्मद गोरी को पकड़ा जा सकता था, परन्तु राजपूत इस कायरतापूर्ण रणनीति को अपने आत्मगौरव के विपरीत मानते थे। राजपूत साहस और शौर्य में तुर्कों से कम न थे, परन्तु उनका युद्ध करने का आदर्श तुर्कों से भिन्न था।

(3) उत्तरी-पश्चिमी प्राकृतिक सीमा की उपेक्षा- राजपूत भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमाओं की सुरक्षा की ओर से सदैव असावधान रहे। यहाँ तक कि वे अपने पड़ोसी राज्य पर आक्रमण होने की स्थिति में भी उदासीन रहते थे। कभी-कभी तो वे वैमनस्य की भावना के वशीभूत होकर अपने पड़ोसी राज्य के विरुद्ध शत्रु सेना की सहायता करने में भी संकोच नहीं करते थे। कन्नौज के राजा जयचन्द के विषय में कहा जाता है कि उसने व्यक्तिगत द्वेष के कारण मुहम्मद गोरी को पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया था। इन परिस्थितियों का लाभ उठाकर विदेशी आक्रामक बड़ी सरलता से बिना किसी अवरोध के भारतीय सीमाओं में अपनी विशाल सेना सहित प्रवेश कर लेते थे तथा अपार धन-सम्पदा के साथ सुरक्षित स्वदेश वापस लौट जाते थे। जब शत्रु सेना उनके राज्य की सीमा में प्रवेश करती थी तभी वे युद्ध के लिये तत्पर होते थे। उत्तर-पश्चिमी सीमा पर न तो दुर्गों का निर्माण कराया और न तो किसी रक्षा-पंक्ति का निर्माण किया। अतः राजपूतों ने सीमा-सुरक्षा की सदैव उपेक्षा रखी।

राजपूतों की पराजय के कारण

1. शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता का अभाव
2. राजपूतों में कूटनीति का अभाव
3. उत्तरी-पश्चिमी प्राकृतिक सीमा की उपेक्षा
4. प्राचीन युद्ध-प्रणाली
5. सामाजिक व्यवस्था का दोष
6. धार्मिक दुर्बलता
7. सामन्तीय प्रथा
8. रक्षात्मक युद्ध
9. आर्थिक युद्ध
10. राजपूत राजाओं द्वारा आत्म-हत्या
11. आकस्मिक कारण

(4) प्राचीन युद्ध-प्रणाली- राजपूतों की युद्ध-प्रणाली एवं शस्त्रों का उपयोग, दोनों ही अत्यन्त प्राचीन थे। तुर्क आक्रमणकारी सैनिक संगठन, युद्ध-नीति, शस्त्र और योग्य नेतृत्व में भारतीयों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हुए। राजपूत युद्ध में तलवार, ढाल व भालों का प्रयोग करते थे जबकि तुर्क लोग तीरन्दाजी में दक्ष थे। तलवार निकट के युद्ध के लिए तो ठीक थी परन्तु दूर से वार करने में कमान अधिक उपयोगी होते थे। राजपूत गजसेना को विशेष महत्व प्रदान करते थे, जबकि अनेक अनुभवों ने हाथियों की अनुपयुक्तता सिद्ध कर दी थी, परन्तु राजपूतों ने अनुभव से लाभ नहीं उठाया। इसके विपरीत तुर्क सेना में अश्वारोहियों की प्रधानता थी जो अधिक गतिशील सिद्ध हुए। राजपूत सेनानायक बड़ी सज-धज के साथ हाथी पर सवार होकर जाते थे जिससे वे बड़ी सरलता से पहचाने जा सकते थे। शत्रु सेना अपनी समस्त शक्ति उन्हीं को समाप्त करने में लगा देती थी। नेताविहीन सैनिकों में भगदड़ मच जाती थी। जयचन्द की आँख में तीर लगने पर हाथी के हौदे से गिर पड़ने तथा तराइन के मैदान में पृथ्वीराज का हाथी से उतरकर घोड़े पर चढ़ने की घटना ने राजपूत सेना की जीती हुई बाजी को हार में परिणत कर दिया था। इसके विपरीत तुर्क सेनापति अपनी व्यक्तिगत रक्षा की ओर बहुत सतर्क रहते थे क्योंकि वे जानते थे कि युद्ध में नेताविहीन सेना कुछ न कर सकेगी। राजपूतों की व्यूह-रचना भी प्राचीन पद्धति पर आधारित थी। उनकी सेना में पैदल सैनिकों की संख्या अधिक रहती थी जो गतिशीलता में घुड़सवारों का सामना नहीं कर सकती थी। इस प्रकार भारतीयों की पराजय का एक मूल कारण उनकी दोषपूर्ण सैनिक दुर्बलता थी।

(5) सामाजिक व्यवस्था का दोष- राजपूतों की पराजय के लिए इस युग का सामाजिक संगठन भी विशेष रूप से उत्तरदायी था। सम्पूर्ण समाज जाति एवं उपजातियों में विभक्त था। युद्ध में केवल राजपूत जाति ही सक्रिय भाग लेती थी। शेष अन्य वर्ग उदासीन थे। उधर राजपूतों की संख्या सीमित थी। निरन्तर पराजयों से उनका नैतिक पतन भी हो रहा था।

(6) धार्मिक दुर्बलता- भारतीय शासक धर्मनिष्ठं होने के कारण देवी-देवताओं के आशीर्वाद एवं कृपा में अधिक आस्था रखते थे। इस प्रकार वे भाग्यवादी हो गये थे। ज्योतिषियों की भविष्यवाणियाँ, संस्कार के कुपरिणामों और ईश्वर के विधान में ऐसा विश्वारः करते थे कि कभी-कभी आत्मविश्वास खो बैठते थे। सेन-वंश के राजा लक्ष्मणसेन की पराजय इसी भावना का दुष्परिणाम थी।

(7) सामन्तीय प्रथा- राजपूतों की दुर्बलता का एक कारण सामन्तीय प्रथा का प्रचलन था। सामन्तशाही शासन-व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक राज्य जागीरों में बँटा हुआ था। यह जागीरदार बहुधा राजपरिवार से ही सम्बन्धित होते थे। राज्य की शक्ति और उसकी रक्षा, इन सामन्तों की स्वामिभक्ति पर निर्भर थी। राजपूत राजाओं की सेना प्रायः उनके अधीन सामन्तों द्वारा भेजी सेना होती थी। ऐसी सेना राजा की अपेक्षा अपने सामन्त के प्रति अधिक स्वामिभक्त होती थी। सामन्त की युद्धभूमि में मृत्यु हो जाने पर अथवा सामन्त के राजा से असन्तुष्ट हो जाने से सेना युद्ध से विरत हो जाती थी। सामन्तों की सेनाओं से मिलकर बनी राजपूत सेना ऐसी होती थी जिसमें एकता, अनुशासन एवं एक नेतृत्व का अभाव रहता था।

(8) रक्षात्मक युद्ध- तुर्कों ने सदैव आक्रमणात्मक युद्ध किए और अपनी सुविधानुसार रणस्थल का चयन किया। राजपूतों को उसी समय और वहीं लड़ना पड़ता था जहाँ शत्रु सेना चाहती थी। शत्रु सेना अपनी व्यूह-रचना पहले से ही कर देती थी। सभी युद्ध भारत-भूमि पर हुए अस्तु, हार चाहे जिस पक्ष की हो परन्तु हानि भारतीयों की ही होती थी। राजपूत सदैव रक्षात्मक युद्ध करते रहे।

(9) आर्थिक लाभ- तुर्क सैनिकों को भारत की अपार धन-सम्पदा भी सदैव आकर्षित करती रही। इस लूट का 4/5 अंश सैनिकों को भी दिया जाता था। तुर्क सैनिक धन के लोभ में भारत आक्रमणों में भाग लेने को उत्सुक रहते थे। अतः तुर्क सुल्तान को सैनिक संग्रह में कोई कठिनाई नहीं होती थी। इस प्रकार तुर्कों की विजय के पीछे धन-लोलुपता का भी पूरा हाथ था।

(10) राजपूत राजाओं द्वारा आत्म-हत्या- कई राजाओं ने पराजय की ग्लानि से आत्म-हत्या कर ली। इसका प्रभाव राजपूत सैनिकों पर बहुत बुरा पड़ा। जयपाल ने अग्नि में कूदकर अपने को भस्म न किया होता बल्कि एक बार पुनः सैन्य-संगठन को सुदृढ़ बनाकर मुसलमानों का सामना किया होता और युद्ध-स्थल में वीरगति पायी होती तो इतिहास उसे गर्व के साथ याद करता। पराजित होकर आत्महत्या कर लेना उसकी सबसे बड़ी मूर्खता थी। इसी प्रकार की मूर्खता 'भेरा' के शासक ने भी आत्महत्या करके की थी। इस प्रकार की अशोभनीय घटनाओं से मुसलमानों को विशेष बल प्राप्त हुआ और वे विजयी भी हुए।

(11) आकस्मिक कारण- राजपूतों की पराजय और मुसलमानों की विजय के अनेक ाकस्मिक कारण भी थे जिन्हें भाग्य का खेल भी कहा ज़ा सकता है। जब 986 में जयपाल ने सुबुक्तगीन पर आक्रमण किया, तो तुषारापात के कारण उसकी सैनिक-शक्ति को बड़ी क्षति पहुँची और उसे अपमानजनित सन्धि करनी पड़ी। इसी प्रकार आनन्दपाल के पुत्र के हाथी का युद्ध-स्थल से भागना, जयचन्द की आँख में एकाएक तीर का लगना आदि ऐसी बातें हैं जो राजपूतों के अभाग्य और मुसलमानों के उत्कर्ष की ओर संकेत करती हैं।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ
(Important Dates & Events)

(1) 1191 ई० - तराइन के प्रथम युद्ध में मुहम्मद गोरी की पराजय तथा पृथ्वीराज की विजय।

(2) 1192 ई० - तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज की पराजय तथा मुहम्मद गोरी की विजय।

(3) 1194 ई० - चन्दावर के युद्ध में जयचन्द की पराजय तथा मुहम्मद गोरी की विजय।

(4) 1206 ई० - मुहम्मद गोरी की मृत्यु।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. मुहम्मद गोरी के चरित्र तथा कृतियों का वर्णन कीजिए और बताइये कि उसका भारतीय इतिहास में क्या स्थान है ? (1959)
2. राजपूतों के विरुद्ध मुसलमानों की विजय के क्या कारण थे ? (1960)
3. भारतवर्ष में मुसलमानों की आधिपत्य की स्थापना के कारणों की विवेचना कीजिए। (1968)
4. मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय की भारतवर्ष की राजनीतिक दशा का वर्णन कीजिए। राजपूतों के विरुद्ध उसकी सफलता के क्या कारण थे ?
5. पृथ्वीराज चौहान की उपलब्धियों का उल्लेख कीजिए और तराइन के द्वितीय युद्ध में उसकी पराजय के कारण बताइए। (1976)
6. तराइन के द्वितीय युद्ध (1192 ई०) में मुहम्मद गोरी के विरुद्ध पृथ्वीराज चौहान की पराजय के क्या कारण थे ? इस युद्ध का भारतवर्ष के इतिहास में क्या महत्व है ?
7. मुहम्मद गोरी के भारतीय विजय-अभियानों का उल्लेख कीजिए। (1989, 90)
8. राजपूतों की पराजय के मुख्य कारणों का वर्णन कीजिए। (1990, 92)
9. राजपूतों की पराजय के प्रमुख कारणों का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। (1997)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए)

1. "मुहम्मद गोरी न कभी आराम से सोया न कभी चैन से जागा।" इस कथन के प्रकाश में मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज चौहान के बीच हुए युद्धों का संक्षिप्त वर्णन कर मुहम्मद गोरी का चरित्र-चित्रण कीजिए।
2. "पृथ्वीराज चौहान अन्तिम हिन्दू सम्राट् था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
3. "मुहम्मद गोरी का भारतीय इतिहास में स्थान मुस्लिम साम्राज्य के संस्थापक के रूप में है।" इस कथन के आलोक में मुहम्मद गोरी के भारतीय युद्धों का उल्लेख कीजिए।
4. "अत्यन्त प्राचीन काल से पश्चिमोत्तर के पहाड़ी भागों से भारत पर विदेशी आक्रमण हो रहे थे, परन्तु राजाओं ने इसकी सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की।" इस कथन के आलोक में राजपूतों के राजनीतिक तथा सैन्य संगठन के दोषों का उल्लेख कीजिए। (1986)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय उत्तरी भारत के चार राज्यों का परिचय दीजिए।
2. मुसलमानों की विजय के चार कारणों का उल्लेख कीजिए।
3. राजपूतों की पराजय के चार कारणों का वर्णन कीजिए।
4. मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज चौहान के बीच हुए युद्धों का वर्णन कीजिए।
5. मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय उत्तरी भारत की राजनीतिक दशा किस प्रकार की थी ? (1993)

20
दिल्ली सल्तनत का विस्तार
(अ) गुलाम-वंश
(1206-1290)

> **"सुल्तान मुहम्मद गोरी की मृत्यु के पश्चात् गोर वंश का अन्त हो गया किन्तु उसके द्वारा विजित भारतीय प्रदेशों पर से इस्लाम का प्रभुत्व समाप्त नहीं हो सका। उसके गुलाम उत्तराधिकारियों ने उसे दृढ़ता प्रदान की तथा मुहम्मद गोरी से लेकर 1857 के विप्लव तक दिल्ली के सिंहासन पर मुस्लिम शासकों का अधिकार रहा।"**
>
> - लेनपूल

(अ) कुतुबुद्दीन ऐबक (1206-1210)

मुहम्मद गोरी के कोई पुत्र न था। उसने कुतुबुद्दीन को भारत में अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया था। मिनहाज लिखता है कि एक बार एक दरबारी ने मुहम्मद गोरी का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था कि उसका वंश चलाने के लिए उसका कोई पुत्र नहीं है, तो उसने उत्तर दिया था, "दूसरे सुल्तानों को एक पुत्र होता है, दो होते हैं, मेरे तो हजारों तुर्की गुलाम पुत्र हैं जो मेरे मरने के बाद साम्राज्य के उत्तराधिकारी होंगे तथा समस्त विजित प्रदेशों के खुतबों में मेरे नाम को बनाये रखने का प्रयास करेंगे।" मुहम्मद गोरी की मृत्यु के पश्चात् गोर-वंशीय सुल्तान गयासुद्दीन ने कुतुबुद्दीन को भारत का सुल्तान घोषित किया। लाहौर के तुर्क सरदार भी उसी के पक्ष में थे। अतः मुहम्मद की मृत्यु के तीन महीने के पश्चात् 24 जून, 1206 को लाहौर में कुतुबुद्दीन का राज्याभिषेक हुआ।

प्रारम्भिक जीवन तथा उसकी सफलताएँ- कुतुबुद्दीन के माता-पिता तुर्क थे जो कि तुर्किस्तान के निवासी थे। बाल्यकाल में ही लोग उसे तुर्किस्तान से खुरासान लाये जहाँ नेशापुर के काजी फखरुद्दीन अब्दुल अजीज कूफी ने उसे खरीद लिया और उसे शिक्षा-दीक्षा दी। काजी के पुत्रों ने उसे एक सौदागर के हाथ बेच दिया जिसके हाथ से गजनी में मुहम्मद गोरी ने खरीद लिया। नेशापुर में काजी के पास रहकर पढ़ने के अतिरिक्त उसने घुड़सवारी तथा तीरन्दाजी की शिक्षा अच्छी तरह प्राप्त कर ली थी। मुहम्मद गोरी ने उसके विभिन्न गुणों से प्रभावित होकर उसे अमीर-ए-आखुर (घुड़साल का रक्षक) नियुक्त कर दिया। उसने मुहम्मद के साथ लड़ाइयों में भाग लिया। तराइन के द्वितीय युद्ध में विजयी होने के बाद मुहम्मद गोरी ने अपने विजित प्रान्तों का शासन-भार सँभालने के लिए उसको अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। कुतुबुद्दीन ने दिल्ली के निकट इन्द्रप्रस्थ को अपनी राजधानी बनाया।

मुहम्मद गोरी के प्रतिनिधि के रूप में कुतुबुद्दीन ने भारत-विजय का कार्य सम्पादित किया। जब मुहम्मद गोरी स्वदेश में था, कुतुबुद्दीन ने 1192 में अजमेर और मेरठ में विद्रोह का दमन किया। इसके बाद उसने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। 1194 में उसने अजमेर के विद्रोह का पुनः दमन किया और जयचन्द को परास्त करने में मुहम्मद गोरी की सहायता

की। 1195 में उसने अलीगढ़ और रणथम्भौर जीत लिया। इसके बाद उसने अह्निलवाड़ को लूटा तथा नष्ट-भ्रष्ट किया। 1197-98 में कुतुबुद्दीन ने बदायूँ, चन्दावर और कन्नौज तथा 1208 में चन्देल राजा परमाल को परास्त कर कालिंजर, महोबा तथा खजुराहो पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार कुतुबुद्दीन मुहम्मद गोरी की मृत्यु के पहले ही लगभग समस्त उत्तरी भारत का स्वामी था। मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद वह सिंहासनारूढ़ हुआ और सुल्तान के स्थान पर उसने 'मलिक' तथा 'सिपहसालार' की उपाधियाँ धारण कीं। लेकिन गयासुद्दीन ने उसके पास राजचिह्न और ध्वज भेजकर सुल्तान की उपाधि प्रदान की।

सुल्तान की हैसियत से कुतुबुद्दीन के कार्य- कुतुबुद्दीन ने केवल चार वर्ष शासन किया। इस काल में उसने कोई नई विजय नहीं की। उसका सम्पूर्ण समय वैदेशिक झगड़ों को दबाने में ही व्यतीत हुआ। उसे अपनी सत्ता को सुदृढ़ करने के लिए मुख्य प्रतिद्वन्द्वी एल्दौज और कुबाचा से निपटना पड़ा, जो क्रमशः गजनी और मुल्तान राज्य के शासक थे। मुहम्मद गोरी की मृत्यु के पश्चात् एल्दौज ने गजनी पर अधिकार कर लिया था, किंतु उसे ऐबक ने नगर छोड़ने को बाध्य किया। 1208 में ऐबक ने गजनी पर अधिकार कर लिया, किन्तु उसे जनता के असन्तोष के कारण चालीस दिन बाद ही गजनी छोड़ना पड़ा। इसके उपरान्त उसने मध्य एशिया की राजनीति की ओर ध्यान नहीं दिया।

गोरी की मृत्यु के पश्चात् क़ालिंजर के चन्देल शासक तथा ग्वालियर के प्रतिहारवंशीय राजपूत शासकों ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा क़र दी थी। बदायूँ एवं उसके आस-पास के क्षेत्र के राजा जयचन्द के उत्तराधिकारी हरिश्चन्द्र ने भी दिल्ली सल्तनत का जुआ उतार फेंका था। ऐबक ने केवल बदायूँ को बचा लिया। इसके अतिरिक्त वह राजपूतों के विरुद्ध कोई कार्यवाही न कर सका। उसने इल्तुतमिश नामक तुर्क सरदार को बदायूँ का शासक नियुक्त किया।

मुहम्मद-बिन-बख्तियार खिलजी की मृत्यु के बाद अलीमर्दान ने बंगाल और बिहार पर अधिकार कर लिया किन्तु खिलजी सरदारों ने उसे बन्दी बना लिया और उसके स्थान पर मुहम्मद शेरा को गद्दी पर बिठाया। अलीमर्दान कैद से भागकर दिल्ली में ऐबक से मिला और उसे बंगाल की राजनीति में हस्तक्षेप करने के लिए तैयार कर लिया। कुतुबुद्दीन के प्रतिनिधि कैमाज रूमी ने खिलजी सरदारों को ऐबक की प्रभुता स्वीकार करने के लिए विवश किया। अन्त में अलीमर्दान बंगाल का प्रान्तीय सूबेदार नियुक्त हुआ और उसने दिल्ली के सुल्तान को वार्षिक कर देने का वचन दिया।

मृत्यु- 1210 में लाहौर में चौगान खेलते समय अकस्मात् घोड़े से गिर जाने के कारण ऐबक को घातक चोट पहुँची और उसका निधन हो गया। लाहौर में ही उसे दफनाया गया और उसकी कब्र पर एक साधारण स्मारक बनवा दिया गया।

कुतुबुद्दीन का चरित्र तथा उसका मूल्यांकन- कुतुबुद्दीन ऐबक में वे समस्त गुण विद्यमान थे जो एक प्रतिभाशाली शासक तथा सेनानायक में होने आवश्यक हैं। मुसलमान इतिहासकार मिनहाज ने अपनी पुस्तक **'तबकात-ए--नासिरी'** में उसकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। उसके चरित्र के प्रमुख गुणों का वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है-

(i) सुयोग्य सेनापति- ऐबक एक योग्य एवं कुशल सेनापति था। मुहम्मद गोरी की अधिकांश सफलताओं का श्रेय ऐबक को प्राप्त है। मेरठ, झाँसी, दिल्ली, अजमेर, कालिंजर, अलीगढ़, ग्वालियर, महोबा आदि की विजय उसी ने की थी। मुहम्मद गोरी ने उसके विभिन्न

गुणों से प्रभावित होकर उसे भारत में अपने विजित प्रदेशों का अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया था। उसने सदैव अपने स्वामी के प्रति सच्चे स्वामिभक्त के रूप में अपना परिचय दिया। वस्तुतः कुतुबुद्दीन एक महान् सेनानायक था। वह प्रतिभाशाली सैनिक था और हीन तथा दरिद्र अवस्था से उठ कर शक्ति तथा यश के शिखर पर पहुँच गया था। उसमें उच्चकोटि का साहस और निर्भीकता थी। वह उन योग्य तथा शक्तिशाली गुलामों में था जिनके कारण मुहम्मद गोरी को भारत में इतनी सफलता प्राप्त हुई थी।

(2) न्यायप्रिय शासक- ऐबक एक कुशल न्यायप्रिय शासक था। हसन निजामी जो उसे बहुत अच्छी तरह जानता था, लिखता है, "वह न्याय के साथ राज्य करता था और उसकी प्रजा सुखी थी। उसके शासनकाल में मेमना व भेड़िया एक ही तालाब में पानी पीते थे और राहगीरों को लूटने वाले डाकुओं को समाप्त कर दिया गया था। ऊँचे-नीचे दोनों तरह के हिन्दुओं के साथ शाही मेहरबानी बरती जाती थी।" किन्तु अन्य मुसलमान आक्रमणकारियों की भाँति उसने भी हजारों दास बन्दी किये, लूटमार की और मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया और उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण कराया।

(3) कुशल राजनीतिज्ञ- ऐबक एक कुशल राजनीतिज्ञ भी था। सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व ही उसने वैवाहिक नीति को अपनाकर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी। उसने अपनी पुत्री का विवाह इल्तुतमिश से, बहिन का नासिरुद्दीन कुबाचा से तथा स्वयं अपना एल्दौज की पुत्री के साथ कर लिया था। इसके अतिरिक्त उसने भारत पर से गजनी का प्रभुत्व समाप्त कर दिया था, जिससे उसे भारत में नवमुस्लिम राज्य स्थापित करने में विशेष कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा।

(4) उदार तथा दानी- वह बड़ा परोपकारी तथा दानी था, जिसके कारण लोगों ने उसे 'लाखबख्श' की उपाधि प्रदान की है।

(5) साहित्य तथा कला-प्रेमी- एक कुशल सेनानायक होने के अतिरिक्त उसे साहित्य और कला से भी अभिरुचि थी। उसके दरबार में ख्वाजाहसन निजामी, फक्र-ए-मुदाब्बिर और फखरुद्दीन जैसे विद्वानों को आश्रय प्राप्त था। उसने स्थापत्य-कला की ओर भी ध्यान दिया। दिल्ली में उसने एक मस्जिद और कुतुबमीनार का निर्माण कराया। मस्जिद कुव्वत-उल-इस्लाम के नाम से प्रसिद्ध है। उसने अजमेर में मन्दिरों के भग्नावशेषों से ही दो मस्जिदों का निर्माण कराया। इनमें से एक जामा मस्जिद और दूसरी 'अढ़ाई दिन का झोंपड़ा' के नाम से विख्यात है।

(6) असफल शासक- ऐबक में रचनात्मक प्रतिभा का अभाव था। उसने न तो शासन सम्बन्धी संस्थाओं की ही स्थापना की और न कोई सुधार ही किए। 'खुदा के नाम पर घोर युद्ध करने में वह कभी न चूकता था।'उसने लाखों व्यक्तियों का वध करवाया, इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसमें धार्मिक उदारता का अभाव था। एक तत्कालीन इतिहासकार का कथन है, "उसके राज्य में सब ओर उसके मित्र थे और दुश्मनों का खात्मा किया जा चुका था। उसकी समृद्धि और दुश्मनों की हत्या निरन्तर जारी थी।"

इतिहास में स्थान- ऐबक का भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। अपने विशिष्ट गुणों के कारण ही उसने दास के पद से सुल्तान के पद को सुशोभित किया। उसका सम्पूर्ण राज्य-काल वैदेशिक झगड़ों में ही व्यतीत हुआ। इसी कारण वह शासन सम्बन्धी रचनात्मक कार्यों को नहीं कर सका। फिर भी उसे मुस्लिम राज्य का संस्थापक कहा जाता

है। इसमें सन्देह नहीं कि उसने बाबर की भाँति भारत में गुलाम-वंश की स्थापना की जिसको आगे चलकर इल्तुतमिश ने संगठित किया।

(ब) इल्तुतमिश (1211-1236)

प्रारम्भिक जीवन- इल्तुतमिश का पूरा नाम 'शमसुद्दीन इल्तुतमिश' था। वह मध्य एशिया में निवास करने वाले इल्बारी कबीले में तुर्क माता-पिता से उत्पन्न हुआ था। उसके विभिन्न गुणों से ईर्ष्या करने वाले उसके भाइयों ने उसे बाल्यकाल में ही दास बनाकर जमालुद्दीन नामक एक व्यापारी को बेच दिया था। दो बार दास के रूप में बिकने के बाद वह गजनी लाया गया जहाँ कुतुबुद्दीन ऐबक ने उसे खरीद लिया। वह कुतुबुद्दीन के विपरीत बड़ा सुन्दर तथा स्वस्थ था। उसने सैनिक शिक्षा अच्छी तरह प्राप्त कर ली थी और पढ़ना-लिखना भी सीख लिया था। मुहम्मद गोरी उसके गुणों से बहुत प्रभावित था। उसने उसके सम्बन्ध में कुतुबुद्दीन को एक बार स्वयं लिखा था, ''इल्तुतमिश के साथ अच्छा व्यवहार करना। किसी दिन वह ख्याति प्राप्त करेगा।'' इल्तुतमिश के गुणों को परख कर ऐबक ने उसे दासता से मुक्त कर दिया। धीरे-धीरे अपनी योग्यता के कारण वह अपने स्वामी का कृपापात्र बनता गया। अन्त में 'अमीर-ए-शिकार' का पद प्राप्त किया। ग्वालियर-विजय के उपरांत उसको ग्वालियर का सूबेदार नियुक्त किया गया। इसके बाद वह बरन (बुलन्दशहर) का शासक बनाया गया। उसी समय कुतुबुद्दीन ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया और उसे बदायूँ का सूबेदार नियुक्त किया। 1211 में आरामशाह को युद्ध में पराजित करने के बाद दिल्ली के राज-सिंहासन को प्राप्त कर उसने सुल्तान के पद को सुशोभित किया। उसके समकालीन इतिहासकार मिनहाज का कहना है, ''उसकी सुन्दरता, बुद्धिमत्ता और कुलीनता का मुकाबला न था। कोई भी इतना परोपकारी, सहानुभूतिपूर्ण और विद्वानों तथा बुजुर्गों की इज्जत करने वाला ऐसा राजा नहीं हुआ जिसने स्वयं अपने प्रयास से राज-सिंहासन प्राप्त किया हो।''

इल्तुतमिश की प्रारंभिक समस्याएँ- कुतुबुद्दीन की अकाल मृत्यु के बाद अमीरों ने उसके पुत्र आरामशाह को राज-सिंहासन पर बिठाया, किन्तु जब वह अयोग्य शासक साबित हुआ तो उन्होंने बदायूँ के शासक इल्तुतमिश को शासन का कार्यभार सँभालने के लिए आमन्त्रित किया। उसने दिल्ली के समीप युद्ध के मैदान में आरामशाह को परास्त किया और 1211 में दिल्ली के राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। किन्तु इल्तुतमिश के लिए शान्तिपूर्वक शासन करना सम्भव न था, क्योंकि उसके सम्मुख निम्नलिखित कठिनाइयाँ थीं :

इल्तुतमिश की प्रारम्भिक समस्याएँ
1. दिल्ली-साम्राज्य का विभाजन
2. राजपूत राजाओं का स्वतन्त्र हो जाना
3. कुतुबी अमीरों का विद्रोह

(1) दिल्ली साम्राज्य का विभाजन- गोरी के साम्राज्य विभाजन के अनुसार ताजुद्दीन एल्दौज गजनी का तथा नासिरुद्दीन कुबाचा सिन्ध व मुल्तान का शासक था। इल्तुतमिश के अधिकार में दिल्ली, बदायूँ, बनारस तथा शिवालिक पहाड़ियों का प्रदेश था। एल्दौज और

कुबाचा दोनों अपने को गोरी का वास्तविक उत्तराधिकारी मानते थे। इनकी दृष्टि दिल्ली के सिंहासन पर जमी हुई थी। अतः वे इल्तुतमिश के प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे।

(2) राजपूत राजाओं का स्वतन्त्र हो जाना- कुछ राजपूत राजाओं ने दिल्ली से सम्बन्ध-विच्छेद कर अपने-आपको स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया था और दिल्ली को कर भेजना बन्द कर दिया था। जालौन, रणथम्भौर, कालिंजर, अजमेर, ग्वालियर आदि पर राजपूतों ने पुनः अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

(3) कुतुबी अमीरों का विद्रोह- ऐबक के समर्थक अमीर जिन्हें कुतुबुद्दीन के नाम पर कुतुबी अमीर कहा जाता था, ने आरामशाह के पक्ष में इल्तुतमिश का विरोध किया और उन्होंने आरामशाह से मिलकर विद्रोह का झंडा खड़ा किया। उन्होंने उसके विरुद्ध एक षड्यन्त्र भी रचा, किन्तु उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई।

इल्तुतमिश की सफलताएँ- इल्तुतमिश ने इस संकटमय काल में कूटनीति से काम लिया और अपने प्रतिद्वन्द्वियों की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया।

(i) एल्दौज से समझौता- इल्तुतमिश ने एल्दौज से समझौता कर उसकी प्रभुता स्वीकार कर ली और उसने दिल्ली में आरामशाह के दल का दमन किया तथा कुतुबी अमीरों को भी अपने नियन्त्रण में कर लिया। उसने अपने पक्ष के विश्वासपात्र अमीरों में से चालीस अमीरों का एक दल गठित किया और उन्हें राज्य के महत्वपूर्ण पदों पर आसीन किया।

इल्तुतमिश की सफलतायें

(i) एल्दौज से समझौता
(ii) एल्दौज की शक्ति का पतन
(iii) कुबाचा का दमन
(iv) मंगोल आक्रमण का भय
(v) कुबाचा का पतन

(ii) एल्दौज की शक्ति का पतन- इसके बाद इल्तुतमिश ने एल्दौज की ओर ध्यान दिया जिसने पंजाब के गवर्नर कुबाचा को लाहौर से निकाल कर पंजाब पर अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयास किया। इल्तुतमिश यह बर्दाश्त नहीं कर सका और उसने एल्दौज को तराइन के युद्ध-क्षेत्र में भीषण संग्राम के बाद परास्त किया। एल्दौज बन्दी बनाकर बदायूँ भेज दिया गया जहाँ 1217 में उसकी मृत्यु हो गई।

(iii) कुबाचा का दमन- इल्तुतमिश ने एल्दौज को परास्त कर लाहौर पर अधिकार कर लिया था, किन्तु कुछ समय उपरान्त कुबाचा ने लाहौर पर अपना अधिकार कर लिया। अतः इल्तुतमिश ने उसे 1217 में परास्त किया। इस प्रकार समस्त पंजाब पर उसका आधिपत्य स्थापित हो गया। इल्तुतमिश ने उसका पूर्णतया दमन नहीं किया, क्योंकि उसने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी।

(iv) मंगोल आक्रमण का भय- 1221 में इल्तुतमिश को नई आपत्ति का सामना करना पड़ा। चंगेज खाँ के नेतृत्व में मध्य एशिया के खूँखार मंगोल ख्वारिज्म के शाह जलालुद्दीन का पीछा करते भारत की सीमा पर आ गये। जलालुद्दीन ने इल्तुतमिश से दिल्ली में शरण लेने की प्रार्थना की किन्तु इल्तुतमिश ने उसे दिल्ली में शरण देने से इन्कार कर दिया, क्योंकि वह जानता था कि जलालुद्दीन को दिल्ली में शरण देने से मंगोल-आक्रमण का खतरा पैदा हो जायेगा। जलालुद्दीन को परास्त कर चंगेज खाँ अफगानिस्तान से वापस लौट गया। इस प्रकार दिल्ली राज्य एक भयानक संकट से बच गया। डॉ० आशीर्वादीलाल के शब्दों में,

"इल्तुतमिश की दूरदर्शितापूर्ण नीति के कारण एक महान् संकट जिसने दिल्ली को आ घेरा था, टल गया।"

(v) कुबाचा का पतन- मंगोल आक्रमण के भय का अन्त होने पर इल्तुतमिश ने कुबाचा की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। 1224 तक पंजाब में जलालुद्दीन के रहने के कारण कुबाचा की शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी। अतः सबसे पहले इल्तुतमिश ने लाहौर पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने 1228 में दो सेनायें कुबाचा के राज्य पर आक्रमण के लिए भेजी। एक सेना लाहौर से मुल्तान पर और दूसरी दिल्ली से उच्छ पर। इस समाचार को सुनते ही कुबाचा घबड़ा गया और भक्खर के किले में जाकर शरण ली। लेकिन इल्तुतमिश ने किले पर भयंकर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। कुबाचा हतोत्साहित होकर सिन्धु नदी में कूद पड़ा और डूबकर मर गया। इसके बाद इल्तुतमिश ने मुल्तान और सिन्ध को जीतकर दिल्ली साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार एल्दौज की भाँति कुबाचा का भी अन्त हुआ।

इल्तुतमिश की विजयें

इल्तुतमिश की मुख्य विजयें निम्नलिखित हैं-

(1) बंगाल की पुनर्विजय- कुतुबुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् अलीमर्दान ने अपने-आप को स्वतन्त्र घोषित कर दिया था, किन्तु शीघ्र ही विद्रोहियों ने उसका वध कर दिया। उसके स्थान पर हिसामुद्दीन ऐवाज बंगाल का शासक बना। उसने 'गयासुद्दीन' की उपाधि धारण की और शीघ्र ही बिहार पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इल्तुतमिश उसकी बढ़ती हुई शक्ति को सहन नहीं कर सका और 1225 में एक विशाल सेना लेकर बंगाल और बिहार की ओर चल पड़ा। हिसामुद्दीन घबड़ा गया और बिना युद्ध किये ही इल्तुतमिश की अधीनता स्वीकार कर ली तथा वार्षिक कर देने का वचन दिया।

इल्तुतमिश की विजयें
1. बंगाल की पुनर्विजय
2. राजस्थान-विजय
3. अन्य आक्रमण
4. दोआब पर अधिकार

किन्तु ज्योंही इल्तुतमिश दिल्ली पहुँचा, उसने पुनः अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। इस बार इल्तुतमिश ने अपने पुत्र नासिरुद्दीन महमूद को बिहार तथा बंगाल-विजय के लिए भेजा। उसने बंगाल की राजधानी लखनौती को जीत लिया और फिर ऐवाज को युद्ध में परास्त कर मार डाला। सुल्तान ने नासिरुद्दीन को बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया, किन्तु उसकी शीघ्र मृत्यु हो गई और लखनौती में पुनः विद्रोह हुआ तथा बल्का खिलजी नामक एक व्यक्ति बंगाल प्रांत का शासक बन बैठा। इल्तुतमिश ने 1231 में पुनः बंगाल पर आक्रमण करने के लिये एक सेना भेजी। बल्का युद्ध में परास्त हुआ और मारा गया और बंगाल तथा बिहार पर इल्तुतमिश का अधिकार हो गया। उसने बिहार को बंगाल से अलग कर दिया और उसके लिए अलग-अलग सूबेदार नियुक्त कर दिये।

(2)-राजस्थान-विजय- कुतुबुद्दीन के शासनकाल में ही राजस्थान के राजपूत राजाओं ने अपने-आप को स्वतन्त्र घोषित कर दिया था। इल्तुतमिश ने एक-एक राज्य को अलग-अलग परास्त करने की योजना बनाई। उसने अपनी योजना को निम्नलिखित रूप से कार्यान्वित किया :

(i) सर्वप्रथम उसने 1226 में रणथम्भौर को घेर लिया। उस पर अधिकार करके रक्षा के लिए अपने सैनिक नियुक्त कर दिये।

(ii) इसके बाद उसने परमारों की राजधानी मन्दोर पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया।

(iii) 1228 में उसने लाहौर पर आक्रमण किया। वहाँ के शासक उदयसिंह ने बड़ी वीरता से मुसलमानों का सामना किया किन्तु परास्त हुआ। उसने सुल्तान को वार्षिक कर देने का वचन दिया और इस शर्त पर लाहौर का राज्य उसे वापस मिल गया।

(iv) इसके बाद उसने बयाना और थंगीर पर अधिकार कर लिया।

(v) फिर उसने अजमेर पर आक्रमण किया तथा उसके निकटवर्ती प्रदेशों पर उसका अधिकार हो गया।

(vi) इसके बाद उसने जोधपुर में स्थित नागौर पर अधिकार किया।

(vii) 1231 में उसने ग्वालियर पर आक्रमण किया। वहाँ के शासक मलय वर्मनदेव ने एक वर्ष तक युद्ध किया, किन्तु अन्त में उसे पराजित होना पड़ा।

(3) अन्य आक्रमण- इसके बाद उसने कालिंजर और गुहलौती की राजधानी नागदा पर आक्रमण किया, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। 1234-35 में उसने मालवा पर आक्रमण किया तथा भेलसा और उज्जैन को खूब लूटा और महाकाल के प्राचीन मन्दिर को ध्वस्त कर दिया। इतिहासकार **बूल्जे हेग** ने मालवा-विजय का श्रेय इल्तुतमिश को दिया है। किन्तु इसमें सत्यांश नहीं है क्योंकि मालवा पर आक्रमण केवल लूट-मार के उद्देश्य से किया गया था, विजय के उद्देश्य से नहीं।

(4) दोआब पर अधिकार- इल्तुतमिश ने एक-एक करके बदायूँ, कन्नौज तथा बनारस के राजाओं को परास्त कर उनको साम्राज्य के अधीन कर लिया। उसने रुहेलखण्ड पर भी अधिकार किया। इसके बाद उसने बहराइच को विजय किया। अवध पर भयंकर युद्ध के पश्चात् विजय प्राप्त की जा सकी। इसके बाद उसने चन्दावर तथा तिरहुत पर आक्रमण किये, किन्तु तिरहुत पर उसका अधिकार स्थापित नहीं हो सका।

खलीफा से सुल्तान होने की स्वीकृति- बगदाद के खलीफा ने 1229 में एक राजदूत भेजकर इल्तुतमिश को एक विशेष प्रकार का परम्परागत पोशाक (खिलअत) भेंट की और उसको मुसलमानों का सुल्तान स्वीकार कर लिया। इसके बाद इल्तुतमिश ने अपने सिक्कों पर 'शक्तिशाली सम्राट्' धर्म और राज्य का तेजस्वी सूर्य सदा विजयी 'इल्तुतमिश' अंकित करवाया तथा स्वयं को 'प्रधान धर्मरक्षक, नासिर अमीर-उल-मोमिनीन' भी घोषित किया। उसके इस कार्य से उसका मान तथा आदर मुस्लिम-जगत् में बहुत बढ़ गया।

इल्तुतमिश का चरित्र तथा उसका मूल्यांकन

इल्तुतमिश गुलाम-वंश का एक महान् सुल्तान था। उसका चरित्र तथा व्यक्तित्व बहुत उच्च था। उसने भारत में नव-स्थापित मुस्लिम राज्य की नींव सुदृढ़ की। **लेनपूल** के शब्दों में, ''इल्तुतमिश ने गुलाम-वंश की सही माने में स्थापना की थी, क्योंकि ऐबक गुलाम राजाओं की जड़ें जमाने के लिए ज्यादा दिनों तक जिन्दा न रह पाया था।'' **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** के अनुसार,

"निस्सन्देह इल्तुतमिश ही गुलाम-वंश का वास्तविक संस्थापक था, क्योंकि कुतुबुद्दीन ने जिन प्रदेशों पर विजय प्राप्त की थी, उस विजय को स्थायी रूप इसी ने दिया।"[1]

अब तक के गुलाम शासकों में निस्सन्देह वह सबसे अधिक प्रतिभावान तथा भाग्यशाली सुल्तान था। उसने समस्त कठिनाइयों का सामना बड़े धैर्यपूर्वक किया और उसके विश्वास ने उसके कार्यों में सफलता प्रदान की। उसके चरित्र एवं उसके कार्यों का अध्ययन हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं-

इल्तुतमिश का चरित्र

1. सुल्तान का अलौकिक व्यक्तित्व
2. महान् विजेता
3. कुशल कूटनीतिज्ञ
4. न्यायप्रिय शासक
5. साहित्य कला-प्रेमी
6. कट्टर सुन्नी मुसलमान
7. मुद्रा-सुधारक
8. मुसलमान साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक

(1) सुल्तान का अलौकिक व्यक्तित्व- इल्तुतमिश एक सुन्दर तथा अलौकिक व्यक्तित्व वाला सुल्तान था। वह सर्वगुण-सम्पन्न था। उसके गुणों से प्रभावित होकर ही मुहम्मद गोरी ने कुतुबुद्दीन को यह परामर्श दिया था कि उसके साथ सदैव सद्व्यवहार करना, क्योंकि किसी दिन वह अच्छी ख्याति प्राप्त करेगा। मुहम्मद गोरी की भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई और इल्तुतमिश ने कुतुबुद्दीन के अधूरे कार्य को पूरा किया। अपने सम्पूर्ण जीवन भर उसने एक महान् शासक की भाँति व्यवहार किया। इसीलिए मिनहाज प्रशंसायुक्त शब्दों में कहता है, **"आज तक ऐसा कोई शासक नहीं हुआ जिसमें इतनी आदर्श धर्मनिष्ठा, दरवेशी एवं मौलवियों-मुल्लाओं के प्रति श्रद्धा रही हो।"**[2] इतिहास में बहुत कम ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि किसी ने अपनी योग्यता तथा बुद्धिमत्ता के कारण निम्न पद से उन्नति कर सुल्तान के पद को प्राप्त किया हो। वह इल्तुतमिश ही था, जिसके विभिन्न गुणों से आकर्षित होकर दिल्ली के अमीरों ने सुल्तान के पद को सँभालने के लिए उसे आमन्त्रित किया था।

(2) महान् विजेता- इल्तुतमिश बड़ा वीर, साहसी तथा अदम्य उत्साह वाला व्यक्ति था। उसमें एक सेनापति के सभी गुण विद्यमान थे। उसने मुहम्मद गोरी द्वारा जीते हुए प्रदेशों पर पुनः आधिपत्य स्थापित किया। राजपूताना में राजपूत राजाओं को परास्त किया। कुतुबुद्दीन के शासन-काल में ही मुल्तान और सिंध उसके हाथ से निकल गये थे। अतः इल्तुतमिश ने उन्हें पुनः जीतकर अपना अधिकार स्थापित किया और दिल्ली साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार उसने लाहौर से पंजाब तक विजय करके साम्राज्य को सुदृढ़ किया और गुलाम-वंश की नींव डाली।

(3) कुशल कूटनीतिज्ञ- इल्तुतमिश एक कुशल कूटनीतिज्ञ भी था। उसने अपनी कूटनीति द्वारा ही एल्दौज से समझौता कर तथा उसकी अधीनता स्वीकार कर आरामशाह

---

1. "Iltutmish is undoubtedly the real founder of the slave dynasty. It was he who consolidated the conquests that had been made by his master Qutubuddin." -Dr. Ishwari Prasad
2. "Never was a sovereign of such examplary faith and of such kindness and reverence towards recluses, devotees, divines, and doctors of religion."

का दमन किया। तत्पश्चात् एल्दौज तथा कुबाचा की शक्ति का भी अन्त किया। उसकी कूटनीति से मंगोलों के आक्रमण से भारत की रक्षा हो सकी और मंगोल बिना युद्ध किये ही अफगानिस्तान से वापस लौट गये। इस प्रकार उसने अपनी कूटनीति द्वारा ही संकटकालीन परिस्थिति पर विजय प्राप्त की।

(4) न्यायप्रिय शासक- इल्तुतमिश न्यायप्रिय शासक था। प्रजा को सच्चा न्याय प्राप्त हो सके, इसलिये उसने बड़े-बड़े नगरों में काजी नियुक्त किये। इन काजियों के निर्णय के विरुद्ध अपील प्रधान काजी अथवा स्वयं सुल्तान सुना करता था। इब्नबतूता ने उसके न्याय की प्रशंसा की है। उसके अनुसार सुल्तान ने महल के सम्मुख संगमरमर के दो सिंह स्थापित कराये थे जिनके गले में घण्टियाँ लटकी हुई थीं। न्याय चाहने वाला व्यक्ति इन घंटियों को बजाता था। उसकी याचना के अनुसार तुरन्त न्याय-व्यवस्था की जाती थी। इब्नबतूता का कथन अतिशयोक्तिपूर्ण ज्ञात होता है।

(5) साहित्य एवं कला-प्रेमी- इल्तुतमिश को साहित्य तथा कला से भी अनुराग था। उसके दरबार में विद्वानों को प्रथम प्रश्रय प्राप्त था। इतिहासकार **मिनहाज-उल-सिराज** उसके दरबार में प्रधान काजी के पद को सुशोभित करता था। मध्य एशिया के बहुत से साहित्यकार, कवि तथा कलाकार आये थे जिनको उसने दरबार में आश्रय दिया और उन्होंने इल्तुतमिश को 'ईश्वर की भूमि का रक्षक' तथा 'ईश्वर के सेवकों का मददगार' की पदवी प्रदान की। उसने दिल्ली के कुतुबमीनार को पूरा बनवाया तथा कुछ अन्य इमारतों का भी निर्माण करवाया।

(6) कट्टर सुन्नी मुसलमान- इल्तुतमिश धार्मिक मुसलमान था। वह नियमपूर्वक प्रतिदिन पाँच बार नमाज पढ़ता था और धार्मिक कृत्यों को पूरा किया करता था। उसका हिन्दुओं के प्रति अच्छा व्यवहार नहीं था। उसने असंख्य हिन्दुओं का वध करवाया और उनके मन्दिरों को नष्ट कर उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण करवाया। बुद्धिमान एवं दूरदर्शी सुल्तान ने भेलसा के मुख्य मन्दिर तथा उज्जैन के महाकाल के मन्दिरों को विध्वंस कराया जिसके निर्माण में तीन सौ वर्ष लगे थे। उसकी धर्मनिष्ठा के कारण ही मुलाहियों ने उसे मारने के लिए षड्यन्त्र रचा था। परन्तु उसके सौभाग्य से वे अपने उद्देश्य में सफल न हुए।

(7) मुद्रा-सुधारक- इल्तुतमिश पहला मुसलमान सुल्तान था जिसने मुद्रा में भी सुधार करने का प्रयास किया। उसने अरबी किस्म के सिक्के चलाये। उसके चाँदी के टंका का वजन 175 ग्रेन था और उन पर अरबी भाषा में लेख अंकित था।

(8) मुसलमान साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक- **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** ने लिखा है, "इल्तुतमिश ही गुलाम-वंश का वास्तविक संस्थापक था। कुछ सीमा के प्रदेशों को छोड़कर उसने प्रायः समस्त हिन्दुस्तान पर अधिकार कर लिया था।" **सर बूल्जे** के शब्दों में, "वह गुलाम सुल्तानों में सर्वश्रेष्ठ था। उसके कार्य उसके स्वामी के समान नहीं थे। ऐबक के समान उसे राज्य की नैतिक तथा आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं थी। उसने जो कुछ किया वह अपने बल पर किया और कठिनाइयों के होते हुए भी किया तथा उसने ऐबक के असंगठित, एकताहीन साम्राज्य में सिन्ध तथा मालवा को भी शामिल कर लिया।" **डॉ० आशीर्वादीलाल** के अनुसार, "उसने तुर्की सल्तनत की विजयों को नैतिक प्रतिष्ठा प्रदान की। उसने उसकी

मंगोलों के आक्रमणों से रक्षा की जबकि मध्य-एशिया के बड़े-बड़े राज्य उनके प्रहारों से चकनाचूर होकर धराशायी हो गये।'' **डॉ० आर० सी० मजूमदार** ने इल्तुतमिश को दिल्ली के प्रारम्भिक सुल्तानों में सबसे बड़ा तथा योग्य शासक माना है। इल्तुतमिश में अपने साम्राज्य को स्थायी बनाने की तीव्र आकांक्षा थी। इसीलिए अपने अयोग्य पुत्रों को देखकर उसने कहा था, ''मेरे पुत्र भोग-विलास में लिप्त हैं। उनमें से कोई भी सुल्तान होने के योग्य नहीं है। मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरी पुत्री से अधिक शासन संचालन की योग्यता कोई व्यक्ति नहीं रखता।''

निष्कर्षस्वरूप यह प्रमाणित होता है कि इल्तुतमिश वह महान् सुल्तान था जिसने मुस्लिम साम्राज्य की जड़ों को मजबूत किया, क्योंकि बाबर की ही भाँति कुतुबुद्दीन को मुस्लिम साम्राज्य की नींव दृढ़ करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था। जिस प्रकार अकबर ने मुगल साम्राज्य की जड़ों को सुदृढ़ किया उसी प्रकार इल्तुतमिश ने तुर्क साम्राज्य की नींव को दृढ़ किया। इस प्रकार दिल्ली के प्रारम्भिक सुल्तानों में इल्तुतमिश का प्रथम स्थान है और वह भारत में मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक है।

इल्तुतमिश के चरित्र और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कतिपय इतिहासकारों के मत

''इल्तुतमिश की सुन्दरता, बुद्धिमत्ता और कुलीनता का मुकाबला न था। कोई भी इतना परोपकारी, विद्वानों तथा बुजुर्गों की इज्जत करने वाला ऐसा राजा नहीं हुआ जिसने स्वयं अपने प्रयास से राज-सिंहासन प्राप्त किया हो।''

- मिन्हाज-उल-सिराज

''इल्तुतमिश वीर तथा सावधान सैनिक था। उसमें साहस, बुद्धिमत्ता, संयम तथा दूरदर्शिता आदि महत्वपूर्ण गुण थे। उसकी सम्पूर्ण सफलताओं का श्रेय उसी को है।''

- डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव

''प्रारम्भिक तुर्क सल्तनत के शासकों में इल्तुतमिश सर्वोच्च था।''

- डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार

''इल्तुतमिश गुलाम सुल्तानों में सर्वश्रेष्ठ था।''

- सर वूल्जे

(स) सुल्ताना रजिया (1236-40)

इल्तुतमिश ने रजिया के महान् गुणों के कारण उसको अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। उसके मन्त्रियों ने इसके विरुद्ध अपनी इच्छा व्यक्त की तो उसने कहा था, ''मेरे बेटे जवानी की बुरी आदतों में पड़ गये हैं। उनमें से कोई भी बादशाह बनकर इस मुल्क पर हुकूमत करने के काबिल नहीं है और आप देखेंगे कि इस काम के लिए मेरी बेटी से बढ़कर और कोई नहीं है।'' लेकिन इल्तुतमिश की मृत्यु के पश्चात् उसकी इच्छा के विरुद्ध तुर्क अमीरों ने इल्तुतमिश के पुत्र रुक्नुद्दीन फिरोज को सुल्तान बनाया। परन्तु वह अयोग्य शासक सिद्ध हुआ और सात महीने के भीतर फिरोज को पकड़ कर हत्या कर दी गई। यह घटना 9 नवम्बर, 1236 को घटित हुई। इसी तिथि को तुर्क अमीरों ने रजिया को गद्दी पर बैठाया।

रजिया को दिल्ली की जनता तथा अमीरों का समर्थन प्राप्त था। परन्तु पंजाब, बदायूँ, मुल्तान और लाहौर के सूबेदार उसके विरुद्ध थे। उन्होंने दिल्ली पहुँचकर रजिया को घेर लिया। इस विषम परिस्थिति में रजिया ने बड़ी कुशलता से काम लिया। उसने सरदारों के बीच आपस में एक दूसरे की नीयत पर शंका पैदा कर फूट डाल दी। विद्रोही सूबेदार आपस में ही लड़ बैठे, जिससे उनका गुट छिन्न-भिन्न हो गया और वे दिल्ली छोड़कर भाग खड़े हुए। तभी रजिया ने उन पर पीछे से आक्रमण किया। उसमें से दो पकड़ लिये गए और उनका वध कर दिया गया। इस प्रकार रजिया ने इस विपत्ति पर विजय पाई। उसने तुरन्त मुल्तान, लाहौर, बदायूँ आदि स्थानों पर नये विश्वासपात्र सूबेदारों की नियुक्ति की। बंगाल के सूबेदार ने भी उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार लखनौती से देवल तक के सभी प्रान्तों पर उसका आधिपत्य स्थापित हो गया।

रजिया

रजिया के विरुद्ध विद्रोह तथा उसका पतन- रजिया द्वारा समस्त सत्ता पर आधिपत्य स्थापित कर लेने के कारण तुर्क अमीर उससे असन्तुष्ट हो गए क्योंकि वे अभी तक अपने-आपको शासन का कर्ताधर्ता समझते थे। इसके अतिरिक्त कुछ कट्टर मुसलमान भी उससे असन्तुष्ट हो गये क्योंकि वे यह नहीं चाहते थे कि रजिया दरबार में पुरुषों की पोशाक पहन कर आवे और जनता के सामने घोड़े पर सवार हो तथा खुले दरबार में राज्य के कार्यों को करे। इस असन्तुष्ट वातावरण में रजिया ने एक हब्शी सरदार याकूत को अपना कृपापात्र बनाकर घोड़ों का सर्वोच्च अधिकारी बना दिया। इससे तुर्की सरदार उससे और असन्तुष्ट हो गये और उसको हब्शी से प्रेम करने का दोष लगाकर बदनाम करने लगे। अनेक इतिहाकारों ने भी याकूत के प्रति रजिया की आसक्ति की निन्दा की है। **इब्नबतूता** ने लिखा है, "रजिया तथा याकूत का प्रेम दोषयुक्त था।" **फरिश्ता** का कहना है, "याकूत रजिया को घोड़े पर चढ़ते समय सहायता देता था।" **टामस महोदय** ने रजिया के चरित्र की कटु आलोचना करते हुए लिखा है, "यदि वह प्रेम की प्यासी थी तो राजकुमार से प्रेम कर सकती थी। एक हब्शी से प्रेम करना नितान्त अव्यावहारिक था। उसे जो कुछ भी करना था, अपने महल में करना चाहिये था। सबके सम्मुख एक हब्शी पर इतनी कृपा करना, एक गलत मार्ग का अनुसरण करना था।" इन विचारों के विपरीत **डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** का कथन है, "सम्भवतः उसने जानबूझ कर इस नीति को अपनाया था क्योंकि तुर्की अमीरों का राजकीय पदों पर जो एकाधिकार था उसे वह तोड़ना चाहती थी।" इतिहासकारों के विचारों में कितना सत्यांश है, कहा नहीं जा सकता। किन्तु इतना तो सत्य ही है कि उसका स्त्री होना ही उसे न बचा सका और अन्त में उसने अल्तूनिया से विवाह करके अपने स्त्रीत्व को प्रकट कर दिया। अरबी मसीहा ने सत्य ही कहा है, "संसार में सबसे बहुमूल्य वस्तु एक सदाचारी स्त्री है।"

सबसे पहले 1240 में लाहौर के शासक कबीर खाँ ने रजिया के विरुद्ध विद्रोह किया। रजिया ने कबीर खाँ को युद्ध में परास्त किया और उसने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। रजिया के दिल्ली आने के पन्द्रह दिन के भीतर ही भटिंडा के सूबेदार अल्तूनिया ने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। रजिया भटिंडा पहुँची लेकिन विद्रोहियों ने याकूत और रजिया को

पकड़ लिया। याकूत मार डाला गया और रजिया को कैद में डाल दिया गया। उन्होंने इल्तुतमिश के तीसरे पुत्र बहराम को गद्दी पर बैठाया। रजिया ने नारी-स्वभाव के अनुसार अल्तूनिया पर जादू फेंका। अल्तूनिया ने उसे जेल से मुक्त कर उससे विवाह कर लिया और दोनों ने दिल्ली पर अधिकार करने की चेष्टा की, लेकिन बहराम ने रजिया और उसके पति को परास्त किया। अन्त में 13 अक्टूबर, 1240 को हिन्दू डाकुओं ने दोनों का वध कर दिया और इस प्रकार रजिया केवल साढ़े तीन वर्ष शासन कर पायी।

रजिया के चरित्र तथा उसके कार्यों का मूल्यांकन- डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार, "वह वीर, कर्मठ, योग्य सैनिक तथा सेनानायक थी। राजनीतिक कुचक्रों तथा कूटनीति में वह दक्ष थी। उसने भारत में तुर्की सल्तनत की प्रतिष्ठा की पुनः स्थापना की। वह इल्तुतमिश के वंश में प्रथम तथा अंतिम सुल्तान थी जिसने केवल अपनी योग्यता और चरित्र-बल से दिल्ली सल्तनत की राजनीति पर अधिकार रखा।" तत्कालीन इतिहासकार मिनहाज लिखता है, "वह महान् शासिका, बुद्धिमती, ईमानदार, उदार, शिक्षा की पोषक, न्यायवाली, प्रजापालक तथा युद्धप्रिय थी। उसमें वे सभी प्रशंसनीय गुण थे जो एक राजा में होने चाहिए।" लेकिन अन्त में वह लिखता है, "ये सब श्रेष्ठ गुण उसके किस काम के थे।" मिनहाज का उपरोक्त कथन सत्य है कि उसके विभिन्न गुण किसी काम न आये। स्त्री होने के कारण उसमें स्त्रीसुलभ दोष विद्यमान थे जो उसके पतन के कारण बने। रजिया के पतन का मुख्य कारण तो तुर्की अमीरों की महत्वाकांक्षा थी जो शासन पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे, किन्तु रजिया ने ऐसा नहीं होने दिया और आरम्भ से ही शासन की सम्पूर्ण सत्ता अपने ही हाथ में रखी। याकूत से आसक्ति रखने का प्रचार तो उसे बदनाम करने के दृष्टिकोण से किया गया था। सिवाय इब्नबतूता के किसी अन्य समकालीन इतिहासकार ने यह नहीं लिखा कि उसका याकूत से दोषपूर्ण प्रेम था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि रजिया दयालु, विद्वानों का आदर करने वाली, योग्य शासिका, वीरांगना तथा प्रजा की शुभ-चिन्तक थी। उसने अपने पिता इल्तुतमिश के इस कथन को कि "मेरी मृत्यु के उपरान्त आप देखेंगे कि मेरी पुत्री के समान कोई योग्य नहीं है"- अक्षरशः सत्य सिद्ध कर दिया।

रजिया के पश्चात् उसके दो भाई, बहराम और मसूदशाह क्रमशः गद्दी पर बैठे, वे दोनों अयोग्य तथा नाममात्र के शासक सिद्ध हुए। मसूद के पश्चात् इल्तुतमिश का एक अन्य पुत्र नासिरुद्दीन महमूद गद्दी पर बैठा। वह दयालु तथा धर्मपरायण शासक था। कुरान की नकल करके वह अपनी जीविका कमाता था। उसको अपने शासनकाल में अपने मन्त्री बलवन से अमूल्य सेवायें प्राप्त हुईं। 12 फरवरी, 1266 को नासिरुद्दीन की मृत्यु हो गई।

(द) बलबन (1266-87)

बलबन का प्रारम्भिक परिचय- बलबन का मूल नाम बहाउद्दीन था। किन्तु वह इतिहास में बलबन के ही नाम से प्रसिद्ध है। वह इल्तुतमिश की भाँति इल्बारी तुर्क था। उसका पिता दस हजार परिवारों का सरदार था। युवावस्था में बलबन को मंगोल गजनी पकड़ ले गये और उसे बसुरा निवासी ख्वाजा जमालुद्दीन के हाथ बेच दिया। ख्वाजा ने उसे दिल्ली लाकर इल्तुतमिश को बेच दिया। इल्तुतमिश ने उसकी प्रतिभा को देखकर चालीस अमीरों के प्रसिद्ध दल का उसे सदस्य बना लिया। अपनी योग्यता और स्वामिभक्ति के कारण वह रजिया के

शासनकाल में 'अमीर-ए-शिकार' के पद पर आसीन हुआ। उसने रजिया के विरुद्ध विद्रोह करने वाले अमीरों का साथ दिया। रजिया के पश्चात् बहरामशाह के शासनकाल में उसे गुड़गाँव जिले में रिवाड़ी की जागीर प्राप्त हुई। बाद में हाँसी का जिला भी उसमें सम्मिलित कर दिया गया। इन रियासतों का उसने बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण प्रबन्ध किया। 1246 में उसने मंगोलों का सामना किया और उन्हें 'उच्छ' का घेरा उठाने पर बाध्य किया। अलाउद्दीन मसूदशाह को अपदस्थ करके नासिरुद्दीन को गद्दी पर आसीन कराने में वही उत्तरदायी था। 1246 में सुल्तान ने उसको अपना 'नायब-ए-मुमालिकात' (प्रधानमन्त्री) बनाया। बलबन ने 1249-50 में अपनी पुत्री का विवाह सुल्तान नासिरुद्दीन के साथ कर दिया। सुल्तान ने उसे कड़ा तथा कालिंजर के राजपूतों को पराजित करने के उपलक्ष्य में 'उलूग खाँ' की पदवी प्रदान की। 1251 में उसने नागौर के विद्रोह का दमन बड़ी तत्परता से किया। बलबन की बढ़ती हुई शक्ति से अमीरों को बड़ी ईर्ष्या हुई और उन्होंने सुल्तान से मिलकर एक षड्यन्त्र रचा तथा उसे प्रधान मन्त्री पद से हटाकर इमादुद्दीन रिहान को प्रधान मन्त्री बनाया। कुछ समय उपरान्त बलबन ने तुर्की अमीरों के सहयोग से विशाल सेना लेकर दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया। सुल्तान भी बलबन की सेना का सामना करने के लिये समाना के समीप आ डटा, किन्तु पारस्परिक समझौते के कारण युद्ध नहीं हुआ और सुल्तान ने पुनः रिहान को अपदस्थ कर बलबन को प्रधान मन्त्री बनाया। उसने 20 वर्ष तक प्रधानमन्त्री रहकर अपने स्वामी की सेवा की। 1266 में नासिरुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् 70 वर्ष की अवस्था में वह सुल्तान के पद पर आसीन हुआ, क्योंकि नासिरुद्दीन के कोई पुत्र न था। इब्नबतूता तथा अन्य इतिहासकारों की धारणा है कि बलबन ने नासिरुद्दीन को गद्दी प्राप्त करने की इच्छा से विष देकर मरवा डाला, किन्तु यह धारणा कल्पित तथा निराधार है।

बलबन

बलबन सुल्तान के पद पर (1266-87)

प्रारम्भिक समस्याएँ- नासिरुद्दीन की मृत्यु के बाद दिल्ली सल्तनत का भार बलबन के कन्धों पर पड़ा। उस समय बलबन के समक्ष निम्नलिखित समस्याएँ थीं-

(1) शासन की शिथिलता- जिस समय बलबन सिंहासनारूढ़ हुआ, उस समय साम्राज्य की दशा बड़ी शोचनीय थी। यद्यपि नासिरुद्दीन के शासनकाल में उसने अपने विरोधियों का दमन किया था, फिर भी शासन में शिथिलता व्याप्त थी। इतिहासकार बर्नी उस समय की अवस्था के बारे में लिखता है, "सरकार का भय जो सुशासन का आधार और राज्य के यश तथा वैभव का स्रोत है, लोगों के हृदय से जाता रहा और देश दुर्दशा का शिकार था।" लेनपूल भी उस समय की अवस्था का विवरण इन शब्दों में लिखता है, "एक ओर (बलबन) के पीछे महत्वाकांक्षी तुर्की खान पड़े थे और दूसरी तरफ हिन्दू विद्रोह करने के मौके की तलाश में थे, दिल्ली शहर के दरवाजों के बाहर भिश्तियों और पनिहारिनों को

डाकू लूटने- मारने लगे थे और सबसे बड़ा खतरा मंगोलों से था जो कि सरहदी चौकियों पर आफत मचा रहे थे।''

(2) चालीस तुर्की अमीरों के दल का प्रभाव- बलबन के सम्मुख चालीस तुर्की अमीरों का दल था जिसका संगठन इल्तुतमिश ने अपनी शक्ति को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से किया था। धीरे- धीरे यह दल इतना अधिक शक्तिशाली बन गया कि सुल्तानों को गद्दी पर बिठाना और अपदस्थ करना उनके हाथ का खेल बन गया था। राज्य के ऊँचे- ऊँचे पदों पर यही लोग नियुक्त किये जाते थे। बलबन जो किसी समय स्वयं इसका सदस्य था, साम्राज्य के लिए इसे घातक समझता था। अतः इस प्रभावशाली दल का विनाश करना उसके लिए नितान्त आवश्यक था।

(3) मंगोलों के आक्रमण का भय- इल्तुतमिश के समय से ही मंगोल भारत में प्रविष्ट होने का लगातार प्रयास कर रहे थे। लेकिन बलबन के समय उनके आक्रमण का भय और अधिक बढ़ गया था, क्योंकि मंगोलों का सिन्ध और पंजाब के पश्चिमी प्रदेशों पर आधिपत्य स्थापित हो गया था। उन्होंने कई आक्रमण लाहौर और मुल्तान पर किए थे। लेनपूल ने मंगोलों के विषय में लिखा है, ''लोहे के जिस्म और आग जैसे चेहरे वाले वे लोग ऊँटों पर सवार होकर आते, उनकी आँखें छोटी- छोटी और उनके गाल चमड़े जैसे सख्त और झुर्रीदार होते थे। उनके नथुने चौड़े- चौड़े और बड़े थे और उनके गन्दे शरीर से भीषण दुर्गन्ध आती थी।''

बलबन की प्रारम्भिक समस्याएँ

1. शासन की शिथिलता
2. चालीसं तुर्की अमीरों के दल का प्रभाव
3. मंगोलों के आक्रमण का भय
4. मेवातियों की समस्या
5. जागीरों का दुरुपयोग
6. हिन्दुओं तथा मुसलमान प्रान्तपतियों का विद्रोह

(4) मेवातियों की समस्या — यद्यपि बलबन ने नासिरुद्दीन के शासन- काल में मेवातियों का जो दिल्ली सल्तनत के कट्टर शत्रु थे, कठोरता तथा निर्दयता से दमन किया था, किन्तु कालान्तर में वे पुनः शक्तिशाली हो गये थे। उनके आतंक से दिल्ली का पश्चिमी द्वार दिन के तीन बजे ही बन्द कर दिया जाता था, क्योंकि वे दिल्ली की जनता को लगभग प्रतिदिन लूटते थे।

(5) जागीरों का दुरुपयोग- बलबन के सामने जागीरों के दुरुपयोग की भी समस्या उपस्थित थी। बहुत से लोग राज्य की किसी प्रकार की सेवा नहीं करते थे, किन्तु पैतृक अधिकार के कारण जागीरों का उपयोग कर रहे थे और इस प्रकार राज्य की आय को बहुत हानि पहुँचा रहे थे।

(6) हिन्दुओं तथा प्रान्तपतियों के विद्रोह- दोआब के हिन्दू अक्सर विद्रोह किया करते थे और वहाँ के अधिकारियों को बहुत अधिक तंग किया करते थे। उन्होंने दिल्ली तथा बंगाल के मार्ग को भी बन्द कर दिया था। हिन्दुओं के अतिरिक्त मुसलमान प्रान्तपति भी प्रायः विद्रोह का झण्डा ऊँचा कर देते थे। सीमान्त प्रदेश का प्रान्तपति शेर खाँ सबसे अधिक शक्तिशाली विद्रोही था। इस प्रकार बलबन के सम्मुख इन विद्रोहियों का दमन कर, उनकी बढ़ती हुई शक्ति का विनाश करना भी एक मुख्य कार्य था।

बलबन के कृत्य

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस समय बलबन सिंहासनारूढ़ हुआ उस समय उसके सम्मुख विभिन्न प्रकार की समस्याएँ थीं। लेकिन उसने बड़े धैर्य के साथ समस्त समस्याओं को हल किया। उसके कृत्यों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :

(1) सुल्तान-पद की प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना- बलबन राजत्व सम्बन्धी सिद्धान्त का अनुयायी था। अपने पुत्र बुगरा खाँ से इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए उसने कहा था, "राजा का हृदय ईश्वरीय कृपा का विशेष भण्डार होता है और इस दृष्टि से कोई भी मनुष्य उसकी समानता नहीं कर सकता।" उसकी यह धारणा थी कि प्रजा को स्वामिभक्त बनाने तथा राज्य को दृढ़ बनाने के लिए राजा का सैनिक आचरण उच्च स्तर का होना चाहिए, अन्यथा वह प्रजा का विश्वास खो बैठेगा और राज्य में चारों ओर विद्रोह होना प्रारम्भ हो जायेगा। निजामुद्दीन के शब्दों में, "बलबन बार-बार कहा करता था कि जो सुल्तान अपने साम्राज्य के नियमों तथा रीतियों का पालन नहीं करता है तथा उनको स्थापित नहीं करता है, अपने दरबार की सुव्यवस्था की ओर ध्यान नहीं देता है, समारोह में शान-शौकत का प्रदर्शन नहीं करता है तथा जिसका व्यवहार और कथन राजकीय महानता का प्रतीक नहीं है, उसका भय जनता नहीं मानती और उसके शत्रु उसका विरोध करना आरम्भ कर देते हैं।"

(2) चालीस अमीरों के दल का विनाश- चालीस अमीरों के दल का नेतृत्व समाप्त करने के उद्देश्य से बलबन ने निम्न श्रेणी के तुर्कों को महत्वपूर्ण पद प्रदान किये और इस प्रकार उन्हें चालीस अमीरों की बरावरी का बना दिया। उसने चालीस अमीरों के दल के सदस्यों को साधारण अपराधों के लिए कठोर दण्ड दिये। उसने बदायूँ के सूबेदार मलिक बकबक को जनता के सामने कोड़ों से पिटवाया, क्योंकि उसने अपने एक नौकर को इतना अधिक पिटवाया था कि उसकी मृत्यु हो गई थी। इसी प्रकार उसने अवध के सूबेदार अमीर हैबात खाँ को 500 कोड़े लगवाये, क्योंकि उसने नशे में एक आदमी का वध कर दिया था। मृत पुरुष की विधवा को 20, 000 टंका देने पर हैबात खाँ को छुटकारा मिला था। इस अपमान से वह इतना शर्मिन्दा हुआ कि जन्मभर घर से नहीं निकला। बलबन ने अपने चचेरे भाई शेर खाँ को जो चालीस अमीरों के दल का एक प्रभावशाली सदस्य था, विष दिलाकर मरवा दिया। इसी प्रकार कठोर कार्यवाहियों से चालीस अमीरों के दल की शक्ति बहुत क्षीण हो गई और कोई ऐसा विरोधी नहीं रह गया जो बलबन के मार्ग में बाधा डालता। जो सदस्य बच भी गये, उनका उसने कठोरता से दमन कर दिया।

बलबन के कृत्य

1. सुल्तान-पद की प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना.
2. चालीस अमीरों के दल का विनाश
3. मंगोल आक्रमणों का सामना
4. मेवातियों का दमन
5. जागीरों की जाँच करवाना
6. हिन्दुओं तथा मुसलमान प्रान्तपतियों के विद्रोह का दमन
7. शासन-व्यवस्था की रूपरेखा-
   (अ) दरबार की प्रतिष्ठा की स्थापना
   (ब) सैनिक संगठन
   (स) गुप्तचर-विभाग का संगठन

(3) मंगोल आक्रमणों का सामना- मंगोलों के आक्रमणों का साम्राज्य की उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं पर सदैव भय बना रहता था। वे खुरासान, गजनी, बगदाद पर

अपना आधिपत्य स्थापित कर चुके थे और लाहौर पर भी उन्होंने अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था। बलबन ने साम्राज्य की उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए नये दुर्ग बनवाये तथा पुराने दुर्गों की मरम्मत करवायी। मंगोलों के आक्रमणों का सामना करने के लिए अपने बड़े पुत्र मुहम्मद खाँ को सिन्ध और लाहौर तथा छोटे पुत्र बुगरा खाँ को सुनम तथा समाना के प्रान्त सौंप दिए। इन दोनों भाइयों ने मंगोलों को पराश्त किया। लेकिन 1286 में मंगोलों ने पुनः आक्रमण किया और इस बार उनसे युद्ध करते हुए मुहम्मद खाँ मारा गया। मुहम्मद की मृत्यु से बलबन को बहुत दुःख हुआ। मंगोलों के विरुद्ध बलबन को अधिक सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। उसने केवल लाहौर पर पुनः अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

(4) मेवातियों का दमन- अपने राज्यारोहण के प्रथम वर्ष ही बलबन का ध्यान मेवातियों की ओर आकर्षित हुआ। वे दिन में दिल्ली में प्रवेश कर नागरिकों को विभिन्न प्रकार के कष्ट देते थे। वे भिश्तियों और पनिहारिनों पर आक्रमण कर उनको जबर्दस्ती अपने साथ ले जाते थे। उनकी इस प्रकार की विध्वंसात्मक कार्यवाहियों से दिल्ली में इतना आतंक छा गया था कि मध्याह्न की नमाज के उपरान्त ही नगर के फाटक बन्द कर दिए जाते थे। बलबन ने दिल्ली के आस-पास के जंगलों को कटवा कर साफ करवाया। इसके बाद मेवातियों पर आक्रमण कर उनके गाँव के गाँव बरबाद कर दिए और एक-एक करके मेवातियों को मौत के घाट उतार दिया। उसने ग्रामीण क्षेत्रों में सैनिक चौकियों की स्थापना की तथा उनमें स्वामिभक्त पदाधिकारियों की नियुक्ति की। इस तरह मेवातियों के आक्रमण का भय बिलकुल जाता रहा। बर्नी लिखता है, ''साठ वर्ष बीत चुके, किन्तु सड़कें अब भी डाकुओं से मुक्त हैं।'' बर्नी के इस कथन के समर्थन में लेनपूल भी कहता है, ''यह मुक्ति मीठे शब्दों से नहीं प्राप्त की गई थी। बलबन बाज की तरह अपने दुश्मनों पर टूट पड़ा था और बेदर्दी के साथ मारता-काटता रहा था।''

(5) जागीरों की जाँच करवाना- बलबन ने जागीरों की जाँच करवायी और उन वृद्धों की जागीरों का अपहरण करवा लिया, जो राज्य की किसी भी रूप में सेवा करने में असमर्थ थे। केवल सेना में कार्य करने वाले योग्य नवयुवकों से उनकी जागीरें नहीं छीनी गईं। विधवाओं तथा अनाथों की भी जागीरें ले ली गईं और उनको नकद पेंशन देने की व्यवस्था कर दी गई। अन्त में बलबन के मित्र कोतवाल फखरुद्दीन के अनुरोध पर वृद्ध जागीरदारों को उनकी जागीरें वापस कर दी गईं।

(6) हिन्दुओं तथा मुसलमान प्रान्तपतियों के विद्रोहों का दमन- (i) दोआब के हिन्दू प्रायः दिल्ली सल्तनत के विरुद्ध विद्रोह किया करते थे। बलबन ने इस प्रदेश में शान्ति की स्थापना के लिए चार दुर्गों का निर्माण करवाया और उनमें अफगान सैनिक नियुक्त किये। उसने इस समस्त प्रदेश को कई सैनिक-विभागों में विभक्त किया और वहाँ सुव्यवस्था हेतु अपने योग्य तथा विश्वासी पदाधिकारी नियुक्त किये, जिन्होंने बड़ी कठोरता से हिन्दुओं का दमन किया। इसके बाद बलबन ने 'कटेहर' के हिन्दुओं का भी कठोरता से दमन किया। उसने अपने सैनिकों को गाँवों पर आक्रमण करने, मकानों को जलाने तथा सम्पूर्ण जनता को कत्ल करने की आज्ञा दी। बहुत से व्यक्तियों का वध कर दिया गया और आठ वर्ष से ऊपर के स्त्री-पुरुषों को दास बना लिया गया। प्रत्येक जंगल तथा गाँव में मनुष्यों की लाशों को

सड़ता हुआ छोड़ दिया गया। इस भीषण हत्याकांड के विषय में इतिहासकार बर्नी लिखता है, "बलवाइयों के खून की नदी बह चली और मुर्दों की बदबू गंगा तक पहुँच गई। इसके पश्चात् कटेहर निवासियों ने फिर सिर नहीं उठाया और वह प्रदेश यात्रियों, किसानों, सरकारी कारिन्दों तथा पदाधिकारियों के लिए पूर्णतया सुरक्षित हो गया।"

(ii) तुगरिलबेग बंगाल का सूबेदार था। उसने यह देखकर कि सुल्तान वृद्ध हो गया है और मंगोलों के आक्रमण का मुकाबला करने में व्यस्त है, बंगाल में अपनी प्रभुत्व-सम्पन्नता की घोषणा कर दी तथा अपने नाम के सिक्के जारी किए। एक इतिहासकार लिखता है, "पैसा बुद्धिमान को अन्धा बना देता है और सोने-चाँदी का लोभ समझदार लोगों के मुँह पर पट्टी बाँध देता है। सैनिक और नागरिक, दोनों दिल्ली के सुल्तान की ताकत भूल बैठे और तुगरिलबेग के साथ हो लिए।" बलबन ने उसको पराजित करने के लिए क्रमशः दो सेनाएँ भेजीं, परन्तु वे पराजित हुईं। क्रुद्ध और लज्जित बूढ़े सुल्तान ने अपने पुत्र बुगरा के साथ तीसरे हमले का स्वयं नेतृत्व किया और दो लाख सेना लेकर मार्ग की अनेक कठिनाइयों को सहते हुए लखनौती पहुँच गया। सुल्तान के आगमन को सुनकर तुगरिलबेग पूर्व बंगाल की ओर भाग गया और जाजनगर के जंगलों में छिप गया। सुल्तान ने घोषणा की, "मैं तब तक दिल्ली लौटने का नाम न लूँगा जब तक विद्रोही और उनके साथियों का खून न बह जाय।" ढाका से आगे तुगरिल बकतार द्वारा पकड़ा गया और बंगाल के हाजी नगर में उसका वध कर दिया गया। इसके बाद सुल्तान लखनौती आया और वहाँ उसने तुगरिल के साथियों को भयंकर दण्ड दिये। दो दिन तक हत्याकांड चलता रहा। उस भिखारी को भी नहीं छोड़ा गया जिसने कभी तुगरिल से खैरात पाई थी। इतिहासकार बर्नी लिखता है, "मुख्य बाजार के दोनों ओर एक मील लम्बी सड़क पर खूँटों की एक पाँति गाड़ी गई और उन पर तुगरिल के साथियों के शरीर को ठोंका गया। देखने वालों ने ऐसा भयंकर दृश्य कभी नहीं देखा था और बहुत से लोग आतंक तथा घृणा से मूर्च्छित हो गये।" विद्रोहियों का पूर्णतया दमन कर बलबन ने अपने पुत्र बुगरा खाँ को बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया और उसे दिल्ली के प्रति स्वामिभक्त रहने का परामर्श देते हुए कहा, "तुमने मेरे द्वारा दिया हुआ दण्ड देखा ? अगर कभी भी बदमाश और चालाक लोग तुम्हें दिल्ली की सत्ता ठुकराने के लिए प्रेरित करें, तो इस बाजार में दी हुई सजा याद कर लेना। समझ लो और न भूलो कि अगर हिन्द या सिन्ध, मालवा या गुजरात, लखनौती या सोनार गाँव के सूबेदार दिल्ली के तख्त के खिलाफ तलवार उठायेंगे तो उन्हें भी यही सजा मिलेगी जो कि तुगरिल और उसके उत्तराधिकारियों तथा उसके बीबी-बच्चों को भोगनी पड़ी है।" बंगाल की ओर से निश्चिन्त होकर वह दिल्ली लौट गया। इसके उपरान्त उसने उन भगोड़ों को दण्ड देने के लिए सूलियाँ स्थापित करने की आज्ञा दी, जो दिल्ली की सेना को छोड़कर तुगरिल की सेना में जा मिले थे, किन्तु एक काजी की प्रार्थना पर उसने मृत्यु-दण्ड स्थगित कर दिया और अपराध के अनुसार दण्ड दिये।

(7) शासन-व्यवस्था की रूपरेखा- बलबन की शासन-व्यवस्था युद्धों तथा विद्रोहों के मध्य में विकसित हुई थी। उसका शासन 'अर्द्ध नागरिक तथा अर्द्ध सैनिक' था। शासन की सम्पूर्ण शक्ति उसी में केन्द्रित थी। उसके आदेशों का उल्लंघन करने वाले को कठोर दण्ड भोगना पड़ता था। वह दैवी सिद्धान्त का अनुयायी था। उसकी शासन-व्यवस्था की रूपरेखा इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है :

(अ) दरबार की प्रतिष्ठा की स्थापना- बलबन ने दरबार की प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए निम्न उपायों को अपनाया- (i) उसने गम्भीरता धारण की और दरबार में साधारण लोगों से बातचीत करना बन्द कर दिया। (ii) उसने लम्बे डील-डौल वाले और भयानक लोगों को अपना अंगरक्षक नियुक्त किया जो सदैव नंगी तलवारें लिये उसके पास खड़े रहते थे। (iii) उसने समस्त दरबारियों तथा सरकारी पदाधिकारियों के लिए एक विशेष प्रकार की पोशाक निश्चित की। (iv) बलबन स्वयं शाही पोशाक में दरबार में जाता था। (v) उसने दरबार में हँसी-मजाक करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। वह न तो स्वयं हँसता था और न किसी व्यक्ति को हँसने देता था। (vi) उसने सुल्तान का अभिवादन करने के लिए सिजदा तथा पैबीस का नियम प्रारम्भ किया। (vii) उसने स्वयं मद्यपान करना त्याग दिया तथा दरबारियों एवं पदाधिकारियों के लिये भी मद्यपान का निषेध कर दिया। (viii) निम्न जाति के लोगों की बात क्या, निम्न श्रेणी के अमीरों से मिलना और वार्तालाप करना वह पसन्द नहीं करता था। (ix) वह स्वयं दरबार के नियमों का पालन करता था और किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नियमों का उल्लंघन सहन नहीं कर सकता था।

(ब) सैनिक संगठन- बलबन ने इमाम-उल-मुल्क के सहयोग से एक सुसंगठित विशाल सेना का निर्माण किया। इमाम-उल-मुल्क सेना-मन्त्री (दीवान-ए-आरिफ़) के पद पर नियुक्त था। बलबन ने सैन्य संगठन में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं किये, बल्कि उसने कठोर सैनिक-अनुशासन स्थापित किया। वह पराक्रमी सैनिकों को पुरस्कार प्रदान करता था और भगोड़े सैनिकों को कठोर दण्ड देता था।

(स) गुप्तचर विभाग का संगठन- बलबन ने गुप्तचर विभाग की स्थापना की। उसने सम्पूर्ण राज्य में गुप्तचरों का जाल बिछा दिया जो उसको साम्राज्य भर की समस्त सूचनायें देते थे। उसने उनको अच्छे वेतन दिये तथा सूबेदारों और सेनानायकों के नियन्त्रण से मुक्त रखा। जो गुप्तचर अपने कर्तव्य का उचित रूप से पालन न करता था उसे वह कठोर दण्ड देता था। **डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** के शब्दों में, "बलबन की शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने का श्रेय उसके गुप्तचर विभाग को था जिसके संगठन में उसने अपना समय तथा धन व्यय किया।"

बलबन की मृत्यु- सुल्तान को 80 वर्ष की अवस्था में अपने ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद खाँ की मृत्यु का असह्य आघात लगा। वह रात्रि में अपने निवास-कक्ष में बिलख-बिलख कर रोया करता था। इस घातक प्रहार के कारण मुहम्मद खाँ की मृत्यु से एक वर्ष पश्चात् ही 1287 में उसकी मृत्यु हो गयी।

बलबन का चरित्र तथा उसका मूल्यांकन- निस्सन्देह गुलाम-वंश के शासकों में बलबन का स्थान सबसे ऊँचा है। उसने चालीस वर्ष तक दिल्ली-सल्तनत की बागडोर अपने हाथों में रखी-बीस वर्ष तक प्रधान मन्त्री के रूप में तथा 20 वर्ष तक सुल्तान के रूप में। उसने भारत में नवस्थापित तुर्की साम्राज्य को सुसंगठित करने में कठोरता, निर्दयता तथा बर्बरता को अन्तिम पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। उसने कोई नया प्रदेश विजित नहीं किया, केवल दिल्ली-सल्तनत की उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं से होने वाले मंगोल आक्रमणों से रक्षा की। उसकी निरंकुशता राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त पर आधारित थी। उसके दरबार की शान-शौकत एशिया में प्रसिद्ध थी। उसने दरबार में गम्भीरता धारण की। वह न तो स्वयं दरबार में कभी जोर से हँसता था न किसी को हँसने देता था। सुल्तान पद की प्रतिष्ठा के

लिये वह निम्न जाति के लोगों से किसी प्रकार की भेंट स्वीकार नहीं करता था। दिल्ली के फरबरन नामक एक व्यापारी ने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति अर्पित करकें सुल्तान से भेंट करने की इच्छा प्रकट की, लेकिन उसने मिलना स्वीकार नहीं किया। बलबन के ये कार्य उसकी बुद्धिमत्ता के परिचायक नहीं हैं।

डॉ० ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है, "बलबन का जीवन मध्यकालीन भारत के इतिहास में अनोखी-सी चीज है जिसमें हम चालीस वर्ष तक की निरन्तर एवं कठिन क्रियाशीलता पाते हैं। उसने सुल्तान पद के गौरव को बढ़ाया तथा रक्त एवं शस्त्र की नीति से शान्ति एवं व्यवस्था की स्थापना की।" लेनपूल के इन शब्दों में तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता कि, "भारत में शासन करने और अपनी प्रजा से अपनी इच्छा मनवाने का तरीका बलबन से ज्यादा और कोई शासक न जान पाया था।" बलबन के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए **डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** ने लिखा है, "बलबन ने तुर्की सल्तनत की रक्षा का सुप्रबन्ध किया और उसे नया जीवन प्रदान किया, यही उसका महान् कार्य था। उसने ताज की प्रतिष्ठा का पुनरुत्थान किया, यह उसकी दूसरी सफलता थी। राज्य में सर्वत्र शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना करना उसका अन्य महत्वपूर्ण कार्य था। उस युग में तुर्की सल्तनत को जिन कठिनाइयों और संकटों का सामना करना पड़ा, उनको देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि बलबन की उपर्युक्त सफलतायें साधारणतः उच्चकोटि की न थीं तथा कथित-गुलाम सुल्तानों में इल्तुतमिश के बाद उसका दूसरा स्थान है।"

बलबन पक्का सुन्नी मुसलमान था। धार्मिक कृत्यों में उल्माओं के सत्संग में वह अधिक अभिरुचि लेता था। वह विद्या तथा शिक्षा का पोषक था। उसके दरबार में विद्वानों को आश्रय प्राप्त था जिनमें शेख बदरुद्दीन बजारिया, शेख मसऊद, बदरुद्दीन गजनवी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उसने मध्य एशिया के अनेक विद्वानों को भी दरबार में शरण दी। उसे स्थापत्य-कला से भी विशेष प्रेम था। उसकी राजधानी इस्लामी संस्कृति का प्रमुख केन्द्र थी।

बलबन ने देश में कोई रचनात्मक कार्य नहीं किया। उसकी शासन-सम्बन्धी सफलतायें तलवार के बल पर आधारित थीं, जो किसी साम्राज्य की सुव्यवस्था के लिए स्थायी नहीं हो सकतीं। उसने हिन्दुओं के प्रति असहिष्णुता की नीति अपनाई। उसने प्रजा के हृदय को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास नहीं किया, बल्कि उसने उसके प्रति सदैव कठोरता का व्यवहार किया। इन बातों के होते हुए भी **लेनपूल** के शब्दों में यह स्वीकार करना पड़ेगा, "दिल्ली के सुल्तानों की लम्बी पंक्ति में बलबन का नाम विशेष उल्लेखनीय है जो एक गुलाम, भिश्ती, शिकारी, सेनापति और राजनीतिज्ञ रह चुका था और अन्त में जाकर सुल्तान बना था।"[1] **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** के शब्दों में, "बलबन एक महान् योद्धा, शासक एवं नीति-निपुण था जिसने घोर संकटमय स्थिति में पड़े हुए अल्पवयस्क मुस्लिम राज्य को सुरक्षित रखा और नष्ट होने से बचाया, इसलिये उसका नाम मध्यकालीन भारतीय इतिहास में सदैव स्थान पाता रहेगा।"[2]

---

1. "Balban the slave, water carrier, huntsman, general statesman and Sultan, is one the most striking figure among many notable men in the long line of the kings of Delhi." - Lanepoole
2. "A great warrior, ruler and statesman, who saved the infant Muslim state from extinction at a critical time, Balban will ever remain a great figure in medicual Indian History." - Dr. Ishwari Prasad

कैकुवाद (1287-1290 ई०)-बलबन ने मुहम्मद के पुत्र कैखुसरो को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद तुर्की अमीरों ने बुगरा खाँ के पुत्र कैकुवाद को गद्दी पर बैठाया। उस समय उसकी अवस्था केवल 17 वर्ष की थी। उसका पालन-पोषण बलवन के संरक्षण में हुआ था, इसलिए उस पर आचार-विचार सम्बन्धी अनेक नियन्त्रण थे, लेकिन बलबन की मृत्यु के बाद वह स्वतन्त्र हो गया और उसने अपने को भोग-विलास में लिप्त कर लिया। दरबार के अन्य अधिकारियों ने भी उसका साथ दिया क्योंकि बलबन के कठोर अनुशासन से वे भी अब ऊब चुके थे। शासन की वास्तविक सत्ता दिल्ली के कोतवाल के दामाद निजामुद्दीन नामक एक चरित्रहीन कुचक्री के हाथ में चली गयी।

कैकुवाद के पिता बुगराखाँ ने जो बंगाल का सूबेदार था, दिल्ली के समाचार सुनकर एक शक्तिशाली सेना लेकर दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। कैकुबाद उसका प्रतिरोध करने के लिए आगे बढ़ा, लेकिन कुछ स्वामिभक्त सेवकों के प्रयासों से पिता-पुत्र में संघर्ष टल गया और दोनों में समझौता हो गया। बुगराखाँ ने अपने पुत्र को यह सलाह दी कि वह निजामुद्दीन जैसे कुचक्री व्यक्ति से अपना पीछा छुड़ाये और भोग-विलास में लिप्त न रहे। कुछ समय तक उसने अपने पिता की आज्ञा का पालन किया और निजामुद्दीन को विष देकर मरवा डाला। लेकिन वह फिर भोग-विलास में लिप्त हो गया और जलालुद्दीन फिरोज को अपना सेनापति नियुक्त किया। कुछ समय बाद लकवा मार जाने के कारण कैकुवाद बीमार पड़ गया तो तुर्की अमीरों ने उसके पुत्र को शमसुद्दीन क्यूमर्स के नाम से गद्दी पर बैठा दिया और जलालुद्दीन की हत्या का प्रयत्न किया। लेकिन जलालुद्दीन पहले से ही सावधान था। इसलिए कैकुबाद तथा शमसुद्दीन क्यूमर्स का वध कराकर वह स्वयं 1290 ई० में सुल्तान बन गया। इस प्रकार गुलाम-वंश का अन्त हो गया और उसने एक नये वंश की नींव डाली जिसे खिलजी-वंश कहते हैं।

गुलाम-वंश के पतन के कारण

गुलाम-वंश के शासकों ने 1206 से 1290 तक अर्थात् 84 वर्ष तक शासन किया। इस अवधि में दस सुल्तान हुए, जिनमें कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुत्मिश, रजिया तथा बलबन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। दस सुल्तानों में केवल तीन अपनी मौत से मरे, शेष मार डाले गये। इससे यह स्पष्ट है कि इस वंश के वही शासक सफल हुए जो वास्तव में योग्यतम थे। लेकिन उनकी सफलता सैनिक शक्ति पर निर्भर थी, जो बलवन की मृत्यु के बाद ही शिथिल हो जाने पर पतन का कारण बनी। इस वंश के पतन के कारण निम्नलिखित हैं:

(1) अयोग्य उत्तराधिकारी- बलबन की मृत्यु के पश्चात् कोई ऐसा योग्य उत्तराधिकारी न रह गया था जो अपनी योग्यता के द्वारा शासन-सूत्र को सफलतापूर्वक संचालित करता। बलबन का योग्य पुत्र मुहम्मद खाँ उसके समय में ही मंगोलों से युद्ध करता हुआ मारा गया था। बलबन का दूसरा पुत्र बुगरा खाँ ने दिल्ली के स्थान पर बंगाल का शासक बना रहना उचित समझा। बलबन द्वारा चुने हुए उत्तराधिकारी कैखुसरो के स्थान पर दिल्ली के कोतवाल मलिक फखरुद्दीन ने बुगराखाँ के पुत्र कैकुवाद को गद्दी पर बिठाया जिसकी अवस्था 17 वर्ष की थी। इसका पालन-पोषण बाल्यकाल से ही अध्यापकों के कठोर वातावरण के मध्य हुआ था। इसको किसी सुन्दरी की ओर आँख उठाकर देखने तथा एक प्याला शराब पीने का अवसर नहीं दिया जाता था। लेनपूल के शब्दों में, "अतः ऐसे नौजवान को अचानक हिन्दुस्तान

की सबसे बड़ी विलास नगरी का स्वामी बना देने पर क्या परिणाम होगा, सोचा जा सकता है।" परिणामतः तीन वर्ष के भीतर ही विलासिता और शराबखोरी ने उसकी जिन्दगी को बरबाद कर दिया और दिल्ली का सिंहासन फखरुद्दीन के दामाद निंजामुद्दीन के हाथ में चला गया जिसने बाद में कैखुसरो की हत्या करा दी। इसके पश्चात् जलालुद्दीन खिलजी ने कैकुवाद और उसके पुत्र शमसुद्दीन क्यूमर्स की हत्या करवा दी और स्वयं 13 जून, 1290 को सुल्तान बन गया। इस तरह गुलाम-वंश का अन्त हो गया।

(2) अमीरों की गुटबन्दी और उनके षड्यन्त्र- अमीरों की गुटबन्दी और षड्यन्त्रों ने गुलाम-वंश की नींव को खोखली बना दिया। तुर्क अमीरों तथा सरदारों को जब भी अवसर प्राप्त हुआ, दिल्ली सत्ता पर अधिकार जमाने का प्रयास किया। इल्तुतमिश की मृत्यु के पश्चात् तो ये इतने अधिक शक्तिशाली हो गये कि सुल्तान उनके हाथ की कठपुतली बन गया। बलबन ने अपने शासनकाल में प्रभावशाली अमीरों का वध करवा दिया था, किन्तु उसकी मृत्यु के बाद ही कैकुवाद पर उनका प्रभाव पुनः स्थापित हो गया, जिसके परिणामस्वरूप कैखुसरो और कैकुवाद उनके कुचक्रों के शिकार बने और गुलामंवंश का सदैव के लिए अन्त हो गया तथा एक नये वंश—खिलजी-वंश की स्थापना हुई।

गुलाम-वंश के पतन के कारण

1. अयोग्य उत्तराधिकारी
2. अमीरों की गुटबन्दी और उनके षड्यन्त्र
3. निरंकुश शासन
4. उत्तराधिकार के नियम का अभाव
5. शासकों के व्यक्तित्व का अभाव
6. मंगोलों के आक्रमण
7. दास-प्रथा की प्रधानता
8. हिन्दुओं के प्रति असहिष्णुता की नीति
9. सीमान्त सुरक्षा के प्रति उदासीनता
10. लोक-हित की भावना का अभाव

(3) निरंकुश शासन- गुलाम-वंश के सुल्तानों का शासन निरंकुश, स्वेच्छाचारी और सैनिक शक्ति पर आधारित था। ऐसा शासन अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकता। सैनिक-शक्ति में शिथिलता के आते ही शासन पतन की ओर अग्रसर होने लगता है। यही बात गुलाम-वंश के पतन में चरितार्थ हुई। बलबन की मृत्यु के पश्चात् ही सैनिक-शक्ति शिथिल पड़ गई और राज्यकार्यों में अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी जो गुलाम-वंश के पतन का कारण बनी।

(4) उत्तराधिकार के नियम का अभाव-मुसलमानों में उत्तराधिकारी के नियम का अभाव था। इस कारण सुल्तान की मृत्यु के बाद सिंहासन के लिए संघर्ष होना अनिवार्य था। इस वंश के प्रत्येक सुल्तान की मृत्यु के बाद किसी न किसी प्रकार का संघर्ष तथा षड्यन्त्र हुआ जिसने साम्राज्य की शक्ति को निर्बल बनाया।

(5) शासकों के व्यक्तित्व का अभाव-किसी राज्य का चिरस्थायी होना शासक की योग्यता पर निर्भर होता है। इस काल में शासक के व्यक्तित्व का विशेष महत्व था। इल्तुतमिश और बलबन को छोड़कर अन्य शासकों में उच्चकोटि के व्यक्तित्व का पूर्णतया अभाव था। वे अयोग्य, विलासी तथा निकम्मे थे। लेनपूल ने सत्य ही कहा है, "तुर्की वंशों का इतिहास एक व्यक्ति के उत्थान तथा उसके अयोग्य उत्तराधिकारी के पतन का इतिहास है।"

(6) मंगोलों के आक्रमण-मंगोलों के आक्रमणों ने भी दिल्ली सल्तनत को बड़ा आघात पहुँचाया। इनके आक्रमणों को रोकने के लिए प्रत्येक सुल्तान को पश्चिमोत्तर सीमा पर अधिक

सेना रखनी पड़ी थी जिसके कारण उसका व्यय बहुत बढ़ जाता था। फिर भी अवसर पाकर मंगोल पश्चिमोत्तर प्रदेश में लूट-मार किया करते थे। बलबन का सुयोग्य पुत्र मुहम्मद जिस पर उसकी महत्वाकांक्षायें निर्भर थीं, मंगोलों से युद्ध करते हुए मारा गया था।

(7) दास-प्रथा की प्रधानता-इस काल में दास-प्रथा की प्रधानता थी। प्रत्येक दास उच्चतम पद प्राप्त करने के प्रयास में रहता था। परिणामतः दरबार में दलबन्दी का पैदा हो जाना स्वाभाविक था। दास भी उत्तराधिकार के युद्ध में सम्मिलित हुआ करते थे। इस प्रकार के कृत्यों से भी गुलाम-वंश की जड़ें हिल गयीं।

(8) हिन्दुओं के प्रति असहिष्णुता की नीति-गुलाम-वंश के सुल्तानों ने हिन्दुओं के प्रति असहिष्णुता की ही नीति अपनाई। वे हिन्दुओं को मुसलमानों का सेवक बनाकर रखना चाहते थे। हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचार किये गये। उनके मन्दिरों को विध्वंस करके मस्जिदों का निर्माण कराया गया और उनसे जजिया वसूल किया गया। किसी भी सुल्तान ने हिन्दुओं का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया, बल्कि उनका कठोरता से दमन किया। यही कारण है कि हिन्दुओं ने समय पाकर दिल्ली सल्तनत के विरुद्ध विद्रोह किये। दोआब के हिन्दुओं और मेवातियों के विद्रोह उल्लेखनीय हैं जिनका बलबन ने बड़ी बर्बरता के साथ दमन किया था। इस प्रकार हिन्दुओं का विद्रोह भी गुलाम-वंश के पतन का एक प्रमुख कारण था।

(9) सीमान्त-सुरक्षा के प्रति उदासीनता-बलबन के अतिरिक्त अन्य सुल्तानों ने सीमान्त-सुरक्षा की ओर अपना ध्यान नहीं लगाया। परिणामतः इस ओर से मुगलों के आक्रमण लगातार होते रहे। बलबन ऐसा शक्तिशाली शासक भी सदैव इनके आक्रमणों के समय भय से ग्रसित रहा और कोई रचनात्मक कार्य नहीं कर सका।

(10) लोकहित की भावना का अभाव-गुलाम-वंश के सुल्तानों में लोकहित की भावना का अभाव था। उन्होंने जन-कल्याण के लिए कोई कार्य नहीं किया। **डॉ० आशीर्वादीलाल** के शब्दों में, "उनके दो कार्य थे- कानून तथा व्यवस्था स्थापित रखना तथा राजस्व वसूल करना।" उन्होंने साधारण जनता की सांस्कृतिक, नैतिक, शारीरिक और भौतिक समृद्धि की चिन्ता नहीं की।

गुलाम सुल्तानों की शासन-व्यवस्था

दिल्ली सल्तनत सैनिक राज्य था और जनता की इच्छा पर नहीं, बल्कि शक्ति पर आधारित था। उसकी समस्त भूमि पर शक्तिशाली तुर्की सैनिकों का अधिकार था। देश के भीतर सामरिक महत्व के स्थानों पर रक्षा सेनायें नियुक्त कर दी गई थीं। सीमाओं पर अनेक किलों का निर्माण किया गया था और उनमें तुर्की सैनिक रखे जाते थे। विदेशी होने के कारण सरकार के केवल दो ही कार्य थे लगान वसूल करना तथा शान्ति और व्यवस्था कायम रखना। जनता के हितों से उसे कोई प्रयोजन नहीं था। इतिहासकार **हेग** ने लिखा है, 'गुलामों की सल्तनत पूर्णतया राजनीतिक सत्ता नहीं थी। राजा को ईश्वर का रूप माना जाता था। राज्य को धार्मिक समझा जाता था और नागरिकता उन्हीं को प्राप्त थी जो इस्लाम धर्म के सिद्धान्त के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते थे,' इस समय सुल्तान की नियुक्ति में शक्तिशाली अमीरों का प्रमुख हाथ था। उत्तराधिकार के सिद्धान्त का पालन नहीं किया जाता था। गुलाम-वंश

के सभी शासक सैद्धान्तिक रूप से अपने को खलीफा का वाइसराय मानते रहे किन्तु कालान्तर में उसकी अधीनता से मुक्त होकर उन्होंने सत्ता स्थापित कर ली।

(1) केन्द्रीय शासन का स्वरूप (अ) सुल्तान- राज्य की सम्पूर्ण सत्ता सुल्तान में निहित थी। वह पूर्णरूपेण निरंकुश शासक था। न्याय और कानून की सर्वोच्च सत्ता उसी को प्राप्त थी। उसकी शक्ति सैनिक बल पर आधारित थी तथा वह अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था। उसकी शक्तियाँ असीम थीं।

गुलाम सुल्तानों की शासन-व्यवस्था

1. केन्द्रीय शासन का स्वरूप
2. प्रान्तीय शासन का स्वरूप
3. सैन्य-संगठन
4. वित्तीय-व्यवस्था
5. न्याय-व्यवस्था
6. सामाजिक अवस्था
7. सांस्कृतिक अवस्था
8. आर्थिक अवस्था

(ब) मन्त्रीगण- मंत्रिया की नियुक्ति सुल्तान अपनी सहायता के लिए करता था। मन्त्रियों और अन्य पदाधिकारियों को सैनिक कार्य भी करने पड़ते थे। ये मन्त्री और अधिकारी निम्नलिखित थे, जो सुल्तान के प्रति उत्तरदायी थे-

(i) वजीर- प्रधानमन्त्री 'वजीर' कहलाता था। राजस्व और वित्तविभाग उसके अन्तर्गत थे। वह अन्य मन्त्रियों के कार्यों की देखभाल करता था। वह युद्धकाल में सेनापति की हैसियत से सैन्य संचालन करता था। उसके सहायतार्थ एक नायब वजीर, मुस्तौफि-ए-मुमालिक (महालेखा परीक्षक) और मुंसिफ-ए-मुमालिक (महालेखाकार) होते थे।

(ii) आरिज-ए-मुमालिक- यह सेना-मन्त्री था। इसका कार्य सैनिकों की भर्ती करना, वेतन का वितरण करना, अस्त्र-शस्त्रों का निरीक्षण करना तथा सेना की देखभाल करना था।

(iii) दीवान-ए-इंशा- इसका कार्य शाही घोषणाओं तथा पत्रों के मसविदे तैयार करना था। इसके अधीन अनेक सचिव तथा लिपिक कार्य करते थे।

(iv) दीवान-ए-रसालत- यह वैदेशिक विभाग का अध्यक्ष था। इसका मुख्य कार्य विदेशों से आने वाले राजदूतों से सम्पर्क स्थापित करना था।

(v) वरीद-ए-मुमालिक- यह मुख्य संवाददाता था। इसके अधीन अनेक संवाददाता तथा गुप्तचर होते थे।

(vi) काजा मुमालिक- राज्य के प्रमुख न्यायाधीश को काजा-मुमालिक कहते थे। उसका प्रमुख कार्य न्याय करना तथा धर्म-विभाग की देख-रेख करना था। धर्म विभाग के अध्यक्ष की हैसियत से यह 'सद्र-उल-सदूर' कहलाता था।

(vii) वकील-ए-दर- यह शाही महलों का प्रमुख प्रबन्धक था।

(viii) अमीर-ए-हाजिब- दरबार के शिष्टाचार-सम्बन्धी नियमों को लागू करना तथा समारोहों का प्रबन्ध करना इसका प्रमुख कार्य था।

(ix) सरेजाँदार- यह सुल्तान के अंग-रक्षकों का नायक था।

(x) अमीर-ए-आखूर- घोड़ों की देखभाल करने वाले अफसर को 'अमीर-ए-आखूर' के नाम से सम्बोधित किया जाता था।

(xi) शाइन-ए-पीलाँ- यह अफसर हाथियों का अध्यक्ष होता था। हाथियों की देखभाल करना इसका प्रमुख कार्य था।

(xii) अमीर-ए-शिकार- इस अफसर को शिकार का प्रबन्ध करना पड़ता था।

(xiii) नाइब-ए-मुमालिक- यह गुप्तचर-विभाग का अध्यक्ष था तथा वजीर की अपेक्षा अधिक शक्तियों का प्रयोग करता था।

(2) प्रान्तीय शासन का स्वरूप- गुलाम-वंश के सुल्तानों की प्रान्तीय शासन-व्यवस्था सुसंगठित नहीं थी। यह विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित थी। राज्य का ढाँचा अत्यन्त शिथिल था और अनेक सैनिक क्षेत्रों को मिलाकर बना था। ये क्षेत्र आकार, जनसंख्या और आय की दृष्टि से एक समान नहीं थे। प्रान्त को 'इक्ता' कहते थे और इसके प्रबन्धकर्ता को 'मुफ्ती' कहते थे। मुफ्ती का कार्य कर वसूल करना, अपने पदाधिकारियों को नियुक्त करना, शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखना और सुल्तान की आज्ञाओं को कार्यान्वित करना था। युद्ध के समय वह सुल्तान को सैनिक टुकड़ियाँ भेजकर सहायता करता था। उसका पद वेतनभोगी था। इस काल में मन्दावर, अमरोहा, सम्भल, बदायूँ, बुलन्दशहर, अलीगढ़ (कोल), अवध, कड़ा-मानिकपुर, बयाना, ग्वालियर, नागौर, झाँसी, मुल्तान, उच्छ, लाहौर, सुनाम, कुहराम, भटिंडा और सरहिन्द आदि इक्ता थे। इक्तों के अतिरिक्त अनेक जिले थे जिन्हें मिलाकर 'खालसा' बनता था। इसका राजस्व-प्रबन्ध सुल्तान स्वयं किया करता था।

(3) सैन्य-संगठन- जैसा कि ऊपर व्यक्त किया जा चुका है कि दिल्ली सल्तनत की आधारशिला सैन्य - शक्ति थी। इस कारण इस वंश के सुल्तानों ने साम्राज्य हित के कार्यों की अपेक्षा सैन्य-शक्ति को संगठित करने में अधिक ध्यान लगाया। इस समय निम्न प्रकार की सेना थी- (i) सुल्तान की अंगरक्षक सेना, (ii) इक्ता की सेना, (iii) धर्म सेना, (iv) स्वयं-सेवकों की सेना, (v) पदाति सेना, (vi) अश्वारोही सेना, (vii) हस्ति-सेना, (viii) ऊँटों की सेना। सुल्तान सेना का महासेनापति होता था। प्रान्तीय सेना का अध्यक्ष मुफ्ती होता था। सैनिकों को वेतन जागीरों के रूप में मिलता था, किन्तु कभी-कभी उनको वेतन नकद भी दिया जाता था।

(4) वित्तीय व्यवस्था- गुलाम-वंश के सुल्तानों की आय के मुख्यतः पाँच साधन थे जो शरियत के अनुसार वसूल किये जाते थे।

(i) खिराज- यह भूमिकर था और हिन्दू सामन्तों तथा किसानों से वसूल किया जाता था।

(ii) उश्र- यह भी भूमि-कर था जिसे उस भूमि से वसूल किया जाता था जो मुसलमानों के आधिपत्य में रहती थी।

(iii) जजिया- यह एक प्रकार का धार्मिक कर था जो गैर-मुसलमानों अर्थात् हिन्दुओं से वसूल किया जाता था। इस कर के अनुसार हिन्दू तीन श्रेणियों में विभक्त थे। प्रथम श्रेणी के 48 दिरहाम, द्वितीय श्रेणी के 24 दिरहाम और तृतीय श्रेणी के 12 दिरहाम की दर से जजिया अदा करते थे।

(iv) खुम्स- इसके अन्तर्गत लूट का धन आता था जिसका 1/5 भाग राजकोष में जमा होता था।

(v) जकात- जकात नामक कर मुसलमानों से वसूल किया जाता था जो उनकी आय का 1/40 भाग होता था।

उपरोक्त साधनों के अतिरिक्त आय के कुछ अन्य साधन भी थे, जैसे- चुंगी कर जो मुसलमान व्यापरियों से 2 1/2 प्रतिशत और हिन्दुओं से 5 प्रतिशत के रूप में वसूल किया जाता था। पृथ्वी में गड़े हुए धन तथा खानों से प्राप्त होने वाली आय पर भी सुल्तान का ही अधिकार होता था।

(5) न्याय-व्यवस्था- न्याय का प्रमुख स्रोत सुल्तान था। वह मुकदमें सुनता तथा उनका फैसला करता था। धार्मिक झगड़ों का फैसला करने में वह 'सद्र' तथा 'मुफ्ती' की सहायता प्राप्त करता था। सुल्तान के नीचे, 'काजा मुमालिक' नामक प्रमुख न्यायाधीश होता था। जब उसको धर्म-विभाग के अध्यक्ष की हैसियत से फैसला करना होता था तब वह 'सद्र-उल-सदूर' कहलाता था। हिन्दुओं के मुकदमे पंचायतों द्वारा निर्णीत होते थे। दण्ड-विधान अत्यन्त कठोर था। सामान्य अपराधों के लिए अंगच्छेदन का दण्ड निर्धारित था। इल्तुतमिश के काल की न्याय-पद्धति के संबंध में इब्नबतूता ने लिखा है,'' इल्तुतमिश ने न्याय के लिए महल के सम्मुख संगमरमर के दो सिंह स्थापित कराये थे जिनके गले में घण्टियाँ बँधी हुई थीं। न्याय चाहने वाला व्यक्ति इन घण्टियों को बजाता था तथा उसकी याचना के अनुसार तुरन्त न्याय-व्यवस्था की जाती थी।''

(6) सामाजिक अवस्था- इस काल में समाज दो वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग में तुर्क सैनिक एवं शाही परिवार के लोग तथा द्वितीय वर्ग में साहित्यिक लोग थे। समाज में तुर्क अमीरों का अधिक प्रभाव था। देश की अधिकतर जनता हिन्दू थी जिन्हें जजिया अदा करना पड़ता था। इस काल में स्त्रियों की दशा सन्तोषजनक थी और वे घर की लक्ष्मी समझी जाती थीं। घर का प्रमुख व्यक्ति पिता था जिसकी आज्ञाओं का पालन परिवार के सभी लोग करते थे। लड़की और लड़कों के विवाह में माता-पिता की इच्छा का प्रमुख स्थान था। विवाह में दहेज-प्रथा प्रचलित थी।

(7) सांस्कृतिक अवस्था- मुस्लिम इतिहासकारों ने दिल्ली सल्तनत को सांस्कृतिक राज्य कहा है, क्योंकि गुलाम-वंश के सुल्तान साहित्य तथा कला-प्रेमी थे। उनके दरबार में बड़े-बड़े विद्वानों को प्रश्रय प्राप्त था। लड़कों तथा लड़कियों की शिक्षा के लिए मस्जिद के पास ही एक मकतब तथा मदरसा की व्यवस्था थी, जहाँ योग्य अध्यापक बच्चों को शिक्षा प्रदान करते थे। उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए इल्तुतमिश ने एक विद्यालय दिल्ली में तथा एक मुल्तान में बनवाया था।

गुलाम-वंश के सुल्तान कला-प्रेमी भी थे। कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश तथा बलबन ने अनेक मस्जिदों का निर्माण कराकर अपनी कला का परिचय प्रस्तुत किया था। उस युग में यदि वास्तविक संस्कृति थी भी तो वह दरबार तथा राजधानी तक ही सीमित थी। साधारण जनता उससे बहुत दूर थी, क्योंकि सांस्कृतिक कार्यों में समाज के कुछ विशेष वर्गों का हाथ था।

(8) आर्थिक अवस्था- इस समय देश की आर्थिक अवस्था सन्तोषप्रद थी। कृषि, व्यापार, उद्योग-धन्धे आदि अच्छी दशा में थे। राज्य की आय के अनेक साधन थे। आर्थिक सम्पन्नता का प्रमाण यह है कि उस समय हिन्दू व्यापारी तथा साहूकार मुसलमान अमीरों को ऋण दिया करते थे, अन्य देशों के व्यापारी भारत आते थे और यहाँ की निर्मित बहुत-सी वस्तुओं को अपने साथ ले जाते थे, जिनकी माँग मध्य एशिया में अधिक थी। इस प्रकार गुलाम-वंश के सुल्तानों के शासन-काल में देश की आर्थिक दशा अच्छी थी।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ
(Important Dates & Events)

(1) 1206 ई० - मुहम्मद गोरी की मृत्यु तथा कुतुबुद्दीन ऐबक का राज्यारोहण।
(2) 1210 ई० - कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु।
(3) 1211 ई० - इल्तुतमिश का राज्य-सिंहासन पर बैठना।
(4) 1236 ई० - इल्तुतमिश की मृत्यु तथा रजिया का राज्यारोहण।
(5) 1240 ई० - रजिया का वध।
(6) 1266 ई० - बलबन का राज्यारोहण।
(7) 1279 ई० - तुगरिल बेग का विद्रोह।
(8) 1287 ई० - बलबन की मृत्यु।
(9) 1290 ई० - गुलाम-वंश का अन्त तथा खिलजी-वंश की स्थापना।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. बलबन के शासन-काल का संक्षिप्त इतिहास लिखिए। (1970)
2. इल्तुतमिश ने सल्तनत को किस प्रकार सुदृढ़ बनाया ? विवेचना कीजिए। (1975)
3. सिंहासनारोहण के पश्चात् इल्तुतमिश को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ? उसने उनका किस प्रकार समाधान किया ? (1977)
4. सल्तनत पर मंगोल आक्रमणों तथा उनके परिणामों का वर्णन करो। (1978)
5. सल्तनत काल में दिल्ली के सुल्तानों द्वारा मंगोलों के आक्रमणों को रोकने के लिए कौन-कौन से उपाय किये गये ? (1980)
6. दिल्ली सल्तनत को सुदृढ़ बनाने के लिए बलबन ने कौन से कदम उठाए ? (1981, 86)
7. बलबन के जीवन-चरित्र तथा उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। (1981)
8. एक प्रशासक के रूप में बलबन का मूल्यांकन कीजिए। (1985, 91)
9. दास वंश का वास्तविक संस्थापक आप किसे समझते हैं ? कारण सहित उत्तर दीजिए। (1992)
10. कुतुबुद्दीन ऐबक व इल्तुतमिश में आप दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक किसे समझते हैं ? सकारण बताइये।
    सुल्तान बलबन की प्रमुख समस्याओं का वर्णन कीजिए तथा यह बताइये कि उसने अथवा उन्हें किस प्रकार सुलझाया ? (1993)
11. सुल्तान बलबन की प्रमुख समस्याओं का वर्णन कीजिए तथा यह बताइये कि उसने उन्हें किस प्रकार सुलझाया? (1993)
12. वलबन के शासन-प्रबन्ध का वर्णन कीजिए। (1995)
13. बलबन की राजनीतिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए तथा गुलाम-वंश के इतिहास में उसका स्थान निर्धारित कीजिए। (1998)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "इल्तुतमिश गुलाम-वंश का वास्तविक संस्थापक था।" इस कथन को समझाइये। (1969, 71, 82, 86)
2. "बलबन दिल्ली सल्तनत के विशिष्ट शासकों में से एक था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। (1978)

3. "इल्तुतमिश ने राज्य को दुर्बल तथा विभाजित पाया, किन्तु उसने राज्य को शक्तिशाली और संगठित छोड़ा।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (1980, 84)
4. "रजिया असफल रही क्योंकि वह स्त्री थी।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (1982)
5. "मेरी मृत्यु के उपरान्त आप देखेंगे कि मेरे पुत्रों में मेरी पुत्री के समान कोई भी योग्य नहीं है।" इस कथन के आधार पर बताइये कि रजिया अपने पिता इल्तुतमिश की यह भविष्यवाणी कहाँ तक पूर्ण करने में सफल हुई ?
6. "बलबन की जीवनी मध्यकालीन भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण थी जिसने चालीस वर्ष तक घोर परिश्रम किया।" इस कथन के आलोक में बलबन के कृत्यों का मूल्यांकन कीजिए।
7. "बलबन एक अत्यधिक योग्य शासक था जिसने भारत में शिशु मुस्लिम राज्य की रक्षा की।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
8. "बलबन की मृत्यु के पश्चात् जो अभाव उपस्थित हुआ, उसकी पूर्ति न हो सकी।" इस कथन के संदर्भ में गुलाम-वंश के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।
9. "बलबन पूर्व मध्यकालीन भारतीय इतिहास का आदर्श शासक था।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (1985)
10. "सुल्ताना रजिया की विफलता का कारण तुर्की अमीरों की महत्वाकांक्षा एवं उनका नारीपरक असहिष्णु दृष्टिकोण था।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (1988)
11. "बलबन तेरहवीं शताब्दी का आदर्श सुल्तान था।" इस कथन की पुष्टि कीजिए। (1989)
12. "रजिया सुल्ताना में उच्च शासक के सभी गुण विद्यमान थे, किन्तु उसका नारी होना एक अभिशाप था।" इस कथन के आलोक में रजिया की असफलता के कारणों का उल्लेख कीजिए।
13. "कुतुबुद्दीन ही भारत में इस्लामी राज्य का संस्थापक था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
14. "बलबन के पौरुष और शक्ति के अभाव में दिल्ली सल्तनत आन्तरिक संघर्ष तथा बाह्य आक्रमणों को नहीं सहन कर सकती थी।" विवेचना कीजिए।
15. "इल्तुतमिश दास वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक था।" इस कथन की विवेचना उसकी विजयों एवं चरित्र के आधार पर कीजिए। (1995, 96)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. सुल्तान की हैसियत से कुतुबुद्दीन के कार्यों का उल्लेख कीजिए।
2. इल्तुतमिश के सम्मुख कौन-सी प्रारम्भिक कठिनाइयाँ थीं ?
3. बलबन की किन्हीं दो उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
4. बलबन के सम्मुख कौन-सी प्रारम्भिक कठिनाइयाँ थीं ?
5. बलबन ने चालीस अमीरों के दल का किस प्रकार विनाश किया ?
6. गुलाम-वंश के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।
7. गुलाम सुल्तानों की केन्द्रीय व प्रान्तीय शासन-व्यवस्था का उल्लेख कीजिए।

(घ) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :

1. रजिया (1985), 2. एल्दौज, 3. कुबाचा।

21

(ब) खिलजी-वंश
(1290-1320)

> **"वास्तव में अलाउद्दीन बर्बर एवं अत्याचारी था। उसके हृदय में न्याय के लिए तनिक भी स्थान न था और यद्यपि उसके राज्यकाल में अनेक सफल आक्रमण किये गये, फिर भी उसका शासन लज्जापूर्ण था।"** - वी० एम० स्मिथ

(अ) जलालुद्दीन फिरोज खिलजी
(1290-1296)

प्रारम्भिक जीवन- जलालुद्दीन खिलजी कबीले का तुर्क था। उसके पूर्वज तुर्किस्तान के आदिवासी थे जो पर्याप्त समय से भारत में आकर बस गये थे और दिल्ली के सुल्तानों के यहाँ विभिन्न पदों पर नौकरी कर रहे थे। फिरोज ने दिल्ली की सेना में कार्य करना आरम्भ किया और धीरे-धीरे अपनी योग्यता के बल पर कैकुबाद के समय में शाही अंगरक्षकों के अध्यक्ष के पद पर पहुँच गया था। इसके पश्चात् वह सीमान्त प्रदेश समाना का सूबेदार नियुक्त किया गया। इस पद पर रह कर उसने मंगोल आक्रमणकारियों के विरुद्ध अनेक युद्धों में अपने साहस का परिचय दिया और उन्हें वापस लौटने को बाध्य किया। इस प्रकार उसने सफल सैनिक और शासक की हैसियत से अपने मान और प्रतिष्ठा में बहुत अधिक वृद्धि कर ली। मलिक तुजाकी की मृत्यु के बाद कैकुबाद ने उसे सैन्य-मन्त्री के उच्च पद पर नियुक्त किया। इस उच्च पद का अधिकारी होने के साथ-ही-साथ वह खिलजियों के शक्तिशाली दल का नेता भी था। इस समय दिल्ली सल्तनत में कैकुबाद को लकवा मार जाने के कारण अव्यवस्था फैली हुई थी। फिरोज ने इस अवसर का लाभ उठाने का प्रयास किया। तुर्की अमीरों के दल ने फिरोज का वध करने का षड्यन्त्र रचा लेकिन उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। तुर्कों ने कैकुबाद के एक पुत्र शमसुद्दीन कयूमर्स को हरम से लाकर सिंहासनारूढ़ किया, किन्तु खिलजियों ने दुर्ग पर अधिकार कर उसको अपने अधिकार में कर लिया और फिरोज उसका संरक्षक बन गया। इसके बाद उसने कैकुबाद और कयूमर्श का वध करवा कर 1290 में किलूगढ़ी के महल में एक सार्वजनिक समारोह करा कर सिंहासन ग्रहण किया। इस अवसर पर सैनिकों तथा नागरिकों ने नये सुल्तान के प्रति राजभक्ति प्रकट की। सुल्तान ने भी अपने विद्रोहियों का समर्थन प्राप्त करने के लिए बलबन के समय के उच्च तुर्क पदाधिकारियों को अपने पदों पर रहने दिया। उसने ख्वाजा खातिर को वजीर पद पर, मलिक-उल-उमरा फखरुद्दीन को दिल्ली के कोतवाल के पद पर और मलिक छज्जू को कड़ा-मानिकपुर के हाकिम के पद पर रहने दिया। इस प्रकार से जनता की यह भावना 'तुर्कों के सिंहासन पर खिलजी कैसे बैठ सकते हैं' समाप्त हो गई।

राज्यारोहण के समय सुल्तान की अवस्था 70 वर्ष की थी। उसके हृदय में घृणा के स्थान पर दयालुता एवं विनम्रता का अधिक स्थान था। वह युद्ध और व्यर्थ रक्तपात से घृणा करता

था। उसमें न वह शक्ति और न वह तत्परता थी जो समय को देखते हुए एक शासक में होनी चाहिए थी। इसी कारण उसको राजनीतिक लोकप्रियता न प्राप्त हो सकी।

जलालुद्दीन ख़िलजी की गृह-नीति

जलालुद्दीन खिलजी की गृहनीति से सम्बन्धित प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखित हैं-

(1) मलिक छज्जू का विद्रोह- बलबन के भतीजे छज्जू ने जो कड़ा-मानिकपुर का सूबेदार था, 1292 में विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया और सुल्तान की उपाधि धारण की तथा अपने नाम का 'खुतबा' पढ़वाया। अवध का सूबेदार हातिम खाँ भी उससे जा मिला। उनकी सम्मिलित सेनाओं ने दिल्ली की ओर वढ़ना आरम्भ कर दिया। फिरोज ने अपने पुत्र अर्कली खाँ के नेतृत्व में अपनी सेना भेजी जिसने बदायूँ के निकट मलिक छज्जू को परास्त किया। जव छज्जू वन्दी बनाकर सुल्तान के सम्मुख उपस्थित किया गया तो उसने उसको दण्ड देने के स्थान पर क्षमा कर दिया और उनका एक अतिथि की भाँति स्वागत किया तथा मदिरापान कराया। जब फिरोज की इस उदारता का शयनागाराध्यक्ष अहमद चप ने विरोध किया तो उसने उत्तर दिया कि यदि मुसलमानों का रक्त बहाये बिना सिंहासन पर अधिकार नहीं रखा जा सकता तो वह ऐसे सिंहासन को ही त्याग देगा। मलिक छज्जू को मुल्तान भेज दिया गया और अलाउद्दीन को कड़ामानिकपुर का सूबेदार नियुक्त किया गया।

> **जलालुद्दीन की गृहनीति**
> 1. मलिक छज्जू का विद्रोह
> 2. ठगों तथा डाकुओं के साथ उदारता
> 3. सुल्तान के प्रति षड्यन्त्र
> 4. सीदी मौला की हत्या

(2) ठगों तथा डाकुओं के साथ उदारता- राजधानी के आस-पास का क्षेत्र उस समय ठगों तथा डाकुओं का अड्डा बना हुआ था। सुल्तान ने उनके विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की। परन्तु जव उन्हें वन्दी बनाकर सुल्तान के सम्मुख उपस्थित किया गया तो उन्हें भी सुल्तान ने उपदेश देकर मुक्त कर दिया। सुल्तान की ऐसी उदारता से ठगों तथा डाकुओं को वहुत प्रोत्साहन मिला।

(3) सुल्तान के प्रति षड्यन्त्र- फिरोज की उदारता के कारण अमीरों के हृदय से राजदण्ड का भय जाता रहा। वे खुलेआम सुल्तान के लिए अपमानपूर्ण शब्दों का प्रयोग कर और उसको पदच्युत करने की योजनाएँ बनाते। एक बार एक समारोह में एक मदिरोन्मत्त सरदार ने कहा कि वह कद्दू की तरह सुल्तान के टुकड़े-टुकड़े कर देगा और मलिक ताजुद्दीन कूची को गद्दी पर बिठायेगा। जब यह विद्रोहपूर्ण बात सुल्तान तक पहुँची तो उसने अमीरों को बुलाया और क्रोध में एक तलवार दरबार में फेंक दी और कहा जो अमीर चाहे उसके टुकड़े-टुकड़े कर दे। इससे अमीर बहुत लज्जित हुए। मलिक नुसरत ने सुल्तान के क्रोध को शान्त कराकर अमीरों को क्षमा करा दिया।

(4) सीदी मौला की हत्या- जलालुद्दीन ने अपने काल में केवल एक बार क्रूर कर्म किया। वह था सीदी मौला की हत्या कराना। उन दिनों सीदी मौला की प्रतिभा दिल्ली में तीव्र गति से फैल रही थी और सुल्तान का ज्येष्ठ पुत्र भी मौला का शिष्य बन गया था। सीदी मौला से अमीर और सरदार बहुत प्रभावित थे। अतः काजी जलाल काशानी की अध्यक्षता में सुल्तान को मारकर सीदी मौला को गद्दी पर बिठाने का षड्यन्त्र रचा गया। किन्तु सुल्तान

को इस षड्यन्त्र का पता लग गया और सभी षड्यन्त्रकारी बन्दी बना लिये गये। मौला सुल्तान के सम्मुख उपस्थित किया गया। सीदी मौला से वाद- विवाद के मध्य सुल्तान अपने धैर्य को खो बैठा और क्रोध में कहा, 'ओ दरवेशो, क्या तुममें से कोई इस मौला से प्रतिरोध नहीं ले सकता ?'' यह सुनते ही एक धर्मान्ध मुसलमान ने मौला पर छुरे से कई वार किये और उसे बुरी तरह घायल कर दिया। अन्त में उसके शरीर को अर्कली खाँ के आदेशानुसार हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा दिया गया। एक समकालीन इतिहासकार लिखता है, 'मौला की मृत्यु के दिन एक भयंकर तूफान आया तथा इसके बाद अनावृष्टि के कारण देश में भीषण दुर्भिक्ष पड़ गया। दुर्भिक्ष के परिणामस्वरूप अन्न का भाव एक 'जीतल' प्रति सेर हो गया और बड़ी संख्या में लोगों ने भूख से मुक्ति पाने के लिए यमुना में डूबकर प्राण त्याग दिये।''

जलालुद्दीन की बाह्य- नीति

जलालुद्दीन की वैदेशिक नीति उसकी गृह- नीति से कहीं अधिक भीरु थी। उसके शासन- काल की कुछ प्रसिद्ध घटनाएँ निम्नलिखित थीं-

(1) रणथम्भौर पर आक्रमण- राज्यारोहण के वर्ष ही सुल्तान ने राजपूतों के रणथम्भौर दुर्ग पर आक्रमण किया। किन्तु राजपूतों की वीरता और दृढ़ता के सामने सुल्तान को अपनी सेना को दुर्ग का घेरा उठाने की आज्ञा देनी पड़ी और वह दिल्ली लौट गया। इस आक्रमण की असफलता पर यह कहकर अपने को सान्त्वना दी कि वह 'इस दुर्ग को किसी मुसलमान के एक बाल के बराबर भी मूल्यवान नहीं समझता।'

(2) मन्दावर की विजय- जलालुद्दीन ने दूसरा आक्रमण मन्दावर पर किया जो पहले दिल्ली के सुल्तान के अधिकार में रह चुका था, किन्तु कालान्तर में राजपूतों ने उस पर पुनः अधिकार कर लिया था। इस आक्रमण द्वारा 1292 में मन्दावर पर सुल्तान का पुनः अधिकार स्थापित हो गया।

जलालुद्दीन की बाह्य- नीति
1. रणथम्भौर पर आक्रमण
2. मन्दावर की विजय
3. मालवा की विजय
4. देवगिरि पर आक्रमण
5. मंगोल आक्रमण

(3) मालवा की विजय- 1292 में सुल्तान के आदेशानुसार उसके भतीजे तथा दामाद अलाउद्दीन ने मालवा पर आक्रमण किया और उसने सरलतापूर्वक भिलसा का किला जीत लिया। वहाँ पर उसे अपार सम्पत्ति लूट में प्राप्त हुई। मालवा विजित कर वह दिल्ली लौट आया। अतुल सम्पत्ति को देखकर सुल्तान बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कड़ा के अतिरिक्त अवध की सूबेदारी अलाउद्दीन को प्रदान की और उसे 'आरिज- ए- मुमालिक' के पद पर आसीन किया।

(4) देवगिरि पर आक्रमण- मालवा पर आक्रमण करने के समय अलाउद्दीन ने यादव- वंशी राजाओं की राजधानी देवगिरि की अतुल सम्पत्ति के विषय में कहानियाँ सुन रखी थीं। अतः 1294 में उसने देवगिरि के राजा रामचन्द्रदेव पर आक्रमण किया और उसे परास्त किया। देवगिरि से उसे अतुल सम्पत्ति लूट में प्राप्त हुई जिसमें सहस्रों पौंड सोना- चाँदी, मोती, रत्न तथा एक सहस्र रेशमी कपड़ों के थान सम्मिलित थे।

(5) मंगोल आक्रमण- 1292 में हलाकू के एक पौत्र अब्दुल्ला ने डेढ़ लाख सैनिकों की विशाल सेना के साथ भारत पर आक्रमण किया और वह सुनाम तक बढ़ आया। जलालुद्दीन की सेनाओं ने उसके विरुद्ध अभियान किया और युद्ध में मंगोलों को पराजित किया। दोनों पक्षों में संधि हो जाने पर अब्दुल्ला स्वदेश लौट गया। बहुत से मंगोल भारत में ठहर गये और उन्होंने इस्लाम-धर्म अंगीकार कर लिया। चंगेज खाँ के एक पौत्र उलुग खाँ ने जलालुद्दीन के यहाँ नौकरी कर ली। वह भारत में ही रहने लगा। सुल्तान ने उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। वह और उसके अनुयायी भारत के इतिहास में 'नये मुसलमान' के नाम से विख्यात हुए।

जलालुद्दीन का वध तथा अलाउद्दीन द्वारा राज-प्राप्ति- देवगिरि की विजय ने अलाउद्दीन को इतना अधिक महत्वाकांक्षी बना दिया कि वह सुल्तान-पद प्राप्त करने को इच्छुक हो गया। वह सुल्तान से मिलने नहीं आया और इस बीच उसने सुल्तान के वध का षड्यन्त्र रचा। उसने अनेक सरदारों को धन के बल से अपनी ओर मिला लिया। सबसे पहले उसने अपने भाई अल्मस बेग को एक कूटनीतिक पत्र लिखा। जब यह पत्र सुल्तान को पढ़कर सुनाया गया कि वह सुल्तान को लूट की सारी सम्पत्ति भेंट करने के लिए उससे मिलना चाहता है तो उसमें अलाउद्दीन के प्रति वात्सल्य तथा ममता का संचार हुआ और उसने कड़ा की ओर प्रस्थान करने का निश्चय किया। उसके शुभ-चिंतकों में से अहमद चप ने समझाते हुए कहा, 'प्रचुर सम्पत्ति जो भी प्राप्त कर लेता है वह इतना उन्मत्त हो जाता है कि अपने हाथों और पैरों पर भी भेद नहीं कर पाता।' परन्तु सुल्तान ने इस संकेत की ओर ध्यान नहीं दिया। अलाउद्दीन ने अपनी सेना नदी के दूसरे किनारे पर तैयार रखी। उसने सुल्तान के स्वागतार्थ अपने भाई उलुग खाँ को भेजा जिसके चक्कर में सुल्तान आ गया और यह निश्चय हुआ कि अलाउद्दीन और सुल्तान की भेंट गंगा के तट पर होगी। सुल्तान अलाउद्दीन से मिलने के लिए नाव में बैठकर आया। सुल्तान इस समय निःशस्त्र और अरक्षित अवस्था में था। ज्योंही सुल्तान बड़े प्यार से अलाउद्दीन को सीने से लगाने लगा, छली भतीजे ने सलीम नामक अपने एक अनुयायी को आक्रमण करने का संकेत किया, उसने सुल्तान पर दो घातक प्रहार किये। सुल्तान चिल्लाया- ''दुष्ट अलाउद्दीन ! तूने यह क्या किया ?''उसी समय एक दूसरे अनुयायी ने सुल्तान का सिर धड़ से अलग कर दिया। सुल्तान का दल मौत के घाट उतार दिया गया। सुल्तान का सिर कड़ा, मानिकपुर तथा अवध के सूबों में घुमाया गया। **लेनपूल** के शब्दों में, ''यह इतिहास की नीचतम हत्या है।''

जलालुद्दीन की हत्या के पश्चात् 19 जुलाई, 1296 को अलाउद्दीन ने अपने को सुल्तान घोषित किया। अमीर सरदार भी अलाउद्दीन के इस नीचतम कार्य को भूल गए और नवीन सुल्तान के समर्थक बन गए। अलाउद्दीन के इस निकृष्ट कार्य के सम्बन्ध में इतिहासकार **बर्नी** सरोष लिखता है, 'यद्यपि अलाउद्दीन ने कई वर्ष तक सफल राज्य किया और सब चीजें उसकी इच्छा के अनुसार होती रहीं यद्यपि उसकी बीबियाँ और बच्चे थे और उसके पास प्रचुर धन दौलत थी, परन्तु वह अपने बुजुर्ग के खून के बदले से बच न सका। भाग्य ने

उसके मार्ग में एक विश्वासघाती बिठा दिया और उसने अलाउद्दीन और उसके परिवार का ऐसा सत्यानाश किया जिसकी मिसाल नहीं मिलती।''

(ब) अलाउद्दीन खिलजी
(1296-1316)

प्रारम्भिक जीवन- अलाउद्दीन, जलालुद्दीन का भतीजा तथा दामाद था। इसके पिता का नाम शिहाबुद्दीन मसऊद खिलजी था जो बलबन की सेना में कार्य कर चुका था। अलाऊद्दीन अपने पिता का सबसे बड़ा पुत्र था। इसका जन्म लगभग 1266-67 में हुआ था। यद्यपि बचपन में उसकी नियमित रूप से शिक्षा-दीक्षा नहीं हो पायी थी लेकिन उसने घुड़सवारी, खेलकूद तथा ग्णविद्या की अच्छी शिक्षा प्राप्त कर ली थी। वह बहुत साहसी तथा महत्वाकांक्षी था। जलालुद्दीन की भी उस पर विशेष कृपा थी। उसके (जलालुद्दीन) सिंहासनारोहण के समय अलाऊद्दीन को 'अमीरे-तुजक' का पद मिला था और मलिक छज्जू के विद्रोह के बाद उसे कड़ा-मानिकपुर का सूबेदार बना दिया गया था। कुछ महत्वाकांक्षी खिलजी जवान अलाऊद्दीन को अवसर के अनुकूल नेता मानते थे और उसे जलालुद्दीन के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए भड़काया करते थे, लेकिन अलाउद्दीन अवसर की प्रतीक्षा में था। 1292 में उसने मालवा पर आक्रमण किया और भिलसा को जीत लिया। इससे प्रसन्न होकर जलालुद्दीन ने अवध का सूबा भी उसके सुपुर्द कर दिया। 1294 में उसने देवगिरि के राजा रामचन्द्रदेव पर आक्रमण कर दिया। वहाँ के शासक को अलाउद्दीन के आने की कोई सूचना नहीं थी। उसकी सेना का अधिकांश भाग उसका पुत्र शंकरदेव अपने साथ तीर्थयात्रा के लिए ले गया था। इसलिए घवड़ाकर वह आक्रमणकारी से सन्धि करने को तैयार हो गया। तब तक उसका पुत्र शंकरदेव तीर्थयात्रा से लौटकर आ गया। उसने अपने पिता की राय के विरुद्ध अलाउद्दीन की सेना पर आक्रमण कर दिया, किन्तु उसकी पराजय हुई। रामचन्द्रदेव को बड़ी कठोर शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं।

इस विजय से अलाउद्दीन की महत्वाकांक्षा में वृद्धि हो गयी और वह दिल्ली की गद्दी प्राप्त करने की आकांक्षा करने लगा। उसके अनुयायी इस सम्बन्ध में उसे प्रेरित कर ही रहे थे। अतः जैसा कि हम पहले लिख आये हैं, धोखे से उसने 19 जुलाई, 1296 को जलालुद्दीन का वध करवा दिया और स्वयं राजगद्दी प्राप्त कर ली।

नवम्बर, 1296 में अलाउद्दीन दिल्ली में दाखिल हुआ और पूरी शान-शौकत के साथ राजगद्दी पर बैठा। वह और उसका परिवार लाल महल में रहने लगा। पुराने अधिकारियों से सख्ती बढ़ती जाने लगी, और खास तौर पर वे लोग सुलतान के गुस्से के शिकार हुए जिन्होंने पुराने सुलतान की हत्या करने में उसकी मदद की थी। ऐसे सब लोग गिरफ्तार कर लिये गए। ''कुछ लोगों की आँखें फोड़ दी गईं और कुछ मार डाले गए। उन्हें अलाउद्दीन से जो धन-दौलत, माल-जायदाद मिली थी, सब छीन ली गई। उनके बच्चो को मोहताज बना दिया गया, और उनके साथियों को ऐसे अमीरों की निगरानी में रखा गया जो नए सुलतान के स्वामि-भक्त सेवक थे।'' फिरोज के सिर्फ उन तीन अफसरों को बख्शा गया जिन्होंने आखिरी दम तक फिरोज का साथ दिया था। ''केवल वे ही आबाद रह पाए, बाकी सब जलाली सरदार नेस्तनाबूद कर दिए गए।'' अवसरवादियों के लिए यह एक सबक था।

अलाउद्दीन की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ तथा उनका निराकरण- अलाउद्दीन ने अपने चाचा व श्वसुर की हत्या कर दिल्ली का राजसिंहासन प्राप्त किया था। उसने सोचा था कि सिंहासन फूलों की शय्या होगी, किन्तु कुछ काल के लिए तो वास्तव में काँटों की शय्या बन गयी। चारों ओर से उसे अनेक कठिनाइयों ने घेर लिया। अलाउद्दीन के स्थान पर यदि अन्य कोई शासक होता तो सम्भवतः वह उस समय की परिस्थितियों में अपने आपको सफल रखने में समर्थ नहीं हो पाता। सिंहासन पर बैठते ही अलाउद्दीन को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, वे निम्नलिखित थीं-

(1) बहुत से जलाली अमीर स्वामी जलालुद्दीन की हत्या नहीं भूले थे। जलालुद्दीन की विधवा मलिका-ए-जहान ने जिसे इतिहासकार **बर्नी** ने 'बेवकूफों में सबसे बेवकूफ' बतलाया है, अपने द्वितीय पुत्र कद्र खाँ को रुकनुद्दीन इब्राहीम के नाम से सिंहासन पर बिठाकर सुल्तान घोषित कर दिया और ज्येष्ठ पुत्र अर्कली खाँ को जो मुल्तान का सूबेदार था, दिल्ली आने के लिए सन्देश भेजा। किन्तु उसने आने में असमर्थता प्रकट की, क्योंकि वह जानता था कि अमीर विरोधी पक्ष के समर्थक हो गये हैं और पुनः सिंहासन पर अधिकार प्राप्त करना असम्भव है। जब अलाउद्दीन अपनी विशाल सेना लेकर दिल्ली के निकट पहुँचा तो इब्राहीम उसका सामना करने के लिए शहर के बाहर आया, किन्तु आधी रात के करीब उसके अधिकतर सैनिक अलाउद्दीन से जा मिले। अतः बिना युद्ध किए ही अलाउद्दीन को विजय प्राप्त हुई और इब्राहीम अपनी माता और कुछ अनुयायियों के साथ मुल्तान चला गया। दिल्ली पर आधिपत्य स्थापित करने के पश्चात् अलाउद्दीन ने मुल्तान पर आक्रमण किया। अर्कली खाँ, इब्राहीम, अहमद चप तथा जलालुद्दीन के दामाद उलुग खाँ को अन्धा बना दिया गया और राजमाता को कारागार में डाल दिया गया। जलालुद्दीन के अनुयायियों को कठोर यातनाएँ दी गईं। उनके पुत्रों एवं स्त्रियों की सम्पत्ति का अपहरण करके उन्हें भिखारी बना दिया गया। **बर्नी** के शब्दों में, 'इसके बाद अलाउद्दीन की स्थिति बहुत दृढ़ हो गई। उसके नाम का खुतबा पढ़ा जाने लगा और सिक्के जारी होने लगे।''

(2) अलाउद्दीन को 'नए मुसलमानों' के विद्रोह का सामना करना पड़ा। जब गुजरात की लूट में प्राप्त सम्पत्ति का उचित बँटवारा न करके सैनिकों को असन्तुष्ट कर दिया गया तो नए मुसलमानों ने विद्रोह कर दिया और नसरत खाँ के भाई अमीर हाजिब का वध कर दिया। उन्होंने अलाउद्दीन की हत्या करने का भी प्रयास किया। इस पर अलाउद्दीन ने उनका कठोरता से दमन किया। अपने भाई के वध का बदला लेने के लिए नसरत खाँ ने भी ऐसी नृशंसता का प्रदर्शन किया कि दिल्ली निवासियों का हृदय दहल गया। इस सम्बन्ध में समकालीन इतिहासकार **बर्नी** लिखता है, 'उसके भाई का वध किया गया था और इसके प्रतिशोध के लिए उसने हजारों स्त्रियों का सतीत्व लूटने तथा उनके साथ घोर अपमानपूर्ण व्यवहार करने की आज्ञा दे दी। तत्पश्चात् उसने उनको दुराचारियों के हाथ वेश्याओं के समान उपयोग करने के लिए सौंप दिया। बच्चों को उसने उनकी माताओं के सिरों के ऊपर टुकड़े-टुकड़े करवाये।

इस प्रकार के अत्याचार किसी भी धर्म या मत में नहीं किये जाते। उसके इस और ऐसे ही कार्यों से दिल्ली के लोग हैरानी और परेशानी से भर गए और हर एक की छाती काँप उठी।''

(3) अलाउद्दीन मंगोलों से भी बहुत परेशान रहा जो कि 1296 से 1305 तक लगातार भारत पर आक्रमण करते रहे। उसके शासन-काल के दूसरे वर्ष (1298) में ही ट्रांस-अक्सिनिया के शासक अमीर दाऊद ने एक लाख मंगोलों के साथ पंजाब तथा सिन्ध पर आक्रमण किया, किन्तु अलाउद्दीन के सेनापति उलुग खाँ ने उन्हें मार भगाया। अगले वर्ष पुनः मंगोलों ने साल्दी की अध्यक्षता में आक्रमण किया। जफर खाँ ने दृढ़ता से उनका सामना किया और साल्दी सहित दो सहस्र मंगोलों को बन्दी बना लिया। उन्हें दिल्ली लाकर कठोर यातनाएँ दी गयीं। 1299 में मंगोलों ने कुतुलुग ख्वाजा के नेतृत्व में पुनः भीषण आक्रमण किया। इस भीषण आक्रमण का सामना करने के लिए सुल्तान ने परामर्श लेने के लिए युद्धसमिति बुलाई। जब उसे सुलह करने की सम्मति दी गई तो उसने दुःख के साथ कहा, 'अगर मैं तुम्हारी सलाह मान लूँ तो अपना चेहरा कैसे दिखाऊँगा, अपने जनानखाने में क्या मुँह लेकर जाऊँगा, लोग मेरी क्या इज्जत करेंगे और अपने उपद्रवी प्रजाजनों को दबाने की मुझमें शक्ति कहाँ से आयेगी ? नहीं, कल मैं दिल्ली के मैदान में टक्कर लूँगा।' सुबह से ही सुल्तान ने 12,000 सैनिकों का दल लेकर 2,00, 000 मंगोलों की सेना का सामना किया। भीषण संग्राम हुआ, जिसमें जफर खाँ मारा गया, किन्तु विजय सुल्तान की हुई। 1303 में मंगोलों का चौथा आक्रमण नेता तार्गी के नेतृत्व में उस समय हुआ जब अलाउद्दीन चित्तौड़ का घेरा डाले हुए था। आक्रमणकारी इतनी तीव्र गति से आये कि प्रान्तीय सूबेदार अपनी सेनाएँ लेकर दिल्ली न पहुँच सके और सुल्तान स्वयं सीरी के दुर्ग में घिर गया। तीन महीने संघर्ष के बाद मंगोल लौट गये, क्योंकि उन्हें नियमपूर्वक घेरा डालकर नगरों को अपने अधिकार में करने की कला का ज्ञान न था। अलाउद्दीन ने सीमांत प्रदेशों की रक्षा के लिए पंजाब, मुल्तान तथा सिन्ध में दुर्गों का निर्माण कराया और उनकी रक्षा हेतु शक्तिशाली सेनायें रखीं। इसके बाद मंगोलों ने अलाउद्दीन के राज्य में आक्रमण करने का साहस नहीं किया।

(4) अलाउद्दीन को अनेक विद्रोहों का भी सामना करना पड़ा। उसके भतीजे अकत खाँ ने सिंहासन-प्राप्ति के लिए अलाउद्दीन की हत्या करने का प्रयास किया। लेकिन वह असफल हुआ और उसका तथा उसके साथियों का वध कर दिया गया। बाद में दो भानजों-अमीर उमर खाँ और मंगू खाँ ने बदायूँ तथा अवध में विद्रोह किये, परन्तु उन्हें पराजित कर बंदी बना लिया गया। इसके बाद हाजी मौला ने विद्रोह कर अपने एक उम्मीदवार को दिल्ली के सिंहासन पर बिठा दिया, किन्तु मलिक हमीदुद्दीन ने विद्रोहियों को परास्त कर मार डाला।

उपरोक्त पंक्तियों में जिन चार विद्रोहों का उल्लेख किया गया है, वे एक के बाद एक कुछ ही वर्षों के अन्दर हुए। अतः सुल्तान इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि शासन-व्यवस्था में कुछ मौलिक दोष विद्यमान हैं। गम्भीर चिंतन के पश्चात् उसने निश्चित किया कि विद्रोहों के चार कारण निम्नलिखित हैं-

(1) गुप्तचर विभाग का असंगठित होना।

(2) मद्यपान के कारण अनुशासन का भंग होना।

(3) अमीरों में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्धों का होना।

(4) हिन्दू लोगों का समृद्धिशाली होना।

स्थायी शांति के उपाय-अलाउद्दीन ने चारों दोषों के निराकरण के लिए चार महत्वपूर्ण अध्यादेश (Ordinance) जारी किये जिनके अनुसार-

(1) सुदृढ़ गुप्तचर विभाग का संगठन-सुदृढ़ गुप्तचर विभाग का संगठन किया गया। उसके द्वारा सुल्तान को अमीरों और पदाधिकारियों की प्रत्येक बात का पता रहने लगा, जिसके कारण वे बहुत आतंकित हो गये और उनकी विद्रोही कार्यवाहियाँ समाप्त हो गयीं।

(2) मद्यपान का निषेध-एक अध्यादेश द्वारा मद्यपान बन्द करा दिया गया। सुल्तान ने स्वयं शराब पीना छोड़ दिया तथा शराब पीने के चीनी और काँच के सभी बर्तन तोड़कर उनका ढेर बदायूँ दरवाजे से बाहर लगा दिया गया। शराब से भरे मर्तबान और सुराहियाँ तोड़ दी गयीं जिससे मार्ग में ऐसा कीचड़ हो गया जैसा बरसात के मौसम में होता था। कठोर दण्ड-व्यवस्था के बावजूद भी जनता ने शराब का पीना न छोड़ा। अतः सुल्तान को अपने घरों में ही शराब पीने की आज्ञा देनी पड़ी।

(3) अमीरों की गोष्ठियों का निषेध-एक अन्य अध्यादेश द्वारा सुल्तान ने अमीर-उमरावों का आपस में मिलना और दावतें देना मना कर दिया। ये राजा की आज्ञा के बिना किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते थे। यह नियम इतनी सख्ती के साथ लागू किया गया कि बड़े लोगों के घर में बाहर के लोगों का जाना बन्द हो गया। यहाँ तक कि उनका मिलना, बैठना और खाना-पीना भी बिल्कुल बन्द हो गया। जासूसों के डर के मारे सरदार लोग अपना मुँह बन्द रखते थे।

(4) हिन्दुओं की सम्पत्ति का अपहरण-हिन्दू प्रजा को भूखी-नंगी रखने के लिए उसकी सम्पत्ति का अपहरण कर लिया गया। हिन्दुओं को घोड़े पर चढ़ना, हथियार रखनां, अच्छे वस्त्र पहनना तथा किसी प्रकार का उत्सव मनाना रोक दिया गया। हिन्दू-घरों में सोने-चाँदी का मिलना तो दूर की बात रही, सुपारी तक का मिलना दुर्लभ हो गया। हिन्दू-कर्मचारियों की स्त्रियाँ मुसलमान-परिवारों में नौकरियाँ करने लगीं। दोआब के हिन्दुओं से 50 प्रतिशत भूमि-कर वसूल किया गया। इसके अतिरिक्त उन्हें अपनी भैंस, बकरी, भेंड़ों आदि पर भी कर देना पड़ता था। **सर वूल्जले हेग** के शब्दों में, ''सम्पूर्ण राज्य में हिन्दू दुःख और दरिद्रता में डूब गये।'' इस सम्बन्ध में एक समकालीन इतिहासकार भी लिखता है, ''लोगों से जबर्दस्ती हर बहाने से रुपया वसूल किया गया और परिणाम यह हुआ कि मलिक और अमीरों, अफसरों और मुल्तानियों तथा महाजनों के अलावा सब लोग गरीब हो गये। प्रजा जीवन-यापन करने में इतनी व्यस्त रहने लगी कि किसी ने विद्रोह का नाम तक न लिया।''

अलाउद्दीन की महत्वाकांक्षाएँ

उपरोक्त विवरण से यह प्रकट हो जाता है कि सुल्तान ने अपने शासन के प्रारम्भिक तीन वर्षों में आने वाली समस्त कठिनाइयों का निराकरण बड़ी सफलतापूर्वक किया। इसके बाद सुल्तान की सम्पत्ति और खुशहाली बढ़ती गई। इस सम्बन्ध में इतिहासकार बर्नी का कथन है कि, "अलाउद्दीन को अपने शासन-काल के तीसरे वर्ष में विलासिता, खाना-पीना और तमाशा देखने के अलावा और कोई काम न था। उसकी सफलताओं का ताँता लग गया। सब तरफ से जीत की खबरें आने लगीं, हर साल उसके दो या तीन बेटे पैदा होने लगे, राज्य-कार्य सन्तोषजनक था, खजाना भरने लगा; मोतियों और जवाहरातों से भरे बक्स प्रति दिन उसके सामने प्रदर्शित किये जाने लगे। उसके हाथीखाने में असंख्य हाथी और अस्तबल में सत्तर हजार घोड़े थे। बड़ी-बड़ी महत्वाकांक्षायें और इच्छायें सुल्तान के मन में पैदा होने लगीं, जो

कि उसकी अपनी सामर्थ्य, उसके जैसे हजारों राजाओं के सामर्थ्य से परे थी। वह ऐसे हवाई किले बनाने लगा जैसे कभी किसी राजा ने न बनाये थे। वह बदमिजाज, हठी और कठोर दिल का था किन्तु उसकी किस्मत बुलन्द थी और उसकी प्रत्येक योजना सफल होती थी जिसके कारण वह और भी ज्यादा जिद्दी और घमंडी बन गया था और सिकन्दर की तरह विश्व विजय की कामना का स्वप्न देखने लगा था।" अलाउद्दीन ने अपने जीवन के दो उद्देश्य बनाये, जो इस प्रकार थे- (1) वह स्वयं एक नया धर्म चलाना चाहता था तथा (2) सिकन्दर महान की भाँति विश्व-विजय की इच्छा रखता था। प्रथम उद्देश्य के सम्बन्ध में उसका कहना था कि सर्वशक्ति-मान ईश्वर ने पवित्र नबी को चार मित्र दिये, जिनकी योग्यता और सहायता के आधार पर नियम और धर्म की स्थापना हुई तथा इस नियम और धर्म की स्थापना के कारण नबी का नाम कयामत के दिन तक कायम रहेगा। भगवान ने मुझे भी चार मित्र दिये हैं, उलुग खाँ, नुसरत खाँ, जफर खाँ और अल्प खाँ जिन्होंने मेरे ऐश्वर्य के प्रभाव से राजाओं की सी शक्ति एवं गौरव प्राप्त किया है। यदि मैं चाहूँ तो इन चार मित्रों की सहायता से मैं भी एक नये धर्म या मत की नींव डाल सकता हूँ, और मेरी तलवार तथा मेरे मित्रों की तरवारें सबसे यह धर्म ग्रहण करवा लेंगी।" द्वितीय उद्देश्य के विषय में उसका कहना था कि "मेरे पास अपरमित धन, असंख्य हाथी तथा सैनिक हैं। मैं चाहता हूँ कि दिल्ली का शासन-भार अपने प्रतिनिधि शासक को सौंप दूँ और तब सिकन्दर के समान मैं स्वयं विजयें प्राप्त करने के लिये संसार में घूमूँगा और समस्त मनुष्य जाति को अपने अधीन करूँगा।"

अलाउद्दीन ने इतिहासकार बर्नी के चाचा काज़ी मलिक अलाउलमुल्क से इस सम्बन्ध में सलाह जाननी चाही। काजी ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि धर्म का प्रसार करना मानव का काम नहीं है। यह केवल ईश्वर की प्रेरणा से होता है। ये कार्य कुछ निश्चित व्यक्तियों द्वारा ही सम्पन्न किये जाते हैं जिनको ईश्वर केवल इस कार्य के लिये भेजता है। किसी राजा का कार्य धर्म चलाना नहीं है और न तब तक हो सकेगा जब तक संसार का अस्तित्व रहेगा। मेरा तो यह परामर्श है कि श्रीमान् कभी ऐसी बातों की चर्चा न करें। श्रीमान् जानते हैं कि चंगेज खाँ ने मुसलमान-नगरों में रक्त की नदियाँ बहाईं, किन्तु वह मुसलमानों में मुगल-धर्म स्थापित न कर सका अनेक मुगल मुसलमान बने हैं परन्तु कोई भी मुसलमान कभी मुगल नहीं बना।' विश्व-विजय के सम्बन्ध में काजी ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये- "दूसरी कल्पना महान शासकों जैसी है, क्योंकि समस्त विश्व को अपने अधीन बनाने का प्रयत्न करना राजाओं का नियम सा है। परन्तु यह सिकन्दर का समय नहीं है और अरस्तू जैसा वजीर कहाँ मिल सकता है · · · ·। आपके सामने दो महान कार्य हैं। पहला कार्य सम्पूर्ण हिन्दुस्तान को जिसमें रणथम्भौर, चित्तौड़, चन्देरी, मालवा, धार तथा उज्जैन, पूर्व में सरयू तक, सिवालिक से जालौर तक, मुलतान से दमरीला तक, पालम से लाहौर व दीपालपुर तक के प्रदेशों को अधीन बनाना ताकि इन स्थानों में कोई विद्रोही न रह जाय। दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है मंगोलों के लिये मुल्तान का मार्ग बन्द कर देना।" अन्त में उसने कहा कि "मैंने जिन कार्यों का समर्थन किया है, वे तब तक सम्पन्न नहीं किये जा सकते जब तक श्रीमान् अत्यधिक मात्रा में सुरापान करना न छोड़ दें और आमोद-प्रमोद से किनारा न कर लें। · · · · यदि आप मदिरा नहीं छोड़ सकते तो सन्ध्याकाल तक सुरापान न करें। इसके बाद बिना साथियों के अकेले में इसको ग्रहण करें।" काजी के इन विचारों का सुल्तान पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उसने उसको बहुत अधिक सम्पत्ति पारितोषिक के रूप में प्रदान की और अपनी उक्त दोनों योजनायें स्थगित कर दीं। केवल सिक्कों पर 'द्वितीय सिकन्दर' की उपाधि अंकित कराकर ही संतोष ग्रहण किया।

अलाउद्दीन का राजत्व सिद्धान्त

अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के उपरान्त अलाउद्दीन ने बलबन के राजत्व सम्बन्धी सिद्धान्त की पुनः स्थापना करने का संकल्प किया। उसने बलबन के राजवाद (Theory of king ship) को पूर्णतया अपनाया। वह राजा को पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था। उसका दृढ़ विश्वास था कि सुल्तान अन्य सभी मनुष्यों से अधिक बुद्धिमान एवं ऐश्वर्यवान होता है। इसीलिये उसकी इच्छा ही कानून होनी चाहिये। अतः उसने राजनीतिक कार्यों में उलमाओं तथा मौलवियों के हस्तक्षेप को समाप्त कर दिया। उसका मत था कि सरकार एक चीज है और कानून दूसरी, और जब तक उसे अपना आदेश सत्य दृष्टिगत होता है, उसके लिये कानून की सलाह लेना आवश्यक नहीं है।' एक दिन उसकी मुलाकात बयाना के काजी मुगीसुद्दीन से हुई और उसने उससे शासक के अधिकारों के विषय में उसकी सम्मति जाननी चाही। उसने काजी से पूछा 'जो सम्पत्ति मैंने देवगिरि में इतना रक्तपात करके उस समय प्राप्त की थी, जब मैं मलिक था, वह मेरी है या राज्य-कोष की? काजी ने उत्तर दिया "अगर मैं ईमानदारी के साथ आपके प्रश्न का उत्तर दूँ, तो आप मुझे मरवा डालेंगे, और अगर झूठ बोलूँ तो मैं नरक में जाऊँगा।" आखिर काजी ने साहस बटोर कर कह ही डाला कि "इस्लाम की फौजों द्वारा प्राप्त सम्पूर्ण सम्पत्ति राज्य-कोष को मिलनी चाहिये। यदि श्रीमान् ने इस सम्पत्ति को केवल अपने प्रयत्न से विधि-विहित ढंग से प्राप्त किया होता, तो इस पर आपका अधिकार होता।" सुल्तान ने क्रोधित होकर काजी से पूछा कि यह सम्पत्ति राज्य की कैसे हो सकती है क्या तुम्हें मेरी तलवार का डर नहीं है। काजी ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "मुझे आपकी तलवार का भय है, और मैं जानता हूँ कि मेरी पगड़ी मेरा कफन बन सकती है लेकिन श्रीमान् ने मुझ से कुरान-विहित विधि के विषय में प्रश्न किया है यदि मैं यह बात न बतलाता जो मैंने धर्म-ग्रन्थों में पढ़ी है और मेरे परामर्श की सत्यता जानने के लिये किसी अन्य विद्वान से यही बात पूछ बैठते और उसका उत्तर मेरे कथन के प्रतिकूल पाने से यह जानकर कि मैने श्रीमान् को प्रसन्न करने के लिये झूठा परामर्श दिया है, क्या आपका मुझमें विश्वास रह जाता? और क्या फिर कभी मुझसे कुरान-विहित विधि के विषय में परामर्श लेते?

इसके पश्चात् जब सुल्तान ने कठोर मुद्रा में काजी से शासक और उसकी सन्तान के सार्वजनिक कोष पर अधिकार के विषय में जानना चाहा तो काजी भय से सहम गया और बड़ी कठिनाई से साहस बटोर कर उत्तर दिया, "यदि श्रीमान् सर्वश्रेष्ठ खलीफाओं का अनुसरण करें और श्रेष्ठतम सिद्धान्तों का पालन करें तो श्रीमान् को स्वयं अपने लिये तथा अपने परिजनों के लिये वही धन-राशि ग्रहण करनी चाहिये जो आपने प्रत्येक योद्धा के लिये निश्चित की है अर्थात् 234 टंके। यदि आप मध्य मार्ग अपनाना चाहें और सोचें कि स्वयं को साधारण सैनिकों के साथ एक स्तर पर रखने से आपका अपमान होगा, तो आप अपने लिये तथा अपने परिवार के लिये उतना धन ग्रहण कर सकते हैं जितना आपने मलिक, किरान तथा अन्य प्रधान कर्मचारियों के लिये नियत किया है। यदि श्रीमान् राजनीतिज्ञों के मत का अनुसरण करते हों, तब आप कोष से इतना धन निकालेंगे जितना किसी अन्य बड़े आदमी को न मिलता हो, जिसमें आप किसी अन्य से अधिक व्यय कर सकें और अपने गौरव को नीचा न होने दें। मैंने श्रीमान् के सामने तीन मार्ग रखे हैं और जितने करोड़ सिक्के और बहुमूल्य वस्तुयें आप कोष से लेंगे और अपनी स्त्रियों को देंगे, उसके लिये आपको कयामत के दिन उत्तर देना पड़ेगा।" सुल्तान क्रोध से भर गया और काजी से कहा, "कई मामलों में तुमने मेरी

कार्यवाइयाँ गैर-कानूनी बताई है। अब देखो मैं किस तरह काम करता हूँ। जब सिपाही आदेश पर उपस्थित नहीं होते तो मैं उनकी तीन साल की तनख्वाह काट लेता हूँ। मैं शराब पीने वालों और बेचने वालों को गड्ढों में गिरवा देता हूँ। यदि कोई आदमी किसी दूसरे आदमी की स्त्री के साथ व्यभिचार करता है तो मैं उसे आगे ऐसा करने से बेकार कर देता हूँ और उस औरत को जान से मरवा देता हूँ। विद्रोहियों को चाहे वे अच्छे हों या बुरे, बूढ़े हों या जवान, मैं मौत के घाट उतरवा देता हूँ और उनके बीबी-बच्चों को भिखारी बना देता हूँ। मैं सूदखोर को हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ पहना कर कैद में बन्द कर देता हूँ। क्या यह सब गैर-कानूनी है? काजी उठ खड़ा हुआ और कमरे के दरवाजे पर जाकर उसने जमीन पर अपना सिर रख दिया और ऊँचे स्वर में पुकार कर कहा, "मुझ अयोग्य सेवक को कारागार में बन्द करवा दीजिये या मेरे दो टुकड़े करवा दीजिये, लेकिन आपकी यह सब कार्यवाइयाँ गैर कानूनी हैं, जिनका समर्थन पैगम्बर के कथन या विद्वानों के शब्दों में न मिलेगा।" सुल्तान ने कोई उत्तर न दिया और चुपचाप अपने जनानखाने में चला गया। काजी भी यह सोच कर कि कल उसे मृत्यु-दंड अवश्य मिलेगा अपने घर लौट आया। दूसरे दिन जब वह दरबार में पहुँचा तो सुल्तान ने उसके साथ सद्व्यवहार किया तथा उसे अपना लबादा और एक हजार टंका पुरस्कार में दिये। इसके बाद अत्यन्त कोमल स्वर में उसने काजी से अपने शासन-सम्बन्धी सिद्धान्त की व्याख्या इन शब्दों में की :

"हालांकि मैंने कानून नहीं पढ़ा है, पर मैं मुसलमान हूँ। विद्रोह रोकने के लिये, जिसमें हजारों लोग बरबाद हो जाते हैं, मैं ऐसे आदेश जारी करता हूँ, जिनसे मैं समझता हूँ राज्य और प्रजा दोनों को लाभ होगा। विद्रोहियों को आज्ञाकारी बनाने के लिये सख्ती काम में लाना जरूरी हो जाता है। मैं नहीं जानता कि यह कानूनी है या गैर कानूनी। जो मैं राज्य के लिये उचित समझता हूँ, वही करता हूँ और मुझे इस बात का ज्ञान नहीं है कि कयामत के आने वाले दिन मेरा क्या होगा? राज्य में हिन्दुओं की क्या स्थिति होनी चाहिये, इस सम्बन्ध में जब सुल्तान ने काजी की सलाह ली तो काजी ने उत्तर दिया, "शरा में हिन्दुओं को 'खिराज गुजार' (कर देने वाला) कहा गया है, और जब सरकारी अफसर उनसे चाँदी माँगे तो उन्हें विनम्रता के साथ सोना अदा करना चाहिये। अगर सरकारी अफसर उनके मुँह में धूल फेंकता है या थूकता है तो उन्हें अपना मुँह और अधिक खोल देना चाहिये। ऐसा कर वे सरकारी अफसर का आदर करते हैं। इस तरह की अदायगी और मुँह में धूल फेंकना गैर मुसलमानों (जिम्मी) के दमन के लिये जरूरी है। इस्लाम की शान बढ़ाना एक फर्ज है, और धर्म न मानना पाप है। हिन्दुओं को नीचा दिखाना एक धार्मिक कर्त्तव्य है। पैगम्बर ने हमें उनका वध करने, उन्हें लूटने तथा बन्दी बनाने का आदेश दिया है। महान इमाम अबूहनीफा जैसे अधिकारी ने जिसके धर्म का हम अनुसरण करते हैं, हिन्दुओं पर जजिया लगाने की अनुमति दी है।" अलाउद्दीन ने काजी के इन विचारों का समर्थन किया क्योंकि वह हिन्दू प्रजा के प्रति इसी प्रकार की नीति का अनुसरण करता आया था। अतः उसने काजी से कहा, "मुल्ला आप पढ़े-लिखे आदमी हैं लेकिन आपने दुनियाँ नहीं देखी। मैं अनपढ़ आदमी हूँ मगर मैंने बहुत कुछ देखा है। 'तो सुनो हिन्दू तब तक आज्ञाकारी और विनम्र न बनेंगे जब तक उन्हें बिल्कुल ग़रीब न बना दिया जाय। इसलिये मैंने आदेश दे रखा है कि उन्हें सिर्फ जीवनयापन के लिये अनाज और दूध-दही मिले ताकि वे किसी तरह की सम्पत्ति न रख सकें।"

अलाउद्दीन का राजत्व सिद्धान्त पूर्णतया निरंकुशता पर आधारित था जो उच्चतम पराकाष्ठा पर पहुँच गया था, जिसके कारण उसका शासन सैनिकवाद के नाम से विख्यात

हुआ। यही सैनिकवाद उसके पतन का कारण बना। उसने कभी अपने आदेश और कानून में विभेद नहीं किया। उसके अत्याचार इस सीमा तक पहुँच गये कि उसने विद्रोहियों तथा अन्य लोगों के पापों का प्रतिशोध उनकी निर्दोष स्त्रियों और बच्चों से लिया। उसका यह कथन, 'मैं नहीं जानता कि कानून की दृष्टि से क्या उचित है, क्या अनुचित'' उसकी निरंकुशता का सबसे बड़ा प्रमाण है। हिन्दुओं के प्रति उसने जो अत्याचार किये उसकी सराहना कोई इतिहासकार नहीं कर सकता, भले ही उस समय की परिस्थितियों ने उसे ऐसा करने के लिए बाध्य किया हो। उसके जीवन के अन्तिम दिनों में हमेशा की तरह उसकी निरंकुशता अस्थायी सिद्ध हुई और विधाता ने उसके विनाश के लिए शस्त्र खींच लिया। उसका और उसके परिवार का जिस प्रकार विनाश हुआ, उसकी मिसाल इतिहास में नहीं मिलती।

अलाउद्दीन की उत्तर भारत की विजय

दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाले मुस्लिम शासकों में अलाउद्दीन अत्यधिक महत्वाकांक्षी शासक था। वह सिकन्दर की भाँति विश्व-विजय की कामना रखता था, लेकिन काजी अलाउल-मुल्क की सलाह पर विश्व-विजय के पूर्व सम्पूर्ण भारत को विजित करने का संकल्प किया। इस उद्देश्य की पूर्ति सर्वप्रथम उसने उत्तरी भारत के स्वतंत्र राजपूत राज्यों को अपने अधीन करके की। उसने उत्तरी भारत के जिन राजपूत राज्यों को विजित किया, वे निम्नलिखित हैं-

उत्तर भारत की विजय

1. गुजरात-विजय
2. रणथम्भौर-विजय
3. चित्तौड़-विजय
4. मालवा-विजय
5. मारवाड़-विजय
6. जालौर-विजय

(1) गुजरात विजय- 1299 में अलाउद्दीन ने अपने दो सेनापतियों-उलुग खाँ तथा नसरत खाँ की अध्यक्षता में एक सेना गुजरात--विजय के लिए भेजी। उस समय वहाँ का राजा रायकर्ण सिंह था। आक्रमण के समय वह भयभीत होकर अपनी पुत्री देवलदेवी को लेकर राजधानी अह्निलवाड़ से भाग गया। उसकी रानी कमला देवी आक्रमणकारियों के हाथ लगी। उन्होंने समस्त गुजरात पर अधिकार कर लिया और अह्निलवाड़ तथा खम्भात को खूब लूटा। खम्भात में काफूर नामक एक हिन्दू दास नसरत खाँ को मिला जो आगे चलकर अलाउद्दीन के प्रधान मन्त्री के पद पर पहुँच गया। इस प्रकार गुजरात खिलजी साम्राज्य का प्रान्त बन गया।

(2) रणथम्भौर-विजय- रणथम्भौर के दुर्ग पर चौहानवंशीय राजा हम्मीरदेव का अधिकार था। उसने दिल्ली से भागे कुछ नए-मुसलमानों को अपने यहाँ शरण दी थी। अतः 1299 में अलाउद्दीन ने अपने प्रमुख सेनापतियों उलुग खाँ तथा नसरत खाँ को रणथम्भौर पर आक्रमण करने का आदेश दिया। उन्होंने झैन पर अधिकार करके रणथम्भौर को घेर लिया। इसी समय एक खाई का निरीक्षण करते हुए नसरत खाँ को दुर्ग की 'मगरीब' से छोड़ा गया एक पत्थर लगा और उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी। उलुग खाँ को राजपूतों के भीषण संग्राम के सम्मुख पीछे हटना पड़ा। अन्त में अलाउद्दीन को स्वयं रणथम्भौर के लिए एक सेना लेकर प्रस्थान करना पड़ा। एक वर्ष तक दुर्ग का घेरा डालने के बावजूद जब विजय की कोई आशा न रही तो अलाउद्दीन ने कपट से काम लिया। उसने हम्मीरदेव के प्रधान मन्त्री रानमल को अपनी ओर मिला लिया और तत्पश्चात् सैनिकों ने किले की दीवार पर चढ़कर उस पर अधिकार कर लिया। यह घटना जुलाई, 1301 की है। हम्मीरदेव, उसके

परिवार तथा बचे हुए स्वामिभक्त सैनिकों को तलवार के घाट उतार दिया गया। देशद्रोही रानमल का भी सुल्तान की आज्ञा से वध कर दिया गया। इसी प्रकार उसे अपने इस नीचतम कार्य का उचित दण्ड मिला। अलाउद्दीन विजयी होकर लौट गया।

(3) चित्तौड़-विजय- 1303 के प्रारम्भ में अलाउद्दीन ने मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ पर आक्रमण किया। कुछ इतिहासकारों का कथन है कि इस आक्रमण का मुख्य उद्देश्य राणा रतन सिंह की अनुपम सुन्दरी पद्मिनी को प्राप्त करना था। गौरीशंकर, हीराचन्द्र ओझा तथा डॉ० के० वी० लाल आदि आधुनिक इतिहासकारों ने इस कहानी को बाद की गढ़ी हुई मानकर अस्वीकार कर दिया है। वास्तव में चित्तौड़ पर आक्रमण करने की योजना अलाउद्दीन की पूर्व निश्चित भारत-विजय के अन्तर्गत स्थान रखती है। उसने दुर्ग का घेरा डाला जो लगभग पाँच महीने तक चलता रहा। राजपूतों ने बड़ी वीरता से मुसलमानों की विशाल सेना का सामना किया, किन्तु वे उनकी प्रगति को रोकने में असमर्थ रहे और अन्त में 26 अगस्त, 1303 को रतनसिंह को विवश होकर हथियार डालने पड़े। किले की सम्पूर्ण स्त्रियों ने रानी पद्मिनी के साथ दुर्ग के तहखाने में जौहर कर लिया। इसके बाद अलाउद्दीन ने चित्तौड़ में 30 हजार राजपूतों की हत्या कराई और अपने पुत्र खिज्र खाँ को वहाँ का शासक नियुक्त किया तथा चित्तौड़ का नाम खिज्राबाद रखा। लेकिन दस वर्ष के बाद चित्तौड़ पुनः स्वतन्त्र हो गया और अलाउद्दीन के हाथ से निकल गया। **अमीर खुसरो** ने जो चित्तौड़ के युद्ध में सुल्तान के साथ था, युद्ध का वर्णन इन शब्दों में किया हैं, 'चित्तौड़ का दुर्ग सोमवार 11 मुहर्रम 703 हिजरी (26 अगस्त, 1303) को हस्तगत किया गया। 30 सहस्र हिन्दुओं के वध का आदेश देने के उपरान्त सुल्तान ने चित्तौड़ का शासन अपने पुत्र खिज्र खाँ को सौंप दिया और इस स्थान का नाम खिज्राबाद रख दिया।''

(4) मालवा-विजय- 1305 में अलाउद्दीन ने 10, 000 सैनिकों के साथ आइनुल मुल्क को मालवा पर आक्रमण करने के लिए भेजा। उस समय मालवा का शासक राय महलकदेव था। उसका सेनापति उसी का भाई कोका प्रधान था। 40 सहस्र अश्वारोही तथा एक लाख पैदलों की विशाल सेना लेकर राय ने मुसलमानी सेना का सामना किया किन्तु पराजित होकर मारा गया और मालवा पर अलाउद्दीन का आधिपत्य स्थापित हो गया।

मालवा पर अधिकार स्थापित करने के पश्चात् आइनुल मुल्क ने माँडू, उज्जैन, धारा नगरी और चन्देरी को भी जीत लिया। इन समस्त विजयों से प्रसन्न होकर अलाउद्दीन ने आइनुल-मुल्क को मालवा और माँडू का सूबेदार नियुक्त कर दिया।

(5) मारवाड़-विजय- 1308 में अलाउद्दीन ने मारवाड़-विजय करने की योजना बनाई। शीघ्र ही मुसलमानों की विशाल सेना ने सिवाना के दुर्ग को घेर लिया। इस दुर्ग पर राजपूत शीतलदेव का अधिकार था। उसने दिल्ली की सेना का बड़ी वीरता से सामना किया जिसके कारण मुसलमानों को सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्त में सेना का संचालन स्वयं अलाउद्दीन ने किया और शीतलदेव को बाध्य होकर सन्धि करनी पड़ी। दुर्ग पर शीतलदेव का अधिकार रहने दिया गया, किन्तु उसके राज्य को छीन कर दिल्ली के अमीरों में बाँट दिया गया।

(6) जालौर-विजय- यद्यपि 1305 में जालौर के राजा कान्हदेव ने सुल्तान का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था, किन्तु कुछ समय के उपरांत उसने दिल्ली के सल्तनत के प्रति श्रद्धाभाव दिखलाना कम कर दिया। अतः 1311 में अलाउद्दीन ने उसके विरुद्ध एक

सेना नौकरानी गुलेबिहिश्त के नेतृत्व में भेजी। उसने जालौर को घेर लिया राजा आत्मसमर्पण
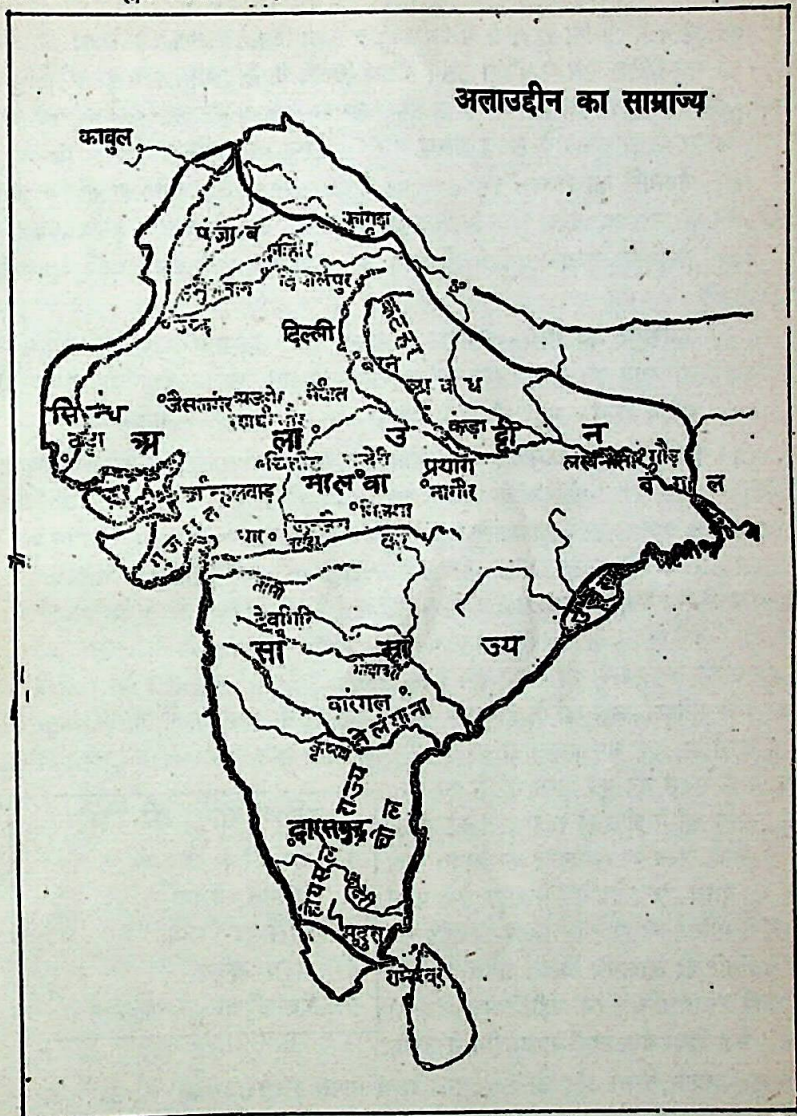
करने को था कि गुलेबिहिश्त की मृत्यु हो गयी। राजपूतों ने उसके पुत्र को मार डाला। किन्तु जब बाद में दिल्ली से और सेना कमालुद्दीन गुर्ग की अध्यक्षता में आ गयी तो उसने राजा को परास्त किया और उसका तथा उसके सम्बन्धियों का वध कर दिया। जालौर पर सुल्तान का अधिकार स्थापित हो गया।

अलाउद्दीन की उत्तरी भारत-विजय में जालौर की विजय अन्तिम विजय थी। काश्मीर, नेपाल, आसाम तथा उत्तरी-पश्चिमी पंजाब के कुछ भागों के अतिरिक्त समस्त उत्तरी भारत दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत आ गया।

अलाउद्दीन की दक्षिण-भारत की विजय

अलाउद्दीन मुसलमान सुल्तानों में प्रथम सुल्तान था जिसने दक्षिण की विजय की और भारत को राजनीतिक सूत्र में बाँधा। उसने दक्षिण विजय के लिए मलिक काफूर को नियुक्त किया जिसे नसरत खाँ गुजरात-विजय के समय खंभात से बन्दी बनाकर दिल्ली ले गया था। मलिक काफूर के आक्रमण के समय दक्षिण भारत में निम्न चार शक्तिशाली राज्य थे-

(i) **देवगिरि का राज्य-** इस राज्य पर यादव राजाओं का आधिपत्य स्थापित था। इसके अन्तर्गत महाराष्ट्र प्रदेश भी सम्मिलित था। इस समय यहाँ का शासक रामचन्द्रदेव था।

(ii) **तेलंगाना राज्य-** पूर्व में तेलंगाना का काकतीय राज्य था। इसकी राजधानी वारंगल थी।

(iii) **द्वारसमुद्र का राज्य-** देवगिरि के दक्षिण तथा तेलंगाना के दक्षिण पश्चिम में द्वारसमुद्र राज्य स्थित था। इस पर होयसलों का अधिकार था। इसकी राजधानी द्वारसमुद्र थी।

(iv) **पांड्य राज्य-** सुदूर दक्षिण में पांड्य राज्य था, जिसकी राजधानी मदुरा थी।

(1) देवगिरि पर आक्रमण- अलाउद्दीन ने 1294 में जलालुद्दीन के शासनकाल में देवगिरि पर आक्रमण करके वहाँ के शासक रामचन्द्रदेव को वार्षिक कर देने को बाध्य किया था। इधर कई वर्षों से उसने वार्षिक कर भेजना बन्द कर दिया था। अतः उसका दमन करने और कर वसूल करने के लिए 1306-7 में मलिक काफूर को एक विशाल सेना के साथ भेजा गया। उसको गुजरात के राजा कर्णदेव की पुत्री देवलदेवी को भी लाने का आदेश दिया गया। राजा कर्ण ने देवगिरि के राजा रामचन्द्रदेव के सबसे बड़े पुत्र शंकरदेव से अपनी पुत्री का विवाह करने का प्रबन्ध कर लिया था। जिस समय वह देवगिरि की ओर आ रही थी तो गुजरात के सूबेदार अल्प खाँ के हाथ पड़ गई जो देवगिरि के आक्रमण में मलिक काफूर की मदद करने जा रहा था। देवलदेवी को दिल्ली भेज दिया गया जहाँ बाद में उसका विवाह सुल्तान के सबसे बड़े पुत्र खिज्र खाँ से कर दिया गया। अल्प खाँ ने शीघ्र ही राजा कर्ण को परास्त करके उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। राजा कर्ण को बाध्य होकर देवगिरि में शरण लेनी पड़ी। इस बीच मलिक काफूर ने एचिलपुर पर अधिकार कर देवगिरि पर आक्रमण किया। रामचन्द्रदेव को बाध्य हो उससे सन्धि करनी पड़ी। रामचन्द्रदेव को दिल्ली भेज दिया गया जहाँ अलाउद्दीन ने उसके साथ सद्व्यवहार किया और उसको उसका राज्य वापस कर 'रायरायन' की उपाधि प्रदान की। इसके अतिरिक्त उसने नवसारी का जिला निजी जागीर के रूप में उपहारस्वरूप उसे भेंट किया।

दक्षिण भारत की विजय

1. देवगिरि पर आक्रमण
2. वारंगल-विजय
3. द्वारसमुद्र-विजय
4. मदुरा-विजय
5. देवगिरि पर पुनः आक्रमण

(2) वारंगल-विजय- 1303 में अलाउद्दीन ने तेलंगाना राज्य पर अधिकार करने का प्रयास किया था, किन्तु राजा प्रतापरुद्रदेव ने छज्जू को परास्त कर दिया था। अतः 1308 में इस कार्य को पूरा करने के लिये मलिक काफूर को भेजा गया। उसने तेलंगाना की राजधानी वारंगल पर आक्रमण किया और घेरा डालकर भीतर की रक्षक-सेना को बहुत भारी क्षति पहुँचायी। अन्त में बाध्य होकर राजा को आत्मसमर्पण करना पड़ा। उसने वार्षिक कर देना

स्वीकार किया और युद्ध की क्षतिपूर्ति के लिये अतुल धन, 300 हाथी तथा 700 घोड़े भेंट किये। 1310 में मलिक काफूर इस अतुल सम्पत्ति को एक सहस्र ऊँटों पर लाद कर देवगिरि, धार और झाइन होता हुआ दिल्ली पहुँचा।

(3) द्वारसमुद्र-विजय- वारंगल की विजय के कारण अलाउद्दीन को अपार धन प्राप्त हुआ। अतः और भी अधिक धनप्राप्ति के उद्देश्य से उसने 1310 में द्वारसमुद्र पर आक्रमण करने के लिए पुनः मलिक काफूर तथा ख्वाजा हाजी को एक विशाल सेना के साथ भेजा। मलिक काफूर देवगिरि होता हुआ जहाँ कि रामचन्द्रदेव का पुत्र शंकरदेव शासन कर रहा था, द्वारसमुद्र पहुँचा। द्वारसमुद्र पहुँचने की उसकी गति इतनी तीव्र थी कि राजा बल्लाल को उसके आने की सूचना भी न मिल पाई और वह घिर गया। उसने काफूर से शीघ्र ही संधि-याचना की और उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। नगर के मन्दिरों को ध्वस्त कर खूब लूटा गया। राजा ने इस्लाम धर्म को स्वीकार करने के स्थान पर क्षति के रूप में अतुल धनराशि भेंट किया।

(4) मदुरा-विजय- द्वारसमुद्र के विजय के बाद मलिक काफूर ने पॉड्य राज्य पर आधिपत्य करने के लिए सुदूर दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। इस समय पांड्य राज्य में राज-सिंहासन के लिए दोनों भाइयों-वीर पाण्ड्य और सुन्दर पाण्ड्य में संघर्ष चल रहा था। सुन्दर पाण्ड्य अपने भाई से परास्त होकर दिल्ली चला गया था और सुल्तान से अपना सिंहासन प्राप्त करने के लिए निवेदन किया था। जब मलिक काफूर राजधानी मदुरा पहुँचा तो वीर पाण्ड्य भाग गया। फलतः मलिक काफूर ने नगर को खूब लूटा और प्रमुख मंदिरों को ध्वस्त कर दिया। वहाँ से वह रामेश्वरम् पहुँचा और वहाँ के विशाल मन्दिर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और उसके स्थान पर एक मस्जिद का निर्माण करवाया। इन विजयों के बाद मलिक काफूर 4 अप्रैल, 1311 को दिल्ली लौट गया। अपने साथ लूट का अतुल माल ले गया, जिसमें अमीर खुसरो के कथनानुसार 512 हाथी, पाँच सहस्र घोड़े और 105 मन मणि-माणिक्य सम्मिलित था। इससे पूर्व अभी तक दिल्ली में इतना अधिक लूट का माल कोई नहीं लाया था।

(5) देवगिरि पर पुनः आक्रमण- इस समय देवगिरि में रामचन्द्रदेव का ज्येष्ठ पुत्र शंकरदेव शासन कर रहा था। उसने दिल्ली को वार्षिक कर भेजना बन्द कर दिया था। इस कारण अलाउद्दीन की आज्ञानुसार मलिक काफूर ने देवगिरि पर 1313 में पुनः आक्रमण किया। शंकरदेव युद्ध में मारा गया। इसके उपरान्त उसने गुलबर्ग तथा कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच के प्रदेशों पर आधिपत्य स्थापित किया। इसके बाद फिर उसने बल्लाल तृतीय होयसल के राज्य पर आक्रमण किया। इन विजयों के बाद बहुत सा बहुमूल्य लूट का धन लेकर काफूर दिल्ली लौट गया।

इस तरह अलाउद्दीन की दक्षिण-विजय पूरी हो गयी। दक्षिण-विजय से उसको अत्यधिक धन प्राप्त हुआ जिसका उपयोग सैन्य-शक्ति को सुदृढ़ बनाने के लिए किया गया। दक्षिण के राज्यों को उसने दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित नहीं किया, बल्कि उसने जीते हुए राजाओं के राज्यों को उनको ही वापस कर दिया और वार्षिक कर लेकर ही संतोष किया। कुछ नगरों में उसने सुरक्षा और नियन्त्रण के दृष्टिकोण से तुर्की सेनायें रख दीं।

अलाउद्दीन की सैनिक-व्यवस्था

अलाउद्दीन का शासन-तन्त्र पूर्णतया सैनिक-शक्ति पर आश्रित था। वह भली-भाँति समझता था कि बाह्य आक्रमणों से साम्राज्य की सुरक्षा और आन्तरिक शान्ति के लिए एक सुसज्जित तथा सुसंगठित सेना का होना अति आवश्यक है। अतः उसने सैन्य सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया और निम्नलिखित सुधार किये-

सैनिक-व्यवस्था

1. स्थायी सेना की व्यवस्था
2. सेना में भर्ती करने की व्यवस्था
3. नकद वेतन की व्यवस्था
4. घोड़ों पर दाग लगाने की प्रथा
5. नये दुर्गों का निर्माण तथा पुराने दुर्गों की मरम्मत करने की व्यवस्था।

(1) स्थायी सेना की व्यवस्था- दिल्ली के सुल्तानों में अलाउद्दीन प्रथम सुल्तान था जिसने स्थायी सेना रखने की व्यवस्था की। इसके पूर्व के सुल्तानों ने स्थायी सेना नहीं रखी थी, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर जागीरदारों की सेना से मदद प्राप्त की थी। इसमें सबसे बड़ा दोष यह था कि कभी-कभी जागीरदारों की सेना समय पर पहुँच नहीं पाती थी। अतः अलाउद्दीन ने चार लाख पचहत्तर हजार स्थायी सेना का संगठन किया तथा सेना के प्रधान का एक पद निर्धारित किया और उस पर एक 'आरिज-ए-मुमालिक' (सेना-मन्त्री) की नियुक्ति की। स्थायी सेना सदैव दिल्ली में रहती थी। इस स्थायी सेना के द्वारा अलाउद्दीन ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की।

(2) सेना में भर्ती करने की व्यवस्था- यद्यपि सेना में सैनिकों की भर्ती सेना-मन्त्री द्वारा की जाती थी, लेकिन साथ ही साथ सुल्तान स्वयं सेना की भर्ती करता था और यह भर्ती योग्यता के आधार पर होती थी। प्रत्येक सैनिक सम्बन्धी जानकारी एक राजकीय रजिस्टर में अंकित रहती थी, ताकि अमुक सैनिक के स्थान पर कोई अन्य सैनिक न आ सके।

(3) नकद वेतन की व्यवस्था- अलाउद्दीन ने सैनिकों को जागीरें देने के स्थान पर नकद वेतन देने की व्यवस्था की। पैदल सैनिक को 156 टंका प्रतिवर्ष वेतन मिलता था। एक घुड़सवार सैनिक का वेतन 234 टंका प्रतिवर्ष नियत किया गया। दो घोड़े रखने वाले को 78 टंका अधिक मिलता था। सैनिकों को वेतन राजकीय कोष से मिलता था तथा उन्हें घोड़े, हथियार तथा युद्ध की अन्य सामग्री भी राज्य की ओर से प्राप्त होती थी।

(4) घोड़ों पर दाग लगाने की प्रथा- अलाउद्दीन के पहले सैनिक लोग अच्छी नस्ल के घोड़ों के स्थान पर रद्दी नस्ल के घोड़े रखकर राज्य को धोखा दिया करते थे। अतः अलाउद्दीन ने इस कुप्रथा को रोकने के लिए घोड़ों पर दाग लगवाने की प्रथा प्रचलित की। फरिश्ता के अनुसार उसकी सेना में 4,75,000 अश्वारोही सैनिक थे। अच्छी नस्ल के घोड़े बाहर से मँगवाये जाते थे।

(5) नये दुर्गों का निर्माण तथा पुराने दुर्गों की मरम्मत करने की व्यवस्था

अलाउद्दीन ने मंगोलों के आक्रमण को रोकने के लिए सीमान्त प्रदेश में कुछ नये दुर्गों का निर्माण करवाया तथा पुराने किलों की मरम्मत करवायी, क्योंकि उसके शासन-काल में मंगोलों के आक्रमणों के कारण अत्यधिक अशांति रही थी। इन दुर्गों में शक्तिशाली सेनाएँ रखी गई जो किसी भी बाह्य आक्रमण का सामना करने के लिए सदैव तत्पर रहती थीं।

उपरोक्त सुधारों के फलस्वरूप अलाउद्दीन का सैन्य संगठन बहुत सुदृढ़ हो गया और वह अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में सफल रहा। उसका सेना पर पूर्ण नियन्त्रण था। उसके इस सैन्य संगठन ने ही उसकी निरंकुशता को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया था।

अलाउद्दीन की आर्थिक व्यवस्था

अलाउद्दीन की आर्थिक व्यवस्था उसकी सैन्य-व्यवस्था का परिणाम थी, क्योंकि एक विशाल स्थायी सेना का प्रबन्ध और उसका व्यय आसानी से चलाना असंभव था। इसलिये उसने आर्थिक व्यवस्था में सुधार करने का संकल्प किया और अत्यधिक धन प्राप्त करने के लिये निम्न उपायों को अपनाया-

(1) जागीरों का अपहरण- अलाउद्दीन ने जागीर-प्रथा का पूर्णतया अन्त कर दिया। सैनिकों को जागीरें देने के स्थान पर राजकीय कोष से नकद वेतन की प्रथा का प्रचलन किया। उसने बहुत से हिन्दू अमीरों से उनकी जागीरें छीन लीं। बक्फ (धार्मिक दान) में दी गई जागीरों का भी अपहरण कर लिया गया और उन पर राज्य का आधिपत्य स्थापित हो गया।

(2) कर-वृद्धि तथा भूमि-व्यवस्था- अलाउद्दीन ने आर्थिक साधनों में अभिवृद्धि करने के उद्देश्य से कर की दर में विशेष वृद्धि की। उसने उपज का 50 प्रतिशत भूमि-कर के रूप में निर्धारित किया। भूमि-कर के अतिरिक्त उसने चरागाहों, पशुओं, भेड़ों और बकरियों पर भी कर लगाये। इन करों के अतिरिक्त हिन्दुओं को जजिया भी देना पड़ता था। कर वसूल करने के लिए कठोर नियमों का निर्माण किया गया। सभी प्रकार के करों को वसूल करने के लिए सैनिक पदाधिकारियों की नियुक्ति की गई जिन्होंने बड़ी कठोरता से कर वसूल किया। अच्छी भूमि की वास्तविक उपज को जानने के लिए भूमि की नाप करवाई गई। इन सभी सुधारों का परिणाम यह हुआ कि राज्य की आय में पर्याप्त अभिवृद्धि हो गई। कर-वृद्धि का विशेष प्रभाव हिन्दुओं पर ही पड़ा, क्योंकि बहु-संख्यक हिन्दुओं का ही भूमि से सम्बन्ध था।

आर्थिक-व्यवस्था

1. जागीरों का अपहरण
2. कर-वृद्धि तथा भूमि-व्यवस्था
3. बाजार-नियन्त्रण-
   (क) वस्तुओं के भाव निश्चित करना
   (ख) वस्तुओं की प्राप्ति की व्यवस्था करना
4. व्यापारियों पर नियन्त्रण
5. बाजार का आन्तरिक नियन्त्रण

(3) बाजार-नियन्त्रण- यद्यपि जागीरों के अपहरण और कर-वृद्धि से राज्य की आय में पर्याप्त वृद्धि हो गई फिर भी सेना के व्यय को देखते हुए यह आय पर्याप्त न थी। अतः अलाउद्दीन ने बाजार नियंत्रण करने का निश्चय किया। वास्तव में यह कहना उचित ही होगा कि बाजार-नियन्त्रण का काम सुल्तानों में सर्वप्रथम अलाउद्दीन ने ही किया। बाजारों के नियन्त्रण के लिए निम्नलिखित कार्य किये गयेः

(क) वस्तुओं के भाव निश्चित करना- अलाउद्दीन ने सर्वप्रथम दैनिक जीवन में प्रयोग आनेवाली वस्तुओं के भाव निश्चित किये और उन वस्तुओं की मूल्य-सूची का भी निर्माण करवाया। उसने **'शहना'** (निरीक्षक) के पद पर मलिक कबूल उलुग खानी नामक योग्य तथा अनुभवी व्यक्ति की नियुक्ति की। इस पदाधिकारी के अन्तर्गत 'बरीद' (लेखक) और

'मुन्हीयान' (गुप्तचर) नामक कर्मचारी थे, जो उसे वस्तुओं के भावों पर नियन्त्रण रखने में सहयोग प्रदान करते थे। दैनिक व्यवहार में आनेवाली वस्तुओं के मूल्यों की सूची इस प्रकार थी:

(1)	गेहूँ	7 1/2	जीतल	का	एक	मन
(2)	जौ	4	,,	,,	,,	,,
(3)	धान	5	,,	,,	,,	,,
(4)	उड़द	5	,,	,,	,,	,,
(5)	दाल	5	,,	,,	,,	,,
(6)	मोठ	3	,,	,,	,,	,,
(7)	शक्कर	1 1/3	,,	,,	,,	सेर
(8)	गुड़	1 1/3	,,	,,	,,	,,
(9)	सरसों का तेल	1	,,	,,	ढाई	,,
(10)	नमक	5	,,	,,	,,	मन

इसके अतिरिक्त इसने पशुओं तथा गुलामों के भाव भी घटाकर निश्चित कर दिए जो इस प्रकार थे-

(1)	प्रथम श्रेणी का घोड़ा	100 से	120 टंकों तक
(2)	द्वितीय श्रेणी का घोड़ा	80 से	90 टंकों तक
(3)	तृतीय श्रेणी का घोड़ा	65 से	70 टंकों तक
(4)	छोटे टट्टू	10 से	25 टंकों तक
(5)	दूध देने वाली गाय	3 से	4 टंकों तक
(6)	बकरी	10 से	14 जीतल तक
(7)	गुलाम-कन्या	5 से	12 टंकों तक
(8)	वेश्या	20 से	40 टंकों तक
(9)	उत्तम गुलाम	100 से	200 टंकों तक
(10)	सुन्दर गुलाम	20 से	30 टंकों तक
(11)	सुशिक्षित घरेलू सेवक	10 से	20 टंकों तक
(12)	अशिक्षित घरेलू सेवक	7 से	8 टंकों तक

(ख) वस्तुओं की प्राप्ति की व्यवस्था करना- वस्तुओं के भाव निश्चित करने के साथ ही साथ उन सब वस्तुओं की प्राप्ति की व्यवस्था करना भी आवश्यक समझा गया, ताकि आवश्यकतानुसार प्रत्येक वस्तु राजकर्मचारियों को उपलब्ध हो सके। अन्न की प्राप्ति के लिए शाही भण्डारों में अन्न एकत्र किया गया। दोआब के किसानों से भूमि-कर धन के रूप में न लेकर अनाज के रूप में लिया जाने लगा। अतः अनाज का संग्रह इतना अधिक हो गया कि अकाल के समय भी अन्नाभाव न होने पाया। किसानों से वही लोग अनाज खरीद सकते थे, जिन्हें इस कार्य के लिए राज्य की ओर से आज्ञापत्र (परमिट) प्राप्त होते थे। राजधानी के सभी व्यापारियों को 'शहना' के कार्यालय में अपने नाम लिखवाने पड़ते थे। इस अधिकारी का प्रमुख कर्तव्य यह था कि वह देखे कि व्यापारी अनाज आदि वस्तुएँ निश्चित भाव पर

बेचते हैं कि नहीं। किसी किसान को अनाज एकत्रित करने की आज्ञा नहीं थी, उसे अपनी उपज वहीं बेच देनी पड़ती थी जहाँ वह पैदा की गई हो। अनाज के अतिरिक्त अन्य आवश्यक वस्तुओं का संग्रह भी राजकीय रक्षित भण्डार में किया जाता था।

(4) व्यापारियों पर नियन्त्रण- समस्त व्यापारियों को 'शहना-ए-मंडी'. के नियन्त्रण में रहना पड़ता था और उन्हें निश्चित दर पर ही वस्तुएँ बेचनी पड़ती थीं। यदि वे निर्धारित मूल्य से एक दिरहम् भी अधिक लेते थे तो उन्हें कठोर दण्ड का भागी बनना पड़ता था। यदि कोई व्यापारी सौदा तौल में कम देता था तो उसके शरीर से उतना ही मांस काट लिया जाता था। किसी भी व्यापारी को अनाज तथा अन्य वस्तुएँ जमा करके रखने का अधिकार नहीं था, बल्कि ग्राहकों को माँगे जाने पर उन्हें वे वस्तुएँ बेचनी पड़ती थीं। अनावृष्टि के समय में भी वस्तुओं के भाव घटने-बढ़ने नहीं पाते थे। इस सम्बन्ध में इतिहासकार **बर्नी** भी लिखता है कि अन्न के भाव हमेशा एक से रहते थे।

(5) बाजार का आन्तरिक नियन्त्रण- मूल्य-निर्धारण हो जाने से चोर-बाजारी का बढ़ना स्वाभाविक था। इस दोष के निवारण के लिए सुल्तान ने व्यापारियों से यह वादा ले लिया कि वे प्रत्येक समय निर्धारित मूल्य पर ही वस्तुएँ खरीदेंगे और निर्धारित मूल्य पर ही उसे जनता के हाथ बेचेंगे। दलालों को बाजार से निकाल दिया गया। बहुमूल्य वस्तुएँ खरीदने वालों को 'शहना-ए-मण्डी' के कार्यालय से आज्ञापत्र प्राप्त करना पड़ता था। यदि खरीद के बाद इस बात का पता चल जाता था कि अमुक व्यक्ति ने खरीदे हुए माल को चोर-बाजार में बेचा है तो उसे कठोरतम दण्ड का भागी बनना पड़ता था। प्रत्येक व्यापारी के पास प्रत्येक वस्तु की निर्धारित मूल्य-तालिका रहती थी। उन्हें जनता से किसी प्रकार का मोल-तोल करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। यदि कोई दुकानदार किसी प्रकार की बेईमानी करता था तो उसे अपमानित करके दुकान के बाहर फेंक दिया जाता था।

(6) बाजार पदाधिकारी- बाजार के नियन्त्रण को सफल बनाने के लिए कई पदाधिकारी नियुक्त किये गये। प्रमुख पदाधिकारी, 'दीवान-ए-रियासत' के नाम से विख्यात था। उसके अधीनस्थ 'शहना', 'बरीद' तथा 'मुन्हीयान' आदि पदाधिकारी थे। शहना का प्रमुख कार्य बाजार का निरीक्षण करना था। बरीद का कार्य बाजार का लेखा-जोखा तैयार करना था तथा मुन्हीयान का कार्य बाजार की बातों की गुप्त सूचना देना था। इस प्रकार अलाउद्दीन को बाजार नियन्त्रण के कार्य में पूरी सफलता मिली। इतिहासकार **बर्नी** ने इस सफलता के चार कारण बतलाए हैं - (1) बाजार के नियमों को कठोरतापूर्वक लागू किया जाना, (2) कठोरता के साथ राजकरों का वसूल किया जाना, (3) जनता में धातु के सिक्कों का अभाव और (4) पदाधिकारियों का उत्साह और निष्पक्षता, जो सुल्तान के भय से अपने कर्तव्यों का पालन ईमानदारी से करते थे।

सुधारों का परिणाम- अलाउद्दीन के उपरोक्त सुधारों का परिणाम यह हुआ कि बाजार में वस्तुओं के भाव गिर जाने से एक बड़ी स्थायी सेना रखने में सफलता मिली। मंगोल-आक्रमणों से देश की रक्षा की जा सकी तथा देश में आन्तरिक शांति की स्थापना हुई। अधीनस्थ राजाओं और सूबेदारों को राज्य-विरुद्ध विद्रोह करने का साहस नहीं हुआ। इस प्रकार अलाउद्दीन को सम्पूर्ण सत्ता अपने हाथों में केन्द्रित करने में सफलता प्राप्त हुई।

यह कहना उचित ही होगा कि राजस्व-व्यवस्था का प्रभाव हिन्दू-वर्ग पर अत्यधिक पड़ा। दोआब के हिन्दुओं को तो कुल मिलाकर अपनी आय का 34 प्रतिशत भाग भूमिकर के रूप

में देना पड़ता था। मुकद्दम, खुत तथा चौधरी आदि पदाधिकारियों को भी भूमि, मकान तथा चरागाहों पर कर देने पड़ते थे। इतिहासकार **बर्नी** इस सम्बन्ध में लिखता है, 'चौधरी, खुत और मुकद्दम इस योग्य न रह गए थे कि घोड़े पर चढ़ सकते, हथियार बाँध सकते, अच्छे वस्त्र पहन सकते अथवा पान का शौक कर सकते।' हिन्दू इतने निर्धन हो गये थे कि उनके घरों की स्त्रियाँ मजदूरी करने लगी थीं।

अलाउद्दीन के अन्तिम दिन तथा उसकी मृत्यु

अलाउद्दीन के अन्तिम दिन संकट और निराशा में व्यतीत हुए। कठिन परिश्रम तथा विलासिता ने उसके स्वास्थ्य को नष्ट कर दिया। उसके परिजनों ने भी उसकी चिन्ता नहीं की और उसके प्रति उदासीनता का व्यवहार किया। परिणामतः उसका स्वास्थ्य और अधिक नष्ट हो गया। मलिक काफूर ने सुल्तान के प्रति विश्वासघात करके इसका खूब लाभ उठाया। उसने सुल्तान को यह विश्वास दिलाकर कि उसकी रानी, खिज्र खाँ और अल्प खाँ उसके जीवन का अन्त करने के षड्यन्त्र रच रहे हैं, खिज्र खाँ को ग्वालियर के किले में और रानी को पुरानी दिल्ली में बन्दी बनाकर रखवा दिया और अल्प खाँ का वध करा दिया। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि चारों ओर विद्रोह होने लगे। अल्प खाँ के सैनिकों ने गुजरात में विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। चित्तौड़ के राजा ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर अपनी राजधानी पर पुनः अधिकार कर लिया। देवगिरि में शंकरदेव के पुत्र हरपालदेव ने अपनी स्वतन्त्र-सत्ता घोषित कर वहाँ से मुसलमानों को निकाल बाहर किया। अलाउद्दीन के स्वास्थ्य पर इन सब बातों का बुरा प्रभाव पड़ा और 5 जनवरी, 1316 को उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी। इतिहासकार **बर्नी** का यह कथन, 'भाग्य ने उसके मार्ग में विश्वासघाती (मलिक काफूर) बिठा दिया और उसने अलाउद्दीन तथा उसके परिवार का ऐसा सत्यानाश किया जिसकी मिसाल नहीं मिलती,' अक्षरशः सत्य है।

अलाउद्दीन का चरित्र तथा उसके चरित्र का मूल्यांकन

दिल्ली के सुल्तानों में अलाउद्दीन का स्थान उच्चकोटि का है। उसने एक ऐसे विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी, जिसकी तुलना में उसके पूर्व के सुल्तानों ने इतना विशाल साम्राज्य स्थापित करने में सफलता नहीं प्राप्त की थी। वह दिल्ली का पहला मुसलमान शासक था, जिसकी विशाल शक्तिशाली सेना ने सुदूर दक्षिण के राज्यों पर विजय प्राप्त की थी। अलाउद्दीन के चरित्र और उसकी सफलताओं के सम्बन्ध में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। **एलफिन्सटन** के अनुसार, 'उसका शासन-काल गौरवपूर्ण था। अनेक महत्वपूर्ण तथा क्रूर नियमों के बावजूद वह एक सफल शासक था और उसने अपनी शक्तियों का उचित रूप से प्रयोग किया।' इसके विपरीत **बी० ए० स्मिथ** का कथन है, 'वास्तव में अलाउद्दीन बर्बर तथा अत्याचारी था, उसके हृदय में न्याय के लिए तनिक भी स्थान नहीं था और यद्यपि उसके राज्यकाल में गुजरात की विजय हुई तथा अनेक सफल आक्रमण किये गये फिर भी उसका शासन लज्जापूर्ण था।' **लेनपूल** के शब्दों में, "यद्यपि वह एक क्रूर शासक था,

अलाउद्दीन का चरित्र

1. वीर सैनिक तथा कुशल सेनानायक
2. कूटनीतिज्ञ तथा निरंकुश शासक
3. राजनीतिक अर्थशास्त्री
4. क्रूर एवं निर्दयी शासक
5. कुशल एवं योग्य शासक
6. विद्वानों का आश्रयदाता
7. कला-प्रेमी
8. कट्टर मुसलमान

पर उसकी शक्ति और योग्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता।' **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** के कथनानुसार, 'उसमें जन्मजात सेनानायक तथा शासक के गुण विद्यमान थे। इन गुणों का ऐसा संयोग मध्यकालीन इतिहास में दुर्लभ ही है।''

अलाउद्दीन का चरित्र-चित्रण निम्न आधारों पर किया जा सकता है-

(1) वीर सैनिक तथा कुशल सेनानायक- अलाउद्दीन में एक वीर सैनिक तथा कुशल सेनानायक के गुण विद्यमान थे। अत्यन्त भीषण परिस्थितियों में भी उसने धैर्य को नहीं त्यागा। 1297 में जब मंगोल कुतलुग ख्वाजा ने भारत पर भीषण आक्रमण किया और राजधानी की रक्षा का प्रश्न गम्भीर हो गया तो उसके सलाहकारों ने मंगोल से सन्धि करने का परामर्श दिया। लेकिन अलाउद्दीन ने दृढ़तापूर्वक कहा, 'अगर मैं तुम्हारी सलाह मान लूँ तो अपना चेहरा कैसे दिखाऊँगा। अपने जनानखाने में क्या मुँह लेकर जाऊँगा। लोग मेरी क्या इज्जत करेंगे और अपने उपद्रवी प्रजाजनों को दबाने की मुझमें शक्ति कहाँ से आयेगी ? नहीं, कल मैं दिल्ली के मैदान में टक्कर लूँगा।' उसके ये शब्द उसके उच्च कोटि का सैनिक तथा कुशल सेनानायक होने के परिचायक हैं। उसने मंगोलों को ऐसी पराजय दी कि उन्होंने फिर कभी हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया। उसने राजपूत राजाओं को परास्त कर अपनी सैनिक-प्रतिभा का परिचय दिया और अतुल सम्पत्ति और वार्षिक-कर प्राप्त किया।

(2) कूटनीतिज्ञ तथा निरंकुश शासक- अलाउद्दीन निरक्षर होते हुए भी एक कुशल कूटनीतिज्ञ था। सफलता प्राप्त करने के लिये वह छल से भी कार्य करने को तत्पर रहता था। रणथम्भौर के किले का पूरे वर्ष तक घेरा डालने के बाद भी जब उसे विजय की कोई आशा न दिखाई पड़ी, तो उसने कूटनीति से राजा हम्मीरदेव के प्रधान मन्त्री रानमल को अपनी ओर मिला लिया और उसकी सहायता से किले पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार वह राजनीति की गूढ़ समस्याओं को शीघ्रता से हल कर लेता था।

अलाउद्दीन एक निरंकुश शासक भी था। उसकी निरंकुशता अन्तिम पराकाष्ठा को पहुँच गयी थी। वह रक्तपात तथा युद्ध के सिद्धान्त का उपासक था। उसने अपनी निरंकुशता की व्याख्या इन शब्दों में की थी, 'मैं नहीं जानता कि अमुक बात कानून की दृष्टि में उचित है अथवा अनुचित। मैं राज्य की भलाई अथवा अवसर-विशेष के लिए जो उचित समझता हूँ, उसको करने की आज्ञा देता हूँ।' यह कहना उचित ही है कि उसके शासन की जड़ उसकी निरंकुशता थी।

(3) राजनीतिक अर्थशास्त्री- अलाउद्दीन भारत के मुसलमान सुल्तानों में पहला सुल्तान था जिसने राजस्व सम्बन्धी नियमों में सुधार किया और राज्य की आय बढ़ाने के लिए भूमि की पैमाइश करवाई। भूमि के कर के अतिरिक्त उसने अन्य करों को लगाकर राज्य की आय में वृद्धि की। उसका बाजार-नियन्त्रण इतिहास-प्रसिद्ध है।

(4) क्रूर एवं निर्दयी शासक- अलाउद्दीन क्रूर तथा निर्दयी शासक था। उसने अपने विरोधी को कभी क्षमा नहीं किया। वह साधारण अपराधों के लिए अंग-भंग तथा मृत्युदण्ड देता था। उसके हृदय में दया का कोई स्थान नहीं था। उसने अपने चाचा तथा श्वसुर जलालुद्दीन का वध करवा दिया। इतना ही नहीं, जिन षड्यन्त्रकारियों ने उसको नीचतम कार्य में सहयोग प्रदान किया उन्हें भी मौत के घाट उतार दिया। चित्तौड़ में तीस हजार हिन्दुओं की निर्मम हत्या उसके जीवन का अमिट कलंक है। उसने विद्रोहियों की असहाय स्त्रियों और बच्चों को

भी वध कराने से नहीं छोड़ा। उसने हिन्दुओं का बड़ी निर्दयता के साथ संहार किया तथा मुसलमानों को भी नहीं छोड़ा। वह बड़ा स्वार्थी था और अपने स्वार्थ के लिए निकृष्ट कृत्य करने में भी नहीं हिचकता था।

(5) कुशल एवं योग्य शासक- अलाउद्दीन एक कुशल तथा योग्य शासक था। उसने अपनी शासन-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन किये। उसके द्वारा स्थापित की गयी शासन-व्यवस्था उसके अपने मस्तिष्क की ही उपज थी। बाजार-नियन्त्रण करना उसके योग्य शासक होने का ज्वलंत प्रमाण है। **डॉ० अवधबिहारी पाण्डेय** ने लिखा है, 'उसकी मूल्य नियन्त्रण व्यवस्था अभूतपूर्व थी, फिर भी उसने उसको पूर्णतया सफल बनाया। बीसवीं शताब्दी के भारत में राशनिंग और मूल्य-नियन्त्रण भ्रष्टाचार, घूसखोरी और चोरबाजारी का पर्याय बन गया है। परन्तु अलाउद्दीन ने उसी व्यवस्था को आज से साढ़े छः सौ वर्ष पूर्व सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया और किसी प्रकार की चोरबाजारी, घूसखोरी अथवा अव्यवस्था नहीं हुई। यह उसकी योग्यता का परिचायक है।'उसने लूट-मार बिलकुल समाप्त कर दिया था। उसके राज्य में शान्ति और सुरक्षा पूर्णतया स्थापित थी। इतिहासकार **फरिश्ता** लिखता है, 'उसका न्याय इतना कठोर था कि चोरी-डकैती जिनका पहले राज्य में बोलबाला था, अब सुनने को भी न मिलती। यात्री राजमार्गों पर निश्चिन्त होकर सोते थे और बंगाल की खाड़ी से काबुल के पहाड़ों तक, तेलंगाना से काश्मीर तक अपना सामान सुरक्षापूर्वक ले जाते थे।''

(6) विद्वानों का आश्रयदाता- अलाउद्दीन निरक्षर होते हुए भी विद्वानों का आदर करता था। अमीर खुसरो उसके दरबार का प्रसिद्ध कवि था। हसन नामक विद्वान् भी उसके दरबार को सुशोभित करता था। शेख निजामुद्दीन और शेखरुक्नुद्दीन जैसे सन्त-महात्माओं का भी वह आश्रयदाता था।

(7) कला-प्रेमी- अलाउद्दीन की वास्तुकला में विशेष अभिरुचि थी। उसने सीमांत सुरक्षा के लिए अनेक दुर्गों का निर्माण करवाया। उसके वास्तुकला के नमूनों में सीरी का किला और हजार खम्भा महल विशेष उल्लेखनीय हैं।

(8) कट्टर मुसलमान- अलाउद्दीन राजनीति में मुल्लाओं का विरोधी होते हुए भी एक कट्टर मुसलमान था। वह मुल्ला, मौलवियों से अपने को अधिक ज्ञानी समझता था। कट्टर मुसलमान होने के कारण उसका हिन्दुओं के साथ व्यवहार बहुत ही असन्तोषजनक था।

संक्षेप में, अलाउद्दीन के चरित्र तथा कार्यों की समीक्षा **डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** के शब्दों में इस प्रकार की जा सकती है, 'यदि अलाउद्दीन के कार्यों तथा सफलताओं की निष्पक्ष दृष्टिकोण से समीक्षा की जाय तो कहना पड़ेगा कि दिल्ली के मध्ययुगीन शासकों में उसका उच्च स्थान है। दिल्ली सल्तनत के सम्पूर्ण युग में निर्विवाद वह योग्यतम सुल्तान था।' हैवेल महोदय के अनुसार, 'अलाउद्दीन अपने युग से आगे था। उसके बीस वर्ष के शासन में उसके अनेक कार्य आज भी समानता रखते हैं।[1] इब्नबतूता के शब्दों में, 'वह सर्वोत्तम सुल्तान था।''[2]

---

1. "Allauddin was for advanced of his age. In his reign of twenty years there are many parallels."
- Havell
2. "He was one of the best Sultans."
- Ibnbatuta

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ
(Important Dates & Events)

(1) 1290 ई० - जलालुद्दीन खिलजी का सिंहासनारोहण।
(2) 1296 ई० - जलालुद्दीन खिलजी की हत्या तथा अलाउद्दीन खिलजी का राज्यारोहण।
(3) 1299 ई० - अलाउद्दीन खिलजी की गुजरात-विजय।
(4) 1303 ई० - अलाउद्दीन खिलजी की चित्तौड़-विजय।
(5) 1308 ई० - अलाउद्दीन खिलजी की मारवाड़-विजय।
(6) 1310 ई० - अलाउद्दीन खिलजी की द्वार-समुद्र-विजय।
(7) 1313 ई० - अलाउद्दीन खिलजी द्वारा देवगिरि पर पुनः आक्रमण।
(8) 1316 ई० - अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु।
(9) 1320 ई० - खिलजी वंश का अन्त और तुगलक वंश का प्रारम्भ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. अलाउद्दीन खिलजी के आर्थिक सुधारों पर प्रकाश डालते हुए उनका उद्देश्य तथा परिणाम बतलाइए। (1958, 84)
2. अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण-विजय का इतिहास संक्षेप में लिखिए। (1958, 65, 80)
3. 1294 से 1313 ई० तक अलाउद्दीन ने जो दक्षिण आक्रमण किये, उनका वर्णन कीजिए। (1960)
4. अलाउद्दीन ने खिलजी-साम्राज्य का विस्तार किस प्रकार किया ? उसके सैनिक प्रवन्ध तथा बाजारों के नियन्त्रण् से सम्बन्धित सुधारों पर प्रकाश डालिए।
5. अलाउद्दीन खिलजी के जीवन-चरित्र एवं कृतियों का वर्णन कीजिए। (1963)
6. अलाउद्दीन खिलजी के आर्थिक एवं सैनिक सुधारों का विवरण दीजिए। (1966, 89)
7. अलाउद्दीन खिलजी के शासन सम्बन्धी सुधारों का विवरण दीजिए। (1974)
8. अलाउद्दीन खिलजी के आर्थिक कार्यों का विवेचन कीजिए। (1976)
9. एक विजेता के रूप में अलाउद्दीन खिलजी की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। (1977)
10. अलाउद्दीन खिलजी की आर्थिक नीति की विवेचना कीजिए। (1991)
11. अलाउद्दीन खिलजी की बाजार नीति पर एक निबन्ध लिखिए। (1994)
12. अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण भारतीय विजयों की समीक्षा कीजिए। (1996)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "अलाउद्दीन खिलजी एक महान् विजेता था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
2. "अलाउद्दीन खिलजी एक महान सुधारक था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

3. 'अलाउद्दीन एक निर्दयी शासक था।'' इस कथन के सन्दर्भ में अलाउद्दीन के चरित्र तथा कार्यों का मूल्यांकन कीजिए। (1979)
4. 'अलाउद्दीन खिलजी में एक जन्मजात सेनानायक तथा शासनकर्ता के गुण विद्यमान थे।' इस कथन की विवेचना कीजिए।
5. 'अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल से दिल्ली सल्तनत का साम्राज्यवादी युग प्रारम्भ होता है।' इस कथन के आलोक में अलाउद्दीन खिलजी की विजयों का वर्णन कीजिए।
6. 'दिल्ली सल्तनत के सम्पूर्ण युग में निर्विवाद अलाउद्दीन खिलजी एक योग्यतम शासक था।' उपर्युक्त कथन को उसके शासन प्रबन्ध का वर्णन करते हुए सिद्ध कीजिए।
7. 'अलाउद्दीन सर्वोत्तम सुल्तान था।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. हिन्दुओं के विद्रोहों को दबाने के लिए अलाउद्दीन खिलजी ने क्या किया ?
2. अलाउद्दीन खिलजी के बाजार-मूल्य-नियन्त्रण का उल्लेख कीजिए।
3. अलाउद्दीन खिलजी के सैनिक सुधारों का वर्णन कीजिए।

(घ) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :

(1) जलालुद्दीन खिलजी, (2) मलिक छज्जू, (3) मलिक काफूर, (4) सीदी मौला।

(स) तुगलक-वंश
(1320-1414)

> **"दिल्ली के सिंहासन को सुशोभित करने वाले शासकों में मुहम्मद तुगलक सर्वाधिक विद्वान् एवं सुसंस्कृत शासक था। प्रकृति ने उसको आश्चर्यजनक स्मरण-शक्ति, कुशाग्र एवं विषय-ग्राहिणी बुद्धि तथा सब प्रकार का ज्ञान संचित करने की अद्भुत ग्रहणशीलता का वरदान दिया था।"**
> **- डॉ० ईश्वरीप्रसाद**

(अ) गयासुद्दीन तुगलक
(1320-1325)

अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के पश्चात् मलिक काफूर ने उसके सबसे छोटे पुत्र शिहाबुद्दीन उमर को जिसकी उम्र छः वर्ष की थी, दिल्ली के सिंहासन पर बिठाया और स्वयं संरक्षक बनकर वास्तविक शासक बन बैठा। उसने खिज्र खाँ और उसके छोटे भाई शादी खाँ को अन्धा करवाकर ग्वालियर के किले में कैद करवा दिया। लेकिन 35 दिन के शासन के पश्चात् अलाउद्दीन के कुछ सिपाहियों ने मलिक काफूर की हत्या कर दी। इसके पश्चात् अलाउद्दीन के तीसरे पुत्र मुबारकशाह ने अपने छोटे भाई का संरक्षण भार सँभाला। लेकिन दो महीने पश्चात् ही उसे अंधा बनाकर वह स्वयं सुल्तान बन बैठा और कुतुबुद्दीन मुबारकशाह की उपाधि धारण की। उसने अपने भाइयों को जो अन्धे बनाये जा चुके थे, मरवा डाला। अन्त में उसे भी एक कृपापात्र दास खुसरो जो हिन्दू धर्म से परिवर्तित मुसलमान था, के हाथ मौत के घाट उतरना पड़ा। अपने स्वामी का वध करके खुसरो दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। उसकी निरंकुशता अन्तिम पराकाष्ठा को पहुँच गई। उसका चार महीने का शासन काल 'आतंक-काल' कहलाता है। कोई भी सवर्ण खुसरो का नेतृत्व स्वीकार करने को तैयार न था। परिणामतः गयासुद्दीन तुगलक के हाथों उसे भी मृत्यु का आलिंगन करना पड़ा। तुगलक ने शाही परिवार के किसी बचे हुए व्यक्ति को सुल्तान बनाने की इच्छा प्रकट की, किन्तु सरदारों के इस अनुरोध पर कि 'गाजी मलिक आप पिछले कई वर्षों से मंगोलों से हमारे देश की रक्षा करते आये हैं और अब आपने एक ऐसा काम किया है जो इतिहास में लिखा जायेगा-आपने हिन्दुओं और अछूतों से मुसलमानों की रक्षा की है और अमीर-गरीब सब आपकी कृपा के पात्र हैं। आप ही हमारी बादशाहत स्वीकार कीजिए', दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

प्रारम्भिक परिचय- गाजी गयासुद्दीन तुगलक का जन्म एक साधारण परिवार में हुआ था। उसका पिता मलिक तुगलक बलबन का एक तुर्की गुलाम था और उसकी माता पंजाब की जाटनी थी। उसने अपना जीवन एक सैनिक के रूप में आरम्भ किया था और धीरे-धीरे अपने विशिष्ट गुणों के कारण अलाउद्दीन के शासनकाल (1305) में पंजाब का सूबेदार नियुक्त किया गया। उसने मंगोलों के विरुद्ध उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं की सुरक्षा अपनी योग्यता और प्रतिभा के बल पर सफलतापूर्वक की। इसलिये वह 'मलिक-उल-गाजी' के नाम से

प्रसिद्ध हुआ। उसकी प्रतिष्ठा एवं प्रतिभा दिन-प्रतिदिन इतनी अधिक बढ़ गई कि अलाउद्दीन के शासनकाल के अन्तिम दिनों में उसकी गणना प्रमुख अमीरों में होने लगी। मुबारकशाह के समय वह अपने पद पर पूर्ववत् बना रहा। मुबारकशाह के उत्तराधिकारी खुसरो ने उसको अपना समर्थक बनाने के लिए सम्मान तथा उपाधियाँ भेजीं, लेकिन उसने स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। जब खुसरो की निरंकुशता अत्यधिक बढ़ गई और चारों ओर असन्तोष व्याप्त हो गया, तो उसने उसके विरुद्ध विद्रोहियों को संगठित कर एक विशाल सेना तैयार की और अन्त में उसे हराकर मार डाला। उसने सरदारों और पदाधिकारियों के मध्य अपनी यह इच्छा प्रकट की कि अलाउद्दीन के वंश का यदि कोई व्यक्ति जीवित हो तो उसे दिल्ली के सिंहासन पर बिठाया जाय। लेकिन सरदारों और पदाधिकारियों के इस अनुरोध पर कि आप ही हमारी बादशाहत स्वीकार कीजिए, स्वयं 8 सितम्बर, 1320 को दिल्ली सल्तनत का शासन-भार संभाला।

गृह नीति : गयासुद्दीन तुगलक के सुधार

(1) शासन सम्बन्धी सुधार- गयासुद्दीन ने प्राचीन शासन-व्यवस्था में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया। उसने उन अमीरों को अपने पदों पर पूर्ववत् बने रहने दिया जो खुसरो ने प्रदान किये थे। उसने उन लोगों की भूमि पुनः वापस कर दी जिनकी अलाउद्दीन के शासनकाल में छीन ली गई थी। वह पदाधिकारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर करता था। शासन कार्यों में सुव्यवस्था लाने के लिए दरबारियों से परामर्श लेता था।

(2) आर्थिक व्यवस्था- मुबारकशाह और खुसरो की नीति के कारण राजकोष बहुत खाली हो गया था। अतः आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए उसने उन लोगों की जागीरों का अपहरण कर लिया जो पूर्व सुल्तानों द्वारा अपने अनुयायियों को प्रदान की गई थीं। उसने उस सम्पत्ति को पुनः प्राप्त करने का प्रयास किया जो खुसरो द्वारा दिल्ली के प्रमुख शेखों के मध्य वितरित कर दी गई थी। वह अपने इस प्रयास में काफी सफल भी हुआ। उसने प्रजा पर कर कम कर दिये और कृषि के क्षेत्र को बढ़ाने के लिए नियम बनाये। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत सी बंजर भूमि कृषि-योग्य बन गई और कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुई।

गयासुद्दीन तुगलक के सुधार

1. शासन सम्बन्धी सुधार
2. आर्थिक व्यवस्था
3. राजस्व व्यवस्था
4. न्याय-विभाग में सुधार
5. सैन्य-व्यवस्था में सुधार
6. हिन्दुओं के प्रति व्यवहार
7. सार्वजनिक हित के कार्य

(3) राजस्व व्यवस्था- किसानों के प्रति सुल्तान की नीति उदार थी। वह लगातार कर-वृद्धि के पक्ष में नहीं था। इसलिये उसने 'दिवान-ए-विरासत' को यह आदेश दे रखा था कि एक वर्ष में किसी इक्ता के राजस्व में 1/10 और 1/11 से अधिक वृद्धि नहीं होनी चाहिए। यदि कर-वृद्धि आवश्यक हो तो उसे क्रमशः- कई वर्षों में किया जाना चाहिए। उसने पुरानी बँटाई और नस्क प्रथा को पुनः प्रचलित किया। अनावृष्टि के समय किसानों को मालगुजारी में छूट प्रदान की जाती थी। राजस्व वसूल करने वाले पदाधिकारियों को वसूल की गई रकम पर कमीशन न देकर उन्हें भूमि दे दी जाती थी, जिस पर किसी प्रकार का कर नहीं लगाया

जाता था। प्रान्तीय पदाधिकारियों को आदेश था कि वे करों की आय का विवरण राजधानी में स्थित माल-विभाग में प्रस्तुत किया करें।

(4) न्याय-विभाग में सुधार- अलाउद्दीन के बाद के सुल्तानों के शासनकाल में न्याय-विभाग बहुत शिथिल हो गया था। अतः उसने न्याय-विभाग को उन्नत किया। उसने उन कठोर शारीरिक यातनाओं का अन्त कर दिया जो राजकीय ऋण वसूल करने के लिए दी जाती थीं, किन्तु चोरी करने वालों, कर न देने वालों और राजकीय धन का गबन करने वालों के लिए इस प्रकार का दण्ड पूर्ववत् प्रचलित रहा। उसने न्याय की समुचित व्यवस्था द्वारा राज्य के कोने-कोने तक शान्ति, सुरक्षा स्थापित कर दी। मार्ग निष्कण्टक हो गये।

(5) सैन्य-व्यवस्था में सुधार- अलाउद्दीन के समय से चली आने वाली घोड़ों के दागने की प्रथा को जारी रखा गया। मंगोलों से लगातार कई बार युद्ध करने के कारण उसे सैन्य संगठन का पर्याप्त अनुभव हो गया था। अतः उसने सेना को सुसज्जित बनाने में बहुत परिश्रम किया। सैनिक का वेतन बढ़ा दिया गया और उनके साथ दयालुतापर्ण व्यवहार किया गया।

(6) हिन्दुओं के प्रति व्यवहार- गयासुद्दीन का हिन्दुओं के प्रति सद्व्यवहार नहीं था। अलाउद्दीन की भाँति उसकी भी यह धारणा थी कि हिन्दुओं के पास अधिक धन एकत्र नहीं होना चाहिए। जीवन-निर्वाह के अतिरिक्त उन्हें और धन की आवश्यकता नहीं है। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने हिन्दुओं के मन्दिरों और मूर्तियों को युद्ध के समय विनष्ट किया।

(7) सार्वजनिक हितों के कार्य- गयासुद्दीन ने यातायात के साधनों में उन्नति करने की ओर ध्यान दिया। उसने सड़कों की मरम्मत करवाई तथा किलों, पुलों और नहरों का निर्माण करवाया। डाक-व्यवस्था को समुन्नत बनाने का श्रेय ग्यासुद्दीन को है। डाक-चौकियों की दूरी जो सात या आठ मील थी, घटाकर 2 मील कर दी गई जिससे समाचार एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्र पहुँचने लगे।

वैदेशिक नीति

(1) वारंगल पर आक्रमण- खुसरो के शासनकाल में जिन राज्यों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी थी, उनका पुनः दमन करना गयासुद्दीन की वैदेशिक नीति का प्रमुख उद्देश्य था। इस समय वारंगल के राजा प्रतापरुद्रसेन ने वार्षिक कर भेजना बन्द कर दिया था। अतः गयासुद्दीन ने 1321 में अपने पुत्र जूना खाँ को एक सेना के साथ प्रतापरुद्रसेन का दमन करने के लिए वारंगल भेजा। राजा ने बड़ी वीरता से सुल्तान की सेना का सामना किया, किन्तु अन्त में बाध्य होकर सन्धि प्रस्ताव पेश करना पड़ा। लेकिन जूना खाँ ने सन्धि प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया क्योंकि वह वारंगल को दिल्ली-सल्तनत में मिलाने का दृढ़ संकल्प कर चुका था। इसी समय सेना में यह अफवाह फैल गई कि राजधानी में गयासुद्दीन की मृत्यु हो गई है। अतः विवश होकर जूना खाँ को घेरा उठाना पड़ा

वैदेशिक नीति

1. वारंगल पर आक्रमण
2. उत्कल पर आक्रमण
3. बंगाल पर आक्रमण
4. तिरहुत पर अधिकार

और दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया। देवगिरि पहुँच कर उसको अफवाह की असत्यता का ज्ञान हुआ। उसने एक विशाल सेना एकत्रित कर पुनः 1323 में वारंगल का घेरा डाला। इस बार घेरे का संचालन इतनी दृढ़ता से किया गया कि प्रताप रुद्रसेन परास्त हुआ और बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया गया। वारंगल का नाम सुल्तानपुर रख दिया गया और उसे दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित कर लिया गया।

(2) उत्कल पर आक्रमण- वारंगल से लौटते हुए जूना खाँ ने उत्कल पर आक्रमण किया। यहाँ लूट में उसे पचास हाथी और अन्य बहुमूल्य सामान प्राप्त हुआ जिसे लेकर वह दिल्ली लौट गया।

(3) बंगाल पर अधिकार- 1324 में पूर्वी बंगाल के सूबेदार गयासुद्दीन ने अपने भाई शहाबुद्दीन को अपदस्थ करके सिंहासन पर आधिपत्य जमा लिया। उसके एक तीसरे भाई नासिरुद्दीन ने गयासुद्दीन तुगलक से बंगाल की गद्दी प्राप्त करने के लिए सहायता माँगी। सुल्तान ने नासिरुद्दीन को सहायता देना स्वीकार कर लिया और स्वयं एक विशाल सेना के साथ बंगाल की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में नासिरुद्दीन भी सुल्तान की मदद के लिए आ मिला। गयासुद्दीन ने शाही सेना की बड़ी वीरता से सामना किया, किन्तु अन्त में पराजित हुआ और बन्दी बना लिया गया। पूर्वी बंगाल दिल्ली सल्तनत में मिला लिया गया। बंगाल के सिंहासन पर नासिरुद्दीन का अधिकार तो स्वीकार कर लिया गया, किन्तु उससे दिल्ली सल्तनत के अधीन रहने का वचन ले लिया गया। इसके पश्चात् सुल्तान दिल्ली की ओर लौट पड़ा।

(4) तिरहुत पर अधिकार- बंगाल से लौटते हुए सुल्तान को तिरहुत के राजा हरदेव सिंह से युद्ध करना पड़ा। राजा परास्त हुआ और तिरहुत दिल्ली सल्तनत का अंग बन गया।

गयासुद्दीन की मृत्यु- जिस समय सुल्तान गयासुद्दीन बंगाल और तिरहुत विजय करके दिल्ली लौट रहा था तो जूना खाँ ने अपने पिता के स्वागत के लिए तुगलकाबाद के समीप अफगानपुर नामक गाँव में एक विशाल लकड़ी का महल बनवाया। सुल्तान को इसमें प्रीतिभोज दिया गया। जब भोजन समाप्त हो गया तो सभी व्यक्ति इमारत के बाहर आ गये। केवल सुल्तान और उसका दूसरा पुत्र अहमद उसके नीचे रह गये। जैसे ही उत्कल से आये हुए हाथियों का प्रदर्शन शुरू हुआ, उसके धक्के से सम्पूर्ण लकड़ी का महल गिर गया और उसके नीचे सुल्तान और उसका पुत्र दबकर मर गये। सुल्तान की इस एकाएक मृत्यु के सम्बन्ध में इतिहासकारों में परस्पर मतभेद है। अनेक विद्वानों ने जूना खाँ पर सुल्तान की हत्या का आरोप लगाया है। **बर्नी** ने लिखा है, 'सुल्तान के ऊपर आकाश से दुर्भाग्य का वज्रपात हुआ और वह पाँच-छः आदमियों सहित खंडहर के नीचे दब गया।' **इब्नबतूता** का कथन है कि "उसने शेख रुक्नुद्दीन मुल्तानी से जो घटनास्थल पर सुल्तान के साथ था, यह सुना था कि भवन बनाया ही इस प्रकार से गया था कि वह निश्चित समय पर ढह जाय।' **निजामुद्दीन अहमद** का कहना है, "इस भवन का इतनी शीघ्रता से बनाया जाना, यह सन्देह उत्पन्न करता है कि जूना खाँ ने अपने पिता की मृत्यु का प्रयत्न किया है।" **फरिश्ता** का कहना है, "भगवान ही जानता है कि सत्य क्या है।' **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** का कथन है, "इसमें सन्देह नहीं है कि सुल्तान की मृत्यु युवराज के षड्यन्त्र का परिणाम थी।' डॉ० आगा मेहदी हुसैन जूँना खाँ को पितृ-हत्यारा नहीं मानते हैं। युवराज होने के नाते खाँ को इस प्रकार की हत्या से कोई लाभ

प्राप्त होने की सम्भावना न थी। महल को स्वयं गयासुद्दीन के संकेत पर समय की परम्परा के अनुकूल सुल्तान के स्वागत के लिए निर्मित किया गया था।

गयासुद्दीन का चरित्र- सुल्तान गयासुद्दीन योग्य शासक होने के साथ-ही-साथ एक कुशल सेनानायक भी था। वह बड़ा ही दयालु और उदार प्रकृति का शासक था। उसमें उन सभी गुणों का समावेश था, जो एक कुशल शासक में होने चाहिए। वह बड़ा ईमानदार और न्याय-प्रिय शासक था। उसकी लोकप्रियता ने ही उसे दिल्ली के शासक पद पर बिठाया था। उसने किसानों की स्थिति को समृद्धिशाली बनाने के लिए कई आर्थिक सुधार किये। उसने अधिक उत्पादन के लिए कृषि-क्षेत्र को विस्तृत करवाया। उसने साम्राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना के लिये प्रयास किया और उसको अपने इस उद्देश्य में प्रशंसनीय सफलता भी प्राप्त हुई। वह अलाउद्दीन की भाँति 'रक्तपात' और युद्ध के सिद्धान्त का उपासक नहीं था। **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** के शब्दों में, 'जीवन-पर्यन्त वह प्रजा के हित में तत्पर रहा और शासनतन्त्र का कोई ऐसा विभाग न था जो उसकी कल्याणकारी पद्धतियों से लाभान्वित न हुआ हो।' **लेनपूल** के अनुसार, ''वह एक न्यायप्रिय, उच्च मस्तिष्क वाला शक्तिशाली राजा था।' **डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** के शब्दों में, 'गयासुद्दीन तुगलक एक अनुभवी सैनिक तथा सुलझा हुआ सेनानायक था।''

सुल्तान गयासुद्दीन कलाप्रेमी था। उसने तुगलकाबाद नामक नगर बसाया और वहाँ उसने अनेक महल और अनेक सुन्दर इमारतें बनवाईं। वह विद्या-प्रेमी भी था। उसके दरबार में अनेक कवियों तथा विद्वानों को प्रश्रय प्राप्त था। उसने जन-साधारण के हित के लिए सैकड़ों पुलों और नहरों का निर्माण करवाया। **अमीर खुसरो** ने उसकी प्रशंसा इन शब्दों में की है, 'उसने कभी कोई ऐसा कार्य न किया जो प्रगल्भता और बुद्धिमत्तापूर्ण न रहा हो। उसके विषय में कहा जा सकता है कि वह राजमुकुट के नीचे शतशः आचार्यों के शिरोवस्त्र धारण किये रहता था।''

(ब) मुहम्मद-बिन-तुगलक
(1325-1351)

अपने पिता गयासुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् जूना खाँ 'अल-मुजाहिद मुहम्मद-इब्न-तुगलक' के नाम से दिल्ली के राज-सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। बचपन से ही उसकी शिक्षा की अच्छी व्यवस्था की गई थी। एक सैनिक की हैसियत से उसने अच्छी कीर्ति अर्जित कर ली थी। खुसरो के शासन-काल में वह घोड़ों का अध्यक्ष रहा था। उसकी सैनिक प्रतिभा से ही प्रभावित होकर सुल्तान ने उसको 'उलुग खाँ'की पदवी प्रदान की थी। पिता की मृत्यु के चालीस दिन बाद तक वह तुगलकाबाद में ही रहा और इसके उपरान्त दिल्ली आकर बड़े समारोह के साथ अपना राज्याभिषेक कराया। उसके राज्यारोहण के समय जनता ने किसी प्रकार का विरोध नहीं किया। जनता के इस व्यवहार से प्रसन्न होकर उसने उसके मध्य सोने और चाँदी के सिक्के खुद बँटवाये। प्रजा को इस नये सुल्तान से बड़ी-बड़ी आशायें थीं और उसको स्वयं भी पूर्ण विश्वास था कि वह दिल्ली के पूर्व सुल्तानों की अपेक्षा अधिक सफलता और कीर्ति प्राप्त करेगा।

सुल्तान की शासन सम्बन्धी योजनाएँ

मध्यकालीन शासकों में मुहम्मद तुगलक पहला सुल्तान था जो सबसे अधिक योग्य तथा सुधारवादी था। उसने अनेक योजनाओं को कार्य रूप में परिणत किया, लेकिन दुर्भाग्यवश उसको उसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई और वह असफल हो गया। उसकी असफलता का प्रधान कारण यह था कि उसकी योजनायें समय से बहुत आगे थीं। योजनाओं की असफलता के कारण अनेक इतिहासकारों ने उसको पागल सुल्तान कहा है, परन्तु यह न्यायसंगत नहीं है, क्योंकि उसने जिन योजनाओं का निर्माण किया, वे अत्यधिक महत्वपूर्ण थीं । एक पागल सुल्तान द्वारा ऐसी महत्वपूर्ण योजनाओं का निर्माण नितान्त असम्भव है। सुल्तान की शासन सम्बन्धी योजनायें निम्नलिखित थीं-

(1) दोआब में कर-वृद्धि (1325)- मुहम्मद तुगलक की शासन-सम्बन्धी योजनाओं में सर्वप्रथम दोआब में पाँच से दस प्रतिशत अधिक कर की वृद्धि करना था। इस कर-वृद्धि के दो प्रमुख कारण थे- (1) दोआब के हिन्दू समृद्ध थे और वे प्रायः दिल्ली सल्तनत के विरुद्ध विद्रोह करके स्वतन्त्र होने का प्रयास करते थे। (2) दोआब का प्रदेश अत्यधिक उपजाऊ था। इस कर-वृद्धि के अतिरिक्त उसने पशुओं, चरागाहों और मकानों आदि पर भी कर लगाये। लेकिन जिस समय पर कर-वृद्धि की गई उस समय दोआब में अनावृष्टि के कारण दुर्भिक्ष पड़ गया था, जिसके विषय में सुल्तान बिल्कुल अनभिज्ञ था। भूमि-कर और अन्य करों की वसूली कठोरता से की गई। राजकीय कर्मचारियों ने दुर्भिक्ष की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इस सम्बन्ध में तत्कालीन इतिहासकार **बर्नी** जो दोआब-स्थित बरन (बुलन्दशहर) का ही निवासी था, लिखता है, "कर वसूली इतनी कठोरता से की गई कि किसान भिखारी और अमीर विद्रोही बन गये और जमीनें बंजर पड़ी रहने लगीं। किसान अपनी जमीनें और पशु छोड़कर जंगलों में भाग गये। जब सुल्तान को यह समाचार ज्ञात हुआ तो उसने जंगलों में सैनिक भेजकर जंगली जानवरों की तरह किसानों का संहार करवाया। दोआब, कन्नौज और डलमऊ तक का सम्पूर्ण इलाका बरबाद कर दिया। कर अदा न करने वाले प्रत्येक आदमी को पकड़ कर मार डाला गया।" परंतु जब सुल्तान को वास्तविक स्थिति का पूर्ण ज्ञान हुआ तो उसने किसानों की भरसक मदद करने का प्रयास किया। इसके लिए उसने बीज, बैल आदि खरीदने के लिए ऋण किसानों को दिया और कुएँ खुदवाने की व्यवस्था की। सम्भवतः यह सहायता देर से की गई। अतः इससे किसानों को कोई लाभ नहीं हुआ।

सुल्तान की शासन-सम्बन्धी योजनाएँ

1. दोआब में कर-वृद्धि
2. राजधानी परिवर्तन
3. ताँबे के सिक्के का प्रचलन
4. विजय योजनाएँ
   (अ) खुरासान विजय योजना
   (ब) कराजल विजय योजना

आलोचना- सुल्तान द्वारा कर-वृद्धि करना और नये कर लगाना कोई नवीन कार्य नहीं था। इसके पूर्व अलाउद्दीन ने भी दोआब में कर-वृद्धि की थी और अन्य नये कर लगाये थे। लेकिन प्रजा ने इतना विरोध नहीं किया और सभी करों को अदा किया था। यदि इस समय दोआब में दुर्भिक्ष न पड़ा होता तो मुहम्मद तुगलक को अलाउद्दीन की भाँति सफलता प्राप्त हुई होती। जो भी उसे असफलता मिली उसके लिए सुल्तान दोषी नहीं था, बल्कि उसकी

असफलता दैवी प्रकोप के कारण हुई। परन्तु सुल्तान ने इतनी अवश्य भूल की कि उसने कर-वृद्धि से पूर्व दोआब की जनता की आर्थिक स्थिति जानने का प्रयास नहीं किया तथा लगाये गये करों की वसूली कठोरता से कराई।

(2) राजधानी परिवर्तन (1326-27)- सुल्तान की दूसरी महत्वपूर्ण योजना राजधानी परिवर्तन की थी। उसने दिल्ली के स्थान पर देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया जिसका नाम दौलताबाद रखा गया। दौलताबाद को नयी राजधानी बनाये जाने के निम्नलिखित कारण थे-

(i) सुल्तान ऐसे स्थान को अपनी राजधानी बनाना चाहता था जो सम्पूर्ण राज्य के मध्य में स्थित हो। देवगिरि उसके साम्राज्य के मध्य में स्थित था, जहाँ से पूर्ण नियन्त्रण सम्भव था। बर्नी भी देवगिरि के विषय में लिखता है, "यह स्थान सल्तनत के केन्द्र में स्थित है। दिल्ली, लखनौती, सतगाँव, सोनार गाँव, तेलंग, माबर, द्वारसमुद्र तथा कम्पिल यहाँ से बराबर दूरी पर हैं।"

(ii) कुछ विद्वानों का मत है कि मंगोलों के आक्रमणों से भयभीत होकर उसने राजधानी परिवर्तन की योजना बनाई। लेकिन यह मत तथ्यहीन है, क्योंकि यदि वह इस उद्देश्य से राजधानी का परिवर्तन करता तो पुनः दिल्ली को राजधानी क्यों बनाता ? सम्भवतः उसका प्रमुख लक्ष्य दक्षिण के प्रदेशों पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करना था, क्योंकि उत्तरी भारत पर उसका पूर्ण नियन्त्रण था।

(iii) इब्नबतूता का कहना है कि दिल्ली की जनता ने गुमनाम पत्र लिखकर सुल्तान को बहुत गालियाँ दी थीं। इसलिये क्रोधित होकर उसने दण्ड देने के लिए राजधानी का परिवर्तन किया। इब्नबतूता का यह कथन निराधार है, क्योंकि राजधानी के परिवर्तन के समय उसने जनता को अनेक सुविधाएँ प्रदान की थीं।

(iv) कुछ विद्वानों के अनुसार सुल्तान एक राजधानी उत्तर में तथा दूसरी दक्षिण में रखना चाहता था। इस मत में बहुत कुछ सत्यांश है।

अपने निर्णय के अनुसार सुल्तान ने दिल्ली के समस्त पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को दौलताबाद चलने की आज्ञा दे दी। दिल्ली से दौलताबाद तक 1120 किमी . लम्बी एक सड़क का निर्माण किया गया। सुल्तान की आज्ञानुसार लोगों को मार्ग में निःशुल्क भोजन तथा विश्राम की व्यवस्था की गई। फिर भी लोगों को दिल्ली छोड़कर दौलताबाद जाने में अत्यधिक कष्ट मिला। लेनपूल लिखता है, "बहुत से रास्ते में ही प्राण खो बैठे और जो दौलताबाद पहुँचे, वे सभी भी अपने घरों की याद न भुला पाये।"

मुहम्मद तुगलक के राजधानी परिवर्तन के सम्बन्ध में बर्नी लिखता है कि दिल्ली का विध्वंस इतनी पूर्णता से हुआ कि एक कुत्ता या बिल्ली भी नहीं छोड़ा गया था। इब्नबतूता का कथन है कि सुल्तान ने समस्त नगर की जाँच कराई तो एक अन्धा तथा एक लँगड़ा मिला जो दौलताबाद न जाने के लिए छिपे हुए बैठे थे। लँगड़े आदमी का तो वध कर दिया गया और अन्धे को घोड़े की दुम से बाँधकर दौलताबाद तक घसीटा गया। वहाँ उसकी केवल एक टाँग ही पहुँच सकी। इब्नबतूता का कथन बाजारू गप्प के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, क्योंकि 1,120 किमी० की यात्रा के बाद शरीर के किसी भी अंग का दौलताबाद पहुँचना असम्भव है।

सुल्तान की यह योजना भी पूर्णरूप से असफल रही। जब अपनी गलती का उसे ज्ञान हुआ तो लोगों को पुनः दिल्ली लौट आने की आज्ञा दे दी। उसने उजड़ी दिल्ली को फिर से बसाने के उद्देश्य से दूर-दूर से विद्वानों, व्यापारियों तथा जमींदारों को दिल्ली में लाकर बसाया, किन्तु दिल्ली में बहुत दिनों तक पहले की समृद्धि न पनप सकी। **लेनपूल** के शब्दों में, "जल्दबाज सुल्तान के पक्ष में इतना कहना होगा कि उसने अपनी गलतियाँ सुधारने का भरसक प्रयत्न किया। यद्यपि वह दिल्ली को फिर उतनी ही जल्दी आबाद न कर पाया, जितनी जल्दी कि खाली कर गया था पर उसने अकाल और अत्यधिक करारोपण से पैदा हुई स्थिति का मुकाबला करने में कोई कसर न उठा रखी। उसने अधिकतर कर हटा दिये और दिल्ली की जनता को छः महीने तक खाना खिलाया तथा ऋण देने की व्यवस्था की।"

आलोचना- सुल्तान के राजधानी परिवर्तन का कार्य कोई विलक्षण योजना न थी। आधुनिक ब्रिटिशकाल में कलकत्ता से दिल्ली में राजधानी का परिवर्तन किया गया था। यदि भाग्य और प्रकृति ने सुल्तान का सहयोग दिया होता तो उसकी यह योजना कटु-आलोचना का विषय न बनती। डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार, 'सुल्तान ने दो भूलें कीं- एक तो अनुपयुक्त स्थान को राजधानी के लिए चुना और दूसरे उसके परिवर्तन का तरीका गलत था।"

(3) ताँबे के सिक्कों का प्रचलन (1330)- सुल्तान की तीसरी प्रसिद्ध योजना ताँबे के सिक्कों का प्रचलन था। उस समय की प्रचलित मुद्रा-प्रणाली में आमूल सुधार किये जाने के कारण मुहम्मद तुगलक को 'महाजनों का राजा' कहा गया है। ताँबे के सिक्कों का प्रचलन करना उसका सबसे अधिक क्रान्तिकारी प्रयोग था। **डॉ० आशीर्वादीलाल** के अनुसार पीतल तथा ताँबे के सिक्के चलाने के पाँच कारण थे। प्रथम, राजकोष में बहुमूल्य धातुओं का अभाव था, क्योंकि युद्धों, विद्रोहों और खर्चीले शासन सम्बन्धी प्रयोगों के कारण खजाना खाली हो चुका था। दूसरे, दुर्भिक्ष तथा दोआब में कठोर कर-नीति के कारण सुल्तान की आय में बहुत कमी हो गई थी। तीसरे, भारत के दूरस्थ प्रान्तों तथा कुछ बाह्य देशों को जीतने के उद्देश्य से वह अपने राजस्व में वृद्धि करना चाहता था। चौथे, मुहम्मद को नये प्रयोगों का बहुत शौक था और वह भारतीय मुद्रा के इतिहास में एक नया अध्याय प्रारम्भ करना चाहता था। पाँचवें, इस विषय में उसे चीनी तथा ईरानी शासकों से प्रेरणा मिली थी जिन्होंने 13वीं शताब्दी में अपने देश में सांकेतिक मुद्रा जारी की थी।

उपरोक्त कारणों से सुल्तान ने ताँबे के सिक्कों का प्रचलन कर दिया और उनका मूल्य सोने तथा चाँदी के सिक्कों के मूल्य के बराबर कर दिया। लेकिन नये सिक्के ढालने के कार्य पर राज्य का एकाधिकार रखने का कोई ठोस प्रयास नहीं किया। परिणामतः अधिकांश लोगों ने जाली सिक्के ढालना प्रारम्भ कर दिया। इस सम्बन्ध में **बर्नी** लिखता है, "हर हिन्दू का घर टकसाल बन गया और विभिन्न प्रान्तों में हिन्दुओं ने लाखों-करोड़ों ताँबे के सिक्के बना डाले। यही सिक्के सरकार को नजराने में देते और इन्हीं से घोड़े, हथियार और दूसरी अच्छी चीजें खरीदते थे। शीघ्र ही राज-कोष इन सिक्कों से भर गया। धीरे-धीरे उनकी कीमत इतनी कम हो गई कि वे पत्थरों से ज्यादा महँगे न रहे। हर जगह व्यापार में बाधा पड़ने लगी और ताँबे का टंका मूल्यहीन हो गया।" **बर्नी** के इस कथन में अपनी जाति के प्रति पक्षपात की स्पष्ट गन्ध आती है। विश्वास नहीं होता कि मुसलमानों पर जाली सिक्के बनाने का प्रभाव न पड़ा

हो। अन्त में, जब सुल्तान की अपनी योजना पूर्णतः असफल हो गयी तो उसने क्रोधित होकर यह आज्ञा निकाली कि लोग राजकीय खजाने में ताँबे के सब नये सिक्के जमा करके बदले में सोने-चाँदी के सिक्के ले जायँ। कहा जाता है कि तुगलकाबाद में ताँबे के सिक्कों का ढेर पहाड़ इतना ऊँचा लग गया कि एक सौ वर्ष बाद भी मुबारकशाह द्वितीय के समय यह ढेर मौजूद था।

आलोचना- निस्सन्देह सुल्तान की यह योजना असफल रही, क्योंकि लोगों द्वारा जाली सिक्के बनाने और उसके चलन को रोकने में वह सफल न हो सका। इसलिये इस योजना का पूर्ण उत्तरदायित्व उसी पर था।

(4) विजय-योजनायें- मुहम्मद तुगलक अलाउद्दीन के समान बड़ा महत्वाकांक्षी था। वह अपने साम्राज्य से बाहरी प्रदेशों को जीतकर अपने राज्य का विस्तार करना चाहता था। उसकी विजय-योजना के सम्बन्ध में इतिहासकार **फरिश्ता** लिखता है, "वह युद्धक्षेत्र में अपनी वीरता के लिए उससे कम प्रसिद्ध नहीं था जितना कि उन गुणों के लिए था जो किसी पुरुष को व्यक्तिगत समाज का भूषण बना देते हैं। अपने साम्राज्य को विस्तृत करने की अनवरत अभिलाषा के कारण उसके जीवन का अधिकांश समय शिविर में ही व्यतीत हुआ।" उसकी विजयें इस प्रकार थीं-

(अ) खुरासान-विजय योजना (1336)- खुरासान पर आक्रमण करने का प्रोत्साहन उस खुरासानी अमीर सरदारों से प्राप्त हुआ जो उसके दरबार में आ गये थे। उन्होंने सुल्तान के सम्मुख यह योजना रखी कि खुरासान पर आक्रमण कर दिया जाय, क्योंकि वहाँ की राजनीतिक अवस्था बहुत शोचनीय है। सुल्तान उनके बहकावे में आ गया और उसने तीन लाख सत्तर हजार मनुष्यों की एक विशाल सेना का संगठन किया और उसे एक वर्ष का अग्रिम वेतन दे दिया। लेकिन निम्न कारणों से वह योजना कार्यान्वित न की जा सकी-

(i) खुरासान का मार्ग दुर्गम था। अतः ऐसे मार्ग को पार करना तथा वहाँ शत्रु से सफलतापूर्वक युद्ध करना सरल कार्य न था।

(ii) खुरासान की राजनीतिक स्थिति पहले की अपेक्षा अधिक सुधर गई थी।

(iii) इतनी बड़ी सेना स्थायी रूप से तभी रखी जा सकती थी, जबकि राज्य के आर्थिक साधनों में बढ़ोत्तरी की जाय। लेकिन देश की आर्थिक अवस्था को देखते हुए यह असम्भव था।

आलोचना- इस योजना में सुल्तान को बहुत अधिक धन व्यय करना पड़ा जो बिलकुल व्यर्थ गया। **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** ने ठीक ही कहा है, "इस योजना को त्याग कर भारत पर ही ध्यान केन्द्रित करने में मुहम्मद तुगलक ने बहुत बुद्धिमानी प्रदर्शित की।"

(ब) कराजल-विजय योजना (1337-38)- सुल्तान ने कराजल-विजय की योजना बनायी। उसने दिल्ली से दस पड़ावों की दूरी पर, कुमायूँ की पहाड़ियों पर अवस्थित कराजल राज्य पर आक्रमण किया। लेकिन अत्यधिक वर्षा होने तथा रसद की कमी के कारण उसे पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई और विवश होकर सुल्तान को लौटना पड़ा। कहा जाता है कि अत्यधिक वर्षा हो जाने के कारण उसकी सेना को अत्यधिक क्षति उठानी पड़ी और केवल दस अश्वारोही इस विनाश के समाचार की सूचना देने के लिए दिल्ली लौट सके। सुल्तान को अपने इस उद्देश्य में आंशिक सफलता मिली, क्योंकि सन्धि के परिणामस्वरूप राजा से

उसको युद्ध के हरजाने के रूप में पर्याप्त रकम प्राप्त हुई। फरिश्ता ने भूल से कराजल के स्थान पर चीन पर आक्रमण करने का उल्लेख किया है। इसी बात को सत्य मानकर इतिहासकारों ने सुल्तान की बहुत कटु आलोचना की है। बर्नी और इब्नबतूता ने कराजल-विजय का जो उल्लेख किया है, वह अत्यधिक विश्वसनीय है।

आलोचना- कुछ विद्वानों ने सुल्तान की इस योजना की भी बड़ी आलोचना की है जो न्याय-संगत नहीं है। इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिनमें कई राजाओं को इसी प्रकार की क्षति उठानी पड़ी है। शाहजहाँ को मध्य एशिया पर आक्रमण करने के समय अपार-धन-राशि की क्षति उठानी पड़ी थी। नेपोलियन को रूस पर आक्रमण करने के समय अत्यधिक सैनिक-क्षति हुई थी। सुल्तान को जो क्षति उठानी पड़ी, वह दैवी-प्रकोप का परिणाम थी।

योजनाओं की असफलता के कारण- मुहम्मंद तुगलक ने अपनी मौलिक बुद्धि एवं सूझ-बूझ से प्रजा की सुख-समृद्धि एवं साम्राज्य के विस्तार के उद्देश्य से योजनाएँ बनायी थीं, परन्तु उसकी सभी योजनाएँ विफल रहीं। इस विफलता के निम्नलिखित कारण थे-

(1) योजनाओं का समयानुकूल न होना- यद्यपि सुल्तान की सभी योजनाएँ तर्क-संगत थीं, किन्तु वे समयानुकूल नहीं थीं। सुल्तान की प्रजा सांकेतिक मुद्रा का महत्व नहीं समझ पाई। लोगों में सुल्तान के विरुद्ध तरह-तरह के भ्रम भी पैदा किये गए थे कि सुल्तान चाँदी के सिक्के स्वयं हरण करना चाहता है तथा उसके बदले में ताँबे के सिक्के देना चाहता है। ऐसे भ्रामक प्रचार ने लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न कर दिया।

(2) राज-कर्मचारियों का असहयोग- योजनाओं को क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व राज्य के अधिकारियों एवं कर्मचारियों का होता है। उन्होंने सुल्तान को वास्तविक स्थिति से भी अवगत नहीं कराया। दोआब में कर-वृद्धि, राजधानी परिवर्तन एवं ताँबे के सिक्कों के प्रचलन के प्रयोग राज-कर्मचारियों की निष्क्रियता के कारण सफल नहीं हो पाए। दोआब में अकाल की स्थिति से, राजधानी परिवर्तन के समय दिल्ली की जनता की जन-भावनाओं से तथा ताँबे के जाली सिक्कों के प्रचलन से सुल्तान को अँधेरे में रखा गया। उसे वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं कराया गया, बल्कि दोआब में अकाल की स्थिति में भी कर्मचारियों ने कर-वसूली में कठोरता बरती। अकाल सहायता के लिए सुल्तान ने जो भी धन प्रजा में बाँटने के लिये दिया, राज-कर्मचारियों ने उसे स्वयं हड़प लिया। वह जनता तक नहीं पहुँच सका।

(3) प्रकृति का असहयोग- योजनाओं की विफलता में प्रकृति का भी असहयोग रहा। कराजल अभियान के अवसर पर ओलावृष्टि के कारण असंख्य सैनिकों की मौत हो जाना तथा दोआब की कर-वृद्धि के समय उसका अकाल की चपेट में आना, दोनों प्राकृतिक प्रकोप थे, जिससे सुल्तान को विफलता मिली।

(4) जन-समर्थन का अभाव- सुल्तान ने सभी योजनाओं के क्रियान्वयन में जन-सुविधाओं का पूरा ध्यान रखा। राजधानी परिवर्तन के अवसर पर यात्रा सुविधा, सैनिकों को अग्रिम वेतन, अकाल के समय पीड़ित प्रजा की सहायता, ताँबे के सिक्कों के बदले में चाँदी के सिक्के देने का आदेश सुल्तान के उदार दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं परन्तु फिर भी

सुल्तान को किसी योजना में प्रजा का सहयोग नहीं मिला बल्कि हर योजना की विफलता पर प्रजा में असन्तोष बढ़ता ही चला गया।

(5) सुल्तान का व्यक्तिगत चरित्र- सुल्तान स्वयं भी विफलताओं का दोषी है। सुल्तान की अदूरदर्शिता, अधीरता एवं हठी स्वभाव के कारण उसकी कोई योजना सफल नहीं हुई। सभी योजनाएँ जल्दबाजी में लागू की गयीं। उनके प्रत्येक पक्ष का परीक्षण कर अनेक दोषों को दूर करने का प्रारम्भ से ही प्रयास नहीं किया गया। जब किया गया तो काफी विलम्ब से।

योजनाओं का प्रभाव- योजनाओं की विफलता के कारण साम्राज्य को अत्यधिक आर्थिक क्षति उठानी पड़ी। सेना की संख्या में कमी हो गई। धनाभाव एवं पर्याप्त सैनिक बल के अभाव में सुल्तान आगे चलकर विद्रोहों को दबाने में भी असफल रहा। सुल्तान के प्रति असन्तोष का वातावरण व्याप्त हो गया तथा उसकी प्रतिष्ठा को भारी आघात पहुँचा।

विद्रोह का काल
(1335-1351)

1335 के पश्चात् मुहम्मद तुगलक के भाग्य ने ऐसा पलटा खाया कि उसे जीवन के अन्तिम दिनों तक अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। इन विद्रोहों का प्रमुख कारण उसकी विभिन्न प्रकार की योजनाएँ थीं, जिससे प्रजा को अत्यधिक कष्ट मिला। अन्य कारण उसकी अत्याचारपूर्ण नीति थी जिसका प्रयोग उसने शासन के अन्तिम दिनों में किया। इसी समय भारत में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा जिसका प्रकोप 1335 से 1342 तक रहा। इन कारणों के परिणामस्वरूप चारों ओर विद्रोह होने लगे। प्रमुख विद्रोह निम्नलिखित हैं-

(1) सैयद जलालुद्दीन अहसन का विद्रोह- 1335 में जलालुद्दीन अहसन ने जो मदुरा और मालावार का सूबेदार था, विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। विद्रोह का दमन करने के उद्देश्य से सुल्तान स्वयं दक्षिण भारत गया, किन्तु वह विद्रोह का दमन करने में सफल न हो सका और जलालुद्दीन अहसन स्वतंत्र शासक की हैसियत से शासन करने लगा।

(2) अमीर हुलाजू का विद्रोह- जलालुद्दीन की सफलता से प्रोत्साहित होकर लाहौर के सूबेदार अमीर हुलाजू ने विद्रोह किया, किन्तु वह पराजित हुआ और युद्ध में मारा गया।

(3) मलिक हुशंग का विद्रोह- 1335-36 में दौलताबाद के सूबेदार मलिक हुशंग ने विद्रोह किया, किन्तु अन्त में उसने पराजय स्वीकार कर ली और सुल्तान ने उसे क्षमा कर दिया।

(4) बंगाल का विद्रोह- इसी समय बंगाल में भी राजनीतिक अव्यवस्था होने के कारण विद्रोह हुआ। फखरुद्दीन ने अपने स्वामी की हत्या कर बंगाल पर अधिकार कर लिया और अपने-आपको यहाँ का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया तथा अपने नाम के सिक्के प्रचलित किये। राज्य में अनेक झगड़ों में व्यस्त होने के कारण सुल्तान इस विद्रोह का दमन न कर सका और बंगाल उसके साम्राज्य से अलग हो गया।

(5) कड़ा के सूबेदार का विद्रोह- कड़ा के सूबेदार निजाम ने विद्रोह किया, किन्तु वह पराजित हुआ और उसकी जीवित अवस्था में खाल खिंचवा ली गई।

(6) नसरत खाँ का विद्रोह- बीदर के सूबेदार नसरत खाँ ने 1338-39 में विद्रोह किया, किन्तु अन्त में उसने आत्मसमर्पण कर दिया। उसकी जागीर छीन ली गई।

(7) अलीशाह का विद्रोह- सुल्तान ने अलीशाह को दक्षिण की मालगुजारी वसूल करने के लिए भेजा, किन्तु गुलबर्गा पहुँच कर उसने विद्रोह कर दिया। उसके विद्रोह का दमन कर दिया गया और उसे बन्दी बनाकर गजनी भेज दिया गया।

(8) आइन-उल-मुल्क मुल्तानी का विद्रोह- आइन-उल-मुल्क अवध का सूबेदार था। उसकी गणना प्रमुख अमीरों तथा पदाधिकारियों में थी। उसने 1340-41 में विद्रोह किया, क्योंकि सुल्तान ने उसे अवध से दौलताबाद भेज दिया था, किन्तु सुल्तान की सेना ने उसे परास्त कर बन्दी बना लिया। सुल्तान ने यह सोचकर कि वह हृदय से विद्रोही नहीं है, उसके अपराध को क्षमा कर दिया।

(9) मलिकशाह का विद्रोह- मुल्तान के मलिकशाह अफगान ने विद्रोह किया और मुल्तान के सूबेदार की हत्या कर अपने-आपको वहाँ का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। सुल्तान ने स्वयं उसे दण्ड देने के लिए मुल्तान की ओर प्रस्थान किया। सुल्तान के आगमन की सूचना पाते ही मलिकशाह पहाड़ों की ओर भाग गया।

(10) सुनम तथा समाना का विद्रोह- इसके बाद जाट तथा भट्टी राजपूत पहाड़ी सामन्तों ने सुनम तथा समाना में विद्रोह किया। सुल्तान ने स्वयं उन स्थानों पर विद्रोहियों को परास्त किया और विद्रोही नेताओं को बन्दी बनाकर दिल्ली ले गया और वहाँ उन्हें बलपूर्वक मुसलमान बना लिया गया।

(11) दक्षिण में विद्रोह- उत्तरी भारत के विद्रोहों के कारण दक्षिण में भी विद्रोह की आग फैल गई। 1336 में हरिहर नामक हिन्दू ने विजय नगर राज्य की स्थापना की तथा 1347 में बहमनशाह ने बहमनी राज्य की नींव डाली। 1347 में देवगिरि की प्रजा ने विद्रोह किया। फरिश्ता के अनुसार इस विद्रोह के कारण देश बर्बाद तथा उजाड़ हो गया।

(12) गुजरात में विद्रोह- विद्रोहों की अग्नि से गुजरात भी बच न सका और वहाँ भी विद्रोह की अग्नि फैल गई। तागी ने जो गुजरात में एक उच्च पद पर नियुक्त किया गया था, उत्तर भारत की अशांति को देखकर विद्रोह का झण्डा फहराया। उसने अवसर पाकर गुजरात के हाकिम का वध कर दिया और अह्निलवाड़, खम्भात, भड़ौच पर आक्रमण कर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। सुल्तान इस विद्रोह का समाचार पाकर गुजरात गया और उसने तागी विद्रोही को परास्त किया। उसने बाध्य होकर सिंध में थट्टा नामक स्थान में शरण ली। सुल्तान ने तागी को दण्ड देने के उद्देश्य से सिन्ध की ओर प्रस्थान किया, किन्तु वहाँ पहुँच कर वह बीमार पड़ गया और 20 मार्च, 1351 को उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के सम्बन्ध में इतिहासकार बदायूँनी का कथन है, ''सुल्तान को उसकी प्रजा से तथा प्रजा को सुल्तान से मुक्ति मिल गई।''

मुहम्मद तुगलक का चरित्र तथा उसके कार्यों का मूल्यांकन

मुहम्मद तुगलक की योजनाओं को दृष्टि में रखते हुए अनेक इतिहासकारों ने उसके चरित्र और कार्यों के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के मत प्रकट किये हैं। लेनपूल के अनुसार, ''मध्ययुगीन भारत का सबसे उल्लेखनीय व्यक्ति मुहम्मद तुगलक था। वह अपने समय से

आगे की बात सोचने वाला बादशाह था। वह बुराइयाँ न देखने में होशियार था लेकिन इतना होशियार न था कि उन बुराइयों को जैसी हैं वैसी ही रहने दे।' कुछ इतिहासकारों के विभिन्न मत निम्न पंक्तियों में उद्‌धृत किये जाते हैं-

डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव- ''हमारे मध्ययुगीन इतिहास में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ है जिसका चरित्र इतना मनोरंजक तथा विवादग्रस्त हो जितना कि मुहम्मद-बिन-तुगलक का था। वह कल्पना के जगत् में उड़ा करता था। कागज पर तो उसकी योजनायें ठोस होती थीं, किन्तु जब उन्हें कार्यान्वित किया जाता था तो वे निष्फल सिद्ध होती थीं।''

इब्नबतूता- ''मुहम्मद दान देने तथा रक्तपात करने में सबसे आगे है। उसके द्वार पर सर्वदा कुछ दरिद्र मनुष्य धनवान होते तथा कुछ प्राणदण्ड पाते देखे जाते हैं। अपने उदार तथा निर्भीक कार्यों तथा निर्दय और हिंसात्मक व्यवहारों के कारण जन-साधारण में उसकी बड़ी प्रसिद्धि है। यह सब होते हुए भी वह अत्यन्त विनम्र तथा न्यायप्रिय व्यक्ति है। उदारता उसका विशिष्ट गुण है।''

एलफिन्सटन- ''मुहम्मद तुगलक अपने समय का एक योग्य शासक था, किन्तु उसके सभी शासनोचित गुण व्यर्थ थे, क्योंकि उसमें कुछ ऐसी बातों का सम्मिश्रण था जिनके आधार पर सुल्तान ने ऐसे कार्य किये जिनसे यह प्रतीत होता है कि उसमें कुछ अंशों में पागलपन विद्यमान था।'

डॉ० मेंहदी हुसेन- ''एक अनुभवी डाक्टर की भाँति उसने अपने साम्राज्यवादी शरीर से दूषित रक्त निकालने के लिए अनेक आपरेशन किये, किन्तु प्रत्येक आपरेशन में उसे असफलता मिली और बुराई आयी।''

डॉ० ईश्वरीप्रसाद- ''दिल्ली के सिंहासन को सुशोभित करने वाले शासकों में वह सर्वाधिक विद्वान् एवं सुसंस्कृत शासक था।''

आधुनिक इतिहासकारों ने सुल्तान पर पागलपन का आरोप लगाया है जिनमें एलफिन्सटन सबसे पहला इतिहासकार है जिसने 'कुछ अंशों में पागलपन' का दोष आरोपित किया है। लेकिन तत्कालीन इतिहासकार बर्नी और इब्नबतूता ने सुल्तान पर पागलपन का आरोप नहीं लगाया है। अतः उसकी योजनाओं की असफलता को दृष्टि में रखते हुए मुहम्मद तुगलक पर पागलपन का आरोप लगाना उसके साथ अन्याय करना होगा। रक्त-पिपासा का आरोप भी उसी तरह निर्मूल है, क्योंकि मध्यकालीन परिस्थितियों को देखते हुए यदि उसने साधारण अपराध के लिए मृत्यु-दण्ड दिया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उस युग में रक्तपात की नीति का अनुसरण करने वाला शासक ही पूर्णरूपेण सफल हो सकता था। बर्नी और इब्नबतूता, दोनों इतिहासकारों ने सुल्तान की दान-भेंट और पुरस्कार देने की प्रवृत्ति की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उसके रक्तपात के सम्बन्ध में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि धैर्य के अभाव के कारण सुल्तान अत्यधिक क्रोधित हो जाता था और उचित तथा अनुचित मापदण्ड का सन्तुलन खो बैठता था। यही कारण है कि उसके छब्बीस वर्ष के शासन-काल में उसे कोई सफलता नहीं मिली। उसने स्वयं अपनी असफलता तत्कालीन इतिहासकार बर्नी से इन शब्दों में कहकर स्वीकार की थी, ''मैं लोगों को विद्रोह और विश्वासघात के सन्देह पर दण्ड देता हूँ। साधारण से साधारण धृष्टतापूर्ण कार्य के लिए मैं अपराधियों को दण्ड देता हूँ। मैं मृत्युपर्यन्त ऐसा करता रहूँगा। मेरा कोई ऐसा वजीर नहीं है जो मेरे द्वारा किये जाने वाले रक्तपात को रोकने के लिए नियम बना सके। लोगों को इसलिये दण्ड देता हूँ कि वे सब एक

साथ मेरे शत्रु और विरोधी हो गये हैं। मैंने उन्हें बहुत-सा धन बाँटा है, किन्तु उनका व्यवहार मित्रतापूर्ण और वफ़ादारी का नहीं हुआ है।'' सुल्तान की असफलता के सम्बन्ध में निष्पक्ष दृष्टिकोण रखते हुए, **डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** ने लिखा है, ''आखिर ऐसे सुधारों से क्या लाभ था जो समय के बहुत आगे थे और जिन्हें वह जनता नहीं समझ सकती थी जिसकी भलाई करना उसका उद्देश्य था। जब उसने अपनी मूर्खतापूर्ण योजनाओं को कार्यान्वित किया तो जनता के लिए विरोध करना स्वाभाविक था। यह कहने का कोई अर्थ नहीं कि उसका दुर्भाग्य उसकी विफलता का कारण था और इसलिये उसे अभागा शासक कहना चाहिए।'' लेकिन **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** का कहना है, ''मुहम्मद तुगलक पर अपना निर्णय देते समय हमें उसकी कठिनाइयों पर भी विचार करना चाहिए।'' इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सुल्तान की योजनाओं से उसकी प्रजा अत्यधिक पीड़ित हो चुकी थी और सुल्तान भी अपनी प्रजा के असहयोग से अत्यधिक निराश हो चुका था। इसलिये उसकी मृत्यु पर इतिहासकार **बदायूँनी** ने लिखा है, ''सुल्तान को उसकी प्रजा से तथा प्रजा को सुल्तान से मुक्ति मिल गयी।''

इब्नबतूता

अबू-अब्दुल्ला मुहम्मद जिसे साधारणतया इब्नबतूता कहते हैं, मोरक्को के टेनियर नामक स्थान में 24 फरवरी, 1304 को पैदा हुआ था। बाल्यकाल से ही वह यात्रा करने की उत्कंठा रखता था। 21 वर्ष की अवस्था में उसने अपनी यात्रा आरम्भ की। अफ्रीका तथा एशिया होता हुआ वह हिन्दूकुश के मार्ग से भारत आया। सितम्बर, 1333 में वह सिंधु नदी तक पहुँच गया। वहाँ से वह दिल्ली पहुँचा जहाँ सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और उसे दिल्ली का काजी नियुक्त किया। वह आठ वर्ष तक सुल्तान की सेवा में रहा। सुल्तान ने उसे अपना राजदूत बनाकर चीन भेजा परन्तु वह वहाँ न पहुँच सका। 1342 तक वह भारत में रहा। कई वर्षों के भ्रमण के पश्चात् 1349 में वह अपने देश लौट गया। वहाँ उसने अपने अनुभवों का लिखित वर्णन प्रकाशित किया। 1377-78 में 73 वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया।

इब्नबतूता ने सुल्तान के व्यक्तित्व के दोनों पक्षों को उजागर किया है। उसने सुल्तान की उदारता, विनम्रता और न्याय-प्रियता की सराहना की है, किन्तु उसके अत्याचारपूर्ण एवं मूर्खतापूर्ण कार्यों की आलोचना भी की है। वह सुल्तान के विषय में इस प्रकार लिखता है, ''मुहम्मद दान देने तथा रक्तपात करने में सबसे आगे है। उसके द्वार पर सर्वदा कुछ दरिद्र मनुष्य धनवान होते तथा कुछ प्राणदण्ड पाते देखे जाते हैं। अपने उदार और निर्भीक कार्यों तथा निर्दय और हिंसात्मक व्यवहारों के कारण जनसाधारण में उसकी बड़ी प्रसिद्धि है। यह सब होते हुए भी वह अत्यन्त विनम्र तथा न्यायप्रिय व्यक्ति है। उसका वैभव विशाल तथा उसका आमोद-प्रमोद साधारण सीमा को लाँघ गया है, किन्तु उदारता उसका विशिष्ट गुण है।'' इब्नबतूता ने हिन्दू और मुसलमान, दोनों के समकालीन रीति-रिवाजों पर प्रकाश डाला है। उसकी भारत-यात्रा का विवरण ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

[स] सुल्तान फिरोज तुगलक
(1351-1388)

फिरोज का जन्म 1309 में हुआ था। यह गयासुद्दीन तुगलक के भाई रजब का पुत्र था। मुहम्मद तुगलक का अपने इस चचेरे भाई फिरोज से बड़ा स्नेह था। इसलिये उसने अपने शासनकाल में उसको महत्वपूर्ण पदों पर आसीन किया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि वह फिरोज को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना चाहता था। अतः मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के उपरान्त सल्तनत के अमीरों और सरदारों के विशेष आग्रह पर वह 23 मार्च, 1351 को दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। कुछ इतिहासकारों की धारणा है कि फिरोज का राज्य पर कोई अधिकार नहीं था, बल्कि उसने राज्य का अपहरण किया। परन्तु यह धारणा इसलिये अमान्य है, क्योंकि तत्कालीन इतिहासकार बर्नी तथा अफीफ के अनुसार मुहम्मद तुगलक ने फिरोज को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था।

फिरोज की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ- फिरोज को एक बिखरा हुआ अशान्त साम्राज्य उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था। विद्रोहों का जो क्रम मुहम्मद तुगलक के समय में प्रारम्भ हुआ था वह अभी पूरी तरह थमा नहीं था। राजधानी से दूर के प्रायः सभी राज्य अपने को स्वतन्त्र घोषित कर चुके थे। सिन्ध व गुजरात में अशान्ति व्याप्त थी। मुहम्मद तुगलक की नीतियों के फलस्वरूप प्रजा, अमीरों और धार्मिक नेताओं में घोर असंतोष विद्यमान था। राजकोष खाली हो चुका था। कुल मिलाकर दिल्ली सुल्तान की स्थिति बहुत संकटग्रस्त थी। अतः फिरोज के सामने दो विकट समस्याएँ थीं जिनका समाधान होना आवश्यक था।

(1) साम्राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करना।

(2) दिल्ली सल्तनत के विघटन को रोकना।

साम्राज्य में शांति व व्यवस्था की स्थापना (शासन-सुधार)- शांति एवं व्यवस्था स्थापित करने के लिए सुल्तान ने अपना ध्यान प्रशासनिक सुधारों की ओर केन्द्रित किया। उसका प्रधान मंत्री खानेजहाँ मकबूल बहुत ही सुयोग्य प्रशासक था। उसने सुल्तान को शासन सम्बन्धी सुधारों में अत्यधिक सहयोग दिया। फिरोज ने अमीरों व उलेमा वर्ग के सहयोग से सुल्तान का पद प्राप्त किया था। अतः उसने उनको राजनीतिक क्षेत्र में प्रधानता देने तथा मुहम्मद तुगलक की नीतियों के कारण दुःखी प्रजा की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए निम्नलिखित सुधार किए-

(1) जमींदारी प्रथा की पुनर्स्थापना- जैसा कि लिखा जा चुका है कि अलाउद्दीन ने जागीर-प्रथा को समाप्त कर दिया था। लेकिन फिरोज ने पुनः इस प्रथा को प्रचलित किया। उसने समस्त राज्य को जागीरों में विभक्त किया और जागीरों को जिलों में विभक्त किया। पदाधिकारियों को नकद वेतन देने के स्थान पर जागीरें प्रदान की गयीं तथा जागीरों के अतिरिक्त उनको राज्य की ओर से भत्ते भी प्रदान किये गये। इस प्रथा का परिणाम यह हुआ कि जागीरदारों की शक्ति बहुत सुदृढ़ हो गयी और वे विशाल सम्पत्ति के अधिकारी बन गये। कालांतर में ये सम्पन्न जागीरदार राज्य की जड़ों को खोदने में लग गये और स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का प्रयास करने लगे। जागीरदारी व्यवस्था सुल्तान एवं उसके राज्य, दीनों के लिए दुःखदायी सिद्ध हुई।

(2) कर-व्यवस्था- सुल्तान की धारणा थी कि अपरिमित कोष से जनता की समृद्धि अधिक महत्वपूर्ण है, अतः किसानों की कष्टप्रद अवस्था को दूर करने के लिए उसने 23 करों को समाप्त कर दिया और शरियत के अनुसार केवल चार कर खिराज, जकात, जजिया और खुम्स लगाये। खिराज भूमि-कर था। जकात 2 1/2 प्रतिशत की दर से मुसलमानों से लिया जाने वाला आयकर था, जो उन्हीं की सुविधा एवं सहायता के लिए व्यय किया जाता था। जजिया धार्मिक कर था जो हिन्दू प्रजा से लिया जाता था। उसके शासन में ब्राह्मण भी इस कर से मुक्त न थे। खुम्स, युद्ध में प्राप्त लूट के धन का 1/5 भाग था, शेष 4/5 भाग सैनिकों में वितरित कर दिया जाता था। इन करों के अतिरिक्त सिंचाई-कर भी वसूल किया जाता था जो खेतों की उपज का 10 प्रतिशत होता था। उपर्युक्त आय के अतिरिक्त दिल्ली के आस-पास लगे हुए 1200 बागों से एक लाख अस्सी हजार की वार्षिक आय होती थी। इन सुधारों के परिणामस्वरूप जनता की भौतिक समृद्धि बढ़ी और राज्य की आय में पर्याप्त वृद्धि हुई।

फिरोज के शासन-सुधार

1. जागीरदारी प्रथा की पुनर्स्थापना
2. कर-व्यवस्था
3. सिंचाई-व्यवस्था
4. सैनिक-व्यवस्था
5. न्याय-व्यवस्था
6. सार्वजनिक निर्माण कार्य
7. दास-व्यवस्था
8. शिक्षा और साहित्य

(3) सिंचाई-व्यवस्था- सुल्तान ने कृषि की उन्नति के लिए अनेक नहरों का निर्माण कराया। अफीफ ने केवल दो नहरों का उल्लेख किया है जिनमें एक यमुना नदी से और दूसरी सतलज से निकाली गई थी। लेकिन फरिश्ता ने चार नहरों का उल्लेख किया है जिनमें पहली नहर सतलज से घग्घर तक जाती थी। दूसरी मंडवी से हासी तक बहती थी। तीसरी घग्घर से फिरोजाबाद तक जाती थी और चौथी नहर यमुना से निकलकर फिरोजाबाद से आगे तक सिंचाई करती थी। इन नहरों के अतिरिक्त फिरोज ने 150 कुँओं का निर्माण कराया। सिंचाई की इस सुव्यवस्था से कृषि में बड़ी उन्नति हुई और किसानों की आर्थिक अवस्था उन्नत हो गई।

(4) सैनिक-व्यवस्था- सुल्तान की सैनिक व्यवस्था सामन्तशाही प्रथा पर आधारित थी। उसकी विशाल सेना में 80 या 90 हजार अश्वारोही थे। सैनिकों को जागीरों के रूप में वेतन दिया जाता था। जिन सैनिकों को वेतन अथवा जागीरें नहीं दी जाती थीं, उन्हें अपने जीवन-यापन के लिए भूमि-कर का कुछ भाग वसूल करने का अधिकार प्राप्त था। सुल्तान का व्यवहार अपने सैनिकों के साथ बड़ा उदारतापूर्ण था। उसने उन निर्बल और वृद्ध सैनिकों को भी सेना में बना रहने दिया जो सैनिक कार्यों में भाग लेने के योग्य नहीं रह गये थे। एक नियम के अनुसार सैनिकों के वृद्ध हो जाने पर उनके पुत्र, दामाद वंशानुगत सैनिक होने लगे और योग्यता तथा शारीरिक क्षमता का सिद्धान्त ही समाप्त हो गया। सुल्तान की सैनिक-व्यवस्था तुगलक साम्राज्य के पतन का मूल कारण बनी। अफीफ ने सत्य ही लिखा है, ''युवक सैनिक घर में आराम करते थे और वृद्ध उनके स्थान पर अश्वारोहण करते थे।''

(5) न्याय-व्यवस्था- सुल्तान की न्याय-व्यवस्था इस्लामी कानूनों पर आधारित थी। दिल्ली में प्रधान काजी और प्रान्तों तथा अन्य नगरों में काजी के हाथों में न्याय-व्यवस्था थी।

शरियत के अनुसार मुफ्ती कानून की व्याख्या करता था और काजी फैसला सुनाता था। शारीरिक दण्ड देने की प्रथा समाप्त कर दी गई थी। कुछ अपराधों के लिए कोई दण्ड ही निर्धारित नहीं था। इस प्रकार की उदारता साम्राज्य के लिए अत्यधिक घातक सिद्ध हुई।

(6) सार्वजनिक निर्माण-कार्य- फिरोज ने सार्वजनिक हित के लिए अनेक कार्य किये। उसको भवन बनवाने तथा बाग लगवाने का विशेष शौक था। फरिश्ता के अनुसार उसने 845 भवनों का निर्माण कराया था। कहा जाता है कि उसने दिल्ली के समीप जो बाग लगवाये उनकी संख्या 1200 थी। उसने फिरोजाबाद, फतेहाबाद, हिसार, जौनपुर और फिरोजपुर आदि महत्वपूर्ण नगरों की नींव डाली। उसने चार मस्जिदों, तीस महलों, दो सौ सरायों, पाँच जलाशयों, पाँच असपतालों, सौ कब्रों, दस स्नानागारों, दस समाधियों और सौ पुलों का निर्माण कराया। उसने अशोक के दो स्तम्भों को मूल स्थान से हटाकर दिल्ली में पुनः स्थापित कराया।

(7) दास-व्यवस्था- सुल्तान को दास रखने का अत्यधिक शौक था। उन्हें फौज में या महलों में कार्य करने के लिए रखा जाता था। इन गुलामों की कुल संख्या एक लाख अस्सी हजार तक थी। उनमें चालीस हजार शाही महल के पहरेदार थे और बारह हजार कारीगर गुलाम थे। सुल्तान ने उनकी व्यवस्था के लिए एक अलग विभाग की स्थापना की। उनको अपनी इच्छानुसार शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी तथा उन्हें राज्य की ओर से रोजगार दिलाने की भी व्यवस्था थी। किन्तु यह दासप्रथा तुगलक साम्राज्य के पतन के लिए विशेष उत्तरदायी सिद्ध हुई, क्योंकि उलेमाओं की भाँति गुलामों ने भी शासन-व्यवस्था में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया।

(8) शिक्षा और साहित्य- फिरोज ने जनकल्याण को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र में भी रुचि प्रदर्शित की। उसने अनेक मदरसों व मकतबों का निर्माण कराया। वह विद्वानों व साहित्यकारों का आदर करता था। बर्नी और अफीफ-जैसे प्रसिद्ध इतिहासकारों को उसके दरबार में सम्मानित स्थान प्राप्त था। बर्नी ने उसी के संरक्षण में 'फतवा-ए-जहाँदारी' तथा 'तारीख-ए-फिरोजशाही' नामक ग्रन्थों की रचना की। सुल्तान ने स्वयं 'फतूहात-ए-फिरोजशाही' नाम से अपनी आत्म-कथा लिखी। अब्दुल बाकी के अनुसार उसने 50 तथा निजामुद्दीन एवं फरिश्ता के अनुसार 30 मकतबों का निर्माण कराया। उसने संस्कृत के ग्रंथों का फारसी भाषा में अनुवाद करवाया। उनमें से एक ग्रन्थ का नाम 'दलायल-ए-फिरोजशाही' रक्खा गया।

सल्तनत के विघटन को रोकना (सैनिक अभियान)- मुहम्मद तुगलक के पश्चात् बिखरती हुई दिल्ली सल्तनत को सम्भालने के लिए एक दृढ़ एवं कठोर शासक की आवश्यकता थी। फिरोज में वह क्षमता नहीं थी। वह एक उदार व्यक्ति था और उसे युद्धों से घृणा थी। इसलिये उसने सल्तनत से अलग हुए प्रदेशों को जीतने का कोई प्रयास नहीं किया। उसने दक्षिण पर पुनः अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए कोई अभियान नहीं छेड़ा। बंगाल को भी वह सल्तनत में सम्मिलित नहीं कर सका। उसने केवल बचे हुए राज्य को सुरक्षित रखने का प्रयास किया। इसके लिए उसने निम्नलिखित सैनिक अभियान किए-

(1) बंगाल पर आक्रमण- 1352 में बंगाल के सूबेदार हाजी इलियास ने शम्सुद्दीन की उपाधि धारण कर स्वयं को वहाँ का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। अतः फिरोज ने

1353-54 में एक विशाल सेना लेकर बंगाल पर आक्रमण कर दिया। शाही सेना के आक्रमण से भयभीत होकर इलियास ने अपनी राजधानी पांडुवा को छोड़कर इकदला दुर्ग में शरण ली। सुल्तान ने अपनी सेना को पीछे हटने का आदेश दिया। लौटती हुई सेना पर इलियास ने आक्रमण किया, किन्तु पराजित हुआ और पुनः इकदला दुर्ग में जाकर शरण ली। सुल्तान ने इकदला के दुर्ग का घेरा डाला, लेकिन मुसलमानों की स्त्रियों और बच्चों का रोना सुनकर उसका कोमल हृदय द्रवित हो उठा। उसने अपनी सैनिक अयोग्यता को प्रकट करते हुए कहा, "अब मैं दुर्ग की विजय नहीं करूँगा, क्योंकि अधिक मुसलमानों को मौत के घाट उतार कर कयामत के दिन क्या उत्तर दूँगा।" किन्तु सेनानायक तातार खाँ ने दुर्ग पर अधिकार करने पर जोर दिया। पर सुल्तान ने यह कहकर उसकी बात मानने से इन्कार कर दिया कि बंगाल एक दलदली प्रान्त है। उस पर अधिकार करने से कोई लाभ नहीं है। इस प्रकार अपनी दुर्बलता का परिचय देकर वह दिल्ली लौट गया।

1359 में फिरोज ने फखरुद्दीन के दामाद जफर खाँ की मदद के बहाने पुनः बंगाल पर आक्रमण किया। इस बीच इलियास की मृत्यु हो गई थी और उसका पुत्र सिकन्दर शासन कर रहा था। सिकन्दर ने भी अपने पिता की तरह इकदला में जाकर शरण ली। अन्त में, उसे सुल्तान से सन्धि करनी पड़ी। किन्तु इस बार भी सुल्तान की दुर्बलता के कारण बंगाल साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया गया।

(2) जाजनगर पर आक्रमण- बंगाल से लौटते समय 1360 में सुल्तान ने जाजनगर पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का कारण उसकी धार्मिक प्रवृत्ति की संकीर्णता थी। पुरी का जगन्नाथ मन्दिर विध्वंस कर दिया गया और उसकी मूर्ति अपमानित कर समुद्र में फेंक दी गई। राजा ने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली। इसके उपरान्त सुल्तान राजधानी लौट गया।

सैनिक अभियान

1. बंगाल पर आक्रमण
2. जाजनगर पर आक्रमण
3. नगरकोट की विजय
4. थट्टा की विजय

(3) नगरकोट की विजय- 1360 में सुल्तान ने नगरकोट पर आक्रमण किया, क्योंकि वह मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के उपरान्त स्वतन्त्र हो गया था। शाही सेना ने दुर्ग को घेर लिया। छः महीने के घेरे के उपरान्त राजा ने विवश होकर सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली और वार्षिक कर देने का वचन दिया। लूट के माल में सुल्तान को 1300 संस्कृत के ग्रन्थ मिले जिनमें से कुछ ग्रन्थों का अनुवाद फारसी में करवाया गया।

(4) थट्टा की विजय- थट्टा की विजय के लिए 1361-62 में सुल्तान ने 90, 000 अश्वारोही, असंख्य पैदल, 480 हाथी तथा 5 सहस्र नावों को लेकर सिन्ध पर आक्रमण किया। वहाँ के शासक जाम बबनिया ने बड़ी वीरता से शाही सेना का मुकाबला किया। इसी बीच महामारी के प्रकोप के कारण शाही सेना की बड़ी क्षति हुई और उसे खाद्य सामग्री के लिए गुजरात की ओर लौटना पड़ा। परन्तु मार्ग-दर्शकों के विश्वासघात के कारण उसकी सेना कच्छ के रन में फँस गई जहाँ से छह महीने के बाद निकल सकी। भाग्यवश प्रधान मन्त्री खानेजहाँ मकबूल की भेजी हुई अतिरिक्त सेना आ गई जिसकी सहायता से पुनः थट्टा पर आक्रमण किया गया। अन्त में जाम ने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली और फिरोज

दिल्ली लौट गया। इस बार भी सुल्तान की दुर्बलता के कारण सिन्ध, दिल्ली साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया गया। इस आक्रमण के विषय में **डॉ० ईश्वरी प्रसाद** का कथन है, "थट्टा का अभियान फिरोज तुगलक के शासन-काल की अति मनोरंजक घटना है। यह सुल्तान की मूर्खता एवं कूटनीतिक अनभिज्ञता का अपूर्व उदाहरण है।"

तुगलक-साम्राज्य के पतन में फिरोज तुगलक का उत्तरदायित्व

फ़िरोज तुगलक के शासन सुधार और सैनिक अभियान नीति की विवेचना करने के पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि क्या उसकी शासन-सम्बन्धी नीतियों ने तुगलक साम्राज्य को पतन की ओर उन्मुख किया ? इसमें सन्देह नहीं है कि तुगलक साम्राज्य को पतन की ओर अग्रसर करने में उसका तथा उसकी नीतियों का प्रमुख उत्तरदायित्व था।

(1) फिरोज तुगलक में सैनिक-गुणों का पूर्ण अभाव था। वह उन प्रान्तों को पुनः नहीं जीत सका जो मुहम्मद तुगलक के शासनकाल के अन्तिम दिनों में स्वतन्त्र हो गये थे। उसका हृदय इतना अधिक कमजोर था कि मुसलमान स्त्री-बच्चों के रोने पर द्रवित होकर किसी स्थान को जीतने की धारणा को ही त्याग देता था। भला ऐसा निर्बल सुल्तान किस प्रकार तुगलक साम्राज्य को दृढ़ता प्रदान कर सकता था।

(2) सुल्तान की शासन-नीति इतनी अधिक उदार हो गयी थी कि प्रजा के हृदय में उसके प्रति भय नहीं रह गया था तथा भ्रष्टाचार और भुखमरी का बोलबाला था। इन बुराइयों को रोकने के लिए कोई कदम उठाना तो दूर रहा बल्कि उसने स्वयं इन्हें प्रोत्साहित किया। भ्रष्टाचार, घूसखोरी और अकर्मण्यता के सम्मुख तुगलक साम्राज्य कितने दिनों तक स्थायी रह सकता था।

(3) फिरोज ने सेना को स्थायी बनाये रखने के लिए जो नीति अपनायी वह साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण बनी। उसकी नीति के अनुसार सैनिकों के परिवार वालों को भी उनकी मृत्यु के पश्चात् सेना में स्थान प्राप्त हो जाता था। योग्यता और शारीरिक क्षमता होने का कोई प्रश्न ही नहीं था। इस प्रकार योग्य व्यक्ति तो घर पर आराम करते थे तथा निकम्मे व्यक्ति युद्धक्षेत्र में जाते थे।

(4) सुल्तान द्वारा जागीर-प्रथा को पुनः स्थापित करने के कारण साम्राज्य के अन्दर अनेक जागीरें स्थापित हो गई और जागीरदारों की शक्ति बढ़ गई। वे स्वयं एक स्वतन्त्र राज्य बनाने के उद्देश्य से प्रायः प्रोत्साहित होते रहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि जागीरदारों का महत्व बढ़ गया और सुल्तान का कम हो गया।

(5) फिरोज की धार्मिक नीति तुगलक साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई। उसने हिन्दुओं के मन्दिरों को विध्वंस कराया तथा उनके देवताओं को भी अपवित्र किया। उसने ब्राह्मणों तक से जजिया वसूल किया जबकि उसके पूर्व के सुल्तानों ने ब्राह्मण वर्ग को इस कर से मुक्त रखा था। अतः हिन्दुओं में राज्य के विरुद्ध असन्तोष का बढ़ना स्वाभाविक था। उसने मुल्ला-मौलवियों को इतना अधिक महत्व प्रदान किया कि उनका राज्य में प्रभाव अधिक बढ़ गया और राज्य के कार्यों को कार्यान्वित करने में बाधा पड़ने लगी।

(6) फिरोज ने जिन दासों को प्रोत्साहन दिया उन्हीं के कार्यों से तुगलक साम्राज्य की नींव कमजोर हुई। उनकी संख्या एक लाख अस्सी हजार थी। वे राज्य के कार्यों में हाथ बँटाते

थे। इसलिये राज्य का कार्य ठीक प्रकार से नहीं हो पाता था। इन दासों के ऊपर राज्य का बहुत सा धन व्यय होता था। **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** के अनुसार, ''यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि दासों की संख्या में भयंकर वृद्धि हो गई थी और परिणाम यह हुआ कि साम्राज्य के विघटन का यह भी एक कारण बना।''

उपरोक्त विवेचन के पश्चात् संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उदार सुल्तान स्वयं तुगलक साम्राज्य के पतन का कारण बना, क्योंकि उसके अनेक सुधारों ने केन्द्रीय सत्ता को अत्यधिक शक्तिहीन बना दिया। फिरोज के सम्बन्ध में यह कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध होता है, ''जब लोग किसी शासक को उदार बतलावें तो समझ लो कि उसका शासन विफल रहा।''

फिरोज का चरित्र- तत्कालीन इतिहासकारों ने फिरोज के चरित्र की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। बर्नी लिखता है, ''मुईनुद्दीन मुहम्मद-बिन-साम के बाद दिल्ली का कोई शासक फिरोज के समान नम्र, सत्य का प्रेमी, विश्वसनीय तथा धार्मिक नहीं हुआ।'' शम्मए-शीराज अफीफ ने फिरोज के विषय में लिखा है, ''वह पक्का मुसलमान था और हिन्दू प्रजा को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित करता था।'' तारीख-ए-मुबारकशाही के लेखक ने लिखा है, ''नौशे खाँ के बाद दिल्ली का कोई शासक इतना न्यायपूर्ण, दयालु, धर्मात्मा एवं सुन्दर भवनों का प्रेमी न रहा था।'' मोरलैण्ड का कथन है ''उसका शासन एक छोटा सा स्वर्णयुग था जिसका दर्शन आज भी उत्तरी भारत के गाँवों में मिल जाता है।''[1] हेनरी ईलियट तथा एलफिंस्टन ने फिरोज को 'सल्तनत युग का अकबर' कहा है। लेकिन **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** का कथन है, ''फिरोज में उस विशाल हृदय तथा विस्तीर्ण मस्तिष्क वाले सम्राट (अकबर) की प्रतिभा का शतांश भी नहीं था, जिसने सार्वजनिक हितों के उच्च मंच से सभी सम्प्रदायों और धर्मों के प्रति शान्ति, सद्भावना तथा सहिष्णुता का सन्देश दिया।''

फिरोज तुगलक पक्का मुसलमान था। उसके दरबार में मुसलमानों तथा मौलवियों को विशेष सम्मान प्राप्त था। वह दिल्ली के शासकों में पहला शासक था जिसने सर्वप्रथम ब्राह्मणों पर जजिया लगाया और हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित किया। वह स्वयं अपनी आत्मकथा में लिखता है, ''मैंने अपनी काफिर प्रजा को पैगम्बर का धर्म स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित किया और घोषणा की कि प्रत्येक व्यक्ति को जो अपना धर्म छोड़कर मुसलमान हो जाएगा, जजिया से मुक्त कर दिया जाएगा। यह सूचना साधारण लोगों के कानों तक पहुंची और बड़ी संख्या में हिन्दू उपस्थित हुए और उन्हें इस्लाम का सम्मान प्रदान किया गया।'' हिन्दू धर्म के प्रति उसके विचार बहुत संकीर्ण थे। उसकी दृष्टि में इस्लाम धर्म की अपेक्षा किसी अन्य धर्म, विशेषकर हिन्दू धर्म का कोई स्थान नहीं था। उसने नगरकोट की विजय के समय ज्वालामुखी के मन्दिर के रक्षकों से कहा था, ''इस पत्थर की पूजा से क्या लाभ है ? इसकी प्रार्थना करने से तुम्हारी इच्छा की पूर्ति हो सकती है ? हमारे पवित्र विधान में कहा गया है कि जो इसके विरुद्ध कार्य करते हैं, वे नरक में जायेंगे।'' इन्हीं विचारों का परिणाम था कि उसने पुरी के जगन्नाथ मन्दिर की मूर्ति को अपमानित कर समुद्र में फेंकवा दिया था।

---

1. ''His reign was a short golden age which still Lingers vaguely in the villages of northern India.'' -Moreland

दिल्ली के मुसलमानों में फिरोज पहला सुल्तान था जिसने अपनी प्रजा की चतुर्मुखी भौतिक समृद्धि के लिए हरसम्भव प्रयास किया। उसने अनेक करों का अन्त करके तथा कृषि में अनेक सुधार करके अपनी उदारता का परिचय दिया। इसके विषय में **अफीफ** लिखता है, "इस प्रकार प्रजा धनी और सन्तुष्ट होने लगी। उनके घरों में अनाज और सोना जमा होने लगा। ऐसी कोई औरत न थी जिसके पास गहने न हों और ऐसा कोई घर न था जिसमें अच्छे बिस्तरे और गद्देदार पलंग न हों। धन-दौलत बढ़ने लगी और सब आराम से रहने लगे। दिल्ली के राज्य पर ईश्वर की कृपा थी।" उसने दिल्ली में एक चिकित्सालय की स्थापना की जहाँ रोगियों को निःशुल्क औषधि देने की व्यवस्था थी। वह दानी था। उसने अनेक निर्धन मुसलमानों की कन्याओं का विवाह सम्पन्न कराया और मुसलमान विधवाओं के जीवनयापन के लिए प्रतिवर्ष हजारों रुपये आर्थिक सहायता के रूप में प्रदान किये। उसने दण्ड विधान के अन्तर्गत अंगच्छेद का दण्ड समाप्त कर दिया। वह विद्वानों का बड़ा आदर तथा सत्कार करता था। उसकी राजसभा में अनेक विद्वानों को सम्मानित स्थान प्राप्त था।

कट्टर सुन्नी मुसलमान होने के कारण उसका जीवन बड़ा सादा था। उसे राजसी तड़क-भड़क से बड़ी घृणा थी। सोने और चाँदी के बर्तनों के स्थान पर वह मिट्टी के बर्तनों में भोजन करता था। कुरान और अन्य मुस्लिम-संस्कारों में दृढ़ आस्था रखते हुए भी वह सुरा-पान नहीं छोड़ सका था।

सुल्तान फिरोज के चरित्र का एक ऐसा भी पहलू है जो उसके गुणों को ढँक लेता है। उसमें योग्य सेनापति तथा वीर सैनिक के गुणों का नितान्त अभाव था। वह स्वभाव से बड़ा डरपोक था। वह स्त्रियों और बच्चों के क्रन्दन से ही द्रवित होकर किसी स्थान को विजय करने की धारणा को छोड़ देता था। उसकी उदार तथा दुर्बल नीति ने राज्य में भ्रष्टाचार, घूसखोरी को खूब पनपने दिया। कहा जाता है कि एक बार सुल्तान ने एक सैनिक को, सैनिक विभाग के लेखक को घूस देने के लिए एक सोने का टंका दे दिया था, क्योंकि उसने सैनिक के अस्वस्थ घोड़े का निरीक्षण करने से इन्कार कर दिया था। इसी प्रकार जब टकसाल के अध्यक्ष ने सिक्कों में अनुपात से ज्यादा घटिया धातु का सम्मिश्रण करके राज्य का बहुत-सा धन स्वयं ले लिया तब भी सुल्तान ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इससे अधिक निन्दनीय कार्य सुल्तान का और क्या हो सकता था ? **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** के अनुसार, "कोई भी निष्पक्ष इतिहासकार उसकी उत्पीड़क धर्मान्धता, अपराधों की अवहेलना, शासनतन्त्र की दक्षता के प्रति उसका उपेक्षाभाव, उसकी विचारहीन दयालुता का जिन सबने मिलकर राज्य की प्रतिष्ठा को समाप्त कर दिया था, कभी समर्थन नहीं कर सकता।" इन्हीं विचारों का समर्थन करते हुए **डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी** भी लिखते हैं, "विधाता की कुटिल गति इतिहास के इस दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य में प्रकट हुई कि जिन गुणों ने फिरोज को लोकप्रिय बनाया, वे ही दिल्ली सल्तनत की दुर्बलता के लिए जिम्मेदार सिद्ध हुए।"

तैमूर का आक्रमण (1398-99)

अमीर तैमूर का जन्म 1336 में ट्रांस ओक्सियाना प्रदेश के केश नामक स्थान में हुआ था। वह अमीर तुरगे का पुत्र था जो तुर्की की एक उच्च जाति बरलास की गुरकन शाखा का

प्रमुख था। 1369 में जब उसकी आयु केवल तैंतीस वर्ष की थी, समरकन्द के सिंहासन पर बैठा। अत्यधिक महत्वाकांक्षी होने के कारण उसने मध्य एशिया के विभिन्न प्रदेशों-ईरान, अफगानिस्तान और मेसोपोटामिया पर आक्रमण करके उन्हें विजित कर लिया। इन सफलताओं ने उसकी विजय-लालसा को भारत-विजय के लिए आकृष्ट किया क्योंकि उस समय हिन्दुस्तान में अराजकता फैली हुई थी। भारत पर आक्रमण करने के सम्बन्ध में परामर्श लेने के लिए उसने उलेमाओं तथा योद्धाओं की एक युद्ध समिति बुलाई। सभी लोगों ने भारत की अतुल सम्पत्ति की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया, किन्तु वहाँ स्थायी रूप से बस जाने की निन्दा की। इस पर तैमूर ने युद्ध समिति के सदस्यों से अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए कहा, ''हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने में मेरा उद्देश्य विधर्मियों के विरुद्ध अभियान करना है, जिससे मुहम्मद के आदेश के अनुसार हम इस देश के निवासियों को सच्चे दीन का अनुयायी बना सकें और इस देश के कुफ एवं बहुदेववाद का कूड़ा-करकट साफ कर सकें और जिससे हम उनके मन्दिरों एवं मूर्तियों को नष्ट कर दें तथा खुदा की नजरों में 'गाजी' एवं 'मुजाहिद' बन जाएँ।'' वास्तव में हिन्दुस्तान को जीत कर उस पर शासन करने की उसकी कोई इच्छा न थी।

प्रारम्भ में तैमूर ने अपने पौत्र पीर मुहम्मद को भारत पर आक्रमण करने के लिए भेजा। उसने सिन्ध को पार कर 1398 में कच्छ तथा मुल्तान पर अधिकार कर लिया। इसके बाद तुरन्त ही तैमूर ने स्वयं एक विशाल सेना के साथ समरकन्द से चलकर 24 सितम्बर, 1398 को सिन्धु नदी को पार किया और अक्टूबर में तलम्बा नगर को खूब लूटा तथा वहाँ के निवासियों का वध किया। इसके उपरान्त वह पाकपटन, दिपालपुर, भटनेर, सिरसा और कैथल आदि नगरों को लूटता और वहाँ के लोगों की हत्या करता हुआ दिसम्बर माह के प्रथम सप्ताह में दिल्ली के समीप आ पहुँचा। दिल्ली की शाही सेना से युद्ध करने के पूर्व उसने एक अत्यधिक नीच कृत्य यह किया कि उसने उन एक लाख हिन्दुओं का वध करा दिया जिन्हें दिल्ली आते समय मार्ग में बन्दी बनाया था। दिल्ली के सुल्तान महमूद तथा उसके प्रधान मन्त्री मल्लू इकबाल ने दस हजार अश्वारोहियों, चालीस हजार पदातियों तथा एक सौ पचास हाथियों के साथ तैमूर की सेना का मुकाबला किया, किन्तु शत्रु सेना के भीषण संग्राम के सम्मुख शाही सेना ठहर न सकी और बुरी तरह परास्त हुई। सुल्तान महमूद गुजरात की ओर और मल्लू इकबाल बरन की ओर भाग गये। तत्पश्चात् 18 दिसम्बर, 1398 को तैमूर ने राजधानी दिल्ली पर अधिकार कर लिया। दिल्ली के निवासियों की प्रार्थना पर तैमूर ने जनता के साथ सद्व्यवहार करने की बात स्वीकार कर ली, किन्तु किसी कारणवश तैमूर के सैनिकों से दिल्ली के नागरिकों का संघर्ष हो गया। बस फिर क्या था ? तैमूर ने अपने सैनिकों को दिल्ली लूटने तथा वहाँ के निवासियों की हत्या करने का आदेश दे दिया जो तीन दिन तक लगातार चलता रहा। हजारों निर्दोष व्यक्तियों का वध कर दिया गया और हजारों स्त्री-पुरुष और बच्चों को दास बना लिया गया। इतिहासकार शर्फुद्दीन लिखता है, ''हिन्दुओं के सिरों के ऊँचे-ऊँचे मीनार खड़े किये गये और उनके शवों को हिंसक पशुओं तथा पक्षियों ने अपना आहार बनाया . . . . . . जो नगरनिवासी जीवित बच रहे उनको बन्दी बनाया गया। विजेता को अतुल

धन-राशि लूट में प्राप्त हुई। प्रत्येक सैनिक धनी हो गया और ऐसा दरिद्र कोई न रहा जिसके पास कम-से-कम बीस गुलाम भी न हों।''

पन्द्रह दिन तक दिल्ली में ठहरने के उपरान्त 1 जनवरी, 1399 को तैमूर ने दिल्ली से समरकन्द के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में उसने मेरठ और हरिद्वार आदि नगरों को खूब लूटा तथा शिवालिक पहाड़ के हिन्दू राजा को पराजित किया। वहाँ लूट में उसे अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई। लाहौर, दिपालपुर और मुल्तान की जागीरें खिज्र खाँ के अधिकार में छोड़कर 19 मार्च, 1399 को सिन्धु नदी को पार किया और स्वदेश समरकन्द लौट गया तथा अपने साथ कई हजार कारीगर और शिल्पी भी ले गया जिन्होंने उसकी राजधानी समरकन्द में प्रसिद्ध जामा मस्जिद का निर्माण किया।

तैमूर के आक्रमण का प्रभाव- **डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** के अनुसार, ''भारत को जितनी क्षति तथा दुःख तैमूर ने पहुँचाया उससे पहले किसी आक्रमणकारी ने एक आक्रमण में नहीं पहुँचाया था।'' निस्सन्देह तैमूर का आक्रमण बहुत भयंकर तथा विनाशकारी था। उसके आक्रमण का भारतीय इतिहास पर विशेष प्रभाव पड़ा, जो निम्नलिखित है-

(1) इस आक्रमण से सिन्ध से गंगा तक का प्रदेश इतना अधिक बर्बाद हो गया कि पूर्व समृद्धि आने में अनेक वर्ष लगे। दिल्ली तो मुगल साम्राज्य होने पर ही पुनः पनप सकी।

(2) तैमूर के आक्रमण से दिल्ली साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। प्रान्तपति (सूबेदार) स्वतन्त्र हो गए। उसका परिणाम यह हुआ कि इन स्वतन्त्र शासकों ने अपने दरबार में साहित्यकारों तथा कलाकारों को आश्रय दिया। उन्होंने अपनी रुचि के अनुसार साहित्य और कला को संरक्षण प्रदान कर उसके विकास और प्रसार में सहयोग दिया।

(3) हमारे देश के लाखों निर्दोष व्यक्ति मारे गये।

(4) देश के व्यापार, उद्योग-धन्धों तथा कृषि की दशा बड़ी शोचनीय हो गई।

(5) शत्रु के सैनिकों ने फसलों का जो विनाश किया, उसके परिणामस्वरूप देश में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ गया।

(6) लाखों शवों के सड़ने से जल और वायु दूषित हो गई जिसके परिणामस्वरूप भयानक महामारी फैल गई और सहस्रों व्यक्ति मर गए। **बदायूँनी** लिखता है, ''जो लोग बच रहे थे वे अकाल और महामारी के कारण मर गए और दो महीने तक दिल्ली में कोई चिड़ियाँ भी अपने पंख न डुला सकी।''

(7) बहुत से मन्दिरों और भवनों का विनाश हो गया जिससे देश की कला को बहुत क्षति पहुँची।

(8) इस आक्रमण से दिल्ली साम्राज्य नष्ट हो गया। 1414 में महमूद की मृत्यु के पश्चात् तैमूर के प्रतिनिधि खिज्र खाँ ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और तथाकथित सैयद-वंश की नींव डाली।

तुगलक-साम्राज्य के पतन के कारण

तुगलक-साम्राज्य के पतन तथा विनाश के सम्बन्ध में निम्नलिखित कारणों का उल्लेख किया जा सकता है-

(1) विशाल साम्राज्य- मुहम्मद तुगलक के समय में तुगलक साम्राज्य बहुत विस्तृत हो गया था, जिससे यातायात के साधनों के अभाव में पूर्ण नियन्त्रण रखना असम्भव था। परिणामतः मुहम्मद तुगलक के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में बहुत से प्रान्तों ने दिल्ली सल्तनत से सम्बन्ध-विच्छेद कर अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। इन प्रान्तों की स्वतन्त्रता का प्रभाव तुगलक साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुआ।

(2) मुहम्मद तुगलक का चरित्र तथा उसकी नीति- तुगलक साम्राज्य के पतन में मुहम्मद तुगलक का चरित्र तथा उसकी नीति भी सहायक सिद्ध हुई। वह बहुत क्रोधी स्वभाव का था। जब उसे क्रोध आता था तो उसे उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं रह जाता था। इससे उसके और प्रजा के मध्य कभी मतैक्य स्थापित नहीं हो सका। उसकी अनेक असफल योजनाओं के कारण प्रजा को विशेष कष्टों का सामना करना पड़ा और उसमें व्यापक असन्तोष व्याप्त हो गया। उसके असन्तोष से प्रान्तीय सूबेदारों ने विशेष लाभ उठाया। समय-समय पर उन्होंने अपने स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना के लिए दिल्ली साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह किये। इस विद्रोह के परिणामस्वरूप दक्षिण में विजयनगर तथा बहमनी राज्य की स्थापना हुई और बंगाल तथा सिन्ध के सूबेदारों ने भी राज्यों की स्थापना कर ली।

तुगलक-साम्राज्य के पतन के कारण

1. विशाल साम्राज्य
2. मुहम्मद तुगलक का चरित्र तथा उसकी नीति
3. उत्तरकालीन तुगलक शासकों की अयोग्यता
4. योग्य सेनापतियों तथा मन्त्रियों का अभाव
5. तैमूर का आक्रमण

(3) उत्तरकालीन शासकों की अयोग्यता- फिरोज के पश्चात् जितने शासक हुए वे सभी अयोग्य शासक सिद्ध हुए। वे तुगलक साम्राज्य को छिन्न-भिन्न होने से न रोक सके।

(4) योग्य सेनापतियों तथा मंत्रियों का अभाव- तुगलक साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण यह भी था कि इस काल में कोई ऐसा योग्य सेनापति न हुआ जो साम्राज्य को सुरक्षित रख सकता और विनष्ट होने से बचा सकता। इसी प्रकार कोई ऐसा बुद्धिमान प्रधान मन्त्री भी न हुआ जो साम्राज्य को संगठित करने का प्रयास करता और मुहम्मद तुगलक जैसे निरंकुश शासक को उचित परामर्श देकर प्रजा का कल्याण किया होता, बल्कि ये लोग अपने स्वार्थ-सिंद्धि के लिए अनेक षड्यन्त्र और कुचक्र रचते रहे।

(5) तैमूर का आक्रमण- तैमूर का आक्रमण तुगलक वंश के शासन के लिए प्राणघातक हुआ। तुगलक शासन वैसे ही अन्तिम साँसें गिन रहा था। तैमूर के आक्रमण ने तो उसका अन्त ही कर दिया।

सल्तनत काल में मंगोल आक्रमण

मंगोलों का प्रारम्भिक परिचय- मंगोल या मुगल शब्द की उत्पत्ति मंग शब्द से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ वीर होता है। ये लोग मध्य एशिया में स्थित मंगोलिया के निवासी थे। इन लोगों का जीवन जंगली था। यह लोग इधर-उधर घूमते रहते थे और शिकार से अपना पेट पालते थे। अपने नेता के नेतृत्व में दूसरी जातियों के साथ संघर्ष करते रहते थे। यह लोग कुशल घुड़सवार और लड़ाकू स्वभाव के थे। उनके हांथ रीछ के पंजों की भाँति इतने बलिष्ठ होते थे कि वे आदमी के दो टुकड़े बड़ी सरलता से कर सकते थे। मंगोल लोग मुसलमान जाति के साथ वैसा ही व्यवहार करते थे, जैसा कि मुसलमान हिन्दुओं के साथ। तुर्क लोग इनको घृणा की दृष्टि से देखते थे। जिन दिनों तुर्कों ने भारत में अपने राज्य की स्थापना की उन्हीं दिनों मंगोलों ने भी धन-लोलुपता और लूटमार की भावना से प्रेरित होकर भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया और सिन्ध तथा पंजाब के पश्चिमी प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। लेनपूल ने मंगोलों के विषय में लिखा है कि, ''लोहे के जिस्म और आग जैसे चेहरे वाले ये लोग ऊँटों पर सवार होकर आते, उनकी आँखें छोटी-छोटी और उनके गाल चमड़े जैसे सख्त और झुर्रीदार होते थे। उनके नथुने चौड़े-चौड़े और बड़े थे और उनके गन्दे शरीर से भीषण दुर्गन्ध आती थी।'' इन मंगोलों या मुगलों के आक्रमण पूरे सल्तनत-काल में होते रहे। अन्त में बाबर 1526 में दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी को परास्त कर भारत में मुगल-वंश की नींव डालने में सफल हुआ। अब सल्तनत-काल में किये गये मंगोलों के आक्रमणों का उल्लेख किया जायेगा।

मंगोलों के आक्रमण- सल्तनत-काल में मंगोलों का पहला आक्रमण 1221 में गुलाम-वंश के शासक इल्तुतमिश के राज्य-काल में हुआ। चंगेज खाँ के नेतृत्व में मध्य एशिया के खूँखार मंगोल ख्वारिज्म के शाह जलालुद्दीन का पीछा करते हुए भारत की सीमा पर आ गये। जलालुद्दीन ने इल्तुतमिश से दिल्ली में शरण देने की प्रार्थना की किन्तु इल्तुतमिश ने उसे दिल्ली में शरण देने से इन्कार कर दिया। अतः जलालुद्दीन को परास्त कर चंगेज खाँ अफगानिस्तान से वापस लौट गया। इस प्रकार दिल्ली राज्य एक भयानक संकट से बच गया।

मंगोलों का दूसरा आक्रमण 1241 में गुलाम-वंश के शासक बहराम शाह के राज्य-काल में हुआ। बहराम शाह एक निर्बल तथा अयोग्य शासक था। अतः वह मंगोलों के आक्रमण को न रोक सका। मंगोल लोग लाहौर में लूटमार करके वापस लौट गये।

जब गुलाम-वंश का सबसे योग्य बलबन दिल्ली के राज-सिंहासन पर बैठा तब उसने मंगोलों के आक्रमण से साम्राज्य की उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं को सुरक्षित रखने के लिए नये दुर्गों का निर्माण कराया और पुराने दुर्गों की मरम्मत करवाई। मंगोलों के आक्रमणों का सामना करने के लिए अपने बड़े पुत्र मुहम्मद खाँ को सिन्ध और लाहौर तथा छोटे पुत्र बुगरा खाँ को सुनम और समाना के प्रान्त सौंप दिये। 1279 में दोनों भाइयों ने मंगोलों को परास्त किया। लेकिन 1286 में मंगोलों ने पुनः आक्रमण किया और इस बार उनसे युद्ध करते हुए मुहम्मद खाँ मारा गया। मुहम्मद खाँ की मृत्यु से बलबन को बड़ा दुःख हुआ। मंगोलों के विरुद्ध बलबन को अधिक सफलता न प्राप्त हो सकी।

1292 में जलालुद्दीन खिलजी के शासन-काल में हलागू के पौत्र अब्दुल्ला ने एक विशाल सेना के साथ भारत पर आक्रमण किया और वह सुनम तक बढ़ आया। जलालुद्दीन की सेनाओं

ने उसके विरुद्ध अभियान किया और युद्ध में मंगोलों को पराजित किया। दोनों पक्षों में सन्धि हो जाने पर अब्दुल्ला स्वदेश लौट गया लेकिन जलालुद्दीन की आज्ञा से बहुत से मंगोल भारत में ठहर गये और उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। सुल्तान ने अपनी एक पुत्री का विवाह चंगेज खाँ के एक पौत्र उलुग के साथ कर दिया। वह और उसके अनुयायी भारत के इतिहास में 'नये मुसलमान' के नाम से विख्यात हुए।

अलाउद्दीन खिलजी मंगोलों से बहुत परेशान रहा, जो 1296 से 1305 तक लगातार भारत पर आक्रमण करते रहे। उसके शासन-काल के दूसरे वर्ष 1298 ई० में अमीर दाऊद ने एक लाख मंगोलों के साथ पंजाब तथा सिन्ध पर आक्रमण किया लेकिन अलाउद्दीन के सेनापति उलुग खाँ ने उन्हें मार भगाया। अगले वर्ष पुनः मंगोलों ने साल्दी की अध्यक्षता में आक्रमण किया। लेकिन जफरखाँ ने साल्दी सहित दो सहस्र मंगोलों को अपना बन्दी बना लिया और उन्हें दिल्ली लाकर कठोर यातनायें दीं। 1299 में मंगोलों ने कुतलुग ख्वाजा के नेतृत्व में पुनः भीषण आक्रमण किया। सुल्तान की सेना ने मंगोलों की सेना का सामना किया। भीषण युद्ध हुआ, जिसमें जफर खाँ मारा गया किन्तु विजय सुल्तान की हुई। 1303 में मंगोलों का चौथा आक्रमण नेता तार्गी के नेतृत्व में हुआ। आक्रमण इतनी तेजी से हुआ कि प्रान्तीय सूबेदारों की सेनाएँ दिल्ली न पहुँच सकीं और सुल्तान स्वयं सीरी के दुर्ग में घिर गया। तीन महीने संघर्ष के बाद मंगोल लौट गये। अलाउद्दीन ने मंगोलों के आक्रमण को रोकने के लिए सीमान्त प्रदेशों—पंजाब, मुल्तान और सिन्ध में दुर्गों का निर्माण कराया और उनकी रक्षा हेतु शक्तिशाली सेनाएँ रखीं। इसके बाद मंगोलों ने अलाउद्दीन के राज्य में आक्रमण करने का साहस नहीं किया।

मुहम्मद-बिन-तुगलक के शासन-काल में 1329 में मंगोलों ने तरमाशिरीन के नेतृत्व में पुनः भारत पर आक्रमण किया। लेकिन मुहम्मद तुगलक ने उन्हें बहुत सा धन देकर वापस कर दिया, क्योंकि वह राज्य की आन्तरिक समस्याओं में उलझा हुआ था।

मंगोलों का अन्तिम आक्रमण 1526 में बाबर के नेतृत्व में हुआ। उसने पानीपत के प्रथम युद्ध में लोदी-वंश के शासक इब्राहीम लोदी को परास्त कर भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली, जो 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम तक कायम रही।

मंगोलों के आक्रमणों का प्रभाव- मंगोलों के उपर्युक्त आक्रमणों का भारत के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में व्यापक प्रभाव पड़ा। इनमें से प्रमुख निम्नलिखित थे:

(1) सीमान्त प्रदेशों में दुर्गों का निर्माण- मंगोलों के आक्रमणों से देश की रक्षा के लिए सीमान्त प्रदेशों में नये दुर्गों का निर्माण हुआ और पुराने दुर्गों की मरम्मत कराई गई। बलबन और अलाउद्दीन खिलजी ने दुर्गों का निर्माण कराया। अलाउद्दीन ने तो दुर्गों की रक्षा के लिए वहाँ शक्तिशाली सेनाएँ भी रखीं।

(2) सेना में वृद्धि- मंगोलों के आक्रमण का दूसरा प्रभाव यह पड़ा कि दिल्ली के सुल्तानों को अपनी सेना में वृद्धि करनी पड़ी। अलाउद्दीन खिलजी के राज्यकाल में बाजार-नियन्त्रण सेना-वृद्धि का ही परिणाम था।

मंगोलों के आक्रमणों का प्रभाव

1. सीमांत प्रदेशों में दुर्गों का निर्माण
2. सेना में वृद्धि
3. धन तथा जन की हानि
4. दक्षिण विजय में बाधा
5. साहित्य पर प्रभाव
6. दिल्ली सल्तनत की समाप्ति

(3) धन तथा जन की हानि- मंगोलों के लगातार आक्रमणों से दोनों ही पक्षों की धन तथा जन की बड़ी हानि हुई। आक्रमणों का सामना करने में असंख्य सैनिकों को अपने प्राणों का बलिदान करना पड़ा। देश की अतुल सम्पत्ति आक्रमणकारी अपने साथ ले गये। इस प्रकार धन तथा जन दोनों की ही हानि हुई।

(4) दक्षिण-विजय में बाधा- मंगोलों के आक्रमण का सदैव य उपस्थित रहता था जिसकें कारण दिल्ली के सुल्तानों को दक्षिण भारत को विजय क में बड़ी बाधा पड़ी। शक्तिशाली सुल्तान अलाउद्दीन ने भी मंगोलों के आक्रमण के भय से दिल्ली न छोड़कर दक्षिण-विजय का कार्य अपने सेनापति मलिक काफूर को सौंपा था'

(5) साहित्य पर प्रभाव- मंगोल आक्रमणों का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। मंगोल आक्रमण ने मध्य एशिया और पश्चिम एशिया में मुस्लिम राज्यों को उजाड़ तक दिया। इन इस्लामी राज्यों में संरक्षण पाने वाले साहित्यकार एवं विद्वान् निराश्रय हो गए। भारत का इस्लामी राज्य इनके लिये शरणस्थली बन गया। फलतः दिल्ली दरबार ने अनेक साहित्यकारों व विद्वानों को आश्रय प्रदान किया।

(6) दिल्ली सल्तनत की समाप्ति- मंगोलों के आक्रमण का अन्तिम परिणाम दिल्ली सल्तनत की समाप्ति थी। मंगोलों के सरदार बाबर ने 1526 में पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी को परास्त कर सदैव के लिए दिल्ली सल्तनत को समाप्त कर दिया और भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ
(Important Dates & Events)

(1) 1320 ई० - गयासुद्दीन तुगलक का राज्यारोहण तथा तुगलक-वंश की स्थापना।
(2) 1325 ई० - गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु तथा मुहम्मद-बिन-तुगलक का राज्यारोहण।
(3) 1326-27 ई० - मुहम्मद तुगलक द्वारा राजधानी परिवर्तन।
(4) 1330 ई० - मुहम्मद तुगलक द्वारा ताँबे के सिक्कों का प्रचलन।
(5) 1333 ई० - इब्नबतूता का भारत आगमन।
(6) 1337-38 ई० - मुहम्मद तुगलक द्वारा कराजल-विजय योजना।
(7) 1351 ई० - मुहम्मद तुगलक की मृत्यु तथा फिरोज तुगलक का राज्यारोहण।
(8) 1353-54 ई० - फिरोज तुगलक का बंगाल पर आक्रमण।
(9) 1361-62 ई० - फिरोज तुगलक की थट्टा-विजय।
(10) 1388 ई० - फिरोज तुगलक की मृत्यु।
(11) 1398 ई० - तैमूर का भारत पर आक्रमण।
(12) 1414 ई० - तुगलक-वंश का अन्त और सैयद-वंश का आरम्भ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. मुहम्मद तुगलक की योजनाओं का उल्लेख कीजिए। उसकी असफलता के क्या कारण थे ? (1962, 64, 81)
2. तुगलक साम्राज्य के अधःपतन के कारणों का विश्लेषण कीजिए। (1963, 68, 75)
3. शासक के रूप में मुहम्मद तुगलक की असफलता के कारणों की विवेचना कीजिए। (1967, 69)
4. तैमूर के भारत पर आक्रमण का विवरण दीजिए तथा उसके परिणाम लिखिए। (1974, 79)
5. तुगलक साम्राज्य के पतन के लिए फिरोज तुगलक कहाँ तक उत्तरदायी था ? (1970)
6. मुहम्मद तुगलक की असफलता के कारणों की विवेचना कीजिए। (1973)
7. मुहम्मद तुगलक के व्यक्तित्व और कार्यों का मूल्यांकन कीजिए। (1976)
8. एक सुधारक के रूप में फिरोज तुगलक की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए। (1982)
9. मुहम्मद तुगलक के व्यक्तित्व और कार्यों का मूल्यांकन कीजिए। (1988)
10. मुहम्मद तुगलक की राजधानी-परिवर्तन तथा मुद्रा-सुधार योजनाओं का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए। (1990)
11. मुहम्मद तुगलक की योजनाओं की समीक्षा कीजिए। (1994)
12. मुहम्मद तुगलक की योजनाओं एवं चरित्र पर प्रकाश डालिए। (1995)
13. फिरोज तुगलक के प्रशासनिक सुधारों का वर्णन कीजिए। (1995)
14. मुहम्मद तुगलक की राजधानी परिवर्तन योजना पर प्रकाश डालिए और उसके चरित्र की समीक्षा कीजिए। (1996)
15. तैमूर के दिल्ली आक्रमण के मुख्य प्रभावों का वर्णन कीजिए। (1998)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "मुहम्मद तुगलक एक पागल व्यक्ति था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? (1978)
2. "फिरोज तुगलक एक मानवतावादी तथा हितैषी प्रशासक था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। (1980)
3. "तुगलक वंश के विनाश का मुख्य कारण फिरोज तुगलक का निर्वल शासन था।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए। (1965, 72)
4. "फिरोज तुगलक न तो एक योग्य सेनापति था और न दृढ़ एवं दूरदर्शी शासक ही।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
5. "फिरोज तुगलक सल्तनत-काल का अकबर था।" इस कथन के आलोक में फिरोज तुगलक के सुधारों का उल्लेख कीजिए।

6. "मुहम्मद-बिन-तुगलक परिस्थितियों का शिकार हो गया।" इस कथन की सत्यता सिद्ध कीजिए।
7. "उसकी असफलता परिस्थितिजन्य थी।" मुहम्मद तुगलक के सन्दर्भ में क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? (1985)
8. "मध्यकालीन भारत का सबसे उल्लेखनीय व्यक्ति मुहम्मद तुगलक था।" इस कथन के आलोक में उसकी शासन-सम्बन्धी योजनाओं का उल्लेख कीजिए।
9. "तैमूर का आक्रमण दिल्ली सल्तनत के लिए पक्षाघात का रोग सिद्ध हुआ।" विवेचना कीजिए। (1988)
10. "फिरोज तुगलक एक आदर्श मुस्लिम सुल्तान था।" स्पष्ट कीजिए। (1997)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. मुहम्मद तुगलक की शासन-सम्बन्धी चार योजनाओं का वर्णन कीजिए। (1986)
2. तुगलक साम्राज्य के पतन में फिरोज तुगलक का उत्तरदायित्व कहाँ तक था ?
3. तैमूर के भारतीय आक्रमण और उसके प्रभाव का वर्णन कीजिए। (1985)
4. तुगलक वंश के पतन के प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिए। (1988)
5. मुहम्मद तुगलक द्वारा सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन क्यों किया गया ? इस योजना के विफल होने के कारण बताइये।

(घ) निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए :

(1) गयासुद्दीन तुगलक, (2) तैमूर (1986)

21
दिल्ली सल्तनत का विघटन : सैयद तथा लोदी-वंश

> **"भारत के मुसलमान अशक्त हो गये थे। वह प्राचीन शक्ति जिसके द्वारा पर्वतीय प्रदेश के लोग हिन्दुओं की समृद्धि एवं प्राचीन सभ्यता को कुचल देने में समर्थ थे, समाप्त हो गई थी।"**
> -लेनपूल

सैयद- वंश (1414-1451)

खिज्र खाँ (1414-21)- 1414 में दौलत खाँ को परास्त कर खिज्र खाँ दिल्ली के सिंहासन पर बैठा और सैयद- वंश की नींव डाली। वह अपने को मुहम्मद साहब का वंशज कहता था। उसने सुल्तान की उपाधि नहीं धारण की और तैमूर के पुत्र शाहरूख के प्रतिनिधि के रूप में ही शासन किया। उसको अपने शासनकाल में अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। सर्वप्रथम उसने कटेहर तथा दोआब के विद्रोहों का दमन किया। उसने कटेहर के राय हरिसिंह तथा बदायूँ, इटावा व काम्पिल के राजाओं को परास्त किया। इसके बाद भी वहाँ विद्रोह हुए जिनका दमन कर दिया गया। 1416 में उसने बयाना और ग्वालियर के विद्रोहों का दमन किया तथा वहाँ के नायकों को दिल्ली सुल्तान की अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। 1419 में सरहिन्द पर आक्रमण करके वहाँ के तुर्कों के विद्रोह का दमन किया। 1421 में उसने मेवातियों का दमन किया किन्तु जब वह राजधानी लौट रहा था, तो मार्ग में बीमार पड़ गया और दिल्ली में 20 मई, 1421 को संसार से चल बसा।

डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के शब्दों में, "खिज्र खाँ तथाकथित सैयद वंश का प्रथम तथा योग्यतम शासक था, किन्तु उसमें शक्ति तथा चरित्र का अभाव था जो देश के इतिहास के उस संकटकाल में दिल्ली के सुल्तान में होना चाहिए था।" इतिहासकार **फरिश्ता** खिज्र खाँ की प्रशंसा इन शब्दों में करता है, "खिज्र खाँ एक महान् बुद्धिमान तथा अपने वचन का पालन करने वाला बादशाह था। उसकी प्रजा कृतज्ञतापूर्वक उससे प्रेम करती थी। यहाँ तक कि छोटे- बड़े सेवक तथा स्वामी सभी ने उसकी मृत्यु पर काला वस्त्र धारण किया। वे तीसरे दिन तक उसकी मृत्यु के लिए रोते रहे।" उसका बेटा मुबारकशाह उसके स्थान पर सिंहासनारूढ़ हुआ।

मुबारकशाह (1421-34)- खिज्र खाँ की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र मुबारकशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। उसने सुल्तान की उपाधि धारण की। पिता की भाँति उसे अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। उसने भटिण्डा और दोआब के विद्रोह का दमन किया। वह खोखरों के नायक जसरथ का पूर्णतया दमन नहीं कर सका। उसने उन प्रान्तों को पुनः जीतने का प्रयास किया जो दिल्ली सल्तनत की अधीनता को छोड़कर स्वतन्त्र हो गये थे। मुबारकशाह के विरुद्ध उसके मन्त्री सरवर- उल- मुल्क ने हिन्दू

सैयद- वंश के शासक

1. खिज्र खाँ
2. मुबारकशाह
3. मुहम्मदशाह
4. अलाउद्दीन आलमशाह

और मुसलमान अमीरों का नेतृत्व कर सुल्तान के विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा जिसमें वह सफल हो गया। जब सुल्तान 19 फरवरी, 1434 को अपने नाम पर बसाये जाने वाले नगर मुबारकबाद को देखने गया, तो वहीं षड्यन्त्रकारियों ने उसका वध कर दिया। तत्कालीन लेखक याहिया-बिन-सरहिन्दी इन शब्दों में उसकी प्रशंसा करता है- "एक दयालु एवं उदार शासक जो महान् गुणों से पूर्ण था।"

मुहम्मदशाह (1434-1445)- मुबारकशाह की हत्या के पश्चात् उसका पुत्र मुहम्मदशाह दिल्ली के राज-सिंहासन पर बैठा। मंत्री सरवर-उल-मुल्क ने राजशक्ति अपने हाथों में रखने के उद्देश्य से शाहीकोष तथा हाथियों को अपने ही अधिकार में रक्खा तथा 'खान-ए-जहाँ' की उपाधि भी धारण की। उसने अपने समर्थकों को राज्य के उच्च पद प्रदान किये। उसके ऐसा करने पर राज्य के अन्य अमीर उससे असन्तुष्ट हो गये और उन्होंने कमाल-उल-मुल्क के नेतृत्व में विद्रोह किया। विद्रोहियों ने सरवर को सिरी के दुर्ग में घेर लिया और बन्दी बनाकर उसकी हत्या कर दी। सुल्तान मुहम्मदशाह भी पिता की हत्या का बदला लेने के उद्देश्य से इस षड्यन्त्र में शामिल था। अब सुल्तान ने कमाल-उल-मुल्क को अपना प्रधानमंत्री बनाया। इस समय दिल्ली सल्तनत की स्थिति बहुत दुर्बल थी जिसका लाभ उठाकर जौनपुर के इब्राहीम शर्की ने दिल्ली राज्य के कई परगनों पर अधिकार कर लिया। लाहौर और सरहिन्द के सूबेदार बहलोल लोदी ने दिल्ली पर आक्रमण किया किन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। फिर भी साम्राज्य की दशा निरन्तर बिगड़ती जा रही थी। इस सम्बन्ध में **निजामुद्दीन** लिखता है, "दिल्ली की स्थिति यहाँ तक बिगड़ गई कि केवल बीस कोस की दूरी पर के अमीर राजभक्ति त्याग कर प्रतिरोध की तैयारियाँ कर रहे थे।" इसी संकटपूर्ण स्थिति में 1445 में मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गयी।

अलाउद्दीन आलमशाह (1445-1451)- मुहम्मदशाह की मृत्यु के उपरान्त अमीरों और सरदारों ने उसके पुत्र को अलाउद्दीन आलमशाह की उपाधि से दिल्ली के राज-सिंहासन पर बैठाया। यह नया सुल्तान पिता से भी अधिक लापरवाह और अयोग्य निकला। उसका समस्त कार्य उसका मन्त्री हामिद खाँ करता था। सुल्तान ने उसका वध कराने का प्रयत्न किया। सुल्तान की इस भूल का परिणाम यह हुआ कि हामिद खाँ ने बहलोल लोदी को दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया। बहलोल लोदी के आक्रमण का प्रतिरोध किए बिना ही अलाउद्दीन आलमशाह ने सम्पूर्ण राज्य बहलोल को सौंप दिया और स्वयं बदायूँ में जाकर रहने लगा। बहलोल लोदी ने 19 अप्रैल, 1451 को अपने को सुल्तान घोषित कर दिया और 'खुतवा' से आलमशाह का नाम हटवा दिया। आलमशाह एक साधारण अमीर की भाँति बदायूँ में जीवन बिताता रहा और अन्त में 1478 में उसकी मृत्यु हो गयी। "जान पड़ता है कि उसको इस घटना से न कुछ खेद हुआ और न उसने इसमें अपमान का ही अनुभव किया।"

लोदी-वंश (1451-1526)

(1) बहलोल लोदी (1451-89)- इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि किस प्रकार बहलोल लोदी ने 1451 में दिल्ली सल्तनत पर अधिकार कर लिया और किस प्रकार उसने लोदी-वंश की नींव डाली। महत्वाकांक्षी होने के कारण बहलोल समस्त सत्ता पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था क्योंकि इस समय सत्ता बूढ़े मन्त्री हामिद खाँ के हाथ में थी। उसने मन्त्री के साथ नम्रता का व्यवहार किया और अपने अनुयायियों से भी ऐसा आचरण

प्रदर्शित करने के लिए कहा, जिससे बुद्धि-शून्यता और साधारण सूझ-बूझ का सर्वथा अभाव टपकता हो, जिससे वह (हामिद खाँ) उनको परम मूर्ख समझ बैठे और उनके प्रति उसके मन में कोई शंका अथवा भय न रह जाय। कुछ समय उपरान्त बहलोल ने अपने चचेरे भाई कुतुब खाँ की सहायता से मन्त्री हामिद खाँ को बन्दी बनाकर कैद में डाल दिया। इसके पश्चात् उसने आलमशाह को बदायूँ से दिल्ली आने के लिए आमंत्रित किया, किन्तु उसने निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। विश्वास नहीं होता कि महत्वाकांक्षी बहलोल ने सच्चे हृदय से उसे आमन्त्रित किया होगा। अन्त में 19 अप्रैल, 1451 को अपना राज्याभिषेक कराकर उसने अपने नाम का खुतवा पढ़वाया।

लोदी-वंश के शासक

1. बहलोल लोदी
2. सिकन्दर लोदी
3. इब्राहीम लोदी

बहलोल लोदी एक योग्य व्यक्ति तथा चतुर राजनीतिज्ञ था। अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने के उद्देश्य से वह अफगान अमीरों के साथ सदैव सद्व्यवहार करता था। वह सिंहासन पर न बैठकर अमीरों के साथ ही एक कालीन पर बैठता था। उसने उन्हें बड़ी-बड़ी जागीरें प्रदान कीं। इस प्रकार अमीरों का समर्थन प्राप्त कर उसने अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना लिया। सबसे पहले उसने अहमद खाँ मेवाती पर आक्रमण किया और उसने उसके छः जिले छीनकर दिल्ली सल्तनत में मिला लिये। इसी प्रकार उसने सम्भल के दरिया खाँ पर आक्रमण कर उसके भी सात परगने छीन लिये। इसके बाद उसने कोइल के शासक ईशा खाँ को अपनी अधीनता स्वीकार करने को बाध्य किया। धीरे-धीरे इटावा, मैनपुरी, भूगाँव, चन्दावर तथा रिवाड़ी आदि जिलों में अपनी व्यवस्था स्थापित करने में वह सफल हुआ। उसने मुल्तान और सरहिन्द के विद्रोहों का भी दमन किया।

जौनपुर के शर्की सुल्तानों से युद्ध- जिस समय बहलोल लोदी सरहिन्द पर आक्रमण करने गया था, जौनपुर के शर्की सुल्तान महमूद ने एक लाख सत्तर हजार अश्वारोही तथा एक हजार चार सौ हाथियों की विशाल सेना लेकर दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। बहलोल आक्रमण का समाचार पाते ही दिल्ली लौट आया। महमूद को अपने सेनापति दरिया खाँ लोदी के विश्वासघात के कारण सफलता न मिली। महमूद के बाद मुहम्मदशाह और उसके बाद हुसेनशाह ने बहलोल से बराबर शत्रुता रक्खी। हुसेनशाह ने यमुना नदी पारकर बहलोल की सेनाओं को पराजित किया। अन्त में दोनों में सन्धि हो गई और गंगा नदी को दोनों राज्यों के मध्य की सीमा मान लिया गया। लेकिन जिस समय हुसेनशाह की सेना जौनपुर वापस जा रही थी, तो बहलोल ने सन्धि की शर्तों को तोड़कर हुसेनशाह की सेना पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण में उसे विजय मिली। तत्पश्चात् उसने जौनपुर पर आक्रमण कर उसको दिल्ली सल्तनत में मिला लिया और अपने पुत्र बारबकशाह को वहाँ की गद्दी पर आसीन किया। इस प्रकार लगभग 35 वर्ष तक युद्ध के बाद जौनपुर पर बहलोल लोदी का अधिकार स्थापित हो सका।

बहलोल की मृत्यु- जौनपुर की विजय के पश्चात् बहलोल ने धौलपुर, कालपी तथा ग्वालियर आदि स्थानों को जीता। जब वह ग्वालियर विजय करके दिल्ली लौट रहा था तो मार्ग में ही बीमार पड़ गया और 1489 में उसका देहान्त हो गया।

बहलोल का मूल्यांकन- इसमें सन्देह नहीं कि बहलोल एक वीर योद्धा तथा सफल सेनानायक था। **डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** के अनुसार, ''बहलोल को दो मुख्य सफलताएँ मिलीं। सर्वप्रथम उसने दिल्ली सल्तनत की प्रतिष्ठा तथा साख का जो परवर्ती तुगलकों तथा सैयद सुल्तानों के समय बहुत नीचे गिर चुकी थी, पुनरुत्थान किया। जौनपुर राज्य की विजय तथा उसे दिल्ली सल्तनत में मिलाना उसकी दूसरी मुख्य सफलता थी। इस सफलताओं के बावजूद दिल्ली सल्तनत के इतिहास में बहलोल का अधिक उच्च स्थान नहीं है। उसे हम साधारण कोटि का सफल सुल्तान कह सकते हैं।'' **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** के शब्दों में, ''एक नये शासक वंश के संस्थापक के रूप में दिल्ली साम्राज्य की क्षीण होती हुई प्रतिष्ठा के पुनरुद्धारक के रूप में बहलोल इतिहास में उच्च स्थान का अधिकारी है।''

(2) सिकन्दरशाह लोदी (1489-1517)- बहलोल के नौ पुत्रों में से निजाम खाँ ही उसका उत्तराधिकारी बना और सिकन्दरशाह के नाम से दिल्ली के राज-सिंहासन पर बैठा। उसने अपने पिता की नीति के विरुद्ध अमीरों को अपना सम्मान करने के लिये विवश किया। वह अपने भाइयों में सबसे अधिक योग्य था। उसके सम्मुख दो प्रारम्भिक कार्य थे—पहला कार्य अपने प्रतिद्वन्द्वियों का दमन करना और दूसरा कार्य अपने अनुयायियों की शक्ति को बढ़ाना। सर्वप्रथम उसने अपने चाचा आलम खाँ को जो रापड़ी का शासक था, परास्त किया। किन्तु बाद में उसे इटावा का सूबेदार बना दिया। उसके उपरान्त उसने क्रमशः ईसा, आजम, हुमायूं, तातार खाँ लोदी को परास्त किया। इस प्रकार वह एक वर्ष के भीतर ही अपने विरोधियों का दमन करने में सफल हुआ। उसने अपने अनुयायियों को लम्बी-लम्बी पदवियाँ प्रदान की और दो-दो, चार-चार महीनों का अग्रिम वेतन भी दिया।

बारबकशाह से युद्ध- सिकन्दरशाह ने अपने ज्येष्ठ भ्राता तथा जौनपुर के शासक बारबकशाह के पास एक दूत भेजा कि वह उसको सुल्तान स्वीकार कर ले। लेकिन जौनपुर के भूतपूर्व सुल्तान हुसेनशाह के भड़काने पर उसने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और स्वयं सेना लेकर चल पड़ा। कन्नौज के निकट सिकन्दरशाह ने बारबक को परास्त किया और बदायूँ तक उसका पीछा किया। अन्त में उसे आत्म-समर्पण करना पड़ा। सिकन्दर ने उसके साथ सद्व्यवहार किया और उसको जौनपुर का सूबेदार बना दिया तथा उसकी देखभाल के लिए वहाँ कुछ अमीरों को नियुक्त कर दिया। कुछ समय उपरांत जौनपुर के जमींदारों ने भयंकर विद्रोह किया जिसे बारबक दबाने में असमर्थ रहा। सिकन्दरशाह ने सूचना पाते ही राजधानी से आकर विद्रोह का दमन किया। सुल्तान जौनपुर से चला ही था कि विद्रोहियों ने हुसेनशाह को पैतृक राज्य पर अधिकार करने के लिए आमन्त्रित किया। वह विशाल सेना के साथ चल पड़ा, परन्तु बनारस के निकट सिकन्दरशाह ने उसे परास्त किया। हुसेनशाह लखनौती की ओर भाग गया। तत्पश्चात् सिकन्दरशाह ने बारबक के स्थान पर अपना सूबेदार नियुक्त किया और बारबक को उसकी अयोग्यता के कारण कैद में डाल दिया तथा हैबत खाँ और उमर खाँ शेरवानी को उसकी देखभाल के लिए रख दिया। इसके पश्चात् सुल्तान ने बिहार को अपने अधिकार में कर लिया और बंगाल के शासक अलाउद्दीन हुसेनशाह से सन्धि कर ली।

अफगानों का दमन- सिकन्दरशाह ने बड़े-बड़े अफगान जमींदारों की ओर ध्यान दिया। उसने उनके हिसाब-किताब की जाँच करवाई। इस कार्य को उन्होंने अपने विशेषाधिकारों पर कुठाराघात समझा और हैबत खाँ आदि अफगान सरदारों ने सुल्तान के प्राण लेने का षड्यन्त्र किया। उन्होंने सुल्तान के भाई फतह खाँ को इसमें सम्मिलित करने का प्रयास किया।

लेकिन उसने सुल्तान से इस षड्यन्त्र का भेद खोल दिया। परिणामस्वरूप सिकन्दर ने षड्यन्त्रकारियों को कठोर दण्ड दिया।

धौलपुर तथा ग्वालियर पर आक्रमण- 1502 में सुल्तान ने धौलपुर और ग्वालियर पर आक्रमण करके उनको अपना आधिपत्य स्वीकार करने के लिये विवश किया। 1506 में नरवर के हिन्दुओं तथा इटावा, बयाना और कोइल आदि के शासकों का भी दमन किया।

आगरा की स्थापना- सुल्तान ने इटावा, बयाना, कोइल (कोल), ग्वालियर और धौलपुर के सूबेदारों पर नियन्त्रण बनाये रखने के उद्देश्य से उस स्थान पर जहाँ आज आगरा नगर है, एक सैनिक छावनी स्थापित की। इस प्रकार उसने आगरा नगर की 1504 में नींव डाली। परन्तु अगले वर्ष 6 जुलाई, 1505 को एक भयंकर भूकम्प आने से अनेक सुन्दर भवन नष्ट हो गये। एक तत्कालीन इतिहासकार लिखता है, "वास्तव में यह इतना भीषण था कि पहाड़ तक उलट गये और विशाल भवन विध्वंस हो गये। बचे हुए लोग समझने लगे कि कयामत का दिन आ गया है और मरे हुए सोचने लगे कि उनकी मुक्ति का दिन आ पहुँचा है। ऐसा भूकम्प पहले कभी नहीं आया था। इससे अपार क्षति हुई।"

सिकन्दरशाह की मृत्यु- सिकन्दरशाह मृत्यु के समय तक विद्रोही शासकों के दमन में व्यस्त रहा। उसके शासनकाल का अन्तिम अभियान रणथम्भौर का दमन था। जब वह ग्वालियर के शासक का दमन करने की तैयारी में व्यस्त था, वह अस्वस्थ हो गया और 21 नवम्बर, 1517 को उसकी मृत्यु हो गयी।

(3) इब्राहीम लोदी (1517-1526)

सिकन्दर की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र इब्राहीम अमीरों की सर्वसम्मति से 21 नवम्बर, 1517 को दिल्ली के राज-सिंहासन पर बैठा और 'इब्राहीमशाह' की उपाधि धारण की। वह योग्य तथा वीर होते हुए भी हठी और चिड़चिड़े स्वभाव का था जिसके कारण वह अफगान सरदारों की सहानुभूति व स्वामिभक्ति न प्राप्त कर सका।

ग्वालियर-विजय- सिकन्दर लोदी अपने शासन-काल में ग्वालियर के शासक का पूर्णतया दमन नहीं कर सका था। अतः इब्राहीम ने राज-सिंहासन पर आसीन होने के बाद ग्वालियर पर आक्रमण किया और वहाँ के शासक विक्रमादित्य को दिल्ली सल्तनत की अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार सिकन्दरशाह के अधूरे कार्य को पूरा करके प्रतिष्ठा प्राप्त की।

राणा सांगा द्वारा इब्राहीम की पराजय- महत्वाकांक्षी होने के कारण इब्राहीम अपने पिता की विजय-नीति को पूर्ण करना चाहता था। इसलिये उसने मेवाड़ के राजा राणा सांगा पर आक्रमण किया। उसकी सेना में तीन हजार अश्वारोही और सौ हाथी शामिल थे। मेवाड़ के वर्तमान जिले असिन्द में स्थित बकरौली के निकट राणा और इब्राहीम की सेनाओं में संग्राम हुआ, जिसमें राणा की विजय हुई और उसकी सेना ने लोदी सेना को मार भगाया। राणा ने आगे बढ़कर चन्देरी पर अधिकार कर लिया। इब्राहीम निरुत्साहित होकर दिल्ली लौट गया।

जलाल खाँ की हत्या- अफगान अमीरों के असन्तुष्ट गुट ने सुल्तान इब्राहीम के भाई जलाल खाँ को जौनपुर के राज-सिंहासन पर बैठाया। सुल्तान ने जलाल खाँ को दिल्ली बुलाया, लेकिन उसने आने से इन्कार कर दिया। जलाल खाँ जौनपुर से कालपी चला गया। सुल्तान ने स्वयं कालपी जाकर जलाल खाँ को घेर लिया। जलाल खाँ आगरा की ओर भागा

और वहाँ से ग्वालियर गया। वहाँ भी शाही सेना ने उसका पीछा किया। जलाल खाँ ग्वालियर से गोंडवाना की ओर भाग गया। लेकिन वहाँ के शासक ने उसे बन्दी बनाकर इब्राहीम के पास भेज दिया। जब जलाल खाँ बन्दी के रूप में हाँसी ले जाया जा रहा था, तो सुल्तान की आज्ञानुसार मार्ग में ही उसकी हत्या कर दी गई।

अमीरों का दमन- इब्राहीम की प्रारम्भिक सफलताओं ने उसे निरंकुश शासक के रूप में शासन करने के लिए प्रेरित किया। उसने घोषित किया कि राजा का कोई सम्बन्धी नहीं होता, सभी लोग राजा के अधीनस्थ सामन्त अथवा प्रजा होते हैं। उसने अफगान अमीरों के लिए कठोर दरबारी नियम लागू किये। परिणामतः अमीरों के हृदय में व्यापक असन्तोष की भावना जागृत होने लगी और उनमें से कुछ अमीरों ने उसके विरुद्ध विरोध का झण्डा खड़ा किया। जलाल खाँ का वध कराकर इब्राहीम ने आजम हुमायूँ की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। उसने आजम हुमायूँ को जो राज्य का एक शक्तिशाली अमीर था, उसके पद से हटा दिया तथा उसको उसके पुत्र फतेह खाँ सहित कैद में डाल दिया। इब्राहीम के इस अन्यायपूर्ण व्यवहार से अफगान अमीरों ने आजम हुमायूँ के एक दूसरे पुत्र इस्लाम खाँ के नेतृत्व में विद्रोह किया। इस्लाम खाँ ने आगरा के सूबेदार अहमद खाँ पर आक्रमण किया। दोनों ओर की सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ किन्तु इस्लाम खाँ परास्त हुआ और मारा गया। उसके पिता आजम हुमायूँ का कारागार में ही वध कर दिया गया। इस्लाम खाँ और इब्राहीम के बीच हुए युद्ध की भीषणता के विषय में तत्कालीन इतिहासकार **अहमद यादगार** का कथन है, - ''लाशों के ढेर-पर-ढेर लग गये और युद्धक्षेत्र उनसे ढँक गया, पृथ्वी पर पड़े हुए सिरों की संख्या कल्पना के बाहर थी। मैदान में रक्त की नदियाँ बहने लगीं और इसके बाद जब भी भारत में कोई भीषण युद्ध हुआ तो लोग यही कहते थे कि किसी भी युद्ध की तुलना इस युद्ध से नहीं की जा सकती। इसमें भाई ने भाई, पिता ने पुत्र के विरुद्ध लड़ाई की, धनुष-बाण अलग फेंक दिये गये और भालों, तलवारों, चाकुओं और बर्छों से युद्ध किया गया जिससे भीषण नर-संहार हुआ।'' इस युद्ध में विद्रोहियों को बहुत हानि उठानी पड़ी।

इस विद्रोह के दमन के परिणामस्वरूप इब्राहीम की निरंकुशता और बढ़ गई जिससे भयभीत होकर दरिया खाँ, खानेजहाँ लोदी तथा हुसैन खाँ फारमूली ने सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह किया। हुसैन खाँ फारमूली का वध करा दिया गया लेकिन दरिया खाँ के पुत्र बहादुरशाह जिसने पिता की मृत्यु के बाद अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया था, का दमन इब्राहीम नहीं कर सका। इसी समय सुल्तान ने पंजाब के हाकिम दौलत खाँ लोदी के पुत्र दिलवर खाँ के साथ दुर्व्यवहार किया। उसे कारागार में मनुष्यों के कटे हुए सिर दिखलाए गये। सुल्तान ने उसे चेतावनी देते हुए कहा कि 'जो लोग मेरे आदेश की अवज्ञा करते हैं उनका ऐसा ही हाल होता है।' वह दिल्ली से किसी तरह भाग निकला और पिता के पास पहुँचकर दुर्व्यवहार की बात बतलाई। इब्राहीम के इस मूर्खतापूर्ण व्यवहार से दौलत खाँ बड़ा क्रोधित हुआ और सुल्तान से बदला लेने के लिए काबुल के शासक बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया। इब्राहीम के चाचा आलम खाँ ने भी बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए पत्र-व्यवहार द्वारा प्रोत्साहित किया। बाबर ने भारत पर आक्रमण किया। 21 अप्रैल, 1526 को पानीपत के मैदान में बाबर और इब्राहीम लोदी की सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ जिसमें इब्राहीम मारा गया और दिल्ली सल्तनत पर बाबर का आधिपत्य हो गया।

दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण

दिल्ली सल्तनत की स्थापना मुहम्मद गोरी के गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1206 में की थी और लोदी-वंश के अन्तिम शासक इब्राहीम लोदी की मृत्यु के उपरान्त 1526 में इसका अन्त हो गया। इस प्रकार यह साम्राज्य 320 वर्षों तक स्थापित रहा। इन 320 वर्षों के लम्बे काल में पाँच राजवंशों ने शासन किया जो गुलाम-वंश, खिलजी-वंश, तुगलक-वंश, सैयद-वंश, लोदी-वंश के नाम से विख्यात हुए। इन राज-वंशों में इल्तुतमिश, रजिया, बलबन, अलाउद्दीन, मुहम्मद तुगलक जैसे योग्य सुल्तान हुए। गुलाम-वंश को दिल्ली सल्तनत का शैशवकाल, खिलजी-वंश को यौवनकाल, तुगलक-वंश को वृद्धावस्था का काल तथा सैयद और लोदी-वंश को क्रमशः पतन काल एवं अन्त्येष्टि क्रिया का काल कहा जा सकता है। लोदी-वंश के उपरान्त मुगल-वंश की स्थापना हुई जो 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम तक कायम रहा। दिल्ली सल्तनत के पतन तथा विनाश के निम्नलिखित प्रधान कारण बताये जा सकते हैं-

(1) साम्राज्य की विशालता- उस काल में जब यातायात के साधनों का अभाव था, भारत ऐसे विशाल देश में उत्तर से दक्षिण तक जीते हुए साम्राज्य को चिरस्थायी रखना अत्यन्त दुष्कर कार्य था। यद्यपि बलबन और अलाउद्दीन जैसे योग्य शासकों को उनके शासन-काल में दूरस्थ प्रान्तों पर नियन्त्रण रखने में आशातीत सफलता मिली भी, किन्तु अन्य शासकों के लिए नियन्त्रण बनाये रखना सम्भव न हो सका। यही कारण है कि मुहम्मद तुगलक के शासन-काल के अन्तिम वर्षों में दक्षिण में अनेक स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये। सैयद और लोदी-वंश में तो कोई ऐसा योग्य शासक भी न हुआ, जो दिल्ली सल्तनत को सुरक्षित तथा संगठित बनाये रखता। अतः वह पतनोन्मुख हो चली और अन्त में उसके जर्जर शरीर की क्रिया हो ही गयी।

दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण

1. साम्राज्य की विशालता
2. स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासन
3. अमीरों का षड्यन्त्र
4. प्रजा के सहयोग का अभाव
5. उत्तराधिकार के नियम का अभाव
6. धार्मिक असहिष्णुता की नीति
7. दासों की बाहुल्यता
8. सैन्य-शक्ति पर आधारित शासन
9. केन्द्रीय शक्ति की दुर्बलता
10. मुहम्मद तुगलक की असफलता
11. फिरोज तुगलक की नीति
12. मुगलों के आक्रमण

(2) स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासन- दिल्ली सल्तनत का शासन स्वेच्छाचारिता तथा निरंकुशता पर आधारित था। ऐसा शासनयोग्य शासकों के समय में स्थायी रहता है किन्तु अयोग्य शासकों के समय में पतन के गर्त में चला जाता है। इस वास्तविकता को दिल्ली के सुल्तानों ने समझने का प्रयास नहीं किया। राजत्व सिद्धान्त के समर्थक होने के कारण उन्होंने जनता की इच्छा का सम्मान नहीं किया। फलतः शासन में अस्थिरता और अशान्ति का वातावरण व्याप्त रहा। बलबन और अलाउद्दीन की स्वेच्छाचारिता तथा निरंकुशता पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। अतः ऐसी परिस्थिति में दिल्ली सुल्तान का पतन होना स्वाभाविक था।

(3) अमीरों का षड्यन्त्र- दिल्ली सल्तनत के सुल्तान अमीरों के हाथ की कठपुतली थे, क्योंकि शासन का संचालन अमीरों के हाथ में अधिकतर रहता था। कुछ सुल्तानों को

दिल्ली का राज-सिंहासन इसलिये मिल सका क्योंकि उनको अमीरों का प्रबल समर्थन प्राप्त था। आगे चलकर यही अमीर दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण बने, क्योंकि जब तक उनके विशेषाधिकारों पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं लगाया गया, तब तक वे सल्तनत के स्वामिभक्त बने रहे। लेकिन जब उनके विशेषाधिकारों पर कठोर नियन्त्रण लागू किया गया तो वे सल्तनत के दुश्मन बन गये। इब्राहीम लोदी अपने सम्पूर्ण शासन-काल में अमीरों के षड्यन्त्रों से परेशान रहा। इस प्रकार अमीरों की स्वार्थपरता और पदलोलुपता के लिए किये गये षड्यन्त्रों से दिल्ली सल्तनत की नींव हिल गई और उसका पतन अवश्यम्भावी हो गया।

(4) प्रजा के सहयोग का अभाव- दिल्ली सल्तनत के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण यह था कि उस काल के सुल्तानों को प्रजा का सहयोग न प्राप्त हो सका। उनकी बहुसंख्यक प्रजा हिन्दू थी जिसने मुसलमानों को सदैव विदेशी ही समझा। सुल्तानों के चरित्र की भी सबसे बड़ी दुर्बलता यह थी कि उन्होंने कभी हिन्दुओं का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया, बल्कि उन पर असहनीय अत्याचार किए। यह निर्विवाद सत्य है कि प्रजा के सहयोग के अभाव में कोई भी साम्राज्य चिरस्थायी नहीं रह सकता। दिल्ली सल्तनत के पतन में इसी प्रकार का सत्य निहित है। एक विद्वान् ने सत्य ही कहा है, "हम भाले की नोक से और सब कुछ कर सकते हैं, परन्तु उस पर बैठ नहीं सकते। सैन्यबल से किसी देश या जाति को जीता जा सकता है, परन्तु विजय प्राप्त करना एक बात है और उस पर स्थायी राज्य की स्थापना करना बिल्कुल दूसरी बात है। दिल्ली के सुल्तानों ने इस मौलिक सिद्धान्त को समझने का किंचित्-मात्र भी प्रयास नहीं किया कि जिस जाति पर राज्य करना हो, राजा को उसी का एक अंग होकर रहना चाहिए और उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए। वे सदैव विपरीत चलते रहे। अतः भारतीय जनता को वे विदेशी और विधर्मी, दोनों ही रूप में दिखाई पड़ते थे।" ऐसी स्थिति में हिन्दू प्रजा ने समय-समय पर दिल्ली सल्तनत के विरुद्ध विद्रोह किये, जिसके कारण सल्तनत की शक्ति को आघात पहुँचा और वह पतनोन्मुख हो गई।

(5) उत्तराधिकार के नियम का अभाव- मुसलमानों में उत्तराधिकार का कोई सुनिश्चित नियम न था। सैन्य-शक्ति के आधार पर कोई भी व्यक्ति राज्य का उत्तराधिकारी बन सकता था। प्रत्येक सुल्तान के जीवनकाल में ही उत्तराधिकार का प्रश्न ऐसा उलझ जाता था कि उसके लिये कुचक्र प्रारम्भ हो जाते थे। दिल्ली सल्तनत के इतिहास में ऐसे भी उदाहरण हैं जब सुल्तान की हत्या करके उसके उत्तराधिकारी ने राज-सिंहासन प्राप्त किया है। प्रायः सुल्तान की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ करता था जिसमें अमीरों का प्रमुख हाथ रहता था। इस प्रकार उत्तराधिकार के युद्धों में साम्राज्य की शक्ति बहुत क्षीण हो गई।

(6) धार्मिक असहिष्णुता की नीति- दिल्ली के सुल्तानों में केवल अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक को छोड़कर शेष सभी सुल्तानों ने धार्मिक असहिष्णुता की नीति अपनाई। फिरोज के समय धार्मिक असहिष्णुता की नीति अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। हिन्दू मन्दिरों को विध्वंस करना, उनकी मूर्तियों को अपवित्र करना, जजिया लगाना आदि दिल्ली के सुल्तानों की धर्मान्धता के ज्वलन्त उदाहरण हैं। इस नीति से हिन्दुओं को मार्मिक आघात लगा और वे दिल्ली सल्तनत के सदैव शत्रु बने रहे। उनके असन्तोष की ज्वाला में दिल्ली सल्तनत की इमारतें जलकर राख हो गई।

(7) दासों की बाहुल्यता- दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों द्वारा दासों को अधिक संख्या में आश्रय देना राज्य के लिए अहितकर सिद्ध हुआ। वे राजदरबार में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए प्रशासकीय कार्यों में हस्तक्षेप करने लगे तथा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रत्येक विद्रोह में सक्रिय भाग लेने लगे। अलाउद्दीन के पास 50,000 दास थे, लेकिन फिरोज तुगलक के समय में इनकी संख्या बढ़कर एक लाख अस्सी हजार हो गई। फिरोज ने दासों की समृद्धि के लिए एक विभाग की स्थापना की थी। लेकिन आगे चलकर ये पले हुए दास दिल्ली सल्तनत के पतन के प्रमुख कारण बने।

(8) सैन्य-शक्ति पर आधारित शासन- दिल्ली के सुल्तानों के शासन की आधारशिला सैन्य-शक्ति थी। सैन्य-शक्ति पर संगठित शासन तभी तक स्थायी रक्खा जा सकता है, जब तक सैन्य-शक्ति सुदृढ़ रहती है। लेकिन जब सल्तनत की सैन्यशक्ति क्षीण हो जाती है, तब उसका पतन होना प्रारम्भ हो जाता है। बलबन और अलाउद्दीन अपने शासनकाल में सैन्यशक्ति के कारण सफल रहे, लेकिन उनके परवर्ती शासक सैन्यशक्ति के अभाव में राज्य में शान्ति रखने में असफल रहे। मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के उपरान्त दिल्ली सल्तनत की सैन्यशक्ति का क्षीण होना शीघ्रता से प्रारम्भ हो गया। अतः ऐसी स्थिति में उसका पतन भी अवश्यम्भावी हो गया।

(9) केन्द्रीय शक्ति की दुर्बलता- फिरोज तुगलक के समय से ही केन्द्रीय शक्ति का क्षीण होना प्रारम्भ हो गया था। इसका प्रभाव प्रान्तीय शासकों पर अत्यधिक पड़ा। वे अवसर पाकर दिल्ली सल्तनत से सम्बन्ध-विच्छेद कर स्वयं अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने की चेष्टा करने लगे। समय-समय पर उन्होंने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। इससे दिल्ली सल्तनत की शक्ति को बहुत बड़ा आघात पहुँचा।

(10) मुहम्मद तुगलक की असफलता- मुहम्मद तुगलक की मूर्खतापूर्ण योजनाओं से दिल्ली सल्तनत की आर्थिक स्थिति को जो आघात पहुँचा उससे उसका पतन होना अनिवार्य हो गया। सुल्तान को अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए प्रजा पर नये-नये कर लगाने पड़े, जिससे उसकी प्रजा उससे असन्तुष्ट हो गइं और उसका सुल्तान पर से विश्वास उठ गया। परिणामतः दिल्ली सल्तनत की प्रतिष्ठा को जो आघात लगा उससे उसके पतन को रोकना कठिन हो गया।

(11) फिरोज तुगलक की नीति- फिरोज की दुर्बल सैनिक नीति तथा उसके सैनिक सुधारों से दिल्ली सल्तनत की सैनिक-शक्ति को ऐसा घातक प्रहार लगा कि उसे पुनः प्राप्त न किया जा सका। उसने जागीरदारी प्रथा को जिसे अलाउद्दीन ने समाप्त कर दिया था, पुनः प्रारम्भ करके केन्द्रीय शक्ति को अत्यन्त दुर्बल बना दिया। उसने धार्मिक क्षेत्र में हिन्दुओं के प्रति असहिष्णुता की नीति अपनाकर उन्हें असन्तुष्ट कर दिया। वह दिल्ली सुल्तानों में पहला सुल्तान था जिसने ब्राह्मणों पर जजिया लगाया। इस प्रकार फिरोज की नीति से दिल्ली सल्तनत पतनोन्मुख हो गई।

(12) मुगलों के आक्रमण- मुगलों के लगातार आक्रमणों से दिल्ली सल्तनत की शक्ति को घातक प्रहार लगा। तैमूर के आक्रमणों ने तो उसे जीर्ण-शीर्ण बना डाला और बाबर ने 1526 में दिल्ली सल्तनत को सदैव के लिए समाप्त कर दिया।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ
(Important Dates & Events)

(1) 1414 ई० - खिज्र खाँ ने दिल्ली पर अधिकार करके सैयद-वंश की नींव डाली।
(2) 1421 ई० - खिज्र खाँ की मृत्यु तथा मुबारकशाह का सिंहासनारोहण।
(3) 1434 ई० - मुवारकशाह की मृत्यु तथा मुह्ममदशाह का सिंहासनारोहण।
(4) 1445 ई० - मुहम्मदशाह की मृत्यु तथा अलाउद्दीन आलमशाह का सिंहासनारोहण।
(5) 1451 ई० - बहलोल लोदी ने दिल्ली पर अधिकार करके लोदी-वंश की नींव डाली।
(6) 1489 ई० - बहलोल लोदी की मृत्यु तथा सिकन्दरशाह लोदी का सिंहासनारोहण।
(7) 1504 ई० - सिकन्दरशाह लोदी ने आगरा की नींव डाली।
(8) 1517 ई० - सिकन्दरशाह लोदी की मृत्यु तथा इब्राहीम लोदी का सिंहासनारोहण।
(9) 1526 ई० - पानीपत का प्रथम युद्ध तथा बाबर द्वारा भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

(1) दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण लिखिये। (1958, 81, 94)
(2) लोदी-वंश के इतिहास का संक्षिप्त विवरण दीजिए। (1964)
(3) लोदी-वंश का योग्यतम शासक कौन था ? अपने पक्ष की सप्रमाण पुष्टि कीजिए। (1969)
(4) इब्राहीम लोदी के शासन का इतिहास लिखिए। (1970)
(5) लोदी-वंश के उत्थान एवं पतन का संक्षेप में वर्णन कीजिए। (1973)
(6) लोदी-वंश के पतन के कारणों का विवेचन कीजिए। (1976)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "इब्राहीम लोदी की पराजय ने भारत में मुगल वंश की नींव डाली।" इस कथन को समझाइये। (1985)
2. "इब्राहीम लोदी के पतन का प्रमुख कारण उसका महत्वाकांक्षी स्वभाव था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
3. "सिकन्दर लोदी अपने वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक था।" इस कथन की समीक्षा उसकी विजयों एवं चरित्र के आधार पर कीजिए। (1996)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. सैयद-वंश के दो शासकों का परिचय दीजिए।
2. लोदी-वंश के दो शासकों का परिचय दीजिए।
3. दिल्ली सल्तनत के पतन के प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिए।

(घ) संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :

(1) खिज्र खाँ, (2) मुबारकशाह, (3) मुहम्मदशाह, (4) अलाउद्दीन आलमशाह, (5) बहलोल लोदी, (6) सिकन्दर लोदी, (7) इब्राहीम लोदी, (8) बारबकशाह।

☆

22

दक्षिण भारत के राज्य :

बहमनी तथा विजयनगर राज्य

> "तालीकोट का युद्ध भारत के इतिहास के निर्णयक युद्धों में से है। इसने दक्षिण में महान हिन्दू राज्य का विनाश कर दिया तथा अराजकता की स्थापना की, जिसके द्वारा विशाल राजनीतिक ढाँचा चकनाचूर हो गया।"
>
> – डॉ० ईश्वरी प्रसाद

बहमनी राज्य की स्थापना

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में इस्माइल नामक एक अमीर ने दौलताबाद में अपने को स्वतन्त्र घोषित करके एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। लेकिन अपने को अयोग्य शासक समझकर उसने वीर तथा युद्धप्रिय हसन को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया। उसी के जीवन काल में हसन 13 अगस्त, 1347 को दौलताबाद के राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। हसन फारस के शासक बहमन-बिन-इस्फन्दियार का वंशज था। इसलिए उसका नवीन राज्य बहमनी राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हसन ने अपनी शक्ति बढ़ाकर 'अलाउद्दीन बहमन शाह' की उपाधि धारण की और दौलताबाद के स्थान पर गुलबर्गा को राजधानी बनाया। हसन अपने साम्राज्य का विस्तार उत्तर में बंगाना से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक और पश्चिम में दौलताबाद से पूर्व में मौगरी तक फैलाने में समर्थ हुआ। उसने अपने राज्य को चार प्रान्तों-गुलबर्ग, दौलताबाद, बरार और बीदर में विभक्त किया और प्रत्येक प्रान्त में एक सूबेदार नियुक्त किया। अनवरत परिश्रम करने के परिणामस्वरूप उसका स्वास्थ्य गिरता गया और अन्त में 11 फरवरी, 1358 को उसकी मृत्यु हो गई। एक मुसलमानी इतिहासकार ने हसन की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "सुल्तान अलाउद्दीनशाह प्रजा की भलाई और धर्म का पालन करने वाला न्याय-प्रिय शासक था। उसके शासन में उसकी प्रजा तथा सेना पूर्ण सुख एवं सन्तोष के साथ समय बिताती थी और सच्चे दीन के प्रचार के लिए उसने बहुत कुछ किया।"

बहमनी राज्य के प्रमुख सुल्तान

1. मुहम्मदशाह प्रथम – हसन की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मदशाह प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ। उसे अपने सम्पूर्ण शासनकाल में तेलंगाना और विजयनगर के साथ युद्ध करना पड़ा। इन युद्धों में उसने हिन्दुओं के मन्दिरों को लूटा और हिन्दुओं का निर्दयतापूर्वक वध कराया। उसके हृदय में दया नाम की कोई चीज ही नहीं थी। अन्त में 1373 में उसकी मृत्यु हो गयी।

2. मुजाहिबशाह – मुहम्मदशाह की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र मुजाहिबशाह बहमनी राज्य का सुल्तान बना। रायचूर, दोआब का प्रदेश हस्तगत करने के लिए उसने दो बार विजयनगर राज्य पर आक्रमण किया, किन्तु दोनों बार उसको असफलता प्राप्त हुई।

उसके चचेरे भाई दाऊद ने 1377 में उसका वध कर दिया। दाऊद को भी अपने निकृष्ट कृत्य का शीघ्र ही दण्ड भोगना पड़ा। जब वह मस्जिद में नमाज पढ़ रहा था, एक दास द्वारा उसकी हत्या कर दी गई। उसकी मृत्यु के उपरान्त अमीरों ने हसन के एक पौत्र मुहम्मदशाह को गद्दी पर बिठाया।

बहमनी राज्य के प्रमुख सुल्तान
1. मुहम्मदशाह प्रथम
2. मुजाहिबशाह
3. मुहम्मदशाह द्वितीय
4. अहमदशाह
5. अलाउद्दीन द्वितीय
6. हुमायूँ
7. निजामशाह
8. मुहम्मदशाह तृतीय

3. मुहम्मदशाह द्वितीय — मुहम्मदशाह द्वितीय को युद्ध की वीभत्सता से घृणा थी। वह शान्तिप्रिय शासक था। उसने अपने शासन-काल में विजयनगर से कोई युद्ध नहीं किया। अपने शासनकाल के 20 वर्ष उसने साहित्य और कला की उन्नति में व्यतीत किये। उसने अनेक मस्जिदों का निर्माण कराया और सार्वजनिक विद्यालयों की स्थापना कराई। उसके दरबार में अनेक विद्वानों को सम्मान प्राप्त था। उसके जीवन के अन्तिम दिन पुत्रों के कारण बड़े दु:ख में बीते। 1397 में उसकी जीवन लीला समाप्त हो गयी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र गयासुद्दीन तथा शम्सुद्दीन क्रम से गद्दी पर बैठे जिन्होंने केवल तीन महीने तक शासन किया। शम्सुद्दीन का वध करके 1397 में फिरोजशाह ने सिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसने 25 वर्ष तक शासन किया। वह बहुत विलासी प्रकृति का व्यक्ति था। कहा जाता है कि उसके अन्त:पुर में प्रतिदिन आठ सौ स्त्रियाँ लायी जाती थीं। उसको अपने शासनकाल में विजयनगर से तीन युद्ध लड़ने पड़े जिनमें दो युद्धों में उसे विजय मिली किन्तु अंतिम युद्ध में उसकी बुरी तरह पराजय हुई और बहुत बड़ी संख्या में हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों का निर्दयतापूर्वक वध किया गया। अत्यधिक विलासिता के कारण उसका स्वास्थ्य गिर गया और 1422 में उसकी मृत्यु हो गयी।

4. अहमदशाह — फिरोजशाह की मृत्यु के उपरान्त उसका भाई अहमदशाह सुल्तान बना। सुल्तान बनते ही सर्वप्रथम उसने गुलबर्गा के स्थान पर बीदर को अपनी राजधानी बनाया। अपने भाई की पराजय का प्रतिशोध लेने के लिए उसने विजयनगर पर आक्रमण किया। वहाँ का राय पराजित हुआ। विजयी अहमदशाह ने वहाँ 20,000 पुरुषों, स्त्रियों और अबोध बच्चों का वध करवा दिया। 1424 में उसने वारंगल पर आक्रमण करके वहाँ के हिन्दू शासक को मार डाला। तत्पश्चात् उसने मालवा पर आक्रमण किया और वहाँ के शासक हुशंगशाह को पराजित किया। वहाँ उसने दो सहस्र व्यक्तियों का वध करवाया। उसने गुजरात के शासक पर भी आक्रमण किया, किन्तु सफलता नहीं मिली। कोंकण के शासक पर विजय उसकी अन्तिम सफलता थी। 1435 में उसकी मृत्यु हो गयी।

5. अलाउद्दीन द्वितीय — अहमदशाह की मृत्यु के उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र अलाउद्दीन द्वितीय सुल्तान बना। उसके भाई मुहम्मद ने विद्रोह किया जिसका उसने दमन किया और क्षमा कर उसको रायचूर का सूबेदार बना दिया। उसने विजयनगर पर आक्रमण करके वहाँ के शासक देवराय को कर देने के लिए बाध्य किया। उसने कोंकण के राजा को भी परास्त किया। एक मुसलमान लेखक के अनुसार, "उसने मस्जिदों का निर्माण कराया और सार्वजनिक विद्यालयों तथा अन्य लोकहितकारी संस्थाओं की स्थापना कराई, जिनमें बीदर का चिकित्सालय प्रमुख था।" 1457 में वह इस संसार से कूच कर गया।

6. हुमायूँ — अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र हुमायूँ उसका उत्तराधिकारी बना। वह बड़ा अत्याचारी शासक था जिसके कारण लोग उसे 'जालिम' कहते थे। एक मुसलमान

इतिहासकार लिखता है, "वह उग्र प्रकृति का तथा रक्त बहाने वाला था जो किसी अपराध के दोषी के प्रति थोड़ी भी दया न दिखाता था और अत्यन्त तुच्छ अपराधों के लिए मुसलमानों का रक्त निर्ममतापूर्वक बहाता था।" अक्टूबर 1461 में उसकी मृत्यु हो गयी।

7. निजामशाह – हुमायूँ की मृत्यु के उपरान्त उसका आठ वर्षीय पुत्र निजामशाह सिंहासनारूढ़ हुआ। अल्पवयस्क होने के कारण उनकी माता मकदूमाजहाँ ने उसकी संरक्षिका के रूप में राज्य किया। उसके समय में उड़ीसा और तेलंगाना के राजाओं ने बहमनी राज्य पर आक्रमण किया, किन्तु वे पराजित हुए। इसके उपरान्त मालवा के शासक ने बीदर पर आक्रमण किया, किन्तु गुजरात के महमूद बेगड़ा के हस्तक्षेप के कारण उसे वापस लौट जाना पड़ा। अन्त में, 1463 में निजामशाह की मृत्यु हो गयी।

8. मुहम्मदशाह तृतीय – निजामशाह की मृत्यु के पश्चात् उसका नाबालिग भाई मुहम्मदशाह तृतीय उत्तराधिकारी हुआ। उसे मदिरा का बड़ा शौक था जिसके कारण शासनसत्ता उसके प्रधानमंत्री महमूदगवाँ के अधिकार में आ गयी। इस स्वामिभक्त मन्त्री ने लगभग 20 वर्षों तक बहमनी राज्य की बड़ी सेवा की। उसने कोंकण के हिन्दू राजा को परास्त कर खलना (वर्तमान बीसलगढ़) का किला जीत लिया। उसने उड़ीसा पर आक्रमण करके वहाँ के राजा को कर देने के लिए बाध्य किया। उसने विजयनगर पर भी आक्रमण किया। राजा बुरी तरह पराजित हुआ और महमूदगवाँ के हाथ बहुत-सा धन लगा, लेकिन महमूदगवाँ का प्रमुख सैनिक योगदान पश्चिमी तट के प्रदेशों पर जिनमें हामोल और गोआ भी शामिल थे, प्राप्त की गई विजयें थीं। इन बन्दरगाहों का हाथ से निकल जाने पर विजयनगर को गहरा आघात लगा। हामोल और गोआ पर अधिकार हो जाने से बहमनी राज्य का ईरान और ईराक आदि के साथ व्यापार में और वृद्धि हुई।

महमूदगवाँ ने कई आन्तरिक सुधार किये। उसने राज्य को आठ प्रान्तों या तरफों में विभाजित किया। प्रत्येक 'तरफ' का शासन एक तरफदार के अधीन था। हर अमीर की तनख्वाह और उसकी जिम्मेदारियाँ निश्चित कर दी गईं। 500 घुड़सवारों की सेना रखने वाले अमीर को 1,00,000 हूण दिये जाते थे। वेतन नकद या जागीर के रूप में दिया जाता था। जिन्हें जागीर के रूप में भुगतान किया जाता था, उन्हें भू-राजस्व की उगाही के लिए अलग से खर्च भी दिया जाता था। हर प्रान्त में थोड़ी-सी जमीन (खालिसा) सुल्तान के खर्च के लिए अलग कर दी जाती थी। जमीन की पैमाइश करने और किसानों के द्वारा राज्य को दी जाने वाली रकमें निश्चित करने का प्रयास किया गया।

महमूदगवाँ की हत्या – महमूदगवाँ की बढ़ती हुई शक्ति से दरबारी अमीर उससे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने बुद्धिमान मन्त्री के विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। उन्होंने सुल्तान के सामने एक जाली पत्र इस आशय का प्रस्तुत किया कि महमूदगवाँ विजयनगर राज्य से मिलकर बहमनी राज्य के साथ विश्वासघात करना चाहता है। नशे में चूर मुहम्मदशाह ने उसके वध की आज्ञा दे दी और 5 अप्रैल 1481 को उसका वध कर दिया गया।

महमूदगवाँ का चरित्र तथा उसकी उपलब्धियाँ – महमूदगवाँ ने निष्ठावान महामन्त्री के रूप में बहमनी राज्य की अथकनीय सेवा की। उसने बहमनी राज्य की सीमा का अभूतपूर्व विस्तार किया था। **डॉ० ईश्वरी प्रसाद** के शब्दों में, "मध्य-काल के राजनीतिज्ञों में महमूदगवाँ बहुत उच्च स्थान का अधिकारी है।" **मीदोज टेलर** ने सत्य ही लिखा है, "उसकी मृत्यु के साथ ही बहमनी राज्य की एकता एवं शक्ति भी चल बसी।" वह विद्वानों का आश्रयदाता था। उसने बीदर में एक विद्यालय की स्थापना की थी जिसमें 3,000 पुस्तकों का संग्रह विद्यमान

था। वह गणित, चिकित्साशास्त्र तथा साहित्य में विशेष रुचि रखता था। फरिश्ता के अनुसार उसने 'रौजत-उल-इंशा' और 'दीवान-ए-अश्र' नामक दो काव्य-ग्रन्थों की रचना की थी।

महमूदगवाँ सुयोग्य सेनापति होने के साथ ही एक कुशल प्रशासक भी था। उसने राज्य की शक्ति सुदृढ़ करने के लिए युद्ध किये, शासन-तन्त्र में सुधार किये और जब वह शक्ति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया, तब भी धनहीनों की भलाई करना न भूला। शुक्रवार की रात्रि को वह सादे वस्त्र पहनकर नगर के विभिन्न मुहल्लों में निर्धनों एवं असहायों की सहायता करता हुआ घूमता था। अपने निजी व्यय के लिए वह प्रतिदिन 12 'लड़ियाँ' लेता था। ऐसे बुद्धिमान और निष्ठावान प्रधानमन्त्री का वध कराकर मुहम्मदशाह तृतीय ने बहुत बड़ी मूर्खता का कार्य किया। उसकी मृत्यु के उपरान्त शासन-व्यवस्था में जो दुर्बलता आ गई वह बहमनी राज्य के पतन का कारण बनी। महमूदगवाँ की मृत्यु के बाद ही मुहम्मदशाह भी 22 मार्च, 1482 को इस संसार से चल बसा।

बहमनी राज्य का पतन – मुहम्मदशाह की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र महमूदशाह 12 वर्ष की अव्यवस्था में गद्दी पर बैठा। उसमें योग्यता का पूर्णतः अभाव था, जिससे चारों ओर अव्यवस्था तथा अशान्ति फैल गई। परिणामतः प्रान्तीय शासक स्वतन्त्र हो गये और बहमनी राज्य राजधानी बीदर के समीपवर्ती प्रान्तों तक ही सीमित रह गया। मुहम्मदशाह की मृत्यु के उपरान्त तीन अयोग्य शासक सिंहासन पर बैठे। इस वंश का अन्तिम शासक कलीमुल्लाशाह हुआ। 1527 में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के साथ ही बहमनी राज्य का अन्त हो गया तथा उसके स्थान पर पाँच स्वतन्त्र राज्यों का उदय हुआ। वे इस प्रकार थे– (1) बरार का इमामशाही राज्य, (2) बीजापुर का आदिलशाही राज्य, (3) अहमदनगर का निजामशाही राज्य, (4) गोलकुण्डा का कुतुबशाही राज्य और, (5) बीदर का बरीदशाही राज्य।

बहमनी राज्य के कुल चौदह सुल्तान हुए जिन्होंने 180 वर्षों तक शासन किया। 1470 में **एथनेसियम निकितिन** नामक एक यात्री बीदर आया था। उसके वर्णन से पता चलता है कि देश की आबादी घनी थी। देहातों में निवास करने वालों की आर्थिक अवस्था शोचनीय थी और इसके विपरीत अमीर अत्यधिक धन-सम्पन्न और विलासी थे। जब वह बाहर निकलते तो 50 अश्वारोही उनकी सवारी के आगे और 300 अश्वारोही, 500 पैदल सैनिक, 10 मशाल वाले और 10 गायक पीछे चलते थे।

बहमनी राज्य के पतन के कारण

बहमनी राज्य के उत्थान एवं पतन का संक्षिप्त परिचय उपरोक्त पंक्तियों में दिया जा चुका है। अब निम्न पंक्तियों में उसके पतन के कारणों का उल्लेख किया जा रहा है :–

बहमनी राज्य के पतन के कारण

1. विदेशी अमीरों के षड्यन्त्र
2. विजयनगर से अनवरत युद्ध
3. सुल्तानों की असहिष्णुता
4. परवर्ती सुल्तानों की अयोग्यता

(1) विदेशी अमीरों के षड्यन्त्र – बहमनी राज्य में विदेशी अमीरों का बहुत अधिक प्रभाव था जिससे देशी अमीरों में उनके प्रति ईर्ष्या की भावना विद्यमान रहती थी। अमीरों द्वारा प्रायः ऐसे षड्यन्त्र रचे जाते थे जिससे सुल्तान की शक्ति को बहुत बड़ा आघात पहुँचा था। अमीरों के षड्यन्त्र का ही दुष्परिणाम था कि मुहम्मदशाह तृतीय को बुद्धिमान एवं कर्मठ प्रधानमंत्री महमूदगवाँ से हाथ धोना पड़ा। उसके वध के पश्चात् राज्य में जो अराजकता फैली, उसका दमन नहीं किया जा सका और बहमनी राज्य पतन के कगार पर खड़ा होकर जीवन की अन्तिम श्वासें गिनने लगा।

(2) विजयनगर से अनवरत युद्ध – बहमनी राज्य को विजयनगर के हिन्दू राज्य से अनवरत युद्ध करना पड़ा। बहमनी सुल्तानों में मुहम्मदशाह द्वितीय के अतिरिक्त सभी सुल्तानों ने अपने शासनकाल में विजयनगर के राजाओं से युद्ध जारी रखा। इस प्रकार लगातार युद्धों में बहमनी राज्य की शक्ति बहुत क्षीण हो गई और उसका पतन होते देर न लगी।

(3) सुल्तानों की असहिष्णुता – बहमनी सुल्तान अत्यधिक असहिष्णु थे। निरीह हिन्दुओं का निर्दयतापूर्वक वध करना और उनके मन्दिरों को विध्वंस करना उनके जीवन का प्रमुख उद्देश्य था। बहमनी वंश का इतिहास मानव हत्याओं की एक ऐसी लम्बी कहानी है जिससे इस वंश का इतिहास अत्यधिक कलंकित है।

(4) परवर्ती सुल्तानों की अयोग्यता – मुहम्मदशाह तृतीय की मृत्यु के उपरान्त जो सुल्तान राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए, वे अयोग्य तथा अत्यधिक विलासी स्वभाव के थे। इससे वे अमीरों और प्रांतीय शासकों पर सफल नियंत्रण न रख सके। वे अपने मंत्रियों के हाथ की कठपुतली बने रहे। फलतः बहमनी राज्य के पतन होने में देर न लगी और 1527 में कलीमुल्लाशाह की मृत्यु के साथ ही इस वंश का अन्त हो गया।

विजयनगर राज्य

विजयनगर की स्थापना एवं उसका इतिहास – विजयनगर राज्य की स्थापना हरिहरं और बुक्का नामक दो भाइयों ने की। एक अनुश्रुति के आधार पर संगम के पाँच पुत्र थे, उन्हीं में से दो-हरिहर और बुक्का थे। ये दोनों भाई यादववंशीय क्षत्रिय थे। प्रारम्भ में ये दोनों भाई वारंगल के शासक प्रतापरुद्रदेव काकतीय के कोषागार में कार्य करते थे। 1323 में वारंगल पर मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो जाने से उन्होंने रायचूर जिले के अनगोंदी के राजा की राजसभा में नौकरी कर ली। जब अनागोंदी पर मुसलमानों का अधिकार हो गया तो ये दोनों भाई बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिये गये, किन्तु मुहम्मद तुगलक ने उनको मुक्त कर दिया और अनागोंदी का प्रदेश उनको दे दिया। 1336 में उन्होंने संस्कृत के विद्वान माधव विद्यारण्य की सहायता से तुंगभद्रा नदी के तट पर विजयनगर की स्थापना की।

विजयनगर राज्य के प्रमुख सम्राट – हरिहर प्रथम इस वंश का प्रथम शासक हुआ। उसने तुंगभद्रा की घाटी, कोंकण प्रदेश के कुछ भागों तथा मालावार के तट पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। 1353 में उसकी मृत्यु हो गयी। हरिहर की मृत्यु के उपरान्त उसका भाई बुक्का राजा हुआ। उसको अपने शासनकाल में बहमनी राज्य के दो शासकों, मुहम्मदशाह तथा मुजाहिबशाह के विरुद्ध लड़ना पड़ा। उसने 1374 में चीन के राजा ताई-त्सू के दरबार में अपना एक दूतमण्डल भेजा। 1379 में उसकी मृत्यु हो गयी। प्रारम्भ में इन दोनों शासकों ने राजा की उपाधि नहीं धारण की।

हरिहर द्वितीय – बुक्का की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र हरिहर द्वितीय विजयनगर के राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। उसका मुख्यमंत्री सायनाचार्य था। उसने 'महाराजाधिराज' तथा 'राजमेश्वर' की उपाधियाँ धारण की। वह बड़ा ही दानी तथा शान्तिप्रिय शासक था। उसने कनारा, मैसूर, त्रिचनापल्ली, कांजीवरम्, चिंगलपट आदि प्रदेशों पर आधिपत्य स्थापित किया। 1404 में उसकी मृत्यु हो गयी और उसका पुत्र देवराय प्रथम उत्तराधिकारी हुआ। उसको अपने शासनकाल के बहमनी-सुल्तानों से युद्ध करना पड़ा। 1410 में उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र विजयराय सिंहासनारूढ़ हुआ किन्तु उसने

विजयनगर राज्य के प्रमुख सम्राट

1. हरिहर प्रथम
2. बुक्का राय
3. हरिहर द्वितीय
4. देवराय द्वितीय
5. नरसिंह
6. कृष्णदेव राय
7. सदाशिव राय

केवल 9 वर्ष ही शासन किया।

देवराय द्वितीय – विजयराय की मृत्यु के उपरान्त 1419 में देवराय द्वितीय विजयनगर के राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। वह बड़ा ही वीर तथा योग्य शासक था। उसको बहमनी के सुल्तान फिरोजशाह के आक्रमण का सामना करना पड़ा, जिसमें वह विजयी हुआ। किन्तु 1443 में बहमनी सुल्तान ने उसको परास्त करके कर देने के लिए बाध्य किया। उसके शासन-काल में दो विदेशी यात्री इटली का **निकोलो कोन्टी** और फारस का **अब्दुर्रज्जाक** विजयनगर का भ्रमण करने आये। इन दो यात्रियों ने अपनी पुस्तकों में जो आँखों-देखा वर्णन किया है, उसका संक्षेप में विवरण दिया जा रहा है –

निकोलो कोन्टी – यह यात्री 1420 में विजयनगर आया। वह विजयनगर के सम्बन्ध में लिखता है –

'यह नगर (विजयनगर) पहाड़ियों के समीप स्थित है, इसका घेरा 96 किमी है। इसकी दीवारें पर्वत की श्रेणी से लगी हुई हैं। इस नगर में नब्बे हजार ऐसे पुरुष हैं जो शस्त्र धारण करने योग्य हैं। यहाँ का राजा भारत के अन्य किसी राजा से अधिक शक्तिशाली है। इसके अन्तःपुर में 12 हजार स्त्रियाँ हैं जिनमें से 4 हजार प्रत्येक स्थान पर उसके पीछे-पीछे चलती हैं। इनसे केवल रसोई का काम लिया जाता है। इतनी ही स्त्रियाँ घोड़ों पर सवार होकर उसके साथ चलती हैं। शेष डोलियों में चलती हैं। 2 या 3 हजार इस शर्त पर उसकी पत्नियाँ चुन ली जाती हैं जो उसकी मृत्यु पर उसके साथ चिता में जल मरेंगी। यहाँ के निवासी वर्ष में एक बार निश्चित समय पर अपने देवताओं की मूर्तियों को दो रथों के बीच में रखकर नगर में निकालते हैं। बहुत से व्यक्ति रथ के नीचे दबकर मर जाते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि ऐसा करने पर उनके देवता प्रसन्न होंगे। वे लोग वर्ष में तीन त्योहार मनाते हैं। एक पर्व में वे दीप जलाते हैं, दूसरे पर्व में केसर के रंग को एक-दूसरे पर डालते हैं, तीसरे त्योहार में बड़ी-बड़ी बल्लियाँ गाड़कर उनको सुन्दर वस्त्रों से सजाते हैं और उनके शिखर पर पवित्र आचरण करने वाले व्यक्ति को बैठाते हैं, जो सबकी समृद्धि के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार वे त्योहारों को बड़ी धूमधाम से मनाते हैं।''

अब्दुर्रज्जाक – 1442 में फारस का एक राजदूत अब्दुर्रज्जाक विजयनगर आया। वह नगर के सम्बन्ध में लिखता है, 'ऐसा नगर न कभी आँखों से देखा है और न समस्त पृथ्वी पर इसके समान कोई दूसरा नगर सुनने में आया है। यह सात दीवारों से घिरा हुआ है। बाहर की दीवार के चारों ओर लगभग 50 गज की चौड़ाई के मैदान में आदमी की ऊँचाई के बराबर पत्थर एक-दूसरे से मिले हुए गड़े हुए हैं, जिससे कोई अश्वारोही अथवा पैदल बाहरी प्राचीर तक न पहुँच सके। नगर के भीतर प्रत्येक व्यवसाय वालों के अलग-अलग बाजार हैं। जौहरी बाजार में मोती, लाल, हीरे, पन्ने आदि स्वतन्त्रतापूर्वक बेचते हैं। इस मनोहर स्थान में तथा राजा के प्रासाद के आस-पास अनेक झरने और नहरें बहती हैं।' राजा के सम्बन्ध में वह लिखता है, ''राजा चालीस स्तम्भों वाले एक मण्डप में साटन का लम्बा वस्त्र पहनकर बैठता है। उसके गले में अमूल्य मोतियों की माला विद्यमान रहती है। वह छरहरे शरीर का किन्तु ऊँचे कद का है। एक दिन संध्या समय मैं राजसभा में गया। मैंने राजा को 5 सुन्दर घोड़े तथा दश्मिक और साटन के नौ-नौ थानों से भरे दो थाल भेंट किये। मुझे राज्य की ओर से दो भेंड़े, चार पक्षियों के जोड़े, पाँच मन चावल, एक मन मक्खन, एक मन शक्कर और दो 'बरह' सोना प्रतिदिन दिया जाता था। सप्ताह में दो बार मैं शाम के समय राजा से भेंट करने जाता था।''

1446 में देवराय द्वितीय की मृत्यु हो गयी। देवराय द्वितीय का ज्येष्ठ पुत्र **मल्लिकार्जुन** (1446-1465) उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसके शासन काल में चन्द्रगिरि के सालुव नायक नरसिंह को ख्याति प्राप्त हुई और जिसने बहमनी राज्य एवं उड़ीसा के राज्य में आक्रमणों का प्रतिरोध किया। मल्लिकार्जुन की मृत्यु के उपरान्त उसका उत्तराधिकारी **विरुपाक्ष द्वितीय** अयोग्य शासक सिद्ध हुआ। फलतः राज्य में गड़बड़ी और अव्यवस्था फ़ैल गयी। इसका लाभ उठाकर बहमनी सुल्तान कृष्णा एवं तुंगभद्रा के बीच के दोआब में बढ़ गया और उड़ीसा का राजा पुरुषोत्तम गजपति दक्षिण में तिरुवनमलय तक बढ़ गया।

नरसिंह सालुव – 1486 के लगभग नरसिंह सालुव ने अपने स्वामी विरुपाक्ष द्वितीय को सिंहासनाच्युत करके स्वयं राजगद्दी पर अधिकार कर लिया। उसने अपने विश्वासी सेनापति नरसा नायक को प्रशासन का उत्तरदायित्व सौंप दिया। नरसा नायक ने नरसिंह सालुव के पुत्र इम्मादि नरसिंह को सिंहासन पर बैठाया। नरसा नायक को सबसे महत्वपूर्ण सफलता रायचूर दोआब में मिली, जब उसने बीदर के काविन बरीद के साथ मिलकर रायचूर दोआब के अनेक क़िलों पर अधिकार कर लिया। नरसा नायक ने चोल, पांड्य और चेर राज्यों पर भी आक्रमण किया और तीनों शासकों को विजयनगर की प्रभुसत्ता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। 1505 में इम्मादि नरसिंह की नरसा नायक के पुत्र वीर नरसिंह ने हत्या कर डाली और विजयनगर के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार विजयनगर में तीसरे नये **'तुलुव वंश'** की स्थापना हुई। 1509 में वीर नरसिंह की मृत्यु हो गई।

कृष्णदेव राय (1509-1529) – वीर नरसिंह की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई कृष्णदेव राय गद्दी पर बैठा। वह विजयनगर का सबसे प्रतापी शासक तथा भारत के इतिहास में प्रसिद्ध राजाओं में से एक था। उसने अपने शासन काल में अनेक विजयें उपलब्ध कीं। 1510 के आरम्भ में उसने उदयगिरि के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। 1513 में उड़ीसा के राजा गजपति प्रतापरुद्र को पराजित कर उसकी पुत्री से विवाह किया। 1520 में उसने बीजापुर के सुल्तान इस्माइल आदिलशाह को रायपुर के निकट पराजित किया। उसके साम्राज्य का विस्तार पश्चिम में दक्षिणी कोंकण तक, पूर्व में विजयपट्टम तक तथा दक्षिण में प्रायद्वीप सुदूरवर्ती सीमा तक हो गया। उसका शासनकाल तेलुगू साहित्य का शास्त्रीय युग माना जाता है। उसकी राजसभा में आठ कवियों को आश्रय प्राप्त था जिन्हें **'अष्ट दिग्गज'** कहा जाता था। कृष्णदेवराय को **'आन्ध्र भोज'** कहा जाता था। उसके द्वारा रचित दो ग्रन्थ– **(1) अमुक्तमाल्यद** (तेलुगू-राजनीति पर पुस्तक) और **(2) जांबवती कल्याणम्** (संस्कृत-नाटक) थे। उसके राजकवि पेद्दन की बड़ी ख्याति थी तथा तेलुगू लेखकों में उसका स्थान ऊँचा था। कृष्णदेव राय वैष्णव धर्म का अनुयायी था, परन्तु अन्य धर्मावलम्बियों के साथ उसका सद्व्यवहार था।

कृष्णदेव राय ने तालाबों एवं नहरों का निर्माण करावाकर सिंचाई सुविधाओं का विस्तार किया एवं जंगली जमीन व बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने का प्रयास किया। उसने विवाह कर जैसे अलोकप्रिय करों को समाप्त करके प्रजा को करों से राहत दी। पुर्तगाली यांत्री डोमिगोस पेइज उसके संबंध में लिखता है, **''वह इतना विद्वान तथा सफल शासक है, जितना कि होना संभव है। वह महान तथा न्यायप्रिय शासक है। अपने पद, सेना तथा भूमि की दृष्टि से वह किसी भी सम्राट से बढ़कर है।''**

विजयनगर-साम्राज्य का पतन

1530 में कृष्णदेव राय की मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् उसके साम्राज्य का पतन होना आरम्भ हो गया। कृष्णदेव राय के पश्चात् उसका भाई अच्युतदेव शासक हुआ, किन्तु वह पूर्ण अयोग्य शासक सिद्ध हुआ। 1542 में उसकी मृत्यु हो गई और तत्पश्चात् सदाशिव राय राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। वह केवल नाममात्र का शासक था। राज्य की वास्तविक शक्ति उसके मन्त्री रामराय के हाथ में थी जिसने मुसलमानों के विरुद्ध अत्याचार किया, उन्हें लूटा और अत्यधिक अपमानित किया। उसने 1558 में बीजापुर और गोलकुण्डा की सहायता से अहमदनगर राज्य को बर्बाद किया। **फरिश्ता** लिखता है, 'विजयनगर के काफिरों ने देश को उजाड़ दिया। उन्होंने मुसलमान स्त्रियों का सम्मान भ्रष्ट किया, मस्जिदों को विध्वंस किया और पवित्र कुरान तक का अपमान किया।''

तालीकोट का युद्ध (1565) – रामराय की बढ़ती हुई शक्ति से मुसलमान बहुत भयभीत हो उठे। उन्होंने इस्लाम की रक्षा के लिये एक संयुक्त मोर्चा बनाया जिसमें बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुण्डा तथा बीदर के राज्य सम्मिलित हुए। इन राज्यों की सम्मिलित सेनाओं ने विजयनगर पर आक्रमण किया। रामराय भी अपने दो भाइयों सहित मुसलमानों की सेना का सामना करने के लिये आगे बढ़ा। 23 जनवरी, 1565 को तालीकोट नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। हिन्दू-सेना मुसलमानों के तोपखाने की मार के सम्मुख न टिक सकी और बुरी तरह पराजित हुई ! रामराय युद्धस्थल में पकड़ा गया और अहमदनगर के सुल्तान हुसेन निजामशाह ने स्वयं अपने हाथों से यह कहते हुए, "अब मैंने तुझसे अपना बदला चुका लिया। खुदा मेरे साथ अब चाहे जो कुछ करे'' उसका वध कर दिया। इसके उपरान्त विजेताओं ने निदर्यतापूर्वक विजयनगर का विनाश किया। इस विनाश के सम्बन्ध में इतिहासकार **सेवेल** लिखता है, "संसार के इतिहास में ऐसे भव्य नगर का ऐसा सहसा विनाश कभी नहीं किया गया। वह नगर जो एक दिन वैभव सम्पन्न था, वही दूसरे दिन ध्वस्त होकर नर-संहार एवं अमानवीय कृत्यों का क्रीड़ा-स्थल बना हुआ था।'' विजयी राष्ट्रों ने विजयनगर के अधिकांश क्षेत्र आपस में बाँट लिए और केवल कुछ क्षेत्र विजयनगर के हाथ में रह गये।

बीदर, बीजापुर, गोलकुण्डा और अहमदनगर सल्तनतों का संघ शीघ्र ही विघटित हो गया। इस अवसर का लाभ उठाकर रामराय के भाई तिरुमल ने पुनः सत्ता प्राप्त कर ली। 1570 में अपने राज्य काल के अन्त में तिरुमल ने नाममात्र के शासक सदाशिव को हटाकर स्वयं गद्दी हड़प ली तथा आखीडु वंश की स्थापना की। तिरुमल के उत्तराधिकारी क्रमशः **रंग द्वितीय** तथा **वेंकट द्वितीय** हुए। एक गौरवपूर्ण शासनकाल के बाद 1614 में वेंकट द्वितीय की मृत्यु हो गयी। उसे विजयनगर का अंतिम महान शासक माना जाता है। इसके शासनकाल में डचों और अंग्रेजों ने पूर्वी समुद्रतट पर जमना शुरू कर दिया था। 1612 में राजा ओएडयार ने उसकी अनुमति लेकर, श्रीरंगपट्टम की सूबेदारी के नष्ट होने पर मैसूर राज्य की स्थापना की। रंग तृतीय विजयनगर साम्राज्य का अंतिम महत्वपूर्ण शसक था।

विजयनगर की शासन-व्यवस्था

1. केन्द्रीय शासन – विजयनगर राज्य सामन्तशाही प्रथा पर आधारित था। राजा पूर्णतया निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी था। शासन की समस्त शक्तियाँ उसके हाथ में निहित

थीं। उसको परामर्श देने के लिए मन्त्रियों, प्रान्तीय सूबेदारों, ब्राह्मणों तथा कवियों की एक मन्त्रिपरिषद थी। राजा परिषद के किसी भी परामर्श को मानने तथा न माननें के लिए पूर्ण स्वतन्त्र था। वह राज्य का प्रधान न्यायाधीश एवं सेनापति था। मन्त्रियों के अतिरिक्त मुख्य कोषाध्यक्ष, रत्न-भण्डार का निरीक्षक, पुलिस अध्यक्ष, अश्वों का अध्यक्ष आदि राज्य के अन्य पदाधिकारी थे। राजा की राजसभा में सामन्तों, पुरोहितों ज्योतिषियों तथा कवियों को स्थान प्राप्त था। राजदरबार के वैभव को देखकर विदेशी यात्री भी चकित हो जाते थे, जिसके लिए बहुत-सा धन व्यय किया जाता था।

विजयनगर की शासन-व्यवस्था
1. केन्द्रीय शासन
2. प्रान्तीय शासन
3. स्थानीय शासन
4. आय-व्यवस्था
5. न्याय-व्यवस्था
6. सैन्य-व्यंवस्था
7. सामाजिक दशा
8. आर्थिक दशा
9. साहित्य तथा कला

2. प्रान्तीय शासन – राज्य प्रशासन को सुविधापूर्वक संचालित करने के लिए समस्त साम्राज्य को 6 प्रान्तों में विभाजित किया गया था। कुछ विद्वानों ने प्रान्तों की संख्या 200 बतलाया है। प्रान्त को मण्डल या पावड़ी कहते थे। प्रत्येक प्रान्त की शासन-व्यवस्था के लिये प्रान्तपति (नायक) नियुक्त था जो राजवंश का सदस्य अथवा शक्तिशाली सामन्त होता था। इन सूबेदारों के पास अपनी अलग सेना होती थी जिसके द्वारा वे आवश्यकता पड़ने पर राजा की सहायता करते थे। उनको राजा के नियन्त्रण में रहना पड़ता था और अपने प्रान्तों की आय-व्यय का ब्योरा राजा के सम्मुख उपस्थित करना पड़ता था।

3. स्थानीय शासन – प्रशासन की सुविधा के लिए प्रान्त 'कोट्टम' (कमिश्नरी) में, प्रत्येक कोट्टम को नाडुओं (जिलों) में और प्रत्येक नाड्ड कई नगरों तथा ग्रामों में विभक्त थे। ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई थी। गाँवों का प्रबन्ध ग्रामसभाएँ करती थीं। ग्राम-सभा की सहायता के लिए लेखक, चौकीदार, चौधरी तथा अन्य छोटे-छोटे पदाधिकारी थे। स्थानीय प्रशासन के निरीक्षण के लिए 'महानायकाचार्य' नामक एक राजकीय पदाधिकारी था। सभी पदाधिकारियों को वेतन के स्थान पर जागीरें या कृषि उपज का कुछ भाग मिलता था।

4. आय-व्यवस्था – राज्य की आय का प्रमुख साधन भूमि कर था। भूमि कर उपज का छठवाँ भाग था। पुर्तगाली लेखक **नुनीज** के अनुसार भूमि कर उपज का 9/10 भाग था। नुनीज के इस कथन पर इसलिये विश्वास नहीं होता क्योंकि उपज के केवल 1/10 भाग पर ही किसानों का निर्वाह नहीं हो सकता। भूमि-कर के अतिरिक्त जनता को कुछ अन्य कर, जैसे– चरागाह-कर, विवाह-कर, उद्यानों एवं दस्तकारी की वस्तुओं पर कर देने पड़ते थे। वेश्याओं से भी कर लिया जाता था।

5. न्याय-व्यवस्था – न्याय का प्रमुख स्रोत राजा था। वह स्वयं मुकदमों का निर्णय करता था। उसके निर्णय के विरुद्ध अपील नहीं हो सकती थी। न्याय हिन्दू-विधि पर आधारित था। दण्ड-विधान कठोर था। चोरी, व्यभिचार और राजद्रोह के लिए मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। साधारण कोटि के अपराधों के लिए अर्थदण्ड की व्यवस्था थी। संचालित न्यायालयों के न्यायधीशों की नियुक्ति स्वयं राजा करता था। ग्रामीण न्याय व्यवस्था ग्राम-पंचायतों द्वारा सम्पादित होती थी।

6. सैन्य-व्यवस्था – विजयनगर के राजाओं की सैनिक व्यवस्था जागीरदारी प्रथा पर आधारित थी। प्रान्तीय शासक युद्ध-काल में राजा को सैनिक सहायता दिया करते थे। राजा

के पास भी स्थायी सेना होती थी। कृष्णदेव राय के समय की सेना में 7 लाख पैदल, 32,600 अश्वारोही और 551 हाथी थे। एक छोटा तोपखाना भी था किन्तु वह अपेक्षाकृत अधिक कमजोर रहा होगा। सेना के मुख्य चार अंग थे– हाथी, घोड़ा, पैदल तथा तोपखाना। सेना के विभाग का अध्यक्ष 'दण्डनायक' कहलाता था।

7. सामाजिक दशा – विदेशी यात्रियों के लेखों से ज्ञात होता है कि विजयनगर के लोगों की सामाजिक दशा अच्छी थी। स्त्रियों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। वे शस्त्र तथा शास्त्र दोनों में चतुर थीं। उन्हें कुश्ती, संगीत, कला, साहित्यिक शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। **नुनीज** के अनुसार राज-दरबार में ऐसी स्त्रियां भी उपस्थित रहती थीं जो पहलवान, ज्योतिषी तथा भविष्यवक्ता थीं। इस काल में सती-प्रथा तथा बहु-विवाह प्रथा प्रचलित थी। अधिकतर लोग मांसाहारी थे, किन्तु बैल या गाय का वध वर्जित था।

8. आर्थिक-दशा – आर्थिक दृष्टि से विजयनगर अत्यधिक सम्पन्न था। लोगों का प्रमुख पेशा कृषि एवं व्यापार था। देश में 300 से अधिक बन्दरगाह थे, जिनमें अच्छा बन्दरगाह कालीकट था। समस्त बन्दरगाहों से बर्मा, मलाया, चीन, अरब, ईरान, दक्षिण अफ्रीका, अबीसीनिया, पुर्तगाल आदि देशों के साथ व्यापार होता था। विजयनगर से अन्य देशों में भेजी जाने वाली वस्तुएँ-वस्त्र, चावल, लोहा, खाण्ड, शोरा तथा मसाले आदि आते थे। सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्कों का प्रचलन था। अनेक यात्रियों ने विजयनगर की समृद्धि का उल्लेख अपने लेखों में किया है। **अब्दुर्रज्जाक** लिखता है, "राजा के कोष-गृह में जो गड्ढे मौजूद हैं उसमें पिघला हुआ सोना भरा हुआ है। यहाँ के सामान्य लोग तथा बाजार के कारीगर कानों, बाहुओं, गलों, कलाइयों और अंगुलियों में जवाहिरात तथा सोने के आभूषण पहिने हुए हैं।" **डोमिंगोस पेइज** नामक यात्री लिखता है, "संसार में सबसे अधिक सम्पन्न नगर (विजयनगर) है। यहाँ गेहूँ और चावल के भण्डार भरे पड़े हैं। यहाँ के लोगों का मुख्य भोजन जौ, मटर, मूँग, दालें, चना, गेहूँ तथा चावल हैं। यहाँ वस्तुएँ बहुत सस्ती बिकती हैं।" उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि विजयनगर आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था और प्रजा प्रभूत सुखी थी।

9. साहित्य तथा कला – विजयनगर के राजाओं की संरक्षकता में तेलुगु, तमिल तथा कन्नड़ भाषाओं तथा साहित्य की बड़ी प्रगति हुई। इस राज्य का प्रसिद्ध शासक कृष्णदेव राय स्वयं एक कवि तथा गायक था। उसके दरबार में आठ कवियों को आश्रय प्राप्त था। इस काल में संगीत, नाटक, व्याकरण तथा दर्शन आदि विषयों में अनेक ग्रन्थों की रचना की गई। कला तथा स्थापत्य-कला की भी प्रगति हुई। इस राज्य के राजाओं ने अनेक मन्दिरों, तालाबों तथा भवनों का निर्माण कराया। मन्दिरों में 'विट्ठलस्वामी का मन्दिर' तथा 'हजार मन्दिर' स्थापत्य-कला के सर्वोकृष्ट उदाहरण हैं। संगीत कला, चित्रकला तथा नृत्यकला को विशेष प्रोत्साहन मिला। **डॉ० आशीर्वादी लाल** के शब्दों में, "विजयनगर साम्राज्य का इतिहास साहित्यिक तथा कलात्मक रचनाओं के प्रस्फुटन के लिये प्रसिद्ध है।"

विजयनगर साम्राज्य के पतन के कारण – दो सौ वर्ष से अधिक तक दक्षिण की राजनीति में सक्रिय भाग लेने वाले विजयनगर साम्राज्य का तालीकोट के युद्ध के उपरान्त पतन हो गया। इस साम्राज्य के पतन के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं –

1. बहमनी राज्य से अनवरत युद्ध – इस राज्य के पतन का सर्वप्रथम कारण बहमनी राज्य से अनवरत चलने वाला संघर्ष था। इस कारण विजयनगर के राजाओं को अपने साम्राज्य को सुदृढ़ करने का अवसर नहीं उपलब्ध हुआ।

2. अयोग्य सैनिक संगठन – विजयनगर राज्य का सैनिक संगठन इतना सुयोग्य नहीं था जितना बहमनी राज्य का था। इसकी सेना में अश्वारोहियों की कमी थी। इसका तोपखाना भी अविकसित, असंगठित और कमजोर था। किसी भी राज्य का चिरस्थायी रहना उसके सुयोग्य सैनिक संगठन पर निर्भर करता है। लेकिन विजयनगर राज्य में सैनिक संगठन का अभाव उसके पतन का कारण बना।

विजयनगर-साम्राज्य के पतन के कारण

1. बहमनी राज्य से अनवरत युद्ध
2. अयोग्य सैनिक संगठन
3. प्रान्तपतियों की प्रबलता
4. राज्य के पश्चिमी तट पर पुर्तगालियों का आवास
5. अन्तिम शासकों के अत्याचार

3. प्रान्तपतियों की प्रबलता – इस राज्य के विनाश का कारण यह भी था कि प्रान्तीय सूबेदारों के हाथ में अत्यधिक शक्ति थी जिसके कारण वे अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में संलग्न हो गये। विजयनगर के संकटकाल के दिनों में मदुरा और तन्जौर के सूबेदारों ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। फलत: विजयनगर की शक्ति का क्षीण होना स्वाभाविक था।

4. राज्य के पश्चिमी तट पर पुर्तगालियों का आवास – विजयनगर के राजाओं की सबसे बड़ी भूल यह थी कि उन्होंने व्यापारिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से पुर्तगालियों को राज्य के पश्चिमी तट पर बस जाने दिया। कालान्तर में पुर्तगालियों ने राज्य की आन्तरिक राजनीति में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ कर दिया जो विजयनगर के लिये घातक सिद्ध हुआ।

5. अन्तिम शासकों के अत्याचार – विजयनगर के अन्तिम शासक सदाशिवराय के मन्त्री रामराय ने मुसलमानों के साथ जो अत्याचार किये उनके परिणामस्वरूप पड़ोसी राज्यों ने संगठित होकर विजयनगर पर आक्रमण किया। तालीकोटी के युद्ध में रामराय पराजित हुआ और उसका वध कर दिया गया। इस युद्ध में विजयनगर का चमकता हुआ भाग्य-तारा सदैव के लिए अस्त हो गया। यदि रामराय ने अहमदनगर के साथ अनावश्यक दुर्व्यवहार न किया होता तो विजयनगर को वह दुर्दिन देखने को न मिलता जो 23 जनवरी, 1565 को देखने को मिला।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ

(Important Dates and Events)

1. 1336 ई० – विजयनगर राज्य की स्थापना।
2. 1347 ई० – बहमनी राज्य की स्थापना।
3. 1420 ई० – निकोलो कोन्टी का विजयनगर आगमन।
4. 1442 ई० – अब्दुर्रज्जाक का विजयनगर आगमन।
5. 1481 ई० – महमूदगवाँ की हत्या।
6. 1509 ई० – कृष्णदेव राय का सिंहासनारोहण।
7. 1527 ई० – बहमनी राज्य का अन्त और उसके स्थान पर पाँच स्वतन्त्र राज्यों का जन्म।
8. 1530 ई० – कृष्णदेव राय की मृत्यु।
9. 1565 ई० – तालीकोटी का युद्ध तथा विजयनगर साम्राज्य का पतन।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. विजयनगर राज्य की शासन-व्यवस्था का संक्षेप में वर्णन कीजिए। (1985,86)
2. बहमनी राज्य के उत्थान और पतन के कारणों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। (1961,66,75,81,98)
3. विजयनगर तथा बहमनी राज्यों के राजनीतिक सम्बन्धों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए। (1963)
4. विभिन्न क्षेत्रों में विजयनगर साम्राज्य की उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। (1969)
5. विजयनगर साम्राज्य के उत्कर्ष का वर्णन कीजिए। (1970)
6. बहमनी राज्य के साथ विजयनगर साम्राज्य के सम्बन्धों की समीक्षा कीजिए। (1973
7. बहमनी तथा विजयनगर साम्राज्यों के परस्पर संघर्ष का संक्षिप्त विवरण दीजिए। (1976)
8. विजयनगर साम्राज्य के उत्थान एवं पतन के कारणों की समीक्षा कीजिए। (1977)
9. विजयनगर राज्य की उत्पत्ति तथा उत्कर्ष का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। (1989)
10. विजयनगर शासन व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। (1991)

(ख) कथानात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "विजयनगर साम्राज्य का इतिहास साहित्यिक तथा कलात्मक रचनाओं के प्रस्फुटन के लिए प्रसिद्ध है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
2. "आर्थिक दृष्टि से विजयनगर राज्य अत्यधिक सम्पन्न था।'.इस कथन की व्याख्या कीजिए।
3. "मध्यकाल के राजनीतिज्ञों में महमूदगवाँ बहुत उच्च स्थान का अधिकारी है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
4. "विजयनगर शासकों की महानता उनकी श्रेष्ठ शासन-व्यवस्था पर ही नहीं वरन् उनकी महान साहित्यिक व कलात्मक कृतियों पर भी आधारित थी।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
5. "विजयनगर साम्राज्य ने इस्लाम के प्रसार का सफल प्रतिरोध करते हुए दक्षिण में हिन्दू सभ्यता, अपनी राज्य शासन विधि और कलाओं में पुरानी परम्पराओं को सुरक्षित रखा।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. बहमनी राज्य के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।
2. विजयनगर की शासन-व्यवस्था का उल्लेख कीजिए।
3. विजयनगर राज्य के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।
4. बहमनी राज्य के पतन होने पर यह किन छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया? (1989)
5. तालीकोट के युद्ध का महत्व बताइये।

(घ) निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए :-

1. निकोली कोन्टी, (2) अब्दुर्रज्जाक, (3) कृष्णदेव राय, (4) महमूदगवाँ (1984)

☆

23

दिल्ली-सल्तनत की सभ्यता और संस्कृति

> **"भारत में मुस्लिम राज्य, अन्य देशों के समान, धर्म-प्रभावित था। सुल्तान में सीजर तथा पोप दोनों की ही शक्तियाँ निहित थीं, किन्तु धार्मिक क्षेत्र में उसके अधिकार कुरान द्वारा नियन्त्रित थे।"**
>
> \- डॉ० ईश्वरीप्रसाद

दिल्ली-सल्तनत की शासन-व्यवस्था

(1) केन्द्रीय शासन : (अ) सुल्तान- दिल्ली-सल्तनत का सर्वोच्च अधिकारी सुल्तान कहलाता था। शासन की सम्पूर्ण शक्तियाँ उसके हाथ में निहित थीं। वह सेना का प्रधान सेनापति, न्याय का प्रधान न्यायाधीश तथा कार्यपालिका के समस्त अधिकारों से सन्निहित था। वह पूर्णतया निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी था। इस्लामी सिद्धान्त के अनुसार सुल्तान ईश्वर का प्रतिनिधि मात्र था। उसका प्रमुख कर्तव्य कुरान के नियमों को कार्यान्वित करना तथा व्याख्या करना भी था। अधिकांश सुल्तानों को शरियत के अनुसार शासन करना तथा मुल्ला और मौलवियों के नियन्त्रण में रहना पड़ता था। लेकिन दिल्ली के दो सुल्तान, अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक ने कुरान के नियमों तथा मुल्लाओं के परामर्श की उपेक्षा की, क्योंकि उनके हाथ में सेना की पर्याप्त शक्ति थी। इस प्रकार कुरान के विरुद्ध आचरण करने वाले सुल्तान को राजसिंहासन से शान्तिपूर्वक हटाने का कोई संवैधानिक नियम नहीं था। वह मुस्लिम वर्ग का धर्मगुरु भी था जिसके कारण उसमें सीजर तथा पोप की शक्तियाँ निहित थीं।

दिल्ली सल्तनत की शासन-व्यवस्था

1. केन्द्रीय शासन-
   (अ) सुल्तान
   (ब) मन्त्रिपरिषद्
2. प्रान्तीय शासन
3. स्थानीय शासन
4. न्याय-व्यवस्था
5. सेना का प्रबन्ध
6. राज्य की आय के साधन

इस काल में वंशानुगत उत्तराधिकार के नियम के अभाव में सुल्तान पद प्राप्त करने के लिए षड्यन्त्र और विद्रोह का सहारा लेना पड़ता था। जलालुद्दीन, गयासुद्दीन, मुहम्मद तुगलक तथा बहलोल लोदी ने इसी प्रकार सुल्तान पद प्राप्त किया था। इस प्रकार उत्तराधिकार के नियम में अनिश्चयता होने के कारण कोई भी प्रतिभावान् तथा सुयोग्य व्यक्ति सुल्तान बन सकता था।

मुसलमान न्यायिकों के अनुसार सुल्तान के प्रमुख कर्तव्य निम्नलिखित थे- (i) धर्म की रक्षा करना, (ii) प्रजा के पारस्परिक झगड़ों का अन्त करना, (iii) इस्लाम राज्य की रक्षा करना, (iv) सड़कों की सुरक्षा करना, (v) दण्ड -विधान की व्याख्या करना, (vi) मुस्लिम राज्य की सीमाओं की शत्रुओं से रक्षा करना, (vii) इस्लाम विरोधियों से युद्ध करना, (viii) कर एकत्रित करना, (ix) राज्य-कोष पर जिनका अधिकार है उनमें धन का वितरण करना,

(x) अफसरों को नियुक्त करना जो राज्य के कार्यों को करने में उसको सहायता प्रदान करें तथा (xi) सार्वजनिक हित के कार्यों और जनता की दशा से अपने को परिचित रखना।

(ब) मन्त्रि-परिषद्- सुल्तान को प्रशासकीय कार्यों में परामर्श और सहायता देने के लिए मन्त्रि-परिषद् थी जिसके मन्त्रियों की संख्या समयानुसार घटती-बढ़ती रहती थी। गुलाम युग में इनकी संख्या चार थी, किन्तु कालान्तर में बढ़कर छह हो गई। मन्त्रियों के परामर्श मानने के लिए सुल्तान बाध्य नहीं था। मन्त्रियों का अपने पदों पर रहना सुल्तान की इच्छा पर निर्भर था। ये मन्त्री निम्नलिखित थे जो अपने समस्त कार्यों के प्रति उत्तरदायी थे:

(i) वजीर- प्रधान मन्त्री वजीर कहलाता था जिसका विभाग 'दीवान-ए-वजारत' के नाम से पुकारा जाता था। वह प्रशासन के महत्वपूर्ण पदाधिकारियों की नियुक्ति करता था। सुल्तान के अस्वस्थ होने अथवा राजधानी से बाहर रहने पर वह सुल्तान के समस्त कार्यों को करता था। प्रशासकीय विषयों पर सुल्तान को परामर्श देना उसका प्रमुख कर्तव्य था। वह अन्य मन्त्रियों के कार्यों का निरीक्षण करता था। युद्धकाल में वह सेनापति की हैसियत से [illegible] संचालन करता था। उसकी सहायता के लिए एक नायब वजीर, मुस्तौफिय-ए-मुमालिक ([illegible]हालेखा परीक्षक) और मुंसिफ-ए-मुमालिक (महालेखाकार) होते थे।

(ii) आरिज-ए-मुमालिक- यह सेना विभाग का अध्यक्ष था। इसका कार्य सैनिकों की नियुक्ति करना, वेतन का वितरण करना, अस्त्र-शस्त्रों का निरीक्षण करना तथा सेना का निरीक्षण करना था।

(iii) दीवान-ए-इंशा- इसका कार्य राजकीय घोषणाओं तथा पत्रों की रूपरेखा तैयार करना था। इसकी सहायता के लिए अनेक लेखक होते थे।

(iv) दीवान-ए-रसालत- यह वैदेशिक विभाग का अध्यक्ष था। इसका प्रमुख कार्य विदेशों के आने वाले राजदूतों से सम्पर्क स्थापित करना था।

(v) सद्र-उल-सदूर- यह मन्त्री धर्म-विभाग का अध्यक्ष था। इसका प्रमुख कार्य राजकीय दान विभाग से मस्जिदों, मकतबों आदि के लिए धन-दान करना था।

(vi) दीवान-ए-काजा- यह न्याय विभाग का अध्यक्ष था। इसका प्रमुख कार्य न्याय-शासन का निरीक्षण करना था।

इन मन्त्रियों के अतिरिक्त अन्य विभागाध्यक्ष भी होते थे। शाही महल तथा दरबार से सम्बन्धित 'वकील-ए-दार' तथा 'अमीर-ए-हाजिब' आदि कर्मचारी होते थे। इसके अतिरिक्त सुल्तान को परामर्श देने वालों का ऐसा वर्ग भी था जिसमें उसके सम्बन्धी, मित्र तथा कुछ उलेमा लोग भी शामिल थे। इस वर्ग को 'मजलिस-ए-खल्वत' कहते थे।

(2) प्रान्तीय शासन- शासन को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए समस्त साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त था। प्रत्येक प्रान्त के शासन के लिए एक प्रान्तपति अथवा सूबेदार होता था जिसकी नियुक्ति योग्यता तथा अनुभव के आधार पर स्वयं सुल्तान करता था। इस पर राजवंश का कोई सदस्य अथवा शक्तिशाली सामन्त नियुक्त किया जाता था। अपने प्रान्त की सीमाओं के भीतर सूबेदार को सुल्तान की ही भाँति शासन, न्याय तथा सेना के कर्तव्यों को पूरा करना पड़ता था। प्रायः वह निरंकुश ही होता था, लेकिन उसको सुल्तान के नियन्त्रण में रहना पड़ता था। यदि सुल्तान की शक्ति क्षीण हो जाती थी तो यह नियंत्रण ढीला हो जाता था। परिणामस्वरूप वह सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह करके अपने-आपको स्वतन्त्र शासक घोषित

कर देता था। प्रत्येक प्रान्त का सूबेदार अपने कार्यों के लिये सुल्तान के प्रति उत्तरदायी होता था। उसको प्रतिवर्ष एक निश्चित रकम कर के रूप में सुल्तान की सेवा में भेजनी पड़ती थी और आवश्यकता पड़ने पर सुल्तान की सैनिक सहायता भी करनी पड़ती थी। उसको अपने नाम के सिक्के प्रचलित करने तथा अपने नाम का खुतवा पढ़वाने का अधिकार नहीं था। वह जनता को दर्शन देने के लिए खिड़की पर नहीं बैठ सकता था।

(3) स्थानीय प्रशासन- शासन की सुविधा के लिए प्रान्तों को कई 'शिकों' में विभक्त किया गया था। शिक के प्रधान को शिक़दार कहते थे। शिकों को परगनों और परगनों को गाँव में विभक्त किया जाता था। इस प्रकार सबसे छोटी इकाई गाँव थी। प्रत्येक गाँव में एक पटवारी, चौधरी, मुकद्दम तथा मुखिया रहता था। गाँवों के पारस्परिक झगड़ों का फैसला ग्राम पंचायतें करती थीं। शान्तिकाल में सुल्तान गाँवों के कार्यों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता था। नगरों में कोतवाल होते थे। इनका कार्य शान्ति-व्यवस्था, सफाई, रोशनी, बाजारों का निरीक्षण तथा कुछ झगड़ों का निर्णय करना था।

(4) न्याय-व्यवस्था- साम्राज्य की सम्पूर्ण न्याय-व्यवस्था का प्रधान स्रोत सुल्तान था। इसके अतिरिक्त राज्य का प्रमुख न्यायाधीश 'काजा मुमालिक' था। उसका प्रमुख कार्य न्याय करना तथा धर्म-विभाग की देखभाल करना था। जब वह धर्म-विभाग के अध्यक्ष की हैसियत से कार्य करता था तब वह 'सद्र-उल-सदूर' कहलाता था। मुकदमों के निर्णय की अपील सुल्तान के पास की जाती थी। वह सप्ताह में दो बार दरबार में मुकदमों का निर्णय करता था। प्रत्येक सूबे तथा प्रत्येक जिले में काजी की नियुक्ति की जाती थी। प्रमुख नगरों में अमीरदाद नामक पदाधिकारी होता था जिसका कार्य अपराधियों को बन्द करना तथा काजी की सहायता से मुकदमों का फैसला करना था। दण्डनीति अत्यधिक कठोर थी। साधारणतया अपराधियों को अंगच्छेद या मृत्यु का दण्ड दिया जाता था। फौजदारी के मुकदमों का निर्णय काजी करता था, किन्तु हिन्दुओं को अपने दीवानी मुकदमों का अपनी पंचायतों द्वारा फैसला कराने का अधिकार प्राप्त था। न्याय में रिश्वत का बोलबाला था। किसी विद्वान् के अनुसार 'न्याय उसी अवस्था में ठीक हो सकता था जबकि दोनों पक्ष इतने अधिक निर्धन हों कि काजी को रिश्वत न दे सकें।'

(5) सेना का प्रबन्ध- सुल्तान की शक्ति का आधार उसकी सेना थी। बाह्य आक्रमणों के भय से उसको अपनी सैनिक-शक्ति को सुदृढ़ रखना पड़ता था। अश्वारोही दल सेना का प्रमुख अंग समझा जाता था। अलाउद्दीन की सेना में पैदलों की विशाल सेना के अतिरिक्त 4,75,000 अश्वारोही थे। इस प्रकार की स्थायी सेना मुहम्मद तुगलक के शासन-काल तक कायम रही। प्रान्तीय सूबेदार तथा जागीरदारों को संकटकाल के समय सुल्तान की सहायता के लिये अपनी सेनाएँ भेजनी पड़ती थीं। सैनिकों के ऊपर एक 'सरे खेल', दस 'सरे खेल' के ऊपर 'सिपहसालार', दस 'सिपहसालार' के ऊपर एक 'अमीर', दस 'अमीरों के ऊपर एक 'मलिक' और दस मलिक के ऊपर एक 'खान' होता था। खान के बाद सेनापति होता था जो युद्ध में सेना का संचालन करता था। सेना की समुचित व्यवस्था के लिये एक 'दीवान-ए-अर्ज' नामक विभाग था जिसका अध्यक्ष 'आरिज-ए-मुमालिक' कहलाता था। सैनिकों को नकद वेतन देने की प्रथा को अलाउद्दीन ने प्रारम्भ किया था, किन्तु फिरोज के शासन-काल में नकद वेतन देने के स्थान पर पुनः जागीरें देना प्रारम्भ कर दिया गया। भीषण संकटकाल में सुल्तान स्वयं युद्ध-स्थल में सेना का संचालन करता था।

(6) राज्य की आय के साधन- जनता पर लगाये गये विभिन्न करों से राज्य को पर्याप्त आय होती थी। मुस्लिम शरियत के अनुसार प्रजा पर जो पाँच कर लगाये गये थे, वे इस प्रकार थे-

(i) उश्र- यह भूमि-कर था जिसमें मुसलमानों से उपज का 1/10 भाग लिया जाता था।

(ii) खिराज- यह भी भूमि-कर था जो गैर मुसलमानों से लिया जाता था। यह उपज का 1/3 से 1/2 भाग तक होता था।

(iii) जकात- यह भी धार्मिक कर था जो केवल मुसलमानों से आय-कर के रूप में लिया जाता था। यह कर उस समय लगाया जाता था जब वे निश्चित मूल्य से अधिक सम्पत्ति के अधिकारी होते थे।

(iv) खुम्स- यह युद्ध के लूट के माल का 1/5 भाग होता था जो शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध में प्राप्त होता था। 4/5 भाग सैनिकों के मध्य में बाँट दिया जाता था।

(v) जजिया- यह कर हिन्दुओं के इस्लाम धर्म के स्वीकार न करने पर देना पड़ता था। फिरोज ने ब्राह्मणों से भी इस कर को वसूल किया था। इस कर से राज्य को बहुत आय होती थी। धनिक वर्ग से 48 टंका, मध्य वर्ग से 24 टंका और साधारण लोगों से 12 टंका जजिया के रूप में लिया जाता था।

इन करों के अतिरिक्त चरागाह-कर, मकान-कर, पशु-कर तथा सिंचाई-कर से राज्य को पर्याप्त आय होती थी। खानों से प्राप्त धन का 1/5 भाग राजकोष में जमा हो जाता था। यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती थी और उसके सन्तान नहीं होती थी, तो उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति पर राज्य का आधिपत्य हो जाता था। राज्य की प्रजा, अमीरों तथा पदाधिकारियों से भी बहुत-सा धन सुल्तान को भेंट स्वरूप प्राप्त हो जाता था। इस प्रकार राज्य की आय के पर्याप्त साधन थे।

भारतीय जन-जीवन पर मुस्लिम शासन का प्रभाव

मुसलमानों के भारत आगमन से पूर्व जितनी भी विदेशी जातियाँ भारत में आईं वे इसकी विशाल सभ्यता और संस्कृति में घुल-मिल गईं। मुस्लिम सभ्यता भी हिन्दू सभ्यता की ही तरह उच्च सभ्यता थी। हिन्दुओं और मुसलमानों की शत्रुता के कारण दोनों की सभ्यता तथा संस्कृति का पृथक् अस्तित्व बना रहा। फिर भी मुसलमानों के दीर्घकालीन शासन के कारण दोनों ही एक दूसरे से व्यापक रूप में प्रभावित हुए।

सामाजिक जीवन

तुर्क-अफगान भारत में शासक थे और समाज में शासकवर्ग का स्थान सर्वोपरि था। उन्हें अपने रक्त की शुद्धता पर अभिमान था। पर धीरे-धीरे यह बात समाप्त होने लगी और रक्त-मिश्रण एवं भारतीयकरण की प्रक्रिया बड़े जोरों से आरम्भ हुई। विभिन्न तत्वों के मेल से मुसलमानों की एक नई जाति उत्पन्न हुई और परिणाम यह हुआ कि तुर्कों का शासकवर्ग से प्रभाव समाप्त होने लगा। बहुत से भारतीयों ने अपना मूल धर्म त्यागकर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और वे भारतीय मुसलमान कहे जाने लगे। आरम्भ में उनका स्थान सम्मानजनक नहीं था। वे अपने को हिन्दुओं से ऊँचा समझते थे और विदेशी मुसलमान उन्हें अपने से तुच्छ

मानते थे। पर आगे चलकर जब सल्तनत के शासकों का काम मुसलमानों के बिना चलना असम्भव हो गया तो इन भारतीय मुसलमानों को भी उच्च पद दिये जाने लगे।

हिन्दू और मुसलमान आपस में बहुत दिनों तक लड़ने के उपरान्त यह समझ गये कि उनका मिल-जुलकर रहना ही ठीक होगा। इस कारण हिन्दू मुसलमान आपस में मेलजोल से रहने लगे। यद्यपि दो विभिन्न संस्कृतियों के कारण हिन्दू-मुस्लिम पार्थक्य बना रहा पर दोनों एक-दूसरे से बहुत अंशों में प्रभावित अवश्य हुए। फिर भी समाज हिन्दू और मुस्लिम समाज नामक दो भागों में विभक्त था क्योंकि हिन्दुओं और मुसलमानों में रहन-सहन, आचार-विचार और रीति-रिवाज की दृष्टि से पर्याप्त विषमता थी।

हिन्दू समाज- हिन्दू समाज का राजनीतिक दृष्टि से ह्रास हो गया था। उसकी स्वतन्त्रता समाप्त हो गयी थी और वे मुसलमानों की दासता में जकड़ गये थे। मुसलमानों ने उन्हें अपमानित जीवन बिताने के लिए बाध्य कर उनके आत्म-सम्मान पर कुठाराघात किया। अलाउद्दीन के समय में हिन्दू घोड़े की सवारी भी नहीं कर सकते थे तथा हिन्दू नारियों को मुसलमानों के घरों में काम करना पड़ता था। हिन्दुओं को जजिया कर भी देना पड़ता था। उनकी सामाजिक स्थिति भी ठीक नहीं थी। जाति-पाँति और छुआ-छूत की संकीर्ण भावना ने उन्हें ग्रसित कर लिया था। दक्षिण भारत के हिन्दुओं का रहन-सहन उत्तर भारत वालों की अपेक्षा भिन्न था। हिन्दू राज्यों में ब्राह्मणों का सम्मान था। उन्हें उच्च पद पर नियुक्त किया जाता था तथा उन्हें कर भी नहीं देना पड़ता था। हिन्दुओं ने मुसलमानों को म्लेच्छ समझ कर उनसे दूर रहने का प्रयत्न किया। हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति के उच्च नैतिक स्तर की रक्षा के लिए हिन्दुओं ने जाति-प्रथा के बन्धनों को और भी दृढ़ कर दिया जिससे हिन्दू-मुस्लिम वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित न हो सके।

स्त्रियों की दशा- हिन्दू समाज में स्त्रियों की दशा पहले जैसी नहीं रही। उनका सम्मान कम हो गया था। पर मुस्लिम समाज की तुलना में हिन्दू समाज में स्त्रियों का सम्मान अधिक था। वे आचारशीला और पतिव्रता होती थीं। पति की मृत्यु हो जाने पर अथवा अपने शील पर संकट आते देखकर वे जौहर कर लेती थीं। मुसलमानों से अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए उन्होंने पर्दा-प्रथा अपनाई। विधवा-विवाह की मान्यता नहीं थी, किन्तु बाल-विवाह जोर पकड़ने लगा था। बहु-विवाह भी अधिक होने लगा था।

नैतिकता- हिन्दू-समाज में ब्राह्मणों को उच्च स्थान प्राप्त था। मुसलमानों की तुलना में हिन्दुओं का नैतिक स्तर उच्च था तथा उनमें पवित्रता की भावना अधिक थी। हिन्दू-समाज में मदिरा-पान निषिद्ध था।

मुस्लिम समाज- शासक होने के कारण मुसलमानों में स्वेच्छाचारिता तथा अहंकार की भावना थी। वे हिन्दुओं को घृणा की दृष्टि से देखते थे। मुसलमान शान-शौकत का जीवन बिताते थे तथा शराब पीना, जुआ खेलना उनमें एक रिवाज हो गया था। सुल्तान और अमीर अपने यहाँ गुलाम रखते थे। उनके विलास-गृहों में सहस्रों रूपवती रमणियां उनका मनोरंजन किया करती थीं। उनमें चारित्रिक दोष भी आ गये थे। मुस्लिम समाज में स्त्रियों का महत्व उतना नहीं था जितना हिन्दू-समाज में। बाहर से आये मुसलमान भारतीय मुसलमानों से बराबरी का व्यवहार नहीं करते थे। सूफियों और फकीरों का आदर होता था तथा पीरों और औलियों की पूजा होती थी। लोगों में अन्ध-विश्वास बढ़ रहा था।

उलेमा वर्ग- मुसलमानों में उलेमा लोगों का महत्व और सम्मान था। ये लोग लेखनी से जीविकोपार्जन करते थे तथा धर्माधिकारी कहे जाते थे। शासकवर्ग पर भी उलेमाओं का अधिकार था तथा न्याय, धर्म और शिक्षा सम्बन्धी नौकरियों पर उनका नियन्त्रण रहता था। कुछ उलेमा लोग निजी शिक्षण-संस्थाओं का भी संचालन करते थे। उलेमाओं में से अनेक कातिब, मुँहतसिब, मुक्ति तथा काजी थे। प्रायः सभी उलेमा धर्मशास्त्रों के महान् ज्ञाता थे। निर्बल शासकों के समय में उलेमाओं का प्रभाव अधिक बढ़ गया था किन्तु बलबन, अलाउद्दीन तथा मुहम्मद तुगलक जैसे शासकों के समय में वे प्रभावहीन थे।

सैनिक वर्ग- सल्तनतकालीन शासन सैन्य-शक्ति पर आधारित था। इस कारण सल्तनतकाल में सैनिकों का विशेष सम्मान था। उनमें भी कई वर्ग थे। वे खान, मलिक, अमीर, सिपहसालार, सरेखेल आदि श्रेणियों में विभक्त थे। खान सबसे ऊँचे थे और सरेखेल का स्थान सबसे नीचा था।

दास-प्रथा- मुसलमान अपने साथ दास-प्रथा लेकर भारत आये। उनमें दास-प्रथा का चलन बहुत ज्यादा था। मुस्लिम शासक अधिक संख्या में दास-दासियाँ रखते थे और इसमें गौरव अनुभव करते थे। दासों का पालन-पोषण घर के लड़कों की ही तरह होता था और योग्यतानुसार उन्हें ऊँचे-ऊँचे पद भी दिये जाते थे। कभी-कभी शासक के सन्तानहीन होने या उसकी सन्तान के अयोग्य होने पर दास ही उत्तराधिकारी हो जाता था। गुलाम-वंश तो दास-प्रथा पर ही आधारित था। साधारण जीवन में दास-दासियों और हिजड़ों का खूब क्रय-विक्रय होता था। अलाउद्दीन ने दास-दासियों का मूल्य भी निर्धारित किया था।

मुसलमानों की देखा-देखी हिन्दुओं में भी दास-प्रथा आरम्भ हो गई। दिल्ली के सुल्तानों, अमीरों तथा सभासदों की देखा-देखी राजाओं और सामन्तों ने भी दास-दासियाँ रखना आरम्भ कर दिया और परिणामस्वरूप उनका भारी मात्रा में क्रय-विक्रय होने लगा।

आर्थिक जीवन

सल्तनतकालीन शासन हिन्दुओं के लिए आर्थिक विपन्नता का काल था। मुस्लिम शासक उनके साथ बड़ा क्रूर व्यवहार करते थे। उन्हें दबाने के लिए उन्हें तरह-तरह के भारी करों से लाद दिया गया। जजिया कर के अतिरिक्त हिन्दुओं को भूमि-कर, पशु-कर आदि भी देने पड़ते थे। कुछ सुल्तानों ने हिन्दुओं को निर्धन करने की नीति ही बना ली। हिन्दुओं को सरकारी नौकरियाँ प्राप्त करना कठिन हो गया। फलस्वरूप उनका मुख्य व्यवसाय कृषि हो गया। कृषि उन्नत अवस्था में अवश्य थी। प्रायः सभी प्रकार की फसलें उगायी जाती थीं। कुछ सुल्तानों ने सिंचाई-व्यवस्था में सुधार करने का प्रयत्न किया। गाँवों और शहरों में कुछ उद्योग-धन्धे भी विकसित थे। कपड़ों, धातु के सामानों आदि का निर्माण होता था तथा वाणिज्य-व्यवसाय भी उन्नत अवस्था में था, किन्तु विदेश-व्यापार मुसलमानों के हाथ में होने के कारण हिन्दू जनता को कोई लाभ नहीं था। बलबन, अलाउद्दीन खिलजी तथा फिरोज तुगलक के अतिरिक्त किसी सुल्तान ने आर्थिक अवस्था को सुधारने का प्रयत्न भी नहीं किया। लूट-पाट की छूट होने के कारण मुस्लिम सैनिक लोगों को खूब लूटते भी थे। बीच-बीच में अकाल भी पड़े जिससे लोगों की दरिद्रता में और वृद्धि हुई। मुसलमानों की लड़ाइयों और मुहम्मद तुगलक की असफल योजनाओं ने हिन्दुओं को आर्थिक दृष्टि से और अधिक विपन्न कर दिया। अलाउद्दीन के शासनकाल में हिन्दू घरों में सोना-चाँदी तो दूर की बात है, सुपारी तक नहीं मिलती थी।

इसमें सन्देह नहीं कि मुसलमानों ने 'सोने की चिड़िया' कहे जाने वाले देश का पर कतर कर उसे अधमरा कर दिया। सर बूल्जे के अनुसार समस्त हिन्दू दुःख और दरिद्रता में डूब गये थे। दूसरी ओर मुसलमान लोग ऐश-आराम का जीवन बिता रहे थे।

धार्मिक जीवन

भक्ति-आन्दोलन- प्राचीन काल से ही भारतीयों का ऐसा विश्वास रहा है कि ज्ञान, भक्ति और कर्म ही मोक्ष के प्रमुख मार्ग हैं लेकिन दिल्ली-सल्तनत-काल में सबसे अधिक भक्ति-मार्ग को महत्व दिया गया। हिन्दू-धर्म की रूढ़िवादिता को दूर करने और उसमें नवीन चेतना लाने के लिए जो धर्म सुधार का आन्दोलन चला, वह भक्ति -आन्दोलन के नाम से विख्यात हुआ। कुछ विद्वानों की ऐसी धारणा है कि इस धार्मिक आन्दोलन का प्रमुख कारण इस्लाम धर्म का प्रभाव था। किन्तु यह धारणा इसलिये मान्य नहीं है, क्योंकि भक्ति-आन्दोलन प्राचीन काल से चला आया है और उपनिषद् तथा महाभारत आदि प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है। इस सम्बन्ध में इतना अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि इस्लाम धर्म के प्रभाव से इस आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला और यह प्रोत्साहन सूफी सन्तों के सिद्धान्तों का प्रभाव था। धार्मिक आन्दोलन को प्रारम्भ करने का श्रेय हिन्दू-धर्म के महान् सुधारक शंकराचार्य को है जिन्होंने तर्कयुक्त अद्वैतवाद की स्थापना की और बौद्ध-धर्म के तर्कों का खण्डन करके हिन्दू धर्म को पुनर्जीवन प्रदान किया। लेकिन उनका अद्वैतवाद साधारण लोगों को अपनी ओर आकर्षित न कर सका, क्योंकि उन्होंने मोक्ष-प्राप्ति के लिए ज्ञान पर अधिक बल दिया जो कि साधारण जनता की समझ के परे था। इसके विपरीत मध्यकालीन सन्तों ने मोक्ष-प्राप्ति के लिये भक्ति पर ही बल दिया। यह मोक्ष-प्राप्ति का अधिक सरल और सुगम आधार था जिसके कारण साधारण जनता इस ओर अत्यधिक आकर्षित हुई। इस प्रकार मोक्ष-प्राप्ति के लिए भक्ति का आधार लेकर जो आन्दोलन चला वह भक्ति-आन्दोलन कहलाया। इस आन्दोलन में अनेक सुधारकों ने सहयोग प्रदान किया, जिनका वर्णन नीचे किया जा रहा है-

(1) रामानुजाचार्य- रामानुज का जन्म आधुनिक आन्ध्रप्रदेश के त्रिपुती नगर में 1017 ई० में हुआ था। वे वैष्णव-धर्म के उपासक तथा भक्ति-आन्दोलन के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन किया और विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचार किया। उन्होंने मुक्ति-प्राप्ति के लिए सगुण ब्रह्म की उपासना करने का उपदेश दिया। अपने जीवनकाल में ही उन्होंने 700 वैष्णव मठों का निर्माण कराया।

रामानुज ने उच्च जातियों के प्राचीन विशेषाधिकारों को स्वीकार कर, निम्न तथा अन्य जातियों के लिए समाज में कुछ सुविधायें प्रदान कीं। उन्होंने शूद्रों के लिए वर्ष में एक दिन निश्चित किया था, जिस दिन वे कुछ मंदिरों में जा सकते थे। इस प्रकार रामानुज ने अपनी रूढ़िवादिता के बावजूद भी अपने बाद भविष्य में आने वाले सुधारकों के लिये मार्ग प्रशस्त किया। आपकी मृत्यु लगभग 1137 ई० में हुई।

(2) रामानन्द- इनका जन्म 1299 ई० में प्रयाग के एक कान्यकुब्ज परिवार में हुआ था। राम-उपासक होने के कारण उन्होंने राम-भक्ति का उपदेश दिया। जनसाधारण की भाषा

में प्रचार करने के कारण प्रत्येक जाति की स्त्रियों और पुरुषों ने उनके उपदेशों को ग्रहण किया। उन्होंने प्रत्येक जाति के लोगों को अपना शिष्य बनाया। उनके बारह प्रमुख शिष्यों में एक नाई (सेन), एक चमार (रैदास) तथा एक मुसलमान (कबीर) था। इनमें कबीर सबसे अधिक विख्यात हुए। रामानन्द की मृत्यु 1411 ई० में हुई।

भक्ति - आन्दोलन के प्रमुख सन्त

1. रामानुजाचार्य
2. रामानन्द
3. निम्बार्काचार्य
4. माधवाचा
5. बल्लभाचा
6. कबी
7. गुरु नानक
8. चैतन्य
9. नामदेव
10. तुकाराम

(3) निम्बार्काचार्य- ये रामानुजाचार्य के समकालीन थे। इन्होंने कृष्णभक्ति पर जोर दिया। इनके दृष्टिकोण से कृष्ण के चरणों में भक्ति रखते हुए मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। आपने भी रामानुज की भाँति शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन किया। उनके विशिष्टाद्वैतवाद की भाँति विभिन्न धार्मिक सिद्धान्तों में पारस्परिक समन्वय के लिये प्रयत्न किया। आपका सिद्धान्त अद्वैत एवं द्वैत, दोनों में सामंजस्य स्थापित करता है।

(4) माधवाचार्य- आपका जन्म 1199 ई० में हुआ था। ये भगवान विष्णु के उपासक थे। इन्होंने युवावस्था में संन्यास धारण किया और कई वर्ष तक घोर अध्ययन करके अपने विरोधियों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। आपने हरिद्वार में रहकर वेदान्त सूत्रों पर भाष्य तैयार किया। इन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद तथा रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद का खण्डन किया एवं स्पष्ट द्वैतवाद का प्रचार किया। माधवाचार्य का मत है कि प्रत्येक जीव का प्रमुख तथा अंतिम उद्देश्य वास्तविक गुण की अनुभूति प्राप्त करना है, जो कि केवल विष्णु की भक्ति के द्वारा ही संभव है। इनकी मृत्यु 1278 ई० के लगभग हुई। इनका सम्प्रदाय ब्रह्म अथवा स्वतन्त्रास्वतंत्रवाद के नाम से विख्यात हुआ।

(5) वल्लभाचार्य- आपका जन्म बनारस में 1479 ई० में हुआ था। ये कृष्ण के उपासक थे। इनके माता-पिता तेलगू ब्राह्मण थे। इन्होंने बाल्य-काल से ही अपनी योग्यता और साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया। आप तीर्थस्थानों का भ्रमण करते हुए विजयनगर राज्य पहुँचे। वहाँ इन्होंने कृष्णदेवराय की राज-सभा में शैव मतावलम्बियों के कुछ विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त किया। आपने शुद्ध द्वैतवाद की स्थापना की। बनारस में रहकर 17 ग्रन्थों का प्रणयन किया जिनमें श्रीमद्भागवत की 'सुबोधिनी टीका' अत्यधिक विख्यात है। आपके मतानुसार माया की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है। इसलिए ब्रह्म जीव और संसार में कोई भेद नहीं है। आपका बताया हुआ मार्ग 'पुष्टिमार्ग' कहलाता है। प्रारम्भ में इनके अनुयायियों की ख्याति बहुत बढ़ गई, किन्तु कालान्तर में इनके अनुयायियों में अनेक दोष उत्पन्न हो गये जिसके कारण इनके सम्प्रदाय को बहुत आघात लगा और अधिक काल तक यह सम्प्रदाय स्थिर न रह सका। वल्लभाचार्य की मृत्यु 1531 ई० में काशी में 52 वर्ष की आयु में हुई।

(6) कबीर- सन्त कबीर रामानन्द के शिष्यों में से प्रमुख थे। इनका जन्म 1398 ई० या 1440 ई०[1] में हुआ था। कहा जाता है कि इनका जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ। जिसने समाज के भय से इनको काशी के पास लहरतारा तालाब के किनारे डाल दिया था जहाँ से नीरू नाम का एक जुलाहा उठा ले गया और इनका पालन-पोषण किया। यह कहा जाता है कि कबीर बाल्यकाल से ही भक्ति-भाव की ओर रुचि रखते थे। अन्त में उन्होंने स्वामी रामानन्द के शिष्य होने का निश्चय कर लिया। 'एक दिन वे पहर रात रहते ही उस (पंचगंगा) घाट की सीढ़ियों पर जा पड़े, जहाँ से रामानन्द जी स्नान करने के लिए उतरा करते थे। स्नान को जाते समय अंधेरे में रामानंद जी का पैर कबीर के ऊपर पड़ गया। रामानन्द जी चट बोल उठे 'राम राम कह' कबीर ने इसी को गुरुमंत्र मान लिया और वे अपने आपको रामानन्दजी का शिष्य कहने लगे।' कबीर स्वयं कहते हैं :

'काशी में हम प्रगट भये हैं, रामानंद चेताये।'

और

'सद्गुरु के परताप तें मिटि गयौ सब दुख दंद।
कह कबीर दुविधा मिटी गुरु मिलिया रामानंद।।'

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे जैसा कि एक स्थान पर वह स्वयं स्वीकार करते हैं :

'मसि कागद छुयो नहिं, कलम गह्यो नहिं हाथ'।

किन्तु कबीर ने अशिक्षित होकर भी हिन्दुओं तथा मुसलमानों को अमूल्य शिक्षा प्रदान की।

कबीर की दृष्टि से हिन्दू-मुसलमान में कोई अन्तर नहीं था। वह दोनों जातियों की एकता के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के धर्मों में फैले हुए आडम्बरों और पाखण्डों की कटु आलोचना की। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों को उपदेश दिया कि यदि हृदय पवित्र नहीं है तो तीर्थ-स्थानों की यात्रा और गंगा-स्नान करना व्यर्थ है। इसी प्रकार अपवित्र हृदय रखते हुए मक्का और काबा की यात्रा करना निष्फल है। इन्होंने दोनों जातियों को फटकारते हुए कहाः

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करै बड़ाई, गागर छुअन न देई।
वेश्या के पायन तर सोवै, यह देखो हिन्दुआई।
मुसलमान के पीर औलिया, मुरगी मुरगा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहें, घरहि में करहि सगाई।

कबीर ने निराकार ब्रह्म की उपासना पर अधिक बल दिया। उनकी दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान एक ही मिट्टी के दो पुतले थे। वह उनके संकुचित भेद-भाव को हेय समझते थे। उन्होंने बताया कि राम और रहीम एक हैं और ईश्वर के साथ एकाकार हो जाना ही अमरत्व-प्राप्ति का प्रमुख साधन है। मूर्ति-पूजा का विरोध करते हुए उन्होंने हिन्दुओं से कहाः

'पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजौं पहार-''

इसी प्रकार उन्होंने मुसलमानों को सम्बोधित करते हुए कहा-

1. डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने कबीर का जन्मकाल 1440 ई० तथा मृत्युकाल 1510 ई० मानां है।

'काकर पाथर जोरि कै, मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बॉग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।''

इस प्रकार निर्गुणपन्थी कबीर ने हिन्दू और मुसलमानों के लिए एकता का उपदेश दिया। निम्नांकित पद में दोनों जातियों के लिए दी गई शिक्षाओं का स्वरूप सन्निहित है-

'न जाने तेरा साहब कैसा है।
'मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहब तेरा बहरा है,
चींटी के पग नेवर बाजै, सो भी साहब सुनता है।
साँच कहों तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना,
आतम मारि पषानहि पूजै, उनमें कछू न ज्ञाना।
बहुतै देखे पीर औलिया, पढ़ै किताब कुराना,
कह हिन्दू मोहि राम पियारा, तुरक कहैं रहमाना।''

कबीर का देहावसान लगभग 1468 ई० या 1510 ई० में हुआ। कहा जाता है कि हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों ने ही कबीर के शव पर अपना-अपना अधिकार जताया था। हिन्दू उसे जलाना चाहते थे और मुसलमान गाड़ना। मुसलमानों की माँग उनके मुस्लिम रिवाज के अनुसार ही थी। लेकिन हिन्दुओं को तो मुसलमान के शव का स्पर्शमात्र अपवित्र कर देता था। इसलिये उनके द्वारा कबीर के शव की माँग की जाना यह बताता है कि वे कबीर को मुसलमान नहीं बल्कि हिन्दू सन्त ही मानते थे।

कबीर के अनुयायी 'कबीरपंथी' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

(7) गुरु नानक (1469-1538 ई०)- नानक भक्ति सम्प्रदाय के दूसरे प्रमुख संत थे। आपका जन्म 15 अप्रैल, 1469 ई० को तालवण्डी नामक गाँव में हुआ था। तालवण्डी का आधुनिक नाम ननकाना है। यह पश्चिमी पंजाब के शेखपुरा जिले में लाहौर से 56 किमी दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। नानक के पिता मेहता कालूचन्द्र खत्री जाति के थे। उन्होंने गृहस्थ जीवन का परित्याग नहीं किया। उनके परिवार में उनकी पत्नी सुलाखिन और श्रीचन्द्र तथा लक्ष्मीदास नामक दो पुत्र थे। लेकिन फिर भी वे अपना सारा समय साधना, उपदेशों और सुधारों में लगाते रहे। उनका विचार था कि गृहस्थ जीवन और घरेलू काम करना आध्यात्मिक उन्नति के बीच बाधक नहीं है।
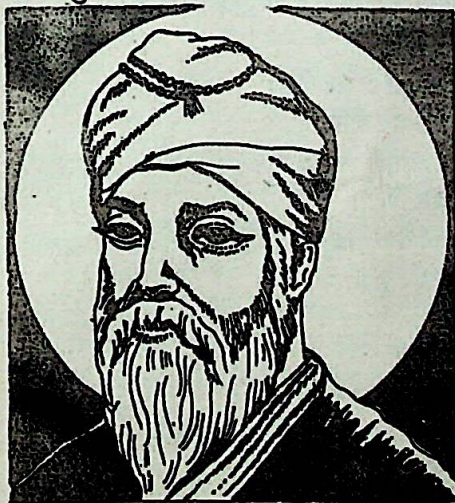
गुरु नानक

नानक का उद्देश्य एक ही ईश्वर की मान्यता के आधार पर हिन्दू धर्म में सुधार करना और हिन्दुओं एवं मुसलमानों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना था। नानक वेदों और कुरान को नहीं मानते थे। वे जाति-पाँति, ब्राह्मणों और मौलवियों की प्रमुखता, रस्म-रिवाज, धर्म-आडम्बरों, उपवासों और तीर्थ-यात्राओं के विरुद्ध थे। वे मूर्ति-पूजा के भी

घोर विरोधी थे। उन्होंने मुसलमानों और हिन्दुओं की सभी जातियों के लोगों को, यहाँ तक कि अछूतों को भी अपना शिष्य बनाया था। वे एक निराकार ब्रह्म में आस्था रखते थे, जिसे वे सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, अतुलनीय, अगम्य तथा अपनी सृष्टि से बिल्कुल अलग मानते थे। उनका कहना था कि ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण कर उसका नाम जपने से, नम्रतापूर्वक व्यवहार से और सभी प्रकार के छल-कपट का त्याग कर मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। नानक कर्म और पुनर्जन्म को मानते थे। उनके उपदेशों में नैतिकता, नम्रता, सत्य, दान और दया को प्रमुख स्थान प्राप्त था। दान करना, हरि का नाम जपना और तन-मन से गुरु की आज्ञा का पालन करना, सिक्खों के मुख्य कर्तव्य माने जाते थे। डॉ० **ईश्वरीप्रसाद** के शब्दों में नानक की शिक्षाओं का सार निम्न पंक्तियों में इस प्रकार दिया जा सकता है-''धर्म का तत्व केवल शब्दों में नहीं है। जो सब मनुष्यों को समझता है, वह धार्मिक है। मकबरों, श्मशानों में जाना अथवा समाधि लगाना धर्म नहीं है। विदेशों में घूमना अथवा तीर्थों में स्नान करना धर्म नहीं है। संसार की अपवित्रता के बीच पवित्र बने रहो, इस प्रकार तुम धर्म के मार्ग पर पहुँचोगे।''

1538 ई० में डेराबाबा नामक स्थान पर गुरुनानक का देहावसान हो गया।

(8) नामदेव- नामदेव महाराष्ट्र के प्रमुख भक्तिमार्गी सन्तों में थे। इनके समय के सम्बन्ध में मतभेद है। डॉ० ताराचन्द्र ने परम्परा के आधार पर इनकी जन्म-तिथि 1270 ई० बतायी है, किन्तु भंडारकर तथा अन्य विद्वानों के अनुसार इनका जन्म चौदहवीं शताब्दी में हुआ। नामदेव ने प्रारम्भ में सगुण तथा बाद में निर्गुणोपासना पर बल दिया। इन्होंने विसोबा खेचर अथवा खेचरनाथ नामक एक नागपंथी कनफटे से दीक्षा ली। इसके सम्बन्ध में नामदेव स्वयं कहते हैं :

'मन मेरी सुई, तन मेरा धागा। खेचर जी के चरण पर नामा सिंपी लागा।'

नामदेव ने गुरु की महत्ता पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। उनके अनुसार गुरु के द्वारा ही दुःखों का अन्त होता है और सुख की अनुभूति होती है। उसी के द्वारा ही ज्ञान की भी प्राप्ति होती है। वह स्वयं इसे स्वीकार करते हुए कहते हैं :

'सुफल जन्म मोको गुरु कीना, दुख बिसार सुख अन्तर दीना।
ज्ञान दान मोको गुरु दीना, राम नाम बिन जीवन हीना।'

इस प्रकार गुरु के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् नामदेव ने निर्गुण भक्ति को स्वीकार कर महाराष्ट्र तथा पंजाब आदि प्रदेशों में इसका प्रचार किया।

नामदेव ने समाज में प्रचलित अंध-विश्वासों तथा बाह्य आडम्बरों का विरोध किया। उन्होंने हिन्दू धर्म में प्रचलित मूर्तिपूजा का खण्डन करते हुए कहा :

'किसू हूँ पूजूँ दूजा नजर न आई।
एके पाथर किज्जे भाव, दूजे पाथर धरिये पाव।
जो वो देव तो हम वो देव, कहै नामदेव हम हरि की सेव।।'

नामदेव ने हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के उद्देश्य से दोनों समाज में प्रचलित धार्मिक क्रियाओं की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट कराया। नामदेव कहते हैं :

'रावन सेंती सरबर होई, घर की जोय गँवाई थी।
हिन्दू अंधा तुरकौ काना, दुवौ ते ज्ञानी सयाना।।
हिन्दू पूजै देहरा, मुसलमान मसीद। नाना सोई सेविया, जहँ देहरा न मसीद।।'

(9) चैतन्य (1485-1533 ई०)- चैतन्य भक्ति-आन्दोलन के महानतम प्रतिपादक नहीं तो महानतम संत अवश्य थे। चैतन्य का जन्म नवद्वीप (आधुनिक नदिया) में 18 फ़रवरी, 1485 को हुआ था। उनका वास्तविक नाम विश्वंभर था। उनके पिता जगन्नाथ मिश्र धार्मिक प्रवृत्ति के एक विद्वान् पुरुष थे और माता सची भी स्वभाव से बड़ी धार्मिक और पवित्र आचरण की थीं। विश्वंभर की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा एक पाठशाला में हुई और फिर उच्च शिक्षा के लिये उन्हें सुप्रसिद्ध पंडित गंगादास के पास भेजा गया। कहा जाता है कि उन्होंने केवल 15 वर्ष की आयु में ही संस्कृत भाषा और साहित्य, व्याकरण और तर्कशास्त्र पर अधिकार प्राप्त कर लिया। वे बाईस वर्ष के भी नहीं थे, जबकि उन्होंने ईश्वरपुरी नामक एक संत पुरुष से दीक्षा ले ली। वे अपने गुरु से इतने प्रेरित हुए कि वे बिल्कुल बदल ही गए। वे अब कृष्ण के परमभक्त बन गये और सदैव उनके नाम का कीर्तन करने लगे। कृष्णभक्ति के आवेश में वे कभी मूर्च्छित और समाधिस्थ हो जाते थे। वे 1510 ई० में संन्यासी हो गये और उन्होंने कृष्ण चैतन्य का नाम धारण कर लिया। लेकिन लोग उन्हें चैतन्य कहने लगे। कुछ समय पश्चात् वे पुरी गये। पुरी से उन्होंने देश के दक्षिणी और पश्चिमी भागों की यात्रा की और पंढरपुर, सोमनाथ, द्वारका आदि के पवित्र तीर्थों के दर्शन किये। पुरी में फिर दो वर्ष रहने के पश्चात् वे वृन्दावन, मथुरा और अन्य स्थानों की यात्रा पर निकल गये। उनका शेष जीवन पुरी में ही व्यतीत हुआ और वहीं 1533 ई० में उनका देहान्त हो गया।

चैतन्य ने परमात्मा पर पूर्ण आस्था रखने का उपदेश दिया। अपने इस परमात्मा को वे कृष्ण या हरि कहते थे। चैतन्य का धर्म रस्मों और आडम्बरों से मुक्त था। उनके उपदेशों के सार को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है : ''अगर कोई जीव कृष्ण पर श्रद्धा रखता है, अपने गुरु की सेवा करता है तो वह माया-जाल से मुक्त होकर कृष्ण के चरणों को प्राप्त होता है।'' उसकी भक्ति उसे सांसारिक बन्धनों से ऊपर ले आती है। वे मानते थे कि 'श्रद्धा और भक्ति, कीर्तन और नृत्य के द्वारा ऐसी भावावेशमयी स्थिति उत्पन्न की जा सकती है जिसमें परमात्मा से साक्षात्कार हो सकता है।' चैतन्य पुरोहितों के कर्मकाण्डों और बाह्य धर्म-आडंबरों के विरुद्ध थे। उन्होंने बिना जाति-धर्म का भेदभाव किये सभी को उपदेश दिये। उनका प्रभाव इतना गहरा और स्थायी था कि उनके अनुयायी उन्हें कृष्ण अथवा विष्णु का अवतार मानते थे। चैतन्य की मृत्यु के पश्चात् उनके अनुयायियों ने उनके उपदेशों को व्यवस्थित किया और स्वयं को एक सम्प्रदाय में संगठित कर लिया।

कुछ विद्वानों का मत है कि चैतन्य जाति-व्यवस्था के विरुद्ध नहीं थे। लेकिन धार्मिक मामलों में उन्होंने सभी जातियों की समानता पर जोर दिया। चैतन्य के उपदेश और उनकी विचारधारा केवल बंगाल या उड़ीसा में ही नहीं अपितु देश के अन्य भागों में भी जनप्रिय हो उठी। उन्होंने जो उपदेश दिये, वे सीधे जनता के हृदय में उतर गये। पीड़ित मानवता को उनका परमात्मा के प्रति प्रेम का संदेश मरहम-सा लगा और इसने सिद्ध कर दिया कि मानव हृदय राजनीतिक और सामाजिक विषमताओं के बीच भी उठ सकता है। डॉ० भंडारकर के शब्दों में, चैतन्य का कृष्ण-प्रेम इस प्रकार है : ''जैसे मधुमक्खी मधु से भिन्न है, उसके चारों ओर चक्कर काटती है और रस का पान करने पर उससे भर जाती है अर्थात् उसमें एकाकार हो जाती है, उसी प्रकार जीवात्मा पहले परमात्मा से भिन्न रहती है, निरन्तर उसको खोजती रहती है और जब प्रेम द्वारा परमात्म भाव से भर जाती है तो अपने स्वतंत्र अस्तित्व को भूलकर उसी में समा जाती है।''

(10) तुकाराम- आप मराठा सन्त थे। आपका जन्म पूना के निकट देही नामक स्थान में 1608 ई० में हुआ आ। इनके पिता ने तेरह वर्ष की आयु में ही इन पर व्यापार का कार्यभार सौंप दिया। किन्तु पिता की मृत्यु के बाद व्यापार में घाटा होने के परिणामस्वरूप वह दिवालिया हो गये। आर्थिक संकट में ही उनकी स्त्री का भी देहावसान हो गया। इस प्रकार तुकाराम इस सांसारिक जीवन से बहुत असन्तुष्ट हो गये और उन्होंने इससे छुटकारा प्राप्ति के लिए भक्तिमार्ग का अनुसरण किया।

तुकाराम ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना की। उनका विश्वास था कि ईश्वर, सर्वव्यापी तथा सर्वशक्तिमान है, उसका न आदि है और न अन्त है, वह निराकार है। उन्होंने समाज में प्रचलित धार्मिक अन्ध-विश्वासों तथा आडम्बरों का विरोध किया। कबीर की भाँति उन्होंने भी धार्मिक भेदभाव तथा ऊँच-नीच की भावना को समाज से निकाल फेंकने की चेष्टा की। उनकी दृष्टि में सभी जाति तथा धर्म समान थे। उन्होंने समाज में हिन्दू-मुस्लिम एकता को स्थापित करने का भी प्रयास किया।

उपर्युक्त सन्तों के अतिरिक्त **दादूदयाल, रविदास** तथा **ज्ञानदेव** आदि सन्त हुए। उन्होंने भी जाति-पाँति और मूर्तिपूजा का विरोध किया। ये सन्त इन सिद्धान्तों पर अधिक बल देते थे कि हिन्दू व मुसलमान सबका ईश्वर एक है, वही ब्राह्मणों और चाण्डालों को पैदा करने वाला है। सन्मार्ग पर चलने के लिए सभी को जाति-पाँति के भेदभाव अथवा अन्धविश्वासों को त्यागना पड़ेगा।

सूफीमत (सूफीवाद)

''सूफीवाद इस्लाम के धार्मिक जीवन की वह अवस्था है, जिसमें बाह्य क्रियाओं की अपेक्षा आन्तरिक क्रियाओं पर विशेष बल दिया जाता है । दूसरे शब्दों में, यह इस्लामी रहस्यवाद का बोधक है।''

-एक लेखक

इस्लामी रहस्यवाद को सूफीवाद कहा जाता है। सूफीवाद इस्लामी रहस्यवाद का ही एक रूप है। सूफीवाद एक सम्प्रदाय भी है और एक आन्दोलन भी। सूफीवाद की उत्पत्ति विवादग्रस्त है। विद्वान इस पर विरोधी मत रखते हैं। डॉ० युसूफ हुसैन का कथन है कि 'सूफीवाद का जन्म इस्लाम के वक्ष में हुआ था'और यह विदेशी विचारों और रस्मों से प्रभावित नहीं हुआ। लेकिन जहाँ तक भारत में इस धर्म की बात है यह हिन्दू विचारधारा, विश्वास और रीति-रिवाजों से बहुत ही प्रभावित हुआ। उदाहरण के लिए एक इष्टदेव का विचार और आत्मा तथा परमात्मा के बीच प्रियतमा और प्रियतम जैसे सम्बन्ध होने की बात हिन्दूधर्म की अपनी विशेषता है जिसे कि भारत के सूफियों ने अपना लिया था। इसी प्रकार भारतीय मुसलमान सूफियों ने जो शान्ति और अहिंसा के सिद्धान्त अपनाये वे ईसाईधर्म, हिन्दूधर्म और जैनधर्म की विशेषताएँ हैं।

सूफी मतावलम्बी ईश्वर से सीधा सम्पर्क स्थापित करने के लिए आतुर रहते थे। वे आत्मा के परमात्मा में लीन हो जाने की संभावना पर विश्वास रखते थे । कहा जाता है कि सूफी इस धुन में इतने खो जाते थे कि उन्हें परमात्मा से एक क्षण के लिए भी ध्यान हटाना गवारा नहीं होता था। परमात्मा में लीन हो जाने के इस आदर्श को सूफी मारिकात या वस्ल (एकीकरण) कहते हैं। इसकी प्राप्ति के लिये वे अनुष्ठान करते थे और भक्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। परमात्मा में लीन होने की इस प्रक्रिया में उन्हें 10 अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता था। ये

अवस्थाएँ थीं- तौबा (पश्चात्ताप), वारा (विरक्ति), जुहद (पवित्रता), फक्र (निर्धनता), सब्र (धैर्य), शुक्र (कृतज्ञता), खौफ (भय), रजा (आशा), तबक्कुल (संतोष) और रिजा (ईश्वरेच्छा के प्रति अधीनता)। आध्यात्मिक विकास की प्राप्ति के लिए सूफी स्वेच्छापूर्वक भौतिक जीवन का परित्याग कर देता था और न केवल राजकीय पदों से बल्कि शासकों तथा अधिकारियों के सम्पर्क तक से बचता रहता था। इसके परिणामस्वरूप उसमें मानवता के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता था और वह निर्धनता, शाकाहारी आहार, शांति और अहिंसा में विश्वास करने लगता था। संक्षेप में, सूफियों का लक्ष्य केवल परमात्मा से सीधा बौद्धिक और भावनात्मक सम्पर्क स्थापित करना ही नहीं था अपितु मानवता की सेवा करना भी था।

सूफी सम्प्रदाय- भारत में सूफियों के कई सम्प्रदाय थे। इनमें चिश्तिया, सुहरावर्दिया, नक्षावंदिया कादिरी, कलंदरिया और शुस्तरी सम्प्रदाय महत्वपूर्ण हैं। इन सम्प्रदायों को 'सिलसिले' कहते हैं। सुहरावर्दिया सम्प्रदाय सिन्ध, मुल्तान और सिन्ध तक सीमित था। कुछ सुहरावर्दी सन्त दिल्ली और अवध में भी बस गये थे। चिश्ती लोग अजमेर, राजस्थान के कुछ अन्य नगरों और पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा तथा दक्षिण के कुछ भागों में जम गये थे। चिश्ती सन्तों की लोकप्रियता का कारण यह था कि उन्हें भारतीय परिस्थितियों का ज्ञान था और उन्होंने कुछ हिन्दू रीति-रिवाजों को भी अपना लिया था।

सूफीवाद के प्रमुख सन्त- प्रमुख सूफी सन्तों का परिचय इस प्रकार है-

(1) ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती- इनका जन्म पूर्वी ईरान में स्थित सिजिस्तान नामक प्रान्त में 1141 ई० में या उसके लगभग हुआ था। उनके पिता की मृत्यु बचपन में ही हो गई थी। बाल्यकाल से ही वे जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे। अपने प्रदेश की स्थिति अराजकतापूर्ण होने के कारण उन्होंने अपनी सारी जायदाद बेच दी और संन्यासी हो गए। आध्यात्मिक शांति के लिए उन्होंने समरकन्द, बुखारा और इस्लामी विद्या के केन्द्रों की यात्रा की। जब वे नौशापुर जिले के हरवान नामक एक छोटे से नगर में थे तब उनकी भेंट ख्वाजा उसमान हारून से हुई और वे उनके शिष्य बन गये। ख्वाजा उसमान चिश्ती सम्प्रदाय के अध्यक्ष थे। धर्म प्रचार के उद्देश्य से वे भारत आए, कुछ समय तक लाहौर में रहे। फिर अजमेर चले आए और यहीं स्थायी रूप से रहने लगे। ख्वाजा ने दो विवाह किये थे और कहा जाता है कि उनकी एक पत्नी हिन्दू थी।

सूफीवाद के प्रमुख सन्त

1. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
2. ख्वाजा फरीदुद्दीन
3. निजामुद्दीन औलिया
4. गेसूदराज
5. शेख सलीम चिश्ती

मुईनुद्दीन ख्वाजा का हिन्दुओं के प्रति बड़ा उदार दृष्टिकोण था। वे अद्वैत जैसे दर्शन में आस्था रखते थे और उसी का उपदेश देते थे। उनका कथन था कि 'जब हम बाह्य बंधनों को पार कर जाते हैं और चारों ओर देखते हैं तो हमें प्रेमी-प्रेमिका और स्वयं प्रेम एक ही लगते हैं अर्थात् एकेश्वर के समक्ष वे सभी एक हैं।' उनका मानना था कि मानवता की सेवा करना ही ईश्वर की सर्वोच्च कोटि की भक्ति है। ईश्वर और जन-साधारण के प्रति इसी दृष्टिकोण के कारण ख्वाजा बहुत ही जनप्रिय हो गये थे। वह भरीपूरी आयु तक जीवित रहे और उनकी मृत्यु 1236 ई० के लगभग हो गई। आज भी अजमेर में उनकी समाधि पर मेला लगता है जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्मिलित होते हैं।

(2) ख्वाजा फरीदुद्दीन- दूसरे ख्याति-प्राप्त सूफी सन्त ख्वाजा फरीदुद्दीन थे। उनका जन्म मुल्तान के समीप 1175 ई० में हुआ था। वे छोटी आयु में ही शेख कुतुबुद्दीन के शिष्य हो गये थे और उपासना और अनुष्ठान जिनमें चिल्ला-ए-माकूस (पैरों में रस्सी बाँधकर अपने शरीर को कुएँ में उल्टा लटकाना और ऐसी स्थिति में 48 रातों तक तपस्या करना) भी शामिल था, करने लगे थे। वे पहले हाँसी में बसे और फिर अजोधान चले आये। उनके कई पत्नियाँ और सन्तानें थीं और इनकी सदैव ही भूखों मरने की नौबत बनी रहती थी। जन-साधारण में वे शेख फरीद या बाबा फरीद के नाम से विख्यात थे।

शेख फरीद ने अनेकों शिष्यों को शिक्षा दी थी। उनकी शिक्षाओं का हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जातियों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। वह इतने जन-प्रिय थे कि सदैव ही दर्शनार्थियों और शिष्यों से घिरे रहते थे। 92 वर्ष की आयु में 1265 ई० में उनका देहान्त हो गया और उन्हें अजोधान में ही दफना दिया गया।

(3) निजामुद्दीन औलिया- शेख निजामुद्दीन औलिया शेख फरीद के सर्वाधिक विख्यात शिष्य थे। इनका जन्म बदायूँ में 1236 ई० में हुआ था। वे जब 5 वर्ष के थे तभी उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। 20 वर्ष की आयु में वे अजोधान आए और बाबा फरीद के शिष्य हो गये। बाबा फरीद ने 1265 में उन्हें अपना खिलाफतनामा बख्शा और चिश्तिया सूफी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रचार करने को उद्‌बोधित किया। शेख निजामुद्दीन ने अपना कार्य बड़ी सफलता से किया। **इतिहासकार बर्नी 'तारीख-ए-फिरोजशाही'** में इसकी पुष्टि करता हुआ लिखता है, "शेख निजामुद्दीन ने अपने द्वार शिष्यों के लिए खोल दिये थे और उन्होंने अमीरों तथा सामान्य व्यक्तियों, धनी तथा निर्धनों, पढ़ों और अपढ़ों, शहरियों और देहातियों, सैनिकों तथा योद्धाओं, स्वतंत्र व्यक्तियों तथा गुलामों को अंगीकार कर लिया था। अगर कोई शिष्य कोई पाप करता था तो वह शेख के सामने उसे स्वीकार कर लेता था और फिर उनका शिष्य बन जाता था। जन-साधारण का झुकाव मजहब और नमाज की ओर हो गया था। स्त्री-पुरुष, युवक और वृद्ध, दुकानदार और नौकर, बच्चे और गुलाम सभी नमाज पढ़ने आते थे।"

निजामुद्दीन औलिया ने दिल्ली के सात सुल्तानों के राज्यकाल देखे, किन्तु वे इनमें से किसी के भी दरबार में कभी नहीं गये। उन्होंने बड़ी ख्याति अर्जित की। वे 'महबूब-ए-इलाही' (प्रभु का प्रिय) और 'सुल्तान-उल-औलिया' (संतों के राजा) के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनकी सफलता का श्रेय उनके संत जैसे गुणों और मानवता के प्रति उनके प्रेम और सेवा-भावना को है। उनकी मृत्यु 1325 ई० में हो गई।

(4) गेसूदराज- इनका जन्म 1321 ई० में दिल्ली में हुआ था। इनका मूल नाम ख्वाजा बन्दानवाज था, किन्तु बड़े-बड़े बाल रखने के कारण लोग इन्हें 'गेसूदराज' कहते थे। वे बड़े दयालु स्वभाव के थे। जिस समय दिल्ली में महामारी का प्रकोप हुआ, इन्होंने लोगों की बड़ी सेवा की। वे बहमनी राज्य की राजधानी गुलबर्गा में स्थायी रूप से निवास करते थे। इनकी

शिक्षाओं का हिन्दू और मुसलमान दोनों पर व्यापक प्रभाव पड़ा और दोनों जातियों के मध्य प्रेम और एकता का सामंजस्य उत्पन्न हुआ। 1422 ई० में इस सूफी सन्त की मृत्यु हो गई।

(5) शेख सलीम चिश्ती- फतेहपुर सीकरी के शेख सलीम-चिश्ती 16वीं सदी के प्रसिद्ध सूफी सन्त थे। वे अकबर महान् के समकालीन थे और उनका आश्रम सीकरी की पहाड़ी की एक गुफा में था। कहा जाता है कि अकबर के पुत्र जहाँगीर का जन्म शेख के आशीर्वाद से ही हुआ था और इसी कारण अकबर उसे शेखू बाबा कहा करता था। शेख सलीम चिश्ती ने मुसलमान सूफियों के रिवाज के अनुसार विवाह भी किया था और उनके सन्तानें भी थीं। उन्होंने अपने चिश्तियाँ सम्प्रदाय की परम्पराओं को बनाये रखा और बड़ी ख्याति अर्जित की। उनकी मृत्यु अकबर के जीवन-काल में ही हो गई और उन्हें फतेहपुर सीकरी की जामा मस्जिद के आँगन में दफना दिया गया। उनकी कब्र पर एक सुन्दर मकबरा भी बना दिया गया। यह सीकरी में मुगल स्थापत्य-कला का एक रत्न समझा जाता है और केवल सैलानी यात्री ही नहीं बल्कि दूर-दूर के देशों से श्रद्धालु लोग भी इसके दर्शन करने आते हैं।

सूफीवाद के विभिन्न सोपान

साधक (सालिक) को अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रेमरूपी मार्ग पर चलना पड़ता है क्योंकि सूफीवाद रूपी भवन प्रेम (इश्क) पर ही आधारित है। अतः सूफी प्रेम करने (इश्कबाजी) के साथ ही साथ सौंदर्यपूजा (हुस्नपरस्ती) के भी समर्थक हैं। यहाँ तक कि वे लोग व्यक्ति-विशेष के प्रेम में पड़कर 'ईश्वरीय प्रेम' (इश्क खुदा) का अनुभव तथा सौंदर्यपूजा में ईश्वर के सौंदर्य (अल्लाह के जमाल) का साक्षात्कार करते हैं। इस प्रकार प्रेम के मार्ग पर चलकर विभिन्न अवस्थाओं एवं विभिन्न ठिकानों को पार करते हुए, उन्हें अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति होती है।[1]

(1) उबूदियत- यह 'मनुष्यत्व की अवस्था' होती है। इसके अन्तर्गत साधक में सभी मानवीय गुण एवं अवगुण विद्यमान होते हैं। मनुष्य स्वभाव से ही कामी, क्रोधी और लालची रहा है और साथ ही साथ सांसारिक बन्धनों से जकड़ा रहा है। अस्तु, साधक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक होता है कि वह इन दुर्गुणों को नष्ट करने का प्रयास करे क्योंकि बिना इनके नष्ट किये हुए अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति असम्भव है।[2]

(2) शरीयत- साधक के लिए आवश्यक है कि वह शरीयत (इस्लाम के नियम) के अनुसार अपने मस्तिष्क को अनुशासित करे जैसा कि पवित्र कुरान में ईश्वर की आज्ञा है कि 'ईश्वर का पालन करो, पैगम्बर का पालन करो और उनका पालन करो जो तुम्हारे बीच शासक हो।' साधक का यह कर्तव्य होता है कि वह शरीयत के अनुसार नमाज, रोजा, दान (जकात) और मक्का की तीर्थयात्रा (हज) आदि आज्ञाओं का पालन करे। इन उच्च अभ्यासों

---

1. स्टडीज़ इन इस्लामिक कल्चर इन दि इंडियन इन्वैरन्मैन्ट, लेखक प्रो० ए० अहमद, पृ० 122।
2. भारतीय मध्यकालीन संस्कृति, लेखक लईक अहमद, पृ० 13-14।

के द्वारा स्वतः की बुराइयाँ—अहंकार, अदानशीलता, क्रोध आदि का नाश हो जाता है और वह ईश्वर के प्रेम (इश्क खुदा) में पड़ जाता है।

(3) तरीकत- इसके अन्तर्गत साधक को गुरु (पीर या शेख) की आवश्यकता होती है जो उसको आचरण की शुद्धता एवं प्रवृत्तियों पर अधिकार आदि के लिए निर्देश देता है। गुरु के निर्देशों के द्वारा ही ईश्वर की अनुभूति संभव है क्योंकि 'यदि व्यक्ति का शिक्षक नहीं है तो उसका शिक्षक (इमाम) शैतान ही होता है।' साधक का यह कर्तव्य है कि वह अपने गुरु को सबसे अधिक प्रेम करे, क्योंकि उसके लिए इस संसार में उससे (गुरु से) बढ़कर कोई नहीं है। उसको सदा गुरु की सेवा में लीन रहना चाहिये तथा एक सच्चे शिष्य की तरह उसको बिना किसी शंका-सन्देह एवं तर्क-वितर्क के अपने गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिये। प्रसिद्ध सूफी कवि हाफिज़ कहता है कि "यदि गुरु (पीर) आज्ञा दे तो साधक (सालिक) को चाहिए कि वह नमाज की चादर (जनमाज) को भी शराब से भिंगो दे।"

मोहम्मद साहब ने अपने आपको इस्लाम में समर्पित करने की शिक्षा दी जबकि सूफी अपने आपको गुरु में समर्पित करता है जो कि पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है।[1]

(4) मारिफत- ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति के लिए तर्क को त्याग देना पड़ता है। बुद्धि और प्रदर्शन को तिरस्कृत करना पड़ता है। चंचल आत्मा केवल ईश्वर की दया में ही सुख की अनुभूति करती है क्योंकि कुरान में ईश्वर ने कहा है, 'मैंने जिन और मानव की सृष्टि केवल इसलिये की है कि वह मेरी सेवा करे, इस प्रकार वे मुझे जाने।' केवल उसी की ही दयालुता (फैज) और कृपालुता (इनायत) के द्वारा उसे मारिफत की अवस्था की प्राप्ति होती है। इस प्रकार स्वच्छ मस्तिष्क दैविक ज्ञान से प्रकाशित हो जाता है।

(5) हकीकत- इस अवस्था के अन्तर्गत साधक को सात्विक ज्ञान की प्राप्ति होती है। सूफीवाद का उद्देश्य आंतरिक शुद्धता तथा प्रेमिका (ईश्वर) से मिलन है जो कि स्वतः प्रयत्नों से संभव नहीं है। क्योंकि यह एक ईश्वरीय देन है और वह उसी को प्रदान करता है जिससे वह (ईश्वर) प्रसन्न हो जाता है।[2] यह पूर्णतया ईश्वर की कृपा पर निर्भर है, जैसा कि कुरान का उपदेश है, "मनुष्य का कर्तव्य है कि वह ईश्वर की भक्ति में लीन रहे, जब तक कि उसको दया (ईश्वर) के दर्शन नहीं होते।"

(6) फ़ना व बक़ा- फ़ना की अवस्था को सूफी स्वतः के विनाश अथवा सांसारिक प्रवृत्तियों के विनाश की अवस्था कहते हैं। अबु इब्न अबुल खैर के अनुसार, "यह अवस्था ईश्वर-एकता की प्राप्ति की प्रारम्भिक अवस्था है।"[3] इस अवस्था को 'फ़ना-फि-अल्लाह' अर्थात् 'ईश्वर में लीन होना' कहते हैं।

फ़ना की अवस्था के पश्चात् अंतिम अवस्था में प्रवेश करना बक़ा की अवस्था कहलाती है। इस अवस्था के अन्तर्गत प्रिय (सूफी) एवं प्रियतमा (ईश्वर) के बीच के सभी अन्तर समाप्त हो जाते हैं और दोनों एकरूप हो जाते हैं जैसा कि मंसूर अल हल्लाज ने कहा है कि, "मैं वह हूँ जिसको मैं प्रेम करता हूँ, और वह जिसको मैं प्रेम करता हूँ वह मैं हूँ।" 'मैं ईश्वर हूँ।' इस अवस्था का कभी अंत नहीं होता जैसा कि प्रसिद्ध सूफी कवि हाफ़िज ने कहा है कि "जिसके हृदय में ईश्वर-प्रेम समा गया है, वह कभी नहीं मरता है।"

---

1. इन्फ्लुएन्स आफइस्लाम ऑन इंडियन कल्चर, लेखक ताराचन्द्र, पृष्ठ 81-82।
2. दि एलीमेन्ट्स आफइस्लामिक फिलास्फी, लेखक अली मेहदीं खाँ, पृष्ठ 172।
3. स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टिसिज्म, लेखक निकोल्सन, पृष्ठ 218।

भक्ति-आन्दोलन का प्रभाव- (i) कर्मकाण्ड तथा पुरोहितवाद को गहरा आघात लगा। धार्मिक क्षेत्र में ब्राह्मणों और मुसलमानों का प्रभाव कम हो गया।

(ii) हिन्दू और मुसलमानों में मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित हुए।

(iii) जाति-पाँति और मूर्ति-पूजा को धक्का लगा और एकेश्वरवाद की महत्ता प्रतिष्ठित हुई।

(iv) हिन्दुओं में ऊँच-नीच की भावना कम हुई और निम्न वर्ण के लोगों को ऊँचा उठाने का अवसर प्राप्त हुआ।

(v) प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य में प्रगति हुई जिसके परिणामस्वरूप अनेक सन्तों ने पदों की रचना की।

(vi) आन्दोलन के परिणामस्वरूप सिक्ख जैसी योद्धा जाति का अभ्युदय हुआ।

(vii) भक्ति -आन्दोलन का ही प्रभाव था कि मुगल सम्राट् अकबर ने हिन्दुओं के प्रति उदार नीति अपनाकर उनका सहयोग प्राप्त किया।

(viii) स्त्री जाति की दशा में सुधार हुआ।

(ix) हिन्दू समाज में फैले हुए अन्धविश्वास और सामाजिक कुरीतियाँ दूर हो गयीं।

साहित्य

फारसी साहित्य- दिल्ली के सुल्तानों के शासनकाल में फारसी साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति तथा अभिवृद्धि हुई। दिल्ली के समस्त सुल्तानों ने अपने दरबार में फारसी लेखकों, कवियों और दार्शनिकों को आश्रय प्रदान किया। कुछ सुल्तानों ने इतिहासकारों को भी अपने दरबार में स्थान दिया। इनमें 'ताजुल समीर' के लेखक हरून निजामी, 'तबक़ात-ए-नासिरी' के रचयिता मिनहाज-उल-सिराजु, 'तारीख-ए-फिरोजशाही के लेखक शम्मेसिराज अफीफ, 'तारीख-ए-मुबारकशाही' के लेखक अहमद सरहिन्दी तथा 'फुतूह-उल-सलातीन' के रचयिता इसामी आदि के नाम विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। इस काल के कवियों में अमीर खुसरो तथा अमीर हसन दिलहवी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अमीर खुसरो का जन्म 1253 में पाटियाली (उत्तर प्रदेश के एटा जिले में स्थित) में हुआ था। इनका मूल नाम मुहम्मद हसन था। इसने आरम्भ में बलबन के ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद खाँ के दरबार में कवि के रूप में नौकरी कर ली और बाद में बलबन से लेकर गयासुद्दीन तुगलक के समय तक राजकवि के पद को सुशोभित किया। कहा जाता है कि उसने चार लाख से भी अधिक छन्दों की रचना की थी। उसके द्वारा लिखे गये अनेक ग्रन्थों में 'खजाइन-उल-फुतूह, 'तुगलकनामा' तथा 'तारीख-ए-अलाई' आदि प्रसिद्ध हैं। अमीर हसन दहलवी का पूरा नाम नाजिमुद्दीन हसन था। ये भी प्रतिभाशाली कवि थे। इनकी मृत्यु 1318 में दौलताबाद में हुई। इन दो प्रमुख कवियों के अलावा सद्रउद्दीन अली, फखउद्दीन, हमीदउद्दीन, मौलाना आरिफ, अब्दुल हक्र शिहाबउद्दीन, बद्र-ए-चाच, शेख अब्दुल्लाह, शेख अजीज़ उल्लाह, शेख जमालउद्दीन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी कवि और साहित्यकार हुए जिन्होंने फारसी साहित्य की रचना की।

संस्कृत-साहित्य- विजयनगर राज्य के शासकों के शासन-काल में संस्कृत-साहित्य की पर्याप्त अभिवृद्धि हुई। इस वंश के राजाओं की प्रेरणा से अनेक संस्कृत ग्रन्थों की रचना हुई। इस काल में अनेक नाटकों की रचना की गई जिनमें जयदेव द्वारा लिखित 'हरकेलि

नाटक', 'ललित विग्रहराज नाटक' तथा 'प्रसन्नराघव', जयसिंह सूरी द्वारा रचित 'हम्मीर मद-मर्दन', रविवर्मा द्वारा रचित 'प्रद्युम्नाभ्युदय', विद्यानाथ का 'प्रतापरुद्र कल्याण', वामनभट का 'पार्वती परिणय, गंगाधर का 'गंगादास प्रताप विलास' और रूप गोस्वामी का 'विदग्ध-माधव' तथा 'ललित माधव' आदि नाटक विशेष उल्लेखनीय हैं। कुछ सुल्तानों ने संस्कृत के ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद कराया। फिरोज तुगलक ने मौलाना ईजुद्दीन खलीद खानी द्वारा एक संस्कृत ग्रन्थ का फारसी में अनुवाद कराया और उसका नाम 'दयालत-ए-फिरोजशाही' रखा गया। सिकन्दर लोदी ने भी संस्कृत के एक आयुर्वेद ग्रन्थ का फारसी में अनुवाद कराया और उसका नाम 'तिब्ब-ए-सिकन्दरी' रखा। बहमनी राज्य के प्रधान मंत्री महमूदगवाँ ने 'मनाजिर-उल-इंशा' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की।

हिन्दी साहित्य- इस युग में हिन्दी साहित्य की भी प्रगति हुई। पृथ्वीराज के दरबारी कवि चंदवरदायी ने 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की। सारंगधर ने 'हम्मीर रासो' तथा 'हम्मीर काव्य' नामक ग्रन्थों की रचना की। दलपति विजय ने 'खुमान रासो' की रचना की। जगनिक ने आल्हा-ऊदल की प्रशंसा में 'आह्ला खण्ड' नामक काव्य ग्रन्थ का प्रणयन किया। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय भाषाओं में साहित्य का सृजन हुआ। हिन्दी में कबीर, नानक, रैदास, सुन्दरदास आदि सन्तों ने पद्य-रचना की। राजस्थान की मीरा हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री हैं। महाराष्ट्र में नामदेव के पद और बंगाल में चंडीदास के पद आज भी गाये जाते हैं। महाभारत और रामायण का बंगला भाषा में अनुवाद किया गया। बंगाली विद्वानों में रघुनन्दन मिश्र का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। नरसिंह मेहता ने गुजराती में अनेक गीतों की रचना की। तत्पश्चात् भालन तथा भीम नामक गुजराती कवि हुए। बाण की कादम्बरी, पंचतन्त्र तथा रामायण आदि का भी गुजराती भाषा में अनुवाद किया गया। संत ज्ञानेश्वर ने अनेक गीतों की रचना की। मराठी कवियों में रामनाथ, तुकाराम, नरेन्द्र और मुकुन्दराम के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं।

शिक्षा- दिल्ली सुल्तानों ने शिक्षा के प्रसार में पर्याप्त योगदान किया, परन्तु इस क्षेत्र में भी उन्होंने संकुचित दृष्टिकोण का परिचय दिया। अतः उनकी व्यवस्था से मुसलमान प्रजाजन ही लाभान्वित हुए। मकतब (प्राथमिक शिक्षालय) प्रायः मस्जिदों से सम्बद्ध रहते थे। कुरान-शरीफ के साथ-साथ फारसी भाषा का लिखना और पढ़ना सिखाया जाता था। उच्च शिक्षा के लिए प्रमुख नगरों में मदरसे स्थापित किये गये।

दिल्ली-सुल्तानों में सर्वप्रथम इल्तुतमिश ने दिल्ली में मदरसा स्थापित किया और मुईनुद्दीन मुहम्मद गोरी की याद में उनका नाम 'मदरसा मुइज्मी' रखा। ऐसा ही एक मदरसा बदायूँ में बनवाया गया। बलबन ने दिल्ली में नासीरिया मदरसा स्थापित किया और 'तबक़ात-ए-नासिरी' के लेखक मिनहाज को उसका प्रधानाचार्य नियुक्त किया। बलबन प्रायः विद्वानों की संगति में बैठता था और अनेक देशी और विदेशी विद्वान उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे। अलाउद्दीन खिलजी ने दिल्ली में हौज खास के निकट एक मदरसे का निर्माण कराया। मुहम्मद तुगलक ने भी दिल्ली में एक मदरसा स्थापित किया। फिरोज तुगलक के शासनकाल में शिक्षा का बहुत प्रसार हुआ और सल्तनत के विभिन्न नगरों में तीस मदरसे स्थापित हुए। इनके रख-रखाव के लिए जायदाद दिल्ली से सम्बद्ध कर दी गई। हौज खास के निकट का मदरसा विख्यात था। फिरोज तुगलक के शासनकाल में व्यावसायिक शिक्षा हेतु कारखाने भी स्थापित किये गये।

सिकन्दर लोदी बड़ा ही विद्याव्यसनी था। उसने नवस्थापित नगर आगरा में विद्यालय खोला तथा साम्राज्य के विभिन्न भागों में विद्यालय स्थापित कर अरब, ईरान और मध्य एशिया के विद्वानों को इनमें शिक्षा देने के लिए आमन्त्रित किया। उसके शासनकाल में मथुरा और अलवर में मदरसे स्थापित हुए जिनमें सभी शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। सिकन्दर लोदी के शासन में हिन्दुओं ने, विशेषकर कायस्थों ने पढाई में रुचि दिखाई।

सल्तनत के विघटन पर स्थापित स्वतन्त्र राज्यों के प्रमुख नगरों में मदरसे खोले गये। इनमें जौनपुर का बीबी राजा बेगम का मदरसा और बीदर में महमूदगवाँ का मदरसा बड़ा प्रसिद्ध हुआ।

यद्यपि सुल्तानों ने हिन्दुओं के लिए शिक्षालय नहीं खोले फिर भी नदिया, मिथिला, मथुरा, प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन, अयोध्या आदि शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे जहाँ दूर से हिन्दू विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे।

कला

सल्तनत काल में अनेक ललितकलाओं में से केवल स्थापत्य-कला का ही अधिक विकास हुआ। इस्लाम चित्रकला का धार्मिक दृष्टि से निषेध करता है। इस कारण इस कला का विकास सम्भव न हुआ। इस्लाम में गानविद्या और नृत्यकला भी वर्जित है, परन्तु फिर भी सुल्तानों, अमीरों और प्रान्तीय शासकों ने इसमें व्यक्तिगत रुचि प्रकट की और दरबारों में इसका प्रचलन रहा। अमीर खुसरो इस युग का कुशल संगीतज्ञ था। कहा जाता है कि वह सितार और तबलों का निर्माता था। संगीत की एक रचना 'राजदर्पण' का फारसी में अनुवाद हुआ। जौनपुर के हुसैन शाह शर्की, ग्वालियर के राजा मानसिंह तथा सिकन्दर लोदी संगीत के अनुरागी और आश्रयदाता थे।

स्थापत्य-कला- सल्तनत-काल में स्थापत्य-कला (वास्तुकला) का विशेष विकास हुआ। मुसलमानों के आगमन के पूर्व भी भारतीय स्थापत्य-कला उन्नत अवस्था में थी जिसकी महमूद गजनवी जैसे आक्रमणकारी ने भी प्रशंसा की थी। उसने मथुरा के मन्दिरों के सम्बन्ध में लिखा है, "यदि कोई व्यक्ति उस जैसे भवन का निर्माण करना चाहे तो उसे हजार दीनार की एक लाख थैलियाँ व्यय करनी पड़ेंगी और कुशल-से-कुशल शिल्पियों की सहायता से भी वह 200 वर्षों में पूरा नहीं होगा।" दिल्ली के सुल्तानों में अधिकांश सुल्तानों को भवन बनवाने का शौक था। उन्होंने अनेक मस्जिदों और भवनों का निर्माण कराया। यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि अधिकांश मुसलमान शासकों ने भारत में आकर यहीं के कलाकारों से भवन बनवाये। उन्होंने हिन्दू भवनों और मन्दिरों को तुड़वा कर उन्हीं के अवशेषों का प्रयोग अपने भवनों में करवाया तथा मन्दिरों के खुले आँगनों को उपयुक्त समझ कर उनमें कुछ परिवर्तन कराकर उन्हें मस्जिदों में बदल दिया।

सल्तनत काल की वास्तुकला में हिन्दू और मुस्लिम प्रभावों का सम्मिश्रण परिस्थितियों के अनुसार घटता-बढ़ता दिखाई देता है। हिन्दू वास्तुकला में कड़ियों को खम्भों और उनके ऊपर रखे गये चौरस पत्थरों पर टिकाया जाता था। मुस्लिम वास्तुकला की विशेषता थी— गुम्बद और मीनार आदि। मुसलमानों के आने के बाद चूने और कंकरीट का प्रयोग बड़े पैमाने पर होना शुरू हुआ और इनकी सहायता से द्वार, मेहराब और डाटों का निर्माण होने लगा।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से सल्तनत-काल की स्थापत्य-कला को निम्न तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है-

(1) मुस्लिम दरबारी स्थापत्य-कला- सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली में कुब्बत-उल-इस्लाम नामक मस्जिद का निर्माण एक मन्दिर के स्थान पर राय पिथौरा के किले के समीप करवाया था। उसने दूसरी मस्जिद अजमेर में 'ढाई दिन का झोपड़ा' के नाम से एक संस्कृत विद्यालय के स्थान पर बनवाई थी। उसी ने दिल्ली में कुतुबमीनार का निर्माण प्रारम्भ कराया था जिसे इल्तुतमिश ने पूरा कराया। जब बिजली गिरने से इसकी चौथी मंजिल गिर गई तो सुल्तान फिरोज तुगलक ने इस पर दो छोटी-छोटी मंजिलों का निर्माण कराकर इसे पाँच मंजिल का मीनार बनाया। इल्तुतमिश ने ही कुतुबमीनार से साढ़े चार किमी दूर सुल्तानगढ़ी नामक मकबरा अपने ज्येष्ठ पुत्र नासिरुद्दीन महमूद का बनवाया तथा उसी ने मकबरा हौज-ए-शम्सी, बदायूँ की जामा मस्जिद, नागौर का 'अतारकिन' दरवाजे का निर्माण भी कराया। बलबन ने अपना मकबरा दिल्ली में बनवाया था। अलाउद्दीन खिलजी ने सीरी का नगर बसाया तथा उसमें हजार स्तम्भों वाला महल बनवाया था। उसने निजामुद्दीन औलिया की दरगाह में जमैयत खाना मस्जिद तथा कुतुबमीनार के समीप अलाई दरवाजा बनवाया जो इस्लामी स्थापत्य-कला के खजाने का सबसे सुन्दर हीरा है।

तुगलक शासक गयासुद्दीन तुगलक ने एक नगर तुगलकाबाद बसाया और उसमें अपना मकबरा तथा एक महल बनवाया था। मुहम्मद तुगलक ने 'जहाँपनाह' नामक नगर बसाया जिसकी केवल दो इमारतें 'सतपुला बाँध' और 'बिजली महल' के ही अवशेष शेष रह गये हैं। फिरोजशाह तुगलक ने अनेक इमारतें तो बनवाई परन्तु वे साधारणतया दुर्बल थीं जिनके अब अवशेष भी नहीं हैं। उसने फिरोजाबाद, फतेहाबाद, फिरोजशाह कोटला नामक नगर बसाये थे। उसके पुत्र ने कई मस्जिदें बनवाई पर वे सभी नष्ट हो गयीं। अब उनके अवशेष बाकी भी नहीं रहे।

(2) प्रान्तीय स्थापत्य-कला- दिल्ली सल्तनत के विभिन्न प्रान्तों में वहाँ के मुसलमान शासकों ने महल, किले, मस्जिदें तथा मकबरे बनवाए, परन्तु सीमित साधन तथा स्थानीय परिस्थितियों के कारण वे दिल्ली सुल्तानों की तरह सुन्दर व टिकाऊ न बनवा पाये तथा उनमें से बहुत से भवनों के स्वरूप भी स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल ही बन सके। आलम का मकबरा बड़ा शानदार था। बंगाल के भवन अधिकतर ईंटों के ही बने थे। इनमें सिकन्दर शाह के बनवाये 'अदीना मस्जिद', पैडुआ का एक 'लाखी मकबरा', 'लोटन मस्जिद', 'सोना मस्जिद', खुलना जिले की 'साठ गुम्बद मस्जिद' मुख्य हैं। ये भवन इस्लामी कला के नमूने हैं।

जौनपुर के शर्की शासकों ने स्थापत्यकला को बड़ा प्रोत्साहन दिया। इनकी कला में हिन्दू तथा इस्लामी शैलियों का समन्वय है। चौकोर स्तम्भ, छोटी दहलीजें और मीनारों का अभाव इस कला की मुख्य विशेषताएँ हैं। इब्राहीम शर्की द्वारा पूर्ण कराई गई 'अटाला मस्जिद' तथा स्वयं बनवाई गई 'झंझरी मस्जिद' और हुसैन शाह द्वारा निर्मित 'जामी मस्जिद' तथा 'लाल दरवाजा मस्जिद' इसके नमूने हैं।

मालवा में माण्डू का किला तथा उसके अन्दर के भवन स्थापत्य-कला के श्रेष्ठतम भवन हैं। यहाँ की मुख्य इमारतें 'जामी मस्जिद', 'हिण्डोला महल', 'अशरफी महल', महमूद खिलजी

द्वारा बनवाया गया सात मंजिला 'विजय स्तम्भ' तथा 'जहाज महल' और बाजबहादुर तथा रूपमती के महल अत्यन्त सुन्दर हैं।

गुजरात में हिन्दू और मुस्लिम शैलियों का समन्वय देखने को मिलता है। खम्भात की 'जामा मस्जिद', अहमदाबाद की 'जामा मस्जिद', 'ढोलका मस्जिद' तथा शेख अहमद खत्री का मकबरा इसके प्रतीक हैं। महमूद बेगड़ा ने तीन नये नगर बसाए तथा चम्पानेर में सुन्दर महल बनवाये।

कश्मीर में हिन्दू और मुस्लिम स्थापत्य-कला का समन्वय हुआ है। श्रीनगर में 'मंदानी मकबरा' और 'जामा मस्जिद' प्रमुख इमारतें हैं। एक दूसरी महत्वपूर्ण मस्जिद शाह हमदान की है जो कि पूर्णरूप से इमारती लकड़ी की बनी हुई है।

दक्षिणी भारत में हिन्दू और मुस्लिम शैलियों का मिश्रण बहमनी राज्य में दिखाई पड़ता है। बहमनी राज्य के शासकों ने अनेक सुन्दर भवनों तथा मस्जिदों का निर्माण कराया जिनमें गुलबर्गा की 'जामी मस्जिद', दौलताबाद की 'मीनार' तथा फारसी शैली के आधार पर निर्मित बीदर का महमूदगवाँ का विद्यालय तथा बीजापुर का 'गोल गुम्बद' देखने योग्य है।

(3) हिन्दू स्थापत्य-कला- हिन्दू स्थापत्य-कला की शैली के भवन मुख्यतया राजस्थान में और विशेषकर मेवाड़ में अधिक मिलते हैं। मेवाड़ में अधिकतर शासक कलाप्रेमी थे। राणा कुंभा ने बहुत से किले, महल, मंदिर और अन्य इमारतें बनवाई थीं। इनमें कुंभलगढ़ का किला और चित्तौड़गढ़ का 'कीर्ति स्तम्भ' या 'जय-स्तम्भ' सबसे सुन्दर और सुप्रसिद्ध हैं। जयपुर के पास आमेर के महल और किला हिन्दू स्थापत्य-कला के जीवंत उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिणी भारत में विजयनगर में भी भव्य एवं सुन्दर भवनों व महलों का निर्माण हुआ परन्तु तालीकोट युद्ध के पश्चात् मुस्लिम आक्रमणकारियों ने इस नगर को पूर्णतया नष्ट कर दिया। इस कारण अब कोई भी इमारत सुरक्षित नहीं बची है। दक्षिण भारत में गोपुरम् बनाने की प्राचीन कला को विजयनगर के सम्राटों ने प्रोत्साहन दिया। दक्षिण में मंदिर के गुम्बज को गोपुरम् कहते हैं। विजयनगर-सम्राट कृष्णदेवराय ने विठ्ठलस्वामी का मन्दिर बनवाया था। यह एक श्रेष्ठ मन्दिर था। बेलोर का पार्वती मन्दिर, कांचीपुरम् के वरदराज स्वामी और एकाम्बरनाथ और त्रिचनापल्ली के जम्बुकेश्वर के मन्दिर हिन्दूशैली के अद्भुत प्रतीक हैं।

दिल्ली सल्तनत काल की स्थापत्य-कला को कुछ विद्वानों ने इस्लामी और कुछ ने भारतीय कहा है। यदि इसे दोनों का सम्मिश्रण कहा जाय तो अधिक सत्य प्रतीत होता है।

महत्वपूर्ण तिथियाँ एवं घटनाएँ
(Important Dates and Events)

(1) 1017 ई० - रामानुजाचार्य का जन्म।
(2) 1137 ई० - रामानुजाचार्य की मृत्यु।
(3) 1141 ई० - ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का जन्म।
(4) 1175 ई० - ख्वाजा फरीदुद्दीन का जन्म।
(5) 1199 ई० - माधवाचार्य का जन्म।
(6) 1236 ई० - ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की मृत्यु।
(7) 1278 ई० - माधवाचार्य की मृत्यु।

(8) 1299 ई० - रामानन्द का जन्म।
(9) 1321 ई० - ख्वाजा बन्दानवाज का जन्म।
(10) 1398 ई० या 1440 ई० - कबीर का जन्म।
(11) 1411 ई० - रामानन्द की मृत्यु।
(12) 1422 ई० - ख्वाजा बन्दानवाज की मृत्यु।
(13) 1468 ई० या 1510 ई० - कबीर की मृत्यु।
(14) 1469 ई० - गुरु नानक का जन्म।
(15) 1479 ई० - वल्लभाचार्य का जन्म।
(16) 1485 ई० - चैतन्य का जन्म।
(17) 1531 ई० - वल्लभाचार्य की मृत्यु।
(18) 1533 ई० - चैतन्य की मृत्यु।
(19) 1538 ई० - गुरु नानक की मृत्यु।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(क) निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. भक्ति-आन्दोलन से आप क्या समझते हैं ? मध्यकाल के प्रमुख धर्म-सुधारकों का परिचय दीजिए। (1952, 84)
2. दिल्ली के सुल्तान शासकों के काल में भारतीय कला एवं साहित्य के विकास का उल्लेख कीजिए। (1963, 68, 73)
3. सल्तनत-काल के प्रमुख धर्म-सुधारकों का परिचय दीजिए। (1964)
4. सल्तनत-काल में हिन्दू समाज और धर्म पर इस्लाम का क्या प्रभाव पड़ा ? (1968, 73)
5. दिल्ली सल्तनत की शासन-व्यवस्था का विवेचनात्मक वर्णन कीजिए। (1966)
6. सल्तनतकालीन धर्म-सुधारकों ने मध्यकालीन जन-जीवन को कहाँ तक प्रभावित किया था ? (1969)
7. भक्ति-आन्दोलन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। (1974, 78)
8. भक्त कबीर के जीवन तथा उनके उपदेशों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। (1977)
9. सल्तनत-काल में स्थापत्य-कला के विकास पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए। (1979)
10. सल्तनत-काल में साहित्य और वास्तुकला के विकास पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए। (1981)
11. हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित करने की दिशा में कबीर के योगदान की विवेचना कीजिए। (1981)
12. सल्तनत-काल में भक्ति-आन्दोलनों के कारणों तथा परिणामों की विवेचना कीजिए। (1982)
13. सल्तनत-काल में निर्मित किन्हीं पाँच महत्वपूर्ण भवनों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए। (1982)

14. सल्तनतकालीन साहित्य एवं कला पर प्रकाश डालिए। (1985, 89, 91)
15. भक्ति-आन्दोलन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए तथा भारतीय समाज पर इसके प्रभाव का आकलन कीजिए। (1988)
16. सल्तनत-काल के शासकों द्वारा निर्मित मुख्य भवनों का उल्लेख कीजिए। (1989)
17. क्या आप इस धारणा से सहमत हैं कि सुलतान सिकन्दर लोदी, लोदी वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक था ? (1993)
18. पूर्वमध्य काल में हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय में सूफी सन्तों के योगदान का मूल्यांकन कीजिए। (1993)
19. भारत में सूफीमत के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए। (1994)

(ख) कथनात्मक प्रश्न (लगभग 400 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. "भक्ति-आन्दोलन के महान् प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु तथा गुरु नानक थे।" इस कथन को समझाइये।
2. "दिल्ली के सुल्तान साहित्य और स्थापत्य के संरक्षक थे।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
3. "कबीर हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे।" इस कथन की विवेचना कीजिए। (1985)
4. "दिल्ली सल्तनत का शासन धर्मोन्मुखी था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। (1992)

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न (लगभग 200 शब्दों में उत्तर दीजिए।)

1. दिल्ली सल्तनत की केन्द्रीय शासन-पद्धति की विवेचना कीजिए।
2. भक्ति-आन्दोलन के चार प्रमुख सन्तों का उल्लेख कीजिए।
3. सल्तनतकालीन साहित्य एवं कला पर प्रकाश डालिए।
4. सल्तनत-काल में निर्मित किन्हीं चार महत्वपूर्ण भवनों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
5. सल्तनत काल में संस्कृत साहित्य के विकास का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। (1998)

(घ) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए-

(क) कबीर, (ख) वल्लभाचार्य, (ग) चैतन्य, (घ) गुरु नानक

परिशिष्ट (क)

ऐतिहासिक महत्व के प्रमुख स्थल

बोधगया (बुद्धगया)

बिहार प्रान्त में स्थित गया अथवा बोधगया अत्यन्त प्राचीन काल से ही हिन्दुओं तथा बौद्धों का तीर्थ-स्थल रहा है। पुराणों में इसे गयासुर नामक दैत्य का निवास बताया गया है। चूँकि महात्मा बुद्ध को यहाँ पीपल के वृक्ष के नीचे संबोधि की प्राप्ति हुई, अतः यह स्थल 'बोधगया' के नाम से विख्यात हो गया। बुद्ध के ज्ञान प्राप्त करने के पूर्व तक यह स्थान उरुबेल अथवा उरुबेला के नाम से प्रसिद्ध था। मौर्यकाल में सम्राट अशोक ने इस स्थान की यात्रा कर यहाँ स्तूप का निर्माण कराया था। गुप्तवंशीय सम्राट् समुद्रगुप्त के समय 350 ई० में लंका के राजा मेघवर्ण ने यहाँ लंकानिवासी बौद्धभिक्षुओं के लिए एक विहार बनवाया था।

बुद्धगया का सबसे महत्वपूर्ण स्मारक महाबोधि मन्दिर है। मन्दिर के गर्भगृह में भूमि-स्पर्श मुद्रा में भगवान बुद्ध की एक विशाल मूर्ति स्थापित है। मन्दिर के पश्चिम में लगभग 2,500 वर्ष पुराना बोधिवृक्ष है। महाबोधि मन्दिर के चारों ओर अनेक छोटे-छोटे स्तूप हैं। बोधगया के अन्य दर्शनीय ऐतिहासिक स्थल इस प्रकार हैं-

वज्रासन- महाबोधि मन्दिर तथा बोधिवृक्ष के बीच में पत्थर का बना हुआ एक चबूतरा है जिस पर बैठकर बुद्ध ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था।

पंच-पाण्डव मंदिर- महाबोधि मन्दिर के प्रवेश-द्वार की ओर एक साधारण-सी सफेद इमारत है जिसे भ्रमवश लोग पंच-पाण्डव मन्दिर कहते हैं। इसमें बोधिसत्वों की पाँच प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

निरंजना नदी- महाबोधि मन्दिर से लगभग 180 मीटर की दूरी पर निरंजना नाम की एक छोटी-सी नदी बहती है। नदी के बायें तट पर 'विष्णुपाद' नामक प्रसिद्ध मन्दिर है जहाँ हिन्दू लोग पिण्डदान देते हैं।

सुजाता कुटी- निरंजना नदी के दूसरे तट पर लगभग सवा दो किमी की दूरी पर एक ऊँचा टीला है जो सुजाता का भवन माना जाता है। यह वही सुजाता है जिसने तपस्या के कारण कृशित बुद्ध को खीर खिलाई थी।

इस प्रकार बोधगया भगवान बुद्ध के ज्ञान-प्राप्ति का स्थान होने के अतिरिक्त सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल है।

कौशाम्बी

प्राचीन काल से ही विद्या का केन्द्र कौशाम्बी यमुना नदी के तट पर बसा हुआ है। पुराणों के अनुसार हस्तिनापुर के राजा निचक्षु ने हस्तिनापुर के गंगा के प्रवाह में बह जाने के कारण इस नगर की स्थापना करवायी थी। ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ में कौशाम्बी वत्स राज्य की राजधानी थी जहाँ का राजा उदयन था। इस नगर में भगवान बुद्ध ने कई बार धर्मोपदेश किया था। यहाँ अनेक विहार थे जिनमें सर्वप्रमुख घोषिताराम था। इस विहार के निकट ही अशोक का स्तूप था। बौद्ध-धर्म का केन्द्र होने के साथ-साथ कौशाम्बी एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर भी था। मथुरा, वाराणसी, चम्पा, राजगृह तथा पाटलिपुत्र आदि नगरों के साथ इसका घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था।

कौशाम्बी की पहचान आधुनिक कोसम नामक ग्राम से की जाती है जो कि यमुना नदी के किनारे प्रयाग से 48 किमी की दूरी पर स्थित है। कौशाम्बी के खण्डहर इस स्थान के आस-पास कई वर्गमील की जगह घेरे हुए हैं। इस खण्डहर को देखने से लगता है कि इस नगर का निर्माण अर्द्धचन्द्राकार हुआ होगा और उसके चारों ओर गहरी खाई तथा ऊँची दीवार रही होगी जिसमें अनेक द्वार और बुर्ज बने होंगे। प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित उत्खनन कार्यों से प्राचीन महत्व की अनेक वस्तुएँ प्रकाश में आई हैं। घोषिताराम विहार के अवशेष मिलते हैं। यमुना के निकट एक प्राचीन राजप्रासाद का खण्डहर प्रकाश में आया है। इसमें अच्छे स्तर के गढ़े हुए पत्थर का प्रयोग किया गया है। यहाँ एक कुषाणकालीन स्तम्भ भी प्राप्त हुआ है जो कि अशोक के स्तम्भ के स्वरूप पर बना है।

सारनाथ

वाराणसी से लगभग 8 किमी उत्तर की ओर सारनाथ स्थित है। सारनाथ नाम आधुनिक है। प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में यह 'ऋषिपत्तन' या 'मृगदाव' के नाम से विख्यात है। यहाँ महात्मा बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश पाँच ब्राह्मण शिष्यों को दिया था। काशी के प्रसिद्ध श्रेष्ठि नन्दी ने यहाँ बुद्ध के लिए विहार बनवाया था। मौर्य सम्राट अशोक ने इस स्थान की यात्रा कर यहाँ स्तूप एवं स्तम्भ बनवाये थे। स्तम्भों में सिंहशीर्ष स्तम्भ अत्यधिक प्रसिद्ध है। इसके शीर्ष पर चार सिंह परस्पर पीठ सटाये हुए चारों दिशाओं में मुँह करके बैठे हैं। फाहियान ने यहाँ चार बड़े स्तूप और पाँच विहार देखा था। ह्वेनसांग के अनुसार यहाँ तीस बौद्ध-विहार थे जहाँ 1,500 भिक्षु निवास करते थे। हिन्दुओं के 100 मन्दिर भी यहाँ स्थित थे।

सारनाथ के उत्खनन के फलस्वरूप अनेक स्मारक प्राप्त हुए हैं जिनमें धमेख स्तूप, चौखण्डी दूह और एक विहार है। धमेख स्तूप का निर्माण गुप्तकाल में हुआ है। इसके अतिरिक्त वज्रयान सम्प्रदाय के देवी-देवताओं की अनेक विलक्षण मूर्तियाँ मिली हैं। मूर्तियों में एक बुद्ध-प्रतिमा है जो कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। एक शिव मन्दिर तथा जैन मन्दिर भी यहाँ स्थित है।

सारनाथ के उत्खनन में अब तक लगभग 10, 000 वस्तुएँ मिली हैं, जिनमें मूर्तियाँ, उत्कीर्ण शिलापट्ट, वेदिकाएँ, इमारती पत्थर, मिट्टी के पुराने बर्तन, खिलौने तथा मुहरें आदि सम्मिलित हैं। इन वस्तुओं को सारनाथ के संग्रहालय में सुरक्षित रखा गया है।

मथुरा

भगवान कृष्ण की जन्म-स्थली मथुरा भारत का ही नहीं, विश्व का आकर्षक केन्द्र है। प्राचीन परम्परा के अनुसार मथुरा के संस्थापक राम के छोटे भाई शत्रुघ्न थे जिन्होंने मधुवन को काटकर इस नगर का निर्माण किया था। पुराणों में मथुरा को मोक्षदायिका कहा गया है। यह नगर यमुना नदी के किनारे स्थित है। वाराणसी की तरह मथुरा भी मन्दिरों की नगरी है। 1669 में मुगल सम्राट औरंगजेब ने यह आदेश जारी किया था कि हिन्दुओं के सभी मन्दिर नष्ट कर दियें जायँ। इसी आदेश के फलस्वरूप मथुरा में केशवराय मंदिर सहित अनेक मंदिरों को नष्ट कर दिया गया था। सम्प्रति कृष्ण जन्म-स्थली के अर्द्ध भाग में एक मस्जिद निर्मित है। इस समय जन्म-स्थली के अवशेष भाग में भव्य एवं विशाल मन्दिर का निर्माण कराया गया है। इस मन्दिर के अतिरिक्त मथुरा में द्वारकाधीशजी का मन्दिर है। मथुरा के निकट ही एक जैन मन्दिर भी है। वृन्दावन जो श्रीकृष्ण के बाल्यकाल में लीलास्थल था, मथुरा के निकट ही है। यहाँ कालीदह, राधाकृष्ण का मन्दिर, राधाकुंज, रंगनाथ का मन्दिर आदि धार्मिक स्थल

हैं। मथुरा और वृन्दावन के मार्ग में कई मन्दिर स्थित हैं जिनमें 'पागल बाबा' का मन्दिर विशेष उल्लेखनीय हैं।

मथुरा का प्रमुख दर्शनीय स्थल यहाँ का 'राजकीय संग्रहालय' है जिसकी स्थापना सन् 1874 में फ्रेडरिक सामन ग्राउज ने की थी। संग्रहालय शुंग, कुषाण एवं गुप्तकालीन संस्कृति एवं कला का अद्वितीय भण्डार है। इसमें लगभग 11,441 प्रस्तर प्रतिमायें, 2,545 मूर्तियाँ, 248 कांस्य प्रतिमाएँ, 15 लघु चित्र, 120 स्वर्ण मुद्रा, 2,166 रजत तथा 7,456 ताम्रमुद्राएँ हैं, संग्रहालय का अपना पुस्तकालय भी है, जो शोधार्थियों के लिए विशेष उपयोगी है।

कुशीनगर

पूर्वी उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले में कसया नामक स्थान ही बौद्धकाल में कुशीनगर था। यह गौतम बुद्ध की निर्वाण-भूमि तथा मल्लों की राजधानी थी। बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् यह बौद्धों का तीर्थस्थल हो गया। व्यापारिक क्षेत्र के रूप में भी यह विख्यात हो चुका था। पालि-ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि कुशीनगर भारत का एक प्रख्यात क्रय-विक्रय केन्द्र था।

कुशीनगर में उत्खनन के फलस्वरूप अनेक विहारों, स्तूपों और मंदिरों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। उत्खनन द्वारा प्रकाश में आए स्मारक मुख्यतः निम्न तीन विभिन्न समूहों में स्थित हैं:

1. मुख्य स्तूप एवं महापरिनिर्वाण मंदिर-कुशीनगर के मल्लों ने महात्मा बुद्ध के प्राप्त अवशेषों को एक स्तूप में रखा। यही स्तूप कुशीनगर का मुख्य स्तूप है। सन् 1927 में बर्मा (यूनियन ऑफ म्यान्मा) के बौद्धों ने इसका पुनर्निर्माण कराया। इस स्तूप के सम्बन्ध में ह्वेनसांग ने लिखा है कि यह 41.7 मीटर ऊँचा था। इसके समीप ही बने निर्वाण मंदिर तथा अन्य विहारों का भी उसने उल्लेख किया है। सन् 1956 में निर्मित नवीन परिनिर्वाण मंदिर में सन् 1876 में खुदाई से क्षतिग्रस्त अवस्था में उपलब्ध महात्मा बुद्ध की 4.6 मीटर लम्बी विशाल मूर्ति वर्तमान रूप में सुसज्जित है। इस पर धातु की चादर चढ़ी हुई है तथा भगवान बुद्ध को दाहिने करवट पश्चिम दिशा को मुख किये हुए शयनावस्था में दिखाया गया है। इन दोनों स्मारकों के चारों ओर धर्मनिष्ठ तीर्थ यात्रियों द्वारा निर्मित मठ और धर्म स्तूप हैं।

2. माथा कुँवर मंदिर-मुख्य स्तूप व महापरिनिर्वाण मंदिर से दक्षिण-पश्चिम में समीप ही दसवीं शताब्दी में निर्मित महात्मा बुद्ध की मूर्ति भू-स्पर्श मुद्रा में स्थित है। इस मूर्ति को माथा कुँवर कहते हैं। इसमें भगवान बुद्ध को बोधि वृक्ष के नीचे समाधि लगा कर बैठने पर 'मार' द्वारा किये गये विघ्नों को दर्शाया गया है। साथ ही इसमें हिन्दू देवताओं जैसे- सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण, यक्ष, कुबेर और गन्धर्व के चित्र अंकित हैं। मंदिर का जो वर्तमान स्वरूप है वह सन् 1927 में बर्मा के एक दाता द्वारा प्रदत्त धन से निर्मित किया गया था।

3. रामा भार स्तूप-रामाभार स्तूप माथा कुँवर मंदिर से लगभग 1.5 किमी की दूरी पर स्थित है। रामाभार टीले के नाम से प्रसिद्ध ईंटों का बना यह भग्न स्तूप संभवतः मकुटबन्धन चैत्य का अवशेष है जो कि महात्मा बुद्ध की पुण्य दहन भूमि की स्मृति में बनवाया गया था। यह स्तूप कुशीनगर में सबसे बड़ा स्तूप है। ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि सम्राट अशोक ने यहाँ पर अग्नि संस्कार के स्थान पर एक बड़े स्तूप का निर्माण कराया था। रामाभार ताल के पास निर्मित यह स्तूप 'रामाभार स्तूप' के नाम से विख्यात है।

उपर्युक्त स्मारकों के अतिरिक्त कुशीनगर में चीनी बौद्ध मंदिर, बर्मी बौद्ध मंदिर, तिब्बती बौद्ध मंदिर, जापानी मंदिर आदि भी दर्शनीय हैं। खुदाई से प्राप्त मुद्राओं, शिलालेखों, मूर्तियों आदि के संरक्षण के लिए यहाँ एक बौद्ध संग्रहालय भी है। यात्रियों के ठहरने के लिए बिरला

हिन्दू धर्मशाला एवं उत्तर प्रदेश पर्यटन विभाग का 'पथिक निवास' भी है। कुशीनगर में प्रति वर्ष जून जुलाई में लगने वाला मेला अपने आप में विशिष्ट है।

पाटलिपुत्र (पटना)

बिहार की वर्तमान राजधानी पटना का ही प्राचीन नाम पाटलिपुत्र था। इस नगर की स्थापना गंगा और सोन नदियों के संगम पर मगध के हर्यकवंशीय राजा उदयन ने की थी। बुद्ध काल में यह भारत का महानगर माना जाता था। मौर्य काल में पाटलिपुत्र अपने वैभव की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज के अनुसार यह नगर 15 किमी लम्बा तथा पौने तीन किमी चौड़ा था। नगर के चतुर्दिक् 185 मीटर चौड़ी एवं 30 हाथ गहरी खाईं थी तथा एक ऊँची दीवार थी जिसमें 64 द्वार तथा 570 बुर्ज बने हुए थे। नगर के मध्य में चन्द्रगुप्त मौर्य का राजप्रासाद स्थित था। अशोक के समय में इस नगर में तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन हुआ था। उसने सर्व-प्रथम यहाँ एक स्तूप बनवाया जिसमें भगवान बुद्ध की अस्थियाँ गाड़ी गई थीं। अशोक का दूसरा महत्वपूर्ण निर्माण अशोकाराम विहार का संस्थापन था।

मौर्यों के बाद शुंगों के समय में भी पाटलिपुत्र मगध राज्य की राजधानी बनी रही। गुप्तों के काल में पाटलिपुत्र के वैभव में अत्यधिक वृद्धि हुई। चीनी यात्री फाहियान ने जो पाटलिपुत्र में तीन वर्ष रहा, इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यह मध्यप्रदेश का सबसे बड़ा नगर था, जहाँ के लोग सुखी तथा समृद्ध थे। यहाँ के राजप्रासाद को देखकर फाहियान अत्यधिक प्रभावित हुआ था। उसने राजप्रासाद के विषय में लिखा है कि इसका निर्माण देवताओं द्वारा किया गया लगता है। उसने पाटलिपुत्र में दो बड़े बौद्धमठ देखे थे जिनमें 700 भिक्षु निवास करते थे। एक मठ हीनयान सम्प्रदाय का तथा दूसरा महायान सम्प्रदाय का था। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद पाटलिपुत्र का गौरव क्रमशः घटने लगा। सातवीं शती में ह्वेनसांग के आगमन के समय यह नगर वीरान हो चुका था। यहाँ के मठ, मन्दिर, स्तूप आदि नष्ट हो गये थे। स्पूनर महोदय ने पटना के समीप कुम्रहार नामक स्थान से उत्खनन कराकर विशाल मौर्य राजप्रासाद के अवशेष तथा अशोक के स्तम्भ के कुछ भाग प्राप्त किये हैं। इसके साथ ही मौर्य, कुषाण तथा गुप्तकालीन कुछ मुद्रायें भी मिली हैं।

श्रावस्ती

बौद्धकालीन कोशल की राजधानी श्रावस्ती तत्कालीन भारत की समृद्धशाली नगरी थी। इस नगर की पहचान गोण्डा जिले के आधुनिक सेतमाहेत नामक स्थान से की गई है जहाँ से इसके खण्डहर प्राप्त हुए हैं। श्रावस्ती अचिरावती (राप्ती) नदी के तट पर बसी थी। श्रावस्ती में तीन प्रसिद्ध विहार थे- जेतबन, पूर्वाराम तथा मल्लिकाराम। इनमें जेतबन विहार सबसे अधिक प्रसिद्ध था। जेतबन एक उपवन था जिसे राजकुमार जेत ने आरोपित किया था। श्रावस्ती के एक श्रेष्ठि (व्यापारी) अनाथपिण्डक सुदत्त ने इसे अठारह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं में खरीद कर बौद्धसंघ को दान दिया तथा वहाँ एक विहार का निर्माण करवाया। पूर्वाराम का निर्माण नगरश्रेष्ठि मृगधार की पुत्रवधू विशाखा ने कराया था। श्रावस्ती के पूर्वी द्वार के निकट निर्मित होने के कारण सम्भवतः इसका नाम पूर्वाराम (पूरवी मठ) पड़ा। मल्लिकाराम का निर्माण मल्लिका नामक साम्राज्ञी द्वारा कराया गया था। बौद्ध ग्रन्थ दिव्यावदान से ज्ञात होता है कि श्रावस्ती में चार पवित्र स्तूप थे। अशोक ने इन चारों स्तूपों की वन्दना की थी, जब वह श्रावस्ती आया था।

अनुमान किया जाता है कि कोशल के पतन के साथ ही श्रावस्ती का गौरव समाप्त हो गया। फाहियान के आने के समय यहाँ के नागरिकों की संख्या पहले की तुलना में कम रह गई थी। सातवीं सदी में ह्वेनसांग ने इस नगर को पूर्णतया उजड़ा हुआ पाया था। सम्प्रति सेतमाहेत में स्थित खण्डहर श्रावस्ती के प्राचीन वैभव के मूक साक्षी हैं।

खजुराहो

झाँसी से लगभग 160 किमी दक्षिण-पूर्व मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले में चन्देल राजाओं की राजधानी खजुराहो स्थित है। यहाँ एक कृत्रिम सरोवर के किनारे एक मील के क्षेत्र में भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ है। इनका समय सामान्यतः दसवीं तथा ग्यारहवीं शती का है। कुछ मन्दिर इसके पूर्व के हैं। चन्देल राजाओं ने लगभग 80 हिन्दू और जैन मन्दिरों का निर्माण कराया था। उनमें तीस मन्दिरं आज भी विद्यमान हैं। खजुराहो के प्रसिद्ध मन्दिरों में कन्दारिया महादेव का मंन्दिर, देवी जगदम्बा का मन्दिर, लक्ष्मण मन्दिर, लालगाँव महादेव मन्दिर, चौसठ योगिनियों का मन्दिर, पार्श्वनाथ का मन्दिर तथा आदिनाथ का मन्दिर आदि उल्लेखनीय हैं। मन्दिरों में सर्वश्रेष्ठ मन्दिर कन्दारिया महादेव मन्दिर है। यह 33 × 18 × 35 मीटर के आकार में बना हुआ है। जैन मन्दिरों में पार्श्वनाथ का मन्दिर सर्वप्रसिद्ध एवं बड़ा है। यह 19 × 10 मीटर के आकार का है। इस मन्दिर की बाहरी दीवारों पर जैन मूर्तियों की तीन पंक्तियाँ उत्कीर्ण की गई हैं।

खजुराहो के सभी मन्दिर आर्यावर्त शैली में बने हैं। प्रत्येक मंदिर एक ऊँचे चबूतरे पर खड़ा है। हर एक में तीन कक्ष हैं जिनमें प्रत्येक की ऊँचाई क्रमशः बढ़ती गई है। सबसे अधिक ऊँचाई पीछे के कक्ष की है जिसके नीचे गर्भगृह है। कक्षों की छतें स्तूपाकार हैं। ये स्तूप ऊपर की ओर छोटे होते गये हैं। गर्भगृह पर वर्तुलाकार एक शिखर है जो बहुत से छोटे-छोटे शिखरों से मिलकर बना है। शिखर के ऊपर अमालक, उसके ऊपर कलश और अन्त में ध्वजदण्ड है। मूर्ति प्रकोष्ठ के चारों ओर प्रदक्षिणा मार्ग और उसके सम्मुख भाग में सभा-मण्डप है। इन पर अनेक प्रकार की सजावट की चीजें तथा मूर्तियाँ बनी हैं। मन्दिरों पर उत्कीर्ण कुछ मूर्तियाँ अत्यन्त अश्लील होते हुए भी कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि की हैं। समग्र रूप से खजुराहो की वास्तु तथा मूर्ति, दोनों की कलायें अत्यन्त सराहनीय हैं तथा दर्शकों का मन सहज ही अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

कान्यकुब्ज (कन्नौज)

उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जनपद में स्थित कान्यकुब्ज अथवा कन्नौज नामक स्थान प्राचीन भारत का एक अति प्रसिद्ध नगर था। रामायण से ज्ञात होता है कि इसकी नींव कुशनाभ ने डाली थी। पुराणों के अनुसार इस नगर की स्थापना पुरूरवा के कनिष्ठ पुत्र अमावसु के द्वारा की गई थी। ह्वेनसांग ने इसे कुसुमपुर कहा है। छठीं शताब्दी के प्रारम्भ तक कान्यकुब्ज अधिक ख्याति-प्राप्त नहीं था। इसकी महत्ता सातवीं शती ईस्वी से बढ़ी। पहले यह मौखरि वंश की राजधानी थी। इसके पश्चात् हर्षवर्द्धन ने इसको अपनी राजधानी बनाया। यहाँ कई बौद्ध-विहार तथा मंदिर थे। यह नगर लगभग 8 किमी लम्बा तथा सवा दो किमी चौड़ा था। यहाँ शिव तथा सूर्य के प्रसिद्ध मंदिर थे। सम्राट हर्ष ने कन्नौज में सभी धर्मों की एक विशाल सभा का आयोजन किया था। हर्ष की मृत्यु के बाद कन्नौज पर प्रतीहारों का शासन स्थापित हुआ। प्रतीहार शासकों ने इसे राजधानी बनाया तथा अनेक हिन्दू-मंदिरों का निर्माण करवाया जिनके अवशेष आज भी कन्नौज तथा उसके आस-पास में मिलते हैं। प्रतीहार शासन के पश्चात् गहड़वाल वंश के शासक चन्द्रदेव के समय में यह नगर वैभव-सम्पन्न बना। जयचन्द इस वंश का अन्तिम नरेश था जिसे 1194 में मुहम्मद गोरी ने पराजित कर कन्नौज पर अधिकार जमा लिया।

कान्यकुब्ज के नागरिकों की संस्कृति उच्चकोटि की थी। अलबरूनी ने इसकी समृद्धि का उल्लेख किया है। ह्वेनसांग के अनुसार इस नगर के नागरिक विद्या-व्यसनी थे। कवि राजशेखर ने जो इस नगर की विभूति था, लिखा है कि कान्यकुब्ज के सुशिक्षित निवासी शास्त्रों का आदर करते थे। नगर में काव्य-गोष्ठियाँ हुआ करती थीं। कान्यकुब्ज की महिलायें भी सुशिक्षित थीं। इस नगर की सवसे बड़ी विशेषता इसका बौद्धिक विकास था। अतः कान्यकुब्ज के सां स्कृतिक महत्व का अनुमान हम सहज रूप से लगा सकते हैं।

प्रयाग

गंगा-यमुना के पवित्र संगम पर स्थित प्रयाग अति प्राचीन काल से ही हिन्दुओं का सुप्रसिद्ध तीर्थ रहा है। धर्म-ग्रन्थों में इसे 'तीर्थराज' कहा गया है। इस नगर में दान का माहात्म्य अधिक माना जाता था। लोगों का यह विश्वास था कि जो व्यक्ति प्रयाग में दान देता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है तथा अपने दूसरे जीवन में वह सम्राट् होता है। कूर्मपुराण में कहा गया है कि संगम में स्नान करने वालों को स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है तथा उन्हें पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता है। संगम पर स्नान करने वाला व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त होता है। गंगा, यमुना तथा सरस्वती का संगम मानने के कारण इसको 'त्रिवेणी' भी कहा जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी प्रयाग का महत्व कम नही है। मुगल-सम्राट् अकबर ने यहाँ गंगा-यमुना के संगम पर एक किले का निर्माण करवाया। यह किला 3,56,616 वर्ग मी० क्षेत्र में फैला हुआ है। किले में कुल 23 महल, 25 दरवाजे, 23 बुर्ज और 33 तहखाने थे, जिनमें आनन्द महल, दिलशाद महल, हाथी दरवाजा, सरस्वती कूप, गुरुद्वारा, ख्वाबगाह, झरोखा आदि उल्लेखनीय हैं। संभवतः उसी ने प्रयाग का नाम बदल कर इलाहाबाद रखा। उसने अशोक के स्तम्भ को कौशाम्बी से मँगाकर किले में स्थापित करवाया। स्तम्भ पर समुद्रगुप्त, जहाँगीर तथा बीरबल के लेख भी अंकित हैं। प्रयाग में खुसरो बाग है जहाँ जहाँगीर के पुत्र खुसरो की समाधि है। यहाँ उत्तर प्रदेश का उच्च न्यायालय तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू का जन्मस्थल 'आनन्द भवन' है।

फतेहपुर सीकरी

आगरा से 36.8 किमी की दूरी पर सीकरी नामक एक गाँव स्थित है। वहाँ पर प्रसिद्ध सूफी सन्त शेख सलीम चिश्ती रहते थे जिनके आशीर्वाद से अकबर के पुत्र का जन्म हुआ था जिसका नाम शेख सलीम चिश्ती के नाम पर सलीम रखा गया था। इस प्रकार सीकरी अकबर के लिए सौभाग्यशाली सिद्ध हुआ और इसके प्रति उसका लगाव भी बढ़ गया। उसने इस गाँव (सीकरी) को नगर का रूप प्रदान करने का निश्चय किया। गुजरात विजय के बाद 1569 ई० में उसने सीकरी के निकट एक पहाड़ी पर शेख सलीम चिश्ती की स्मृति में फतेहपुर सीकरी की नींव डाली। उसके आदेश से सीकरी में अनेक भवनों का निर्माण किया गया जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

(1) दीवान-ए-आम- इसका निर्माण आयताकार रूप में एक ऊँची कुर्सी पर किया गया है। इसमें लाल पत्थर का प्रयोग किया गया है तथा पत्थर की ही सुन्दर जालियाँ बनायी गयी हैं, इसमें अकबर अपना दरबार किया करता था।

(2) दीवान-ए-खास- यह 13 मीटर की वर्गाकार इमारत है तथा इसका निर्माण लाल पत्थरों से किया गया है।

(3) जोधाबाई का महल-यह एक आयताकार विशाल भवन है। इसकी लम्बाई 96 मीटर व चौड़ाई 64.5 मीटर है तथा दीवारों की ऊँचाई 9.6 मीटर है। इसमें कमरों को ऋतुओं के अनुसार ठण्डा और गर्म रखने की व्यवस्था है।

(4) हवा महल– जोधाबाई के महल के उत्तर में यह दोमांजिली इमारत है। इसमें हवा जाने की सुन्दर जालियों की योजना है।

(5) मरियम की कोठी– यह दोमंजिली छोटी इमारत है तथा जोधाबाई के महल के निकट ही स्थित है। इसके चारों ओर स्तम्भों पर बरामदे बने हैं।

(6) बीरबल की कोठी– इसका निर्माण मरियम के महल की शैली पर हुआ है। यह एक दोमंजिली इमारत है। इसके छज्जों को कोष्ठकों पर आधारित किया गया है।

(7) पंच महल– यह स्तम्भों पर आधारित पाँच मंजिली इमारत है। इसकी प्रत्येक मंजिल आकार में अपने नीचे की प्रत्येक मंजिल से क्रमशः छोटी होती गई है। एक मंजिल से दूसरी मंजिल में जाने के लिए सुन्दर सीढ़ियो की योजना है।

(8) तुर्की सुल्ताना की कोठी– यह लघु आकार की एक सुन्दर इमारत है। इसमें एक ही मंजिल है तथा स्तम्भों पर आधारित बरामदे हैं।

(9) खास महल– यह एक दोमंजिला भवन है। यह अकबर का निवास-गृह था। इसके निर्माण में लाल पत्थरों के साथ मंगमरमर का भी प्रयोग किया गया है। इस महल के ऊपरी मंजिल के एक किनारे पर 'झरोखा-ए-दर्शन' स्थित है।

(10) जामा मस्जिद– यह आयताकार इमारत है। इसकी लम्बाई 162.6 मीटर तथा चौड़ाई 131.4 मीटर है। मस्जिद में एक चौड़ा सहन है जो तीन तरफ स्तम्भों से घिरा है तथा इसमें पश्चिम में पूजागृह है।

(11) शेख सलीम चिश्ती का मकबरा– इस मकबरे की योजना वर्गाकार है। इसको अलंकृत करने के लिए सुन्दर स्तम्भों तथा छज्जों का निर्माण किया गया है। निस्सन्देह यह मकबरा स्थापत्य-कला का एक सुन्दर उदाहरण है।

(12) ख्वाबगाह– इसे स्वप्न का गृह भी कहा जाता है। इस भवन में रंगों की सजावट अत्यधिक सुन्दर तथा प्रभावपूर्ण है। यहाँ अकबर धार्मिक वाद-विवाद किया करता था।

(13) बुलन्द दरवाजा– इसका निर्माण अकबर ने 1574 में कराया था। यह भारत का सबसे ऊँचा तथा वैभवशाली प्रवेश-द्वार है। यह प्रवेश-द्वार पृथ्वी की सतह से 52.8 मीटर ऊँचा है। इसमें कई छोटे-छोटे कमरों की योजना है जिनके द्वारा जामा मस्जिद के भीतरी सहन तक पहुँचा जा सकता है। एच0जी0 रॉबिन्सन के कथनानुसार बुलन्द दरवाजा सम्पूर्ण भारत की स्थापत्य सफलता का परिचायक है।

इन भवनों के अतिरिक्त सीकरी में अन्य भवनों का भी निर्माण हुआ जिनमें इबादतखाना, दफतरखाना, नौबतखाना, मीना बाजार, जनाना रास्ता, शफाखाना (चिकित्सालय), संगीन बुर्ज, मस्जिद शाककुली आदि प्रसिद्ध भवन हैं।

'वीर छबीली का टीला' की खुदाई में जैन मंदिर तथा मूर्तियों की प्राप्ति

दिसम्बर, 1999 में फतेहपुर सीकरी में किले के निकट स्थित सीकरी गाँव में वीर छबीली टीले के 250 वर्ग गज भू-खण्ड की खुदाई के फलस्वरूप 11वीं शताब्दी के एक जैन मंदिर का अस्तित्व मिला है। मंदिर के ढाँचे की खुदाई पर छोटी, मध्यम और बड़े आकार की 34 मूर्तियाँ प्राप्त हुईं। मूर्तियों में सर्वाधिक उल्लेखनीय 6 फीट ऊँची व आंशिक रूप से खण्डित सरस्वती मूर्ति है जो जैन देव-गण में से एक है। खुदाई में 60 सेंटीमीटर का लाल पत्थर का एक कुण्ड मिला है जिसमें 23 मूर्तियाँ रखी हुई थीं। इनमें काले संगमरमर की एक जैन तीर्थंकर की मूर्ति भी शामिल है। एक ऐसी मूर्ति भी है जिसमें अंबिका की गोद में गणेश और उसके एक ओर कार्तिकेय हैं। गुर्जर-प्रतिहार वंश के समय की सरस्वती मूर्ति भी मिली हैं जो सिर्फ आभूषण पहने हुए है। लाल पत्थर के जो मृद-भांड मिले हैं उन पर

अबरक से सजावट की गई है।

जल महल– 1999 में फतेहपुर सीकरी में अनूप तालाब के उत्खनन के परिणामस्वरूप अकबरनामा में वर्णित 'कासाना' अर्थात् जलमहल मिला है। सीकरी की भीषण गर्मी से निजात पाने के लिए अकबर इस जलमहल में रहता था। ताबाल के बीचोबीच एक चैम्बर निकला है जिसमें चारों ओर कई खंभे हैं। खंभों में बने निशान बताते हैं कि ये खंभे पानी में आधे डूबे रहते थे। प्रत्येक खंभे पर पत्तीनुमा कलाकारी की गई है। पूर्व की तरफ 12वीं सीढ़ी के पास दो दीवारें और इनकी छत है। छत पर रोशनदान है। इस भवन की ही पहचान अकबर के जलमहल के रूप में की गई है।

आगरा

आगरा भारत का ही नहीं, विश्व का महत्वपूर्ण आकर्षक स्थल है। इसे मुगल सम्राटों की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। यहाँ निम्नलिखित ऐतिहासिक महत्व की इमारतें दर्शनीय हैं :

(1) ताजमहल– इस इमारत का निर्माण शाहजहाँ ने अपनी प्रिय पत्नी मुमताज की स्मृति में कराया था। यह यमुना नदी के तट पर स्थित है। ताजमहल की वास्तुकला सम्बन्धी विशेषता चबूतरे पर बने हुए सफेद संगमरमर के मकबरे में है। इसकी निर्माण योजना आयताकार है। इसके प्रत्येक कोनों पर मेहराबदार सुन्दर मण्डप हैं। सम्पूर्ण इमारत की विशेषता इसके गुम्बद में है। सफेद संगमरमर से निर्मित यह इमारत विश्व के आश्चर्यजनक वस्तुओं में से एक है।

(2) आगरा दुर्ग (फोर्ट)– आगरा की दूसरी प्रसिद्ध इमारत यहाँ का दुर्ग है। इसका निर्माण अकबर ने कराया था। दुर्ग के अन्दर अनेक इमारतों का निर्माण हुआ है जिनका संक्षेप में परिचय इस प्रकार है-

(i) दीवान-ए-आम– यह विशाल इमारत तीन तरफ से खुली हुई है। इसकी छत ऊँचे-ऊँचे स्तम्भों पर आधारित है। इसमें सम्राट के बैठने के लिए ऊँचाई पर एक मण्डप की व्यवस्था थी।

(ii) दीवान-ए-खास– यह संगमरमर की आयताकार इमारत है। सिके स्तम्भों तथा मेहराबों पर सुन्दर पच्चीकारी का काम किया गया है।

(iii) मच्छी भवन– यह दीवान-ए-आम के पीछे स्थित लाल पत्थर की आयताकार इमारत है। इसमें 54 मीटर लम्बा और 49 मीटर चौड़ा सहन है जिसके चारों कोनों पर सुन्दर मीनारें हैं।

(iv) शीशमहल– दीवान-ए-खास के नीचे शीशमहल स्थित है। इसके द्वार तथा दीवारें शीशे, सोने तथा रंगीन पत्थर के काम से सुसज्जित हैं। शीशमहल एक कक्ष है जिसमें दो हौज हैं।

(v) खास महल– यह दीवान-ए-खास से सटा हुआ एक महल है। यह सम्राट तथा बेगमों का निवास-गृह था। इस महल के नीचे का भाग लाल पत्थर से निर्मित है तथा ऊपरी भाग-बरामदे, कमरे तथा मण्डप सभी सफेद संगमरमर के बने हैं।

(vi) मुसम्मन बुर्ज– इसे शाहबुर्ज भी कहते हैं। यह सफेद संगमरमर से निर्मित है। यह वही स्थान है जहाँ शाहजहाँ ने कैदी के रूप में अपनी प्रेयसी मुमताज महल के स्मारक ताज को देखते हुए प्राण त्याग दिये थे।

(vii) नगीना मस्जिद– मच्छी भवन के उत्तरी-पश्चिमी सिरे पर यह मस्जिद स्थित है। यह छोटी किन्तु सुन्दर मस्जिद है।

(viii) मोती मस्जिद– यह आगरा दुर्ग की इमारतों में सबसे सुन्दर इमारत है। मस्जिद के भीतरी भाग को सुन्दर और अलंकृत करने के लिए संगमरमर का प्रयोग किया गया है। इसमें मेहराबों तथा छतरियों की सुन्दर योजना है।

(ix) जहाँगीरी महल– अकबर ने अपने पुत्र और उत्तराधिकारी शाहजादा सलीम के रहने के लिये इसका निर्माण करवाया था। यह भवन वर्गाकार है तथा इसका निर्माण लाल पत्थरों से किया गया है। महल के मध्य में एक आँगन की भी योजना है। इस महल की शैली अधिकतर हिन्दू स्थापत्य शैली की ओर झुकी हुई है। विद्वानों के अनुसार जहाँगीरी महल की शैली लगभग ग्वालियर में निर्मित हिन्दू भवनों की भाँति है।

(3) जामा मस्जिद– यह मस्जिद आगरा दुर्ग के बाहर उत्तर-पश्चिम में स्थित है। इसका निर्माण शाहजहाँ की पुत्री जहाँआरा बेगम ने कराया था।

(4) एतमाद्-उद्दौला का मकबरा– इसका निर्माण जहाँगीर ने कराया था। इस मकबरे में लाल पत्थर तथा संगमरमर, दोनों का प्रयोग हुआ है। यह सुन्दर बगीचे के मध्य में लाल पत्थरों से घिरे हुए अहाते में स्थित है।

(5) अकबर का मकबरा– यह मकबरा सिकन्दरा में स्थित है। इसमें पाँच मंजिलें हैं। इसकी प्रत्येक ऊपर की मंजिल नीचे की मंजिलों से आकार में छोटी होती गई है। मकबरे को सुन्दर जालियों के द्वारा अलंकृत किया गया है। निस्सन्देह यह मकबरा उस समय की सबसे सुन्दर तथा वैभवशाली इमारत है।

इन इमारतो के अतिरिक्त आगरा में दयालबाग और राधास्वामी का मंदिर दर्शनीय स्थल हैं।

दिल्ली

दिल्ली यमुना नदी के तट पर स्थित है। इसे मध्यकाल से आज तक कई राजवंशों की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। चौहानवंशीय राजा पृथ्वीराज दिल्ली और अजमेर का राजा था। उसके पराजित होने के पश्चात् मुहम्मद गोरी के प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली को राजधानी बनाया। 1206 से 1526 तक में पाँच सल्तनतकालीन राजवंशों ने यहाँ शासन किया। उन सबकी राजधानी दिल्ली थी। मुहम्मद तुगलक ने अपनी राजधानी दिल्ली से दौलताबाद परिवर्तित किया था, किन्तु उसे इस कार्य में सफलता प्राप्त नहीं हुई और अन्ततः उसे पुनः दिल्ली को राजधानी बनाना पड़ा। सम्प्रति स्वतन्त्र भारत की राजधानी दिल्ली ही है।

मुगलकाल में दिल्ली का वैभव चरम सीमा पर पहुँच गया था। मुगलों द्वारा निर्मित अनेक इमारतों के लिए यह नगर प्रसिद्ध है। यहाँ की प्रमुख इमारतों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

(1) लाल किला – लाल पत्थर से निर्मित दिल्ली के लाल किला का निर्माण मुगल सम्राट् शाहजहाँ ने कराया था। इसकी लम्बाई 930 मीटर तथा चौड़ाई 495 मीटर है। इसका लाहौरी नामक प्रमुख प्रवेशद्वार पश्चिम की ओर स्थित है। इसमें 'नौबतखाना' 'दीवान-ए-आम' तथा 'दीवान-ए-खास' अत्यन्त प्रसिद्ध इमारतें हैं। 'दीवान-ए-खास' की दीवार पर कवि अमीर खुसरो की यह पंक्तियाँ आज भी अंकित हैं- "गर फिरदौस बर रूये जमीं अस्त। यीं अस्त, यीं अस्त, यीं अस्त"। अर्थात्- 'यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है, तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।"

(2) जामा मस्जिद– दिल्ली के लाल किले के बाहर एक ऊँचे चबूतरे पर शाहजहाँ द्वारा निर्मित यह मस्जिद स्थित है। इसमें तीन प्रवेशद्वार हैं। इसके ऊपरी भाग पर तीन गुम्बद स्थित हैं जिनमें बीच का गुम्बद किनारे के अन्य दो गुम्बदों से बड़ा है। इसमें लाल पत्थर का प्रयोग हुआ है। निस्सन्देह वास्तुकला का यह एक सुन्दर उदाहरण है।

(3) इल्तुतमिश का मकबरा– यह मकबरा एक ही कक्ष का है तथा इसका निर्माण लाल पत्थरों के द्वारा हुआ है। इसके दीवार के भीतरी भाग पर पवित्र कुरान की आयतें अंकित हैं तथा नक्काशी द्वारा दीवार को सुशोभित करने का सफल प्रयास किया गया है।

---

* लाल किला 'किला-ए-मुबारक' (भाग्यवान किला), 'किला-ए-शाहजहाँनाबाद', 'किला-ए-मुहअल्ला (श्रेष्ठ किला) के नाम से भी जाना जाता है।

(4) अलाई दरवाजा– यह कुतुबमीनार के निकट स्थित है। इसका निर्माण लाल पत्थरों तथा संगमरमर द्वारा हुआ है। यह एक वर्गाकार कक्ष है जिसके ऊपर एक गुम्बद निर्मित है। इस पर पवित्र कुरान की आयतें अंकित की गई हैं तथा दरवाजा को विभिन्न प्रकार से सुशोभित करने का प्रयास किया गया है।

(5) कुतुबमीनार– कुतुबमीनार का निर्माण कार्य गुलाम-वंश के प्रथम सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक ने प्रारम्भ कराया था और इल्तुतमिश ने इसे पूर्ण कराया। यह गोलाकार तथा पंचमंजिला मीनार है। इसकी ऊँचाई लगभग 72.6 मीटर है। प्रसिद्ध सूफी ख्वाजा कुतुबुद्दीन के नाम पर इसका नाम रखा गया है।

(6) मेहरौली लौह-स्तम्भ– कुतुबमीनार के निकट मेहरौली नामक स्थान पर एक लौह-स्तम्भ स्थित है जो 'मेहरौली लौह-स्तम्भ' के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्तम्भ में 'चन्द्र' नामक राजा की उपलब्धियों का उल्लेख है। इस 'चन्द्र' राजा की समानता चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से की गई है।

(7) संसद भवन– संसद भवन गोलाकार है तथा व्यास लगभग 168 मीटर है। यह 8.1 मीटर ऊँचा तथा 144 खम्भों पर टिका है। यह लगभग 6 एकड़ के क्षेत्र में बना है। इस भवन के चारों ओर 12 दरवाजे हैं। सन् 1921 से 1927 यानी 6 वर्ष इसके निर्माण में लगे थे तथा उस समय इस पर लगभग 83 लाख रुपये व्यय हुए थे।

(8) राष्ट्रपति भवन– भारत के ऐतिहासिक भवनों में इसका विशिष्ट स्थान है। इस भवन की रूपरेखा प्रसिद्ध वास्तुकार सर एडविन ल्यूटिएन्स तथा हर्वर्ड बेकर ने तैयार की थी। एक करोड़ चालीस लाख रुपये लागत से बने इस भवन के निर्माण में 8 वर्ष का समय लगा था। 1929 में यह बनकर तैयार हुआ था। यह 350 एकड़ क्षेत्रफल में बनाया गया है। केवल भवन का ही क्षेत्रफल 5 एकड़ है। भवन में कुल 345 कमरे हैं। दरबार हाल, अशोक हाल, ऊषा कक्ष, टैगोर कक्ष, द्वारका कक्ष, नालंदा हाल, हिमालय कक्ष आदि विशाल कक्ष हैं। इसमें पुस्तकालय, मुद्रणालय, कलादीर्घा एवं रंगशाला भी है। 'मुगल गार्डन' राष्ट्रपति भवन का विशिष्ट उद्यान है।

इसके अतिरिक्त दिल्ली में और भी दर्शनीय स्थल हैं जिनमें बिरला मंदिर, शान्ति वन तथा चाँदनी चौक उल्लेखनीय है।

नालन्दा

बिहार की राजधानी पटना के निकट राजगृह से 11 किमी. की दूरी पर आधुनिक बड़गाँव नामक ग्राम से प्राचीन नालन्दा के अवशेष मिलते हैं। यहाँ सातवीं शती का जगत्प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था जिसका वर्णन चीनी यात्रियों ह्वेनसांग तथा इत्सिंग ने किया है। नालन्दा को विश्वविद्यालय नगर की संज्ञा प्रदान करना अधिक श्रेयस्कर है। ह्वेनसांग के अनुसार नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना शक्रादित्य नामक नरेश ने की थी। तत्पश्चात् इसका निरन्तर उत्कर्ष हुआ और हर्ष के समय तक आते-आते इसने एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया। नालन्दा विश्वविद्यालय लगभग 1.6 किमी लम्बे तथा 8 किमी चौड़े क्षेत्र में स्थित था। यहाँ आठ बड़े तथा तीन सौ छोटे कमरे थे। तीन भवनों-रत्नोदधि, रत्नसागर तथा रत्नरंजक में धर्मगं ज नामक विशाल पुस्तकालय था जिसमें सम्पूर्ण शास्त्रों के ग्रन्थ एकत्र थे। इन ग्रन्थों की प्रतिलिपि प्रस्तुत करने के लिए चीनी विद्यार्थी नालन्दा में रुकते थे। इत्सिंग ने नालन्दा में चार सौ पुस्तकों का प्रतिलेख प्रस्तुत किया था।

नालंन्दा में अनेक धर्मात्मा राजाओं ने भवन तथा विहार बनवाये थे। सम्राट् हर्ष ने वहाँ पर पीतल का एक विहार तथा उसके चतुर्दिक् एक दीवार बनवाई थी। ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है कि हर्ष ने यहाँ पर एक संघाराम का भी निर्माण करवाया

जिसमें 40 भिक्षुकों के दैनिक भोजन की व्यवस्था की गई थी। नालन्दा में कई विहार एक पंक्ति में बने हुए थे जिनके शिखर गगनचुम्बी थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय में चीन, कोरिया, तिब्बत के विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। ह्वेनसांग के समय यहाँ 10 हजार विद्यार्थी थे जिन्हें निःशुल्क शिक्षा, भोजन तथा वस्त्र दिये जाते थे। विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए कठिन परीक्षा देनी पड़ती थी। यद्यपि नालन्दा महायान बौद्धधर्म की शिक्षा का केन्द्र था तथापि इसमें योगशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, वेद, हेतुविद्या, शब्द विद्या, न्याय कोष, विभाषा तथा अर्थ विद्या की शिक्षा दी जाती थी। आचार्य शीलभद्र विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे जो ह्वेनसांग के आचार्य रह चुके थे। ह्वेनसांग के अनुसार चन्द्रपाल, गणपति, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिनमित्र तथा ज्ञानचन्द्र आदि नालन्दा के अन्य आचार्य थे। नालन्दा की ख्याति से प्रभावित होकर जावा के नरेश बालपुत्रदेव ने यहाँ एक विहार वनवाया तथा अपने मित्र पालनरेश देवपाल से उसके निर्वाह के लिए पाँच गाँव दान में दिलवाये थे। विश्वविद्यालय से निम्नलिखित उद्देश्य लेकर विद्यार्थी निकलते थे- 'क्रोध को क्षमा से जीतो, दुष्ट आदमी को अच्छे काम से जीतो, कृपण को अधिक दान से और असत्य बोलने वाले को सत्य से जीतो।'

हर्ष के बाद विश्वविद्यालय की ख्याति क्रमशः घटती गई। अन्ततोगत्वा 1303 ई. में मुस्लिम आक्रमणकारियों ने इसे ध्वस्त कर दिया। नालन्दा की खुदाई में विहार, स्तूप, मन्दिर तथा मूर्तियों के अनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं जो सम्प्रति स्थानीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इनमें बुद्ध तथा बोधिसत्वों की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। बुद्ध की मूर्तियों में सबसे प्रसिद्ध एक कांस्यनिर्मित मूर्ति है। इसमें बुद्ध खड़ी हुई मुद्रा में प्रदर्शित किये गये हैं। बुद्ध की एक दूसरी मूर्ति प्रस्तरनिर्मित है। इसमें वे आसीनी अवस्था में प्रदर्शित किये गये हैं। बोधिसत्व प्रतिमाओं में मैत्रेय, मंजुश्री तथा अवलोकितेस्वर उल्लेखनीय हैं। स्त्री-मूर्तियों में हारीति तथा तारा की प्रतिमाएँ हैं।

काशी

वर्तमान वाराणसी तथा उसके समीपवर्ती भाग में प्राचीन काल का काशी राज्य स्थित था। ऋग्वेद में काशी का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है रामायण तथा महाभारत में भी काशी राज्य तथा उसकी महत्ता का वर्णन है। बुद्ध के पूर्व काशी का राज्य अति प्रसिद्ध था। सोलह जनपदों की सूची में इसका नाम है। काशी का सीमावर्ती राज्य कोशल था। दोनों राज्यों में दीर्घकालीन संघर्ष चला जिसमें अन्ततः कोशल विजयी रहा। बुद्धकाल में काशी, कोशल राज्य के एक प्रान्त के रूप में था। यहाँ के राजा प्रसेनजित ने अपनी बहन महाकोशला का मगधराज बिम्बसार के साथ विवाह किया तथा दहेज में काशी प्रान्त दिया। इसकी वार्षिक आय लगभग एक लाख रुपये थी।

काशी की राजधानी वाराणसी थी महाभारत के अनुसार इस नगर की स्थापना दिवोदास नामक राजा ने की थी। वरुणा और अस्सी नामक नदियों के बीच में स्थित

होने से सम्भवतः इसका नाम वाराणसी पड़ा। ह्वेनसांग के अनुसार यह नगर 5.6 किमी लम्बा और 1.6 किमी चौड़ा था। इस नगर के चतुर्दिक एक परिखा था। इसके अतिरिक्त यह एक उच्च प्राकार के द्वारा परिवेष्टित था जिसमें चार द्वार थे। नगर के विभिन्न भागों में अलग-अलग जाति एवं व्यवसाय के लोग रहते थे।

काशी शैव धर्म का प्रमुख केन्द्र था। इसकी गणना भारत की सात पवित्र मोक्षदायिका नगरियों में की गई है। यहां शिव का मन्दिर (विश्वनाथ मन्दिर) है जो आज भी असंख्य श्रद्धालुओं के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।

लखनऊ

नवाबों की नगरी लखनऊ उत्तरप्रदेश की राजधानी है। यह गोमती नदी के किनारे स्थित है जनुश्रुति के अनुसार लखनऊ की स्थापना भगवान श्रीराम के अनुज लक्ष्मण ने की थी। इसी कारण इसका प्राचीन नाम् लक्ष्मणपुरी है। लखनऊ अपने नवाबों के कारण प्रसिद्ध रहा है यहाँ की प्रमुख इमारतों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

(1) **बड़ा इमामबाड़ा–** लखनऊ की सबसे प्रसिद्ध इमारत बड़ा इमामबाड़ा है जिसका निर्माण नवाब आसफुद्दौला ने कराया था। यह इमारत ईंट और बहुत ही बढ़िया किस्म के चूने से बनवाई गई थी जिसमें फर्श से लेकर छत तक लकड़ी का नाम नहीं है। इमारत का मुख्य अंग एक विशाल मण्डप है जो 38.6 मीटर लम्बा और 16 मीटर चौड़ा है। इसके दोनों ओर बरामदे हैं। इनमें से एक 8 मीटर और दूसरा 8.25 मीटर चौड़ा है। मण्डप के दोनों टोकों पर अष्टकोण कमरे हैं जिनमें प्रत्येक का व्यास 15.9 मीटर है। इमामबाड़े के अग्रभाग में मेहराबदार झरोखे हैं। बीच में एक बड़ा सा प्रवेशद्वार है जो एक चौकोर प्रांगण में खुलता है। मुख्य कक्ष के ऊपर भूल-भुलैया है जो अपनी पेंचदार गलियों के लिए प्रसिद्ध है। यह इमामबाड़ा अपनी भव्यता तथा विशालता में भारत में ही नहीं विश्व भर में अद्वितीय नमूना है।

(2) **हुसैनाबाद इमामबाड़ा (प्रकाश महल)–** यह छोटी परन्तु अति सुन्दर इमारत है। इसमें तीन कमरे बने हुए हैं। कमरों की दीवारों पर भली प्रकार नक्काशी की गई है। मध्य के कमरे में मोहम्मद अली शाह का मकबरा स्थित है। इसमें चाँदी का बना हुआ ताजिया शोभित है। अंतिम कमरों में मोम के बने हुए ताजिए रखे हुए हैं, इन पर लकड़ी मढ़ी हुई है।

(3) **जामा मस्जिद–** यह मस्जिद हुसैनाबाद इमामबाड़े के पश्चिमी भाग में स्थित है। इसमें दो मीनारें और तीन गुम्बदें बनी हुई हैं। गुम्बदों के बीच का गुम्बद सबसे बड़ा है। यह इमारत एक ऊँचे उठे हुए चबूतरे पर बनी हुई है।

(4) **छतर मंजिल–** यह लखनऊ की इमारतों में सबसे अधिक सुन्दर इमारत है। इसका गुम्बद पीतल की छतरी से शोभित है। इसीलिए इसे 'छतर मंजिल' कहते हैं। यह इमारत तीन मंजिला है तथा इसके नीचे तहखाना बना हुआ है।

(5) रूमी दरवाजा– रूमी दरवाजा को तुर्की दरवाजा के नाम से भी पुकारते हैं। यह दरवाजा विशाल इमामबाड़े के पश्चिमी द्वार पर स्थित है और लगभग 27 मीटर ऊँचा है।

लखनऊ की अन्य दर्शनीय इमारतों में किंग जार्ज मेडिकल कालेज, रेजीडेन्सी, केसरबाग महल, रोशनउद्दौला की कोठी, केनिंग कालेज, तारावाली कोठी, खुर्शद मंजिल; लॉ मार्टीनीयर कालेज, मोती महल, विधान सभा भवन, विश्वविद्यालय, बारादरी, घंटाघर, शहीद स्मारक आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त सिकन्दर बाग, बनारसी बाग, विलायती बाग, आलमबाग, दिलखुशा, विक्टोरिया पार्क, बेगम हजरत महल पार्क; अमीरुद्दोला लाइब्रेरी, नया व पुराना अजायबघर और चिड़ियाघर उल्लेखनीय स्थल हैं।

लखनऊ के सबसे प्रसिद्ध और अन्तिम नवाब वाजिदअली शाह थे। इनकी पत्नी जीनत महल ने 1857 की क्रान्ति में लखनऊ का नेतृत्व किया था।

राजगृह

बिहार के पटना के समीप वर्तमान राजगीर नामक स्थान ही राजगृह है। इसके अन्य नाम गिरिव्रज तथा गिरिनगर भी थे। राजगृह मगध राज्य की प्रारम्भिक राजधानी थी। यह नगर चतुर्दिक् बैराह, बाजार, वृषभ, ऋषिगिरि तथा चैत्यगिरि पहाड़ियों से घिरा हुआ था। पालि साहित्य में इसे कौशाम्बी, वाराणसी, साकेत तथा श्रावस्ती आदि प्रसिद्ध नगरों की समकक्षता में रखा गया है। गौतम बुद्ध के समय में यह भारत का एक प्रसिद्ध नगर था। इसकी स्थापना का श्रेय मगध के प्रथम ऐतिहासिक शासक बिम्बसार को दिया जाता है। इसकी परिधि साढ़े चार किमी से अधिक थी। बौद्धधर्म का यह प्रमुख केन्द्र था। गौतम बुद्ध ने स्वयं कई बार इस स्थान पर जाकर निवास किया था, धर्मोपदेश दिये थे। यहाँ उनके बहुसंख्यक अनुयायी थे।

बौद्धधर्म का केन्द्र होने के साथ-साथ राजगृह एक व्यापारिक केन्द्र था। अनेक व्यापारिक मार्ग यहाँ से होकर जाते थे। कुशीनगर, कपिलवस्तु तथा श्रावस्ती से इसका व्यापारिक सम्बन्ध था। मगध राजाओं की राजधानी पाटलिपुत्र बस जाने के बाद राजगृह का महत्व कम हो गया।

फाहियान के आने के समय राजगृह उजड़ गया था। ह्वेनसांग के भारत-भ्रमण के समय नगर के भग्नावशेषों के मध्य यत्र-तत्र विहार ही रह गये थे और वहाँ पर कोई बस्ती नहीं थी। ह्वेनसांग के कथनानुसार राजगृह के उत्तरी द्वार के बाहर समीप ही एक स्तूप बना था। इस स्तूप के उत्तर-पूर्व में एक और स्तूप बना हुआ था। नगर के उत्तर-पूर्व साढ़े चार किमी से अधिक दूरी पर 'गृद्धकूट' नामक पहाड़ी थी जहाँ बुद्ध ने कई बार उपदेश दिये थे।

तक्षशिला

वर्तमान पाकिस्तान के रावलपिण्डी जिले में स्थित तक्षशिला प्राचीन काल में गान्धार राज्य की राजधानी थी। रामायण के अनुसार तक्षशिला की स्थापना भरत के पुत्र तक्ष ने की थी। कुछ लोग इनके नाम का सम्बन्ध तक्क जाति से मानते हैं जो सिंध और चिनाब नदियों के बीच रहा करती थी। तक्षशिला की इतिहास में प्रसिद्धि का कारण उसका

शिक्षा-केन्द्र होना था । यहाँ भारत का सबसे प्राचीन विश्वविद्यालय था । यहाँ अध्ययन करने के लिए दूर-दूर से विद्यार्थी आते थे जिनमें राजघराने के व्यक्ति तथा सामान्यजन, दोनों ही सम्मिलित थे । कोशल के राजा प्रसेनजित, मगध का राजवैद्य जीवक, सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चाणक्य, बौद्ध विद्वान् वसुबन्धु आदि ने यहीं शिक्षा प्राप्त की थी । **डॉ. अल्तेकर** के अनुसार विश्वविद्यालय में वेद, दर्शन, व्याकरण, संगीत, ज्योतिष, कृषि, नक्षत्रविद्या नृत्य आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी । चाणक्य यहाँ का प्रमुख आचार्य भी रहा था

पश्चिमोत्तर भारत में स्थित होने के कारण तक्षशिला विदेशी आक्रमणकारियों द्वार आक्रान्त होता रहा । सिकन्दर के आक्रमण के समय यहाँ का शासक आम्भी था जिसने पोरस के विरुद्ध उसकी मदद की थी । यूनानी लेखक स्ट्रेबो तथा एरियन ने तक्षशिल की समृद्धि तथा वैभव का उल्लेख किया है । मौर्यकाल में तक्षशिला उत्तरापथ की राजधानी थी । मौर्यकाल के बाद यहाँ इण्डो-यूनानी, शक तथा कुषाण राजाओं का शासन रहा । हूणों के बर्बर आक्रमणों से यहाँ के मठ तथा विहारों को अत्यधिक क्षति पहुँची । सातवीं शती के चीनी यात्री ह्वेनसांग के समय इस नगर के वैभव का अवसान हो चुका था । उसके अनुसार यहां अशोक द्वारा निर्मित दो स्तूप थे ।

तक्षशिला के प्राचीन स्थान पर जो उत्खनन कार्य हुआ है उसके परिणामस्वरूप ऐतिहासिक महत्व की अनेक वस्तुएँ उपलब्ध हुई हैं । उपलब्ध वस्तुएँ आभूषण और सिक्के हैं । यहाँ तीन प्राचीन नगरों के अवशेष भी मिलते हैं जिनके आधुनिक नाम भीर का टीला, सिरकप तथा सिरमुख हैं । इसके अतिरिक्त अनेक भवनों, विहारों तथा स्तूपों के अवशेष मिलते हैं । इनसे पता चलता है कि तक्षशिला बौद्ध सभ्यता का प्रमुख केन्द था।

अजन्ता

महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद जिले में अजन्ता नाम की एक पहाड़ी है । हैदराबाद के समीप जलगाँव नामक रेलवे स्टेशन से लगभग 62 किमी दूरी पर अजन्ता नामक ग्राम बसा है । इसी के नाम पर पहाड़ी का नाम अजन्ता पड़ गया है । अजन्ता के चित्रों के विषय में सन् 1819 में जानकारी हुई । यहाँ पहाड़ी को काटकर 29 गुफाएँ बनाई गई हैं जिनकी छतों तथा दीवारों पर विविध प्रकार के चित्र अंकित हैं । अजन्ता में अब केवल 1,2,9,10,16,17 गुफाओं के चित्र ही अवशेष हैं, अन्य नष्ट हो गये हैं । नवीं व दसवीं गुफाओं के चित्र सर्वप्राचीन हैं जिनका समय ईसा पूर्व प्रथम शती है । सोलह और सत्रह नम्बर की गुफाओं के चित्र गुप्तकाल के हैं । वैसे तो सभी चित्र अपनी कला-शैली में अद्वितीय हैं, परन्तु कुछ ही चित्रों का संक्षिप्त विवेचन अपेक्षित है, जो निम्नलिखित हैं-

बुद्ध के गृह-त्याग का चित्र– गुफा नम्बर 16 में बुद्ध का गृह-त्याग अंकित है । सुप्तावस्था में यशोधरा तथा राहुल पर गृहत्याग के पूर्व अन्तिम दृष्टि डालते हुए सिद्धार्थ के मुख पर निर्मोही अभिव्यक्ति दर्शनीय है ।

माता और पुत्र का चित्र– इस चित्र में माता का वात्सल्य तथा पुत्र की शिशु सरलता को अति स्वाभाविकता के साथ चित्रित किया गया है । माता के शरीर पर महीन वस्त्र है तथा पुत्र वस्त्रहीन है । माता, महात्मा बुद्ध को भिक्षा प्रदान कर रही है ।

मरणासन्न राजकुमारी का चित्र– अजन्ता की सोलह नम्बर की गुफा के इस चित्र में एक मरणासन्न राजकुमारी को मृत्यु की घड़ियाँ गिनते चित्रित किया गया है । उसके मुख पर भय, पीड़ा तथा कातरता के भाव हैं । शैय्या के पास खड़े निकट सम्बन्धियों को विवश तथा असहाय चित्रित किया है । राजकुमारी कातर नेत्रों से उन्हें देख रही है । इस चित्र की प्रशंसा करते हुए ग्रिफिथ ने लिखा है- "अजन्ता के इस चित्र में प्रदर्शित भावों से श्रेष्ठ भावना का प्रदर्शन विश्व का कोई कलाकार नहीं कर सकता ।"

राजा और हंस का चित्र– सत्रहवीं गुफा में अंकित इस चित्र में एक राजा तथा हंस के वार्तालाप का चित्र है । यह चित्र रहस्यात्मक भावना-प्रधान है । इस चित्र के सम्बन्ध में सिस्टर निवेदिता लिखती है, "अजंन्ता की 17 वीं गुफा में अंकित चित्र से बढ़कर-जिसमें राजा हंस की बातों को सुन रहा है, विश्व में दूसरा चित्र नहीं हो सकता ।"

फारसी दूत-मण्डल का चित्र– इस चित्र में चालुक्यनरेश पुलकेशिन द्वितीय द्वारा फारसी दूत-मण्डल का स्वागत करते हुए दिखाया गया है ।

उक्त चित्रों के अतिरिक्त महात्मा बुद्ध के जन्म, जीवन, मरण से सम्वन्धित घटनाओं को चित्रित किया गया है । इसके साथ-ही साथ सिंह, काले हिरण तथा हाथी के आखेटक दृश्य भी अत्यधिक सुन्दर तथा स्वाभाविक ढंग से चित्रित किये गये हैं ।

अजन्ता के चित्रों में रंगों का प्रयोग सुन्दर एवं समुचित ढंग से बना हुआ है। सामान्यतः नीले रंग के साथ गहरे-पीले रंग का मिश्रण अधिक किया गया है । त्वचा तथा वेश-भूषा के रंग अपनी स्वाभाविकता तथा वास्तविकता के कारण सजीव दिखाई पड़ते हैं । संक्षेप में, अजन्ता के भित्ति-चित्रों में मुख्यतः सफेद, लाल, हरा और नीला-चार रंगों का प्रयोग हुआ है । इसके अतिरिक्त गुलाबी, पीले, भूरे तथा काले रंगों का भी प्रयोग किया है ।

एलोरा

महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद जिले में स्थित एलोरा नामक स्थान है जो अपने गुहा-मन्दिरों के लिए प्रसिद्ध है । यहाँ पहाड़ी को काटकर अनेक गुफाएँ बनाई गई हैं । गुफाएँ हिन्दू, बौद्ध तथा जैन सम्प्रदायों से सम्बन्धित हैं । बौद्ध गुफाएँ 12 हैं जिनमें 'विश्वकर्मा का गुहा मन्दिर' सबसे अधिक सुन्दर है । एलोरा के सत्रह गुहा-मन्दिर उल्लेखनीय हैं जिनमें 'कैलास मन्दिर' सर्वप्रसिद्ध है । विशाल पहाड़ी को तराश कर मनुष्यों, पशुओं तथा देवी-देवताओं आदि की मूर्तियाँ बनाई गई हैं और कहीं चूने और मसाले का प्रयोग नहीं किया गया है । मन्दिर का विशाल प्रांगण 83 मीटर लम्बा तथा 46 मीटर चौड़ा है । इसके ऊपर 28 मीटर की ऊँचाई का विशाल शिखर है। यहाँ के अन्य मन्दिरों में रावण की खाई, देवबाड़ा, दशावतार, लम्बेश्वर, रामेश्वर, नीलकण्ठ आदि उल्लेखनीय हैं । दशावतार मन्दिर में भगवान विष्णु के दस अवतारों की कथा मूर्तियों में अंकित की गयी है ।

एलोरा में दस जैन मन्दिर भी हैं। इनमें 'इन्द्रप्रभा मन्दिर' सर्वप्रमुख है जिसमें जैन तीर्थंकरों की कई सुन्दर मूर्तियाँ अंकित हैं। समग्र रूप से एलोरा के मन्दिर वास्तु तथा तक्षण, दोनों ही दृष्टियों से प्राचीन भारतीय कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

अयोध्या

उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जनपद के समीप सरयू नदी के तट पर स्थित अयोध्या नामक नगर भगवान राम की जन्म-भूमि होने के कारण इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध है । रामायण

काल में अयोध्या कोशल राज्य की राजधानी थी । रामायण से ज्ञात होता है कि यह नगर लगभग 172 किमी लम्बा और 43 किमी चौड़ा था । शत्रु से रक्षा के लिए इस नगर के चारों ओर परिखा बनी हुई थी तथा अनेक चौड़ी सड़कें तथा भव्य राजप्रासाद अवस्थित थे । गुप्तकाल में अयोध्या एक वैभवशाली नगर था । कालिदास ने कई स्थानों पर इसकी महिमा का उल्लेख किया है । गुप्तकाल के बाद इस नगर का महत्व घट गया । चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इसे उजड़ा हुआ पाया । अयोध्या के प्रमुख नीय स्थल हनुमानगढ़ी, तुलसी चौरा का मन्दिर, तुलसी स्मारक भवन, लक्ष्मण किला कनक भवन, वाल्मीकि भवन, राम जन्म-भूमि, अशर्फी भवन तथा भगवान वृषभदेव का मन्दिर आदि है ।

ग्वालियर

ग्वालियर मध्य प्रदेश का एक ऐहिहासिक नगर है । ऐसी जनश्रुति प्रचलित है कि जिस सूरज नामक राजा ने इस नगर की स्थापना की थी, वह कुष्ठ रोग से पीड़ित था । उसका कुष्ठ रोग ग्वालिया नामक एक सन्त की कृपा से ठीक हुआ था । उसी के नाम पर इस राजा ने ग्वालियर की स्थापना की थी ।

ऐतिहासिक तत्वों से पता चलता है कि कन्नौज के गुर्जर प्रतीहार राजा भोज ने इस पर अपना अधिकार कर लिया था । यहाँ पर तोमर वंश का एक प्रसिद्ध राजा मानसिंह तोमर हुआ था । उसकी रानी मृगनयनी थी जो संगीत की बड़ी प्रेमी थी । उसके संगीत-प्रेम के कारण उन दिनों ग्वालियर संगीतविद्या का प्रमुख केन्द्र बन गया था । मुगलों के साम्राज्य का यह एक प्रसिद्ध नगर था । प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन को ग्वालियर का ही स्वीकार किया जाता है।

ग्वालियर का प्रमुख दर्शनीय स्थल यहाँ का दुर्ग है । यह विशाल और पुरातन दुर्ग अपने में एक लम्बे युग का इतिहास सँजोए हुए है । यह दुर्ग अति प्राचीन 90 मीटर ऊँची गोपायल पहाड़ी पर उत्तर से दक्षिण 2.8 किमी और पूर्व व पश्चिम में 180-840 मीटर के बीच फैला हुआ है । यह आज भी मजबूत और सुन्दर स्थिति में है । दुर्ग में कीर्ति सिंह तोमर का 'कीर्ति मंदिर', मानसिंह तोमर का 'मान मंदिर', गूजर रानी मृगनयनी का 'गूजरी महल', 'सास-बहू' के मंदिर, 'तेली का मंदिर', मुगल वादशाह जहाँगीर के महल तथा दो पुरातत्व संग्रहालय प्रमुख हैं । दुर्ग में ही पन्द्रहवीं सदी के जैन मंदिर हैं जिनमें से एक में जैन तीर्थंकर आदिनाथ की ऊँची विशाल प्रतिमा स्थापित है ।

दुर्ग के दो संग्रहालयों के अलावा भी ग्वालियर में अन्य दो संग्रहालय मौजूद हैं । 'जय विलास महल' में स्थित 'सिंधिया म्यूजियम' में राजशाही जमाने की बेशकीमती वस्तुएँ प्रदशित की गई हैं । नगरपलिका संग्रहालय में भी पुरावशेषों का अच्छा भंडार है । रानी लक्ष्मीबाई की तलवार इस संग्रहालय की एक दुर्लभ धरोहर है ।

दुर्ग के अलावा ग्वालियर में 'सहस्रबाहु का मंदिर', 'लक्ष्मीबाई की समाधि', तानसेन और उनके गुरु मुहम्मद गौस के मकबरे व चिड़ियाघर आदि दर्शनीय स्थल हैं ।

ग्वालियर एक औद्योगिक नगरी भी है । यहाँ पर जे. बी. मंघाराम की टाफियों और बिस्कुटों की प्रसिद्ध फैक्टरी है। इसके साथ-ही साथ अनेक सूती तथा टेरीन कपड़ों की मिलें हैं।

सांची

सांची पहले भोपाल रियासत में थी और आजकल मध्य प्रदेश में है । सांची बौद्धस्तूपों के लिए संसार में प्रसिद्ध है । यहाँ एक पहाड़ी पर तीन स्तूपों का निर्माण हुआ है । एक विशाल तथा दो छोटे स्तूप हैं । यहाँ बड़े स्तूप में भगवान बुद्ध के, द्वितीय

में अशोककालीन धर्म-प्रचारकों के तथा तृतीय स्तूप में बुद्ध के दो प्रमुख शिष्यों-सारिपुत्र तथा महामोद्गलायन के धातु अवशेष सुरक्षित हैं । महास्तूप का निर्माण अशोक के समय में ईटों की सहायता से हुआ था तथा उसके चारों ओर लकड़ी की बाड़ (Railing) वनी थी । परन्तु शुंग काल में उसे लाल पत्थर की पटियाओं से जड़ा गया तथा वेदिका भी पत्थर की ही बनाई गयी । यह अर्द्धमण्डलाकार रूप में बना हुआ है और इसके चारों और एक ऊँची मेधि है जो प्रदक्षिण-पथ का कार्य देती थी । स्तूप के चारों और एक पाषाणवेष्टनी है जो बहुत ही सादे ढंग की है । यह चार चतुष्कोण प्रकोष्ठों में विभक्त है जिन्हें चार सुन्दर तोरणद्वार एक-दूसरे से पृथक् करते हैं । ये तोरण-द्वार 10 मीटर ऊँचे हैं। चारों तोरण बुद्ध के जीवन की घटनाओं तथा जातक-कथाओं के चित्रों से भरे हैं और नीचे से ऊपर तक अलंकृत हैं । इन पर सिंह, हाथी, धर्मचक्र, यक्ष तथा त्रिरत्न के चित्र खुदे हैं। स्तूप के दक्षिण द्वार के पास अशोक का प्रस्तर-स्तम्भ खण्डित अवस्था में है। इसके शीर्ष भाग पर उसी ढंग की सिंहमूर्तियाँ हैं जैसी कि सारनाथ के स्तम्भ पर हैं । अब ये मूर्तियाँ टूट गई हैं पर भग्नावस्था में भी ये अशोककाल की कला की उत्कृष्टता स्पष्ट करती हैं ।

साँची के द्वितीय स्तूप का वास्तु भी महास्तूप के ही समान है । इसमें कोई तोरणद्वार नहीं है । इसकी वेदिका पर बहुसंख्यक उत्कीर्ण चित्र मिलते हैं ।

साँची के तृतीय स्तूप में एक ही तोरणद्वार बना है । इसकी वेदिका पर भी सुन्दर चित्र उत्कीर्ण हैं । मालाधारी यक्ष - मूर्तियों के साथ-साथ यहाँ स्तूप-पूजा, बोधिवृक्ष-पूजा, चक्र, स्तम्भ, गजलक्ष्मी, नाग, अश्व, हाथी आदि के दृश्यों का अंकन अत्यन्त आकर्षक एवं कलात्मक ढंग से किया गया है । सांची में दो गुहा-मन्दिरों के भी अवशेष मिलते हैं ।

साँची की शिलाओं पर खुदे हुए कई लेख भी मिलते हैं । अशोक का लेख उसके स्तम्भ पर खण्डित अवस्था में है जिसमें उसने संघभेद रोकने हेतु राजाज्ञा प्रसारित की थी । वेदिकाओं पर उत्कीर्ण लेखों में दानकर्ताओं के नाम सुरक्षित हैं । महास्तूप के दक्षिण द्वार पर उत्कीर्ण लेख में सातवाहन शासक शातकर्णि का नाम है । साँची के लेखों से तत्कालीन समाज एवं धर्म के विषय में भी पर्याप्त जानकारी होती है ।

भीतरगाँव

उत्तर प्रदेश के कानपुर नगर से 32 किमी की दूरी पर दक्षिण की ओर यह गाँव बसा हुआ है । यहाँ भगवान विष्णु का 21 मीटर ऊँचा मन्दिर गुप्तकाल में निर्मित हुआ था। इस मन्दिर का निर्माण ईटों से गोल चबूतरे पर हुआ है। मन्दिर का गर्भगृह 4.5 मीटर है । गर्भगृह में कोई प्रतिमा नहीं है । गुप्तकालीन शासक वैष्णव होने के साथ अन्य धर्मों का भी समादर करते थे । इनकी धार्मिक सहिष्णुता के प्रतीक, इस मंदिर की बाहरी दीवारों के अलंकरणों में स्पष्ट दिखाई देते हैं । मंदिर की बाहरी दीवार पर बुद्ध की टेराकोटा में बनी प्रतिमा अभयमुद्रा में विराजमान है । मंदिर के पूर्वी भाग में अलंकरण नहीं है । अन्य तीन दिशाओं में दीवारों पर स्त्री, पुरुष व पशुओं का अंकन टेराकोटा में आकर्षक ढंग से कियां गया है । मंदिर की दक्षिणी दीवार पर बुद्ध प्रतिमा, उत्तरी तथा पश्चिमी दीवारों पर देवी दुर्गा को दैत्यों का संहार करते प्रदर्शित किया गया है । सभी प्रतिमायें समानुपातिक बनाई गई हैं । स्त्री-पुरुषों की आलिंगनबद्ध प्रतिमाएँ भी सुन्दर तथा समानुपातिक हैं । अनेक प्रतिमाएँ रामायण, महाभारत तथा पुराणों से सम्बन्धित हैं।

मंदिर का शीर्ष भाग नष्ट हो गया है । परन्तु समय-समय पर कराये गये जीर्णोद्धार के बावजूद मंदिर की मौलिकता अभी भी विद्यमान है । यह मंदिर गुप्तकालीन वास्तुकला का सुन्दर उदाहरण है । इसकी वास्तुकला का प्रभाव कालान्तर में गुर्जर-प्रतीहारों द्वारा बनवाये गये कन्नौज, ग्वालियर आदि के मन्दिरों पर पड़ा ।

कपिलवस्तु

नेपाल की तराई में यह स्थान स्थित था जिसकी पहचान वर्तमान तिलौराकोट नामक स्थान से की जाती है । कुछ विद्वान् इसकी पहचान बस्ती जिले के पिपरहवा नामक स्थान से क़रते हैं जहाँ से प्राचीनतम बौद्ध-स्तूप प्राप्त होता है । यहाँ शाक्य गणराज्य की राजधानी थी जहाँ के शासक महात्मा बुद्ध के पिता शुद्धोदन थे । अश्वघोषकृत सौन्दरनन्द से पता चलता है कि हिमालय के अंचल में स्थित कपिलमुनि के आश्रम के स्थान पर यह नगर स्थापित किया गया था । इसी कारण इस नगर का नाम कपिलवस्तु पड़ गया । इस नगर के अन्तर्गत एक संथागार था जो शाक्यों का परिषद भवन था । शाक्य गणराज्य के माननीय सदस्य इस सभागृह में एकत्र होते थे और नगर-शासन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण विषय समस्याओं के ऊपर वाद-विवाद करते थे । महात्मा बुद्ध से सम्बन्धित होने के कारण इस नगर का महत्व अधिक बढ़ गया । अशोक के समय में भी यह स्थान प्रसिद्ध था । अशोक ने अपने शासनकाल के चौदहवें वर्ष में वहाँ की यात्रा कर स्तूपादि बनवाया था । गुप्तकाल तक आते-आते (पाँचवीं शती) यह नगर वीरान हो चुका था, जैसा कि चीनी यात्री फाहियान के विवरण से पता चलता है । सातवीं शती के चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी इस स्थान की यात्रा की थी । उसके समय में यहाँ केवल एक विहार था जहाँ मात्र तीस भिक्षु निवास करते थे ।

ललितविस्तर से पता चलता है कि कपिलवस्तु में सुन्दर उद्यान तथा विहार बने हुए थे। यह नगर व्यापारिक दृष्टि से भी प्रसिद्ध था। इसका अत्यधिक विकास सदाशय एवं कुलीन नरेश शुद्धोदन के शासन-काल में हुआ था। बुद्धचरित्र में इस नगर को श्रेष्ठपुर कहा गया है ।

लुम्बिनी

गोरखपुर जिले के नौतनवा स्टेशन से 16 किमी की दूरी पर नेपाल की सीमा में 'रुम्मिनदेई' नामक ग्राम है । यह बुद्धकाल का लुम्बिनी है, जहाँ भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था। बुद्ध का जन्म-स्थल होने के कारण यह स्थान बौद्धों की श्रद्धा का प्रमुख केन्द्र बन गया। मौर्य सम्राट अशोक ने अपने राज्याभिषेक के 20वें वर्ष लुम्बिनी ग्राम की यात्रा की। उसने वहाँ पत्थर की एक सुदृढ़ दीवार बनवाई तथा शिला-स्तम्भ खड़ा किया। इस पर अशोक का एक लेख उत्कीर्ण है। लेख पर 'हिद बुधे जाते सक्य मुनीत....' अर्थात् 'यहाँ शाक्य मुनि बुद्ध उत्पन्न हुए' अंकित है। इसी लेख में अंकित है कि बुद्ध का जन्म-स्थल होने के कारण अशोक ने यहाँ के निवासियों का कर घटाकर आठवां भाग कर दिया। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इस स्थान की यात्रां कर अशोक-स्तम्भ, सालवृक्ष तथा स्तूप के दर्शन किये थे। स्तम्भ के शीर्ष भाग पर पहले अश्व की मूर्ति थी जो अब नष्ट हो गयी है।

लुम्बिनी के आधुनिक मन्दिर में भगवान् बुद्ध की भव्य प्रतिमा है जो सम्भवतः पीतल की है । मन्दिर का मुख्यद्वार पश्चिम दिशा की ओर है । मन्दिर के उत्तरी और दक्षिणी दीवारों से लगे हुए कक्ष हैं जिनके द्वार मन्दिर के भीतर और बाहर की ओर

खुलते हैं। इन कमरों में पुजारियों के रहने की व्यवस्था है। इस मन्दिर की पश्चिमोत्तर दिशा में एक ऊँचे चबूतरे पर जीर्णावस्था में एक मन्दिर है जिसमें माया देवी, योग माया तथा बुद्ध के समय की मूर्तियाँ हैं। इस स्थान के निकट ही सैकड़ों स्तूप भग्नावस्था में हैं। ये सभी स्तूप ई. पू. चौथी शताब्दी से लेकर सम्राट हर्षवर्द्धन-काल तक के हैं। ये सभी स्तूप वर्गाकार, आयताकार तथा वृत्ताकार हैं। बुद्ध की जन्मस्थली के ठीक पश्चिम की ओर सम्राट अशोक का स्तम्भ है तथा दक्षिण की ओर टूटी-फूटी दशा में वह जलाशय है जिसमें माया देवी ने बुद्धजी को जन्म देने के पूर्व स्नान किया था।

लुम्बिनी में नेपाल सरकार द्वारा निर्मित एक पर्यटक विश्राम-गृह तथा जैन मतावलम्बियों का एक विश्राम-स्थल भी है।

कालिंजर

कालिंजर विंध्याचल श्रृंखला की तलहटी पर बांदा से लगभग 56 किमी दूर वांदा-सतना रोड के किनारे स्थित है। कालिंजर प्राचीन प्राचीर (समाप्त प्राय) से घिरा हुआ है जिसमें तीन प्रवेश द्वार हैं तथा जिनके नाम कामता (चित्रकूट) द्वार, पन्ना द्वार और रीवां द्वार हैं। यह नगर समीपस्थ ग्राम कटरा से मिलकर बना है। स्कन्द पुराण में कालिंजर को प्रयाग, गंगासागर तथा बद्रीनाथ जैसे स्थलों की तरह मुक्ति-धाम कहा गया है। वामन पुराण में इसका उल्लेख पुनीत शैव तीर्थस्थल के रूप में है तथा वायु पुराण के अनुसार कालिंजर पवित्रतम श्राद्ध-स्थल है।

कालिंजर की ख्याति मुख्यतः उसके विशाल दुर्ग के कारण है, जो जमीन से 265 मी. ऊँची एक पहाड़ी पर स्थित है। यह पहाड़ी लगभग 8 किमी के क्षेत्र में है। इस सुदृढ़ दुर्ग की पूर्व-पश्चिम की लम्बाई लगभग 1.6 किमी तथा उत्तर-दक्षिण की चौड़ाई 800 मीटर है। दुर्ग की प्राचीर 35 ऊँची तथा शीर्ष पर 8 मीटर चौड़ी है। दुर्ग में दो प्रमुख प्रवेश-द्वार है। एक उत्तर दिशा की ओर और दूसरा दक्षिण की ओर है। दक्षिण का द्वार बन्द कर दिया गया है। खुले द्वार में चण्डी द्वार, लाल द्वार और हनुमान द्वार जैसे और द्वार हैं।

कालिंजर किले में **'सीता-सेज'** चट्टान को काटकर निर्मित किया गया एक सुन्दर कक्ष है जिसमें पत्थर से निर्मित सेज यानी शैय्या तथा तकिया है। सीता-सेज से आगे सिद्ध की गुफा तथा भगवान-सेज है। पास में ही **'पानी की अमन'** नाम से एक जल-कुण्ड है जो कि चट्टान को खोखली करके बनाया गया है। यहीं **'बुढ़िया का तालाब'** नाम से एक सरोवर है जो चारों ओर से सीढ़ियों से घिरा हुआ है। यहीं कोटि तीर्थ भी है। कोटि तीर्थ से कुछ दूर पूर्व की ओर मृगधारा है। यहाँ पर शिलाखण्ड को तराश कर निर्मित किये गये दो कक्ष हैं। प्रथम कक्ष की दो दीवारों पर सात मृगों की पंक्तियाँ उत्कीर्ण हैं। पिछली दीवार से एक पतली जल-धार हमेशा गिरती रहती है।

किले के पश्चिमी भाग में **नीलकंठ मंदिर** स्थित है। यह काफी गहराई में है और यहाँ तक पहुँचने के लिए सीढ़ियों का सहारा लेना पड़ता है। मंदिर के मण्डप के पीछे विशाल चट्टान को तराश कर निर्मित किया गया एक गर्भ-गृह है जिसके अन्दर एकमुखी शिवलिंग प्रतिष्ठित है। इन दर्शनीय स्थलों के अतिरिक्त भैरवी व भैरव की मूर्तियाँ, स्वर्गारोहण कुण्ड, रावणानुग्रह प्रतिमा, यत्र-तत्र बिखरी हुई भग्न मूर्तियाँ तथा विभिन्न शिलालेख भी देखने योग्य हैं।

परिशिष्ट (ख)

भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण तिथियाँ

(प्राचीन काल से 1526 ई० तक)

3250-2750 ई० पू० — सिन्धु-सभ्यता का काल
2500-1500 ई० पू० — आर्यों का भारत-आगमन का समय
599 ई० पू० — महावीर स्वामी का जन्म
563 या 567 " " — महात्मा बुद्ध का जन्म
527 " " — महावीर स्वामी की मृत्यु
483 या 487 " " — महात्मा बुद्ध की मृत्यु
327-326 " " — सिकन्दर का आक्रमण
322 " " — चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण
305 " " — सिल्यूकस का आक्रमण
273 " " — अशोक का राज्यारोहण
269 " " — अशोक का राज्याभिषेक
261 " " — कलिंग-विजय
250 " " — पाटलिपुत्र में तृतीय बौद्ध संगीति
232 " " — अशोक की मृत्यु
185 " " — शुंग-वंश का प्रारम्भ
148 " " — पुष्यमित्र की मृत्यु
72 " " — कण्व-वंश का प्रारम्भ
58 " " — विक्रम सम्वत् का प्रारम्भ
78 ई० — शक सम्वत् का प्रारम्भ व कनिष्क का राज्यारोहण
101 " — कनिष्क की मृत्यु
319-320 " — गुप्त-काल का प्रारम्भ
325 या 335 " — समुद्रगुप्त का राज्यारोहण
375 " — चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का राज्यारोहण
399-414 " — फाहियान की भारत यात्रा
414 " — कुमारगुप्त का राज्यारोहण
455 " — स्कन्दगुप्त का राज्यारोहण
570 " — पैगम्बर मुहम्मद का जन्म
606 " — हर्ष का राज्यारोहण
629-645 " — ह्वेनसांग की भारत यात्रा
647 " — हर्ष की मृत्यु
712 " — मुहम्मद-बिन-कासिम का ब्राह्मणवाद पर आक्रमण
1000 " — महमूद गजनवी का भारत पर प्रथम आक्रमण
1003 " — महमूद गजनवी का आनन्दपाल पर आक्रमण
1025 " — महमूद गजनवी का सोमनाथ मन्दिर पर आक्रमण
1030 " — अलबरूनी का भारत आगमन
1191 " — मुहम्मद गोरी का भारत-आक्रमण : तराइन का प्रथम युद्ध

1192	"	मुहम्मद गोरी का भारत-आक्रमण : तराइन का द्वितीय युद्ध
1194	"	मुहम्मद गोरी का जयचन्द पर आक्रमण
1206	"	मुहम्मद गोरी की मृत्यु
1210	"	कुतुबुद्दीन की मृत्यु
1229	"	इल्तुतमिश का खलीफा द्वारा विशेष पोशाक (खिलअत) प्राप्त करना
1236	"	इल्तुतमिश की मृत्यु
1240	"	रजिया बेगम का वध
1266	"	बलबन का राज्यारोहण
1279	"	तुगरिल का विद्रोह
1287	"	बलबन की मृत्यु
1288	"	वेनिस के यात्री मार्कोपोलो की भारत-यात्रा
1290	"	जलालुद्दीन फिरोज खिलजी का राज्यारोहण
1296	"	अलाउद्दीन खिलजी का राज्यारोहण
1299	"	अलाउद्दीन की गुजरात-विजय
1303	"	अलाउद्दीन की चित्तौड़-विजय
1316	"	अलाउद्दीन की मृत्यु
1320	"	खिलजी वंश का अन्त व गयासुद्दीन तुगलक का राज्यारोहण
1325	"	गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु और मुहम्मद तुगलक का राज्यारोहण
1326-27	"	राजधानी का परिवर्तन
1330	"	ताँबे के सिक्कों का प्रचलन
1333	"	मोरक्को यात्री इब्नबतूता का भारत आगमन
1336	"	हरिहर एवं बुक्का द्वारा विजयनगर की स्थापना
1342	"	इब्नबतूता का भारत से प्रस्थान
1347	"	अलाउद्दीन हसन जफर द्वारा दक्षिण में बहमनी राज्य की स्थापना
1351	"	मुहम्मद तुगलक की मृत्यु
1351	"	फिरोज तुगलक का राज्यारोहण
1388	"	फिरोज तुगलक की मृत्यु
1398	"	तैमूर का आक्रमण व कबीर का जन्म
1414	"	खिज्र खाँ का दिल्ली पर अधिकार करना
1442	"	विदेशी-यात्री अब्दुर्रज्जाक की विजयनगर यात्रा
1451	"	बहलोल लोदी का सुल्तान बनना
1468	"	कबीर की मृत्यु
1469	"	गुरुनानक का जन्म
1470	"	रूसी यात्री निकितिन की भारत-यात्रा
1481	"	महमूदगवाँ की हत्या
1485	"	चैतन्य महाप्रभु का जन्म
1489	"	सिकन्दर लोदी का राज्यारोहण
1498	"	पुर्तगालीनाविक वास्कोडिगामा भारत के पश्चिमी तट कालीकट पर उतरा
1517	"	इब्राहीम लोदी का सुल्तान बनना
1525	"	बाबर द्वारा पंजाब का गवर्नर दौलत खाँ लोदी पराजित
1526	"	पानीपत का प्रथम युद्ध व मुगल-वंश की स्थापना
1538	"	गुरुनानक की मृत्यु
1565	"	तालीकोट का युद्ध व विजयनगर साम्राज्य का पतन

परिशिष्ट (ग)
भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण व्यक्ति

(1) मेगस्थनीज- मेगस्थनीज चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में यूनानी राजदूत था। यह चन्द्रगुप्त की राजधानी पाटलिपुत्र में 302 ई० पू० से 298 ई० पू० तक 5 वर्ष रहा। उसने इस समय में जो कुछ भारत में देखा या सुना उसने अपनी पुस्तक 'इण्डिका' में लिख दिया। इस प्रकार यह पुस्तक उस समय की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। खेद की बात यह है कि यह पुस्तक अब उपलब्ध नहीं है, परन्तु इसके अंश अन्य यूनानी पुस्तकों में मिल जाते हैं।

इस पुस्तक में मेगस्थनीज राजा के बारे में लिखता है कि राजा राजमहल में ठाठ-बाट से रहता था। महल की शोभा अद्वितीय थी। उसमें सुन्दर बाग-बगीचे तथा तालाब बने हुए थे। राजा की अंगरक्षक स्त्रियाँ होती थीं। राजा केवल युद्ध, शिकार, न्याय कार्य तथा धार्मिक कार्यों के लिए ही महल से बाहर जाता था।

पाटलिपुंत्र के बारे में मेगस्थनीज लिखता है कि इस नगर के चारों ओर एक लकड़ी की दीवार थी जिसमें 64 दरवाजे तथा 570 बुर्ज थे। इसकी सुरक्षा के लिए चारों ओर एक खाई बनी हुई थी। नगर का प्रबन्ध 6 परिषदों के हाथ में था।

आय का मुख्य साधन भूमि-कर था। राज्य में गुप्तचरों का जाल बिछा हुआ था। सैनिक प्रबन्ध पाँच-पाँच सदस्यों की छः समितियों के हाथ में था। सेना में हाथी, घुड़सवार, रथ तथा पैदल सैनिक सम्मिलित थे।

समाज में ब्राह्मणों का विशेष आदर था। समाज सात श्रेणियों में बंटा हुआ था। वर्ण-व्यवस्था कठोर थी। एक व्यक्ति दूसरी जाति में विवाह नहीं कर सकता था। स्त्रियों की पवित्रता पर बल दिया जाता था। दास-प्रथा नहीं थी।

(2) कौटिल्य (चाणक्य)- कौटिल्य चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रधानमन्त्री था। उसे चाणक्य के नाम से याद किया जाता है। वह जाति का ब्राह्मण था। उसी की सहायता से चन्द्रगुप्त मौर्य ने नन्द वंश का नाश कर भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। 'अर्थशास्त्र' कौटिल्य की एक महान् रचना है। इस ग्रन्थ में उच्च राजनीतिक सिद्धान्तों का संग्रह है। इसमें बताया गया है कि राजा को किस प्रकार शासन चलाना चाहिए और शत्रुओं से साम्राज्य की रक्षा कैसे करनी चाहिए। कौटिल्य लिखता है कि राजा को वीर योद्धा और प्रजापालक होना चाहिए। उसे प्रजा की सुख-सुविधा के लिए हरसम्भव प्रयत्न करना चाहिये। उसे योग्य मन्त्रियों की नियुक्ति करनी चाहिए और शासन कार्यों में इनकी सलाह लेनी चाहिए। इन सब बातों के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में मौर्यकालीन समाज का बड़ा सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है। निःसन्देह अर्थशास्त्र कौटिल्य की एक बहुमूल्य रचना है। विण्टरनिट्ज के शब्दों में, "यह सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में एक अद्वितीय कृति है।"[1]

(3) पातंजलि- पातंजलि पाणिनि ऋषि का योग्य शिष्य था। वैदिक साहित्य में पातंजलि को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उसका जन्म दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में मध्य प्रदेश के एक ग्राम गोबारड़ा में हुआ था। वह शुंग-वंश के संस्थापक पुष्यमित्र का समकालीन था। कहते हैं कि

1. "It is unique work in the whole Indian literature."

पातंजलि विदिशा का एक साधारण निवासी था, परन्तु अपनी योग्यता के बल पर उन्नति करता हुआ वह पुष्यमित्र शुंग के अधीन प्रधान पुरोहित के पद पर जा पहुँचा।

वह संस्कृत का प्रसिद्ध विद्वान् था। उसकी प्रमुख रचना 'महाभाष्य' है। यह संस्कृत साहित्य का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसमें पाणिनि के व्याकरण की विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है, परन्तु इस ग्रन्थ की भाषा बहुत कठिन है।

प्राचीन संस्कृत साहित्य की यह पहली टीका है जो इस समय तो उपलब्ध है। यह पुस्तक उस समय की घटनाओं पर भी कुछ प्रकाश डालती है। इसमें पुष्यमित्र के अश्वमेध-यज्ञ तथा यूनानी मेनेण्डर और डेमिट्रियस के आक्रमणों का भी वर्णन मिलता है। इस पुस्तक से यह भी पता चलता है कि उस समय संस्कृत लोगों की साधारण बोलचाल की भाषा नहीं थी।

पातंजलि को दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में गौरवमयी स्थान प्राप्त है। उसने दर्शनशास्त्र की नई विचारधारा प्रस्तुत की। इसका नाम है 'योग सिद्धान्त'। अपने योगशास्त्र में उसने परमात्मा और पुरुष की स्थिति पर बहुत विस्तार से उल्लेख किया है और योग को मोक्ष-प्राप्ति का मुख्य साधन बताया है।

(4) पाणिनि- पाणिनि मौर्यकाल का संस्कृत व्याकरण का प्रकाण्ड पण्डित था। उसका जन्म भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती प्रान्त के शालातुर नामक स्थान पर हुआ था। उसकी जन्मतिथि के सम्बन्ध में कोई निश्चित ज्ञान प्राप्त नहीं है, परन्तु अनुमान है कि उसका जन्म 500 ई० पू० में हुआ। पाणिनि एक प्रसिद्ध विद्वान् था जिसने संस्कृत भाषा को नियमबद्ध करने के लिए नया व्याकरण रचा। उसके व्याकरण-ग्रंथ का नाम 'अष्टाध्यायी' है। इस पुस्तक में कुल 4,000 सूत्र हैं जिन्हें आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है। इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य लोगों को प्रचलित भाषा के शुद्ध रूप से परिचित कराना था। इसमें संस्कृत भाषा को बड़े ही सरल ढंग से समझाया गया है।

अष्टाध्यायी को केवल साहित्यिक ही नहीं अपितु ऐतिहासिक महत्व भी प्राप्त है। यह ग्रन्थ उस समय की साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

अष्टाध्यायी में ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद का वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ में कुछ ब्राह्मण तथा सूत्र-ग्रन्थों का भी वर्णन है। इस पुस्तक में नाटक, गाथा, कथा और महाभारत का भी उल्लेख किया गया है। पाणिनि के इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि तुरन्त ही सारे देश में फैल गई। सर्वत्र अष्टाध्यायी द्वारा संस्कृत पढ़ाई जाने लगी। अपनी प्रसिद्धि के कारण ही पाणिनि को तक्षशिला विश्वविद्यालय का उपकुलपति नियुक्त किया गया। पाणिनि का व्याकरण देखने में बहुत छोटा है, परन्तु बाद में इसकी व्याख्या के लिए हजारों पृष्ठों के ग्रन्थ लिखे गये जिनमें एक ग्रन्थ पातंजलि ने भी लिखा। सच तो यह है कि पाणिनि की अष्टाध्यायी व्याकरण की दृष्टि से एक अद्वितीय रचना है। **डॉ० बी० के० घोष** के शब्दों में, ''पाणिनि की महत्ता इस बात में भी है कि उस काल में धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त भौतिक साहित्य लिखना भी आरम्भ हुआ। इससे पहले लोगों का ध्यान धार्मिक ग्रन्थों की ओर ही लगा रहता था। पाणिनि ने व्याकरण की रचना करके उस परम्परा को समाप्त किया जो अब तक चली आ रही थी।''

(5) हरिषेण- महादण्डनायक ध्रुवभूति का पुत्र हरिषेण समुद्रगुप्त के काल का संस्कृत भाषा का एक महान् कवि था। वह समुद्रगुप्त के शासनकाल में तीन पदों-अन्तर्राष्ट्रीय मंत्री,

कुमारामात्य तथा न्यायकर्ता पद को सुशोभित करता था। उसकी रचनाओं में 'इलाहाबाद प्रशस्ति' सुविख्यात है। इस प्रशस्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें 33 पंक्तियों का एक ही वाक्य है। यह प्रशस्ति समुद्रगुप्त के जीवन तथा सफलताओं का एक बड़ा स्रोत है। कहते हैं कि यदि हरिषेण की 'इलाहाबाद प्रशस्ति' उपलब्ध न होती तो इतिहास में समुद्रगुप्त का उल्लेख एक साधारण राजा के रूप में किया जाता।

(6) आर्यभट- 'आर्यभटीयम्' नामक ग्रन्थ का रचयिता आर्यभट, गुप्त युग का सबसे महान् वैज्ञानिक और गणितज्ञ था। उसने विज्ञान, गणित और नक्षत्र-विद्या के क्षेत्र में बहुत योगदान दिया :

(i) उसने चन्द्र-ग्रहण और सूर्यग्रहण के कारणों का पता लगाया।

(ii) उसने सबसे पहले यह सिद्ध किया कि पृथ्वी अपनी धुरी के चारों ओर घूमती है। उसने यह भी बताया कि पृथ्वी सूर्य के इर्द-गिर्द चक्कर लगाती है।

(iii) उसने अंकगणित, बीजगणित तथा ज्यामितीय में अनेक खोजें कीं।

(iv) उसने दशमलव पद्धति का आविष्कार किया।

(7) कालिदास- कालिदास संस्कृत साहित्य का श्रेष्ठ कवि तथा महान् नाटककार था। उसे प्रायः 'भारतीय शेक्सपीयर' कहकर पुकारा जाता है।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि उनका जन्म ई० पू० की प्रथम शताब्दी में हुआ। अन्य इतिहासकार इस विचार से सहमत नहीं हैं। उनके कथनानुसार कालिदास, गुप्तकाल में उत्पन्न हुआ और वह चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दरबार की शोभा था। एक जनश्रुति के अनुसार उसका जन्म एक ब्राह्मण के यहाँ हुआ था। बचपन में ही उसके पिता की मृत्यु हो गई। इसका पालन-पोषण एक ग्वाले ने किया।

कालिदास की प्रसिद्ध रचनाएँ 'शकुन्तला', 'मेघदूत', 'ऋतुसंहार', 'रघुवंश', 'मालविकाग्निमित्र', और 'कुमारसम्भव', हैं। इनमें से 'शकुन्तला' उसकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। इस विषय में एक बात कही जाती है, "सभी कलाओं में नाट्य-कला श्रेष्ठ है, सभी नाटकों में 'शकुन्तला' श्रेष्ठ है। शकुन्तला नाटक में चौथा अंक श्रेष्ठ है, और चौथे अंक में वे पंक्तियाँ श्रेष्ठ हैं, जब कण्व ऋषि अपनी दत्तक पुत्री शकुन्तला को विदा कर रहे हैं।"

कालिदास ने अपनी रचनाओं में अपने समय के भारतीय जीवन के प्रत्येक पहलू का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। शुंग-वंश का पूर्ण इतिहास जानने के लिए भी हमें कालिदास की रचनाओं का आश्रय लेना पड़ता है। कालिदास की लेखन-शैली अत्यन्त सरल है। अलंकारों के प्रयोग से उसकी भाषा और भी निखर उठी है। कालिदास की रचनाओं में 'उपमाएँ' इतनी सुन्दर हैं कि उसका मुकाबला विश्व का कोई भी साहित्यकार अभी तक नहीं कर सका।

(8) बाणभट्ट- बाणभट्ट हर्ष का दरबारी कवि था। वह संस्कृत का प्रकाण्ड पण्डित था। कहते हैं कि वह बचपन में स्थान-स्थान पर घूम कर गीत गाया करता था। बाद में हर्ष के सम्पर्क में आने से उसके जीवन की काया ही पलट गई। उसने 'हर्ष-चरित' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें हमें हर्ष के जीवन तथा सफलताओं का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त इससे हमें हर्षकालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दशा का भी पता चलता है। बाणभट्ट ने 'कादम्बरी' की रचना भी की, परन्तु इसका ऐतिहासिक दृष्टि से इतना महत्व नहीं है जितना कि साहित्यिक दृष्टि से है। यह पुस्तक गद्य में लिखी हुई है।

(9) अलबरूनी- अलबरूनी 11वीं शताब्दी का एक महान् इतिहासकार था। उसका वास्तविक नाम 'अबू-रैहान-मुहम्मद-अहमद-अल्बरूनी' था। ख्वारिज्म में, जिसे आज खींवा कहते हैं, 973 ई० में उसका जन्म हुआ था। वह अरबी तथा संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञाता था। वह महमूद के साथ भारत आया था। अपने अध्ययन तथा अनुभवों के आधार पर उसने एक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा। यह ग्रन्थ 'तहकीक-ए-हिन्द' के नाम से विख्यात है। इसमें हिन्दू के धार्मिक विश्वासों, साहित्य तथा ज्ञान पर प्रकाश डाला गया। यह ग्रन्थ तत्कालीन घटनाओं का विस्तार से वर्णन करता है। उसके वर्णन में दो त्रुटियाँ हैं। प्रथम, उसने अनुभव के आधार पर बहुत कम लिखा है। उसने अधिकतर संस्कृत साहित्य का सहारा लिया है। दूसरे, उसने तत्कालीन राजनीतिक इतिहास की उपेक्षा की है। अलबरूनी 'तहकीक-ए-हिन्द' में लिखता है कि लोग विदेशियों को घृणा की दृष्टि से देखते थे और उन्हें म्लेच्छ कहते थे। लोग अनेक देवताओं की पूजा करते थे। हिन्दू अच्छे दार्शनिक, ज्योतिष एवं खगोल शास्त्र के मर्मज्ञ तथा महान् गणितज्ञ थे। भगवत् गीता से अल्बरूनी विशेष रूप से प्रभावित था। उसने काशी नगरी 'हिन्दुओं का मक्क' कहा है। इस प्रकार कितनी ही महत्वपूर्ण सूचनाओं से उसका विवरण परिपूर्ण है।

(10) अश्वघोष- अश्वघोष पाटलिपुत्र का रहने वाला था। कुषाण सम्राट कनिष्क उसे पाटलिपुत्र से अपनी राजधानी पुरुषपुर (वर्तमान पेशावर) लाया था और दरबार में सम्मानित स्थान प्रदान किया था। अश्वघोष एक महाकवि, दार्शनिक, संगीतज्ञ एवं नाटककार था। उन्होंने 'बुद्ध चरित' नामक ग्रन्थ की शुद्ध सरल संस्कृत में रचना की थी। यह एक अनूठा ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में उसने बुद्ध का जीवन चरित काव्यमय शैली में लिखा है। उसका दूसरा ग्रन्थ 'सौन्दरानन्द' नामक काव्य है। यह ग्रन्थ भी बुद्ध के जीवन से सम्बद्ध है, किन्तु इसका प्रमुख विषय बुद्ध द्वारा अपने चचेरे भाई नन्द का धर्म-परिवर्तन करना है। कहा जाता है कि अश्वघोष ने तीन नाटक भी लिखे हैं। 'सारिपुत्र प्रकरण' और 'ब्रजशुचि' अश्वघोष की ही रचनाएँ मानी जाती हैं।

कनिष्क अश्वघोष का बड़ा सम्मान करता था। जब उसने श्रीनगर के निकट कुण्डलवन में चौथी बौद्ध संगीति का आयोजन किया था तब उसने अश्वघोष को संगीति का उपाध्यक्ष बनाया था।

(11) नागार्जुन- अश्वघोष के बाद कनिष्क के दरबार में दूसरा प्रकाण्ड विद्वान तथा बौद्धलेखक नागार्जुन था। वे विदर्भ के एक ब्राह्मण थे तथा शास्त्रों के विशेषज्ञ थे। उन्होंने दो विशाल ग्रन्थों- 'माध्यमिककारिका' और 'सुहल्लेखा' की रचना की थी जो दर्शन के क्षेत्र में आज भी बेजोड़ समझे जाते हैं। उनकी 'माध्यमिककारिका' को समझने में आज भी पंडितों का सिर चक्कर काटने लगता है। उन्होंने शून्यवाद की गहरी विवेचना की है और बौद्धदर्शन के स्तर को बहुत ऊँचा उठा दिया है। नागार्जुन एक उत्कृष्ट चिकित्सक भी थे। प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थ 'सुश्रुत' उनकी अमूल्य कृति है। एक चिकित्सक होने के साथ ही वह लौह-शास्त्र और रसायन-शास्त्र के भी पंडित थे।

(12) वाराहमिहिर- वाराहमिहिर की गणना चन्द्रगुप्त द्वितीय के नवरत्नों में की गई है। इनका जन्म काम्पिल्य में हुआ था। वे आदित्यदास के पुत्र थे। उन्होंने ज्योतिष सम्बन्धी चार ग्रन्थों- 'वृहत्संहिता', 'वृहज्जातक', 'पंचसिद्धान्तिका' और 'लघु जातक' आदि की रचना की थी जिनमें 'वृहत्संहिता' सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें नक्षत्र-विद्या, वनस्पति शास्त्र,

प्राकृतिक इतिहास और भौतिक भूगोल के विषयों पर चर्चा की गई है। 'पञ्जसिद्धान्तिका' में ज्योतिष के पाँच सिद्धान्तों- पैतामह सिद्धान्त, वाशिष्ट सिद्धान्त, सूर्य सिद्धान्त, पौलिश सिद्धान्त तथा रोमक सिद्धान्त का उल्लेख है। वाराहमिहिर के ग्रन्थों में फलित ज्योतिष का बड़े विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। उन्होंने गणित में 'दशमलव' के सिद्धान्त से भारतीयों को परिचित कराया। गणितशास्त्र में दशमलव सिद्धान्त का विशेष महत्व है।

(13) फाह्यान- पाँचवीं शताब्दी के प्रथम दशक में फाह्यान नामक एक चीनी यात्री भारत आया। उस समय यहाँ चन्द्रगुप्त द्वितीय का शासनकाल था। फाह्यान ने 399 ई० में भारत की सीमा पार की और यहाँ पन्द्रह वर्षों तक भ्रमण करता रहा। इस यात्री ने भारत का आँखोंदेखा वर्णन किया है। वह बौद्ध-तीर्थस्थानों की खोज में स्थल द्वारा भारत आया था। उसने मथुरा, पुरुषपुर (पेशावर), पाटलिपुत्र, कन्नौज, वाराणसी, श्रावस्ती आदि स्थान देखे थे। पाटलिपुत्र में वह तीन वर्ष रहा और वहाँ पर शिक्षा भी पायी। यह स्थान गुप्त-शासकों की राजधानी था और इसके महल सुन्दरता और विशालता में अद्वितीय थे। नगर में धनी व्यक्तियों द्वारा एक औषधालय की भी स्थापना की गयी थी, जहाँ रोगियों को मुफ्त भोजन और दवा मिलती थी। लोगों में दान देने की होड़ लगी रहती थी।

राजनीतिक दशा- फाह्यान ने भारत की राजनीतिक दशा का वर्णन किया है। वह बताता है कि राज्य नागरिकों के जीवन में बहुत कम हस्तक्षेप करता था। राज्य की भूमि जोतनेवालों को उपज का छठा भाग कर के रूप में देना पड़ता था। प्राणदण्ड की सजा नहीं दी जाती थी।

आर्थिक दशा- भारत की आर्थिक दशा का वर्णन करते हुए फाह्यान ने लिखा है कि लोगों की आर्थिक दशा अच्छी थी। लोग सुखी थे। धन-धान्य की प्रचुरता थी। गुप्त-शासकों ने सोने और चाँदी के भी सिक्के ढलवाये थे। साधारण वस्तुओं की खरीद कौड़ियों से होती थी। व्यापार काफी उन्नत था। माल ढोने के साधन काफी मात्रा में थे, जिससे यात्रियों को सुविधा मिलती थी। जनता की सुविधा के लिए सड़कों के किनारे छायादार वृक्ष तथा कुएँ थे।

धार्मिक दशा- धार्मिक दशा का वर्णन करते हुए फाह्यान लिखता है कि पंजाब और बंगाल में बौद्धधर्म उन्नति पर था। मथुरा भी बौद्धधर्म का गढ़ था, किन्तु श्रावस्ती तथा कपिलवस्तु के मठों में भिक्षुओं की संख्या गिरने लगी थी। मध्यदेश (बिहार तथा उत्तर प्रदेश) में बौद्धधर्म का ह्रास हो रहा था। गुप्त-शासकों के वैष्णव होने के कारण यहाँ वैष्णवधर्म का बोलबाला था। कई स्थानों पर बौद्धधर्म अब भी जनता में लोकप्रिय था। जनता मूर्तियों के जुलूसों में उत्साह से भाग लेती थी।

सामाजिक दशा- सामाजिक दशा का वर्णन भी बहुत रोचक है। फाह्यान ने भारतवासियों के भोजन की पवित्रता का उल्लेख किया है। साधारण जनता मांस, मदिरा, प्याज, लहसुन से परहेज करती थी। केवल चांडाल ही शिकार करते और मांस खाते थे, मगर उन्हें शहर से बाहर रहने की आज्ञा थी। छुआछूत की बीमारी समाज में घर कर गयी थी। चांडाल अछूत समझे जाते थे। जब वे लोग नगर में जाते थे, तो लकड़ियाँ पीटकर नागरिकों को सचेत कर देते थे कि वे दूर हट जायें।

(14) ह्वेनसांग- ह्वेनसांग एक चीनी यात्री था। वह हर्ष के शासनकाल में भारत आया था। उसने 639 ई० में भारत में प्रवेश किया और लगभग सोलह वर्षों तक यहाँ पर्यटन

करता रहा। वह एक बौद्धभिक्षु था। वह भारत के विभिन्न भागों का भ्रमण करता रहा। ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा का वर्णन बड़े ही अच्छे ढंग से किया है। उसके विवरण से भारत की तत्कालीन स्थिति का पता चलता है। अतः ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उसका भ्रमण-वृत्तान्त बड़ा ही महत्वपूर्ण है। उसके विवरण से पता चलता है कि हर्ष का शासनप्रबन्ध बड़ा अच्छा था। राजा अपनी प्रजा की सुरक्षा तथा सुख का बड़ा ध्यान रखता था। लोगों की सामाजिक स्थिति सन्तोषजनक थी। लोग सीधे और ईमानदार थे। उनका नैतिक आचरण भी ऊँचा था। लेकिन जातिप्रथा का बन्धन बहुत कठोर हो चला था और छुआछूत का काफी बोलबाला था। स्त्रियों की दशा भी अच्छी नहीं थी।

चीनी यात्री के वर्णन से पता चलता है कि लोगों में उच्च कोटि की धार्मिक सहिष्णुता थी। हर्ष सभी धर्मों का समान रूप से आदर करता था। उस समय शिक्षा का व्यापक प्रचार था। नालन्दा शिक्षा का सबसे बड़ा केन्द्र था। यहाँ स्वयं ह्वेनसांग दो वर्ष तक रहा था।

664 ई० में इस महान् चीनी यात्री की मृत्यु हो गयी।

(15) रजिया बेगम- रुक्नुद्दीन फिरोज के बाद रजिया दिल्ली की सुल्ताना बनी। राजगद्दी पर बैठते ही उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बड़े-बड़े सरदार और प्रान्तीय सूबेदार उसके विरुद्ध थे। रजिया के भाई भी शासन पर अपने अधिकार का दावा कर सकते थे। रजिया का नारी होना भी उसके मार्ग में बहुत बड़ी बाधा थी। रजिया ने सफलतापूर्वक अपनी कठिनाइयों का सामना किया। मिनहाजसिराज के शब्दों में, "वह उन सभी योग्यताओं तथा गुणों से परिपूर्ण थी जो राजाओं के लिए आवश्यक समझे जाते हैं।" उसने बदायूँ, हाँसी, मुल्तान और लाहौर के विद्रोही सरदारों में फूट डलवाकर उनका अन्त कर दिया।

रजिया ने अपने शासन को भी सुदृढ़ किया। उसने शासन के उच्च पदों पर योग्य और विश्वसनीय व्यक्तियों की नियुक्तियाँ की। उसने एक हब्शी जलालुद्दीन याकूत को अमीर आखूर के पद पर नियुक्त किया। रजिया पुरुषों के वस्त्र पहनकर शासन-कार्य किया करती थी और सेना का संचालन करती थी।

रजिया ने तुर्क सरदारों पर अनेक अंकुश लगा दिए थे। इस कारण वे रजिया से बड़े नाराज थे। इसके अतिरिक्त वे एक नारी के अधीन रहना अपना अपमान समझते थे। कट्टर सुन्नी मुसलमान रजिया का पुरुषों के वस्त्र पहनना पसन्द नहीं करते थे। रजिया ने हब्शी जलालुद्दीन याकूत को शाही अस्तबल का अध्यक्ष बना दिया था। लोगों में यह अफवाह फैल गई कि रजिया उससे प्रेम करती है। तुर्क सरदारों को यह अच्छा नहीं लगा कि एक सुल्तान अपने दरबार के किसी दास से प्रेम करे। इन बातों के कारण तुर्क सरदारों ने रजिया के विरुद्ध विद्रोह कर दिया।

रजिया ने अपनी वीरता और बुद्धिमानी से विद्रोहों का दमन कर दिया। इन विद्रोहों में याकूत मारा गया, लेकिन उसके बाद तुर्क सरदारों ने उसके भाई बहराम को दिल्ली की गद्दी पर बैठा दिया। रजिया ने अल्तूनिया के साथ मिलकर दिल्ली का शासन फिर से पाने का प्रयास किया, लेकिन उसकी हार हुई और उसका वध कर दिया गया।

(16) मलिक काफूर- मलिक काफूर खम्भात (गुजरात) का रहने वाला एक हिन्दू था। 1297 ई० में अलाउद्दीन ने जब नुसरत खाँ को गुजरात-विजय के लिए भेजा तब नुसरत खाँ ने खम्भात में मलिक काफूर को एक हजार दीनार में खरीदा था। इसी कारण उसे 'हजार दीनारी' भी कहा जाता है। काफूर बड़ा सुन्दर और तीव्र बुद्धिवाला था। उसके इन गुणों ने सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी को काफी प्रभावित किया। धीरे-धीरे वह सुल्तान का कृपापात्र बन गया और उन्नति करता हुआ मन्त्रिपद पर जा पहुँचा।

मलिक काफूर एक योग्य सेनानायक सिद्ध हुआ। सुल्तान की दक्षिण विजय का वास्तविक श्रेय उसी को जाता है। 1306 ई० से 1312 ई० तक उसने देवगिरि, वारंगल, द्वार-समुद्र और मदुरा के राज्यों पर विजय प्राप्त की। वह दक्षिण से अपने साथ लूट का काफी माल लाया। अपनी सफलताओं से उसने अलाउद्दीन खिलजी को प्रभावित किया। सुल्तान प्रत्येक आवश्यक मामले में उसी की सलाह लेने लगा। सुल्तान पर काफूर के प्रभाव का सबसे बड़ा प्रमाण हमें इस बात से मिलता है कि उसके कहने पर सुल्तान ने अपने परिवार के सदस्यों को भी बन्दी बना लिया था। इस प्रकार मलिक काफूर इतना शक्तिशाली हो गया कि वह राजगद्दी हथियाने की आकांक्षा करने लगा।

अलाउद्दीन खिलजी का बड़ा पुत्र खिज्र खाँ था और अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् ही उसे दिल्ली का सुल्तान बनना था, परन्तु मलिक काफूर ने अलाउद्दीन से कहकर खिज्र खाँ को उत्तराधिकार से वंचित करवा दिया। सुल्तान की मृत्यु के तुरन्त पश्चात् काफूर ने उसके छः वर्षीय बालक शहाबुद्दीन उमर को सिंहासन पर बिठाया और स्वयं उसका संरक्षक बन गया। उसने खिज्र खाँ और उसके छोटे भाई शादी खाँ को अंधा करवा कर ग्वालियर के किले में कैद करवा दिया। लेकिन 35 दिन पश्चात् ही अलाउद्दीन के सैनिकों ने उसकी (मलिक काफूर) हत्या कर दी।

(17) शशांक- गौड़-राजाओं में सबसे प्रतापी शशांक था। किन्तु, यह था कौन, इसके बारे में कुछ पता नहीं। न तो हम इसके पूर्वजों को जानते हैं और न उत्तराधिकारियों को। आर० डी० बनर्जी के विचार से शशांक मगध के महासेनगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र था। उसने गौड़ तथा मौखरी की शत्रुता के कारण मालवा के देवगुप्त से संधि कर ली और उसके साथ मौखरी-नरेश ग्रहवर्मन पर आक्रमण किया। ग्रहवर्मन युद्ध में मारा गया और उसकी पत्नी राज्यश्री बंदी बना ली गयी। राज्यश्री थानेश्वर के नरेश राज्यवर्द्धन की बहन थी। अतः राज्यवर्द्धन ने बदला लेने के लिए देवगुप्त पर आक्रमण कर उसे बुरी तरह पराजित किया, किन्तु, स्वयं शशांक के द्वारा छल से मारा गया। पर, कन्नौज पर शशांक का अधिकार अधिक दिनों तक टिक न सका। राज्यवर्द्धन के अनुज हर्षवर्द्धन ने शीघ्र ही कन्नौज जीत लिया। शशांक से बदला लेने के लिए उसने कामरूप के नरेश भास्करवर्मन से संधि की। किन्तु, सम्भवतः जब तक शशांक जीवित रहा, हर्ष उसे पूर्णतः पराजित नहीं कर सका। उसकी मृत्यु के बाद ही शशांक की राजधानी कर्णस्वर्ण (पश्चिमी बंगाल में मुर्शिदाबाद जिले में स्थित) कामरूप के अधीन हुई। शशांक ने उड़ीसा में गंजाम तक अपनी सीमा का विस्तार किया था। वह बौद्धविरोधी था और सम्भवतः उसने बौद्धों पर अत्याचार भी किया था।

(18) पुष्यमित्र शुंग (185-149 ई० पू०)- मौर्यवंश के अंतिम शासक बृहद्रथ का वध करके उसके मंत्री पुष्यमित्र शुंग ने शुंग वंश की सत्ता स्थापित की। पुष्यमित्र के शासनकाल

की प्रथम घटना विदर्भ से युद्ध था। विदर्भ का शासक यज्ञसेन शुंगों का शत्रु था। पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र जो विदिशा का शासक था, उसने यज्ञसेन के चचेरे भाई माधवसेन को कूटनीति से अपनी ओर मिला लिया। तत्पश्चात् पुष्यमित्र और अग्निमित्र ने यज्ञसेन पर आक्रमण कर दिया। यज्ञसेन पराजित हुआ और अन्त में विदर्भ राज्य दोनों भाइयों- यज्ञसेन और माधवसेन में बराबर-बराबर बाँट दिया गया। दोनों भाइयों ने पुष्यमित्र शुंग की अधीनता भी स्वीकार कर ली।

पुष्यमित्र के शासनकाल में यवनों ने भारत पर आक्रमण किया। 'गार्गी संहिता' के अनुसार यवनों ने मथुरा-गंगा के दोआब तथा साकेत को जीत लिया और पाटलिपुत्र तक जा पहुँचे। पुष्यमित्र के पोते वसुमित्र ने यवनों से युद्ध किया और उन्हें पराजित किया। विदर्भ तथा यवनों को पराजित करने के उपरान्त पुष्यमित्र ने दो बार अश्वमेध यज्ञ किया।

पुष्यमित्र वैष्णव-धर्म का अनुयायी था। वह बौद्धधर्म के प्रति असहिष्णु था। तारानाथ के अनुसार उसने अनेक बौद्ध-भिक्षुओं को मौत के घाट उतार दिया और उनके मठों तथा विहारों को नष्ट करवा दिया था।

36 वर्ष शासन करने के उपरान्त लगभग 148 ई० पू० में पुष्यमित्र शुंग का देहावसान हो गया।

(19) कृष्णदेव राय- विजयनगर राज्य के तालुब वंश का सर्वविख्यात शासक कृष्णदेव राय था। वह 1509 ई० में सिंहासन पर बैठा। विजयनगर के महान् शासकों में वह एक महानतम शासक था। उसने अपने शासनकाल में अनेक विजयें की। 1513 ई० में उड़ीसा के राजा गणपति प्रतापरुद्र को पराजित कर उसकी पुत्री से विवाह किया। 1520 ई० में उसने बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह को पराजित किया। उसकी राजसभा में आठ कवियों को आश्रय प्राप्त था, जो 'अष्टिदग्गज' कहलाते थे। वह वैष्णव-धर्म का अनुयायी था, किन्तु अन्य धर्मावलम्बियों के साथ उसका सद्व्यवहार था। पुर्तगाली यात्री डोमिगोस पेइज उसके सम्बन्ध में लिखता है, "वह इतना विद्वान तथा सफल शासक है, जितना कि होना संभव है। वह महान् तथा न्यायप्रिय शासक है। अपने पद, सेना तथा भूमि की दृष्टि से वह किसी भी सम्राट से बढ़कर है।" 1530 ई० में कृष्णदेव राय की मृत्यु हो गयी।

(20) इब्नबतूता- अबू-अब्दुल्ला मुहम्मद जिसे इब्नबतूता कहते हैं, मोरक्कों के टेनियर नामक स्थान पर 1304 ई० को पैदा हुआ था। 21 वर्ष की आयु में वह भ्रमण करने के लिये चल पड़ा। अफ्रीका तथा एशिया होता हुआ वह हिन्दूकुश के मार्ग से भारत आया। सितम्बर, 1333 ई० में वह सिन्धु नदी तक पहुँच गया। वहाँ से वह दिल्ली पहुँचा जहाँ सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और उसे दिल्ली का काजी नियुक्त किया। वह आठ वर्ष तक सुल्तान की सेवा में रहा। उसे सुल्तान ने अपना राजदूत बनाकर चीन भेजा, परन्तु वह वहाँ न पहुँच सका। वह 1342 ई० तक भारत में रहा। कई वर्षों के भ्रमण के उपरान्त 1349 ई० में वह अपने देश लौट गया। वहाँ उसने अपने अनुभवों का लिखित वर्णन प्रकाशित किया जिससे उस समय की राजनीति, शासन-प्रबन्ध की रूपरेखा, सामाजिक दशा पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। 1377-78 ई० में 73 वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया।

(21) महमूदगवाँ- अमीर ख्वाजा महमूदगवाँ फारस का एक व्यापारी था। वह 42 वर्ष की आयु में व्यापार के सम्बन्ध में भारत आया था। कुछ ही समय में उसने बहमनी राज्य में

एक सरकारी नौकरी कर ली और अपनी कार्य-कुशलता के कारण वह मंत्रिपद पर पहुँच गया। मुहम्मदशाह तृतीय के शासनकाल में उसने सैनिक विजयों, शासन सुधारों और प्रजाहित के कार्यों से बहमनी राज्य को वैभवपूर्ण बना दिया। इसी के समय आन्ध्र और उड़ीसा के अभियानों में सुल्तान को सफलता प्राप्त हुई। इसी के समय में विजयनगर पर आक्रमण किया गया और काँची को लूटा गया। 1470 ई० में निकतिन नाम का एक रूसी व्यापारी बीदर आया था। उसने महमूदगवाँ के शासन-प्रबन्ध का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है।

महमूदगवाँ की बढ़ती हुई शक्ति से दरबारी अमीर उससे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने बुद्धिमान मंत्री के विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। उन्होंने सुल्तान के सामने एक जाली-पत्र इस आशय का प्रस्तुत किया कि महमूदगवाँ विजयनगर राज्य से मिलकर बहमनी राज्य के साथ विश्वासघात करना चाहता है। नशे में चूर मुहम्मदशाह ने उसके वध की आज्ञा दे दी और 5 अप्रैल, 1481 को उसका वध कर दिया गया।

महमूदगवाँ विद्वानों का आश्रयदाता था। उसने बीदर में एक विद्यालय की स्थापना की थी जिसमें 3,000 पुस्तकों का संग्रह विद्यमान था। वह गणित, चिकित्साशास्त्र तथा साहित्य में विशेष रुचि रखता था। फरिश्ता के अनुसार उसने 'रौजत-उल-इंशा' और 'दीवान-ए-अश्र' नामक दो काव्यग्रन्थों की रचना की थी।

(22) मेनाण्डर- यूनानी लेखक **स्ट्रैबो** के अनुसार मेनाण्डर (भारतीय रूप-मिलिंद) भारतीय यूनानी राजाओं में सब से महान् था। पाली भाषा के ग्रन्थ 'मिलिंद यञ्ह'(मिलिंद प्रश्न) के अनुसार मेनाण्डर का जन्म शाकल (सियालकोट) से 2,880 किमी० दूर स्थित अलासण्ड द्वीप के कलसी नामक ग्राम में हुआ था। इस यवन राजा की राजधानी शाकल थी जहाँ से उसने काफी अरसे तक राज्य किया। उसका राज्य एक समय काबुल के काँठे से मथुरा तक फैला हुआ था। डेमेट्रियस के भारत-आक्रमण में मेनाण्डर उसका सहयोगी था।

भारत के इतिहास में मेनाण्डर की ख्याति एक बौद्ध राजा के रूप में है। एक स्यामी अनुश्रुति के अनुसार उसे अर्हत् पद प्राप्त हो गया था। पालि ग्रन्थ 'मिलिन्दपञ्ह' के अनुसार मेनाण्डर ने बौद्ध विद्वान भिक्षु नागसेन से धर्म और दर्शन विषयक कई सूक्ष्म प्रश्न पूछे और सभी प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर उसे दिया गया। परिणामस्वरूप वह बौद्ध हो गया। उसके सिक्कों से भी उसकी बौद्ध धर्म के प्रति गहरी आस्था प्रकट होती है। उसके अनेक सिक्कों पर बौद्धधर्म के धर्मचक्रप्रवर्तन का चिह्न 'धर्मचक्र' बना है और उसकी पदवी 'ध्रर्मिक' ध्धार्मिक) अंकित है। जब उसकी मृत्यु हुई तो उसके अवशेषों की रक्षा के लिए उसके साम्राज्य के अनेक नगरों ने उसकी धातुओं (फूलों) का भाग लेना चाहा था, जैसा कि भगवान बुद्ध की मृत्यु पर हुआ था।

डॉ० डी० सी० सरकार के अनुसार मेनाण्डर का राज्य अफगानिस्तान के केन्द्रीय भागों, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत, पंजाब, उत्तर प्रदेश तक फैला हुआ था। 'मिलिन्दपञ्ह' में मेनाण्डर की प्रशंसा इन शब्दों में की गई है, "प्रतिस्पर्धा के रूप में वह बेजोड़ था उसको काबू करना तो और भी कठिन था। सभी दार्शनिक विचारधारों के संस्थापकों से वह निश्चय ही श्रेष्ठ था। वह बुद्धिमान और अत्यन्त शक्तिशाली था। स्फूर्ति एवं वीरता में मिलिंद के सदृश भारत में कोई नहीं था। धन और समृद्धि की दृष्टि से भी वह सम्पन्न था और उसकी सेना की कोई गिनती नहीं थी।" **प्रो० ए० के० नारायण** ने लिखा है, "मेनाण्डर की अन्य भारतीय-यूनानी सम्राटों की तुलना में महानता तथा लोकप्रियता केवल उसके सिक्कों से ही नहीं, प्रत्युत् परम्परा

में उसके नाम के जीवित रहने से प्रमाणित होती है। निश्चित रूप से वह भारत के भारतीय-यूनानी सम्राटों में सबसे महान् था।"

(23) कुमारजीव- मध्य एशिया से चीन में आये हुए बौद्ध प्रचारकों में कुमारजीव सबसे प्रसिद्ध माने जाते हैं। उनके पिता एक भारतीय थे, जिनका नाम कुमारायण था। कुछ कारणों से जो अब भी अज्ञात है, कुमारायण अपनी मातृभूमि को छोड़कर पामीर से होते हुए कूची आये। वहाँ के स्थानीय सम्राट ने इनकी विद्वता से आकर्षित होकर इन्हें राजगुरु के पद पर नियुक्त किया। यहाँ पर जीवा नामक राजकुमारी के साथ इनका प्रेम हो गया। फलतः कूचनी के सम्राट ने कुमारायण का विवाह जीवा के साथ कर दिया। इसी राजकुमारी से कुमारजीव उत्पन्न हुए (जीवा के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण इनका यह नाम पड़ा)। इनके जन्म के अनन्तर जीवा ने बौद्ध धर्म में दीक्षा ले ली और उसने भिक्षुणी का जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया। कूची में प्रारम्भिक शिक्षा देने के अनन्तर कुमारजीव को जीवा अपने साथ कश्मीर ले आई। यहाँ पर उन्होंने बौद्ध ग्रन्थों का गहन अनुशीलन किया। उनके आचार्य का नाम बन्धुदत्त था जो कि महायान धर्म का अनुयायी था। तदन्तर अपनी माता के साथ मध्य एशिया के कई बौद्ध केन्द्रों का पर्यटन करते हुए वे कूची लौट आये। इस समय उनकी ख्याति चतुर्दिक फैलने लगी। उनसे शिक्षा ग्रहण करने के निमित्त खोतान, काशगर तथा यारकन्द के विद्यार्थी उनके पास आते थे।

383 या 401 ई० के लगभग जब कूची पर चीन का आक्रमण हुआ तब चीनी कुमारजीवा को बन्दी बनाकर चीन ले गये। उनकी प्रतिभा से परिचित होने पर चीन के सम्राट ने उन्हें अपने पास राजधानी में रखा। तदनन्तर मृत्युपर्यन्त (413 ई० तक) उन्होंने अपना जीवन चीन में व्यतीत किया।

प्रबोधचन्द्र बागची का कथन है कि चीन में बौद्ध धर्म के उद्गम एवं विकास की दिशा में कुमारजीव का योगदान उच्चकोटि का था। उनके पर्यवेक्षण में 94 बौद्ध ग्रन्थों का प्रामाणिक अनुवाद प्रस्तुत किया गया। चीन के विभिन्न भागों के विद्यार्थी उनकी विद्वता का लाभ उठाने के निमित्त बहुसंख्या में एकत्र होते थे। उनके द्वारा अनूदित ग्रन्थों में 'महाप्रज्ञापारमिता-शास्त्र, 'शतशास्त्र', 'सुखावत्यभृतव्यूह', 'सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र', 'महाप्रज्ञापारमिता-सूत्र' तथा 'वज्रद्देदिका प्रज्ञापारमिता-सूत्र' उल्लेखनीय है। अपने जीवन के अंतिम क्षणों में उन्होंने अपने शिष्यों को उपदेश दिया था कि वे उनकी कृतियों मात्र को ही श्रद्धालु दृष्टि से देखेंगे, परन्तु उनके जीवन को आदर्श रूप में न ग्रहण करेंगे। कुमारजीव का नाम मध्य एशिया की उन विभूतियों में चिरस्मणीय रहेगा, जिन्होंने चीन में भारतीय सभ्यता का प्रसार किया था।

☆

माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उ०प्र० के इण्टर इतिहास (भारतीय) के द्वितीय प्रश्न-पत्र के प्रश्न

1991 264 (AAQ)

खण्ड 'क' (निबन्धात्मक प्रश्न)

1. "निस्सन्देह भारत में एक गहरी मौलिक एकता विद्यमान है।" समीक्षा कीजिए। 6

अथवा

"पुरातत्व भारतीय इतिहास जानने का एक महत्वपूर्ण साधन है"–विवेचना कीजिए। 6

2. सिन्धु घाटी की सभ्यता की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। 6

अथवा

पूर्वकालीन वैदिक सभ्यता में सामाजिक-धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालिए। 6

3. "भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य की गणना महानतम एवं अत्यधिक सफल राजाओं में होती है।" समीक्षा कीजिए। 6

अथवा

"गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग था।" समीक्षा कीजिए। 6

4. बलबन का राजा के रूप में मूल्यांकन कीजिए। 6

अथवा

"अलाउद्दीन खिलजी की आर्थिक नीति की विवेचना कीजिए।" 6

5. विजयनगर शासन व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। 6

अथवा

भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्तों के विचारों का विवरण दीजिए। 6

खण्ड 'ख' (लघु उत्तरीय प्रश्न)

6. बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्य का विवरण दीजिए। 2
7. चार प्रमुख राजपूत राज्यों का परिचय दीजिए। 2
8. दिल्ली सल्तनत के पतन के चार मुख्य कारणों पर प्रकाश डालिए। 2
9. मुहम्मद तुगलक की किन्हीं दो योजनाओं पर प्रकाश डालिए। 2

खण्ड 'ग' (ऐतिहासिक तिथियों, व्यक्तियों तथा स्थलों से सम्बन्धित प्रश्न)

10. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों में से किन्हीं दस की घटनाओं का उल्लेख कीजिए। प्रत्येक सही उत्तर हेतु 1/2 अंक निर्धारित हैं : 5

(क) 322 ई०पू० (ख) 1325 ई० (ग) 261 ई० (घ) 320 ई० (च) 647 ई०
(छ) 1510 ई० (ज) 1191 ई० (झ) 1221 ई० (ट) 1240 ई० (ठ) 273 ई०
(ड) 1388 ई० (ढ) 1469 ई० (त) 1490 ई० (थ) 1504 ई० (द) 712 ई०

11. निम्नलिखित में से किसी एक स्थान के भवन, कलाकृतियों एवं ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए : 3

(1) सारनाथ (2) श्रावस्ती (3) जौनपुर (4) आगरा।

12. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए : 2+2

(1) फाह्यान (2) मेनाण्डर (3) रज़िया (4) तैमूर।

1992 **264 (HU)**

खण्ड 'क' (निबन्धात्मक प्रश्न)

1. भारतीय इतिहास लेखन में विदेशी वृत्तान्तों के महत्व पर प्रकाश डालिए । 6

अथवा

"भारत की मौलिक एकता इसके सांस्कृतिक समन्वय में है ।" इस कथन की समीक्षा कीजिए । 6

2. "सैन्धव सभ्यता एक सुविकसित नगरीय सभ्यता थी ।" इस कथन की समीक्षा कीजिए । 6

अथवा

ऋग्वेदकाल में आर्यों के राजनीतिक जीवन तथा संगठन का वर्णन कीजिए ।

3. "अशोक का व्यक्तित्व एक दुर्दान्त साम्राज्यवादी तथा कट्टर शान्तिवादी का समन्वय था ।" इस कथन की विवेचना कीजिए । 6

अथवा

गुप्त साम्राज्य के पतन के कारणों का वर्णन कीजिए । 6

4. भारत में सूफी मत का परिचय दीजिए तथा इसके मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए ।6

अथवा

अलाउद्दीन खिलजी की विजयों का वर्णन कीजिए । 6

5. मोहम्मद-बिन-तुगलक के व्यक्तित्व का आकलन कीजिए । 6

अथवा

भारत पर महमूद गजनवी के आक्रमण एवं उसके प्रभाव की विवचेना कीजिए । 6

खण्ड 'ख' (लघु उत्तरीय प्रश्न)

6. भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के प्रभाव की विवेचना कीजिए । 2
7. महावीर की प्रमुख शिक्षाओं का वर्णन कीजिए । 2
8. राजपूतों की पराजय के चार कारणों की विवेचना कीजिए । 2
9. भक्ति आन्दोलन के किन्हीं दो सन्तों की जीवनी तथा उपदेशों पर प्रकाश डालिए । 2

खण्ड 'ग' (ऐतिहासिक तिथियों, व्यक्तियों तथा स्थलों से सम्बन्धित प्रश्न)

10. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों में से किन्हीं दस से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख कीजिए । 5

(क) 599 ई.पू. (ख) 567 ई.पू. (ग) 326 ई.पू. (घ) 269 ई.पू. (ङ) 187 ई.पू.
(छ) 78 ई. (ज) 360 ई. (झ) 415 ई. (ट) 606 ई. (ठ) 622 ई.
(ड) 1026 ई. (ढ) 1192 ई. (त) 1298 ई. (थ) 1398 ई. (द) 1498 ई.

11. निम्नलिखित में से किसी एक स्थान के ऐतिहासिक महत्व, भवन तथा कलाकृतियों का उल्लेख कीजिए : 3

(क) अजन्ता (ख) साँची (ग) फतेहपुर सीकरी (घ) मेहरौली ।

12. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए : 2+2

(क) युवान च्वाङ (ख) चैतन्य महाप्रभु (ग) अमीर खुसरो (घ) हजरत निजामुद्दीन ।

1993

खण्ड 'क' (निबन्धात्मक प्रश्न)

1. "अनेकता में एकता ही भारतीय संस्कृति का मूलतत्व है । विवेचना कीजिए ।

अथवा

2. "अशोक केवल बौद्ध धर्म का ही नहीं अपितु मानव-धर्म का प्रचारक था ।" विवेचन्ना कीजिए ।

अथवा

"ब्राह्मणवाद का पुनरुत्थान ही मौर्य साम्राज्य के पतन का वास्तविक कारण था"। क्या आप सहमत हैं ? तर्क प्रस्तुत कीजिए।

3. मौर्य प्रशासन के विशिष्ट तत्वों का निरूपण कीजिए।

अथवा

"गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग था"। कला एवं साहित्य के क्षेत्र में हुए विकास की दृष्टि से इस कथन की पुष्टि कीजिए।

4. कुतुबुद्दीन ऐबक व इल्तुतमिश में आप दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक किसे समझते हैं ? सकारण बताइए।

अथवा

सुलतान बलबन की प्रमुख समस्याओं का वर्णन कीजिए तथा यह बताइए कि उसने उन्हें किस प्रकार सुलझाया ?

5. क्या आप इस धारणा से सहमत हैं कि सुलतान सिकन्दर लोदी, लोदी वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक था ?

अथवा

पूर्व मध्यकाल में हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय में सूफी सन्तों के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

खण्ड 'ख' (लघु-उत्तरीय प्रश्न)

6. एक साम्राज्य के रूप में मगध के उत्कर्ष के कारणों की विवेचना कीजिए।
7. फाह्यान द्वारा पाटलिपुत्र के विवरण का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।
8. मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय उत्तरी भारत की राजनीतिक दशा किस प्रकार की थी ?
9. फिरोज तुगलक ने आर्थिक विकास के लिए क्या उपाय किये ?

खण्ड 'ग' (ऐतिहासिक तिथियों, व्यक्तियों तथा स्थलों से सम्बन्धित प्रश्न)

10. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों में से किन्हीं दस से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख कीजिए :

(क) 542 ई० पू०, (ख) 487 ई० पू०, (ग) 468 ई० पू०,
(घ) 71 ई० पू०, (ङ) 78 ई० (च) 415 ई०,
(छ) 455 ई०, (ज) 606 ई०, (झ) 712 ई०,
(ञ) 1030 ई०, (ट) 1202 ई०, (ठ) 1210 ई०,
(ड) 1240 ई०, (ढ) 1294 ई०, (ण) 1320 ई०।

11. निम्नलिखित में से एक स्थान के भवनों, कलाकृतियों एवं ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए :

(अ) मथुरा (ब) कौशाम्बी (स) कांची।

12. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :

(क) खारवेल (ख) प्रभावती गुप्ता
(ग) तैमूर (घ) गुरु नानक।

1994

खण्ड 'क'

(निबन्धात्मक प्रश्न)

1. "एकता में अनेकता और अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता है।" विवेचना कीजिए। 6

अथवा

"भारतीय इतिहास की संरचना में पुरातात्विक साक्ष्य की विशेष भूमिका है।" समीक्षा कीजिए। 6

2. सैन्धव एवं वैदिक सभ्यताओं की तुलना कीजिए। 6

अथवा

अशोक के धर्म का विश्लेषण कीजिए। 6

3. "गुप्त काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग था।" विवेचना कीजिए। 6

अथवा

राजपूतों के पराजय के कारणों की विवेचना कीजिए। 6

4. मुहम्मद तुगलक की योजनाओं की समीक्षा कीजिए। 6

अथवा

अलाउद्दीन खिलजी की बाजार नीति पर एक निबन्ध लिखिए। 6

5. भारत में सूफी मत के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए। 6

अथवा

दिल्ली सल्तनत के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए। 6

खण्ड- 'ख'

(लघु उत्तरीय प्रश्न)

6. गौतम बुद्ध की चार प्रमुख शिक्षाओं का वर्णन कीजिए। 2
7. समुद्रगुप्त द्वारा विजित किन्हीं चार राज्यों के नाम लिखिए। 2
8. बलबन की किन्हीं दो उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए। 2
9. भक्ति आन्दोलन के किन्हीं दो सन्तों का परिचय दीजिए। 2

खण्ड- 'ग'

(ऐतिहासिक तिथियों, व्यक्तियों तथा स्थलों से सम्बन्धित प्रश्न)

10. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों में से किन्हीं दस से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख कीजिए। प्रत्येक सही उत्तर के लिए 1/2 अंक निर्धारित हैं : 5

(क) 321 ई० पू० (ख) 269 ई० पू० (ग) 78 ई०
(घ) 320 ई० (ङ) 476 ई० (च) 505 ई०
(छ) 620 ई० (ज) 712 ई० (झ) 1030 ई०
(ट) 1206 ई० (ठ) 1336 ई० (ड) 1345 ई०
(ढ) 1451 ई० (ण) 1481 ई० (य) 1498 ई०

11. निम्नलिखित में से किसी एक स्थान के भवनों, कलाकृतियों एवं ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए : 3

(अ) जौनपुर (ब) आगरा (स) सारनाथ

12. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए : - 2 + 2

(क) फाह्यान (ख) कालिदास

(ग) रजिया (घ) गुरु नानक

1995 464 (JX)

खण्ड 'क'

(निबन्धात्मक प्रश्न)

1. "भारत की विभिन्नता में एकता निहित है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। 6

अथवा

सिन्धु घाटी की सभ्यता के समय की आर्थिक एवं धार्मिक दशा पर प्रकाश डालिए। 6

2. भारत में ईसा पूर्व छठीं शताब्दी में हुई धार्मिक क्रान्ति का विवरण दीजिए। 6

अथवा

सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत की दशा पर प्रकाश डालिए तथा यह भी बताइये कि इसका भारतीय इतिहास और राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा ? 6

3. चन्द्रगुप्त मौर्य की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालिए। 6

अथवा

अशोक के 'धम्म' का वर्णन कीजिए। इसके प्रचार के लिए उसने क्या उपाय किये ? 6

4. "इल्तुतमिश गुलाम वंश का सर्वश्रेष्ठ सुल्तान था।" व्याख्या कीजिए। 6

अथवा

बलबन के शासन प्रबन्ध का वर्णन कीजिए। 6

5. मुहम्मद तुगलक की योजनाओं एवं चरित्र पर प्रकाश डालिए। 6

अथवा

फिरोज तुगलक के प्रशासनिक सुधारों का वर्णन कीजिए। 6

खण्ड- 'ख'

(लघु उत्तरीय प्रश्न)

6. ऋग्वैदिक सामाजिक व्यवस्था की दो प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए। 2
7. सोलह महान जनपदों में किन्हीं चार जनपदों के नाम लिखिए। 2
8. बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्य लिखिए। 2
9. तुगलक वंश के पतन के चार कारण लिखिए। 2

खण्ड-'ग'

(ऐतिहासिक तिथियों, व्यक्तियों तथा स्थलों से सम्बन्धित प्रश्न)

10. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों में से किन्हीं दस से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख कीजिए। प्रत्येक सही उत्तर के लिए ½ अंक निर्धारित हैं : 5

(क) 468 ई० पू० (ख) 305 ई० पू० (ग) 262 ई० पू०
(घ) 149 ई० पू० (ङ) 647 ई० (च) 712 ई०
(छ) 1026 ई० (ज) 1217 ई० (झ) 1240 ई०
(ट) 1294 ई० (ठ) 1330 ई० (ड) 1312 ई०
(ढ) 1418 ई० (ण) 1504 ई० (य) 1517 ई०

11. निम्नलिखित में से किसी एक स्थान के भवनों, कलाकृतियों एवं ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए : 3

(अ) सारनाथ (ब) आगरा (स) इलाहाबाद

12. निम्नलिखित में किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :- 2+2

(क) मेगस्थनीज (ख) अजातशत्रु
(ग) नानक (घ) रामानन्द।

1996 [464 BM]

खण्ड-'क'

(निबन्धात्मक प्रश्न)

1. भारतीय इतिहास के प्रमुख स्रोत के रूप में अभिलेखों का महत्व समझाइये। 6

अथवा

सिन्धु घाटी सभ्यता के समय लोगों की सामाजिक एवं धार्मिक दशा का वर्णन कीजिए। 6

2. बौद्ध-धर्म की प्रसिद्धि के कारण वताइये एवं भारतीय संस्कृति को इसकी देन का वर्णन कीजिए। 6

अथवा

मेगस्थनीज के विवरण के आधार पर पाटलिपुत्र की नगर-व्यवस्था पर प्रकाश डालिए। 6

3. सिकन्दर के भारतीय युद्धों का संक्षिप्त विवरण दीजिए तथा यह भी वताइये कि उसके आक्रमण का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा ? 3+3

अथवा

अशोक के 'धम्म' से आप क्या समझते हैं ? इसके प्रसार के लिए उसने क्या प्रयास किए? 3+3

4. "इल्तुतमिश दास वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक था।" इस कथन की विवेचना उसकी विजयों एवं चरित्र के आधार पर कीजिए। 3+3

अथवा

अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण भारतीय विजयों की समीक्षा कीजिए। 6

5. मुहम्मद तुगलक की राजधानी परिवर्तन योजना पर प्रकाश डालिए और उसके चरित्र की समीक्षा कीजिए। 3+3

अथवा

"सिकन्दर लोदी अपने वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक था।" इस कथन की समीक्षा उसकी विजयों एवं चरित्र के आधार पर कीजिए। 3+3

खण्ड- 'ख'

(लघु उत्तरीय प्रश्न)

6. 'सभा' तथा 'समिति' पर प्रकाश डालिए। 2
7. गुप्तकाल स्वर्णयुग क्यों कहा जाता है ? इसके समर्थन में दो कारणों का वर्णन कीजिए। 2
8. दिल्ली सल्तनत के पतन के दो कारण बताइये। 2
9. तालीकोट के युद्ध का महत्व समझाइये। 2

खण्ड- 'ग'

(ऐतिहासिक तिथियों, व्यक्तियों तथा स्थलों से सम्बन्धित प्रश्न)

10. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों में से किन्हीं दस से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख कीजिए। प्रत्येक सही उत्तर के लिए 1/2 अंक निर्धारित है : 5

(क) 563 ई० पू० (ख) 326 ई० पू० (ग) 305 ई० पू०
(घ) 269 ई० पू० (ङ) 325 ई० (च) 405 ई०
(छ) 606 ई० (ज) 1025 ई० (झ) 1191 ई०
(ञ) 1206 ई० (ट) 1221 ई० (ठ) 1287 ई०
(ड) 1320 ई० (ढ) 1398 ई० (ण) 1526 ई०

11. निम्नलिखित में से किसी एक स्थान के भवनों, कलाकृतियों एवं ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए : 3

(अ) दिल्ली (ब) पाटलिपुत्र (स) प्रयाग

12. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :- 2 + 2

(क) मेगस्थनीज़ (ख) ह्वेनसांग (ग) कबीर।

1997 464 (FK)

खण्ड 'क'

(निबन्धात्मक प्रश्न)

1. प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में विदेशी विवरणों की महत्ता पर प्रकाश डालिए। 6

अथवा

वैदिकयुगीन सामाजिक और आर्थिक जीवन का वर्णन कीजिए। 3+3

2. "बौद्ध और जैन धर्मों की सफलता का प्रमुख कारण तत्कालीन जनता में व्याप्त और सामाजिक असन्तोष था।" स्पष्ट कीजिए। 6

अथवा

"अशोक की धम्म प्रचार की नीति मौर्य साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण थी।" आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। 6

3. "गुप्तकालीन स्वर्णयुग मुख्यतः समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय की रचना थी।" विवेचना कीजिए। 6

अथवा

फाहियान के वर्णन के आधार पर भारतीय समाज का चित्रण कीजिए। 6

4. इस्लाम के मूलभूत सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए। 6

अथवा

राजपूतों की पराजय के प्रमुख कारणों का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। 6

5. "फिरोज तुगलक एक आदर्श मुस्लिम सुल्तान था।" स्पष्ट कीजिए। 6

अथवा

मुस्लिम आक्रमणों के प्रभाव का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। 6

खण्ड- 'ख'

(लघु उत्तरीय प्रश्न)

6. भारतीय मूर्तिकला और सिक्कों पर यूनानी प्रभाव के विषय में आप क्या जानते हैं? 2
7. मौर्यकालीन इतिहास जानने के लिए प्रसिद्ध दो साहित्यिक स्रोतों का उल्लेख कीजिए। 2
8. तुर्कों की सफलता के दो प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिए। 2
9. हर्ष के समकालीन दो प्रमुख साहित्यिक ग्रन्थों का ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन कीजिए। 2

खण्ड- 'ग'

(ऐतिहासिक तिथियों, व्यक्तियों तथा स्थलों से सम्बन्धित प्रश्न)

10. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों में से किन्हीं दस से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख कीजिए। प्रत्येक सही उत्तर के लिए 1/2 अंक निर्धारित है : 5

(क) 2500-1500 ई० पू० (ख) 325 ई० पू० (ग) 323 ई० पू०
(घ) 322 ई० पू० (ङ) 58 ई० पू० (च) 376-414 ई०
(छ) 399 ई० (ज) 630-644 ई० (झ) 998-1030 ई०
(ञ) 1240 ई० (ट) 1316 ई० (ठ) 1398-99 ई०
(ड) 1517 ई० (ढ) 1525 ई० (ण) 1526 ई०

11. निम्नलिखित में से किसी एक स्थान के भवनों, कलाकृतियों एवं ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए : 3

(अ) वाराणसी (ब) राजगीर (राजगृह) (स) आगरा।

12. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :- 2+2

(क) वराहमिहिर (ख) आर्यभट्ट
(ग) जियाउद्दीन बर्नी (घ) मलिक मुहम्मद जायसी।

1998

खण्ड –'क'

निबन्धात्मक प्रश्न

1. "भारत की मौलिक एकता उसकी विभिन्नताओं का ही परिणाम है" । क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? स्पष्ट कीजिए । 6

अथवा

पूर्व एवं उत्तर वैदिक कालीन संस्कृतियों की तुलना कीजिए । 6

2. ईसा पूर्व छठी शताब्दी में नये धार्मिक सम्प्रदायों के उदय के कारणों का परिचय दीजिए । 6

अथवा

भारत पर हुए सिकन्दर के आक्रमण का विवरण दीजिये तथा इसके परिणामों की विवेचना कीजिए । 6

3. "गुप्त युग हिन्दू संस्कृति के पुनर्जागरण का काल था"–विवेचना कीजिए । 6

अथवा

"हर्ष में समुद्रगुप्त तथा अशोक दोनों के गुण विद्यमान थे"–इस कथन की विवेचना कीजिए । 6

4. कला तथा साहित्य के क्षेत्र में चोल शासकों की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। 6

अथवा

बलबन की राजनीतिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए तथा गुलाम वंश के इतिहास में उसका स्थान निर्धारित कीजिए । 6

5. तैमूर के दिल्ली आक्रमण के मुख्य प्रभावों का वर्णन कीजिए । 6

अथवा

बहमनी राज्य के उत्थान और पतन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए । 6

खण्ड –'ख'

(लघु उत्तरीय प्रश्न)

6. मेगस्थनीज के विषय में आप क्या जानते हैं ? 2
7. सैन्धव घाटी सभ्यता को कांस्य युगीन क्यों कहते हैं ? 2
8. गुप्तकाल में विज्ञान के क्षेत्र में क्या प्रगति हुई थी ? 2
9. सल्तनत काल में संस्कृत साहित्य के विकास का संक्षिप्त वर्णन कीजिए । 2

खण्ड – 'ग'

(ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों तथा व्यक्तियों से सम्बन्धित प्रश्न)

10. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों में से किन्हीं दस से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख कीजिए। प्रत्येक सही उत्तर के लिए $^1/_2$ अंक निर्धारित है : 5

(क) 563 ई. पू.	(ख) 326 ई. पू.	(ग) 261 ई. पू.
(घ) 149 ई. पू.	(ङ) 130 ई.	(च) 455 ई.
(छ) 647 ई.	(ज) 1026 ई.	(झ) 1225 ई.
(ञ) 1294 ई.	(ट) 1325 ई.	(ठ) 1347 ई.
(ड) 1353 ई.	(ढ) 1398 ई.	(ण) 1414 ई.

11. निम्नलिखित में से किसी एक स्थान के भवनों, कलाकृतियों एवं ऐतिहासिक महत्त्व का उल्लेख कीजिए : 3

(अ) कन्नौज (ब) जौनपुर (स) नालन्दा

12. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए : 2+2=4

(अ) महापद्मनंद

(ब) गौतमीपुत्र शातकर्णि

(स) अमीर खुसरो

(द) गुरु नानक।

1999

खण्ड – 'क'

(निबन्धात्मक प्रश्न)

1. 'भारत की भौगोलिक परिस्थितियों का उसके राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।' विवेचना कीजिए। 3+3

अथवा

सिन्धु घाटी के निवासियों के सामाजिक और आर्थिक जीवन की प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए। 3+3

2. बौद्ध धर्म के प्रमुख सम्प्रदायों का उल्लेख करते हुए समय-समय पर आयोजित बौद्ध संगीतियों का वर्णन कीजिए। 2+4

अथवा

'सिकन्दर का आक्रमण एक ऐसी महान् घटना थी कि भारतीय इतिहास पर इसका प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था।' विवेचना कीजिए। 6

3. मौर्य कौन थे? चन्द्रगुप्त मौर्य की राजनीतिक सफलताओं का वर्णन कीजिए। 2+4

अथवा

भारत पर हूणों के आक्रमणों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। इन आक्रमणों का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा? 3+3

4. हर्षवर्धन की प्रारम्भिक कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए महत्त्वपूर्ण विजयों का वर्णन कीजिए। 2+4

अथवा

बलबन की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। गुलाम वंश के इतिहास में उसका क्या स्थान है? 3+3

5. तुगलक साम्राज्य के पतन में फिरोज तुगलक कहाँ तक उत्तरद था? 6

अथवा

'शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में सल्तनत काल में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई थी।' विवेचन कीजिए। 3+3

खण्ड – 'ख'

(लघु उत्तरीय प्रश्न)

6. भारतीय इतिहास लेखन में बौद्ध साहित्य से क्या जानकारी मिलती है? 2
7. जैन धर्म के सम्प्रदायों पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए। 2
8. गुप्तकाल में साहित्य के विकास पर टिप्पणी लिखिए। 2
9. राजपूतकाल में साहित्य के क्षेत्र में क्या प्रगति हुई थी? 2

खण्ड – 'ग'

(ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों तथा व्यक्तियों से सम्बन्धित प्रश्न)

10. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों में से किन्हीं दस से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख कीजिए। प्रत्येक सही उत्तर के लिए $^1/_2$ अंक निर्धारित है : 5

(क) 326 ई. पू. (ख) 305 ई. पू. (ग) 149 ई. पू.
(घ) 78 ई. (ङ) 123 ई. (च) 606 ई.
(छ) 647 ई. (ज) 712 ई. (झ) 1026 ई.
(ञ) 1221 ई. (ट) 1240 ई. (ठ) 1316 ई.
(ड) 1320 ई. (ढ) 1388 ई. (ण) 1398 ई.

11. निम्नलिखित में से किसी एक स्थान के भवनों, कलाकृतियों एवं ऐतिहासिक महत्त्व का उल्लेख कीजिए : 3

(अ) मोहनजोदड़ो (ब) तक्षशिला (स) ग्वालियर

12. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए : 2+2

(अ) अजातशत्रु
(ब) पुलकेशिन द्वितीय
(स) रामानन्द
(द) सिकन्दर लोदी।

●

2000

464 (EB)

खण्ड – 'क'

(निबन्धात्मक प्रश्न)

1. प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के लिए विभिन्न स्रोतों की विवेचना कीजिए। 6

अथवा

आर्य कौन थे ? उनके सामाजिक-आर्थिक जीवन पर प्रकाश डालिए। 2+4

2. हड़प्पा सभ्यता का विवरण प्रस्तुत कीजिए। इस सभ्यता को नगरीय सभ्यता क्यों माना जाता है ? 4+2

अथवा

उत्तर-वैदिक कालीन आर्यों की वर्ण-व्यवस्था एवं आश्रम-व्यवस्था का वर्णन कीजिए। 3+3

3. रामायण एवं महाभारतकालीन स्त्रियों की दशा पर एक निबन्ध लिखिए। 6

अथवा

गौतम बुद्ध की जीवनी एवं शिक्षाओं की विवेचना कीजिए। 2+4

4. चन्द्रगुप्त मौर्य की प्रशासनिक उपलब्धियों की व्याख्या कीजिए। 6

अथवा

समुद्रगुप्त की विजयों का वर्णन करते हुए उसके साम्राज्य विस्तार को प्रदर्शित कीजिए। 3+3

5. "दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक इल्तुतमिश था।" इस कथन के आधार पर प्रकाश डालिए। 6

अथवा

मोहंम्मद तुगलक की महत्त्वाकांक्षी योजनाओं का मूल्यांकन कीजिए। 6

खण्ड – ख

(लघु उत्तरीय प्रश्न)

6. बल्बन के राजत्व सिद्धान्त का संक्षिप्त विवरण दीजिए। 2
7. अलाउद्दीन खिलजी की बाजार नियन्त्रण व्यवस्था का संक्षिप्त परिचय दीजिए। 2
8. सल्तनत काल के पतन के दो प्रमुख कारणों की समीक्षा क़ीजिए। 2
9. कबीर की शिक्षाओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। 2

खण्ड – ग

(ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों तथा व्यक्तियों से सम्बन्धित प्रश्न)

10. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों में से किन्हीं दस से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख कीजिए। प्रत्येक सही उत्तर के लिए $^1/_2$ अंक निर्धारित है : 5

(क) 543 ई.पू. (ख) 323 ई.पू. (ग) 269 ई.पू. (घ) 78 ई.
(ङ) 319 ई. (च) 606 ई. (छ) 1206 ई. (ज) 1296 ई.
(झ) 1398 ई. (ञ) 1405 ई. (ट) 1414 ई. (ठ) 1489 ई.
(ड) 1517 ई. (ढ) 1526 ई.

11. निम्नलिखित में से किसी एक स्थान के भवनों, कलाकृतियों एवं ऐतिहासिक महत्त्व का उल्लेख कीजिए : 3

(क) गान्धार (ख) चित्तौड़ (ग) कन्नौज

12. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए : 4

(क) फाह्यान (ख) बाणभट्ट (ग) रज़िया सुल्तान (घ) जियाउद्दीन बर्नी

2001

464 (BD)

खण्ड – 'क' : 1

(निबन्धात्मक प्रश्न)

1. प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में विदेशी वृत्तान्तों एवं मुद्राशास्त्रीय साक्ष्यों के महत्व की विवेचना कीजिए। 3 + 3

अथवा

सिंधु घाटी सभ्यता की नगरीय विशेषताओं का विवरण दीजिए। 6

2. आर्यों के 'वर्ण' एवं 'आश्रम' व्यवस्थाओं पर प्रकाश डालिए। 3 + 3

अथवा

गौतम बुद्ध की शिक्षा एवं उसके प्रभाव पर प्रकाश डालिए। 4 + 2

3. चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियों की विवेचना कीजिए। 6

अथवा

समुद्रगुप्त की विजयों का विवरण दीजिए। 6

खण्ड – 'क' : 2

4. "सम्राट हर्ष में समुद्रगुप्त और अशोक दोनों के गुण विद्यमान थे।" इस कथन की विवेचना कीजिए। 3 + 3

अथवा

"यद्यपि ऐबक ने दिल्ली सल्तनत की नींव रखी, किन्तु इल्तुतमिश उसका वास्तविक संस्थापक था।" स्पष्ट कीजिए। 6

5. "स्थिर मूल्य-रेखा अलाउद्दीन खिलज़ी के बाजार नियंत्रण की विशेषता थी।" व्याख्या कीजिए। 6

अथवा

"मोहम्मद तुग़लक विरोधी प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण था।" इस कथन के आलोक में मोहम्मद तुग़लक का मूल्यांकन कीजिए। 6

खण्ड – ख

6. महावीर के जीवन एवं शिक्षा पर एक टिप्पणी लिखिए। $\frac{1}{2}+1\frac{1}{2}$

7. क्या गुप्त काल स्वर्ण युग था? 2

8. रज़िया के पतन के क्या कारण थे? 2

9. बल्बन के राजत्व सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। 2

खण्ड – ग

10. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों में से किन्ही दस से सम्बंधित घटनाओं का उल्लेख कीजिए। प्रत्येक सही उत्तर के लिए $\frac{1}{2}$ अंक निर्धारित है : 5

(i) 599 ई. पू.
(ii) 461 ई. पू.
(iiii) 327 ई. पू.
(iv) 232 ई. पू.
(v) 325 ई.
(vi) 415 ई.
(vii) 515 ई.
(viii) 606 ई.
(ix) 629 ई.
(x) 1025 ई.
(xi) 1192 ई.
(xii) 1210 ई.
(xiii) 1221 ई.
(xiv) 1290 ई.
(xv) 1324 ई.
(xvi) 1336 ई.
(xvii) 1398 ई.

11. निम्नलिखित में से किसी एक स्थान के भवनों, कलाकृतियों एवं ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए : 3

(क) इलाहाबाद
(ख) पाटलिपुत्र
(ग) अजमेर।

12. निम्नलिखितं में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए : 4

(क) बाणभट्ट
(ख) ह्वेन सांग
(ग) चंगेज़ खाँ
(घ) महमूद गवाँ।